प्रेमचंद रचनावली

3

संपादक
राम आनंद

जनवाणी प्रकाशन प्रा॰ लि॰
पंजीकृत कार्यालय एवं शोरूम
30/22ए, गली न॰ 9, विश्वास नगर, दिल्ली-110032
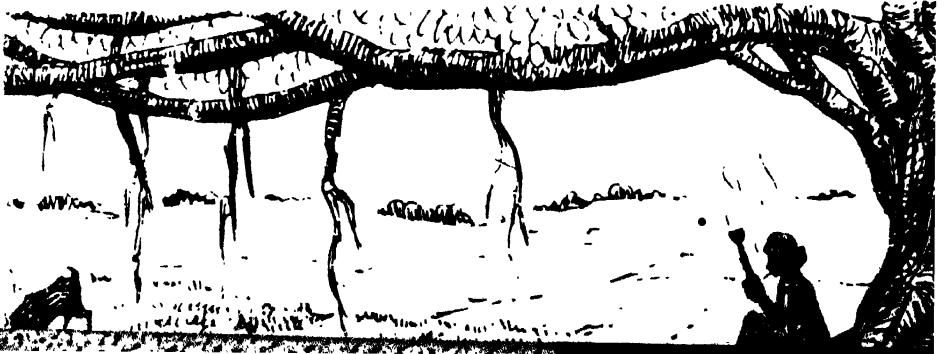
प्रेमचंद रचनावली

खण्ड : तीन

भूमिका एवं मार्गदर्शन

डॉ॰ रामविलास शर्मा
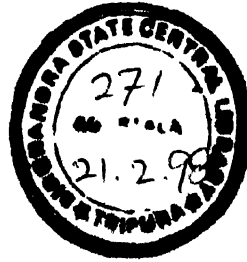
प्रकाशक
जनवाणी प्रकाशन प्रा० लि०
30/22ए, गली न० 9, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110 032

मूल्य
प्रथम सेट (खण्ड 1-10)
द्वितीय सेट (खण्ड 11-20)
सम्पूर्ण सेट (खण्ड 1-20)

कला पक्ष
संदीप पाराशर

प्रोसेस
शर्मा प्रोसेस, दिल्ली-110032

शब्द संयोजक, मुद्रक
भारती आर्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

PREMCHAND
RACHANAVALI
Collected works of
Munshi Premchand

प्रकाशकीय

'प्रेमचंद रचनावली' का प्रकाशन जनवाणी के लिए गौरव की बात है। कॉपीराइट समाप्त होने के बाद प्रेमचंद साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित-प्रचारित हुआ। पर उनका सम्पूर्ण साहित्य अब तक कहीं भी एक जगह उपलब्ध नहीं था। लगातार यह जरूरत महसूस की जा रही थी कि उनके सम्पूर्ण साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन हो।

श्रेष्ठ और कालजयी साहित्यकारों के समग्र कृतित्व का एकत्र प्रकाशन कई दृष्टियों से उपयोगी होता है। इसी आलोक में **'प्रेमचंद रचनावली'** की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख बहुत आवश्यक है। इस रचनावली में पहली बार सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्य सर्वाधिक शुद्ध और प्रामाणिक मूल पाठ के साथ सामने आया है। सम्पूर्ण रचनाओं का विभाजन पहले विधावार तत्पश्चात् कालक्रमानुसार किया गया है। रचनाओं के प्रथम प्रकाशन एवं उनके कालक्रम संबंधी प्रामाणिक जानकारी प्रत्येक रचना के अन्त में दी गई है जिससे प्रेमचंद के कृतित्व के अध्ययन और मूल्यांकन में विशेष सुविधा होगी। इसकी अधिकांश सामग्री प्रथम संस्करणों या काफी पुराने संस्करणों से ली गई है। प्रेमचंद साहित्य के अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के लिए इस रचनावली का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें प्रेमचंद की अब तक उपलब्ध सम्पूर्ण तथा अद्यतन सामग्री का समावेश कर लिया गया है। रचनावली के बीस खण्डों का क्रमबद्ध प्रारूप इस प्रकार है—

> **खण्ड 1-6 :** मौलिक उपन्यास; **खण्ड 7-9 :** लेख, भाषण, संस्मरण, संपादकीय, भूमिकाएं, समीक्षाएं; **खण्ड 10 :** मौलिक नाटक; **खण्ड 11-15:** सम्पूर्ण कहानियां (302); **खण्ड 16-17 :** अनुवाद (उपन्यास, नाटक, कहानी); **खण्ड 18 :** जीवनी एवं बाल साहित्य; **खण्ड 19 :** पत्र (चिट्ठी-पत्री); **खण्ड 20 :** विविध।

रचनावली की विस्तृत भूमिका मूर्धन्य आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखी है, जो इस रचनावली की सबसे बड़ी उपलब्धि है। डॉ० शर्मा ने अपनी साहित्य-साधना के व्यस्त क्षणों में भी हर कदम पर हमारा मार्गदर्शन किया। रचनावली का जो यह उत्कृष्ट रूप सामने आया है यह सब उन्हीं के आशीर्वाद का प्रतिफल है। इस कृपा और सहयोग के लिए मैं उनके प्रति नतमस्तक हूं।

बिहार विधान परिषद् के माननीय सभापति, हिन्दी और उर्दू के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो० जाबिर हुसेन ने प्रेमचंद रचनावली के संपादक-मण्डल का अध्यक्ष होना स्वीकार किया और रचनावली के संपादन कार्य में हमारा उचित मार्गदर्शन किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं। साथ ही संपादक-मण्डल के विद्वान सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

श्री केशवदेव शर्मा ने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद सम्पादन कार्य में जिस गहरी लगन, समझदारी और आत्मीयता से सहयोग किया है उसके लिए उनके प्रति अनेकशः धन्यवाद। उनका अहर्निश सानिध्य मुझे स्फूर्ति प्रदान करता रहा। डॉ० गीता शर्मा एवं डॉ० अशोक कुमार शर्मा, वेद प्रकाश सोनी तथा डॉ० विनय के प्रति भी उनके हार्दिक सहयोग के लिए आभारी हूं।

भाई राम आनंद साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रेमचंद द्वारा स्थापित प्रकाशन संस्थान **'सरस्वती प्रेस'** से जुड़ गए थे। लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने स्व॰ श्रीपत राय (प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र) के मार्गदर्शन में अप्राप्य प्रेमचंद साहित्य पर शोध कार्य किया। वे स्व॰ श्रीपत राय के संपादन में प्रकाशित होने वाली विख्यात कथा-पत्रिका **'कहानी'** के सहायक संपादक रहे। श्रीपत राय के देहांत के बाद उन्होंने **'कहानी'** का स्वतंत्र रूप से संपादन किया और उसे नया रूप तथा गरिमा प्रदान की। उन्होंने जिस गहरी सूझ-बूझ, लगन, धैर्य और निष्ठा से इस रचनावली के संपादन कार्य को इतने सुरुचिपूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से संपन्न किया, इसके लिए वे हम सबों के साधुवाद के पात्र हैं।

श्री हरीशचन्द्र वार्ष्णेय, श्री प्रेमशंकर शर्मा, श्री उदयकान्त पाठक ने प्रूफ-संशोधन और सम्पूर्ण मुद्रण कार्य में विशेष जागरूकता और मनस्विता का परिचय दिया; इनके साथ विमलसिंह, आर॰ के॰ यादव, सुनील जैन, शिवानंदसिंह तथा संस्था के अन्य सभी सहकर्मियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं क्योंकि इन सबके सहयोग और सद्‌भाव के बिना यह काम पूरा होना लगभग असंभव था।

मेरी भ्रातृजा रीमा और भ्रातृज संदीप, संजीव, मनीष, विक्रांत, चेतन की लगन और सूझबूझ ने भी मुझे सदैव प्रेरित और उत्साहित किया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

रचनावली के मुद्रण का कार्य श्री कान्तीप्रसाद शर्मा की देखरेख में हुआ है। उनकी सूझबूझ और श्रमनिष्ठा के लिए वे हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

सर्वश्री विजयदान देथा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', रामकुमार कृषक, स्वामी प्रेम जहीर, डॉ॰ कुसुम वियोगी, रामकुमार शर्मा आदि सभी मित्रों के सुझावों के लिए भी आभारी हूं।

इस कार्य में पूज्य माताजी श्रीमती जसवन्ती देवी का आशीर्वाद और पिताश्री प्रेमनाथ शर्मा का दीर्घकालीन प्रकाशन-व्यवसाय का अनुभव और आशीर्वाद मेरे विशेष प्रेरणा स्रोत रहे। इनके साथ मातृतुल्या भाभी श्रीमती ललिता शर्मा, अग्रज राजकुमार शर्मा, चमनलाल शर्मा, धर्मपाल शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी इन्दु शर्मा के साथ भाई हरीशकुमार शर्मा एवं सुभाषचन्द्र शर्मा के साथ ही चाचा श्री दीनानाथ शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने पग-पग पर मेरा मार्ग-दर्शन किया। और सबसे अंत में सहधर्मिणी श्रीमती गीता शर्मा ने जो सहयोग और संबल प्रदान किया उसके लिए आभार अथवा धन्यवाद जैसा शब्द बहुत कम होगा। सारा श्रेय उन्हीं का है।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सहयोग से दुर्लभ पुस्तक 'महात्मा शेखसादी' लगभग सत्तर वर्ष बाद एक बार फिर इस रचनावली के मार्फत पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। मैं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं। उन समस्त संस्थानों, पुस्तकालयों, विभागों, संस्थाओं, लेखकों, संपादकों, अधिकारियों और व्यक्तियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने इस रचनावली के आयोजन में सहयोग किया।

अन्त में विद्वान पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे इस रचनावली की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें ताकि आगामी संस्करणों में उन्हें दूर किया जा सके।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी जगत् इस बहु-प्रतीक्षित रचनावली का हार्दिक स्वागत करेगा।

अरुण कुमार
(प्रबंध निदेशक)
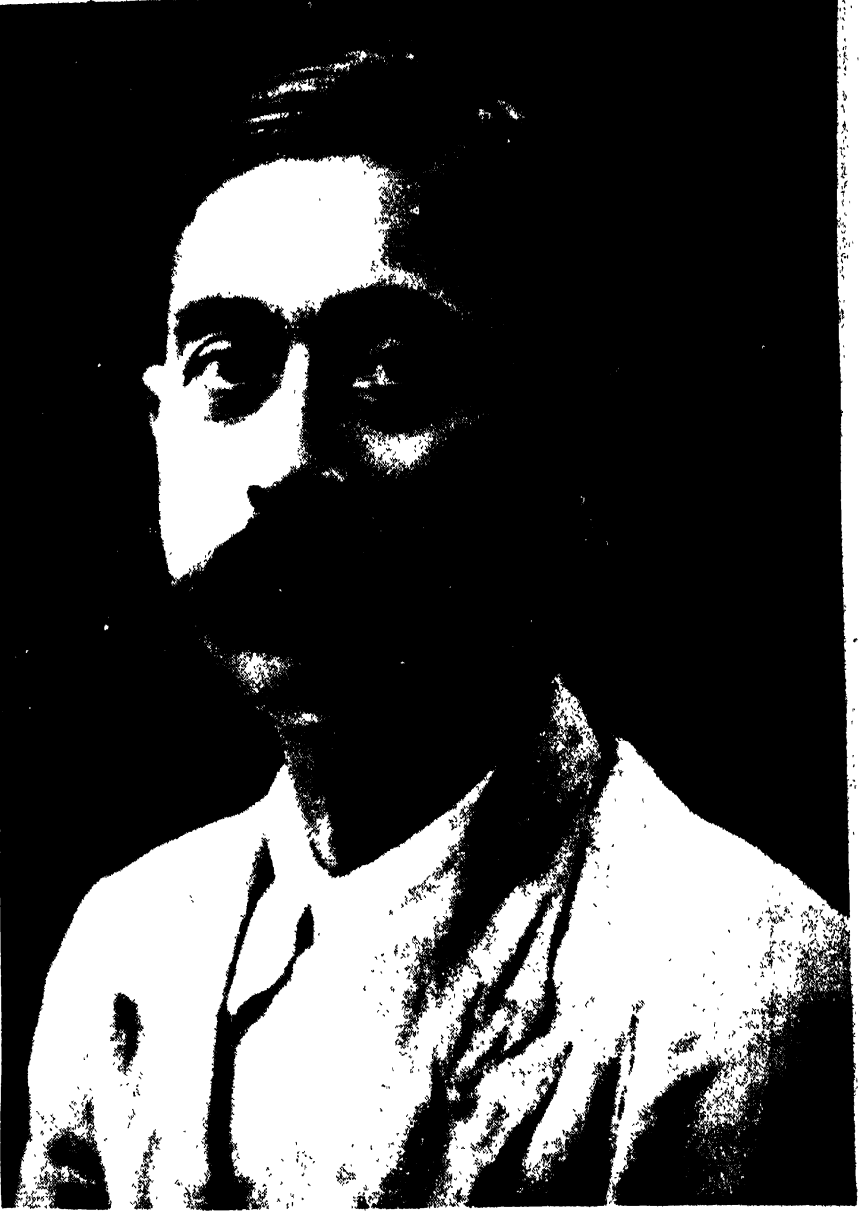
प्रेमचंद (1925)

प्रेमचंद, ऋषभचरण जैन, जैनेन्द्र कुमार

रंगभूमि

रचनाकाल : अक्टूबर, 1922 - 1 अप्रैल, 1924

प्रकाशनकाल : फरवरी, 1925

गंगा-पुस्तकमाला का उंतालीसवाँ पुष्प

रंगभूमि

(प्रथम भाग)

लेखक

प्रेमचंद

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

रेशमी जिल्द ३)] सं० १९८१ वि० [सादी २॥)

(प्रथम संस्करण का मुखपृष्ठ)

एक

शहर अमीरों के रहने और क्रय-विक्रय का स्थान है। उसके बाहर की भूमि उनके मनोरंजन और विनोद की जगह है। उसके मध्य भाग में उनके लड़कों की पाठशालाएं और उनके मुकदमेबाजी के अखाड़े होते हैं, जहां न्याय के बहाने गरीबों का गला घोंटा जाता है। शहर के आस-पास गरीबों की बस्तियां होती हैं। बनारस में पांड़ेपुर ऐसी ही बस्ती है। वहां न शहरी दीपकों की ज्योति पहुंचती है, न शहरी छिड़काव के छींटे, न शहरी जल-स्रोतों का प्रवाह। सड़क के किनारे छोटे-छोटे बनियों और हलवाइयों की दूकानें हैं, और उनके पीछे कई इक्केवाले, गाड़ीवान, ग्वाले और मजदूर रहते हैं। दो-चार घर बिगड़े सफेदपोशों के भी हैं, जिन्हें उनकी हीनावस्था ने शहर से निर्वासित कर दिया है। इन्हीं में एक गरीब और अंधा चमार रहता है, जिसे लोग सूरदास कहते हैं। भारतवर्ष में अंधे आदमियों के लिए न नाम की जरूरत होती है, न काम की। सूरदास उनका बना-बनाया नाम है, और भीख मांगना बना-बनाया काम है। उनके गुण और स्वभाव भी जगत् प्रसिद्ध हैं—गाने-बजाने में विशेष रुचि, हृदय में विशेष अनुराग, अध्यात्म और भक्ति में विशेष प्रेम, उनके स्वाभाविक लक्षण हैं। बाह्य दृष्टि बंद और अंतर्दृष्टि खुली हुई।

सूरदास एक बहुत ही क्षीणकाय, दुर्बल और सरल व्यक्ति था। उसे दैव ने कदाचित् भीख मांगने ही के लिए बनाया था। वह नित्यप्रति लाठी टेकता हुआ पक्की सड़क पर आ बैठता और राहगीरों की जान की खैर मनाता। 'दाता ! भगवान् तुम्हारा कल्यान करें—' यही उसकी टेक थी, और इसी को वह बार-बार दुहराता था। कदाचित् वह इसे लोगों की दया-प्रेरणा का मंत्र समझता था। पैदल चलने वालों को वह अपनी जगह पर बैठे-बैठे दुआएं देता था। लेकिन जब कोई इक्का आ निकलता, तो वह उसके पीछे दौड़ने लगता, और बग्घियों के साथ तो उसके पैरों में पर लग जाते थे। किंतु हवागाड़ियों को वह अपनी शुभेच्छाओं से परे समझता था। अनुभव ने उसे शिक्षा दी थी कि हवागाड़ियां किसी की बातें नहीं सुनतीं। प्रातःकाल से संध्या तक उसका समय शुभ कामनाओं ही में कटता था। यहां तक कि माघ-पूस की बदली और वायु तथा जेठ-बैसाख की लू-लपट में भी उसे नागा न होता था।

कार्तिक का महीना था। वायु में सुखद शीतलता आ गई थी। संध्या हो चुकी थी। सूरदास अपनी जगह पर मूर्तिवत् बैठा हुआ किसी इक्के या बग्घी के आशाप्रद शब्द पर कान लगाए था। सड़क के दोनों ओर पेड़ लगे हुए थे। गाड़ीवानों ने उनके नीचे गाड़ियां ढील दीं। उनके पछाहीं बैल टाट के टुकड़ों पर खली और भूसा खाने लगे। गाड़ीवानों ने भी उपले जला दिए। कोई चादर पर आटा गूंधता था, कोई गोल-गोल बाटियां बनाकर उपलों पर सेंकता था। किसी को बरतनों की जरूरत न थी। सालन के लिए घुइएं का भुरता काफी था। और इस दरिद्रता पर

भी उन्हें कुछ चिंता नहीं थी, बैठे बाटियां सेंकते और गाते थे। बैलों के गले में बंधी हुई घंटियां मजीरों का काम दे रही थीं। गनेस गाड़ीवान ने सूरदास से पूछा—क्यों भगत, ब्याह करोगे?

सूरदास ने गर्दन हिलाकर कहा—कहीं है डौल?

गनेस—हां, है क्यों नहीं। एक गांव में एक सुरिया है, तुम्हारी ही जात-बिरादरी की है, कहो तो बातचीत पक्की करूं? तुम्हारी बरात में दो दिन मजे से बाटियां लगें।

सूरदास—कोई जगह बताते, जहां धन मिले, और इस भिखमंगी से पीछा छूटे। अभी अपने ही पेट की चिंता है, तब एक अंधी की और चिंता हो जाएगी। ऐसी बेड़ी पैर में नहीं डालता। बेड़ी ही है, तो सोने की तो हो।

गनेस—लाख रुपये की मेहरिया न पा जाओगे। रात को तुम्हारे पैर दबाएगी, सिर में तेल डालेगी, तो एक बार फिर जवान हो जाओगे। यह हड्डियां न दिखाई देंगी।

सूरदास—तो रोटियों का सहारा भी जाता रहेगा। ये हड्डियां देखकर ही तो लोगों को दया आ जाती है। मोटे आदमियों को कौन भीख देता है? उलटे और ताने मिलते हैं।

गनेस—अजी नहीं, वह तुम्हारी सेवा भी करेगी और तुम्हें भोजन भी देगी। बेचन साह के यहां तेलहन झाड़ेगी तो चार आने रोज पाएगी।

सूरदास—तब तो और भी दुर्गति होगी। घरवाली की कमाई खाकर किसी को मुंह दिखाने लायक भी न रहूंगा।

सहसा एक फिटन आती हुई सुनाई दी। सूरदास लाठी टेककर उठ खड़ा हुआ। यही उसकी कमाई का समय था। इसी समय शहर के रईस और महाजन हवा खाने आते थे। फिटन ज्योंही सामने आई, सूरदास उसके पीछे 'दाता ! भगवान् तुम्हारा कल्यान करें।' कहता हुआ दौड़ा।

फिटन में सामने की गद्दी पर मि॰ जॉन सेवक और उनकी पत्नी मिसेज जॉन सेवक बैठी हुई थीं। दूसरी गद्दी पर उनका जवान लड़का प्रभु सेवक और छोटी बहन सोफिया सेवक थी। जॉन सेवक दुहरे बदन के गोरे-चिट्टे आदमी थे। बुढ़ापे में चेहरा लाल था। सिर और दाढ़ी के बाल खिचड़ी हो गए थे। पहनावा अंग्रेजी था, जो उन पर खूब खिलता था। मुख आकृति से गरूर और आत्मविश्वास झलकता था। मिसेज सेवक को काल-गति ने अधिक सताया था। चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं, और उससे हृदय की संकीर्णता टपकती थी, जिसे सुनहरी ऐनक भी न छिपा सकती थी। प्रभु सेवक की मसें भींग रही थीं, छरहरा डील, एकहरा बदन, निस्तेज मुख, आंखों पर ऐनक, चेहरे पर गंभीरता और विचार का गाढ़ा रंग नजर आता था। आंखों से करुणा की ज्योति-सी निकली पड़ती थी। वह प्रकृति-सौंदर्य का आनंद उठाता हुआ जान पड़ता था। मिस सोफिया बड़ी-बड़ी रसीली आंखों वाली, लज्जाशील युवती थी। देह अति कोमल, मानो पंचभूतों की जगह पुष्पों से उसकी सृष्टि हुई हो। रूप अति सौम्य, मानो लज्जा और विनय मूर्तिमान हो गए हों। सिर से पांव तक चेतना ही चेतना थी, जड़ का कहीं आभास तक न था।

सूरदास फिटन के पीछे दौड़ता चला आता था। इतनी दूर तक और इतने वेग से कोई मंजा हुआ खिलाड़ी भी न दौड़ सकता था। मिसेज सेवक ने नाक सिकोड़कर कहा—इस दुष्ट की चीख ने तो कान के परदे फाड़ डाले। क्या यह दौड़ता ही चला जाएगा?

मि॰ जॉन सेवक बोले—इस देश के सिर से यह बला न-जाने कब टलेगी? जिस देश

में भीख मांगना लज्जा की बात न हो, यहां तक कि सर्वश्रेष्ठ जातियां भी जिसे अपनी जीवन-वृत्ति बना लें, जहां महात्माओं का एकमात्र यही आधार हो, उसके उद्धार में अभी शताब्दियों की देर है।

प्रभु सेवक–यहां यह प्रथा प्राचीन काल से चली आती है। वैदिक काल में राजों के लड़के भी गुरुकुलों में विद्या-लाभ करते समय भीख मांगकर अपना और अपने गुरु का पालन करते थे। ज्ञानियों और ऋषियों के लिए भी यह कोई अपमान की बात न थी, किंतु वे लोग माया-मोह से मुक्त रहकर ज्ञान-प्राप्ति के लिए दया का आश्रय लेते थे। उस प्रथा का अब अनुचित व्यवहार किया जा रहा है। मैंने यहां तक सुना है कि कितने ही ब्राह्मण, जो जमींदार हैं, घर से खाली हाथ मुकदमे लड़ने चलते हैं, दिन-भर कन्या के विवाह के बहाने या किसी संबंधी की मृत्यु का हीला करके भीख मांगते हैं, शाम को नाज बेचकर पैसे खड़े कर लेते हैं, पैसे जल्द रुपये बन जाते हैं, और अंत में कचहरी के कर्मचारियों और वकीलों की जेब में चले जाते हैं।

मिसेज सेवक–साईस, इस अंधे को कह दो, भाग जाए, पैसे नहीं हैं।

सोफिया–नहीं मामा, पैसे हों तो दे दीजिए। बेचारा आधे मील से दौड़ा आ रहा है, निराश हो जाएगा। उसकी आत्मा को कितना दु:ख होगा।

सोफिया–नहीं, अच्छी मामा, कुछ दे दीजिए, बेचारा कितना हांफ रहा है।

प्रभु सेवक ने जेब से केस निकाला, किंतु तांबे या निकिल का कोई टुकड़ा न निकला, और चांदी का सिक्का देने में मां के नाराज होने का भय था। बहन से बोले–सोफी, खेद है, पैसे नहीं निकले। साईस, अंधे से कह दो, धीरे-धीरे गोदाम तक चला आए, वहां शायद पैसे मिल जाएं।

किंतु सूरदास को इतना संतोष कहां? जानता था, गोदाम पर कोई भी मेरे लिए खड़ा न रहेगा, कहीं गाड़ी आगे बढ़ गई, तो इतनी मेहनत बेकार हो जाएगी। गाड़ी का पीछा न छोड़ा, पूरे एक मील तक दौड़ता चला गया। यहां तक कि गोदाम आ गया और फिटन रुकी। सब लोग उतर पड़े। सूरदास भी एक किनारे खड़ा हो गया, जैसे वृक्षों के बीच में ठूंठ खड़ा हो। हांफते-हांफते बेदम हो रहा था।

मि० जॉन सेवक ने यहां चमड़े की आढ़त खोल रखी थी। ताहिरअली नाम का एक व्यक्ति उसका गुमाश्ता था। बरामदे में बैठा हुआ था। साहब को देखकर ही उसने उठकर सलाम किया।

जॉन सेवक ने पूछा–कहिए खां साहब, चमड़े की आमदनी कैसी है?

ताहिर–हुजूर, अभी जैसी होनी चाहिए, वैसी तो नहीं है, मगर उम्मीद है कि आगे अच्छी होगी।

जॉन सेवक–कुछ दौड़-धूप कीजिए, एक जगह बैठे रहने से काम न चलेगा। आस-पास के देहातों में चक्कर लगाया कीजिए। मेरा इरादा है कि म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन साहब से मिलकर यहां एक शराब और ताड़ी की दुकान खुलवा दूं। तब आस-पास के चमार यहां रोज आयंगे, और आपको उनसे मेल-जोल करने का मौका मिलेगा। आजकल इन छोटी-छोटी चालों के बगैर काम नहीं चलता। मुझी को देखिए, ऐसा शायद ही कोई दिन जाता होगा, जिस दिन शहर के दो-चार धनी-मानी पुरुषों से मेरी मुलाकात न होती हो। दस हजार की भी एक पॉलिसी मिल गई, तो कई दिनों की दौड़-धूप ठिकाने लग जाती है।

ताहिर—हुजूर, मुझे खुद फिक्र है। क्या जानता नहीं हूं कि मालिक को चार पैसे का नफा न होगा, तो वह यह काम करेगा ही क्यों? मगर हुजूर ने मेरी जो तनख्वाह मुकर्रर की है, उसमें गुजारा नहीं होता। बीस रुपये का तो गल्ला भी काफी नहीं होता, और सब जरूरतें अलग। अभी आपसे कुछ कहने की हिम्मत तो नहीं पड़ती, मगर आपसे न कहूं, तो किससे कहूं?

जॉन सेवक—कुछ दिन काम कीजिए, तरक्की होगी न। कहां है आपका हिसाब-किताब, लाइए, देखूं।

यह कहते हुए जॉन सेवक बरामदे में एक टूटे हुए मोढ़े पर बैठ गए। मिसेज सेवक कुर्सी पर बैठीं। ताहिरअली ने हिसाब की बही सामने लाकर रख दी। साहब उसकी जांच करने लगे। दो-चार पन्ने उलट-पलटकर देखने के बाद नाक सिकोड़कर बोले—अभी आपको हिसाब-किताब लिखने का सलीका नहीं है, उस पर आप कहते हैं, तरक्की कर दीजिए। हिसाब बिलकुल आईना होना चाहिए; यहां तो कुछ पता नहीं चलता कि आपने कितना माल खरीदा, और कितना माल रवाना किया। खरीददार को प्रति खाता एक आना दस्तूरी मिलती है, वह कहीं दर्ज ही नहीं है।

ताहिर—क्या उसे भी दर्ज कर दूं?

जॉन सेवक—क्यों, वह मेरी आमदनी नहीं है?

ताहिर—मैंने तो समझा कि वह मेरा हक है।

जॉन सेवक—हरगिज नहीं, मैं आप पर गबन का मामला चला सकता हूं। (त्योरियां बदलकर) मुलाजिमों का हक है? खूब? आपका हक तनख्वाह, इसके सिवा आपको कोई हक नहीं है।

ताहिर—हुजूर, अब आइंदा ऐसी गलती न होगी।

जॉन सेवक—अब तक आपने इस मद में जो रकम वसूल की है, वह आमदनी में दिखाइए। हिसाब-किताब के मामले में मैं जरा भी रिआयत नहीं करता।

ताहिर—हुजूर, बहुत छोटी रकम होगी।

जॉन सेवक—कुछ मुजायका नहीं, एक ही पाई सही, वह सब आपको भरनी पड़ेगी। अभी वह रकम छोटी है, कुछ दिनों में उसकी तादाद सैकड़ों तक पहुंच जाएगी। उस रकम से मैं यहां एक संडे-स्कूल खोलना चाहता हूं। समझ गए? मेम साहब की यह बड़ी अभिलाषा है। अच्छा चलिए, वह जमीन कहां है, जिसका आपने जिक्र किया था?

गोदाम के पीछे एक ओर एक विस्तृत मैदान था। यहां आस-पास के जानवर चरने आया करते थे। जॉन सेवक यह जमीन लेकर यहां सिगरेट बनाने का एक कारखाना खोलना चाहते थे। प्रभु सेवक को इसी व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका भेजा था। जॉन सेवक के साथ प्रभु सेवक और उनकी माता भी जमीन देखने चलीं। पिता और पुत्र ने मिलकर जमीन का विस्तार नापा। कहां कारखाना होगा, कहां गोदाम, कहां दफ्तर, कहां मैनेजर का बंगला, कहां श्रमजीवियों के कमरे, कहां कोयला रखने की जगह और कहां से पानी आएगा, इन विषयों पर दोनों आदमियों में देर तक बातें होती रहीं। अंत में मिस्टर सेवक ने ताहिरअली से पूछा—यह किसकी जमीन है?

ताहिर—हुजूर, यह तो ठीक नहीं मालूम, अभी चलकर यहां किसी से पूछ लूंगा, शायद

नायकराम पंडा की हो।

साहब–आप उससे यह जमीन कितने में दिला सकते हैं?

ताहिर–मुझे तो इसमें भी शक है कि वह इसे बेचेगा भी।

जॉन सेवक–अजी, बेचेगा उसका बाप, उसकी क्या हस्ती है? रुपये के सत्तरह आने दीजिए, और आसमान के तारे मांगवा लीजिए। आप उसे मेरे पास भेज दीजिए, मैं उससे बातें कर लूंगा।

प्रभु सेवक–मुझे तो भय है कि यहां कच्चा माल मिलने में कठिनाई होगी। इधर लोग तंबाकू की खेती कम करते हैं।

जॉन सेवक–कच्चा माल पैदा करना तुम्हारा काम होगा। किसान को ऊख या जौ-गेहूं से कोई प्रेम नहीं होता। वह जिस जिंस के पैदा करने में अपना लाभ देखेगा वही पैदा करेगा। इसकी कोई चिंता नहीं। खां साहब, आप उस पंडे को मेरे पास कल जरूर भेज दीजिएगा।

ताहिर–बहुत खूब, उसे कहूंगा।

जॉन सेवक–कहूंगा नहीं, भेज दीजिएगा। अगर आपसे इतना भी न हो सका, तो मैं समझूंगा, आपको सौदा पटाने का जरा भी ज्ञान नहीं।

मिसेज सेवक–(अंगरेजी में) तुम्हें इस जगह पर कोई अनुभवी आदमी रखना चाहिए था।

जॉन सेवक–(अंगरेजी में) नहीं, मैं अनुभवी आदमियों से डरता हूं। वे अपने अनुभव से अपना फायदा सोचते हैं, तुम्हें फायदा नहीं पहुंचाते। मैं ऐसे आदमियों से कोसों दूर रहता हूं।

ये बातें करते हुए तीनों आदमी फिटन के पास गए। पीछे-पीछे ताहिरअली भी थे। यहां सोफिया खड़ी सूरदास से बातें कर रही थी। प्रभु सेवक को देखते ही बोली–'प्रभु, यह अंधा तो कोई ज्ञानी पुरुष जान पड़ता है, पूरा फिलॉसफर है।'

मिसेज सेवक–तू जहां जाती है, वहीं तुझे कोई-न-कोई ज्ञानी आदमी मिल जाता है। क्यों रे अंधे, तू भीख क्यों मांगता है? कोई काम क्यों नहीं करता?

सोफिया–(अंगरेजी में) मामा, यह अंधा निरा गंवार नहीं है।

सूरदास को सोफिया से सम्मान पाने के बाद ये अपमानपूर्ण शब्द बहुत बुरे मालूम हुए। अपना आदर करने वाले के सामने अपना अपमान कई गुना असह्य हो जाता है। सिर उठाकर बोला–भगवान् ने जन्म दिया है, भगवान् की चाकरी करता हूं। किसी दूसरे की ताबेदारी नहीं हो सकती।

मिसेज सेवक–तेरे भगवान् ने तुझे अंधा क्यों बना दिया? इसलिए कि तू भीख मांगता फिरे? तेरा भगवान् बड़ा अन्यायी है।

सोफिया–(अंगरेजी में) मामा, आप इसका अनादर क्यों कर रही हैं, मुझे शर्म आती है।

सूरदास–भगवान् अन्यायी नहीं है, मेरे पूर्व-जन्म की कमाई ही ऐसी थी। जैसे कर्म किए हैं, वैसे फल भोग रहा हूं। यह सब भगवान् की लीला है। वह बड़ा खिलाड़ी है। घरौंदे बनाता-बिगाड़ता है। उसे किसी से बैर नहीं। वह क्यों किसी पर अन्याय करने लगा?

सोफिया–मैं अगर अंधी होती, तो खुदा को कभी माफ न करती।

सूरदास–मिस साहब, अपने पाप सबको आप भोगने पड़ते हैं, भगवान् का इसमें कोई दोष नहीं।

सोफिया—मामा, यह रहस्य मेरी समझ में नहीं आता। अगर प्रभु ईसू ने अपने रुधिर से हमारे पापों का प्रायश्चित कर दिया, तो फिर ईसाई समान दशा में क्यों नहीं हैं? अन्य मतावलंबियों की भांति हमारी जाति में अमीर-गरीब, अच्छे-बुरे, लंगड़े-लूले, सभी तरह के लोग मौजूद हैं। इसका क्या कारण है?

मिसेज सेवक ने अभी कोई उत्तर न दिया था कि सूरदास बोल उठा—मिस साहब, अपने पापों का प्रायश्चित हमें आप करना पड़ता है। अगर आज मालूम हो जाए कि किसी ने हमारे पापों का भार अपने सिर ले लिया, तो संसार में अंधेर मच जाए।

मिसेज सेवक—सोफी, बड़े अफसोस की बात है कि इतनी मोटी-सी बात तेरी समझ में नहीं आती, हालांकि रेवरेंड पिंम ने स्वयं कई बार तेरी शंका का समाधान किया है।

प्रभु सेवक—(सूरदास से) तुम्हारे विचार में हम लोगों को वैरागी हो जाना चाहिए क्यों?

सूरदास—हां, जब तक हम वैरागी न होंगे, दु:ख से नहीं बच सकते।

जॉन सेवक—शरीर में भभूत मलकर भीख मांगना स्वयं सबसे बड़ा दु:ख है, यह हमें दु:खों से क्योंकर मुक्त कर सकता है?

सूरदास—साहब, वैरागी होने के लिए भभूत लगाने और भीख मांगने की जरूरत नहीं। हमारे महात्माओं ने तो भभूत लगाने और जटा बढ़ाने को पाखंड बताया है। वैराग तो मन से होता है। संसार में रहे, पर संसार का होकर न रहे। इसी को वैराग कहते हैं।

मिसेज सेवक—हिन्दुओं ने ये बातें यूनान के Stoics से सीखी हैं, किंतु यह नहीं समझते कि इनका व्यवहार में लाना कितना कठिन है। यह हो ही नहीं सकता कि आदमी पर दु:ख-सुख का असर न पड़े, इसी अंधे को अगर इस वक्त पैसे न मिलें, तो दिल में हजारों गालियां देगा।

जॉन सेवक—हां, इसे कुछ मत दो, देखो, क्या कहता है। अगर जरा भी भुनभुनाया, तो हंटर से बातें करूंगा। सारा वैराग भूल जाएगा। मांगता है भीख, धेले-धेले के लिए मीलों कुत्तों की तरह दौड़ता है, उस पर दावा यह है कि वैरागी हूं। (कोचवान से) गाड़ी फेरो, क्लब होते हुए बंगले चलो।

सोफिया—मामा, कुछ तो जरूर दे दो, बेचारा आशा लगाकर इतनी दूर दौड़ा आया था।

प्रभु सेवक—ओहो, मुझे तो पैसे भुनाने की याद ही न रही।

जॉन सेवक—हरगिज नहीं, कुछ मत दो, मैं इसे वैराग का सबक देना चाहता हूं।

गाड़ी चली। सूरदास निराशा की मूर्ति बना हुआ अंधी आंखों से गाड़ी की तरफ ताकता रहा, मानो उसे अब भी विश्वास न होता था कि कोई इतना निर्दयी हो सकता है। वह उपचेतना की दशा में कई कदम गाड़ी के पीछे-पीछे चला। सहसा सोफिया ने कहा—सूरदास, खेद है, मेरे पास इस समय पैसे नहीं हैं। फिर कभी आऊंगी, तो तुम्हें इतना निराश न होना पड़ेगा।

अंधे सूक्ष्मदर्शी होते हैं। सूरदास स्थिति को भली-भांति समझ गया। हृदय को क्लेश तो हुआ, पर बेपरवाही से बोला—मिस साहब, इसकी क्या चिंता? भगवान् तुम्हारा कल्याण करें। तुम्हारी दया चाहिए, मेरे लिए यही बहुत है।

सोफिया ने मां से कहा—मामा, देखा आपने, इसका मन जरा भी मैला नहीं हुआ।

प्रभु सेवक—हां, दु:खी तो नहीं मालूम होता।

जॉन सेवक—उसके दिल से पूछो।

मिसेज सेवक—गालियां दे रहा होगा।

गाड़ी अभी धीरे-धीरे चल रही थी। इतने में ताहिरअली ने पुकारा—हुजूर, यह जमीन पंडा की नहीं, सूरदास की है। यह कह रहे हैं।

साहब ने गाड़ी रुकवा दी, लज्जित नेत्रों ने मिसेज सेवक को देखा, गाड़ी से उतरकर सूरदास के पास आए, और नम्र भाव से बोले—क्यों सूरदास, यह जमीन तुम्हारी है?

सूरदास—हां हुजूर, मेरी ही है। बाप-दादों की इतनी ही तो निशानी बच रही है।

जॉन सेवक—तब तो मेरा काम बन गया। मैं चिंता में था कि न-जाने कौन इसका मालिक है। उससे सौदा पटेगा भी या नहीं। जब तुम्हारी है, तो फिर कोई चिंता नहीं। तुम-जैसे त्यागी और सज्जन आदमी से ज्यादा झंझट न करना पड़ेगा। जब तुम्हारे पास इतनी जमीन है तो तुमने यह भेस क्यों बना रखा है?

सूरदास—क्या करूं हुजूर, भगवान् की जो इच्छा है, वह कर रहा हूं।

जॉन सेवक—तो अब तुम्हारी विपत्ति कट जाएगी। बस, यह जमीन मुझे दे दो। उपकार का उपकार, और लाभ का लाभ। मैं तुम्हें मुंह-मांगा दाम दूंगा।

सूरदास—सरकार, पुरुखों की यही निसानी है, बेचकर उन्हें कौन मुख दिखाऊंगा।

जॉन सेवक—यहीं सड़क पर एक कुआं बना दूंगा। तुम्हारे पुरुखों का नाम चलता रहेगा।

सूरदास—साहब, इस जमीन से मुहल्ले वालों का बड़ा उपकार होता है। कहीं एक अंगुल-भर चरी नहीं है। आस-पास से सब ढोर यहीं चरने आते हैं। बेच दूंगा, तो ढोरों के लिए कोई ठिकाना न रहेगा।

जॉन सेवक—कितने रुपये साल चराई के पाते हो?

सूरदास—कुछ नहीं, मुझे भगवान् खाने-भर को यों ही दे देते हैं, तो किसी से चराई क्या लूं? किसी का और कुछ उपकार नहीं कर सकता, तो इतना ही सही।

जॉन सेवक—(आश्चर्य से) तुमने इतनी जमीन यों ही चराई के लिए छोड़ रखी है? सोफिया सत्य कहती थी कि तुम त्याग की मूर्ति हो। मैंने बड़ों-बड़ों में इतना त्याग नहीं देखा। तुम धन्य हो। लेकिन जब पशुओं पर इतनी दया करते हो, तो मनुष्यों को कैसे निराश करोगे? मैं यह जमीन लिए बिना तुम्हारा गला न छोडूंगा।

सूरदास—सरकार, यह जमीन मेरी है जरूर, लेकिन जब तक मुहल्ले वालों से पूछ न लूं। कुछ कह नहीं सकता। आप इसे लेकर क्या करेंगे?

जॉन सेवक—यहां एक कारखाना खोलूंगा, जिससे देश और जाति की उन्नति होगी, गरीबों का उपकार होगा, हजारों आदमियों की रोटियां चलेंगी। इसका यश भी तुम्हीं को होगा।

सूरदास—हुजूर, मुहल्ले वालों से पूछे बिना मैं कुछ नहीं कह सकता।

जॉन सेवक—अच्छी बात है, पूछ लो। मैं फिर तुमसे मिलूंगा। इतना समझ रखो कि मेरे साथ सौदा करने में तुम्हें घाटा न होगा। तुम जिस तरह खुश होगे, उसी तरह खुश करूंगा। यह लो (जेब से पांच रुपये निकालकर), मैंने तुम्हें मामूली भिखारी समझ लिया था, उस अपमान को क्षमा करो।

सूरदास—हुजूर, मैं रुपये लेकर क्या करूंगा। धर्म के नाते दो-चार पैसे दे दीजिए, तो आपका कल्याण मनाऊंगा। और किसी नाते से मैं रुपये न लूंगा।

जॉन सेवक—तुम्हें दो-चार पैसे क्या दूं? इसे ले लो, धर्मार्थ ही समझो।

सूरदास—नहीं साहब, धरम में आपका स्वार्थ मिल गया है, अब यह धरम नहीं रहा।

जॉन सेवक ने बहुत आग्रह किया, किंतु सूरदास ने रुपये नहीं लिए। तब वह हारकर गाड़ी पर जा बैठे।

मिसेज सेवक ने पूछा—क्या बातें हुईं?

जॉन सेवक—है तो भिखारी, पर बड़ा घमंडी है। पांच रुपये देता था, न लिए।

मिसेज सेवक—है कुछ आशा?

जॉन सेवक—जितना आसान समझता था, उतना आसान नहीं है।

गाड़ी तेज हो गई।

दो

सूरदास लाठी टेकता हुआ धीरे-धीरे घर चला। रास्ते में चलते-चलते सोचने लगा—यह है बड़े आदमियों की स्वार्थपरता! पहले कैसे हेकड़ी दिखाते थे, मुझे कुत्ते से भी नीचा समझा; लेकिन ज्योंही मालूम हुआ कि जमीन मेरी है, कैसी लल्लो-चप्पो करने लगे। इन्हें मैं अपनी जमीन दिए देता हूं। पांच रुपये दिखाते थे, मानो मैंने रुपये देखे ही नहीं। पांच तो क्या, पांच सौ भी दें, तो भी जमीन न दूंगा। मुहल्ले वालों को कौन मुंह दिखाऊंगा। इनके कारखाने के लिए बेचारी गउएं मारी-मारी फिरें? ईसाइयों को तनिक भी दया-धरम का विचार नहीं होता। बस, सबको ईसाई ही बनाते फिरते हैं। कुछ नहीं देना था, तो पहले ही दुत्कार देते। मील-भर दौड़ाकर कह दिया, चल हट। इन सबों में मालूम होता है, उसी लड़की का स्वभाव अच्छा है। उसी में दया-धरम है। बुढ़िया तो पूरी करकसा है, सीधे मुंह बात ही नहीं करती। इतना घमंड ! जैसे यही विक्टोरिया हैं। राम-राम, थक गया। अभी तक दम फूल रहा है। ऐसा आज तक कभी न हुआ था कि इतना दौड़ाकर किसी ने कोरा जवाब दे दिया हो। भगवान् की यही इच्छा होगी। मन, इतना दुखी न हो। मांगना तुम्हारा काम है, देना दूसरों का काम है। अपना धन है, कोई नहीं देता, तो तुम्हें क्यों बुरा लगता है? लोगों से कह दूं कि साहब जमीन मांगते थे? नहीं, सब घबरा जायंगे। मैंने जवाब तो दे दिया, अब दूसरों से कहने का परोजन ही क्या?

यह सोचता हुआ वह अपने द्वार पर आया। बहुत ही सामान्य झोपड़ी थी। द्वार पर एक नीम का वृक्ष था। किवाड़ों की जगह बांस की टहनियों की एक टट्टी लगी हुई थी। टट्टी हटाई। कमर से पैसों की छोटी-सी थैली निकाली, जो आज दिन-भर की कमाई थी। तब झोपड़ी की छान टटोलकर एक थैली निकाली, जो उसके जीवन का सर्वस्व थी। उसमें पैसों की पोटली बहुत धीरे से रखी कि किसी के कानों में भनक भी न पड़े। फिर थैली को छान में छिपाकर वह पड़ोस के एक घर से आग मांग लाया। पेड़ों के नीचे कुछ सूखी टहनियां जमा कर रखी थीं, उनसे चूल्हा जलाया। झोपड़ी में हलका-सा अस्थिर प्रकाश हुआ। कैसी विडंबना थी ! कितना नैराश्य-पूर्ण दारिद्र्य था। न खाट, न बिस्तर; न बरतन, न भांड़े। एक कोने में एक मिट्टी का घड़ा था, जिसकी आयु का कुछ अनुमान उस पर जमी हुई काई से हो सकता था। चूल्हे के पास हांडी थी। एक पुराना, चलनी की भांति छिद्रों से भरा हुआ तवा, एक छोटी-सी कठौती

और एक लोटा। बस, यही उस घर की सारी संपत्ति थी। मानव-लालसाओं का कितना संक्षिप्त स्वरूप। सूरदास ने आज जितना नाज पाया था, वह ज्यों-का-त्यों हांडी में डाल दिया। कुछ जौ थे, कुछ गेहूं, कुछ मटर, कुछ चने, थोड़ी-सी जुआर और मुट्ठी भर चावल। ऊपर से थोड़ा-सा नमक डाल दिया। किसकी रसना ने ऐसी खिचड़ी का मजा चखा है? उसमें संतोष की मिठास थी, जिससे मीठी संसार में कोई वस्तु नहीं। हांडी को चूल्हे पर चढ़ाकर वह घर से निकला, द्वार पर टट्टी लगाई और सड़क पर जाकर एक बनिये की दूकान से थोड़ा-सा आटा और एक पैसे का गुड़ लाया। आटे को कठौती में गूंधा और तब आध घंटे तक चूल्हे के सामने खिचड़ी का मधुर आलाप सुनता रहा। उस धुंधले प्रकाश में उसका दुर्बल शरीर और उसका जीर्ण वस्त्र मनुष्य के जीवन-प्रेम का उपहास कर रहा था।

हांडी में कई बार उबाल आए, कई बार आग बुझी। बार-बार चूल्हा फूंकते-फूंकते सूरदास की आंखों से पानी बहने लगता था। आंखें चाहे देख न सकें, पर रो सकती हैं। यहां तक कि वह षट्रस युक्त अवलेह तैयार हुआ। उसने उसे उतारकर नीचे रखा। तब तवा चढ़ाया और हाथों से रोटियां बनाकर सेंकने लगा। कितना ठीक अंदाज था। रोटियां सब समान थीं—न छोटी, न बड़ी; न सेवर, न जली हुई। तवे से उतार-उतारकर रोटियों को चूल्हे में खिलाता था, और जमीन पर रखता जाता था। जब रोटियां बन गईं तो उसने द्वार पर खड़े होकर जोर से पुकारा—'मिट्ठू, आओ बेटा, खाना तैयार है।' किंतु जब मिट्ठू न आया, तो उसने फिर द्वार पर टट्टी लगाई, और नायकराम के बरामदे में जाकर 'मिट्ठू-मिट्ठू' पुकारने लगा। मिट्ठू वहीं पड़ा सो रहा था, आवाज सुनकर चौंका। बारह-तेरह वर्ष का सुंदर हंसमुख बालक था। भरा हुआ शरीर, सुडौल हाथ-पांव। यह सूरदास के भाई का लड़का था। मां-बाप दोनों प्लेग में मर चुके थे। तीन साल से उसके पालन-पोषण का भार सूरदास ही पर था। वह इस बालक को प्राणों से भी प्यारा समझता था। आप चाहे फाके करे, पर मिट्ठू को तीन बार अवश्य खिलाता था। आप मटर चबाकर रह जाता था, पर उसे शकर और रोटी, कभी घी और नमक के साथ रोटियां खिलाता था। अगर कोई भिक्षा में मिठाई या गुड़ दे देता, तो उसे बड़े यत्न से अंगोछे के कोने में बांध लेता और मिट्ठू को ही देता था। सबसे कहता, यह कमाई बुढ़ापे के लिए कर रहा हूं। अभी तो हाथ-पैर चलते हैं, मांग खाता हूं; जब उठ-बैठ न सकूंगा, तो लोटा-भर पानी कौन देगा? मिट्ठू को सोते पाकर गोद में उठा लिया, और झोपड़ी के द्वार पर उतारा। तब द्वार खोला, लड़के का मुंह धुलवाया, और उसके सामने गुड़ और रोटियां रख दीं। मिट्ठू ने रोटियां देखीं, तो ठुनककर बोला—मैं रोटी और गुड़ न खाऊंगा। यह कहकर उठ खड़ा हुआ।

सूरदास—बेटा, बहुत अच्छा गुड़ है, खाओ तो। देखो, कैसी नरम-नरम रोटियां हैं। गेहूं की हैं।

मिट्ठू—मैं न खाऊंगा।

सूरदास—तो क्या खाओगे बेटा? इतनी रात गए और क्या मिलेगा?

मिट्ठू—मैं तो दूध-रोटी खाऊंगा।

सूरदास—बेटा, इस जून खा लो। सबेरे मैं दूध ला दूंगा।

मिट्ठू रोने लगा। सूरदास उसे बहलाकर हार गया, तो अपने भाग्य को रोता हुआ उठा, लकड़ी संभाली और टटोलता हुआ बजरंगी अहीर के घर आया, जो उसके झोपड़े के पास ही था। बजरंगी खाट पर बैठा नारियल पी रहा था। उसकी स्त्री जमुनी खाना पकाती थी। आंगन

में तीन भैंसें और चार-पांच गायें चरनी पर बंधी हुई चारा खा रही थीं। बजरंगी ने कहा—कैसे चले सूरे? आज बग्घी पर कौन लोग बैठे तुमसे बातें कर रहे थे?

सूरदास—वही गोदाम के साहब थे।

बजरंगी—तुम तो बहुत दूर तक गाड़ी के पीछे दौड़े, कुछ हाथ लगा?

सूरदास—पत्थर हाथ लगा। ईसाइयों में भी कहीं दया-धरम होता है। मेरी वही जमीन लेने को कहते थे।

बजरंगी—गोदाम के पीछेवाली न?

सूरदास—हां वही, बहुत लालच देते रहे, पर मैंने हामी नहीं भरी।

सूरदास ने सोचा था, अभी किसी से यह बात न कहूंगा, पर इस समय दूध लेने के लिए खुशामद जरूरी थी। अपना त्याग दिखाकर सुर्खरू बनना चाहता था।

बजरंगी—तुम हामी भरते, तो यहां कौन उसे छोड़े देता था। तीन-चार गांवों के बीच में वही तो जमीन है। वह निकल जाएगी, तो हमारी गायें और भैंसे कहां जाएंगी?

जमुनी—मैं तो इन्हीं के द्वार पर सबको बांध आती।

सूरदास—मेरी जान निकल जाय, तब तो बेचूं ही नहीं, हजार-पांच सौ की क्या गिनती। भौजी, एक घूंट दूध हो तो दे दो। मिठुआ खाने बैठा है। रोटी और गुड़ छूता ही नहीं, बस दूध-दूध की रट लगाए हुए है। जो चीज घर में नहीं होती, उसी के लिए ज़िद करता है। दूध न पाएगा तो बिना खाए ही सो रहेगा।

बजरंगी—ले जाओ, दूध का कौन अकाल है। अभी दुहा है। घीसू की मां, एक कुल्हिया दूध दे दे सूरे को।

जमुनी—जरा बैठ जाओ सूरे, हाथ खाली हो, तो दूं।

बजरंगी—वहां मिठुआ खाने बैठा है, तैं कहती हैं, हाथ खाली हो तो दूं। तुझसे न उठा जाय, तो मैं आऊं।

जमुनी जानती थी कि यह बुद्धू दास उठेंगे, ती पाव के बदले आध सेर दे डालेंगे। चटपट रसोई से निकल आई। एक कुल्हिया में आधा पानी लिया, ऊपर से दूध डालकर सूरदास के पास आई और विषाक्त हितैषिता से बोली—यह लो, लौंडे की जीभ तुमने ऐसी बिगाड़ दी है कि बिना दूध के कौर नहीं उठाता। बाप जीता था, तो भरपेट चने भी न मिलते थे, अब दूध के बिना खाने ही नहीं उठता।

सूरदास—[illegible] करूं भाभी, रोने लगता है, तो तरस आता है।

जमुनी—[illegible] तरह पाल-पोस रहे हो कि एक दिन काम आएगा, मगर देख लेना, जो चुल्लू-भर पानी [illegible] भी पूछे। मेरी बात गांठ बांध लो। पराया लड़का कभी अपना नहीं होता। हाथ-पांव हुए, और [illegible] हें दुत्कारकर अलग हो जाएगा। तुम अपने लिए सांप पाल रहे हो।

सूरदास—[illegible] छ मेरा धरम है, किए देता हूं। आदमी होगा, तो कहां तक जस न मानेगा। अपनी त[illegible] ही खोटी हुई, तो कोई क्या करेगा। अपने ही लड़के क्या बड़े होकर मुंह नहीं फेर लेते।

जमुनी—क्यों नहीं कह देते, मेरी भैंसें चरा लाया करे। जवान तो हुआ, क्या जनम-भर नन्हां ही बना रहेगा? घीसू ही का जोड़ी-पारी तो है। मेरी बात गांठ बांध लो। अभी से किसी काम में न लगाया, तो खिलाड़ी हो जाएगा। फिर किसी काम में उसका जी न लगेगा। सारी

उमर तुम्हारे ही सिर फुलौरियां खाता रहेगा।

सूरदास ने इसका कुछ जवाब न दिया। दूध की कुल्हिया ली, और लाठी से टटोलता हुआ घर चला। मिट्ठू जमीन पर सो रहा था। उसे फिर उठाया, और दूध में रोटियां भिगोकर उसे अपने हाथ से खिलाने लगा। मिट्ठू नींद से गिरा पड़ता था, पर कौर सामने आते ही उसका मुंह आप-ही-आप खुल जाता। जब वह सारी रोटियां खा चुका, तो सूरदास ने उसे चटाई पर लिटा दिया, और हांडी से अपनी पंचमेल खिचड़ी निकालकर खाई। पेट न भरा, तो हांडी धोकर पी गया। तब फिर मिट्ठू को गोद में उठाकर बाहर आया, द्वार पर टट्टी लगाई और मंदिर की ओर चला।

यह मंदिर ठाकुरजी का था, बस्ती के दूसरे सिरे पर। ऊंची कुरसी थी। मंदिर के चारों तरफ तीन-चार गज का चौड़ा चबूतरा था। यही मुहल्ले की चौपाल थी। सारे दिन दस-पांच आदमी यहां लेटे या बैठे रहते थे। एक पक्का कुआं भी था, जिस पर जगधर नाम का एक खोमचेवाला बैठा करता था। तेल की मिठाइयां, मूंगफली, रामदाने के लड्डू आदि रखता था। राहगीर आते, उससे मिठाइयां लेते, पानी निकालकर पीते और अपनी राह चले जाते। मंदिर के पुजारी का नाम दयागिरि था, जो इसी मंदिर के समीप एक कुटिया में रहते थे। सगुण ईश्वर के उपासक थे, भजन-कीर्तन को मुक्ति का मार्ग समझते थे और निर्वाण को ढोंग कहते थे। शहर के पुराने रईस कुंअर भरतसिंह के यहां मासिक वृत्ति बंधी हुई थी। इसी से ठाकुरजी का भोग लगता था। बस्ती से भी कुछ-न-कुछ मिल ही जाता था। निःस्पृह आदमी था, लोभ छू भी नहीं गया था, संतोष और धीरज का पुतला था। सारे दिन भगवत्-भजन में मग्न रहता था। मंदिर में एक छोटी-सी संगत थी। आठ-नौ बजे रात को, दिन-भर के काम-धंधे से निवृत्त होकर, कुछ भक्तजन जमा हो जाते थे, और घंटे-दो घंटे भजन गाकर चले जाते थे। ठाकुरदीन ढोलक बजाने में निपुण था, बजरंगी करताल बजाता था, जगधर को तंबूरे में कमाल था, नायकराम और दयागिरि सारंगी बजाते थे। मजीरेवालों की संख्या घटती-बढ़ती रहती थी। जो और कुछ न कर सकता, वह मजीरा ही बजाता था। सूरदास इस संगत का प्राण था। वह ढोल, मजीरे, करताल, सारंगी, तंबूरा सभी में समान रूप से अभ्यस्त था, और गाने में तो आस-पास के कई मुहल्लों में उसका जवाब न था। ठुमरी-गजल से उसे रुचि न थी। कबीर, मीरा, दादू, कमाल, पलटू आदि संतों के भजन गाता था। उस समय उसका नेत्रहीन मुख अति आनंद से प्रफुल्लित हो जाता था। गाते-गाते मस्त हो जाता, तन-बदन की सुध न रहती। सारी चिंताएं, सारे क्लेश भक्ति-सागर में विलीन हो जाते थे।

सूरदास मिट्ठू को लिए पहुंचा, तो संगत बैठ चुकी थी। सभासद आ गए थे, केवल सभापति की कमी थी। उसे देखते ही नायकराम ने कहा—तुमने बड़ी देर कर दी, आध घंटे से तुम्हारी राह देख रहे हैं। यह लौंडा बेतरह तुम्हारे गले पड़ा है। क्यों नहीं इसे हमारे ही घर से कुछ मांगकर खिला दिया करते।

दयागिरि—यहां चला आया करे, तो ठाकुरजी के प्रसाद ही से पेट भर जाय।

सूरदास—तुम्हीं लोगों का दिया खाता है या और किसी का? मैं तो बनाने-भर को हूं।

जगधर—लड़कों को इतना सिर चढ़ाना अच्छा नहीं। गोद में लादे फिरते हो, जैसे नन्हां-सा बालक हो। मेरा विद्याधर इससे दो साल छोटा है। मैं उसे कभी गोद में लेकर नहीं फिरता।

सूरदास—बिना मां-बाप के लड़के हठी हो जाते हैं। हां, क्या होगा?

दयागिरि—पहले रामायण की एक चौपाई हो जाय।

लोगों ने अपने-अपने साज संभाले। सुर मिला और आध घंटे तक रामायण हुई।

नायकराम–वाह सूरदास, वाह ! अब तुम्हारे ही दम का जलूसा है।

बजरंगी–मेरी तो कोई दोनों आंखें ले ले, और यह हुनर मुझे दे दे, तो मैं खुशी से बदल लूं।

जगधर–अभी भैरो नहीं आया, उसके बिना रंग नहीं जमता।

बजरंगी–ताड़ी बेचता होगा। पैसे का लोभ बुरा होता है। घर में एक मेहरिया है और एक बुढ़िया मां। मुदा रात-दिन हाय-हाय पड़ी रहती है। काम करने को तो दिन है ही, भला रात को तो भगवान् का भजन हो जाय।

जगधर–सूरे का दम उखड़ जाता है, उसका दम नहीं उखड़ता।

बजरंगी–तुम अपना खोंचा बेचो, तुम्हें क्या मालूम, दम किसे कहते हैं। सूरदास जितना दम बांधते हैं, उतना दूसरा बांधे, तो कलेजा फट जाए। हंसी-खेल नहीं है।

जगधर–अच्छा भैया, सूरदास के बराबर दुनिया में कोई दम नहीं बांध सकता। अब खुश हुए।

सूरदास–भैया, इसमें झगड़ा काहे का? मैं कब कहता हूं कि मुझे गाना आता है। तुम लोगों का हुक्म पाकर, जैसा भला-बुरा बनता है, सुना देता हूं।

इतने में भैरो भी आकर बैठ गया। बजरंगी ने व्यंग्य करके कहा–क्या अब कोई ताड़ी पीने वाला नहीं था? इतनी जल्दी क्यों दूकान बढ़ा दी?

ठाकुरदीन–मालूम नहीं, हाथ-पैर भी धोए हैं या वहां से सीधे ठाकुरजी के मंदिर में चले आए। अब सफाई तो कहीं रह ही नहीं गई।

भैरो–क्या मेरी देह में ताड़ी पुती हुई है?

ठाकुरदीन–भगवान् के दरबार में इस तरह न आना चाहिए। जात चाहे ऊंची हो या नीची; पर सफाई चाहिए जरूर।

भैरो–तुम यहां नित्य नहाकर आते हो?

ठाकुरदीन–पान बेचना कोई नीच काम नहीं है।

भैरो–जैसे पान, वैसे ताड़ी। पान बेचना कोई ऊंचा काम नहीं है।

ठाकुरदीन–पान भगवान् के भोग के साथ रखा जाता है। बड़े-बड़े जनेऊधारी, मेरे हाथ का पान खाते हैं। तुम्हारे हाथ का तो कोई पानी नहीं पीता।

नायकराम–ठाकुरदीन, यह बात तो तुमने बड़ी खरी कही। सच तो है, पासी से कोई घड़ा तक नहीं छुआता।

भैरो–हमारी दुकान पर एक दिन आकर बैठ जाओ, तो दिखा दूं, कैसे-कैसे धर्मात्मा और तिलकधारी आते हैं। जोगी-जती लोगों को भी किसी ने पान खाते देखा है? ताड़ी, गांजा, चरस पीते चाहे जब देख लो। एक-से-एक महात्मा आकर खुसामद करते हैं।

नायकराम–ठाकुरदीन, अब इसका जवाब दो। भैरो पढ़ा-लिखा होता, तो वकीलों के कान काटता।

भैरो–मैं तो बात सच्ची कहता हूं, जैसे ताड़ी वैसे पान, बल्कि परात की ताड़ी को तो लोग दवा की तरह पीते हैं।

जगधर–यारो, दो-एक भजन होने दो। मान क्यों नहीं जाते ठाकुरदीन? तुम्हीं हारे, भैरो

जीता, चलो छुट्टी हुई।

नायकराम—वाह, हार क्यों मान लें। सासतरार्थ है कि दिल्लगी। हां, ठाकुरदीन कोई जवाब सोच निकालो।

ठाकुरदीन—मेरी दूकान पर खड़े हो जाओ, जी खुश हो जाता है। केवड़े और गुलाब की सुगंध उड़ती है। इसकी दूकान पर कोई खड़ा हो जाय, तो बदबू के मारे नाक फटने लगती है। खड़ा नहीं रहा जाता। परनाले में भी इतनी दुर्गंध नहीं होती।

बजरंगी—मुझे जो घंटे-भर के लिए राज मिल जाता, तो सबसे पहले शहर-भर की ताड़ी की दूकानों में आग लगवा देता।

नायकराम—अब बताओ भैरो, इसका जवाब दो। दुर्गंध तो सचमुच उड़ती है, है कोई जवाब?

भैरो—जवाब एक नहीं, सैकड़ों हैं। पान सड़ जाता है, तो कोई मिट्टी के मोल भी नहीं पूछता। यहां ताड़ी जितनी ही सड़ती है, उतना ही उसका मोल बढ़ता है। सिरका बन जाता है, तो रुपये बोतल बिकता है, और बड़े-बड़े जनेऊधारी लोग खाते हैं।

नायकराम—क्या बात कही है कि जी खुश हो गया। मेरा अख्तियार होता, तो इसी घड़ी तुमको वकालत की सनद दे देता। ठाकुरदीन, अब हार मान जाओ, भैरो से पेश न पा सकोगे।

जगधर—भैरो, तुम चुप क्यों नहीं हो जाते? पंडाजी को तो जानते हो, दूसरों को लड़ाकर तमाशा देखना इनका काम है। इतना कह देने में कौन-सी मरजादा घटी जाती है कि बाबा, तुम जीते और मैं हारा।

भैरो—क्यों इतना कह दूं? बात करने में किसी से कम हूं क्या?

जगधर—तो ठाकुरदीन, तुम्हीं चुप हो जाओ।

ठाकुरदीन—हां जी, चुप न हो जाऊंगा, तो क्या करूंगा। यहां आए थे कि कुछ भजन-कीर्तन होगा, सो व्यर्थ का झगड़ा करने लगे। पंडाजी को क्या, इन्हें तो बेहाथ-पैर हिलाए इमिर्तियां और लड्डू खाने को मिलते हैं, इन्हें इसी तरह की दिल्लगी सूझती है। यहां तो पहर रात से उठकर फिर चक्की में जुतना है।

जगधर—मेरी तो अबकी भगवान् से भेंट होगी, तो कहूंगा, किसी पंडे के घर जनम देना।

नायकराम—भैया, मुझ पर हाथ न उठाओ, दुबला-पतला आदमी हूं। मैं तो चाहता हूं, जलपान के लिए तुम्हारे ही खोंचे से मिठाइयां लिया करूं, मगर उस पर इतनी मक्खियां उड़ती हैं, ऊपर इतना मैल जमा रहता है कि खाने को जी नहीं चाहता।

जगधर—(चिढ़कर) तुम्हारे न लेने से मेरी मिठाइयां सड़ तो नहीं जातीं कि भूखों मरता हूं? दिन-भर में रुपया-बीस आने पैसे बना ही लेता हूं। जिसे सेंत-मेंत में रसगुल्ले मिल जाएं, वह मेरी मिठाइयां क्यों लेगा?

ठाकुरदीन—पंडाजी की आमदनी का कोई ठिकाना नहीं है, जितना रोज मिल जाए, थोड़ा ही है; ऊपर से भोजन घाते में। कोई आंख का अंधा, गांठ का पूरा फंस गया, तो हाथी-घोड़े जगह-जमीन, सब दे दिया। ऐसा भागवान और कौन होगा?

दयागिरि—कहीं नहीं ठाकुरदीन, अपनी मेहनत की कमाई सबसे अच्छी। पंडों को यात्रियों के पीछे दौड़ते नहीं देखा है।

नायकराम—बाबा, अगर कोई कमाई पसीने की है, तो वह हमारी कमाई है। हमारी कमाई

का हाल बजरंगी से पूछो।

बजरंगी–औरों की कमाई पसीने की होती होगी, तुम्हारी कमाई तो खून की है। और लोग पसीना बहाते हैं, तुम खून बहाते हो। एक-एक जजमान के पीछे लोहू की नदी बह जाती है। जो लोग खोंचा सामने रखकर दिन-भर मक्खी मारा करते हैं, वे क्या जानें, तुम्हारी कमाई कैसी होती है? एक दिन मोरचा थामना पड़े, तो भागने को जगह न मिले।

जगधर–चलो भी, आए हो मुंहदेखी कहने, सेर-भर दूध ढाई सेर बनाते हो, उस पर भगवान् के भगत हो।

बजरंगी–अगर कोई माई का लाल मेरे दूध में एक बूंद पानी निकाल दे, तो उसकी टांग की राह निकल जाऊं। यहां दूध में पानी मिलाना गऊ-हत्या समझते हैं। तुम्हारी तरह नहीं कि तेल की मिठाई को घी की कहकर बेचें, और भोले-भोले बच्चों को ठगें।

जगधर–अच्छा भाई, तुम जीते, मैं हारा। तुम सच्चे, तुम्हारा दूध सच्चा। बस, हम खराब, हमारी मिठाइयां खराब। चलो छुट्टी हुई।

बजरंगी–मेरी मिजाज को तुम नहीं जानते, चेता देता हूं। सच कहकर कोई सौ जूते मार ले, लेकिन झूठी बात सुनकर मेरे बदन में आग लग जाती है।

भैरो–बजरंगी, बहुत बढ़-बढ़कर बातें न करो, अपने मुंह मियां-मिट्ठू बनने से कुछ नहीं होता है। बस, मुंह न खुलवाओ, मैंने भी तुम्हारे यहां का दूध पिया है। उससे तो मेरी ताड़ी ही अच्छी।

ठाकुरदीन–भाई, मुंह से जो चाहे ईमानदार बन ले, पर अब दूध सपना हो गया। सारा दूध जल जाता है, मलाई का नाम नहीं। दूध जब मिलता था, तब मिलता था, एक आंच में अंगुल-भर मोटी मलाई पड़ जाती थी।

दयागिरि–बच्चा, अभी अच्छा-बुरा कुछ मिल तो जाता है। वे दिन आ रहे हैं कि दूध आंखों में आंजने को भी न मिलेगा।

भैरो–हाल तो यह है कि घरवाली सेर के तीन सेर बनाती है, उस पर दावा यह कि हम सच्चा माल बेचते हैं। सच्चा माल बेचो, तो दिवाला निकल जाए। यह ठाट एक दिन न चले।

बजरंगी–पसीने की कमाई खाने वालों का दिवाला नहीं निकलता, दिवाला उनका निकलता है, जो दूसरों की कमाई खा-खाकर मोटे पड़ते हैं। भाग को सराहो कि शहर में हो, किसी गांव में होते, तो मुंह में मक्खियां आतीं-जातीं। मैं तो उन सबों को पापी समझता हूं, जो औने-पौने करके, इधर का सौदा उधर बेचकर अपना पेट पालते हैं। सच्ची कमाई उन्हीं की है, जो छाती फाड़कर धरती से धन निकालते हैं।

बजरंगी ने बात तो कही, लेकिन लज्जित हुआ। इस लपेट में वहां के सभी आदमी आ जाते थे। वह भैरो, जगधर और ठाकुरदीन को लक्ष्य करना चाहता था, पर सूरदास, नायकराम, दयागिरि, सभी पापियों की श्रेणी में आ गए।

नायकराम–तब तो भैया, तुम हमें भी ले बीते। एक पापी तो मैं ही हूं कि सारे दिन मटरगस्ती करता हूं, और वह भोजन करता हूं कि बड़ों-बड़ों को मयस्सर न हो।

ठाकुरदीन–दूसरा पापी मैं हूं कि शौक की चीज बेचकर रोटियां कमाता हूं। संसार में तमोली न रहें, तो किसका नुकसान होगा?

जगधर–तीसरा पापी मैं हूं कि दिन-भर औन-पौन करता रहता हूं। सेव और खुर्मा खाने

को न मिले, तो कोई मर न जाएगा।

भैरो—तुमसे बड़ा पापी मैं हूं कि सबको नसा खिलाकर अपना पेट पालता हूं। सच पूछो, तो इससे बुरा कोई काम नहीं। आठों पहर नसेबाजों का साथ, उन्हीं की बातें सुनना, उन्हीं के बीच रहना। यह भी कोई जिंदगी है।

दयागिरि—क्यों बजरंगी, साधू-संत तो सबसे बड़े पापी होंगे कि वे कुछ नहीं करते?

बजरंगी—नहीं बाबा, भगवान् के भजन से बढ़कर और कौन उद्यम होगा? राम-नाम की खेती सब कामों से बढ़कर है।

नायकराम—तो यहां अकेले बजरंगी पुन्यात्मा है, और सब-के-सब पापी हैं?

बजरंगी—सच पूछो, तो सबसे बड़ा पापी मैं हूं कि गउओं का पेट काटकर, उनके बछड़ों को भूखा मारकर अपना पेट पालता हूं।

सूरदास—भाई, खेती सबसे उत्तम है, बान उससे मद्धिम हैं, बस, इतना ही फरक है। बान को पाप क्यों कहते हो, और क्यों पापी बनते हो? हां, सेवा निरघिन है, और चाहो तो उसे पाप कहो। अब तक तो तुम्हारे ऊपर भगवान् की दया है, अपना-अपना काम करते हो, मगर ऐसे बुरे दिन आ रहे हैं, जब तुम्हें सेवा और टहल करके पेट पालना पड़ेगा, जब तुम अपने नौकर नहीं, पराए के नौकर हो जाओगे, तब तुममें नीति-धरम का निसान भी न रहेगा।

सूरदास ने ये बातें बड़े गंभीर भाव से कहीं, जैसे कोई ऋषि भविष्यवाणी कर रहा हो। सब सन्नाटे में आ गए। ठाकुरदीन ने चिंतित होकर पूछा—क्यों सूरे, कोई विपत आनेवाली है क्या? मुझे तो तुम्हारी बातें सुनकर डर लग रहा है। कोई नई मुसीबत तो नहीं आ रही है?

सूरदास—हां, लच्छन तो दिखाई देते हैं, चमड़े के गोदामवाला साहब यहां एक तंमाकू का कारखाना खोलने जा रहा है। मेरी जमीन मांग रहा है। कारखाने का खुलना ही हमारे ऊपर विपत का आना है।

ठाकुरदीन—तो जब जानते ही हो, तो क्यों अपनी जमीन देते हो?

सूरदास—मेरे देने पर थोड़े ही है भाई। मैं दूं, तो भी जमीन निकल जाएगी, न दूं, तो भी निकल जाएगी। रुपये वाले सब कुछ कर सकते हैं।

बजरंगी—साहब रुपये वाले होंगे, अपने घर के होंगे। हमारी जमीन क्या खाकर ले लेंगे? माथे गिर जाएंगे, माथे। ठट्ठा नहीं है।

अभी ये ही बातें हो रही थीं कि सैयद ताहिरअली आकर खड़े हो गए, और नायकराम से बोले—पंडाजी, मुझे आपसे कुछ कहना है, जरा इधर चले आइए।

बजरंगी—उसे जमीन के बारे में कुछ बातचीत करनी है न? वह जमीन न बिकेगी।

ताहिर—मैं तुमसे थोड़े ही पूछता हूं। तुम उस जमीन के मालिक-मुख्तार कोई हो।

बजरंगी—कह तो दिया, वह जमीन न बिकेगी, मालिक-मुख्तार कोई हो।

ताहिर—आइए पंडाजी, आइए, इन्हें बकने दीजिए।

नायकराम—आपको जो कुछ कहना हो कहिए, ये सब लोग अपने ही हैं, किसी से परदा नहीं है। सुनेंगे, तो सब सुनेंगे, और जो बात तय होगी, सबकी सलाह से होगी। कहिए, क्या कहते हैं?

ताहिर—उसी जमीन के बारे में बातचीत करनी थी।

नायकराम—तो उस जमीन का मालिक तो आपके सामने बैठा हुआ है। जो कुछ कहना है, उसे से क्यों नहीं कहते? मुझे बीच में दलाली नहीं खानी है। जब सूरदास ने साहब के सामने इनकार कर दिया, तो फिर कौन-सी बात बाकी रह गई?

बजरंगी—इन्होंने सोचा होगा कि पंडाजी को बीच में डालकर काम निकाल लेंगे। साहब से कह देना, यहां साहबी न चलेगी।

ताहिर—तुम अहीर हो न, तभी इतने गर्म हो रहे हो। अभी साहब को जानते नहीं हो, तभी बढ़-बढ़कर बातें कर रहे हो। जिस वक्त साहब जमीन लेने पर आ जाएंगे, ले ही लेंगे, तुम्हारे रोके न रुकेंगे। जानते हो, शहर के हाकिमों से उनका कितना रब्त-जब्त है? उनकी लड़की की मंगनी हाकिम-जिला से होने वाली है। उनकी बात को कौन टाल सकता है? सीधे से, रजामंदी के साथ दे दोगे, तो अच्छे दाम पा जाओगे, शरारत करोगे, तो जमीन भी निकल जाएगी, कौड़ी भी हाथ न लगेगी। रेलों के मालिक क्या जमीन अपने साथ लाए थे? हमारी ही जमीन तो ली है? क्या उसी कायदे से यह जमीन नहीं निकल सकती?

बजरंगी—तुम्हें भी कुछ तय-कराई मिलने वाली होगी, तभी इतनी खैरखाही कर रहे हो।

जगधर—उनसे जो कुछ मिलने वाला हो, वह हमीं से ले लीजिए, और उनसे कह दीजिए, जमीन न मिलेगी। आप लोग झांसेबाज हैं, ऐसा झांसा दीजिए कि साहब की अकिल गुम हो जाए।

ताहिर—खैरख्वाही रुपये के लालच से नहीं है। अपने मालिक की आंख बचाकर एक कौड़ी भी लेना हराम समझता हूं। खैरख्वाही इसलिए करता हूं कि उनका नमक खाता हूं।

जगधर—अच्छा साहब, भूल हुई, माफ कीजिए। मैंने तो संसार के चलन की बात की थी।

ताहिर—तो सूरदास, मैं साहब से जाकर क्या कह दूं?

सूरदास—बस, यही कह दीजिए कि जमीन न बिकेगी।

ताहिर—मैं फिर कहता हूं, धोखा खाओगे। साहब जमीन लेकर ही छोड़ेंगे।

सूरदास—मेरे जीते-जी तो जमीन न मिलगी। हां, मर जाऊं तो भले ही मिल जाए।

ताहिरअली चले गए, तो भैरो बोला—दुनिया अपना ही फायदा देखती है। अपना कल्याण हों, दूसरे जिएं यह मरें। बजरंगी, तुम्हारी तो गायें चरती हैं, इसलिए तुम्हारी भलाई तो इसी में है कि जमीन बनी रहे। मेरी कौन गाय चरती है? कारखाना खुला, तो मेरी बिक्री चौगुनी हो जाएगी। यह बात तुम्हारे ध्यान में क्यों नहीं आई? तुम सबकी तरफ से वकालत करने वाले कौन हो? सूरे की जमीन है, वह बेचे या रखे, तुम कौन होते हो, बीच में कूदने वाले?

नायकराम—हां बजरंगी, जब तुमसे कोई वास्ता-सरोकार नहीं, तो तुम कौन होते हो बीच में कूदने वाले? बोलो, भैरो को जवाब दो।

बजरंगी—वास्ता-सरोकार कैसे नहीं? दस गांवों और मुहल्लों के जानवर यहां चरने आते है, वे कहां जाएंगे? साहब के घर कि भैरो के? इन्हें तो अपनी दूकान की हाय-हाय पड़ी हुई है। किसी के घर सेंध क्यों नहीं मारते? जल्दी से धनवान हो जाओगे।

भैरो—सेंध मारो तुम, यहां दूध में पानी नहीं मिलाते।

दयागिरि–भैरो, तुम सचमुच बड़े झगड़ालू हो। जब तुम्हें प्रिय वचन बोलना नहीं आता, तो चुप क्यों नहीं रहते? बहुत बातें करना बुद्धिमानी का लक्षण नहीं, मूर्खता का लक्षण है।

भैरो–ठाकुरजी के भोग के बहाने से रोज छाछ पा जाते हो न? बजरंगी की जय क्यों न मनाओगे।

नायकराम–पट्ठा बात बेलाग कहता है कि एक बार सुनकर फिर किसी की जबान नहीं खुलती।

ठाकुरदीन–अब भजन-भाव हो चुका। ढोल-मजीरा उठाकर रख दो।

दयागिरि–तुम कल से यहां न आया करो, भैरो।

भैरो–क्यों न आया करें? मंदिर तुम्हारा बनवाया नहीं है। मंदिर भगवान् का है। तुम किसी को भगवान् के दरबार में आने से रोक दोगे?

नायकराम–लो बाबाजी, और लोगे, अभी पेट भरा कि नहीं?

जगधर–बाबाजी, तुम्हीं गम खा जाओ, इससे साधू-संतों की महिमा नहीं घटती। भैरो, साधू-संतों की बात का तुम्हें बुरा न मानना चाहिए।

भैरो–तुम खुशामद करो, क्योंकि खुशामद की रोटियां खाते हो। यहां किसी के दबैल नहीं हैं।

बजरंगी–ले अब चुप ही रहना भैरो, बहुत हो चुका। छोटा मुंह, बड़ी बात।

नायकराम–तो भैरो को धमकाते क्या हो? क्या कोई भगोड़ा समझ लिया है? तुमने जब दंगल मारे थे, तब मारे थे, अब तुम वही नहीं हो। आजकल भैरो की दुहाई है।

भैरो नायकराम के व्यंग्य-हास्य पर झल्लाया नहीं, हंस पड़ा। व्यंग्य में विष नहीं था, रस था। संखिया मरकर रस हो जाती है।

भैरो का हंसना था कि लोगों ने अपने-अपने साज संभाले, और भजन होने लगा। सूरदास की सुरीली तान आकाश-मंडल में यों नृत्य करती हुई मालूम होती थी, जैसे प्रकाश-ज्योति जल के अंतस्तल में नृत्य करती है–

> **झीनी-झीनी बीनी चदरिया।**
> **काहे कै ताना, काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया?**
> **इंगला-पिंगला ताना-भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।**
> **आठ कंवल-दल-चरखा डोले, पांच तत्त, गुन तीनी चदरिया,**
> **साईं को सियत मास दस लागै, ठोक-ठोक कै बीनी चदरिया।**
> **सो चादर सुर-नर-मुनि ओढ़ै, ओढ़िकै मैली कीनी चदरिया,**
> **दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों-की-त्यों धर दीनी चदरिया।**

बातों में रात अधिक जा चुकी थी। ग्यारह का घंटा सुनाई दिया। लोगों ने ढोलक-मजीरे समेट दिए। सभा विसर्जित हुई। सूरदास ने मिट्ठू को फिर गोद में उठाया, और अपनी झोंपड़ी में लाकर टाट पर सुला दिया। आप जमीन पर लेट रहा।

तीन

मि॰ जॉन सेवक का बंगला सिगरा में था। उसके पिता मि॰ ईश्वर सेवक ने सेना-विभाग में पेंशन पाने के बाद वहीं मकान बनवा लिया था, और अब तक उसके स्वामी थे। इसके आगे उनके पुरखों का पता नहीं चलता, और न हमें उसकी खोज करने की विशेष जरूरत है। हां, इतनी बात अवश्य निश्चित है कि प्रभु ईसा की शरण जाने का गौरव ईश्वर सेवक को नहीं, उनके पिता को था। ईश्वर सेवक को अब भी अपना बाल्य जीवन कुछ-कुछ याद आता था, जब वह अपनी माता के साथ गंगा-स्नान को जाया करते थे। माता की दाह-क्रिया की स्मृति भी अभी न भूली थी। माता के देहांत के बाद उन्हें याद आता था कि मेरे घर में कई सैनिक घुस आए थे, और मेरे पिता को पकड़कर ले गए थे। इसके बाद स्मृति विशृंखल हो जाती थी। हां, उनके गोरे रंग और आकृति से यह सहज ही अनुमान किया जा सकता था कि वह उच्चवंशीय थे, और कदाचित् इसी सूबे में उनका पूर्व-निवास भी था।

यह बंगला उस जमाने में बना था, जब सिगरा में भूमि का इतना आदर न था। अहाते में फूल-पत्तियों की जगह शाक-भाजी और फलों के वृक्ष थे। यहां तक कि गमलों में भी सुरुचि की अपेक्षा उपयोगिता पर अधिक ध्यान दिया गया था। बेलें परवल, कद्दू, कुंदरू, सेम आदि की थीं, जिनसे बंगले की शोभा होती थी और फल भी मिलता था। एक किनारे खपरैल का बरामदा था, जिसमें गाय-भैंस पली हुई थीं। दूसरी ओर अस्तबल था। मोटर का शौक न बाप को था, न बेटे को। फिटन रखने में किफायत भी थी और आराम भी। ईश्वर सेवक को तो मोटरों से चिढ़ थी। उनके शोर से उनकी शांति में विघ्न पड़ता था। फिटन का घोड़ा अहाते में एक लंबी रस्सी से बांधकर छोड़ दिया जाता था। अस्तबल से बाग के लिए खाद निकल आती थी, और केवल एक साईस से काम चल जाता। ईश्वर सेवक गृह-प्रबंध में निपुण थे, और गृह-कार्यों में उनका उत्साह लेश-मात्र भी कम न हुआ था। उनकी आराम-कुर्सी बंगले के सायबान में पड़ी रहती थी। उस पर वह सुबह से शाम तक बैठे जॉन सेवक की फिजूल-खर्ची और घर की बरबादी का रोना रोया करते थे। वह अब भी नियमित रूप से पुत्र को घंटे-दो-घंटे उपदेश दिया करते थे, और शायद इसी उपदेश का फल था कि जॉन सेवक का धन और मान दिनों-दिन बढ़ता जाता था। 'किफायत' उनके जीवन का मूल तत्व था, और इसका उल्लंघन उन्हें असह्य था। वह अपने घर में धन का अपव्यय नहीं देख सकते थे, चाहे वह किसी मेहमान ही का धन क्यों न हो। धर्मानुरागी इतने थे कि बिला नागा दोनों वक्त गिरजाघर जाते। उनकी अपनी अलग सवारी थी। एक आदमी इस तामजान को खींचकर गिरजाघर के द्वार तक पहुंचा आया करता था। वहां पहुंचकर ईश्वर सेवक उसे तुरंत घर लौटा देते थे। गिरजा के अहाते में ताजमान की रक्षा के लिए किसी आदमी के बैठे रहने की जरूरत न थी। घर आकर वह आदमी और कोई काम कर सकता था। बहुधा उसे लौटाते समय वह काम भी बतलाया करते थे। दो घंटे बाद वह आदमी जाकर उन्हें खींच लाता था। लौटती बार वह यथासाध्य खाली हाथ न लौटते थे, कभी दो-चार पपीते मिल जाते, कभी नारंगियां, कभी सेर-आध सेर मकोय। पादरी उनका बहुत सम्मान करता था। उनकी सारी उम्मत (अनुयायियों की मंडली) में इतना वयोवृद्ध और दूसरा आदमी न था, उस पर धर्म का इतना प्रेमी! वह उसके धर्मोपदेशों को जितनी तन्मयता से सुनते थे और जितनी भक्ति से कीर्तन में भाग लेते थे, वह आदर्श कही जा सकता थी।

प्रातःकाल था। लोग जल-पान करके या छोटी हाजिरी खाकर, मेज पर से उठे थे। मि॰ जॉन सेवक ने गाड़ी तैयार करने का हुक्म दिया। ईश्वर सेवक ने अपनी कुरसी पर बैठे-बैठे चाय का एक प्याला पिया था, और झुंझला रहे थे कि इसमें शकर क्यों इतनी झोंक दी गई है। शकर कोई नियामत नहीं कि पेट फाड़कर खाई जाए, एक तो मुश्किल से पचती है, दूसरे इतनी मंहगी। इसकी आधी शकर चाय को मजेदार बनाने के लिए काफी थी। अंदाज से काम करना चाहिए था, शकर कोई पेट भरने की चीज नहीं है। सैकड़ों बार कह चुका हूं, पर मेरी कौन सुनता है। मुझे तो सबने कुत्ता समझ लिया है। उसके भूंकने की कौन परवा करता है?

मिसेज सेवक ने धर्मानुराग और मितव्ययिता का पाठ भलीभांति अभ्यस्त किया था। लज्जित होकर बोली—पापा, क्षमा कीजिए। आज सोफी ने शकर ज्यादा डाल दी थी। कल से आपको यह शिकायत न रहेगी, मगर करूं क्या, यहां तो हल्की चाय किसी को अच्छी ही नहीं लगती।

ईश्वर सेवक ने उदासीन भाव से कहा—मुझे क्या करना है, कुछ कयामत तक तो बैठा रहूंगा नहीं, मगर घर के बरबाद होने के ये ही लक्षण हैं। ईसू, मुझे अपने दामन में छुपा।

मिसेज सेवक—मैं अपनी भूल स्वीकार करती हूं। मुझे अंदाज से शकर निकाल देनी चाहिए थी।

ईश्वर सेवक—अरे, तो आज यह कोई नई बात थोड़े ही है। रोज तो यही रोना रहता है। जॉन समझता है, मैं घर का मालिक हूं, रुपये कमाता हूं, खर्च क्यों न करूं? मगर धन कमाना एक बात है, उसका सद्व्यय करना दूसरी बात। होशियार आदमी उसे कहते हैं, जो धन का उचित उपयोग करे। इधर से लाकर उधर खर्च कर दिया, तो क्या फायदा? इससे तो न लाना ही अच्छा। समझाता ही रहा, पर इतनी ऊंची रास का घोड़ा ले लिया। इसकी क्या जरूरत थी? तुम्हें घुड़दौड़ नहीं करना है। एक टट्टू से काम चल सकता था। यही न कि औरों के घोड़े आगे निकल जाते, तो इसमें तुम्हारी क्या शेखी मारी जाती थी। कहीं दूर जाना नहीं पड़ता। टट्टू होता, छः सेर की जगह दो सेर दाना खाता। आखिर चार सेर दाना व्यर्थ ही जाता है न? मगर मेरी कौन सुनता है? ईसू, मुझे अपने दामन में छुपा। सोफी, यहां आ बेटी, कलामे-पाक सुना।

सोफिया प्रभु सेवक के कमरे में बैठी हुई उनसे मसीह के इस कथन पर शंका कर रही थी कि गरीबों के लिए आसमान की बादशाहत है, और अमीरों का स्वर्ग में जाना उतना ही असंभव है, जितना ऊंट का सुई की नोक में जाना। उसके मन में शंका हो रही थी, क्या दरिद्र होना स्वयं कोई गुण है, और धनी होना स्वयं कोई अवगुण? उसकी बुद्धि इस कथन की सार्थकता को ग्रहण न कर सकती थी। क्या मसीह ने केवल अपने भक्तों को खुश करने के लिए ही धन की इतनी निंदा की है? इतिहास बतला रहा है कि पहले केवल दीन, दुखी, दरिद्र और समाज के पतित जन ने ही मसीह के दामन में पनाह ली। इसीलिए तो उन्होंने धन की इतनी अवहेलना नहीं की? कितने ही गरीब ऐसे हैं, जो सिर से पांव तक अधर्म और अविचार में डूबे हुए हैं। शायद उनकी दुष्टता ही उनकी दरिद्रता का कारण है। क्या केवल दरिद्रता उनके सब पापों का प्रायश्चित कर देगी? कितने ही धनी हैं, जिनके हृदय आइने की भांति निर्मल हैं। क्या उनका वैभव उनके सरो सत्कर्मों को मिटा देगा?

सोफिया सत्यासत्य के निरूपण में सदैव रत रहती थी। धर्मतत्वों को बुद्धि की कसौटी

पर कसना उसका स्वाभाविक गुण था, और जब तक तर्क-बुद्धि स्वीकार न करे, वह केवल धर्म-ग्रंथों के आधार पर किसी सिद्धांतों को न मान सकती थी। जब उसके मन में कोई शंका होती, तो वह प्रभु सेवक की सहायता से उसके निवारण की चेष्टा किया करती।

सोफिया-मैं इस विषय पर बड़ी देर से गौर कर रही हूं। पर कुछ समझ में नहीं आता। प्रभु मसीह ने दरिद्रता को इतना महत्व क्यों देता और धन-वैभव को क्यों निषिद्ध बतलाया?

प्रभु सेवक-जाकर मसीह से पूछो।

सोफिया-तुम क्या समझते हो?

प्रभु सेवक-मैं कुछ नहीं समझता, और न कुछ समझना ही चाहता हूं। भोजन, निद्रा और विनोद, ये ही मनुष्य-जीवन के तीन तत्व हैं। इसके सिवा सब गोरखधंधा है। मैं धर्म को बुद्धि से बिलकुल अलग समझता हूं। धर्म को तोलने के लिए बुद्धि उतनी ही अनुपयुक्त है, जितना बैंगन तोलने के लिए सुनार का कांटा। धर्म धर्म है, बुद्धि बुद्धि। या तो धर्म का प्रकाश इतना तेजोमय है कि बुद्धि की आंखें चौंधिया जाती हैं, या इतना घोर अंधकार है कि बुद्धि को कुछ नजर ही नहीं आता। इन झगड़ों में व्यर्थ सिर खपाती हो। सुना, आज पापा चलते-चलते क्या कह गए?

सोफिया-नहीं, मेरा ध्यान उधर न था।

प्रभु सेवक-यही कि मशीनों के लिए शीघ्र आर्डर दे दो। उस जमीन को लेने का इन्होंने निश्चय कर लिया। उसका मौका बहुत पसंद आया। चाहते हैं कि जल्द-से-जल्द बुनियाद पड़ जाए, लेकिन मेरा जी इस काम से घबराता है। मैंने यह व्यवसाय सीखा तो; पर सच पूछो तो मेरा दिल वहां भी न लगता था। अपना समय दर्शन, साहित्य, काव्य की सैर में काटता था। वहां के बड़े-बड़े विद्वानों और साहित्य-सेवियों से वार्तालाप करने में जो आनंद मिलता था, वह कारखाने में कहां नसीब था? सच पूछो, तो मैं इसीलिए वहां गया ही था। अब घोर संकट में पड़ा हुआ हूं। अगर इस काम में हाथ नहीं लगाता, तो पापा को दुःख होगा, वह समझेंगे कि मेरे हजारों रुपये पानी में गिर गए। शायद मेरी सूरत से घृणा करने लगें। काम शुरू करता हूं, तो यह भय होता है कि कहीं मेरी बेदिली से लाभ के बदले हानि न हो। मुझे इस काम में जरा भी उत्साह नहीं। मुझे तो रहने को एक झोपड़ी चाहिए और दर्शन तथा साहित्य का एक अच्छा-सा पुस्तकालय। और किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखता। यह लो, दादा को तुम्हारी याद आ गई। जाओ, नहीं तो वह यहां आ पहुंचेंगे और व्यर्थ की बकवास से घंटों समय नष्ट कर देंगे।

सोफिया-यह विपत्ति मेरे सिर बुरी पड़ी है। जहां पढ़ने कुछ बैठी कि इनका बुलावा पहुंचा। आजकल 'उत्पत्ति' की कथा पढ़वा रहे हैं। मुझे एक-एक शब्द पर शंका होती है। कुछ बोलूं, तो बिगड़ जाएं। बिलकुल बेगार करनी पड़ती है।

मिसेज सेवक बेटी को बुलाने आ रही थीं। अंतिम शब्द उनके कानों में पड़ गए। तिलमिला गईं। आकर बोलीं-बेशक, ईश्वर-ग्रंथ पढ़ना बेगार है, मसीह का नाम लेना पाप है, तुझे तो उस भिखारी अंधे की बातों में आनंद आता है, हिन्दुओं के गपोड़े पढ़ने में तेरा जी लगता है, ईश्वर-वाक्य तो तेरे लिए जहर है। खुदा जाने, तेरे दिमाग में यह खब्त कहां से समा गया है। जब देखती हूं, तुझे अपने पवित्र धर्म की निंदा ही करते देखती हूं। तू अपने मन में भले ही समझ ले कि ईश्वर-वाक्य कपोल-कल्पना है, लेकिन अंधे की आंखों में अगर सूर्य

का प्रकाश न पहुंचे, तो सूर्य का दोष नहीं, अंधे की आंखों का ही दोष है ! आज तीन-चौथाई दुनिया जिस महात्मा के नाम पर जान देती है, जिस महान् आत्मा की अमृत-वाणी आज सारी दुनिया को जीवन प्रदान कर रही है, उससे यदि तेरा मन विमुख हो रहा है, तो यह तेरा दुर्भाग्य है और तेरी दुर्बुद्धि है। खुदा तेरे हाल पर रहम करे।

सोफिया—महात्मा ईसा के प्रति कभी मेरे मुंह से कोई अनुचित शब्द नहीं निकला। मैं उन्हें धर्म, त्याग और सद्विचार का अवतार समझती हूं। लेकिन उनके प्रति श्रद्धा रखने का यह आशय नहीं है कि भक्तों ने उनके उपदेशों में जो असंगत बातें भर दी हैं या उनके नाम से जो विभूतियां प्रसिद्ध कर रखी हैं, उन पर भी ईमान लाऊं। और, यह अनर्थ कुछ प्रभु मसीह ही के साथ नहीं किया गया, संसार के सभी महात्माओं के साथ यही अनर्थ किया गया है।

मिसेज सेवक—तुझे ईश्वर-ग्रंथ के प्रत्येक शब्द पर ईमान लाना पड़ेगा, वरना तू अपनी गणना प्रभु मसीह के भक्तों में नहीं कर सकती।

सोफिया—तो मैं मजबूर होकर अपने को उनकी उम्मत से बाहर समझूंगी, क्योंकि बाइबिल के प्रत्येक शब्द पर ईमान लाना मेरे लिए असंभव है !

मिसेज सेवक—तू विधर्मिणी और भ्रष्टा है। प्रभु मसीह तुझे कभी क्षमा न करेंगे।

सोफिया—अगर धार्मिक संकीर्णता से दूर रहने के कारण ये नाम दिए जाते हैं, तो मुझे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है।

मिसेज सेवक से अब जब्त न हो सका। अभी तक उन्होंने कातिल वार न किया था। मातृस्नेह हाथों को रोके हुए था। लेकिन सोफिया के वितंडावाद ने अब उनके धैर्य का अंत कर दिया। बोलीं—प्रभु मसीह से विमुख होने वाले के लिए इस घर में जगह नहीं है।

प्रभु सेवक—मामा, आप घोर अन्याय कर रही हैं। सोफिया यह कब कहती है कि मुझे प्रभु मसीह पर विश्वास नहीं है?

मिसेज सेवक—हां, वह यही कह रही है, तुम्हारी समझ का फेर है। ईश्वर-ग्रंथ पर ईमान न लाने का और क्या अर्थ हो सकता है? इसे प्रभु मसीह के अलौकिक कृत्यों पर अविश्वास और उनके नैतिक उपदेशों पर शंका है। यह उनके प्रायश्चित के तत्व को नहीं मानती, उनके पवित्र आदेशों को स्वीकार नहीं करती।

प्रभु सेवक—मैंने इसे मसीह के आदेशों का उल्लंघन करते कभी नहीं देखा।

सोफिया—धार्मिक विषयों में मैं अपनी विवेक-बुद्धि के सिवा और किसी के आदेशों को नहीं मानती।

मिसेज सेवक—मैं तुझे अपनी संतान नहीं समझती, और तेरी सूरत नहीं देखना चाहती।

यह कहकर सोफिया के कमरे में घुस गईं, और उसकी मेज पर से बौद्ध-धर्म और वेदांत के कई ग्रंथ उठाकर बाहर बरामदे में फेंक दिए। उसी आवेश में उन्हें पैरों से कुचला और जाकर ईश्वर सेवक से बोलीं—पापा, आप सोफी को नाहक बुला रहे हैं, वह प्रभु मसीह की निंदा कर रही है।

मि॰ ईश्वर सेवक ऐसे चौंके, मानो देह पर आग की चिनगारी गिर पड़ी हो, और अपनी ज्योति-विहीन आंखों को फाड़कर बोले—क्या कहा, सोफी प्रभु मसीह की निंदा कर रही है ! सोफी?

मिसेज सेवक—हां-हां, सोफी। कहती है, मुझे उनकी विभूतियों पर, उनके उपदेशों और आदेशों पर विश्वास नहीं है।

ईश्वर सेवक—(ठंडी सांस खींचकर) प्रभु मसीह, मुझे अपने दामन में छुपा, अपनी भटकती हुई भेड़ों को सच्चे मार्ग पर ला। कहां है सोफी? मुझे उसके पास ले चलो, मेरे हाथ पकड़कर उठाओ। खुदा, मेरी बेटी के हृदय को अपनी ज्योति से जगा। मैं उसके पैरों पर गिरूंगा, उसकी मिन्नतें करूंगा; उसे दीनता से समझाऊंगा। मुझे उसके पास तो ले चलो।

मिसेज सेवक—मैं सब कुछ करके हार गई। उस पर खुदा की लानत है। मैं उसका मुंह नहीं देखना चाहती।

ईश्वर सेवक—ऐसी बातें न करो। वह मेरे खून का खून, मेरी जान की जान, मेरे प्राणों का प्राण है। मैं उसे कलेजे से लगाऊंगा। प्रभु मसीह ने विधर्मियों को छाती से लगाया था, कुकर्मियों को अपने दामन में शरण दी थी, वह मेरी सोफिया पर अवश्य दया करेंगे। ईसू, मुझे अपने दामन में छुपा।

जब मिसेज सेवक ने अब भी सहारा न दिया, तो ईश्वर सेवक लकड़ी के सहारे उठे और लाठी टेकते हुए सोफिया के कमरे में द्वार पर आकर बोले—बेटी सोफी, कहां है? इधर आ बेटी, तुझे गले से लगाऊं। मेरा मसीह खुदा का दुलारा बेटा था, दीनों का सहायक, निर्बलों का रक्षक, दरिद्रों का मित्र, डूबतों का सहारा, पापियों का उद्धारक, दुखियों को पार लगाने वाला! बेटी, ऐसा और कौन-सा नबी है, जिसका दामन इतना चौड़ा हो, जिसकी गोद में संसार के सारे पापों, सारी बुराइयों के लिए स्थान हो? वही एक ऐसा नबी है, जिसने दुरात्माओं को, अधर्मियों को, पापियों को मुक्ति की शुभ सूचना दी, नहीं तो हम-जैसे मलिनात्माओं के लिए मुक्ति कहां थी? हमें उबारने वाला कौन था?

यह कहकर उन्होंने सोफी को हृदय से लगा लिया। माता के कठोर शब्दों ने उसके निर्बल क्रोध को जागृत कर दिया था। अपने कमरे में आकर रो रही थी, बार-बार मन उद्विग्न हो उठता था। सोचती थी, अभी, इसी क्षण, इस घर से निकल जाऊं। क्या इस अनंत संसार में मेरे लिए जगह नहीं है? मैं परिश्रम कर सकती हूं, अपना भार आप संभाल सकती हूं। आत्मस्वातंत्र्य का खून करके अगर जीवन की चिंताओं से निवृत्ति हुई, तो क्या? मेरी आत्मा इतनी तुच्छ वस्तु नहीं है कि उदर पालने के लिए उसकी हत्या कर दी जाय। प्रभु सेवक को अपनी बहन से सहानुभूति थी। धर्म पर उन्हें उससे कहीं कम श्रद्धा थी। किंतु वह अपने स्वतंत्र विचारों को अपने मन ही में संचित रखते थे। गिरजा चले जाते थे, पारिवारिक प्रार्थनाओं में भाग लेते थे; यहां तक कि धार्मिक भजन भी गा लेते थे। वह धर्म को गंभीर विचार के क्षेत्र से बाहर समझते थे। वह गिरजा उसी भाव से जाते थे, जैसे थिएटर देखने जाते। पहले अपने कमरे से झांककर देखा कि कहीं मामा तो नहीं देख रही हैं; नहीं तो मुझ पर वज्र-प्रहार होने लगेंगे। तब चुपके से सोफिया के पास आए और बोले—सोफी, क्यों नादान बनती हो? सांप के मुंह में उंगली डालना कौन-सी बुद्धिमानी है? अपने मन में जो विचार रखो, जिन बातों को जी चाहे, मानो; जिनको जी न चाहे, न मानो; पर इस तरह ढिंढोरा पीटने से क्या फायदा? समाज में नक्कू बनने की क्या जरूरत? कौन तुम्हारे दिल के अंदर देखने जाता है।

सोफिया ने भाई को अवहेलना की दृष्टि से देखकर कहा—धर्म के विषय में मैं कर्म को वचन के अनुरूप ही रखना चाहती हूं। चाहती हूं, दोनों से एक ही स्वर निकले। धर्म का

स्वांग भरना मेरी क्षमता से बाहर है। आत्मा के लिए मैं संसार के सारे दु:ख झेलने को तैयार हूं। अगर मेरे लिए इस घर में स्थान नहीं है, तो ईश्वर का बनाया हुआ विस्तृत संसार तो है ! कहीं भी अपना निर्वाह कर सकती हूं। मैं सारी विडंबनाएं सह लूंगी, लोक-निंदा की मुझे चिंता नहीं है। मगर अपनी ही नजरों में गिरकर मैं जिंदा नहीं रह सकती। अगर यही मान लूं कि मेरे लिए चारों तरफ से द्वार बंद हैं, तो भी मैं आत्मा को बेचने की अपेक्षा भूखों मर जाना कहीं अच्छा समझती हूं।

प्रभु सेवक–दुनिया उससे कहीं तंग है, जितना तुम समझती हो।

सोफिया–कब्र के लिए तो जगह निकल ही आएगी।

सहसा ईश्वर सेवक ने जाकर उसे छाती से लगा लिया, और अपने भक्ति-गद्गद नेत्र-जल से उसके संतप्त हृदय को शांत करने लगे। सोफिया को उनकी श्रद्धालुता पर दया आ गई। कौन ऐसा निर्दय प्राणी है, जो भोले-भाले बालक के कठघोड़े का उपहास करके उसका दिल दुखाए, उसके मधुर स्वप्न को विशृंखल कर दे?

सोफिया ने कहा–दादा, आप आकर इस कुर्सी पर बैठ जाएं, खड़े-खड़े आपको तकलीफ होती है।

ईश्वर सेवक–जब तक तू अपने मुख से न कहेगी कि मैं प्रभु मसीह पर विश्वास करती हूं, तब तक मैं तेरे द्वार पर, यों ही, भिखारियों की भांति खड़ा रहूंगा।

सोफिया–दादा, मैंने यह कभी नहीं कहा कि मैं प्रभु ईसू पर ईमान नहीं रखती, या मुझे उन पर श्रद्धा नहीं है। मैं उन्हें महान् आदर्श पुरुष और क्षमा तथा दया का अवतार समझती हूं, और समझती रहूंगी।

ईश्वर सेवक ने सोफिया के कपोलों का चुंबन करके कहा–बस, मेरा चित्त शांत हो गया। ईसू तुझे अपने दामन में लें। मैं बैठता हूं, मुझे ईश्वर-वाक्य सुना, कानों को प्रभु मसीह की वाणी से पवित्र कर।

सोफिया इनकार न कर सकी। 'उत्पत्ति' का एक परिच्छेद खोलकर पढ़ने लगी। ईश्वर सेवक आंखें बंद करके कुर्सी पर बैठ गए और तन्मय होकर सुनने लगे। मिसेज सेवक ने यह दृश्य देखा और विजयगर्व से मुस्कराती हुई चली गईं।

यह समस्या तो हल हो गई, पर ईश्वर सेवक के मरहम से उसके अंत:करण का नासूर न अच्छा हो सकता था। आए-दिन उसके मन में धार्मिक शंकाएं उठती रहती थीं और दिन-प्रतिदिन उसे अपने घर में रहना दुस्सह होता जाता था। शनै: शनै: प्रभु सेवक की सहानुभूति भी क्षीण होने लगी। मि० जॉन सेवक को अपने व्यावसायिक कामों से इतना अवकाश ही न मिलता था कि उसके मानसिक विप्लव का निवारण करते। मिसेज सेवक पूर्ण निरंकुशता से उस पर शासन करती थीं। सोफिया के लिए सबसे कठिन परीक्षा का समय वह होता था, जब वह ईश्वर सेवक को बाइबिल पढ़कर सुनाती थी। इस परीक्षा से बचने के लिए वह नित्य बहाने ढूंढती रहती थी। अत: अपने कृत्रिम जीवन से उसे घृणा होती जाती थी। उसे बार-बार प्रबल अंत:प्रेरणा होती कि घर छोड़कर कहीं चली जाऊं और स्वाधीन होकर सत्यासत्य की विवेचना करूं, पर इच्छा व्यवहार-क्षेत्र में पैर रखते हुए संकोच से विवश हो जाती थी। पहले प्रभु सेवक से अपनी शंकाएं प्रकट करके वह शांत-चित्त हो जाया करती थी, पर ज्यों-ज्यों उनकी उदासीनता बढ़ने लगी, सोफिया के हृदय से भी उनके प्रति प्रेम और आदर उठने लगा। उसे

धारणा होने लगी कि इनका मन केवल भोग और विलास का दास है, जिसे सिद्धांतों से कोई लगाव नहीं। यहां तक कि उनकी काव्य-रचनाएं भी, जिन्हें वह पहले बड़े शौक से सुना करती थी, अब उसे कृत्रिम भावों से परिपूर्ण मालूम होतीं। वह बहुधा टाल दिया करती कि मेरे सिर में दर्द है, सुनने को जी नहीं चाहता। अपने मन में कहती, इन्हें उन सद्‌भावों और पवित्र आवेगों को व्यक्त करने का क्या अधिकार है, जिनका आधार आत्म-दर्शन और अनुभव पर न हो।

एक दिन जब घर से सब प्राणी गिरजाघर जाने लगे, तो सोफिया ने सिर-दर्द का बहाना किया। अब तक वह शंकाओं के होते हुए भी रविवार को गिरजाघर चली जाया करती थी। प्रभु सेवक उसका मनोभाव ताड़ गए बोले—सोफी, गिरजा जाने में तुम्हें क्या आपत्ति है? वहां जाकर आध घंटे चुपचाप बैठे रहना कोई ऐसा मुश्किल काम नहीं है।

प्रभु सेवक बड़े शौक से गिरजा जाया करते थे, वहां उन्हें बनाव और दिखाव, पांखड और ढकोसलों की दार्शनिक मीमांसा करने और व्यंग्योक्तियों के लिए सामग्री जमा करने का अवसर मिलता था। सोफिया के लिए आराधना विनोद की वस्तु नहीं, शांति और तृप्ति की वस्तु थी। बोली—तुम्हारे लिए आसान हो, मेरे लिए मुश्किल ही है।

प्रभु सेवक—क्यों अपनी जान बवाल में डालती हो? अम्मां का स्वभाव तो जानती हो।

सोफिया—मैं तुमसे परामर्श नहीं चाहती, अपने कामों की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने को तैयार हूं।

मिसेज सेवक ने आकर पूछा—सोफी, क्या सिर में दर्द इतना है कि गिरजे तक नहीं चल सकतीं?

सोफिया—जा क्यों नहीं सकती, पर जाना नहीं चाहती।

मिसेज सेवक—क्यों?

सोफिया—मेरी इच्छा। मैंने गिरजा जाने की प्रतिज्ञा नहीं की है।

मिसेज सेवक—क्या तू चाहती है कि हम कहीं मुंह दिखाने के लायक न रहें?

सोफिया—हरगिज नहीं, मैं सिर्फ इतना ही चाहती हूं कि आप मुझे चर्च जाने के लिए मजबूर न करें।

ईश्वर सेवक पहले ही अपने तामजान पर बैठकर चल दिए थे। जॉन सेवक ने आकर केवल इतना पूछा—क्या बहुत ज्यादा दर्द है? मैं उधर से कोई दवा लेता आऊंगा, जरा पढ़ना कम कर दो और रोज घूमने जाया करो।

यह कहकर वह प्रभु सेवक के साथ फिटन पर आ बैठे। लेकिन मिसेज सेवक इतनी आसान से उसका गला छोड़ने वाली न थीं। बोलीं—तुझे ईसू के नाम से इतनी घृणा है?

सोफिया—मैं हृदय से उनकी श्रद्धा करती हूं।

मां—तू झूठ बोलती है।

सोफिया—अगर दिल में श्रद्धा न होती, तो जबान से कदापि न कहती।

मां—तू प्रभु मसीह को अपना मुक्तिदाता समझती है? तुझे यह विश्वास है कि वही तेरा उद्धार करेंगे?

सोफिया—कदापि नहीं। मेरा विश्वास है कि मेरी मुक्ति, अगर मुक्ति हो सकती है, तो मेरे कर्मों से होगी।

मां–तेरे कर्मों से तेरे मुंह में कालिख लगेगी, मुक्ति न होगी।

यह कहकर मिसेज सेवक फिटन पर जा बैठीं। संध्या हो गई थी। सड़क पर ईसाइयों के दल-के-दल कोई ओवरकोट पहने, कोई माघ की ठंड से सिकुड़े हुए, खुश-खुश गिरजे चले जा रहे थे, पर सोफिया को सूर्य की मलिन ज्योति भी असह्य हो रही थी, वह एक ठंडी सांस खींचकर बैठ गई। 'तेरे कर्मों से तेरे मुंह में कालिख लगेगी'–ये शब्द उसके अंतःकरण को भाले के समान बेधने लगे। सोचने लगी–मेरी स्वार्थ-सेवा का यही उचित दंड है। मैं भी केवल रोटियों के लिए अपनी आत्मा की हत्या कर रही हूं, अपमान और अनादर के झोंके सह रही हूं। इस घर में कौन मेरा हितैषी है? कौन है, जो मेरे मरने की खबर पाकर आंसू की चार बूंदें गिरा दे? शायद मेरे मरने से लोगों को खुशी होगी। मैं इनकी नजरों में इतनी गिर गई हूं। ऐसे जीवन पर धिक्कार है। मैंने देखे हैं हिन्दू-घरानों में भिन्न-भिन्न मतों के प्राणी कितने प्रेम से रहते हैं। बाप सनातन-धर्मावलंबी है, तो बेटा आर्य समाजी। पति ब्रह्मसमाज में है, तो स्त्री पाषाण-पूजकों में। सब अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं। कोई किसी से नहीं बोलता। हमारे यहां आत्मा कुचली जाती है। फिर भी यह दावा है कि हमारी शिक्षा और सभ्यता विचार-स्वातंत्र्य के पोषक हैं। हैं तो हमारे यहां भी उदार विचारों के लोग, प्रभु सेवक ही उनकी एक मिसाल है, पर इनकी उदारता यथार्थ में विवेकशून्यता है। ऐसे उदार प्राणियों से तो अनुदार ही अच्छे। इनमें कुछ विश्वास तो है, निरे बहुरूपिये तो नहीं हैं। आखिर मामा अपने दिल में क्या समझती हैं कि बात-बात पर वाग्बाणों से छेदने लगती हैं? उनके दिल में यही विचार होगा कि इसे कहीं और ठिकाना नहीं है, कोई इसका पूछने वाला नहीं है। मैं इन्हें दिखा दूंगी कि मैं अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हूं। अब इस घर में रहना नरकवास के समान है। इस बेहयाई की रोटियां खाने से भूखों मर जाना अच्छा है। बला से लोग हंसेंगे, आजाद तो हो जाऊंगी। किसी के ताने-मेहने तो न सुनने पड़ेंगे।

सोफिया उठी, और मन में कोई स्थान निश्चित किए बिना ही अहाते से बाहर निकल आई। उस घर की वायु उसे दूषित मालूम होती थी। वह आगे बढ़ती जाती थी, पर दिल में लगातार प्रश्न हो रहा था, कहां जाऊं? जब वह घनी आबादी में पहुंची, तो शोहदों ने उस पर इधर-उधर से आवाजें कसनी शुरू कीं। किंतु वह शर्म से सिर नीचा करने के बदले उन आवाजों और कुवासनामयी दृष्टियों का जवाब घृणायुक्त नेत्रों से देती चली जाती थी, जैसे कोई सवेग जल-धारा पत्थरों को ठुकराती हुई आगे बढ़ती चली जाए। यहां तक कि वह उस खुली हुई सड़क पर आ गई, जो दशाश्वमेध घाट की ओर जाती है।

उसके जी में आया, जरा दरिया की सैर करती चलूं। कदाचित् किसी सज्जन से भेंट हो जाए। जब तक दो-चार आदमियों से परिचय न हो, और वे मेरा हाल न जानें, मुझसे कौन सहानुभूति प्रकट करेगा? कौन मेरे हृदय की बात जानता है? ऐसे सदय प्राणी सौभाग्य ही से मिलते हैं। जब अपने माता-पिता अपने शत्रु हो रहे हैं, तो दूसरों से भलाई की क्या आशा?

वह इसी नैराश्य की दशा में चली जा रही थी कि सहसा उसे एक विशाल प्रासाद देख पड़ा, जिसके सामने बहुत चौड़ा हरा मैदान था। अंदर जाने के लिए एक ऊंचा फाटक था, जिसके ऊपर एक सुनहरा गुंबद बना था। इस गुंबद में नौबत बज रही थी, फाटक से भवन तक सुर्खी की एक रविश थी, जिसके दोनों ओर बेलें और गुलाब की क्यारियां थीं। हरी-हरी घास पर बैठे कितने ही नर-नारी माघ की शीतल वायु का आनंद ले रहे थे। कोई लेटा हुआ था, कोई

तकियेदार चौकियों पर बैठा सिगार पी रहा था।

सोफिया ने शहर में ऐसा रमणीक स्थान न देखा था। उसे आश्चर्य हुआ कि शहर के मध्य भाग में भी ऐसे मनोरम स्थान मौजूद हैं। वह एक चौकी पर बैठ गई और सोचने लगी–अब लोग चर्च से आ गए होंगे। मुझे घर में न देखकर चौंकेंगे तो जरूर, पर समझेंगे, कहीं घूमने गई होगी। अगर रात-भर यहीं बैठी रहूं, तो भी वहां किसी को चिंता न होगी, आराम से खा-पीकर सोयेंगे। हां, दादा को अवश्य दुःख होगा, वह भी केवल इसीलिए कि उन्हें बाइबिल पढ़कर सुनाने वाला कोई नहीं। मामा तो दिल में खुश होंगी कि अच्छा हुआ, आंखों से दूर हो गई। मेरा किसी से परिचय नहीं। इसी से कहा है, सबसे मिलते रहना चाहिए, न जाने कब किससे काम पड़ जाए। मुझे बरसों रहते हो गए और किसी से राह-रस्म न पैदा की। मेरे साथ नैनीताल में यहां के किसी रईस की लड़की पढ़ती थी, भला-सा नाम था। हां, इन्दु। कितना कोमल स्वभाव था। बात-बात से प्रेम टपका पड़ता था। हम दोनों गले में बांहें डाले टहलती थीं। वहां कोई बालिका इतनी सुंदर और ऐसी सुशील न थी। मेरे और उसके विचारों में कितना सादृश्य था। कहीं उसका पता मिल जाता, तो दस-पांच दिन उसी के यहां मेहमान हो जाती। उसके पिता का अच्छा-सा नाम था। हां, कुंवर भरतसिंह। पहले यह बात ध्यान में न आई, नहीं तो एक कार्ड लिखकर डाल देती। मुझे भूल तो क्या गई होगी, इतनी निष्ठुर तो न मालूम होती थी। कम-से-कम मानव-चरित्र का तो अनुभव हो जाएगा।

मजबूरी में हमें उन लोगों की याद आती है, जिनकी सूरत भी विस्मृत हो चुकी होती है। विदेश में हमें अपने मुहल्ले का नाई या कहार भी मिल जाए, तो हम उसके गले मिल जाते हैं, चाहे देश में उससे कभी सीधे मुंह बात भी न की हो।

सोफिया सोच रही थी कि किसी से कुंवर भरतसिंह का पता पूछूं, इतने में भवन में सामने वाले पक्के चबूतरे पर फर्श बिछ गया। कई आदमी सितार, बेला, मृदंग ले, आ बैठे, और इन साजों के साथ स्वर मिलाकर कई नवयुवक एक स्वर से गाने लगे।

शांति-समर में कभी भूलकर धैर्य नहीं खोना होगा;
वज्र-प्रहार भले सिर पर हो, नहीं किंतु रोना होगा।
अरि से बदला लेने का मन-बीज नहीं बोना होगा;
घर में कान तूल देकर फिर तुझे नहीं सोना होगा।
देश-दाग को रुधिर वारि सहहर्षित हो धोना होगा;
देश-कार्य की सारी गठरी सिर पर रख ढोना होगा।
आंखें लाल, भवें टेढ़ी कर, क्रोध नहीं करना होगा;
बलि-वेदी पर तुझे हर्ष से चढ़कर कट मरना होगा।
नश्वर है नर-देह, मौत से कभी नहीं डरना होगा;
सत्य-मार्गको छोड़ स्वार्थ-पथपैर नहीं धरनाहोगा।
होगी निश्चय जीत धर्म की यही भाव भरना होगा;
मातृभूमि के लिए जगत् में जीना औ' मरना होगा।

संगीत में न लालित्य था, न माधुर्य, पर वह शक्ति, वह जागृति भरी हुई थी, जो सामूहिक संगीत का गुण है, आत्मसमर्पण और उत्कर्ष का पवित्र संदेश विराट् आकाश में, नील गगन में और सोफिया के अशांत हृदय में गूंजने लगा। वह अब तक धार्मिक विवेचन ही में रत रहती

थी। राष्ट्रीय संदेश सुनने का अवसर उसे कभी न मिला था। उसके रोम-रोम से वह ध्वनि, दीपक-से ज्योति के समान निकलने लगी–

'मातृभूमि के लिए जगत् में जीना औ' मरना होगा।'

उसके मन में एक तरंग उठी कि मैं भी जाकर गाने वालों के साथ गाने लगती। भांति-भांति के उद्‍गार उठने लगे–मैं किसी दूसरे देश में जाकर भारत का आर्त्तनाद सुनाती। यहीं खड़ी होकर कह दूं, मैं अपने को भारत-सेवा के लिए समर्पित करती हूं। अपने जीवन के उद्देश्य पर एक व्याख्यान देती–हम भाग्य के दुखड़े रोने के लिए, अपनी अवनत दशा पर आंसू बहाने के लिए नहीं बनाए गए हैं।

समा बंधा हुआ था, सोफिया के हृदय की आंखों के सामने इन्हीं भावों के चित्र नृत्य करते हुए मालूम होते थे।

अभी संगीत की ध्वनि गूंज ही रही थी कि अकस्मात् उसी अहाते के अंदर एक खपरैल के मकान में आग लग गई। जब तक लोग उधर दौड़ें, अग्नि की ज्वाला प्रचंड हो गई। सारा मैदान जगमगा उठा। वृक्ष और पौधे प्रदीप्त प्रकाश के सागर में नहा उठे। गाने वालों ने तुरंत अपने-अपने साज वहीं छोड़े, धोतियां ऊपर उठाईं, आस्तीनें चढ़ाईं और आग बुझाने दौड़े। भवन से और भी कितने ही युवक निकल पड़े। कोई कुएं से पानी लाने दौड़ा, कोई आग के मुंह में घुसकर अंदर की चीजें निकाल-निकालकर बाहर फेंकने लगा। लेकिन कहीं वह उतावलापन, वह घबराहट, वह भगदड़, वह कुहराम, वह 'दौड़ो-दौड़ो' का शोर, वह स्वयं कुछ न करके दूसरों को हुक्म देने का गुल न था, जो ऐसी दैवी आपदाओं के समय साधारणत: हुआ करता है। सभी आदमी ऐसे सुचारु और सुव्यवस्थित रूप से अपना-अपना काम कर रहे थे कि एक बूंद पानी भी व्यर्थ न गिरने पाता था, और अग्नि का वेग प्रतिक्षण घटता जाता था। लोग इतनी निर्भयता से आग में कूदते थे, मानो वह जलकुंड है।

अभी अग्नि का वेग पूर्णत: शांत न हुआ था कि दूसरी तरफ से आवाज आई–'दौड़ो-दौड़ो, आदमी डूब रहा है।' भवन के दूसरी ओर एक पक्की बावली थी, जिसके किनारे झाड़ियां लगी हुई थीं, तट पर एक छोटी-सी नौका खूंटी से बंधी हुई पड़ी थी। आवाज सुनते ही आग बुझाने वाले दल से कई आदमी निकलकर बावली की तरफ लपके, और डूबने वाले को बचाने के लिए पानी में कूद पड़े। उनके कूदने की आवाज 'धम ! धम ! सोफिया के कानों में आई। ईश्वर का यह कैसा प्रकोप कि एक ही साथ दोनों प्रधान तत्वों में विप्लव ! और एक ही स्थान पर ! वह उठकर बावली की ओर जाना ही चाहती थी कि अचानक उसने एक आदमी को पानी का डोल लिए फिसलकर जमीन पर गिरते देखा। चारों ओर अग्नि शांत हो गई थी, पर जहां वह आदमी गिरा था, वहां अब तक बड़े वेग से धधक रही थी। अग्नि-ज्वाला विकराल मुंह खोले उस अभागे मनुष्य की तरफ लपकी। आग की लपटें उसे निगल जातीं, पर सोफिया विद्युत्-गति से ज्वाला की तरफ दौड़ी और उस आदमी को खींचकर बाहर निकाल लाई। यह सब कुछ क्षण-मात्र में हो गया। अभागे की जान बच गई, लेकिन सोफिया का कोमल गात आग की लपट से झुलस गया। ज्वालाओं के घेरे से बाहर आते ही अचेत होकर जमीन पर गिर पड़ी।

सोफिया ने तीन दिन तक आंखें न खोलीं। मन न जाने किन लोकों में भ्रमण किया करता था। कभी अद्‍भुत, कभी भयावह दृश्य दिखाई देते। कभी ईसा की सौम्य मूर्ति आंखों

के सामने आ जाती, कभी किसी विदुषी महिला के चंद्रमुख के दर्शन होते, जिन्हें यह सेंट मेरी समझती।

चौथे दिन प्रात:काल उसने आंखें खोलीं, तो अपने को एक सजे हुए कमरे में पाया। गुलाब और चंदन की सुगंध आ रही थी। उसके सामने कुरसी पर वही महिला बैठी हुई थीं, जिन्हें उसने सुषुप्तावस्था में सेंट मेरी समझा था, और सिरहाने की ओर एक वृद्ध पुरुष बैठे थे जिनकी आंखों से दया टपकी पड़ती थी। इन्हीं को कदाचित् उसने, अर्द्ध चेतना की दशा में, ईसा समझा था। स्वप्न की रचना स्मृतियों की पुनरावृत्ति-मात्र होती है।

सोफिया ने क्षीण स्वर में पूछा—मैं कहां हूं? मामा कहां हैं?

वृद्ध पुरुष ने कहा—तुम कुंवर भरतसिंह के घर में हो। तुम्हारे सामने रानी साहबा बैठी हुई हैं, तुम्हारा जी अब कैसा है?

सोफिया—अच्छी हूं, प्यास लगी है। मामा कहां हैं, पापा कहां हैं, आप कौन हैं?

रानी—यह डाक्टर गांगुली हैं, तीन दिन से तुम्हारी दवा कर रहे हैं। तुम्हारे पापा-मामा कौन हैं?

सोफिया—पापा का नाम मि॰ जॉन सेवक है। हमारा बंगला सिगरा में है।

डाक्टर—अच्छा, तुम मि॰ जॉन सेवक की बेटी हो? हम उसे जानता है, अभी बुलाता है।

रानी—किसी को अभी भेज दूं?

सोफिया—कोई जल्दी नहीं है, आ जाएंगे। मैंने जिस आदमी को पकड़कर खींचा था, उसकी क्या दशा हुई?

रानी—बेटी, वह ईश्वर की कृपा से बहुत अच्छी तरह है। उसे जरा भी आंच नहीं लगी। वह मेरा बेटा विनय है। अभी आता होगा। तुम्हीं ने तो उसके प्राण बचाए। अगर तुम दौड़कर न पहुंच जातीं, तो आज न जाने क्या होता। मैं तुम्हारे ऋण से कभी मुक्त नहीं हो सकती। तुम मेरे कुल की रक्षा करने वाली देवी हो।

सोफिया—जिस घर में आग लगी थी, उसके आदमी सब बच गए?

रानी—बेटी, यह तो केवल अभिनय था। विनय ने यहां एक सेवा-समिति बना रखी है ! जब शहर में कोई मेला होता है, या कहीं से किसी दुर्घटना का समाचार आता है, तो समिति वहां पहुंचकर सेवा-सहायता करती है। उस दिन समिति के परीक्षा कि लिए कुंवर साहब ने वह अभिनय किया था।

डाक्टर—कुंवर साहब देवता हैं, कितने गरीब लोगों की रक्षा करता है। यह समिति, अभी थोड़े दिन हुए, बंगाल गई थी। यहां सूर्य-ग्रहण का स्नान होने वाला है। लाखों यात्री दूर-दूर से आएंगे। उसके लिए यह सब तैयारी हो रही है।

इतनी में एक युवती रमणी आकर खड़ी हो गई। उसके मुख से उज्ज्वल दीपक के समान प्रकाश की रश्मियां छिटक रही थीं। गले में मोतियों के हार के सिवा उसके शरीर पर कोई आभूषण न था। उषा की शुभ्र छटा मूर्तिमान् हो गई थी।

सोफिया ने उसे एक क्षण-भर देखा, बोली—इन्दु, तुम यहां कहां? आज कितने दिनों के बाद तुम्हें देखा है?

इन्दु चौंक पड़ी। तीन दिन से बराबर सोफिया को देख रही थी, खयाल आता था कि

इसे कहीं देखा है, पर कहां देखा है, यह याद न आती थी। उसकी बातें सुनते ही स्मृति जागृत हो गई, आंखें चमक उठीं, गुलाब खिल गया। बोली—ओहो। सोफी, तुम हो?

दोनों सखियां गले मिल गईं। यह वही इन्दु थी, जो सोफिया के साथ नैनीताल में पढ़ती थी। सोफिया को आशा न थी कि इन्दु इतने प्रेम से मिलेगी। इन्दु कभी पिछली बातें याद करके रोती, कभी हंसती, कभी गले मिल जाती। अपनी मां ने उसका गुणानुवाद करने लगी। मां उसका प्रेम देखकर फूली न समाती। अंत में सोफिया ने झेंपते हुए कहा—इन्दु, ईश्वर के लिए अब मेरी और ज्यादा तारीफ न करो, नहीं तो मैं तुमसे न बोलूंगी। इतने दिनों तक कभी एक खत भी न लिखा, मुंह-देखे का प्रेम करती हो।

रानी—नहीं बेटी सोफी, इन्दु मुझसे कई बार तुम्हारी चर्चा कर चुकी है। यहां किसी से हंसकर बोलती तक नहीं। तुम्हारे सिवा मैंने इसे किसी की तारीफ करते नहीं सुना।

इन्दु—बहन, तुम्हारी शिकायत वाजिब है, पर करूं क्या, मुझे खत नहीं लिखना आता। एक तो बड़ी भूल यह हुई कि तुम्हारा पता नहीं पूछा, और अगर पता मालूम भी होता, तो भी मैं खत न लिख सकती। मुझे डर लगता कि कहीं तुम हंसने न लगो। मेरा पत्र कभी समाप्त ही न होता, और न जाने क्या-क्या लिख जाती।

कुंवर साहब को मालूम हुआ कि सोफिया बातें कर रही है तो वह भी उसे धन्यवाद देने के लिए आए। पूरे छः फीट के मनुष्य थे, बड़ी-बड़ी आंखें, लंबे बाल, लंबी दाढ़ी, मोटे कपड़े का एक नीचा कुरता पहने हुए थे। सोफिया ने ऐसा तेजस्वी रूप कभी न देखा था। उसने अपने मन में ऋषियों की जो कल्पना कर रखी थी, पर बिलकुल ऐसी ही थी। इस विशाल शरीर में बैठी हुई विशाल आत्मा को वह दोनों नेत्रों से ताक रही थी। सोफी ने सम्मान भाव से उठना चाहा, पर कुंवर साहब मधुर, सरल स्वर में बोले—बेटी, लेटी रहो, तुम्हें उठने में कष्ट होगा। लो, मैं बैठे जाता हूं, तुम्हारे पापा से मेरा परिचय है, पर क्या मालूम था कि तुम मि॰ सेवक की बेटी हो। मैंने उन्हें बुलाया है, लेकिन मैं कहे देता हूं, मैं अभी तुम्हें न जाने दूंगा। यह कमरा अब तुम्हारा है, और यहां से चले जाने पर भी तुम्हें एक बार नित्य यहां आना पड़ेगा। (रानी से) जाह्नवी, यहां प्यानो मंगाकर रख दो। आज मिस सोहराबजी को बुलवाकर सोफिया का एक तैल चित्र खिंचवाओ। सोहराबजी ज्यादा कुशल है, पर मैं नहीं चाहता कि सोफिया को उनके सामने बैठना पड़े। वह चित्र हमें याद दिलाता रहेगा कि किसने महान् संकट के अवसर पर हमारी रक्षा की।

रानी—कुछ आज भी दान करा दूं?

यह कहकर रानी ने डाक्टर गांगुली की ओर देखकर आंखें मटकाईं। कुंअर साहब तुरंत बोले—फिर वही ढकोसले। इस जमाने में जो दरिद्र है, उसे दरिद्र होना चाहिए, जो भूखों मरता है, उसे भूखों मरना चाहिए, जब घंटे-दो घंटे मिहनत से खाने-भर को मिल सकता है, तो कोई सबब नहीं कि क्यों कोई आदमी भूखे मरे। दान ने हमारी जाति में जितने आलसी पैदा कर दिए हैं, उतने सब देशों ने मिलकर भी न पैदा किए होंगे। दान का इतना महत्व क्यों रखा गया, यह मेरी समझ में नहीं आता।

रानी—ऋषियों ने भूल की कि तुमसे सलाह न ले ली।

कुंवर—हां, मैं होता, तो साफ कह देता—आप लोग यह आलस्य, कुकर्म और अनर्थ का बीज बो रहे हैं। दान आलस्य का मूल है और आलस्य सब पापों का मूल है। इसलिए दान ही

सब पापों का मूल है, कम से कम पोषक तो अवश्य ही है। दान नहीं, अगर जी चाहता हो, तो मित्रों को एक भोज दे दो।

डाक्टर गांगुली–सोफिया, तुम राजा साहब का बात सुनता है? तुम्हारा प्रभु मसीह तो दान को सबसे बढ़कर महत्व देता है, तुम कुंवर साहब से कुछ नहीं कहता?

सोफिया ने इन्दु की ओर देखा, और मुसकिराकर आंखें नीची कर लीं, मानो कह रही थी कि मैं इनका आदर करती हूं, नहीं तो जवाब देने में असमर्थ नहीं हूं।

सोफिया मन ही मन इन प्राणियों के पारस्परिक प्रेम की तुलना अपने घर वालों से कर रही थी। आपस में कितनी मुहब्बत है। मां-बाप दोनों इन्दु पर प्राण देते हैं। एक मैं अभागिनी हूं कि कोई मुंह भी नहीं देखना चाहता। चार दिन यहां पड़े हो गए, किसी ने खबर तक न ली। किसी ने खोज ही न की होगी। अम्मां ने तो समझा होगा, कहीं डूब मरी। मन में प्रसन्न हो रही होंगी कि अच्छा हुआ, सिर से बला टली। मैं ऐसे सहृदय प्राणियों में रहने योग्य नहीं हूं। मेरी इनसे क्या बराबरी।

यद्यपि यहां किसी के व्यवहार में दया की झलक भी न थी, लेकिन सोफिया को उन्हें अपना इतना आदर-सत्कार करते देखकर अपनी दीनावस्था पर ग्लानि होती थी। इन्दु से भी शिष्टाचार करने लगी। इन्दु उसे प्रेम से 'तुम' कहती थी, पर वह उसे 'आप' कहकर संबोधित करती थी।

कुंवर साहब कह गए थे, मैंने मि॰ सेवक को सूचना दे दी है, वह आते ही होंगे। सोफिया को अब भय होने लगा कि कहीं वह आ न रहे हों। आते-ही-आते मुझे अपने साथ चलने को कहेंगे। मेरे सिर फिर वही विपत्ति पड़ेगी। इन्दु से अपनी विपत्ति कथा कहूं, तो शायद उसे मुझसे कुछ सहानुभूति हो। वह नौकरानी यहां व्यर्थ ही बैठी हुई है। इन्दु आई भी, तो उससे कैसे बातें करूंगी। पापा के आने के पहले एक बार इन्दु से एंकात में मिलने का मौका मिल जाता, तो अच्छा होता। क्या करूं, इन्दु को बुला भेजूं? न जाने क्या करने लगी। प्यानो बजाऊं, तो शायद सुनकर आए।

उधर इन्दु भी सोफिया से कितनी ही बातें करना चाहती थी। रानीजी के सामने उसे दिल की बातें करने का अवसर न मिला था। डर रही थी कि सोफिया के पिता उसे लेते गए, तो मैं फिर अकेली हो जाऊंगी। डाक्टर गांगुली ने कहा था कि इन्हें ज्यादा बातें मत करने देना, आज और आराम से सो लें, तो फिर कोई चिंता न रहेगी। इसलिए वह आने का इरादा करके भी रह जाती थी। आखिर नौ बजते-बजते वह अधीर हो गई। आकर नौकरानी को अपना कमरा साफ करने के बहाने से हटा दिया और सोफिया के सिरहाने बैठकर बोली–क्यों बहन, बहुत कमजोरी तो नहीं मालूम होती?

सोफिया–बिल्कुल नहीं। मुझे तो मालूम होता है कि मैं चंगी हो गई।

इन्दु–तुम्हारे पापा कहीं तुम्हें अपने साथ ले गए, तो मेरे प्राण निकल जाएंगे। तुम भी उनकी राह देख रही हो। उनके आते ही खुश होकर चली जाओगी, और शायद फिर कभी याद न करोगी।

यह कहते-कहते इन्दु की आंखें सजल हो गईं। मनोभावों के अनुचित आवेश को हम बहुधा मुस्कराहट से छिपाते हैं। इन्दु की आंखों में आंसू भरे हुए थे, पर वह मुस्करा रही थी।

सोफिया बोली–आप मुझे भूल सकती हैं, पर मैं आपको कैसे भूलूंगी?

वह अपने दिल का दर्द सुनाने ही जा रही थी कि संकोच ने आकर जबान बंद कर दी, बात फेरकर बोली—मैं कभी-कभी आपसे मिलने आया करूंगी।

इन्दु—मैं तुम्हें यहां से अभी पंद्रह दिन तक न जाने दूंगी। धर्म बाधक न होता, तो कभी न जाने देती। अम्मांजी तुम्हें अपनी बहू बनाकर छोड़तीं। तुम्हारे ऊपर बेतरह रीझ गई हैं। जहां बैठती हैं, तुम्हारी ही चर्चा करती हैं। विनय भी तुम्हारे हाथों बिका हुआ-सा जान पड़ता है। तुम चली जाओगी, तो सबसे ज्यादा दु:ख उसी को होगा। एक बात भेद की तुमसे कहती हूं। अम्मांजी तुम्हें कोई चीज तोहफा समझकर दें, तो इनकार मत करना, नहीं तो उन्हें बहुत दु:ख होगा।

इस प्रेममय आग्रह ने संकोच का लंगर उखाड़ दिया। जो अपने घर में नित्य कटु शब्द सुनने का आदी हो, उसके लिए उतनी मधुर सहानुभूति काफी से ज्यादा थी। अब सोफी को इन्दु से अपने मनोभावों को गुप्त रखना मैत्री के नियमों के विरुद्ध प्रतीत हुआ। करुण स्वर में बोली—इन्दु, मेरा वश चलता तो कभी रानी के चरणों को न छोड़ती, पर अपना क्या काबू है? यह स्नेह और कहां मिलेगा।

इन्दु यह भाव न समझ सकी। अपनी स्वाभाविक सरलता से बोली—कहीं विवाह की बातचीत हो रही है क्या?

उसकी समझ में विवाह के सिवा लड़कियों के इतना दु:खी होने का कोई कारण न था।

सोफिया—मैंने तो इरादा कर लिया है कि विवाह न करूंगी।

इन्दु—क्यों?

सोफिया—इसलिए कि विवाह से मुझे अपनी धार्मिक स्वाधीनता त्याग देनी पड़ेगी। धर्म विचार-स्वतंत्रता का गला घोंट देता है। मैं अपनी आत्मा को किसी मत के हाथ नहीं बेचना चाहती। मुझे ऐसा ईसाई पुरुष मिलने की आशा नहीं जिसका हृदय इतना उदार हो कि वह मेरी धार्मिक शंकाओं को दरगुजर कर सके। मैं परिस्थिति से विवश होकर ईसा को खुदा का बेटा और अपना मुक्तिदाता नहीं मान सकती, विवश होकर गिरजाघर में ईश्वर की प्रार्थना करने नहीं जाना चाहती। मैं ईसा को ईश्वर नहीं मान सकती।

इन्दु—मैं तो समझती थी, तुम्हारे यहां हम लोगों के यहां से कहीं ज्यादा आजादी है, जहां चाहो, अकेली जा सकती हो। हमारा तो घर से निकलना मुश्किल है।

सोफिया—लेकिन इतनी धार्मिक संकीर्णता तो नहीं है?

इन्दु—नहीं, कोई किसी को पूजा-पाठ के लिए मजबूर नहीं करता। बाबूजी नित्य गंगा-स्नान करते हैं, घंटों शिव की आराधना करते हैं। अम्मांजी कभी भूलकर भी स्नान करने नहीं जातीं, न किसी देवता की पूजा करती हैं, पर बाबूजी कभी आग्रह नहीं करते। भक्ति तो अपने विश्वास और मनोवृत्ति पर ही निर्भर है। हम भाई-बहन के विचारों में आकाश-पाताल का अंतर है। मैं कृष्ण की उपासिका हूं, विनय ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करता, पर बाबूजी हम लोगों से कभी कुछ नहीं कहते, और न हम भाई-बहन में कभी इस विषय पर वाद-विवाद होता है।

सोफिया—हमारी स्वाधीनता लौकिक और इसीलिए मिथ्या है। आपकी स्वाधीनता मानसिक और इसलिए सत्य है। असली स्वाधीनता वही है, जो विचार के प्रवाह में बाधक न हो।

इन्दु—तुम गिरजे में कभी नहीं जातीं?

सोफिया—पहले दुराग्रह-वश जाती थी, अब की नहीं गई। इस पर घर के लोग बहुत नाराज हुए। बुरी तरह तिरस्कार किया गया।

इन्दु ने प्रेममयी सरलता से कहा—वे लोग नाराज हुए होंगे, तो तुम बहुत रोई होगी। इन प्यारी आंखों से आंसू बहे होंगे। मुझसे किसी का रोना नहीं देखा जाता।

सोफिया—पहले रोया करती थी, अब परवा नहीं करती।

इन्दु—मुझे तो कभी कोई कुछ कह देता है, तो हृदय पर तीर-सा लगता है। दिन-दिन भर रोती ही रह जाती हूं। आंसू ही नहीं थमते। वह बात बार-बार हृदय में चुभा करती है। सच पूछो, तो मुझे किसी के क्रोध पर रोना नहीं आता, रोना आता है अपने ऊपर कि मैंने उन्हें क्यों नाराज किया, क्यों मुझसे ऐसी भूल हुई।

सोफिया को भ्रम हुआ कि इन्दु मुझे अपनी क्षमाशीलता से लज्जित करना चाहती है, माथे पर शिकन पड़ गई। बोली—मेरी जगह पर आप होतीं, तो ऐसा न कहतीं। आखिर क्या आप अपने धार्मिक विचारों को छोड़ बैठतीं?

इन्दु—यह तो नहीं कह सकती कि क्या करती, पर घरवालों को प्रसन्न रखने की चेष्टा किया करती।

सोफिया—आपकी माताजी अगर आपको जबरदस्ती कृष्ण की उपासना करने से रोकें, तो आप मान जाएंगी?

इन्दु—हां, मैं तो मान जाऊंगी। अम्मा को नाराज न करूंगी। कृष्ण तो अंतर्यामी हैं, उन्हें प्रसन्न रखने के लिए उपासना की जरूरत नहीं। उपासना तो केवल अपने मन के संतोष के लिए है।

सोफिया—(आश्चर्य से)आपको जरा भी मानसिक पीड़ा न होगी?

इन्दु—अवश्य होगी, पर उनकी खातिर मैं सह लूंगी।

सोफिया—अच्छा, अगर वह आपकी इच्छा के विरुद्ध आपका विवाह करना चाहें तो?

इन्दु—(लजाते हुए)वह समस्या तो हल हो चुकी। मां-बाप ने जिससे उचित समझा, कर दिया। मैंने जबान तक नहीं खोली।

सोफिया—अरे, यह कब?

इन्दु—इसे तो दो साल हो गए। (आंखें नीची करके)अगर मेरा अपना वश होता, तो उन्हें कभी न वरती, चाहे कुंवारी ही रहती। मेरे स्वामी मुझसे प्रेम करते हैं, धन की कोई कमी नहीं। पर मैं उनके हृदय के केवल चतुर्थांश की अधिकारिणी हूं, उसके तीन भाग सार्वजनिक कामों में भेंट होते हैं। एक के बदले चौथाई पाकर कौन संतुष्ट हो सकता है? मुझे तो बाजरे की पूरी बिस्कुट के चौथाई हिस्से से कहीं अच्छी मालूम होती है। क्षुधा तो तृप्त हो जाती है, जो भोजन का यथार्थ उद्देश्य है।

सोफिया—आपकी धार्मिक स्वाधीनता में तो बाधा नहीं डालते?

इन्दु—नहीं। उन्हें इतना अवकाश कहां?

सोफिया—तब तो मैं आपको मुबारकबाद दूंगी।

इन्दु—अगर किसी कैदी को बधाई देना उचित हो, तो शौक से दो।

सोफिया—बेड़ी प्रेम की हो तो?

इन्दु—ऐसा होता, तो मैं तुमसे बधाई देने का आग्रह करती। मैं बंध गई, वह मुक्त हैं। मुझे यहां आए तीन महीने होने आते हैं, पर तीन बार से ज्यादा नहीं आए, और वह भी एक-एक घंटे के लिए। इसी शहर में रहते हैं, दस मिनट में मोटर आ सकती है, पर इतनी फुर्सत किसे है। हां, पत्रों से अपनी मुलाकात का काम निकालना चाहते हैं, और वे पत्र भी क्या होते हैं, आदि से अंत तक अपने दुखड़ों से भरे हुए। आज यह काम है, कल वह काम है, इनसे मिलने जाना है, उनका स्वागत करना है। म्युनिसिपैलिटी के प्रधान क्या हो गए, राज्य मिल गया। जब देखो, वही धुन सवार ! और सब कामों के लिए फुर्सत है। अगर फुर्सत नहीं है, तो सिर्फ यहां आने की। मैं तुम्हें चेताए देती हूं, किसी देश-सेवक से विवाह न करना, नहीं तो पछताओगी। तुम उसके अवकाश के समय की मनोरंजन-सामग्री मात्र रहोगी।

सोफिया—मैं तो पहले ही अपना मन स्थिर कर चुकी, सबसे अलग-ही-अलग रहना चाहती हूं, जहां मेरी स्वाधीनता में बाधा डालने वाला कोई न हो। मैं सत्पथ पर रहूंगी, या कुपथ पर चलूंगी, यह जिम्मेवारी भी अपने ही सिर लेना चाहती हूं। मैं बालिग हूं और अपना नफा-नुकसान देख सकती हूं। आजन्म किसी की रक्षा में नहीं रहना चाहती, क्योंकि रक्षा का कार्य पराधीनता के सिवा और कुछ नहीं।

इन्दु—क्या तुम अपने मामा और पापा के अधीन नहीं रहना चाहतीं?

सोफिया—न, पराधीनता में प्रकार का नहीं, केवल मात्राओं का अंतर है।

इन्दु—तो मेरे ही घर क्यों नहीं रहतीं? मैं इसे अपना सौभाग्य समझूंगी, और अम्मांजी तो तुम्हें आंखों की पुतली बनाकर रखेंगी। मैं चली जाती हूं, तो वह अकेले घबराया करती हैं। तुम्हें पा जाएं, तो फिर गला न छोड़ें। कहो तो अम्मां से कहूं? यहां तुम्हारी स्वाधीनता में कोई दखल न देगा। बोलो, कहूं जाकर अम्मां से?

सोफिया—नहीं, अभी भूलकर भी नहीं। आपकी अम्मांजी को जब मालूम होगा कि इसके मां-बाप इसकी बात नहीं पूछते, मैं उनकी आंखों से भी गिर जाऊंगी। जिसकी अपने घर में इज्जत नहीं, उसकी बाहर भी इज्जत नहीं होती।

इन्दु—नहीं सोफी, अम्मांजी का स्वभाव बिलकुल निराला है। जिस बात से तुम्हें अपने निरादर का भय है, वही बात अम्मांजी के आदर की वस्तु है। वह स्वयं अपनी मां से किसी बात पर नाराज हो गई थीं, तब से मैके नहीं गईं। नानी मर गईं, पर अम्मां ने उन्हें क्षमा नहीं किया। सैकड़ों बुलावे आए, पर उन्हें देखने तक न गईं। उन्हें ज्योंही यह बात मालूम होगी, तुम्हारी दूनी इज्जत करने लगेंगी।

सोफी ने आंखों में आंसू भरकर कहा—बहन, मेरी लाज अब आप ही के हाथ में है।

इन्दु ने उसका सिर अपनी जांघ पर रखकर कहा—वह मुझे अपनी लाज से कम प्रिय नहीं है।

उधर मि० जॉन सेवक को कुंवर साहब का पत्र मिला, तो जाकर स्त्री से बोले—देखा, मैं कहता न था कि सोफी पर कोई संकट आ पड़ा। यह देखो, कुंवर भरतसिंह का पत्र है। तीन दिनों से उनके घर पड़ी हुई है। उनके एक झोपड़े में आग लग गई थी, वह भी उसे बुझाने लगी। वहीं लपट में आ गई।

मिसेज सेवक—ये सब बहाने हैं। मुझे उसकी किसी बात पर विश्वास नहीं रहा। जिसका दिल खुदा से फिर गया, उसे झूठ बोलने का क्या डर? यहां से बिगड़कर गई थी, समझा होगा,

घर से निकलते ही फूलों की सेज बिछी हुई मिलेगी। जब कहीं शरण न मिली, तो यह पत्र लिखवा दिया। अब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। यह भी संभव है, खुदा ने उसके अविचार का दंड दिया हो।

मि॰ जॉन सेवक—चुप भी रहो, तुम्हारी निर्दयता पर मुझे आश्चर्य होता है। मैंने तुम-जैसी कठोर-हृदया स्त्री नहीं देखी।

मिसेज सेवक—मैं तो नहीं जाती। तुम्हें जाना हो, तो जाओ।

जॉन सेवक—मुझे तो देख रही हो, मरने की फुरसत नहीं है। उसी पांड़ेपुर वाली जमीन के विषय में बातचीत कर रहा हूं। ऐसे मूजी से पाला पड़ा है कि किसी तरह चंगुल में नहीं आता। देहातियों को जो लोग सरल कहते हैं, बड़ी भूल करते हैं। इनसे ज्यादा चालाक आदमी मिलना मुश्किल है। तुम्हें इस वक्त कोई काम नहीं है, मोटर मंगवाए देता हूं, शान से चली जाओ, और उसे अपने साथ लेती आओ।

ईश्वर सेवक वहीं आराम-कुर्सी पर आंखें बंद किए ईश्वर-भजन में मग्न बैठे थे। जैसे बहरा आदमी मतलब की बातें सुनते ही सचेत हो जाता है, मोटरकार का जिक्र सुनते ही ध्यान टूट गया। बोले—मोटरकार की क्या जरूरत है? क्या दस-पांच रुपये काट रहे हैं। यों उड़ाने से तो कारूं का खजाना भी काफी न होगा। क्या गाड़ी पर न जाने से शान में फर्क आ जाएगा? तुम्हारी मोटर देखकर कुंवर साहब रोब में न आएंगे, उन्हें खुदा ने बहुतेरी मोटरें दी हैं। प्रभु, दास को अपनी शरण में लो, अब देर न करो, मेरी सोफी बेचारी वहां बेगानों में पड़ी हुई है, न जाने इतने दिन किस तरह काटे होंगे। खुदा उसे सच्चा रास्ता दिखाए। मेरी आंखें उसे ढूंढ़ रही हैं। वहां उस बेचारी का कौन पुछत्तर होगा, अमीरों के घर में गरीबों का कहां गुजर !

जॉन सेवक—अच्छा ही हुआ। यहां होती, तो रोजाना डाक्टर की फीस न देनी पड़ती?

ईश्वर सेवक—डाक्टर का क्या काम था। ईश्वर की दया से मैं खुद थोड़ी-बहुत डाक्टरी कर लेता हूं। घरवालों का स्नेह डाक्टर की दवाओं से कहीं ज्यादा लाभदायक होता है। मैं अपनी बच्ची को गोद में लेकर कलामे-पाक सुनाता, उसके लिए खुदा से दुआ मांगता।

मिसेज सेवक—तो आप ही चले जाइए।

ईश्वर सेवक—सिर और आंखों से, मेरा तांगा मंगवा दो। हम सबों को चलना चाहिए। भूले-भटके को प्रेम ही सन्मार्ग पर लाता है। मैं भी चलता हूं। अमीरों के सामने दीन बनना पड़ता है। उनसे बराबरी का दावा नहीं किया जाता।

जॉन सेवक—मुझे अभी साथ न ले जाइए, मैं किसी दूसरे अवसर पर जाऊंगा। इस वक्त वहां शिष्टाचार के सिवा और कोई काम न होगा। मैं उन्हें धन्यवाद दूंगा, वह मुझे धन्यवाद देंगे। मैं इस परिचय को दैवी प्रेरणा समझता हूं। इत्मीनान से मिलूंगा। कुंवर साहब का शहर में बड़ा दबाव है। म्युनिसिपैलिटी के प्रधान उनके दामाद हैं। उनकी सहायता से मुझे पांडेपुर वाली जमीन बड़ी आसानी से मिल जाएगी। संभव है, वह कुछ हिस्से भी खरीद लें। मगर आज इन बातों का मौका नहीं है।

ईश्वर सेवक—मुझे तुम्हारी बुद्धि पर हंसी आती है। जिस आदमी से राह-रस्म पैदा करके तुम्हारे इतने काम निकल सकते हैं, उससे मिलने में भी तुम्हें संकोच? तुम्हारा समय इतना बहुमूल्य है कि आध घंटे के लिए भी वहां नहीं जा सकते? पहली ही मुलाकात में सारी बातें तय कर लेना चाहते हो? ऐसा सुनहरा अवसर पाकर भी तुम्हें फायदा उठाना नहीं आता?

जॉन सेवक—खैर, आपका अनुरोध है, तो मैं ही चला जाऊंगा। मैं एक जरूरी काम कर रहा था, फिर कर लूंगा। आपको कष्ट करने की जरूरत नहीं। (स्त्री से) तुम तो चल रही हो?

मिसेज सेवक—मुझे नाहक ले चलते हो, मगर खैर, चलो।

भोजन के बाद चलना निश्चित हुआ। अंगरेजी प्रथा के अनुसार यहां दिन का भोजन एक बजे होता था। बीच का समय तैयारियों में कटा। मिसेज सेवक ने अपने आभूषण निकाले, जिनसे वृद्धावस्था ने भी उन्हें विरक्त नहीं किया था। अपना अच्छे-से-अच्छा गाउन और ब्लाउज निकाला। इतना शृंगार वह अपनी बरस-गांठ के सिवा और किसी उत्सव में न करती थीं। उद्देश्य था सोफिया को जलाना, उसे दिखाना कि तेरे चले आने से मैं रो-रोकर मरी नहीं जा रही हूं। कोचवान को गाड़ी धोकर साफ करने का हुक्म दिया गया। प्रभु सेवक को भी साथ ले चलने की राय हुई। लेकिन जॉन सेवक ने जाकर उसके कमरे में देखा, तो उसका पता न था। उसकी मेज पर एक दर्शन-ग्रंथ खुला पड़ा हुआ था। मालूम होता था, पढ़ते-पढ़ते उठकर कहीं चला गया है। वास्तव में यह ग्रंथ तीन दिनों से इसी भांति खुला पड़ा था। प्रभु सेवक को उसे बंद करके रख देने का भी अवकाश न था। वह प्रातःकाल से दो घड़ी रात तक शहर का चक्कर लगाया करता। केवल दो बार भोजन करने घर पर आता था। ऐसा कोई स्कूल न था जहां उसने सोफी को न ढूंढ़ा हो। कोई जान-पहचान का आदमी, कोई मित्र ऐसा न था, जिसके घर जाकर उसने तलाश न की हो। दिन-भर की दौड़-धूप के बाद रात को निराश होकर लौट आता, और चारपाई पर लेटकर घंटों सोचता और रोता। कहां चली गई? पुलिस के दफ्तर में दिन-भर में दस-दस बार जाता और पूछता, कुछ पता चला? समाचार-पत्रों में भी सूचना दे रखी थी। वहां भी रोज कई बार जाकर दरियाफ्त करता। उसे विश्वास होता जाता था कि सोफी हमसे सदा के लिए बिदा हो गई। आज भी, रोज की भांति, एक बजे थका-मांदा, उदास और निराश लौटकर आया, तो जॉन सेवक ने शुभ सूचना दी—सोफिया का पता मिल गया।

प्रभु सेवक का चेहरा खिल उठा। बोला—सच ! कहां है? क्या उसका कोई पत्र आया है।

जॉन सेवक—कुंवर भरतसिंह के मकान पर है। आओ, खाना खा लो। तुम्हें भी वहां चलना है।

प्रभु सेवक—मैं तो लौटकर खाना खाऊंगा। भूख गायब हो गई। है तो अच्छी तरह?

मिसेज सेवक—हां, हां, बहुत अच्छी तरह है। खुदा ने यहां से रूठकर जाने की सजा दे दी।

प्रभु सेवक—मामा, खुदा ने आपका दिल न जाने किस पत्थर का बनाया है। क्या घर से आप ही रूठकर चली गई थी? आप ही ने उसे निकाला, और अब भी आपको उस पर जरा भी दया नहीं आती?

मिसेज सेवक—गुमराहों पर दया करना पाप है।

प्रभु सेवक—अगर सोफी गुमराह है, तो ईसाइयों 100 में 99 आदमी गुमराह हैं। वह धर्म का स्वांग नहीं दिखाना चाहती, यही उसमें दोष है, नहीं तो प्रभु मसीह से जितनी श्रद्धा उसे है, उतनी उनको भी न होगी, जो ईसा पर जान देते हैं।

मिसेज सेवक—खैर, मालूम हो गया कि तुम उसकी वकालत खूब कर सकते हो। मुझे इन दलीलों को सुनने की फुरसत नहीं।

यह कहकर मिसेज सेवक वहां से चली गईं। भोजन का समय आ गया। लोग मेज पर बैठे। प्रभु सेवक बहुत आग्रह करने पर भी न गया। तीनों आदमी फिटन पर बैठे, तो ईश्वर सेवक ने चलते-चलते जॉन-सेवक से कहा—सोफी को जरूर साथ लाना, और इस अवसर को हाथ से न जाने देना। प्रभु मसीह तुम्हें सुबुद्धि दें, सफल-मनोरथ करें।

थोड़ी देर में फिटन कुंवर साहब के मकान पर पहुंच गई। कुंवर साहब ने बड़े तपाक से उनका स्वागत किया। मिसेज सेवक ने सोच रक्खा था, मैं सोफिया से एक शब्द भी न बोलूंगी, दूर से खड़ी देखती रहूंगी। लेकिन जब सोफिया के कमरे में पहुंची और उसका मुरझाया हुआ चेहरा देखा, तो शोक से कलेजा मसोस उठा। मातृस्नेह उबल पड़ा। अधीर होकर उससे लिपट गईं। आंखों से आंसू बहने लगे। इस प्रवाह में सोफिया का मनोमालिन्य बह गया। उसने दोनों हाथ माता की गर्दन में डाल दिए। और कई मिनट तक दोनों प्रेम का स्वर्गीय आनंद उठाती रहीं। जॉन सेवक ने सोफिया का माथ चूमा, किंतु प्रभु सेवक आंखों में आंसू-भरे उसके सामने खड़ा रहा। आलिंगन करते हुए उसे भय होता था कि कहीं हृदय फट न जाए। ऐसे अवसरों पर उसके भाव और भाषा, दोनों ही शिथिल हो जाते थे।

जब जॉन सेवक सोफी को देखकर कुंवर साहब के साथ बाहर चले गए, तो मिसेज सेवक बोलीं—तुझे उस दिन क्या सूझी कि यहां चली आई? यहां अजनबियों में पड़े-पड़े तेरी तबीयत घबराती रही होगी। ये लोग अपने धन के घमंड में तेरी बात भी न पूछते होंगे।

सोफिया—नहीं मामा, यह बात नहीं है। घमंड तो यहां किसी में छू भी नहीं गया है। सभी सहृदयता और विनय के पुतले हैं। यहां तक कि नौकर-चाकर भी इशारों पर काम करते हैं। मुझे आज चौथे दिन होश आया है। पर इन लोगों ने इतने प्रेम से सेवा-शुश्रूषा न की होती तो शायद मुझे हफ्तों बिस्तर पर पड़े रहना पड़ता। मैं अपने घर में भी ज्यादा-से-ज्यादा इतने ही आराम से रहती।

मिसेज सेवक—तुमने अपनी जान जोखिम में डाली थी, तो क्या ये लोग इतना भी करने से रहे?

सोफिया—नहीं मामा, ये लोग अत्यंत सुशील और सज्जन हैं। खुद रानीजी प्राय: मेरे पास बैठी पंखा झलती रहती हैं। कुंवर साहब दिन में कई बार आकर देख जाते हैं, और इन्दु से मेरा बहनापा-सा हो गया है। यही लड़की है, जो मेरे साथ नैनीताल में पढ़ा करती थी।

मिसेज सेवक—(चिढ़कर) तुझे दूसरों में सब गुण-ही-गुण नजर आते हैं। अवगुण सब घरवालों ही के हिस्से आ पड़े हैं। यहां तक कि दूसरे धर्म भी अपने धर्म से अच्छे हैं।

प्रभु सेवक—मामा, आप तो जरा-जरा सी बात पर तिनक उठती हैं। अगर कोई अपने साथ अच्छा बरताव करे, तो क्या उसका एहसान न माना जाए? कृतघ्नता से बुरा कोई दूसरा नहीं है।

मिसेज सेवक—यह आज कोई नई बात थोड़े ही है। घरवालों की निंदा तो इसकी आदत हो गई है। यह मुझे जताना चाहती है कि ये लोग इसके साथ मुझसे ज्यादा प्रेम करते हैं। देखूं, यहां से जाती है, तो कौन-सा तोहफा दे देते हैं। कहां हैं तेरी रानी साहब? मैं भी उन्हें धन्यवाद दे दूं। उनसे आज्ञा ले लो और घर चलो। पापा अकेले घबरा रहे होंगे।

सोफिया—वह तो तुमसे मिलने को बहुत उत्सुक थीं। कब की आ गई होतीं, पर कदाचित् हमारे बीच में बिना बुलाए आना अनुचित समझती होंगी।

प्रभु सेवक—मामा, अभी सोफी को यहां दो-चार दिन और आराम से पड़ी रहने दीजिए। अभी इसे उठने में कष्ट होगा। देखिए, कितनी दुर्बल हो गई है।

सोफिया—रानीजी भी यही कहती थीं कि अभी मैं तुम्हें न जाने दूंगी।

मिसेज सेवक—यह क्यों नहीं कहती कि तेरा ही जी यहां से जाने को नहीं चाहता। वहां तेरा इतना प्यार कौन करेगा।

सोफिया—नहीं मामा, आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं। मैं अब यहां एक दिन भी और रहना नहीं चाहती। इन लोगों को मैं अब और कष्ट न दूंगी। मगर एक बात मुझे मालूम हो जानी चाहिए। मुझ पर फिर तो अत्याचार न किया जाऐगा? मेरी धार्मिक स्वतंत्रता में फिर तो कोई बाधा न डाली जाएगी?

प्रभु सेवक—सोफी, तुम व्यर्थ इन बातों की क्यों चर्चा करती हो? तुम्हारे साथ कौन-सा अत्याचार किया जाता है? जरा-सी बात का बतंगड़ बनाती हो।

मिसेज सेवक—नहीं, तूने यह बात पूछ ली, बहुत अच्छा किया। मैं भी मुगालते में नहीं रखना चाहती। मेरे घर में प्रभु मसीह के द्रोहियों के लिए जगह नहीं है।

प्रभु सेवक—आप नाहक उससे उलझती हैं। समझ लीजिए, कोई पगली बक रही है।

मिसेज सेवक—क्या करूं, मैंने तुम्हारी तरह दर्शन नहीं पढ़ा। यथार्थ को स्वप्न नहीं समझ सकती। यह गुण तो तत्वज्ञानियों ही में हो सकता है। यह मत समझो कि मुझे अपनी संतान से प्रेम नहीं है। खुदा जानता है, मैंने तुम्हारी खातिर क्या-क्या कष्ट नहीं झेले। उस समय तुम्हारे पापा एक दफ्तर में क्लर्क थे। घर का सारा काम-काज मुझी को करना पड़ता था। बाजार जाती, खाना पकाती, झाड़ू लगाती, तुम दोनों ही बचपन में कमजोर थे, नित्य एक-न-एक रोग लगा ही रहता था। घर के कामों से जरा फुरसत मिलती तो डाक्टरों के पास जाती। बहुधा तुम्हें गोद में लिए-ही-लिए रातें कट जातीं। इतने आत्मसमर्पण से पाली हुई संतान को जब ईश्वर से विमुख होते देखती हूं, तो मैं दुःख और क्रोध से बावली हो जाती हूं। तुम्हें मैं सच्चा, ईमान का पक्का, मसीह का भक्त बनाना चाहती थी। इसके विरुद्ध जब तुम्हें ईसू से मुंह मोड़ते देखती हूं, उनके उपदेश, उनके जीवन और उनके अलौकिक कृत्यों पर शंका करते पाती हूं, तो मेरे हृदय के टुकड़े हो जाते हैं, और यही इच्छा होती है कि इसकी सूरत न देखूं। मुझे अपना मसीह सारे संसार से, संतान से, यहां तक कि अपनी जान से भी प्यारा है।

सोफिया—आपको ईसू इतना प्यारा है, तो मुझे भी अपनी आत्मा, अपना ईमान उससे कम प्यारा नहीं है। मैं उस पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं सह सकती।

मिसेज सेवक—खुदा तुझे इस अभक्ति की सजा देगा। मेरी उससे यही प्रार्थना है कि वह फिर मुझे तेरी सूरत न दिखाए।

यह कहकर मिसेज सेवक कमरे के बाहर निकल आईं। रानी और इन्दु उधर से आ रही थीं। द्वार पर उनसे भेंट हो गई। रानीजी मिसेज सेवक के गले लिपट गईं। और कृतज्ञतापूर्ण शब्दों का दरिया बहा दिया। मिसेज सेवक को इस साधु प्रेम में बनावट की बू आई। लेकिन रानी को मानव-चरित्र का ज्ञान न था। इन्दु से बोलीं—देख, मिस सोफिया से कह दे, अभी जाने की तैयारी न करे। मिसेज सेवक, आप मेरी खातिर से सोफिया को अभी दो-चार दिन यहां और रहने दें, मैं आपसे सविनय अनुरोध करती हूं। अभी मेरा मन उसकी बातों से तृप्त नहीं हुआ, और न उसकी कुछ सेवा ही कर सकी। मैं आपसे वादा करती हूं, मैं स्वयं उसे आपके पास पहुंचा

दूंगी। जब तक वह यहां रहेगी, आपसे दिन में एक बार भेंट तो होती ही रहेगी। धन्य हैं आप, जो ऐसी सुशील लड़की पाई। दया और विवेक की मूर्ति है। आत्मत्याग तो इसमें कूट-कूटकर भरा हुआ है।

मिसेज सेवक–मैं इसे अपने साथ चलने के लिए मजबूर नहीं करती। आप जितने दिन चाहें, शौक से रखें।

रानी–बस-बस, मैं इतना ही चाहती थी। आपने मुझे मोल ले लिया। आपसे ऐसी ही आशा भी थी। आप इतनी सुशील न होतीं, तो लड़की में ये गुण कहां से आते? एक मेरी इन्दु है कि बातें करने का भी ढंग नहीं जानती। एक बड़ी रियासत की रानी है, पर इतना भी नहीं जानती कि मेरी वार्षिक आय कितनी है। लाखों के गहने संदूक में पड़े हुए हैं, उन्हें छूती तक नहीं। हां, सैर करने को कह दीजिए, तो दिन-भर घूमा करे। क्यों इन्दु, झूठ कहती हूं?

इन्दु–तो क्या करूं, मन-भर सोना लादे बैठी रहूं? मुझे तो इस तरह अपनी देह जकड़ना अच्छा नहीं लगता।

रानी–सुनी आपने इसकी बातें? गहनों से इसकी देह जकड़ जाती है। आइए, अब आपको अपने घर की सैर कराऊं। इन्दु, चाय बनाने को कह दे।

मिसेज सेवक–मिस्टर सेवक बाहर खड़े मेरा इतंजार कर रहे होंगे। देर होगी।

रानी–वाह, इतनी जल्दी। कम-से-कम आज यहां भोजन तो कर ही लीजिएगा। लंच करके हवा खाने चलें, फिर लौटकर कुछ देर गप-शप करें। डिनर के बाद मेरी मोटर आपको घर पहुंचा देगी।

मिसेज सेवक इनकार न कर सकीं। रानी ने उनका हाथ पकड़ लिया, और अपने राजभवन की सैर कराने लगीं। आध घंटे तक मिसेज सेवक मानों इंद्र-लोक की सैर करती रहीं। भवन क्या था, आमोद, विलास, रसज्ञता और वैभव का क्रीड़ास्थल था। संगमरमर के फर्श पर बहुमूल्य कालीन बिछे हुए थे। चलते समय उनके पैर धंस जाते थे। दीवारों पर मनोहर पच्चीकारी, कमरों की दीवारों में बड़े-बड़े आदम-कद आईने, गुलकारी इतनी सुंदर कि आंखें मुग्ध हो जाएं, शीशे की अमूल्य-अलभ्य वस्तुएं, प्राचीन चित्रकारों की विभूतियां, चीनी के विलक्षण गुलदान, जापान, चीन, यूनान और ईरान की कला-निपुणता के उत्तम नमूने, सोने के गमले, लखनऊ की बोलती हुई मूर्तियां, इटली के बने हुए हाथी-दांत के पलंग, लकड़ी के नफीस ताक, दीवारगीरें, किश्तियां, आंखों को लुभाने वाली, पिंजड़ों में चहकती हुई भांति-भांति की चिड़ियां, आंगन में संगमरमर का हौज और उसके किनारे संगमरमर की अप्सराएं–मिसेज सेवक ने इन सारी वस्तुओं में से किसी की प्रशंसा नहीं की, कहीं भी विस्मय या आनंद का एक शब्द भी मुंह से न निकला। उन्हें आनंद के बदले ईर्ष्या हो रही थी। ईर्ष्या में गुणग्राहकता नहीं होती। वह सोच रही थीं–एक यह भाग्यवान् हैं कि ईश्वर ने इन्हें भोग-विलास और आमोद-प्रमोद की इतनी सामग्रियां प्रदान कर रखी हैं। एक अभागिनी मैं हूं कि एक झोंपड़े में पड़ी हुई दिन काट रही हूं। सजावट और बनावट का जिक्र ही क्या, आवश्यक वस्तुएं भी काफी नहीं। इस पर तुर्रा यह कि हम प्रातः से संध्या तक छाती फाड़कर काम करती हैं, यहां कोई तिनका तक नहीं उठाता। लेकिन इसका क्या शोक? आसमान की बादशाहत में तो अमीरों का हिस्सा नहीं। वह तो हमारी मीरास होगी। अमीर लोग कुत्तों की भांति दुतकारे जाएंगे, कोई झांकने तक न पाएगा।

इस विचार से उन्हें कुछ तसल्ली हुई। ईर्ष्या की व्यापकता ही साम्यवाद की सर्वप्रियता का कारण है। रानी साहब को आश्चर्य हो रहा था कि इन्हें मेरी कोई चीज पसंद न आई, किसी वस्तु का बखान न किया। मैंने एक-एक चित्र और एक-एक प्याले के लिए हजारों खर्च किए हैं। ऐसी चीजें यहां और किसके पास हैं। अब अलभ्य हैं, लाखों में भी न मिलेंगी। कुछ नहीं, बन रही हैं, या इतना गुण-ज्ञान ही नहीं है कि इनकी कद्र कर सकें।

इतने पर भी रानीजी को निराशा नहीं हुई। उन्हें अपना बाग दिखाने लगीं। भांति-भांति के फूल और पोधे दिखाए। माली बड़ा चतुर था। प्रत्येक पौधे का गुण और इतिहास बतलाता जाता–कहां से आया, कब आया, किस तरह लगाया गया, कैसे उसकी रक्षा की जाती है, पर मिसेज सेवक का मुंह अब भी न खुला। यहां तक कि अंत में उसने एक नन्हीं-सी जड़ी दिखाई, तो जेरुशलम से लाई गई थी। कुंवर साहब उसे स्वयं बड़ी सावधानी से लाए थे, और उसमें एक-एक पत्ती निकलना उनके लिए एक-एक शुभ संवाद से कम न था। मिसेज सेवक ने तुरंत उस गमले को उठा लिया, उसे आंखों से लगाया और पत्तियों को चूमा। बोलीं–मेरा सौभाग्य है कि इस दुर्लभ वस्तु के दर्शन हुए।

रानी ने कहा–कुंवर साहब स्वयं इसका बड़ा आदर करते हैं। अगर यह आज सूख जाए, तो दो दिन तक उन्हें भोजन अच्छा न लगेगा।

इतने में चाय तैयार हुई। मिसेज सेवक लंच पर बैठीं। रानीजी को चाय से रुचि न थी। विनय और इन्दु के बारे में बातें करने लगीं। विनय के आचार-विचार, सेवा-भक्ति और परोपकार-प्रेम की सराहना की, यहां तक कि मिसेज सेवक का जी उकता गया। इसके जवाब में वह अपनी संतानों का बखान न कर सकती थीं।

उधर मि॰ सेवक और कुंवर साहब दीवानखाने में बैठे लंच कर रहे थे। चाय और अंडों से कुंवर साहब को रुचि न थी। विनय भी इन दोनों वस्तुओं को त्याज्य समझते थे। जॉन सेवक उन मनुष्यों में थे, जिनका व्यक्तित्व शीघ्र ही दूसरों को आकर्षित कर लेता है। उनकी बातें इतनी विचारपूर्ण होती थीं कि दूसरे अपनी बातें भूलकर उन्हीं की सुनने लगते थे। और, यह बात न थी कि उनका भाषण, शब्दाडंबर-मात्र होता हो। अनुभवशील, और मानव-चरित्र के बड़े अच्छे ज्ञाता थे। ईश्वरदत्त प्रतिभा थी, जिसके बिना किसी सभा में सम्मान नहीं प्राप्त हो सकता। इस समय वह भारत की औद्योगिक और व्यावसायिक दुर्बलता पर अपने विचार प्रकट कर रहे थे। अवसर पाकर उन साधनों का भी उल्लेख करते जाते थे, जो इस कुदशा-निवारण के लिए उन्होंने सोच रखे थे। अंत में बोले–हमारी जाति का उद्धार कला-कौशल और उद्योग की उन्नति में है। इस सिगरेट के कारखाने से कम-से-कम एक हजार आदमियों के जीवन की समस्या हल हो जाएगी और खेती के सिर से उनका बोझ टल जाएगा। जितनी जमीन को एक आदमी अच्छी तरह जोत-बो सकता है, उसमें घर-भर का लगा रहना व्यर्थ है। मेरा कारखाना ऐसे बेकारों को अपनी रोटी कमाने का अवसर देगा।

कुंवर साहब–लेकिन जिन खेतों में इस वक्त नाज बोया जाता है, उन्हीं खेतों में तंबाकू बोई जाने लगेगी। फल यह होगा कि नाज और मंहगा हो जाएगा।

जॉन सेवक–मेरी समझ में तंबाकू की खेती का असर जूट, सन, तेलहन और अफीम पर पड़ेगा। निर्यात जिंस कुछ कम हो जाएगी। गल्ले पर इसका कोई असर नहीं पड़ सकता। फिर हम उस जमीन को भी जोत में लाने का प्रयास करेंगे, जो अभी तक परती पड़ी हुई है।

कुंवर साहब–लेकिन तंबाकू कोई अच्छी चीज तो नहीं। इसकी गणना मादक वस्तुओं में हैं और स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ता है।

जॉन सेवक–(हंसकर) ये सब डाक्टरों की कोरी कल्पनाएं हैं, जिन पर गंभीर विचार करना हास्यास्पद है। डाक्टरों के आदेशानुसार हम जीवन व्यतीत करना चाहें, तो जीवन का अंत ही हो जाए। दूध में सिल के कीड़े रहते हैं, घी में चरबी की मात्रा अधिक है, चाय और कहवा उत्तेजक हैं, यहां तक कि सांस लेने से भी कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। उनके सिद्धांतों के अनुसार संसार कीटों से भरा हुआ है, जो हमारा प्राण लेने पर तुले हुए हैं। व्यवसायी लोग इन गोरखधंधों में नहीं पड़ते, उनका लक्ष्य केवल वर्तमान परिस्थितियों पर रहता है। हम देखते हैं कि इस देश में विदेश से करोड़ों रुपये के सिगरेट और सिगार आते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि इस धन-प्रवाह को विदेश जाने से रोकें। इसके बगैर हमारा आर्थिक जीवन कभी पनप नहीं सकता।

यह कहकर उन्होंने कुंवर साहब को गर्वपूर्ण नेत्रों से देखा। कुंवर साहब की शंकाएं बहुत कुछ निवृत्त हो चुकी थीं। प्राय: वादी को निरुत्तर देखकर हम दिलेर हो जाते हैं। बच्चा भी भागते हुए कुत्ते पर निर्भय होकर पत्थर फेंकता है।

जॉन सेवक नि:शंक होकर बोले–मैंने इन सब पहलुओं पर विचार करके ही यह मत स्थिर किया, और आपके इस दास को (प्रभु सेवक की ओर इशारा करके) इस व्यवसाय का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अमेरिका भेजा। मेरी कपनी के अधिकांश हिस्से बिक चुके हैं, पर अभी रुपये नहीं वसूल हुए। इस प्रांत में अभी सम्मिलित व्यवसाय करने का दस्तूर नहीं। लोगों में विश्वास नहीं। इसलिए मैंने दस प्रति सैकड़े वसूल करके काम शुरू कर देने का निश्चय किया है। साल-दो-साल में जब आशातीत सफलता होगी और वार्षिक लाभ होने लगेगा, तो पूंजी आप-ही-आप दौड़ी आएगी। छत पर बैठा हुआ कबूतर 'आ-आ' की आवाज सुनकर सशंक हो जाता है और जमीन पर नहीं उतरता, पर थोड़ा-सा दाना बखेर दीजिए, तो तुरंत उतर आता है। मुझे पूरा विश्वास है कि पहले ही साल हमें 25 प्रति सैकड़े लाभ होगा। यह प्रॉस्पेक्टस है, इसे गौर से देखिए। मैंने लाभ का अनुमान करने में बड़ी सावधानी से काम लिया है, बढ़ भले ही जाए, कम नहीं हो सकता।

कुंवर साहब–पहले ही साल 25 प्रति सैकड़े।

जॉन सेवक–जी हां, बड़ी आसानी से। आपसे मैं हिस्से लेने के लिए विनय करता, पर जब तक एक साल का लाभ दिखा न दूं, आग्रह नहीं कर सकता। हां, इतना अवश्य निवेदन करूंगा कि उस दशा में संभव है, हिस्से बराबर पर न मिले सकें। दो सौ रु० के हिस्से शायद दो सौ रु० पर मिलें।

कुंवर साहब–मुझे अब एक ही शंका और है। यदि इस व्यवसाय में इतना लाभ हो सकता है, तो अब तक ऐसी और कंपनियां क्यों न खुलीं?

जॉन सेवक–(हंसकर) इसलिए कि अभी तक शिक्षित समाज में व्यवसाय-बुद्धि पैदा नहीं हुई। लोगों की नस-नस में गुलामी समाई हुई है। कानून और सरकारी नौकरी के सिवा और किसी ओर निगाह जाती ही नहीं। दो-चार कंपनियां खुलीं भी, किंतु उन्हें विशेषज्ञों के परामर्श और अनुभव से लाभ उठाने का अवसर न मिला। अगर मिला भी, तो बड़ा महंगा पड़ा। मशीनरी मंगाने में एक के दो देने पड़े, प्रबंध अच्छा न हो सका। विवश होकर कंपनियों को

कारोबार बंद करना पड़ा। यहां प्राय: सभी कंपनियों का यही हाल है। डाइरेक्टरों की थैलियां भरी जाती हैं, हिस्से बेचने और विज्ञापन देने में लाखों रुपये उड़ा दिए जाते हैं, बड़ी उदारता से दलालों का आदर-सत्कार किया जाता है, इमारतों में पूंजी का बड़ा भाग खर्च कर दिया जाता है, मैनेजर भी बहु-वेतन-भोगी रखा जाता है। परिणाम क्या होता है? डाइरेक्टर अपनी जेब भरते हैं, मैनेजर अपना पुरस्कार भोगता है, दलाल अपनी दलाली लेता है, मतलब यह कि सारी पूंजी ऊपर-ही-ऊपर उड़ जाती है। मेरा सिद्धांत है, कम-से-कम खर्च और ज्यादा-से-ज्यादा नफा। मैंने एक कौड़ी दलाली नहीं दी, विज्ञापनों की मद उड़ा दी। यहां तक कि मैनेजर के लिए भी केवल पांच सौ रुपया ही वेतन देना निश्चित किया है, हालांकि किसी दूसरे कारखाने में एक हजार सहज ही में मिल जाते। उस पर घर का आदमी। डाइरेक्टरों के बारे में भी मेरा यही निश्चय है कि सफर-खर्च के सिवा और कुछ न दिया जाए।

कुंवर साहब सांसारिक पुरुष न थे। उनका अधिकांश समय धर्म-ग्रंथों के पढ़ने में लगता था। वह किसी ऐसे काम में शरीक न होना चाहते थे, जो उनकी धार्मिक एकाग्रता में बाधक हो। धूर्तों ने उन्हें मानव-चरित्र का छिद्रान्वेषी बना दिया था। उन्हें किसी पर विश्वास न आता था। पाठशालाओं और अनाथालयों को चंदा देते हुए वह बहुत डरते रहते थे और बहुधा इस विषय में औचित्य की सीमा से बाहर निकल जाते थे–सुपात्रों को भी उनसे निराश होना पड़ता था। पर संयमशीलता जहां इतनी सशंक रहती है, वहां लाभ का विश्वास होने पर उचित से अधिक नि:शंक भी हो जाती है। मिस्टर जॉन सेवक का भाषण व्यावसायिक ज्ञान से परिपूर्ण था, पर कुंवर साहब पर इससे ज्यादा प्रभाव उनके व्यक्तित्व का पड़ा। उनकी दृष्टि में जॉन सेवक अब केवल धन के उपासक न थे, वरन् हितैषी मित्र थे। ऐसा आदमी उन्हें मुगालता न दे सकता था। बोले–जब आप इतनी किफायत से काम करेंगे, तो आपका उद्योग अवश्य सफल होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। आपको शायद अभी मालूम न हो, मैंने यहां एक सेवा-समिति खोल रखी है। कुछ दिनों से यही खब्त सवार है। उसमें इस समय लगभग एक सौ स्वयंसेवक हैं। मेले-ठेलों में जनता की रक्षा और सेवा करना उसका काम है। मैं चाहता हूं कि उसे आर्थिक कठिनाइयों से सदा के लिए मुक्त कर दूं। हमारे देश की सस्थाएं बहुधा धनाभाव के कारण अल्पायु होती हैं। मैं इस संस्था को सुदृढ़ बनाना चाहता हूं और मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि इससे देश का कुछ कल्याण हो। मैं किसी से इस काम में सहायता नहीं लेना चाहता। उसके निर्विघ्न संचालन के लिए एक स्थायी कोष की व्यवस्था कर देना चाहता हूं। मैं आपको अपना मित्र और हितचिंतक समझकर पूछता हूं, क्या आपके कारखाने में हिस्से ले लेने से मेरा उद्देश्य पूरा हो सकता है? आपके अनुमान में कितने रुपये लगाने से एक हजार की मासिक आमदनी हो सकती है?

जॉन सेवक की व्यावसायिक लोलुपता ने अभी उनकी सद्भावनाओं को शिथिल नहीं किया था। कुंवर साहब ने उनकी राय पर फैसला छोड़कर उन्हें दुविधा में डाल दिया। अगर उन्हें पहले से मालूम होता कि यह समस्या सामने आवेगी, तो नफे का तखमीना बताने में ज्यादा सावधान हो जाते। गैरों से चालें चलना क्षम्य समझा जाता है, लेकिन ऐसे स्वार्थ के भक्त कम मिलेंगे, जो मित्रों से दगा करें। सरल प्राणियों के सामने कपट लज्जित हो जाता है।

जॉन सेवक ऐसा उत्तर देना चाहते थे, जो स्वार्थ और आत्मा, दोनों ही को स्वीकार हो। बोले–कंपनी की जो स्थिति है, वह मैंने आपके सामने खोलकर रख दी है। संचालन-विधि भी आपसे बतला चुका हूं। मैंने सफलता के सभी साधनों पर निगाह रखी है। इस पर

भी संभव है मुझसे भूलें हो गई हों, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्य विधाता के हाथों का खिलौना-मात्र है। उसके सारे अनुमान, सारी बुद्धिमत्ता, सारी शुभ-चिंताएं नैसर्गिक शक्तियों के अधीन है। तंबाकू की उपज बढ़ाने के लिए किसानों को पेशगी रुपये देने ही पड़ेंगे। एक रात का पाला कंपनी के लिए घातक हो सकता है। जले हुए सिगरेट का टुकड़ा कारखाने को खाक में मिला सकता है। हां, मेरी परिमित बुद्धि की दौड़ जहां तक है, मैंने कोई बात बढ़ाकर नहीं कही है। आकस्मिक बाधाओं को देखते हुए आप लाभ के अनुमान में कुछ और कमी कर सकते हैं।

कुंवर साहब–आखिर कहां तक?

जॉन सेवक–बीस रुपये सैकड़े समझिए।

कुंवर साहब–और पहले वर्ष?

जॉन सेवक–कम-से-कम पंद्रह रुपये प्रति सैकड़े।

कुंवर साहब–मैं पहले वर्ष दस रुपये और उसके बाद पंद्रह रुपये प्रति सैकड़े पर संतुष्ट हो जाऊंगा।

जॉन सेवक–तो फिर मैं आपसे यही कहूंगा कि हिस्से लेने में विलंब न करें। खुदा ने चाहा, तो आपको कभी निराशा न होगी।

सौ-सौ रुपये के हिस्से थे। कुंवर साहब ने पांच सौ हिस्से लेने का वायदा किया और बोले–कल पहली किस्त के दस हजार रुपये बैंक द्वारा आपके पास भेज दूंगा।

जॉन सेवक की ऊंची-से-ऊंची उड़ान भी यहां तक न पहुंची थी, पर वह इस सफलता पर प्रसन्न न हुए। उनकी आत्मा अब भी उनका तिरस्कार कर रही थी कि तुमने एक सरल-हृदय सज्जन पुरुष को धोखा दिया। तुमने देश की व्यावसायिक उन्नति के लिए नहीं, अपने स्वार्थ के लिए यह प्रयत्न किया है। देश के सेवक बनकर तुम अपनी पांचों उंगलियां घी में रखना चाहते हो। तुम्हारा मनोवांछित उद्देश्य यही है कि नफे का बड़ा भाग किसी-न-किसी हीले से आप हज़्म करो। तुमने इस लोकोक्ति को प्रमाणित कर दिया कि 'बनिया मारे जान, चोर मारे अनजान।'

अगर कुंवर साहब के सहयोग से जनता में कंपनी की साख जम जाने का विश्वास न होता, तो मिस्टर जॉन सेवक साफ कह देते कि कंपनी इतने हिस्से आपको नहीं दे सकती। एक परोपकारी संस्था के धन को किसी संदिग्ध व्यवसाय में लगाकर उसके अस्तित्व को खतरे में डालना स्वार्थपरता के लिए भी कडुवा ग्रास था, मगर धन का देवता आत्मा का बलिदान पाए बिना प्रसन्न नहीं होता। हां, इतना अवश्य हुआ कि अब तक वह निजी स्वार्थ के लिए यह स्वांग भर रहे थे, उनकी नीयत साफ नहीं थी, लाभ को भिन्न-भिन्न नामों से अपने ही हाथ में रखना चाहते थे। अब उन्होंने निःस्पृह होकर नेकनीयती का व्यवहार करने का निश्चय किया। बोले–मैं कंपनी के संस्थापक की हैसियत से इस सहायता के लिए हृदय से आपका अनुगृहीत हूं। खुदा ने चाहा, तो आपको आज के फैसले पर कभी पछताना न पड़ेगा। अब मैं आपसे एक और प्रार्थना करता हूं। आपकी कृपा ने मुझे धृष्ट बना दिया है। मैंने कारखाने के लिए जो जमीन पसंद की है, वह पांड़ेपुर के आगे पक्की सड़क पर स्थित है। रेल का स्टेशन वहां से निकट है और आस-पास बहुत-से गांव हैं। रकबा दस बीघे का है। जमीन परती पड़ी हुई है। हां, बस्ती के जानवर उसमें चरने आया करते हैं। उसका मालिक एक

अंधा फकीर है। अगर आप उधर कभी हवा खाने गए होंगे, तो आपने उस अंधे को अवश्य देखा होगा।

*कुंवर साहब–हां–हां, अभी तो कल ही गया था, वही अंधा है न, काला–काला दुबला–*दुबला, जो सवारियों के पीछे दौड़ता है।

जॉन सेवक–जी हां, वही–वही। वह जमीन उसी की है, किंतु वह उसे किसी दाम पर नहीं छोड़ना चाहता। मैं उसे पांच हजार तक देता था, पर राजी न हुआ। वह कुछ झक्की–सा है। कहता है, मैं यहां धर्मशाला, मंदिर और तालाब बनवाऊंगा। दिन–भर भीख मांगकर तो गुजर करता है, उस पर इरादे इतने लंबे हैं। कदाचित् मुहल्ले वालों के भय से उसे कोई मामला करने का साहस नहीं होता। मैं एक निजी मामले में सरकार से सहायता लेना उचित नहीं समझता, पर ऐसी दशा में मुझे इसके सिवा दूसरा कोई उपाय भी नहीं सूझता। और, फिर यह बिलकुल निजी बात भी नहीं है। म्युनिसिपैलिटी और सरकार दोनों ही को इस कारखाने से हजारों रुपये साल की आमदनी होगी, हजारों शिक्षित और अशिक्षित मनुष्यों का उपकार होगा। इस पहलू से देखिए, तो यह सार्वजनिक काम है, और इसमें सरकार से सहायता लेने में मैं औचित्य का उल्लंघन नहीं करता। आप अगर जरा तवज्जह करें, तो बड़ी आसानी से काम निकल जाए।

कुंवर साहब–मेरा उस फकीर पर कुछ दबाव नहीं है, और होता भा, तो मैं उससे काम न लेता।

जॉन सेवक–आप राजा साहब चतारी...

कुंवर साहब–नहीं, मैं उनसे कुछ नहीं कह सकता। वह मेरे दामाद हैं, और इस विषय में मेरा उनसे कहना नीति–विरुद्ध है। क्या वह आपके हिस्सेदार नहीं हैं?

जॉन सेवक–जी नहीं, वह स्वयं अतुल संपत्ति के स्वामी होकर भी धनियों की अपेक्षा करते हैं। उनका विचार है कि कल–कारखाने पूंजी वालों का प्रभुत्व बढ़ाकर जनता का अपकार करते हैं। इन्हीं विचारों ने तो उन्हें यहां प्रधान बना दिया।

कुंवर साहब–यह तो अपना–अपना सिद्धांत है। हम द्वैध जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और मेरा विचार यह है कि जनतावाद के प्रेमी उच्च श्रेणी में जितने मिलेंगे, उतने निम्न श्रेणी में न मिल सकेंगे। खैर, आप उनसे मिलकर देखिए तो। क्या कहूं, शहर के आस–पास मेरी एक एकड़ जमीन भी नहीं है, नहीं तो आपको यह कठिनाई न होती। मेरे योग्य और जो काम हो, उसके लिए हाज़िर हूं।

जॉन सेवक–जी नहीं, मैं आपको और कष्ट देना नहीं चाहता, मैं स्वयं उनसे मिलकर तय कर लूंगा।

कुंवर साहब–अभी तो मिस सोफिया पूर्ण स्वस्थ होने तक यहीं रहेंगी न? आपको तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है?

जॉन सेवक इस विषय में सिर्फ दो–चार बातें करके यहां से विदा हुए। मिसेज सेवक फिटन पर पहले ही से आ बैठी थीं। प्रभु सेवक विनय के साथ बाग में टहल रहे थे। विनय ने आकर जॉन सेवक से हाथ मिलाया। प्रभु सेवक उनसे कल फिर मिलने का वादा करके पिता के साथ चले। रास्ते में बातें होने लगीं।

जॉन सेवक–आज एक मुलाकात में जितना काम हुआ, उतना महीनों की दौड़–धूप

से भी न हुआ था। कुंवर साहब बड़े सज्जन आदमी हैं। पचास हजार के हिस्से ले लिए। ऐसे ही दो-चार भले आदमी और मिल जाएं, तो बेड़ा पार है।

प्रभु सेवक–इस घर के सभी प्राणी दया और धर्म के पुतले हैं। मैंने विनयसिंह जैसा काव्य-मर्मज्ञ नहीं देखा। मुझे तो इनसे प्रेम हो गया।

जॉन सेवक–कुछ काम की बातचीत भी की?

प्रभु सेवक–जी नहीं, आपके नजदीक जो काम की बातचीत है, उन्हें उसमें जरा भी रुचि नहीं। वह सेवा का व्रत ले चुके हैं, और इतनी देर तक अपनी समिति की ही चर्चा करते रहे।

जॉन सेवक–क्या तुम्हें आशा है कि तुम्हारा यह परिचय चतारी के राजा साहब पर भी कुछ असर डाल सकता है? विनयसिंह राजा साहब से हमारा कुछ काम निकलवा सकते हैं।

प्रभु सेवक–उनसे कहे कौन, मुझमें तो इतनी हिम्मत नहीं। उन्हें आप स्वदेशानुरागी संन्यासी समझिए। मुझसे अपनी समिति में आने के लिए उनहोंने बहुत आग्रह किया है।

जॉन सेवक–शरीक हो गए न?

प्रभु सेवक–जी नहीं, कह आया हूं कि सोचकर उत्तर दूंगा। बिना सोचे-समझे इतना कठिन व्रत क्योंकर धारण कर लेता।

जॉन सेवक–मगर सोचने-समझने में महीनों न लगा देना। दो-चार दिन में आकर नाम लिखा लेना। तब तुम्हें उनसे कुछ काम की बात करने का अधिकार हो जाएगा। (स्त्री से) तुम्हारी रानी से कैसी निभी?

मिसेज सेवक–मुझे तो उनसे घृणा हो गई। मैंने किसी में इतना घमंड नहीं देखा।

प्रभु सेवक–मामा, आप उनके साथ घोर अन्याय कर रही हैं।

मिसेज सेवक–तुम्हारे लिए देवी होंगी, मेरे लिए तो नहीं हैं।

जॉन सेवक–यह तो मैं पहले ही समझ गया था कि तुम्हारी उनसे न पटेगी। काम की बातें न तुम्हें आती हैं, न उन्हें। तुम्हारा काम तो दूसरों में ऐब निकालना है। सोफी को क्यों नहीं लाईं?

मिसेज सेवक–वह आए भी तो, या जबरन घसीट लाती?

जॉन सेवक–आई नहीं या रानी ने आने नहीं दिया?

प्रभु सेवक–वह तो आने को तैयार थी, किंतु इसी शर्त पर कि मुझ पर कोई धार्मिक अत्याचार न किया जाए।

जॉन सेवक–इन्हें यह शर्त क्यों मंजूर होने लगी।

मिसेज सेवक–हां, इस शर्त पर मैं उसे नहीं ला सकती। वह मेरे घर रहेगी, तो मेरी बात माननी पड़ेगी।

जॉन सेवक–तुम दोनों में एक को भी बुद्धि से सरोकार नहीं। तुम सिड़ी हो, वह जिद्दी है। उसे मना-मनूकर जल्द लाना चाहिए।

प्रभु सेवक–अगर मामा अपनी बात पर अड़ी रहेंगी, तो शायद वह फिर घर न जाए।

जॉन सेवक–आखिर जाएगी कहां?

प्रभु सेवक–उसे कहीं जाने की जरूरत ही नहीं। रानी उस पर जान देती हैं।

जॉन सेवक—यह बेल मुंढ़े चढ़ने की नहीं है। दो में से एक को दबना पड़ेगा।

लोग घर पहुंचे, तो गाड़ी की आहट पाते ही ईश्वर सेवक ने बड़ी स्नेहमयी उत्सुकता से पूछा—सोफी आ गई न? आ, तुझे गले लगा लूं। ईसू तुझे अपने दामन में ले।

जॉन सेवक—पापा, वह अभी यहां आने योग्य नहीं है। बहुत अशक्त हो गई है। दो-चार दिन बाद आवेगी।

ईश्वर सेवक—गजब खुदा का। उसकी यह दशा है, और तुम सब उसे उसके हाल पर छोड़ आए। क्या तुम लोगों में जरा भी मानापमान का विचार नहीं रहा। बिलकुल खून सफेद हो गया।

मिसेज सेवक—आप जाकर उसकी खुशामद कीजिएगा, तो आवेगी। मेरे कहने से तो नहीं आई। बच्ची तो नहीं कि गोद में उठा लाती?

जॉन सेवक—पापा, वहां वह बहुत आराम से है। राजा और रानी, दोनों ही उसके साथ प्रेम करते हैं। सच पूछिए, तो रानी ही ने उसे नहीं छोड़ा।

ईश्वर सेवक—कुंवर साहब से कुछ काम की बातचीत भी हुई?

जॉन सेवक—जी हां, मुबारक हो। पचास हजार की गोटी हाथ लगी।

ईश्वर सेवक—शुक्र है, शुक्र है, ईसू, मुझ पर अपना साया कर। यह कहकर वह फिर आराम-कुरसी पर बैठ गए।

चार

चंचल-प्रकृति बालकों के लिए अंधे विनोद की वस्तु हुआ करते हैं। सूरदास को उनकी निर्दय बाल-क्रीड़ाओं से इतना कष्ट होता था कि वह मुंह-अंधेरे घर से निकल पड़ता और चिराग जलने के बाद लौटता। जिस दिन उसे जाने में देर होती, उस दिन विपत्ति में पड़ जाता था। सड़क पर, राहगीरों के सामने, उसे कोई शंका न होती थी, किंतु बस्ती की गलियों में पग-पग पर किसी दुर्घटना की शंका बनी रहती थी। कोई उसकी लाठी छीनकर भागता, कोई कहता—सूरदास, सामने गड्ढा है। बाईं तरफ हो जाओ। सूरदास बाएं घूमता, तो गड्ढे में गिर पड़ता। मगर बजरंगी का लड़का घीसू इतना दुष्ट था कि सूरदास को छेड़ने के लिए घड़ी-भर रात रहते ही उठ पड़ता। उसकी लाठी छीनकर भागने में उस बड़ा आनंद मिलता था।

एक दिन सूर्योदय के पहले सूरदास घर से चले, तो घीसू एक तंग गली में छिपा हुआ खड़ा था। सूरदास को वहां पहुंचते ही कुछ शंका हुई। वह खड़ा होकर आहट लेने लगा। घीसू अब हंसी को न रोक सका। झपटकर सूरे का डंडा पकड़ लिया। सूरदास डंडे को मजबूत पकड़े हुए था। घीसू ने पूरी शक्ति से खींचा। हाथ फिसल गया, अपने ही जोर में गिर पड़ा, सिर में चोट लगी, खून निकल आया। उसने खून देखा, तो चीखता-चिल्लाता घर पहुंचा। बजरंगी ने पूछा, क्यों रोता है रे? क्या हुआ? घीसू ने उसे कुछ जवाब न दिया। लड़के खूब जानते हैं कि किस न्यायशाला में उनकी जीत होगी। आकर मां से बोला—सूरदास ने मुझे ढकेल दिया। मां ने सिर की चोट देखी, तो आंखों में खून उतर आया।

लड़के का हाथ पकड़े हुए आकर बजरंगी के सामने खड़ी हो गई और बोली–अब इस अंधे की सामत आ गई है। लड़के को ऐसा ढकेला कि लहूलुहान हो गया। उसकी इतनी हिम्मत ! रुपये का घमंड उतार दूंगी।

बजरंगी ने शांत भाव से कहा–इसी ने कुछ छेड़ा होगा। वह बेचारा तो इससे आप अपनी जान छिपाता फिरता है।

जमुनी–इसी ने छेड़ा था, तो भी क्या उसे इतनी बेदर्दी से ढकेलना चाहिए था कि सिर फूट जाए ! अंधों को सभी लड़के छेड़ते हैं, पर वे सबसे लठियांव नहीं करते फिरते।

इतने में सूरदास भी आकर खड़ा हो गया। मुख पर ग्लानि छाई हुई थी। जमुनी लपककर उसके सामने आई और बिजली की तरह कड़ककर बोली–क्यों सूरे, सांझ होते ही रोज लुटिया लेकर दूध के लिए सिर पर सवार हो जाते हो और अभी घिसुआ ने जरा लाठी पकड़ ली, तो उसे इतनी जोर से धक्का दिया कि सिर फूट गया। जिस पत्तल में खाते हो, उसी में छेद करते हो, क्यों, रुपये का घमंड हो गया है क्या?

सूरदास–भगवान् जानते हैं, जो मैंने घीसू को पहचाना हो। समझा, कोई लौंडा होगा, लाठी को मजबूत पकड़े रहा। घीसू का हाथ फिसल गया, गिर पड़ा। मुझे मालूम होता कि घीसू है, तो लाठी उसे दे देता। इतने दिन हो गए, लेकिन कोई कह दे कि मैंने किसी लड़के को झूठ-मूठ मारा है। तुम्हारा ही दिया खाता हूं, तुम्हारे ही लड़के को मारूंगा?

जमुनी–नहीं, अब तुम्हें घमंड हुआ है। भीख मांगते हो, फिर भी लाज नहीं आती, सबकी बराबरी करने को मरते हो। आज मैं लहू का घूंट पीकर रह गई, नहीं तो जिन हाथों से तुमने उसे ढकेला है, उसमें लूका लगा देती।

बजरंगी जमुनी को मना कर रहा था, और लोग भी समझा रहे थे, लेकिन वह किसी की न सुनती थी। सूरदास अपराधियों की भांति सिर झुकाए यह वाग्बाण सह रहा था। मुंह से एक शब्द भी न निकलता था।

भैरो ताड़ी उतारने जा रहा था, रुक गया, और सूरदास पर दो-चार छींटे उड़ा दिए–जमाना ही ऐसा है, सब रोजगारों से अच्छा भीख मांगना। अभी चार दिन पहले घर में भूंजी भांग न थी, अब चार पैसे के आदमी हो गए हैं। पैसे होते हैं, तभी घमंड होता है, नहीं क्या घमंड करेंगे हम और तुम, जिसकी एक रुपया कमाई है, तो दो खर्च हैं?

जगधर औरों से तो भीगी बिल्ली बना रहता था, सूरदास को धिक्कारने के लिए वह भी निकल पड़ा। सूरदास पछता रहा था कि मैंने लाठी क्यों न छोड़ दी, कौन कहे कि दूसरी लकड़ी न मिलती। जगधर और भैरो के कटु वाक्य सुन-सुनकर वह और भी दुखी हो रहा था। अपनी दीनता पर रोना आता था। सहसा मिठुआ भी आ पहुंचा। वह भी शरारत का पुतला था, घीसू से भी दो अंगुल बढ़ा हुआ। जगधर को देखते ही यह सरस-पद गा-गाकर चिढ़ाने लगा–

लालू का लाल मुंह, जगधर का काला,
जगधर तो हो गया लालू का साला।

भैरो को भी उसने एक स्वरचित पद सुनाया–

भैरो, भैरो, ताड़ी बेच,
या बीबी की साड़ी बेच।

चिढ़ने वाले चिढ़ते क्यों हैं, इसकी मीमांसा तो मनोविज्ञान के पंडित ही कर सकते हैं। हमने साधारणतः लोगों को प्रेम और भक्ति के भाव ही से चिढ़ते देखा है। कोई राम या कृष्ण के नामों से इसलिए चिढ़ता है कि लोग उसे चिढ़ाने ही के बहाने से ईश्वर का नाम लें। कोई इसलिए चिढ़ता है कि बाल-वृंद उसे घेरे रहे। कोई बैंगन या मछली से इसलिए चिढ़ता है कि लोग इन अखाद्य वस्तुओं के प्रति घृणा करें। सारांश यह कि चिढ़ना एक दार्शनिक क्रिया है। इसका उद्देश्य केवल सत्-शिक्षा है। लेकिन भैरो और जगधर में यह भक्तिमयी उदारता कहां? वे बाल-विनोद का रस लेना क्या जानें? दोनों झल्ला उठे। जगधर मिठुआ को गालियां देने लगा, लेकिन भैरो को गालियां देने से संतोष न हुआ। उसने लपककर उसे पकड़ लिया। दो-तीन तमाचे जोर-जोर से मारे और बड़ी निठुरता से उसके कान पकड़कर खींचने लगा। मिठुआ बिलबिला उठा। सूरदास अब तक दीन भाव से सिर झुकाए खड़ा था। मिठुआ का रोना सुनते ही उसकी त्योरियां बदल गईं। चेहरा तमतमा उठा। सिर उठाकर फूटी हुई आंखों से ताकता हुआ बोला—भैरो, भला चाहते हो, तो उसे छोड़ दो, नहीं तो ठीक न होगा। उसने तुम्हें कौन-सी ऐसी गोली मार दी थी कि उसकी जान लिए लेते हो। क्या समझते हो कि उसके सिर पर कोई है ही नहीं! जब तक मैं जीता हूं, कोई उसे तिरछी निगाह से नहीं देख सकता। दिलावरी तो जब देखता कि किसी बड़े आदमी से हाथ मिलाते। इस बालक को पीट लिया, तो कौन-सी बड़ी बहादुरी दिखाई!

भैरो—मार की इतनी अखर है, तो इसे रोकते क्यों नहीं? हमको चिढ़ाएगा, तो हम पीटेंगे—एक बार नहीं, हजार बार; तुमको जो करना हो, कर लो।

जगधर—लड़के को डांटना तो दूर, ऊपर से और सह देते हो। तुम्हारा दुलारा होगा, दूसरे क्यों...

सूरदास—चुप भी रहो, आए हो वहां से न्याव करने। लड़कों को तो यह बान ही होती है, पर कोई उन्हें मार नहीं डालता। तुम्हीं लोगों को अगर किसी दूसरे लड़के ने चिढ़ाया होता, तो मुंह तक न खोलते। देखता तो हूं, जिधर से निकलते हो, लड़के तालियां बजाकर चिढ़ाते हैं, पर आंखें बंद किए अपनी राह चले जाते हो। जानते हो न कि जिन लड़कों के मां-बाप हैं, उन्हें मारेंगे, तो वे आंखें निकाल लेंगे। केले के लिए ठीकरा भी तेज होता है।

भैरो—दूसरे लड़कों की और उसकी बराबरी है? दरोगाजी की गालियां खाते हैं, तो क्या डोमड़ों की गालियां भी खाएं? अभी तो दो ही तमाचे लगाए हैं, फिर चिढ़ाए, तो उठाकर पटक दूंगा, मरे या जिए।

सूरदास—(मिट्ठू का हाथ पकड़कर) मिठुआ, चिढ़ा तो, देखूं, यह क्या करते हैं। आज जो कुछ होना होगा, यहीं हो जाएगा।

लेकिन मिठुआ के गालों में अभी तक जलन हो रही थी, मुंह भी सूज गया था, सिसकियां बंद न होती थीं। भैरो का रौद्र रूप देखा, तो रहे-सहे होश भी उड़ गए। जब बहुत बढ़ावे देने पर भी उसका मुंह न खुला, तो सूरदास ने झुंझलाकर कहा—अच्छा, मैं ही चिढ़ाता हूं, देखूं मेरा क्या बना लेते हो!

यह कहकर उसने लाठी मजबूत पकड़ ली, और बार-बार उसी पद की रट लगाने लगा मानो कोई बालक अपना सबक याद कर रहा हो—

भैरो, भैरो, ताड़ी बेच,
या बीबी की साड़ी बेच।

एक ही सांस में उसने कई बार यही रट लगाई। भैरो कहां तो क्रोध से उन्मत्त हो रहा था, कहां सूरदास का यह बाल-हठ देखकर हंस पड़ा। और लोग भी हंसने लगे। अब सूरदास को ज्ञात हुआ कि मैं कितना दीन और बेकस हूं। मेरे क्रोध का यह सम्मान है ! मैं सबल होता, तो मेरा क्रोध देखकर ये लोग थर-थर कांपने लगते, नहीं तो खड़े-खड़े हंस रहे हैं, समझते हैं कि हमारा कर ही क्या सकता है। भगवान् ने इतना अपंग न बना दिया होता, तो क्यों यह दुर्गत होती। यह सोचकर हठात् उसे रोना आ गया। बहुत जब्त करने पर भी आंसू न रुक सके।

बजरंगी ने भैरो और जगधर दोनों को धिक्कारा—क्या अंधे को हेकड़ी जताते हो ! सरम नहीं आती? एक तो लड़के का तमाचों से मुंह लाल कर दिया, उस पर और गरजते हो। वह भी तो लड़का ही है, गरीब का है, तो क्या? जितना लाड़-प्यार उसका होता है, उतना भले घरों के लड़कों का भी नहीं होता है। जैसे और सब लड़के चिढ़ाते हैं, वह भी चिढ़ाता है। इसमें इतना बिगड़ने की क्या बात है। (जमुनी की ओर देखकर) यह सब तेरे कारण हुआ। अपने लौंडे को डाटती नहीं, बेचारे अंधे पर गुस्सा उतारने चली है !

जमुनी सूरदास का रोना देखकर सहम गई थी ! जानती थी, दीन की हाय कितनी मोटी होती है। लज्जित होकर बोली—मैं क्या जानती थी कि जरा-सी बात का इतना बखेड़ा हो जाएगा। आ बेटा मिट्ठू, चल, बछवा पकड़ ले, तो दूध दुहूं।

दुलारे लड़के तिनके की मार भी नहीं सह सकते। मिट्ठू दूध की पुचकार से भी शांत न हुआ, तो जमुनी ने आकर उसके आंसू पोंछे और गोद में उठाकर घर में ले गई। उसे क्रोध जल्द आता था, पर जल्द ही पिघल भी जाती थी।

मिट्ठू तो उधर गया, भैरो और जगधर भी अपनी-अपनी राह चले, पर सूरदास सड़क की ओर न गया। अपनी झोंपड़ी में जाकर अपनी बेकसी पर रोने लगा। अपने अंधेपन पर आज उसे जितना दुःख हो रहा था, उतना और कभी न हुआ था। सोचा, मेरी यह दुर्गत इसीलिए न है कि अंधा हूं, भीख मांगता हूं। मसक्कत की कमाई खाता होता, तो मैं भी गरदन उठाकर न चलता, मेरा भी आदर-मान न होता, क्यों चिउंटी की भांति पैरों के नीचे मसला जाता ! आज भगवान् ने अपंग न बना दिया होता, तो क्या दोनों आदमी लड़के को मारकर हंसते हुए चले जाते, एक-एक की गरदन मरोड़ देता। बजरंगी से क्यों नहीं कोई बोलता ! घिसुआ ने भैरो की ताड़ी का मटका फोड़ दिया था, कई रुपये का नुकसान हुआ, लेकिन भैरो ने चूं तक न की। जगधर का उसके मारे घर से निकलना मुस्किल है। अभी दस-ही-पांच दिनों की बात है, उसका खोंचा उलट दिया था। जगधर ने चूं तक न की। जानते हैं न कि जरा भी गरम हुए कि बजरंगी ने गरदन पकड़ी। न जाने उस जनम में ऐसे कौन-से अपराध किए थे, जिसकी यह सजा मिल रही है। लेकिन भीख न मांगूं, तो खाऊं क्या। और फिर जिंदगी पेट ही पालने के लिए थोड़े ही है। कुछ आगे के लिए भी तो करना है। नहीं, इस जनम में तो अंधा हूं ही, उस जनम में इससे भी बड़ी दुर्दसा होगी। पितरों का रिन सिर पर सवार है, गयाजी में उनका सराध न किया, तो वे भी क्या समझेंगे कि मेरे बंस में कोई है ! मेरे साथ तो कुल का अंत ही है। मैं यह रिन न चुकाऊंगा, तो और कौन लड़का बैठा हुआ है, जो चुका देगा? कौन उद्दम करूं? किसी बड़े आदमी के घर पंखा खींच सकता हूं, लेकिन यह काम भी तो साल में चार ही महीने रहता है, बाकी महीने क्या करूंगा? सुनता हूं अंधे कुरसी, मोढ़े, दरी, टाट बुन सकते हैं, पर यह काम किससे सीखूं? कुछ भी हो, अब भीख न मांगूंगा।

चारों ओर से निराश होकर सूरदास के मन में विचार आया कि इस जमीन को क्यों न बेच दूं। इसके सिवा अब मुझे और कोई सहारा नहीं है। कहां तक बाप-दादों के नाम को रोऊं! साहब उसे लेने को मुंह फैलाए हुए हैं। दाम भी अच्छा दे रहे हैं। उन्हीं को दे दूं। चार-पांच हजार बहुत होते हैं। अपने घर सेठ की तरह बैठा हुआ चैन की बंसी बजाऊंगा। चार आदमी घेरे रहेंगे, मुहल्ले में अपना मान होने लगेगा। ये ही लोग, जो आज मुझे पर रोब जमा रहे हैं, मेरा मुंह जोहेंगे, मेरी खुसामद करेंगे। यही न होगा, मुहल्ले की गउएं मारी-मारी फिरेंगी, फिरें, इसको मैं क्या करूं? जब तक निभ सका, निभाया। अब नहीं निभता, तो क्या करूं? जिनकी गाएं चरती हैं, कौन मेरी बात पूछते हैं? आज कोई मेरी पीठ पर खड़ा हो जाता, तो भैरो मुझे रुलाकर यों मूंछों पर ताव देता हुआ न चला जाता। जब इतना भी नहीं है, तो मुझे क्या पड़ी है कि दूसरों के लिए मरूं? जी से जहान है, जब आबरू ही न रही, तो जीने पर धिक्कार है।

मन में यह विचार स्थिर करके सूरदास अपनी झोंपड़ी से निकला और लाठी टेकता हुआ गोदाम की तरफ चला। गोदाम के सामने पहुंचा, तो दयागिरि से भेंट हो गई। उन्होंने पूछा—इधर कहां चले सूरदास? तुम्हारी जगह तो पीछे छूट गई।

सूरदास—जरा इन्हीं मियां साहब से कुछ बातचीत करनी है।

दयागिरि—क्या इसी जमीन के बारे में?

सूरदास—हां, मेरा विचार है कि यह जमीन बेचकर कहीं तीर्थयात्रा करने चला जाऊं। इस मुहल्ले में अब निबाह नहीं है।

दयागिरि—सुना, आज भैरो तुम्हें मारने की धमकी दे रहा था।

सूरदास—मैं तरह न दे जाता, तो उसने तो मार ही दिया था। सारा मुहल्ला बैठा हंसता रहा, किसी की जबान न खुली कि अंधे-अपाहिज आदमी पर यह कुन्याव क्यों करते हो। तो जब मेरा कोई हितू नहीं है, तो मैं क्यों दूसरों के लिए मरूं?

दयागिरि—नहीं सूरे, मैं तुम्हें जमीन बेचने की सलाह न दूंगा। धर्म का फल इस जीवन में नहीं मिलता। हमें आंखें बंद करके नारायन पर भरोसा रखते हुए धर्म-मार्ग पर चलते रहना चाहिए। सच पूछो, तो आज भगवान् ने तुम्हारे धर्म की परीक्षा की है। संकट ही में धीरज और धर्म की परीक्षा होती है। देखो, गुसाईंजी ने कहा है :

'आपति-काल परखिये चारी, धीरज, धर्म मित्र अरु नारी।'

जमीन पड़ी है, पड़ी रहने दो। गउएं चरती हैं, यह कितना बड़ा पुण्य है। कौन जानता है, कभी कोई दानी, धर्मात्मा आदमी मिल जाए, और धर्मशाला, कुआं, मंदिर बनवा दे, तो मरने पर भी तुम्हारा नाम अमर हो जाएगा। रही तीर्थ-यात्रा, उसके लिए रुपये की जरूरत नहीं। साधु-संत जन्म-भर यही किया करते हैं, पर घर से रुपयों की थैली बांधकर नहीं चलते। मैं भी शिवरात्रि के बाद बद्रीनारायण जाने वाला हूं। हमारा-तुम्हारा साथ हो जाएगा। रास्ते में तुम्हारी एक कौड़ी न खर्च होगी, इसका मेरा जिम्मा है।

सूरदास—नहीं बाबा, अब यह कुन्याव नहीं सहा जाता। भाग्य में धर्म करना नहीं लिखा हुआ है, तो कैसे धर्म करूंगा। जरा इन लोगों को भी तो मालूम हो जाए कि सूरे भी कुछ है।

दयागिरि—सूरे, आंखें बंद होने पर भी कुछ नहीं सूझता। यह अहंकार है, इसे मिटाओ, नहीं तो यह जन्म भी नष्ट हो जाएगा। यही अहंकार वश पापों का मूल है—

'मैं अरु मोर तोर तैं माया, जेहि वश कीन्हें जीव निकाया।'

न यहां तुम हो, न तुम्हारी भूमि है, न तुम्हारा कोई मित्र है, न शत्रु है, जहां देखो, भगवान्-ही-भगवान् है–

'ज्ञान-मान जहं एकौ नाहीं, देखत ब्रह्म रूप सब माहीं।'

इन झगड़ों में न पड़ो।

सूरदास–बाबाजी, जब तक भगवान् की दया न होगी, भक्ति और बैराग किसी पर मन न जमेगा। इस घड़ी मेरा हृदय रो रहा है, उसमें उपदेस और ज्ञान की बातें नहीं पहुंच सकतीं। गीली लकड़ी खराद पर नहीं चढ़ती।

दयागिरि–पछताओगे और क्या।

यह कहकर दयागिरि अपनी राह चले गए। वह नित्य गंगा-स्नान को जाया करते थे।

उनके जाने के बाद सूरदास ने अपने मन में कहा–यह भी मुझी को ज्ञान का उपदेस करते हैं। दीनों पर उपदेस का भी दांव चलता है, मोटों को कोई उपदेस नहीं करता। वहां तो जाकर ठकुरसुहाती करने लगते हैं। मुझे ज्ञान सिखाने चले हैं। दोनों जून भोजन मिल जाता है न। एक दिन न मिले, तो सारा ज्ञान निकल जाए।

वेग से चलती हुई गाड़ी रुकावटों को फांद जाती है। सूरदास समझाने से और भी जिद पकड़ गया। सीधे गोदाम के बरामदे में जाकर रुका। इस समय वहां बहुत-से चमार जमा थे। खालों की खरीद हो रही थी। चौधरी ने कहा–आओ सूरदास, कैसे चले?

सूरदास इतने आदमियों के सामने अपनी इच्छा न प्रकट कर सका। संकोच ने उसकी जबान बंद कर दी। बोला–कुछ नहीं, ऐसे ही चला आया।

ताहिर–साहब इनसे पीछेवाली जमीन मांगते हैं, मुंह-मांगे दाम देने को तैयार हैं। पर यह किसी तरह राजी नहीं होते। उन्होंने खुद समझाया, मैंने कितनी मिन्नत की, लेकिन इनके दिल में कोई बात जमती ही नहीं।

लज्जा अत्यंत निर्लज्ज होती है। अंतिम काल में भी जब हम समझते हैं कि उसकी उलटी सांसें चल रही हैं, वह सहसा चैतन्य हो जाती है, और पहले से भी अधिक कर्त्तव्यशील हो जाती है। हम दुरवस्था में पड़कर किसी मित्र से सहायता की याचना करने को घर से निकलते हैं, लेकिन मित्र से आंखें चार होते ही लज्जा हमारे सामने आकर खड़ी हो जाती है और हम इधर-उधर की बातें करके लौट आते हैं। यहां तक कि हम एक शब्द भी ऐसा मुंह से नहीं निकलने देते, जिसका भाव हमारी अंतर्वेदना का द्योतक हो।

ताहिरअली की बातें सुनते ही सूरदास की लज्जा ठट्ठा मारती हुई बाहर निकल आई। बोला–मियां साहब, वह जमीन तो बाप-दादों की निसानी है, भला मैं उसे बय या पट्टा कैसे कर सकता हूं? मैंने उसे धरम काज के लिए संकल्प कर दिया है।

ताहिर–धरम काज बिना रुपये के कैसे होगा? जब रुपये मिलेंगे, तभी तो तीरथ करोगे, साधु-संतों की सेवा करोगे, मंदिर-कुंआ बनवाओगे?

चौधरी–सूरे, इस बखत अच्छे दाम मिलेंगे। हमारी सलाह तो यही है कि दे दो, तुम्हारा कोई उपकार तो उससे होता नहीं।

सूरदास–मुहल्ले-भर का गउएं चरती हैं, क्या इससे पुन्न नहीं होता? गऊ की सेवा से बढ़कर और कौन पुन्न का काम है?

ताहिर–अपना पेट पालने के लिए तो भीख मांगते फिरते हो, चले हो दूसरों के साथ

पुन्न करने। जिनकी गायें चरती हैं, वे तो तुम्हारी बात भी नहीं पूछते, एहसान मानना तो दूर रहा। इसी धरम के पीछे तुम्हारी यह दशा हो रही है, नहीं तो ठोकरें न खाते फिरते।

ताहिरअली खुद बड़े दीनदार आदमी थे, पर अन्य धर्मों की अवहेलना करने में उन्हें संकोच न होता था। वास्तव में वह इस्लाम के सिवा और किसी धर्म को धर्म ही नहीं समझते थे।

सूरदास ने उत्तेजित होकर कहा—मियां साहब, धरम एहसान के लिए नहीं किया जाता। नेकी करके दरिया में डाल देनी चाहिए।

ताहिर—पछताओगे और क्या। साहब से जो कुछ कहोगे, वही करेंगे। तुम्हारे लिए घर बनवा देंगे, महावर गुजारा देंगे, मिठुआ को किसी मदरसे में पढ़ने को भेज देंगे, उसे नौकर रखा देंगे, तुम्हारी आंखों की दवा करा देंगे, मुमकिन है, सूझने लगे। आदमी बन जाओगे, नहीं तो धक्के खाते रहोगे।

सूरदास पर और किसी प्रलोभन का असर तो न हुआ, हां, दृष्टि-लाभ की संभावना ने जरा नरम कर दिया। बोला—क्या जनम से अंधों की दवा भी हो सकती है?

ताहिर—तुम जनम के अंधे हो क्या? तब तो मजबूरी है। लेकिन वह तुम्हारे आराम के इतने सामान कर देंगे कि तुम्हें आंखों की जरूरत ही न रहेगी।

सूरदास—साहब, बड़ी नामूसी होगी। लोग चारों ओर से धिक्कारने लगेंगे।

चौधरी—तुम्हारी जायदाद है, बय करो, चाहे पट्टा लिखो, किसी दूसरे को दखल देने की क्या मजाज है।

सूरदास—बाप-दादों का नाम तो नहीं डुबाया जा जाता।

मूर्खों के पास युक्तियां नहीं होतीं, युक्तियों का उत्तर वे हठ से देते हैं। युक्ति कायल हो सकती है, नरम हो सकती है, भ्रांत हो सकती है, हठ को कौन कायल करेगा?

सूरदास की जिद से ताहिरअली को क्रोध आ गया। बोले—तुम्हारी तकदीर में भीख मांगना लिखा है, तो कोई क्या कर सकता है। इन बड़े आदमियों से अभी पाला नहीं पड़ा है। अभी तुम्हारी खुशामद कर रहे हैं, मुआवजा देने पर तैयार हैं, लेकिन तुम्हारा मिजाज नहीं मिलता, और वही जब कानूनी दांव-पेंच खेलकर जमीन पर कब्जा कर लेंगे, दो-चार सौ रुपये बरायनाम मुआवजा दे देंगे, तो सीधे हो जाओगे। मुहल्लेवालों पर भूले बैठे हो। पर देख लेना, जो कोई पास भी फटके। साहब यह जमीन लेंगे जरूर, चाहे खुशी से दो, चाहे रोकर दो।

सूरदास ने गर्व से कहा—खां साहब, अगर जमीन जाएगी, तो इसके साथ मेरी जान भी जाएगी।

यह कहकर उसने लकड़ी संभाली और अपन अड्डे पर आ बैठा।

उधर दयागिरि ने जाकर नायकराम से यह समाचार कहा। बजरंगी भी बैठा था। यह ख़बर सुनते ही दोनों के होश उड़ गए। सूरदास के बल पर दोनों उछलते रहे, उस दिन ताहिरअली से कैसी बातें कीं, और आज सूरदास ही ने धोखा दिया। बजरंगी ने चिंतित होकर कहा—अब क्या करना होगा पंडाजी, बताओ?

नायकराम—करना क्या होगा, जैसा किया है, वैसा भोगना होगा। जाकर अपनी घरवाली से पूछो। उसी ने आज आग लगाई थी। जानते तो हो कि सूरे मिठुआ पर जान देता है, फिर क्यों भैरो की मरम्मत नहीं की। मैं होता, तो कभी भैरो को दो-चार खरी-खोटी सुनाये बिना न जाने

देता, और नहीं तो दिखावे के लिए सही। उस बेचारे को भी मालूम हो जाता कि मेरी पीठ पर है कोई। आज उसे बड़ा रंज हुआ है, नहीं तो जमीन बेचने का उसको कभी ध्यान भी न आया था।

बजरंगी—अरे, तो अब कोई उपाय निकालोगे या बैठकर पिछली बातों के नाम को रोएं।

नायकराम—उपाय यही है कि आज सूरे आए, तो चलकर उसके पैरों पर गिरो, उसे दिलासा दो, जैसे राजी हो, वैसे राजी करो, दादा-भैया करो, मान जाए तो अच्छा, नहीं तो साहब से लड़ने के लिए तैयार हो जाओ, उनका कब्जा न होने दो, जो कोई जमीन के पास आए, मारकर भगा दो। मैंने तो यही सोच रखा है। आज सूरे को अपने हाथ से बना के दूधिया पिलाऊंगा और मिठुआ को भर-पेट मिठाइयां खिलाऊंगा। जब न मानेगा, तो देखी जाएगी।

बजरंगी—जरा मियां साहब के पास क्यों नहीं चले चलते? सूरदास ने उनसे न जाने क्या-क्या बातें की हों। कहीं लिखा-पढ़ी कराने को कह आया हो, तो फिर चाहे कितनी ही आरजू-बिनती करोगे, कभी अपनी बात न पलटेगा।

नायकराम—मैं उस मुंसी के द्वार पर न जाऊंगा। उसका मिजाज और भी आसमान पर चढ़ जाएगा।

बजरंगी—नहीं पंडाजी, मेरी खातिर से जरा चले चलो।

नायकराम आखिर राजी हुए। दोनों आदमी ताहिरअली के पास पहुंचे। वहां इस वक्त सन्नाटा था। खरीद का काम हो चुका था। चमार चले गए थे। ताहिरअली अकेले बैठे हुए हिसाब-किताब लिख रहे थे। मीजान में कुछ फर्क पड़ता था। बार-बार जोड़ते थे। पर भूल पर निगाह न पहुंचती थी। सहसा नायकराम ने कहा—कहिए मुंसीजी, आज सूरे से क्या बातचीत हुई?

ताहिर—अहा, आइए पंडाजी, मुआफ कीजिएगा, मैं जरा मीजान लगाने में मसरूफ था, इस मोढ़े पर बैठिए। सूरे से कोई बात तय न होगी। उसकी तो शामतें आई हैं। आज तो धमकी देकर गया है कि जमीन के साथ मेरी जान भी जाएगी। गरीब आदमी है, मुझे उस पर तरस आता है। आखिर यही होगा कि साहब किसी कानून की रू से जमीन पर काबिज हो जाएंगे। कुछ मुआवजा मिला तो मिला, नहीं तो उसकी भी उम्मीद नहीं।

नायकराम—जब सूरे राजी नहीं है, तो साहब क्या खाके यह जमीन ले लेंगे। देख बजरंगी, हुई न वही बात, सूरे ऐसा कच्चा आदमी नहीं है।

ताहिर—साहब को अभी आप जानते नहीं हैं।

नायकराम—मैं साहब और साहब के बाप, दोनों को अच्छी तरह जानता हूं। हाकिमों की खुसामद की बदौलत आज बड़े आदमी बने फिरते हैं।

ताहिर—खुशामद ही का तो आजकल जमाना है। वह अब इस जमीन को लिए बगैर न मानेंगे।

नायकराम—तो इधर भी यही तय है कि जमीन पर किसी का कब्जा न होने देंगे, चाहे जान रहे या जाए। इसके लिए मर मिटेंगे। हमारे हजारों जात्री आते हैं। इसी खेत में सबको टिका देता हूं। जमीन निकल गई, तो क्या जात्रियों को अपने सिर पर ठहराऊंगा? आप साहब से कह दीजिएगा, यहां उनकी दाल न गलेगी। यहां भी कुछ दम रखते हैं। बारहों मास खुले-खजाने

जुआ खेलते हैं। एक-एक दिन में हजारों के वारे-न्यारे हो जाते हैं। थानेदार से लेकर सुपरीडंट तक जानते हैं, पर मजाल क्या कि कोई दौड़ लेकर आए। खून तक छिपा डाले हैं।

ताहिर--तो आप ये सब बातें मुझसे क्यों कहते हैं, क्या मैं जानता नहीं हूं? आपने सैयद रजाअली थानेदार का नाम तो सुना ही होगा, मैं उन्हीं का लड़का हूं। यहां कौन पंडा है, जिसे मैं नहीं जानता।

नायकराम--लीजिए, घर ही बैद, तो मरिए क्यों? फिर तो आप अपने घर ही के आदमी हैं। दरोगाजी की तरह भला क्या कोई अफसर होगा। कहते थे, बेटा, जो चाहे करो, लेकिन मेरे पंजे में न आना। मेरे द्वार पर फड़ जमती थी, वह कुर्सी पर बैठे देखा करते थे। बिलकुल घरांव हो गया था। कोई बात बनी-बिगड़ी, जाके सारी कथा सुना देता था। पीठ पर हाथ फेरकर कहते · बस जाओ, अब हम देख लेंगे। ऐसे आदमी अब कहां? सतजुगी लोग थे। आप तो अपने भाई ही ठहरे, साहब को धता क्यों नहीं बताते? आपको भगवान् ने विद्या-बुद्धि दी है, बीसों बहाने निकाल सकते हैं। बरसात में पानी जमता है, दीमक बहुत है, लोनी लगेगी, ऐसे ही और कितने बहाने हैं।

ताहिर--पंडाजी, जब आपसे भाईचारा हो गया, तो क्या परदा है। साहब पल्ले सिरे का घाघ है। हाकिमों से उसका बड़ा मेल-जोल है। मुफ्त में जमीन ले लेगा। सूरे को तो चाहे सौ-दो सौ मिल भी रहें, पर मेरा इनाम-इकराम गायब हो जाएगा। आप सूरे से मुआमला तय करा दीजिए, तो उसका भी फायदा हो, मेरा भी फायदा हो और आपका भी फायदा हो।

नायकराम--आपको वहां जो इनाम-अकराम मिलने वाला हो, वह हमीं लोगों से ले लीजिए। इसी बहाने कुछ आपकी खिदमत करेंगे। मैं तो दरोगाजी को जैसा समझता था, वैसा ही आपको समझता हूं।

ताहिर--मुआजल्लाह, पंडाजी, ऐसी बात न कहिए। मैं मालिक की निगाह बचाकर एक कौड़ी लेना भी हराम समझता हूं। वह अपनी खुशी से जो कुछ दे देंगे, हाथ फैलाकर ले लूंगा, पर उनसे छिपाकर नहीं। खुदा उस रास्ते से बचाए। वालिद ने इतना कमाया, पर मरते वक्त घर में एक कौड़ी कफन को भी न थी।

नायकराम--अरे यार, मैं तुम्हें रुसवत थोड़े ही देने को कहता हूं। जब हमारा-आपका भाईचारा हो गया, तो हमारा काम आपसे निकलेगा, आपका काम हमसे। यह कोई रुसवत नहीं है।

ताहिर--नहीं पंडाजी, खुदा मेरी नीयत को पाक रखे, मुझसे नमकहरामी न होगी। मैं जिस हाल में हूं उसी में खुश हूं। जब उसके करम की निगाह होगी, तो मेरी भलाई की कोई सूरत निकल ही आएगी।

नायकराम--सुनते हो बजरंगी, दारोगाजी की बातें। चलो, चुपके से घर बैठो, जो कुछ आगे आयगी, देखी जाएगी। अब तो साहब ही से निबटना है।

बजरंगी के विचार में नायकराम ने उतनी मिन्नत-समाजत न की थी, जितनी करनी चाहिए थी। आए थे अपना काम निकालने कि हेकड़ी दिखाने। दीनता से जो काम निकल जाता हैं, वह डींग मारने से नहीं निकलता। नायकराम ने तो लाठी कंधे पर रखी, और चले। बजरंगी ने कहा--मैं जरा गोरुओं को देखने जाता हूं, उधर से होता हुआ आऊंगा। यों बड़ा अक्खड़ आदमी था, नाक पर मक्खी न बैठने देता। सारा मुहल्ला उसके क्रोध से कांपता था, लेकिन कानूनी

कार्रवाइयों से डरता था। पुलिस और अदालत के नाम ही से उसके प्राण सूखे जाते थे। नायकराम को नित्य ही अदालत से काम रहता था, वह इस विषय में अभ्यस्त थे। बजरंगी को अपनी जिंदगी में कभी गवाही देने की भी नौबत न आई थी। नायकराम के चले आने के बाद ताहिरअली भी घर चले गए, पर बजरंगी वहीं आस-पास टहलता रहा कि वह बाहर निकलें, तो अपना दुखड़ा सुनाऊं।

ताहिरअली के पिता पुलिस-विभाग में कांस्टेबिल से थानेदार के पद तक पहुंचे थे। मरते समय कोई जायदाद तो न छोड़ी, यहां तक कि उनकी अंतिम क्रिया कर्ज से की गई, लेकिन ताहिरअली के सिर पर दो विधवाओं और उनकी संतानों का भार छोड़ गए। उन्होंने तीन शादियां की थीं। पहली स्त्री से ताहिरअली थे, दूसरी से माहिरअली और जाहिरअली, और तीसरी से जाबिरअली। ताहिरअली धैर्यशील और विवेकी मनुष्य थे। पिता का देहांत होने पर साल-भर तक तो रोजगार की तलाश में मारे-मारे फिरे। फिर कहीं मवेशीखाने का मुहर्रिरी मिल गई, कहीं दवा बेचने वाले के एजेंट हो गए, कहीं चुंगी-घर के मुंशी का पद मिल गया। इधर कुछ समय से मिस्टर जॉन सेवक के यहां स्थायी रूप से नौकर हो गए थे। उनके आचार-विचार अपने पिता से बिलकुल निराले थे। रोजा-नमाज के पाबंद और नीयत के साफ थे। हराम की कमाई से कोसों भागते थे। उनकी मां तो मर चुकी थीं, पर दोनों विमाताएं जीवित थीं। विवाह भी हो चुका था, स्त्री के अतिरिक्त एक लड़का था—साबिरअली और एक लड़की—नसीमा। इतना बड़ा कुटुंब था और 30 रुपये मासिक आय ! इस मंहगी के समय में, जब कि ईससे पंचगुनी आमदनी में भी सुचारु रूप से निर्वाह नहीं होता, उनको बहुत कष्ट झेलने पड़ते थे, पर नीयत खोटी न होती थी। ईश्वर-भीरुता उनके चरित्र का प्रधान गुण थी। घर में पहुंचे, तो माहिरअली बैठा पढ़ रहा था, जाहिर और जाबिर मिठाई के लिए रो रहे थे, और साबिर आंगन में उछल-उछलकर बाजरे की रोटियां खा रहा था। ताहिरअली तख्त पर बैठ गए और दोनों छोटे भाइयों को गोद में उठाकर चुप कराने लगे। उनकी बड़ी विमाता ने, जिसका नाम जैनब था, द्वार पर खड़ी होकर नायकराम और बजरंगी की बातें सुनी थीं। बजरंगी दस ही पांच कदम चला था कि माहिरअली ने पुकारा—सुनो जी, ओ आदमी ! जरा यहां आना, तुम्हें अम्मां बुला रही हैं।

बजरंगी लौट पड़ा, कुछ आस बंधी। आकर फिर बरामदे में खड़ा हो गया। जैनब टाट के परदे की आड़ में खड़ी थीं, पूछा—क्या बात थी जी?

बजरंगी—वही जमीन की बातचीत थी। साहब इसे लेने कहते हैं। हमारा गुजर-बसर इसी जमीन से होता है ! मुंसीजी से कह रहा हूं, किसी तरह इस झगड़े को मिटा दीजिए। नजर-नियाज देने को भी तैयार हूं, मुदा मुंसीजी सुनते ही नहीं।

जैनब—सुनेंगे क्यों नहीं, सुनेंगे नहीं तो गरीबों की हाय किस पर पड़ेगी? तुम भी तो गंवार आदमी हो, उनसे क्या कहने गए? ऐसी बातें मरदों से कहने की थोड़ी ही होती हैं। हमसे कहते, हम तय करा देते।

जाबिर की मां का नाम था रकिया। वह भी आकर खड़ी हो गईं। दोनों महिलाएं साये की तरह साथ-साथ रहती थीं। दोनों के भाव एक, दिल एक, विचार एक, सौतिन का जलापा नाम को भी न था। बहनों का-सा प्रेम था। बोली—और क्या, भला ऐसी बातें मरदों से की जाती हैं?

बजरंगी–माताजी, मैं गंवार आदमी, इसका हाल क्या जानूं। अब आप ही तय करा दीजिए। गरीब आदमी हूं, बाल-बच्चे जिएंगे।

जैनब–सच-सच कहना, यह मुआमला दब जाए, तो कहां तक दोगे?

बजरंगी–बेगम साहब, पचास रुपये तक देने को तैयार हूं।

जैनब–तुम भी तो गजब करते हो, पचास रुपये ही में इतना बड़ा काम निकालना चाहते हो?

रकिया–(धीरे से) बहन, कहीं बिदक न जाए।

बजरंगी–क्या करूं, बेगम साहब, गरीब आदमी हूं। लड़कों को दूध-दही जो कुछ हुकुम होगा, खिलाता रहूंगा, लेकिन नगद तो इससे ज्यादा मेरा किया न होगा।

रकिया–अच्छा, तो रुपयों का इंतजाम करो। खुदा ने चाहा, तो सब तय हो जाएगा।

जैनब–(धीरे से) रकिया, तुम्हारी जल्दबाजी से मैं आजिज हूं।

बजरंगी–मांजी, यह काम हो गया, तो सारा मुहल्ला आपका जस गायगा।

जैनब–मगर तुम तो पचास रुपये से आगे बढ़ने का नाम ही नहीं लेते। इतने तो साहब ही दे देंगे, फिर गुनाह बेलज्जत क्यों किया जाए।

बजरंगी–मांजी, आपसे बाहर थोड़े ही हूं। दस-पांच रुपये और जुटा दूंगा।

जैनब–तो कब तक रुपये आ जाएंगे?

बजरंगी–बस, दो दिन तक की मोहलत मिल जाए। तब तक मुंसीजी से कह दीजिए साहब से कहें-सुनें।

जैनब–वाह महतो, तुम तो बड़े होशियार निकले। सेंत ही में काम निकालना चाहते हो। पहले रुपये लाओ, फिर तुम्हारा काम न हो, तो हमारा जिम्मा।

बजरंगी दूसरे दिन आने का वादा करके खुश-खुश चला गया, तो जैनब ने रकिया से कहा–तुम बेसब्र हो जाती हो। अभी चमारों से दो पैसे फी खाल लेने पर तैयार हो गईं। मैं दो आने लेती, और वे खुशी से देते। यही अहीर पूरे सौ गिनकर जाता। बेसब्री से गरजमंद चौकन्ना हो जाता है। समझता है, शायद हमको बेवकूफ बना रही हैं, जितनी ही देर लगाओ, जितना ही बेरुखी से काम लो, उतना ही एतबार बढ़ता है।

रकिया–क्या करूं बहन, मैं डरती हूं कि कहीं बहुत सख्ती से निशाना खता न कर जाए।

जैनब–वह अहीर रुपये जरूर लाएगा। ताहिर को आज ही से भरना शुरू कर दो। बस, अजाब का खौफ दिलाना चाहिए। उन्हें हत्थे चढ़ाने का यही ढंग है।

रकिया–और कहीं साहब न मानें, तो?

जैनब–और कौन हमारे ऊपर कोई नालिश करने जाता है।

ताहिरअली खाना खाकर लेटे थे कि जैनब ने जाकर कहा–साहब दूसरों की जमीन क्यों लिए लेते हैं? बेचारे रोते फिरते हैं।

ताहिर–मुफ्त थोड़े ही लेना चाहते हैं! उसका माकूल मुआवजा देने पर तैयार हैं।

जैनब–यह तो गरीबों पर जुल्म है।

रकिया–जुल्म ही नहीं है, अजाब है। भैया, तुम साहब से साफ-साफ कह दो, मुझे इस अजाब में न डालिए। खुदा ने मेरे आगे भी बाल-बच्चे दिए हैं, न जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े, मैं यह अजाब सिर पर न लूंगा।

जैनब–गंवार तो हैं ही, तुम्हारे ही सिर हो जाएं। तुम्हें साफ कह देना चाहिए कि मैं मुहल्ले वालों से दुश्मनी न मोल लूंगा, जान-जोखिम की बात है।

रकिया–जान-जोखिम तो है ही, ये गंवार किसी के नहीं होते।

ताहिर–क्या आपने भी कुछ अफवाह सुनी है?

रकिया–हां, ये सब चमार आपस में बातें करते जा रहे थे कि साहब न जमीन ली, तो खून की नदी बह जाएगी। मैंने तो जब से सुना है, होश उड़े हुए हैं।

जैनब–होश उड़ने की बात ही है।

ताहिर–मुझे ये सब नाहक बदनाम कर रहे हैं। मैं लेने में, न देने में। साहब ने उस अंधे से जमीन की निस्बत बातचीत करने का हुक्म दिया था। मैंने हुक्म की तामील की, जो मेरा फर्ज था, लेकिन ये अहमक यही समझ रहे हैं कि मैंने ही साहब को इस जमीन की खरीददारी पर आमादा किया है, हालांकि खुदा जानता है, मैंने कभी उनसे इसका जिक्र ही नहीं किया।

जैनब–मुझे बदनामी का खौफ तो नहीं है, हां खुदा के कहर से डरती हूं। बेकसों की आह क्यों सिर पर लो?

ताहिर–मेरे ऊपर क्यों अजाब पड़ने लगा?

जैनब–और किसके ऊपर पड़ेगा बेटा? यहां तो तुम्हीं हो, साहब तो नहीं बैठे हैं। वह तो भुस में आग लगाकर दूर से तमाशा देखेंगे, आई-गई तो तुम्हारे सिर जाएगी। इस पर कब्ज़ा तुम्हें करना पड़ेगा। मुकदमे चलेंगे, तो पैरवी तुम्हें करनी पड़ेगी। ना भैया, मैं इस आग में नहीं कूदना चाहती।

रकिया–मेरे मैके में एक कारिंदे ने किसी काश्तकार की जमीन निकाल ली थी। दूसरे की दिन जवान बेटा उठ गया। किया उसने जमींदार ही के हुक्म से, मगर बला आई उस गरीब के सिर। दौलत वालों पर अजाब भी नहीं पड़ता। उसका वार भी गरीबों पर ही पड़ता है। हमारे बच्चे रोज ही नजर और आसेब की चपेट में आते रहते हैं, पर आज तक कभी नहीं सुना कि किसी अंगरेज के बच्चे को नजर लगी हो। उन पर बलैयात का असर ही नहीं होता।

यह पते की बात थी। ताहिरअली को भी इसका तजुर्बा था। उनके घर के सभी बच्चे गंडों और तावीजों से मढ़े हुए थे, उस पर भी आए दिन झाड़-फूंक और राई-नोन की जरूरत पड़ा ही करती थी।

धर्म का मुख्य स्तंभ भय है। अनिष्ट की शंका को दूर कीजिए, फिर तीर्थ-यात्रा, पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, रोजा-नमाज, किसी का निशान भी न रहेगा। मसजिदें खाली नजर आयंगी, और मंदिर वीरान।

ताहिरअली को भय ने परास्त कर दिया। स्वामिभक्ति और कर्त्तव्य-पालन का भाव ईश्वरीय कोप का प्रतिकार न कर सका।

पांच

चतारी के राजा महेन्द्रकुमारसिंह यौवनावस्था ही में अपनी कार्य-दक्षता और वंश प्रतिष्ठा के कारण म्युनिसिपैलिटी के प्रधान निर्वाचित हो गए थे। विचारशीलता उनके चरित्र का दिव्य गुण थी। रईसों की विलास-लोलुपता और सम्मान-प्रेम का उनके स्वभाव में लेश भी न था। बहुत ही सादे वस्त्र पहनते, ठाठ-बाट से घृणा थी और व्यसन तो उन्हें छू तक न गया था। घुड़दौड़, सिनेमा, थिएटर, राग-रंग, सैर और शिकार, शतरंज या ताशबाजी से उन्हें कोई प्रयोजन न था। हां, अगर कुछ प्रेम था, तो उद्यान-सेवा से। वह नित्य घंटे-दो-घंटे अपनी वाटिका में काम किया करते थे। बस शेष समय नगर के निरीक्षण और नगर-संस्था के संचालन में व्यतीत करते थे। राज्याधिकारियों से वह बिला जरूरत बहुत कम मिलते थे। उनके प्रधानत्व में शहर के केवल उन्हीं भागों को सबसे अधिक महत्व न दिया जाता था, जहां हाकिमों के बंगले थे, नगर की अंधेरी गलियों और दुर्गंधमय परनालों की सफाई सुविस्तृत सड़कों और सुरम्य विनोद-स्थान की सफाई से कम आवश्यक न समझी जाती थी। इसी कारण हुक्काम उनसे खिंचे रहते थे, उन्हें दंभी और अभिमानी समझते थे। किंतु नगर के छोटे से छोटे मनुष्य को भी उनसे अभिमान या अविनय की शिकायत न थी। हर समय हर एक प्राणी से प्रसन्न-मुख मिलते थे। नियमों का उल्लंघन करने के लिए उन्हें जनता पर जुर्माना करने या अभियोग चलाने की बहुत कम जरूरत पड़ती थी। उनका प्रभाव और सद्भाव कठोर नीति को दबाए रखता था। वह अत्यंत मितभाषी थी। वृद्धावस्था में मौन विचार-प्रौढ़ता द्योतक होता है, और युवावस्था में विचार-दारिद्रय का, लेकिन राजा साहब का वाक्-संयम इस धारणा को असत्य सिद्ध करता था। उनके मुंह से जो बात निकलती थी, विवेक और विचार से परिष्कृत होती थी। एक ऐश्वर्ययशाली ताल्लुकेदार होने पर भी उनकी प्रवृत्ति साम्यवाद की ओर थी। संभव है, यह उनके राजनीतिक सिद्धांतों का फल हो, क्योंकि उनकी शिक्षा, उनका प्रभुत्व, उनकी परिस्थिति, उनका स्वार्थ, सब इस प्रवृत्ति के प्रतिकूल था, पर संयम और अभ्यास ने अब इसे उनके विचार-क्षेत्र से निकालकर उनके स्वभाव के अंतर्गत कर दिया था। नगर के निर्वाचन-क्षेत्रों के परिमार्जन में उन्होंने प्रमुख भाग लिया था, इसलिए शहर के अन्य रईस उनसे सावधान रहते थे, उनके विचार में राजा साहब का जनतावाद केवल उनकी अधिकार-रक्षा का साधन था। वह चिरकाल तक इस सम्मान्य पद का उपभोग करने के लिए यह आवरण धारण किए हुए थे। पत्रों में भी कभी-कभी इस पर टीकाएं होती रहती थीं, किंतु राजा साहब इनका प्रतिवाद करने में अपनी बुद्धि और समय का अपव्यय न करते थे। यशस्वी बनना उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था। पर वह खूब जानते थे कि इस महान् पद पर पहुंचने के लिए सेवा—और निःस्वार्थ सेवा—के सिवा और कोई मार्ग नहीं है।

प्रातःकाल था। राजा साहब स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर नगर का निरीक्षण करने जा ही रहे थे कि इतने में मिस्टर जॉन सेवक का मुलाकाती कार्ड पहुंचा। जॉन सेवक का राज्याधिकारियों से ज्यादा मेल-जोल था, उनकी सिगरेट कंपनी के हिस्सेदार भी अधिकांश अधिकारी लोग थे। राजा साहब ने कंपनी की नियमावली देखी थी, पर जॉन सेवक से उनकी कभी भेंट न हुई थी। दोनों को एक-दूसरे पर वह अविश्वास था, जिसका आधार अफवाहों पर होता है। राजा साहब उन्हें खुशामदी और समय-सेवी समझते थे। जॉन सेवक को वह एक रहस्य प्रतीत होते थे। किंतु राजा साहब कल इन्दु से मिलने गए थे। वहां सोफिया से उनकी

भेंट हो गई थी। जॉन सेवक की कुछ चर्चा आ गई थी। उस समय से मि॰ सेवक के विषय में उनकी धारणा बहुत कुछ परिवर्तित हो गई थी। कार्ड पाते ही बाहर निकल आए और जॉन सेवक से हाथ मिलाकर अपने दीवानखाने में ले गए। जॉन सेवक को वह किसी योगी की कुटी-सा मालूम हुआ, जहां अलंकार और सजावट का नाम भी न था। चंद कुर्सियों और एक मेज के सिवा वहां और कोई सामान न था। हां, कागजों और समाचार-पत्रों का एक ढेर मेज पर तितर-बितर पड़ा हुआ था।

हम किसी से मिलते ही अपनी सूक्ष्म बुद्धि से जान जाते हैं कि हमारे विषय में उसके क्या भाव हैं। मि॰ सेवक को एक क्षण तक मुंह खोलने का साहस न हुआ, कोई समयोचित भूमिका न सूझती थी। एक पृथ्वी से और दूसरा आकाश से इस अगम्य सागर को पार करने की सहायता मांग रहा था। राजा साहब को भूमिका तो सूझ गई थी—सोफी के देवोपम त्याग और सेवा की प्रशंसा से बढ़कर और कौन-सी भूमिका होती—किंतु कतिपय मनुष्यों को अपनी प्रशंसा सुनने से जितना संकोच होता है, उतना ही किसी दूसरे की प्रशंसा करने से होता है। जॉन सेवक में यह संकोच न था। वह निंदा और प्रशंसा दोनों ही के करने में समान रूप से कुशल थे। बोले—आपके दर्शनों की बहुत दिनों से इच्छा थी, लेकिन परिचय न होने के कारण न आ सकता था। और साफ बात तो यह है कि (मुस्कराकर) आपके विषय में अधिकारियों के मुख से ऐसी-ऐसी बातें सुनता था, जो इस इच्छा को व्यक्त न होने देती थीं। लेकिन आपने निर्वाचन-क्षेत्रों को सुगम बनाने में जिस विशुद्ध देश-प्रेम का परिचय दिया है, उसने हाकिमों के मिथ्याक्षेपों की कलई खोल दी है।

अधिकारीवर्ग के मिथ्याक्षेपों की चर्चा करके जॉन सेवक ने अपने वाक्-चातुर्य को सिद्ध कर दिया। राजा साहब की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए इससे सुलभ और कोई उपाय न था। राजा साहब को अधिकारियों से यही शिकायत थी, इसी के कारण उन्हें अपने कार्यों के संपादन में कठिनाई पड़ती थी, विलंब होता था, बाधाएं उपस्थित होती थीं। बोले—यह मेरा दुर्भाग्य है कि हुक्काम मुझ पर इतना अविश्वास करते हैं। मेरा अगर कोई अपराध है, तो इतना ही कि मैं जनता के लिए भी स्वास्थ्य और सुविधाओं को उतना ही आवश्यक समझता हूं, जितना हुक्काम और रईसों के लिए।

मिस्टर सेवक—महाशय, इन लोगों के दिमाग की कुछ न पूछिए। संसार इनके उपभोग के लिए है। और किसी को इसमें जीवित रहने का भी अधिकार नहीं है। जो प्राणी इनके द्वार पर अपना मस्तक न घिसे, वह अपवादी है, अशिष्ट है, राजद्रोही है; और जिस प्राणी में राष्ट्रीयता का लेश-मात्र भी आभास हो—विशेषत: वह, जो यहां के कला-कौशल और व्यवसाय को पुनर्जीवित करना चाहता हो, दंडनीय है। राष्ट्र-सेवा इनकी दृष्टि में सबसे अधम पाप है। आपने मेरे सिगरेट के कारखाने की नियमावली तो देखी होगी?

महेन्द्र—जी हां, देखी थी।

जॉन सेवक—नियमावली का निकलना कहिए कि एक सिरे से अधिकारी वर्ग की निगाहें मुझसे फिर गईं। मैं उनका कृपा-भाजन था, कितने ही अधिकारियों से मेरी मैत्री थी। किंतु उसी दिन से मैं उनकी बिरादरी से टाट-बाहर कर दिया गया, मेरा हुक्का-पानी बंद हो गया। उनकी देखा-देखी हिन्दुस्तानी हुक्काम और रईसों ने भी आनाकानी शुरू की। अब मैं उन लोगों की दृष्टि में शैतान से भी ज्यादा भयंकर हूं।

इतनी लंबी भूमिका के बाद जॉन सेवक अपने मतलब पर आए। बहुत सकुचाते हुए अपना उद्देश्य प्रकट किया। राजा साहब मानव-चरित्र के ज्ञाता थे, बने हुए तिलकधारियों को खूब पहचानते थे। उन्हें मुगालता देना आसान न था। किंतु समस्या ऐसी आ पड़ी थी कि उन्हें अपनी धर्म-रक्षा के हेतु अविचार की शरण लेनी पड़ी। किसी दूसरे अवसर पर वह इस प्रस्ताव की ओर आंख उठाकर भी न देखते। एक दीन-दुर्बल अंधे की भूमि को, जो उसके जीवन का एकमात्र आधार हो, उसके कब्जे से निकालकर एक व्यवसायी को दे देना उनके सिद्धांत के विरुद्ध था। पर आज पहली बार उन्हें अपने नियम को ताक पर रखना पड़ा। यह जानते हुए कि मिस सोफिया ने उनके एक निकटतम संबंधी की प्राण-रक्षा की है, यह जानते हुए कि जॉन सेवक के साथ सद्व्यवहार करना कुंवर भरतसिंह को एक भारी ऋण से मुक्त कर देगा, वह इस प्रस्ताव की अवहेलना न कर सकते थे। कृतज्ञता हमसे वह सब कुछ करा लेती है, जो नियम की दृष्टि में त्याज्य है। यह वह चक्की है, जो हमारे सिद्धांतों और नियमों को कुचल डालती है। आदमी जितना ही निःस्पृह होता है, उपकार का बोझ उसे उतना ही असह्य होता है। राजा साहब ने इस मामले को जॉन सेवक के इच्छानुसार तय कर देने का वचन दिया, और मिस्टर सेवक अपनी सफलता पर फूले हुए घर आए।

स्त्री ने पूछा—क्या तय कर आए?

जॉन सेवक—वही, जो तय करने गया था।

स्त्री—शुक्र है, मुझे आशा न थी।

जॉन सेवक—यह सब सोफी के एहसान की बरकत है। नहीं तो यह महाशय सीधे मुंह बात करने वाले न थे। यह उसी के आत्मसमर्पण की शक्ति है, जिसने महेन्द्रकुमारसिंह जैसे अभिमानी और बेमुरौवत आदमी को नीचा दिखा दिया। ऐसे तपाक से मिले, मानो मैं उनका पुराना दोस्त हूं। यह असाध्य कार्य था, और इस सफलता के लिए मैं सोफी का आभारी हूं।

मिसेज सेवक—(क्रुद्ध होकर) तो तुम जाकर उसे लिवा लाओ, मैंने तो मना नहीं किया है। मुझे ऐसी बातें क्यों बार-बार सुनाते हो? मैं तो अगर प्यासों मरती भी रहूंगी, तो उससे पानी न मागूंगी। मुझे लल्लो-चप्पो नहीं आती। जो मन में है, वही मुख में है। अगर वह खुदा से मुंह फेरकर अपनी टेक पर दृढ़ रह सकती है, तो मैं अपने ईमान पर दृढ़ रहते हुए क्यों उसकी खुशामद करूं।

प्रभु सेवक नित्य एक बार सोफिया से मिलने जाया करता था। कुंवर साहब और विनय, दोनों ही की विनयशीलता और शालीनता ने उसे मंत्र-मुग्ध कर दिया था। कुंवर साहब गुणज्ञ थे। उन्होंने पहले ही दिन, एक ही निगाह में ताड़ लिया कि वह साधारण बुद्धि का युवक नहीं है। उन पर शीघ्र ही प्रकट हो गया कि इसकी स्वाभाविक रुचि साहित्य और दर्शन की ओर है। वाणिज्य और व्यापार से इसे उतनी ही भक्ति है, जितनी विनय को जमींदारी से। इसलिए वह प्रभु सेवक से प्रायः साहित्य और काव्य आदि विषयों पर वार्तालाप किया करते थे। वह उसकी प्रवृत्तियों को राष्ट्रीयता के भावों से अलंकृत कर देना चाहते थे। प्रभु सेवक को भी ज्ञात हो गया कि यह महाशय काव्य-कला के मर्मज्ञ हैं। इनसे उसे वह स्नेह हो गया था, जो कवियों को रसिक जनों से हुआ करता है। उसने इन्हें अपनी कई काव्य-रचनाएं सुनाई थीं, और उनकी उदार अभ्यर्थनाओं से उस पर एक नशा-सा छाया रहता था। वह हर वक्त रचना-विचार में निमग्न रहता। वह शंका और नैराश्य, जो प्रायः नवीन साहित्य-सेवियों को अपनी रचनाओं

के प्रचार और सम्मान के विषय में हुआ करता है, कुंवर साहब के प्रोत्साहन के कारण विश्वास और उत्साह के रूप में परिवर्तित हो गया था। वही प्रभु सेवक, जो पहले हफ्तों कलम न उठाता था, अब एक-एक दिन में कई कविताएं रच डालता। उसके भावोद्‌गारों में सरिता के-से प्रवाह और बाहुल्य का आविर्भाव हो गया था। इस समय वह बैठा हुआ कुछ लिख रहा था। जॉन सेवक को आते देखकर वहां आया कि देखूं, क्या खबर लाएं हैं। जमीन के मिलने में जो कठिनाइयां उपस्थित हो गई थीं, उनसे उसे आशा हो गई थी कि कदाचित् कुछ दिनों तक इस बंधन में फंसना पड़े। जॉन सेवक की सफलता ने वह आशा भंग कर दी। मन की इस दशा में माता के अंतिम शब्द उसे बहुत अप्रिय मालूम हुए। बोला–मामा, अगर आपका विचार है कि सोफी वहां निरादर और अपमान सह रही है, और उकताकर स्वयं चली आवेगी, तो आप बड़ी भूल कर रही हैं। सोफी अगर वहां बरसों रहे, तो भी वे लोग उसका गला न छोड़ेंगे। मैंने इतने उदार और शीलवान प्राणी ही नहीं देखे। हां, सोफी का आत्माभिमान इसे स्वीकार न करेगा कि वह चिरकाल तक उनके आतिथ्य और सज्जनता का उपभोग करे। इन दो सप्ताहों में वह जितनी क्षीण हो गई है, उतनी महीनों बीमार रहकर भी न हो सकती थी। उसे संसार के सब सुख प्राप्त हैं, किंतु जैसे कोई शीतप्रधान देश का पौधा उष्ण देश में आकर अनेकों यत्न करने पर भी दिन-दिन सूखता जाता है, वैसी ही दशा उसकी भी हो गई है। उसे रात-दिन यही चिंता व्याप्त रहती है कि कहा जाऊं, क्या करूं? अगर आपने जल्द उसे वहां से बुला न लिया, तो आपको पछताना पड़ेगा। वह आजकल बौद्ध और जैन-ग्रंथों को देखा करती है, और मुझे आश्चर्य न होगा, अगर वह हमसे सदा के लिए छूट जाए।

जॉन सेवक–तुम तो रोज वहां जाते हो, क्यों अपने साथ नहीं लाते?

मिसेज सेवक–मुझे इसकी चिंता नहीं है। प्रभु मसीह का द्रोही मेरे यहां आश्रय नहीं पा सकता।

प्रभु सेवक–गिरजे न जाना ही अगर प्रभु मसीह का द्रोही बनना है, तो लीजिए आज से मैं भी गिरजे न जाऊंगा। निकाल दीजिए मुझे भी घर से।

मिसेज सेवक–(रोकर) तो यहां मेरा ही क्या रखा है। अगर मैं ही विष की गांठ हूं, तो मैं मुंह में कालिख लगाकर क्यों न निकल जाऊं। तुम और सोफी आराम से रहो, मेरा भी खुदा मालिक है।

जॉन सेवक–प्रभु, तुम मेरे सामने अपनी मां का निरादर नहीं कर सकते।

प्रभु सेवक–खुदा न करे, कि मैं अपनी मां का निरादर करूं। लेकिन मैं दिखावे के धर्म के लिए अपनी आत्मा पर यह अत्याचार न होने दूंगा। आप लोगों की नाराजी के खौफ से अब तक मैंने इस विषय में कभी मुंह नहीं खोला। लेकिन जब देखता हूं कि और किसी बात में तो धर्म की परवा नहीं की जाती, और सारा धर्मानुराग दिखावे के धर्म पर ही किया जा रहा है, तो मुझे संदेह होने लगता है कि इसका तात्पर्य कुछ और तो नहीं !

जॉन सेवक–तुमने किस बात में मुझे धर्म के विरुद्ध आचरण करते देखा?

प्रभु सेवक–सैकड़ों ही बातें हैं, एक हो तो कहूं।

जॉन सेवक–नहीं, एक ही बतलाओ।

प्रभु सेवक–उस बेकस अंधे की जमीन पर कब्जा करने के लिए आप जिन साधनों का उपयोग कर रहे हैं, क्या वे धर्मसंगत हैं? धर्म का अंत वहीं हो गया, जब उसने कह दिया कि

मैं अपनी जमीन किसी तरह न दूंगा। अब कानूनी विधानों से, कूटनीति से, धमकियों से अपना मतलब निकालना आपको धर्मसंगत मालूम होता हो, पर मुझे तो वह सर्वथा अधर्म और अन्याय ही प्रतीत होता है।

जॉन सेवक–तुम इस वक्त अपने होश में नहीं हो, मैं तुमसे वाद-विवाद नहीं करना चाहता। पहले जाकर शांत हो जाओ, फिर मैं तुम्हें इसका उत्तर दूंगा।

प्रभु सेवक क्रोध से भरा हुआ अपने कमरे में आया और सोचने लगा कि क्या करूं। यहां तक उसका सत्याग्रह शब्दों ही तक सीमित था, अब उसके क्रियात्मक होने का अवसर आ गया, पर क्रियात्मक शक्ति का उसके चरित्र में एकमात्र अभाव था। इस उद्विग्न दशा में वह कभी एक कोट पहनता, कभी उसे उतारकर दूसरा पहनता, कभी कमरे के बाहर चला जाता, कभी अंदर आ जाता। सहसा जॉन सेवक आकर बैठ गए, और गंभीर भाव से बोले–प्रभु, आज तुम्हारा आवेश देखकर मुझे जितना दु:ख हुआ है, उससे कहीं अधिक चिंता हुई है। मुझे अब तक तुम्हारी व्यावहारिक बुद्धि पर विश्वास था, पर अब वह विश्वास उठ गया। मुझे निश्चय था कि तुम जीवन और धर्म के संबंध को भली-भांति समझते हो, पर अब ज्ञात हुआ कि सोफी और अपनी माता की भांति तुम भी भ्रम में पड़े हुए हो। क्या तुम समझते हो कि मैं और मुझ-जैसे हजारों आदमी, जो नित्य गिरजे आते हैं, भजन गाते हैं, आंखें बंद करके ईश-प्रार्थना करते हैं, धर्मानुराग में डूबे हुए हैं? कदापि नहीं। अगर अब तक तुम्हें नहीं मालूम है, तो अब मालूम हो जाना चाहिए कि धर्म केवल स्वार्थ-संगठन है। संभव है, तुम्हें ईसा पर विश्वास हो, शायद तुम उन्हें खुदा का बेटा या कम-से-कम महात्मा समझते हो, पर मुझे तो यह भी विश्वास नहीं है। मेरे हृदय में उनके प्रति उतनी ही श्रद्धा है, जितनी मामूली फकीर के प्रति। उसी प्रकार फकीर भी दान और क्षमा की महिमा गाता फिरता है, परलोक के सुखों का राग गाया करता है। वह भी उतना ही त्यागी, उतना ही दीन, उतना ही धर्मरत है। लेकिन इतना अविश्वास होने पर भी मैं रविवार को सौ काम छोड़कर गिरजे अवश्य जाता हूं। न जाने से अपने समाज में अपमान होगा, उसका मेरे व्यवसाय पर बुरा असर पड़ेगा। फिर अपने ही घर में अशांति फैल जाएगी। मैं केवल तुम्हारी माता के खातिर से अपने ऊपर यह अत्याचार करता हूं, और तुमसे भी मेरा यही अनुरोध है कि व्यर्थ का दुराग्रह न करो। तुम्हारी माता क्रोध के योग्य नहीं, दया के योग्य हैं। बोलो, तुम्हें कुछ कहना है?

प्रभु सेवक–जी नहीं।

जॉन सेवक–अब तो फिर इतनी उच्छृंखलता न करोगे?

प्रभु सेवक ने मुस्कराकर कहा–जी नहीं।

छ:

धर्मभीरुता में जहां अनेक गुण हैं, वहां एक अवगुण भी है, वह सरल होती है। पाखंडियों का दांव उस पर सहज ही में चल जाता है। धर्मभीरु प्राणी तार्किक नहीं होता। उसकी विवेचना-शक्ति शिथिल हो जाती है। ताहिरअली ने जब से अपनी दोनों विमाताओं की बातें सुनी थीं, उनके

हृदय में घोर अशांति हो रही थी। बार-बार खुदा से दुआ मांगते थे, नीति-ग्रंथों से अपनी शंका का समाधान करने की चेष्टा करते थे। दिन तो किसी तरह गुजरा, संध्या होते ही वह मि० जान सेवक के पास पहुंचे और बड़े विनीत शब्दों में बोले—हुजूर की खिदमत में इस वक्त एक खास अर्ज करने के लिए हाजिर हुआ हूं। इर्शाद हो तो कहूं।

जॉन सेवक—हां-हां, कहिए, कोई नई बात है क्या?

ताहिर—हुजूर उस अंधे की जमीन लेने का खयाल छोड़ दें, तो बहुत ही मुनासिब हो। हजारों दिक्कतें हैं। अकेला सूरदास ही नहीं, सारा मुहल्ला लड़ने पर तुला हुआ है। खासकर नायकराम पंडा बहुत बिगड़ा हुआ है। वह बड़ा खौफनाक आदमी है। जाने कितनी बार फौजदारियां कर चुका है। अगर ये सब दिक्कतें किसी तरह दूर भी हो जाएं, तो भी मैं आपसे यही अर्ज करूंगा कि इसके बजाए किसी दूसरी जमीन की फिक्र कीजिए।

जॉन सेवक—यह क्यों?

ताहिर—हुजूर, यह अजाब का काम है। सैकड़ों आदमियों का काम उस जमीन से निकलता है, सबकी गायें वहीं चरती हैं, बरातें ठहरती हैं, प्लेग के दिनों में लोग वहीं झोपड़े डालते हैं। वह जमीन निकल गई, तो सारी आबादी को तकलीफ होगी, और लोग दिल में हमें सैकड़ों बद्दुआएं देंगे। इसका अजाब जरूर पड़ेगा।

जॉन सेवक—(हंसकर) अजाब तो मेरी गरदन पर पड़ेगा न? मैं उसका बोझ उठा सकता हूं।

ताहिर—हुजूर, मैं भी तो आप ही के दामन से लगा हुआ हूं। मैं उस अजाब से कब बच सकता हूं? बल्कि मुहल्लेवाले मुझी को बागी समझते हैं। हुजूर तो यहां तशरीफ रखते हैं, मैं तो आठों पहर उनकी आंखों के सामने रहूंगा, नित्य उनकी नजरों में खटकता रहूंगा, औरतें भी राह चलते दो गालियां सुना दिया करेंगी। बाल-बच्चों वाला आदमी हूं, खुदा जाने क्या पड़े, क्या न पड़े। आखिर शहर के करीब और जमीनें भी तो मिल सकती हैं।

धर्मभीरुता जड़वादियों की दृष्टि में हास्यास्पद बन जाती है। विशेषत: एक जवान आदमी में तो वह अक्षम्य समझी जाती है। जॉन सेवक ने कृत्रिम क्रोध धारण करते हुए कहा—मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं। जब मैं नहीं डरता, तो आप क्यों डरते हैं? क्या आप समझते हैं कि मुझे अपने बाल-बच्चे प्यारे नहीं, या मैं खुदा से नहीं डरता।

ताहिर—आप साहबे-एकबाल हैं, आपको अजाब का खौफ नहीं। एकबाल वालों से अजाब भी कांपता है। खुदा का कहर गरीबों ही पर गिरता है।

जॉन सेवक—इस नए धर्म-सिद्धांत के जन्मदाता शायद आप ही होंगे, क्योंकि मैंने आज तक कभी नहीं सुना कि ऐश्वर्य से ईश्वरीय कोप भी डरता है। बल्कि हमारे धर्म-ग्रंथों में तो धनिकों के लिए स्वर्ग का द्वार ही बंद कर दिया गया है।

ताहिर—हुजूर, मुझे इस झगड़े से दूर रखें, तो अच्छा हो।

जॉन सेवक—आज आपको इस झगड़े से दूर रखूं, कल आपको यह शंका हो कि पशु-हत्या से खुदा नाराज होता है, आप मुझे खालों की खरीद से दूर रखें, तो मैं आपको किन-किन बातों से दूर रखूंगा, और कहां-कहां ईश्वर के कोप से आपकी रक्षा करूंगा? इससे तो कहीं अच्छा यही है कि आपको अपने ही से दूर रखूं। मेरे यहां रहकर आपको ईश्वरीय कोप का सामना करना पड़ेगा।

मिसेज सेवक–जब आपको ईश्वरीय कोप का इतना भय है, तो आपसे हमारे यहां काम नहीं हो सकता।

ताहिर–मुझे हुजूर की खिदमत से इनकार थोड़े ही है, मैं तो सिर्फ....

मिसेज सेवक–आपको हमारी प्रत्येक आज्ञा का पालन करना पड़ेगा, चाहे उससे आपका खुदा खुश हो या नाखुश। हम अपने कामों में आपके खुदा को हस्तक्षेप न करने देंगे।

ताहिरअली हताश हो गए। मन को समझाने लगे–ईश्वर दयालु है, क्या वह देखता नहीं कि मैं कैसी बेड़ियों में जकड़ा हुआ हूं। मेरा इसमें क्या वश है? अगर स्वामी की आज्ञाओं को न मानूं, तो कुटुंब का पालन क्योंकर हो। बरसों मारे-मारे फिरने के बाद तो यह ठिकाने की नौकरी हाथ आई है। इसे छोड़ दूं, तो फिर उसी तरह ठोकरें खानी पड़ेंगी। अभी कुछ और नहीं है, तो दाल-रोटी का सहारा तो है। गृहचिंता आत्मचिंतन की घातिका है।

ताहिरअली को निरुत्तर होना पड़ा। बेचारे अपनी स्त्री के सारे गहने बेचकर खा चुके थे। अब एक छल्ला भी न था। माहिरअली अंग्रेजी पढ़ता था। उसके लिए अच्छे कपड़े बनवाने पड़ते, प्रतिमास फीस देनी पड़ती। जाबिरअली और जाहिरअली उर्दू मदरसे में पढ़ते थे, किंतु उनकी माता नित्य जान खाया करती थीं कि इन्हें भी अंगरेजी मदरसे में दाखिल करा दो, उर्दू पढ़ाकर क्या चपरासगिरी करानी है? अंगरेजी थोड़ी भी आ जाएगी, तो किसी न किसी दफ्तर में घुस ही जाएंगे। भाइयों के लालन-पालन पर उनकी आवश्यकताएं ठोकर खाती रहती थीं। पाजामे में इतने पैबंद लग जाते थे कि कपड़े का यथार्थ रूप छिप जाता था। नए जूते तो शायद इन पांच बरसों में उन्हें नसीब ही नहीं हुए। माहिरअली के पुराने जूतों पर संतोष करना पड़ता था। सौभाग्य से माहिरअली के पांव बड़े थे। यथासाध्य वह भाइयों को कोई कष्ट न होने देते थे। लेकिन कभी हाथ तंग रहने के कारण उनके लिए नए कपड़े न बनवा सकते, या फीस देने में देर हो जाती, या नाश्ता न मिल सकता, या मदरसे में जलपान करने के लिए पैसे न मिलते, तो दोनों माताएं व्यंग्यों और कटूक्तियों से उनका हृदय छेद डालती थीं। बेकारी के दिनों में वह बहुधा, अपना बोझ हलका करने के लिए, स्त्री और बच्चों को मैके पहुंचा दिया करते थे। उपहास से बचने के खयाल से एक-आध महीने के लिए बुला लेते, और फिर किसी न किसी बहाने से विदा कर देते। जब से मि० जॉन सेवक की शरण में आए थे, एक प्रकार से उनके सुदिन आ गए थे, कल की चिंता सिर पर सवार न रहती थी। माहिरअली की उम्र पंद्रह से अधिक हो गई थी। अब सारी आशाएं उसी पर अवलंबित थीं। सोचते, जब माहिर मैट्रिक पास हो जाएगा, तो साहब से सिफारिश कराके पुलिस में भरती करा दूंगा। पचास रुपये से क्या कम वेतन मिलेगा। हम दोनों भाइयों की आय मिलाकर अस्सी रुपये हो जाएगी। तब जीवन का कुछ आनंद मिलेगा। तब तक जाहिरअली भी हाथ-पैर संभाल लेगा, फिर चैन ही चैन है। बस, तीन-चार साल की और तकलीफ है। स्त्री से बहुधा झगड़ा हो जाता। वह कहा करती–ये भाई-बंद एक भी काम न आएंगे। ज्यों ही अवसर मिला, पर झाड़कर निकल जाएंगे, तुम खड़े ताकते रह जाओगे। ताहिरअली इन बातों पर स्त्री से रूठ जाते। उसे घर में आग लगाने वाली, विष की गांठ कहकर रुलाते।

आशाओं और चिंताओं से इतना दबा हुआ व्यक्ति मिसेज सेवक के कटु वाक्यों का क्या उत्तर देता। स्वामी के कोप ने ईश्वर के कोप को परास्त कर दिया। व्यथित कंठ से बोले–हुजूर का नमक खाता हूं, आपकी मरजी मेरे लिए खुदा के हुक्म का दरजा रखती है। किताबों में

आका को खुश करने का वही सबाब लिखा है, जो खुदा को खुश रखने का है। हुजूर की नमकहरामी करके खुदा को क्या मुंह दिखाऊंगा।

जॉन सेवक—हां, अब आप आए सीधे रास्ते पर। जाइए, अपना काम दीजिए। धर्म और व्यापार को एक तराजू में तौलना मूर्खता है। धर्म धर्म है, व्यापार व्यापार, परस्पर कोई संबंध नहीं। संसार में जीवित रहने के लिए किसी व्यापार की जरूरत है, धर्म की नहीं। धर्म तो व्यापार का शृंगार है। वह धनाधीशों ही को शोभा देता है। खुदा आपको समाई दे, अवकाश मिले, घर में फालतू रुपये हों, तो नमाज पढ़िए, हज कीजिए, मसजिद बनवाइए, कुएं खुदवाइए। तब मजहब है, खाली पेट खुदा का नाम लेना पाप है।

ताहिरअली ने झुककर सलाम किया और घर लौट आए।

सात

संध्या हो गई थी। किंतु फागुन लगने पर भी सर्दी के मारे हाथ-पांव अकड़ते थे। ठंडी हवा के झोंके शरीर की हड्डियों में चुभे जाते थे। जाड़ा, इंद्र की मदद पाकर, फिर अपनी बिखरी हुई शक्तियों का संचय कर रहा था और प्राणपण से समय-चक्र को पलट देना चाहता था। बादल भी थे, बूंदें भी थीं, ठंडी हवा भी थी, कुहरा भी था। इतनी विभिन्न शक्तियों के मुकाबिले में ऋतुराज की एक न चलती थी। लोग लिहाफ में यों मुंह छिपाए हुए थे, जैसे चूहे बिलों में से झाकतें हैं। दूकानदार अंगीठियों के सामने बैठे हाथ सेंकते थे। पैसों के सौदे नहीं, मुरौवत के सौदे बेचते थे। राह चलते लोग अलाव पर यों गिरते थे, मानो दीपक पर पतंगे गिरते हों। बड़े घरों की स्त्रियां मनाती थीं—मिसराइन न आए, तो आज भोजन बनाएं, चूल्हे के सामने बैठने का अवसर मिले। चाय की दूकानों पर जमघट रहता था। ठाकुरदीन के पान छबड़ी में पड़े सड़ रहे थे, पर उसकी हिम्मत न पड़ती थी कि उन्हें फेरे। सूरदास अपनी जगह पर तो आ बैठा था, पर इधर-उधर से सूखी टहनियां बटोर कर जला ली थीं और हाथ सेंक रहा था। सवारियां आज कहां ! हां, कोई इक्का-दुक्का मुसाफिर निकल जाता था, तो बैठे-बैठे उसका कल्याण मना लेता था। जब से सैयद ताहिरअली ने उसे धमकियां दी थीं, जमीन के निकल जाने की शंका उसके हृदय पर छाई रहती थी। सोचता—क्या इसी दिन के लिए, मैंने इस जमीन का इतना जतन किया था? मेरे दिन सदा यों ही थोड़े रहेंगे, कभी तो लच्छमी प्रसन्न होंगी। अंधों की आंखें न खुलें, पर भाग खुल सकता है। कौन जाने, कोई दानी मिल जाए, या मेरे ही हाथ में धीरे-धीरे कुछ रुपये इकट्ठे हो जाएं, बनते देर नहीं लगती। यही अभिलाषा थी कि यहां एक कुआं और एक-छोटा-सा मंदिर बनवा देता, मरने के पीछे अपनी कुछ निसानी रहती। नहीं तो कौन जानेगा कि अंधा कौन था। पिसनहारी ने कुआं खुदवाया था, आज तक उसका नाम चला जाता है। झक्कड़ साईं ने बावली बनवाई थी, आज तक झक्कड़ की बावली मशहूर है। जमीन निकल गई, तो नाम डूब जाएगा। कुछ रुपये मिले भी, तो किस काम के?

नायकराम उसे ढाढस देता रहता था—तुम कुछ चिंता मत करो, कौन मां का बेटा है, जो मेरे रहते तुम्हारी जमीन निकाल ले। लहू की नदी बहा दूंगा। उस किरंटे की क्या मजाल,

गोदाम में आग लगा दूंगा, इधर का रास्ता छुड़ा दूंगा। वह है किस गुमान में! बस तुम हामी न भरना।

किंतु इन शब्दों से जो तस्कीन होती थी, वह भैरो और जगधर की ईर्ष्यापूर्ण वितंडाओं से मिट जाती थी, और वह एक लंबी सांस खींचकर रह जाता था।

वह इन्हीं विचारों में मग्न था कि नायकराम कंधे पर लट्ठ रखे, एक अंगोछा कंधे पर डाले, पान के बीड़े मुंह में भरे, आकर खड़ा हो गया और बोला--सूरदास, बैठे टापते ही रहोगे? सांझ हो गई, हवा खाने वाले अब इस ठंड में न निकलेंगे। खाने-भर को मिल गया कि नहीं?

सूरदास--कहां महाराज, आज तो एक भागवान से भी भेंट न हुई।

नायकराम--जो भाग्य में था, मिल गया। चलो, घर चलें। बहुत ठंड लगती हो, तो मेरा यह अंगोछा कंधे पर डाल लो। मैं तो इधर आया था कि कहीं साहब मिल जाएं, तो दो-दो बातें कर लूं। फिर एक बार उनकी और हमारी भी हो जाए।

सूरदास चलने को उठा ही था कि सहसा एक गाड़ी की आहट मिली। रुक गया। आस बंधी। एक क्षण में फिटन आ पहुंची। सूरदास ने आगे बढ़कर कहा--दाता! भगवान् तुम्हारा कल्याण करें, अंधे की खबर लीजिए।

फिटन रुक गई, और चतारी के राजा साहब उतर पड़े। नायकराम उनका पंडा था। साल में दो-चार सौ रुपये उनकी रियासत से पाता था। उन्हें आशीर्वाद देकर बोला--सरकार का इधर कैसे आना हुआ? आज तो बड़ी ठंड है।

राजा साहब--यही सूरदास है, जिसकी जमीन आगे पड़ती है? आओ, तुम दोनों आदमी मेरे साथ बैठ जाओ, मैं जरा उस जमीन को देखना चाहता हूं।

नायकराम--सरकार चलें, हम दोनों पीछे-पीछे आते हैं।

राजा साहब--अजी आकर बैठ जाओ, तुम्हें आने में देर होगी, और मैंने अभी संध्या नहीं की है।

सूरदास--पंडाजी, तुम बैठ जाओ, मैं दौड़ता हुआ चलूंगा, गाड़ी के साथ-ही-साथ पहुंचूंगा।

राजा साहब--नहीं-नहीं, तुम्हारे बैठने में कोई हरज नहीं है, तुम इस समय भिखारी सूरदास नहीं, जमींदार सूरदास हो।

नायकराम--बैठो सूरे, बैठो। हमारे सरकार साक्षात् देवरूप हैं।

सूरदास--पंडाजी, मैं....

राजा साहब--पंडाजी, तुम इनका हाथ पकड़कर बिठा दो, यों न बैठेंगे।

नायकराम ने सूरदास को गोद में उठाकर गद्दी पर बैठा दिया, आप भी बैठे, और फिटन चली। सूरदास को अपने जीवन में फिटन पर बैठने का यह पहला ही अवसर था। ऐसा जान पड़ता था कि मैं उड़ा जा रहा हूं। तीन-चार मिनट में जब गोदाम पर गाड़ी रुक गई और राजा साहब उतर पड़े, तो सूरदास को आश्चर्य हुआ कि इतनी जल्द क्योंकर आ गए।

राजा साहब--जमीन तो बड़े मौके की है।

सूरदास--सरकार, बाप-दादों की निसानी है।

सूरदास के मन में भांति-भांति की शंकाएं उठ रही थीं--क्या साहब ने इनको यह जमीन

देखने के लिए भेजा है? सुना है, यह बड़े धर्मात्मा पुरुष हैं, तो इन्होंने साहब को समझा क्यों न दिया? बड़े आदमी सब एक होते हैं, चाहे हिन्दू हों या तुर्क, तभी तो मेरा इतना आदर कर रहे हैं, जैसे बकरे की गरदन काटने के पहले उसे भर-पेट दाना खिला देते हैं। लेकिन मैं इनकी बातों में आने वाला नहीं हूं।

राजा साहब—असामियों के साथ बंदोबस्त है?

नायकराम—नहीं सरकार, ऐसे ही परती पड़ी रहती है, सारे मुहल्ले की गौएं यहीं चरने आती हैं। उठा दी जाए, तो दो सौ रुपये से कम नफा न हो, पर यह कहता है, जब भगवान् मुझे यों ही खाने-भर को देते हैं, तो इसे क्यों उठाऊं।

राजा साहब—अच्छा, तो सूरदास दान लेता ही नहीं, देता भी है। ऐसे प्राणियों के दर्शनों ही से पुण्य होता है।

नायकराम की निगाह में सूरदास का इतना आदर कभी न हुआ था। बोले—हुजूर, उस जनम का कोई बड़ा भारी महात्मा है।

राजा साहब—उस जन्म का नहीं, इस जन्म का महात्मा है।

सच्चा दानी प्रसिद्धि का अभिलाषी नहीं होता। सूरदास को अपना त्याग और दान के महत्व का ज्ञान ही न था। शायद होता, तो स्वभाव में इतनी सरल दीनता न रहती, अपनी प्रशंसा कानों में मधुर लगती है। सभ्य दृष्टि में दान का यही सर्वोत्तम पुरस्कार है। सूरदास का दान पृथ्वी या आकाश का दान था, जिसे स्तुति या कीर्ति की चिंता नहीं होती। उसे राजा साहब की उदारता में कपट की गंध आ रही थी। वह यह जानने के लिए विकल हो रहा था कि राजा साहब का इन बातों से अभिप्राय क्या है।

नायकराम राजा साहब को खुश करने के लिए सूरदास का गुणानुवाद करने लगे—धर्मावतार, इतने पर भी इन्हें चैन नहीं है। यहां धर्मशाला, मंदिर और कुआं बनवाने का विचार कर रहे हैं।

राजा साहब—वाह, तब तो बात ही बन गई। क्यों सूरदास, तुम इस जमीन में से नौ बीघे मिस्टर जॉन सेवक को दे दो। उनसे जो रुपये मिलें, उन्हें धर्म-कार्य में लगा दो। इस तरह तुम्हारी अभिलाषा भी पूरी हो जाएगी और साहब का काम भी निकल जाएगा। दूसरों से इतने अच्छे दाम न मिलेंगे। बोलो, कितने रुपये दिला दूं?

नायकराम सूरदास को मौन देखकर डरे कि कहीं यह इनकार कर बैठा, तो मेरी बात गई। बोले—सूरे, हमारे मालिक को जानते हो न, चतारी के महाराज हैं, इसी दरबार से हमारी परवरिस होती है। मिनिसपलटी के सबसे बड़े हाकिम हैं। आपके हुक्म बिना कोई अपने द्वार पर खूंटा भी नहीं गाड़ सकता। चाहे, तो सब इक्केवालों को पकड़वा लें, सारे शहर का पानी बंद कर दें।

सूरदास—जब आपका इतना बड़ा अखतियार है, तो साहब को कोई दूसरी जमीन क्यों नहीं दिला देते?

राजा साहब—ऐसे अच्छे मौके पर शहर में दूसरी जमीन मिलनी मुश्किल है। लेकिन तुम्हें इसके देने में क्या आपत्ति है? इस तरह न जाने कितने दिनों में तुम्हारी मनोकामनाएं पूरी होंगी। यह तो बहुत अच्छा अवसर हाथ आया, रुपये लेकर धर्म-कार्य में लगा दो।

सूरदास—महाराज, मैं खुशी से जमीन न बेचूंगा।

नायकराम–सूरे, कुछ भंग तो नहीं खा गए हो? कुछ खयाल है, किससे बातें कर रहे हो।

सूरदास–पंडाजी, सब खियाल है, आंखें नहीं हैं, तो क्या अक्किल भी नहीं हैं! पर जब मेरी चीज है ही नहीं, तो मैं उसका बेचने वाला कौन होता हूं?

राजा साहब–यह जमीन तो तुम्हारी ही है?

सूरदास–नहीं सरकार, मेरी नहीं, मेरे बाप-दादों की है। मेरी चीज वही है, जो मैंने अपने बांह-बल से पैदा की हो। यह जमीन मुझे धरोहर में मिली है, मैं इसका मालिक नहीं हूं?

राजा साहब–सूरदास, तुम्हारी यह बात मेरे मन में बैठ गई। अगर और जमींदारों के दिल में ऐसे ही भाव होते, तो आज सैकड़ों घर यों बरबाद न होते। केवल भोग-विलास के लिए लोग बड़ी-बड़ी रियासतें बरबाद कर देते हैं। पंडाजी, मैंने सभा में यही प्रस्ताव पेश किया है कि जमींदारों को अपनी जायदाद बेचने का अधिकार न रहे, लेकिन जो जायदाद धर्म-कार्य के लिए बेची जाए, उसे मैं बेचना नहीं कहता।

सूरदास–धरमावतार, मेरा तो इस जमीन के साथ इतना ही नाता है कि जब तक जिऊं, इसकी रक्षा करूं, और मरूं, तो इसे ज्यों-की-त्यों छोड़ जाऊं।

राजा साहब–लेकिन यह तो सोचो कि तुम अपनी जमीन का एक भाग केवल इसलिए दूसरे को दे रहे हो कि मंदिर आदि बनवाने के लिए रुपये मिल जाएं।

नायकराम–बोलो सूरे, महाराज की बात का क्या जवाब देते हो?

सूरदास–मैं सरकार की बातों का जवाब देने जोग हूं कि जवाब दूं? लेकिन इतना तो सरकार जानते ही हैं कि लोग उंगली पकड़ते-पकड़ते पहुंचा पकड़ लेते हैं। साहब पहले तो न बोलेंगे, फिर धीरे-धीरे हाता बना लेंगे, कोई मंदिर में जाने न पायगा, उनसे कौन रोज-रोज लड़ाई करेगा।

नायकराम–दीनबंधु, सूरदास ने यह बात पक्की कही, बड़े आदमियों से कौन लड़ता फिरेगा?

राजा साहब–साहब क्या करेंगे, क्या तुम्हारा मंदिर खोदकर फेंक देंगे?

नायकराम–बोलो सूरे, अब क्या कहते हो?

सूरदास–सरकार, गरीब की घरवाली गांव-भर की भावज होती है। साहब किरस्तान हैं, धरमशाले में तमाकू गोदम बनाएंगे, मंदिर में उनके मजूर सोयेंगे, कुंए पर उनके मजूरों का अड्डा होगा, बहू-बेटियां पानी भरने न जा सकेंगी। साहब न करेंगे, साहब के लड़के करेंगे। मेरे बाप-दादों का नाम डूब जाएगा। सरकार, मुझे इस दलदल में न फंसाइए।

नायकराम–धर्मावतार, सूरदास की बात मेरे मन में भी बैठती है। थोड़े दिनों में मंदिर, धरमशाला, कुआं, सब साहब का हो जाएगा, इसमें संदेह नहीं।

राजा साहब–अच्छा, यह भी माना, लेकिन जरा यह भी सोचो कि इस कारखाने से लोगों को क्या फायदा होगा। हजारों मजदूर, मिस्त्री, बाबू, मुंशी, लुहार, बढ़ई आकर आबाद हो जाएंगे, एक अच्छी बस्ती हो जाएगी, बनियों की नई-नई दुकानें खुल जाएंगी, आस-पास के किसानों को अपनी शाक-भाजी लेकर शहर न जाना पड़ेगा, यहीं खरे दाम मिल जाएंगे। कुंजड़े, खटिक, ग्वाले, धोबी, दरजी, सभी को लाभ होगा। क्या तुम इस पुण्य के भागी न बनोगे?

नायकराम–अब बोलो सूरे, अब तो कुछ नहीं कहना है? हमारे सरकार की भलमनसी

है कि तुमसे इतनी दलील कर रहे हैं। दूसरा हाकिम होता तो एक हुकुमनामे में सारी जमीन तुम्हारे हाथ से निकल जाती।

सूरदास–भैया, इसीलिए न लोग चाहते हैं कि हाकिम धरमात्मा हो, नहीं तो क्या देखते नहीं हैं, कि हाकिम लोग बिना डामफूल सूअर के बात ही नहीं करते। उनके सामने खड़े होने का तो हियाव ही नहीं होता, बातें कौन करता। इसीलिए तो मनाते हैं कि हमारे राजों-महाराजों का राज होता, जो हमारा दु:ख-दर्द सुनते। सरकार बहुत ठीक कहते हैं, मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जाएगी, रोजगारी लोगों को फायदा भी खूब होगा लेकिन जहां यह रौनक बढ़ेगी, वहां ताड़ी-शराब का भी तो परचार बढ़ जाएगा, कसबियां भी तो आकर बस जाएंगी, परदेसी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगे, कितना अधरम होगा ! दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच से दौड़ेंगे, यहां बुरी-बुरी बातें सीखेंगे और अपने बुरे आचरन अपने गांव में फैलाएंगे। दिहातों की लड़कियां, बहुएं मजूरी करने आएंगी और यहां पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाड़ेंगी। यही रौनक शहरों में है। वही रौनक यहां हो जाएगी। भगवान् न करें, यहां वह रौनक हो। सरकार, मुझे इस कुकरम और अधरम से बचाएं। यह सारा पाप मेरे सिर पड़ेगा।

नायकराम–दीनबंधु, सूरदास बहुत पक्की बात कहता है। कलकत्ता, बंबई, अहमदाबाद, कानपुर, आपके अकबाल से सभी जगह घूम आया हूं, जजमान लोग बुलाते रहते हैं। जहां-जहां कल-कारखाने हैं, वहां यही हाल देखा है।

राजा साहब–क्या ये बुराइयां तीर्थस्थानों में नहीं हैं?

सूरदास –सरकार, उनका सुधार भी तो बड़े आदमियों ही के हाथ में है, जहां बुरी बातें पहले ही से हैं, वहां से हटाने के बदले उन्हें और फैलाना तो उचित नहीं है।

राजा साहब–ठीक कहते हो सूरदास, बहुत ठीक कहते हो। तुम जीते, मैं हार गया। तुम्हारी बातों से चित्त प्रसन्न हो गया। कभी शहर आना तो मेरे यहां अवश्य आना। जिस वक्त मैंने साहब से इस जमीन को तय करा देने का वादा किया था, ये बातें मेरे ध्यान में न आई थीं। अब तुम निश्चिंत हो जाओ, मैं साहब से कह दूंगा, सूरदास अपनी जमीन नहीं देता। नायकराम, देखो सूरदास को किसी बात की तकलीफ न होने पाए, अब मैं चलता हूं। यह लो सूरदास, यह तुम्हारी इतनी दूर आने की मजूरी है।

यह कहकर उन्होंने एक रुपया सूरदास के हाथ में रखा और चल दिए। नायकराम ने कहा–सूरदास, आज राजा साहब भी तुम्हारी खोपड़ी को मान गए।

आठ

सोफिया को इन्दु के साथ रहते चार महीने गुजर गए। अपने घर और घरवालों की याद आते ही उसके हृदय में एक ज्वाला-सी प्रज्वलित हो जाती थी। प्रभु सेवक नित्यप्रति उससे एक बार मिलने आता, पर कभी उससे घर का कुशल-समाचार न पूछती। वह कभी हवा खाने भी न जाती कि कहीं मामा से साक्षात् न हो जाए। यद्यपि इन्दु ने उसकी परिस्थिति को सबसे गुप्त

रखा था, पर अनुमान से सभी प्राणी उसकी यथार्थ दशा से परिचित हो गये थे। इसलिए प्रत्येक प्राणी को यह खयाल रहता था कि कोई ऐसी बात न होने पावे, जो उसे अप्रिय प्रतीत हो। इन्दु को तो उससे इतना प्रेम हो गया था कि अधिकतर उसी के पास बैठी रहती। उसकी संगति में इन्दु को धर्म और दर्शन के ग्रंथों से रुचि होने लगी।

घर टपकता हो, तो उसकी मरम्मत हो जाती है, गिर जाए, तो उसे छोड़ दिया जाता है। सोफी को जब ज्ञात हुआ कि इन लोगों को मेरी सब बातें मालूम हो गई तो उसने परदा रखने की चेष्टा करनी छोड़ दी, धर्म-ग्रंथों के अध्ययन में डूब गई। पुरानी कुदूरतें दिल से मिटने लगीं। माता के कठोर वाक्य-बाणों का घाव भरने लगा। वह संकीर्णता, जो व्यक्तिगत भावों और चिंताओं को अनुचित महत्व दे देती है, इस सेवा और सद्व्यवहार के क्षेत्र में आकर तुच्छ जान पड़ने लगी। मन ने कहा, यह मामा का दोष नहीं, उनकी धार्मिक अनुदारता का दोष है, उनका विचारक्षेत्र परिमित है, उनमें विचार-स्वातंत्र्य का सम्मान करने की क्षमता ही नहीं, मैं व्यर्थ ही उनसे रुष्ट हो रही हूं। यही एक कांटा था, जो उसके अंतस्तल में सदैव खटकता रहता था। जब वह निकल गया, तो चित्त शांत हो गया। उसका जीवन धर्म-ग्रंथों के अवलोकन और धर्म-सिद्धांतों के मनन तथा चिंतन में व्यतीत होने लगा। अनुराग अंतर्वेदना की सबसे उत्तम औषधि है।

किंतु इस मनन और अवलोकन से उसका चित्त शांत होता हो, यह बात न थी। नाना प्रकार की शंकाएं नित्य उपस्थित होती रहती थीं—जीवन का उद्देश्य क्या है? प्रत्येक धर्म में इसके विविध उत्तर मिलते थे, पर एक भी ऐसा नहीं मिला, जो मन में बैठ जाए। ये विभूतियां क्या हैं, क्या केवल भक्तों की कपोल-कल्पनाएं हैं? सबसे जटिल समस्या यह थी कि उपासना का उद्देश्य क्या है? ईश्वर क्यों मनुष्यों से अपनी उपासना करने का अनुरोध करता है, इससे उसका क्या अभिप्राय है? क्या वह अपनी ही सृष्टि से अपनी स्तुति सुनकर प्रसन्न होता है? वह इन प्रश्नों की मीमांसा में इतनी तल्लीन रहती कि कई-कई दिन कमरे के बाहर न निकलती, खाने-पीने की सुधि न रहती, यहां तक कि कभी-कभी इन्दु का आना उसे बुरा मालूम होता।

एक दिन प्रातःकाल वह कोई धर्मग्रंथ पढ़ रही थी कि इन्दु आकर बैठ गई। उसका मुख उदास था। सोफिया उसकी ओर आकृष्ट न हुई, पूर्ववत् पुस्तक देखने में मग्न रही। इन्दु बोली—सोफी, अब यहां दो-चार दिन की और मेहमान हूं, मुझे भूल तो न जाओगी?

सोफी ने बिना सिर उठाए ही कहा—हां!

इन्दु—तुम्हारा मन तो अपनी किताबों में बहल जाएगा, मेरी याद भी न आएगी, पर मुझसे तुम्हारे बिना एक दिन भी न रहा जाएगा।

सोफी ने किताब की तरफ देखते हुए कहा—हां।

इन्दु—फिर न जाने कब भेंट हो। सारे दिन अकेले पड़े-पड़े बिसूरा करूंगी।

सोफी ने किताब का पन्ना उलटकर कहा—हां।

इन्दु से सोफिया की निष्ठुरता अब न सही गई। किसी और समय वह रुष्ट होकर चली जाती, अथवा उसे स्वाध्याय में मग्न देखकर कमरे में पांव ही न रखती, किंतु इस समय उसका कोमल हृदय वियोग-व्यथा से भरा हुआ था, उसमें मान का स्थान न था, रोकर बोली—बहन, ईश्वर के लिए जरा पुस्तक बंद कर दो, चली जाऊंगी, तो फिर खूब पढ़ना। वहां से तुम्हें छेड़ने न आऊंगी।

सोफी ने इन्दु की ओर देखा, मानो समाधि टूटी। उसकी आंखों में आंसू थे, मुख उतरा हुआ, सिर के बाल बिखरे हुए। बोली—अरे इन्दु, बात क्या है? रोती क्यों हो?

इन्दु—तुम अपनी किताब देखो, तुम्हें किसी के रोने-धोने की क्या परवा है! ईश्वर ने न जाने क्यों मुझे तुझ-सा हृदय नहीं दिया।

सोफिया—बहन, क्षमा करना, मैं एक बड़ी उलझन में पड़ी हुई थी। अभी तक वह गुत्थी नहीं सुलझी। मैं मूर्तिपूजा को सर्वथा मिथ्या समझती थी। मेरा विचार था कि ऋषियों ने केवल मूर्खों की आध्यात्मिक शांति के लिए यह व्यवस्था कर दी है, लेकिन इस ग्रंथ में मूर्तिपूजा का समर्थन ऐसी विद्वतापूर्ण युक्तियों से किया गया है कि आज से मैं मूर्तिपूजा की कायल हो गई। लेखक ने इसे वैज्ञानिक सिद्धांतों से सिद्ध किया है, यहां तक कि मूर्तियों का आकार-प्रकार भी वैज्ञानिक नियमों ही के आधार पर अवलंबित बतलाया है।

इन्दु—मेरे लिए बुलावा आ गया। तीसरे दिन चली जाऊंगी।

सोफिया—यह तो तुमने बुरी खबर सुनाई, फिर मैं यहां कैसे रहूंगी?

इस वाक्य में सहानुभूति नहीं, केवल स्वहित था। किंतु इन्दु ने इसका आशय यह समझा कि सोफी को मेरा वियोग असह्य होगा। बोली—तुम्हारा जी तो किताबों में बहल जाएगा। हां, मैं तुम्हारी याद में तड़पा करूंगी। सच कहती हूं, तुम्हारी सूरत हर क्षण के लिए भी चित्त से न उतरेगी, यह मोहिनी मूर्ति आंखों के सामने फिरा करेगी। बहन, अगर तुम्हें बुरा न लगे, तो एक याचना करूं। क्या यह संभव नहीं हो सकता कि तुम भी कुछ दिनों मेरे साथ रहो? तुम्हारे सत्संग में मेरा जीवन सार्थक हो जाएगा। मैं इसके लिए तुम्हारी सदैव अनुगृहीत रहूंगी।

सोफिया—तुम्हारे प्रेम के बंधन में बंधी हुई हूं, जहां चाहो, ले चलो। चाहूं तो जाऊंगी, न चाहूं तो जाऊंगी, मगर यह तो बताओ, तुमने राजा साहब से भी पूछ लिया है?

इन्दु—यह कौन-सी बात है, जिसके लिए उनकी अनुमति लेनी पड़े। मुझसे बराबर कहते रहते हैं कि तुम्हारे लिए एक लेडी की जरूरत है, अकेले तुम्हारा जी घबराता होता। यह प्रस्ताव सुनकर फूले न समाएंगे।

रानी जाह्नवी तो इन्दु की बिदाई की तैयारियां कर रही थीं, और इन्दु सोफिया के लिए लेस और कपड़े आदि ला-लाकर रखती थी। भांति-भांति के कपड़ों से कई संदूक भर दिए। वह ऐसे ठाठ से ले जाना चाहती थी कि घर की लौंडियां-बांदियां उसका उचित आदर करें। प्रभु सेवक को सोफी का इन्दु के साथ जाना अच्छा न लगता था। उसे अब भी आशा थी कि मामा का क्रोध शांत हो जाएगा और वह सोफी को गले लगाएंगी। सोफी के जाने से वैमनस्य का बढ़ जाना निश्चित था। उसने सोफी को समझाया, किंतु वह इन्दु का निमंत्रण अस्वीकार न करना चाहती थी। उसने प्रण कर लिया था कि अब घर न जाऊंगी।

तीसरे दिन राजा महेन्द्रकुमार इन्दु को विदा कराने आए, तो इन्दु ने और बातों के साथ सोफी को साथ ले चलने का जिक्र छेड़ दिया। बोली—मेरा जी वहां अकेले घबराया करता है, मिस सोफिया के रहने से मेरा जी बहल जाएगा।

महेन्द्र—क्या मिस सेवक अभी तक यहीं हैं?

इन्दु—बात यह है कि उनके धार्मिक विचार स्वतंत्र हैं, और उनके घरवाले उनके विचारों की स्वतंत्रता सहन नहीं कर सकते। इसी कारण वह अपने घर नहीं जाना चाहतीं।

महेन्द्र—लेकिन यह तो सोचो, उनके मेरे घर में रहने से मेरी कितनी बदनामी होगी। मि० सेवक को यह बात बुरी लगेगी, और यह नितांत अनुचित है कि मैं उनकी लड़की को, उनकी मरजी के बगैर, अपने घर में रखूं। सरासर बदनामी होगी।

इन्दु—मुझे तो इसमें बदनामी की कोई बात नहीं नजर आती। क्या सहेली अपनी सहेली के यहां मेहमान नहीं होती? सोफी का स्वभाव भी तो ऐसा उच्छृंखल नहीं है कि वह इधर-उधर घूमने लगेगी।

महेन्द्र—वह देवी सही, लेकिन ऐसे कितने ही कारण हैं कि मैं उनका तुम्हारे साथ जाना अनुचित नहीं समझता हूं। तुममें यह बड़ा दोष है कि कोई काम करने से पहले उसके औचित्य का विचार नहीं करतीं। क्या तुम्हारे विचार में कुल-मर्यादा की अवहेलना करना कोई बुराई नहीं? उनके घरवाले यही तो चाहते हैं कि वह प्रकट रूप से अपने धर्म के नियमों का पालन करें। अगर वह इतना भी नहीं कर सकतीं, तो मैं यही कहूंगा कि उनका विचार-स्वातंत्र्य औचित्य की सीमा से बहुत आगे बढ़ गया है।

इन्दु—किंतु मैं उनसे वादा कर चुकी हूं। कई दिन से मैं इन्हीं तैयारियों में व्यस्त हूं। यहां अम्मां से आज्ञा ले चुकी हूं। घर के सभी प्राणी, नौकर-चाकर जानते हैं कि वह मेरे साथ जा रही हैं। ऐसी दशा में अगर मैं उन्हें न ले गई, तो लोग अपने मन में क्या कहेंगे? सोचिए, इसमें मेरी कितनी हेठी होगी। मैं किसी को मुंह दिखाने लायक न रहूंगी।

महेन्द्र०—बदनामी से बचने के लिए सब कुछ किया जा सकता है। तुम्हें मिस सेवक से कहते शर्म आती हो, तो मैं कह दूं। वह इतनी नादान नहीं हैं कि इतनी मोटी-सी बात न समझें।

इन्दु—मुझे उनके साथ रहते-रहते उनसे इतना प्रेम हो गया है कि उनसे एक दिन भी अलग रहना मेरे लिए असाध्य-सा जान पड़ता है। इसकी तो खैर परवा नहीं, जानती हूं, कभी-न-कभी उनसे वियोग होगा ही, इस समय मुझे सबसे बड़ी चिंता अपनी बात खोने की है। लोग कहेंगे, बात कहकर पलट गई। सोफी ने पहले साफ इनकार कर दिया था। मेरे बहुत कहने-सुनने पर राजी हुई थी। आप मेरी खातिर से अब की मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए, फिर मैं आपसे पूछे बगैर कोई काम न करूंगी।

महेन्द्रकुमार किसी तरह राजी न हुए। इन्दु रोई, अनुनय-विनय की, पैरों पड़ी, वे सभी मंत्र फूंके, जो कभी निष्फल ही न होते, पर पति का पाषाण-हृदय न पसीजा, उन्हें अपना नाम संसार की सब वस्तुओं से प्रिय था।

जब महेन्द्रकुमार बाहर चले गए, तो इन्दु बहुत देर तक शोकावस्था में बैठी रही। बार-बार यही खयाल आता—सोफी अपने मन में क्या कहेगी। मैंने उससे कह रखा है कि मेरे स्वामी मेरी कोई बात नहीं टालते। अब वह समझेगी, वह इसकी बात भी नहीं पूछते। बात भी ऐसी ही है, इन्हें मेरी क्या परवा है? बातें ऐसी करेंगे, मानो इनसे उदार संसार में कोई प्राणी न होगा, पर वह सब कोरी बकवास है। इन्हें तो यही मंजूर है कि यह दिन-भर अकेली बैठी अपने नाम को रोया करे। दिल में जलते होंगे कि सोफी के साथ इसके दिन भी आराम से गुजरेंगे। मुझे कैदियों की भांति रखना चाहते हैं। इन्हें जिद करना आता है, तो मैं भी क्या जिद नहीं कर सकती? मैं भी कहे देती हूं कि आप सोफी को न चलने देंगे, तो मैं भी न जाऊंगी। मेरा कर ही क्या सकते हैं, कुछ नहीं। दिल में डरते हैं कि सौफी के जाने से घर का खर्च बढ़ जाएगा। स्वभाव

के कृपण तो हैं ही। उस कृपणता को छिपाने के लिए बदनामी का बहाना निकाला है। दु:खी आत्मा दूसरों की नेकनीयती पर संदेह करने लगती है।

संध्या-समय जब जाह्नवी सैर करने चलीं, तो इन्दु ने उनसे यह समाचार कहा, और आग्रह किया कि तुम महेन्द्र को समझाकर सोफी को ले चलने पर राजी कर दो। जाह्नवी ने कहा—तुम्हीं क्यों नहीं मान जातीं?

इन्दु—अम्मां, मैं सच्चे हृदय से कह रही हूं, मैं जिद नहीं करती। अगर मैंने पहले ही सोफिया से न कह दिया होता, तो मुझे जरा भी दु:ख न होता, पर सारी तैयारियां करके अब उसे न ले जाऊं, तो वह अपने दिल में क्या कहेगी। मैं उसे मुंह नहीं दिखा सकती। यह इतनी छोटी-सी बात है कि अगर मेरा जरा भी खयाल होता, तो वह इन्कार न करते। ऐसी दशा में आप क्योंकर आशा कर सकती हैं कि मैं उनकी प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य करूं?

जाह्नवी—वह तुम्हारे स्वामी हैं, उनकी सभी बातें तुम्हें माननी पड़ेंगी।

इन्दु—चाहे वह मेरी जरा-जरा सी बातें भी न मानें?

जाह्नवी—हां, उन्हें इसका अख्तियार है। मुझे लज्जा आती है कि मेरे उपदेशों का तुम्हारे ऊपर जरा भी असर नहीं हुआ। मैं तुम्हें पति-परायणा सती देखना चाहती हूं, जिससे अपने पुरुष की आज्ञा या इच्छा के सामने अपने मानापमान का जरा भी विचार नहीं होता। अगर वह तुम्हें सिर के बल चलने को कहें, तो तुम्हारा धर्म है कि सिर के बल चलो। तुम इतने में ही घबरा गईं?

इन्दु—आप मुझसे वह करने को कहती हैं जो मेरे लिए असंभव है।

जाह्नवी—चुप रहो, मैं तुम्हारे मुंह से ऐसी बातें नहीं सुन सकती। मुझे भय हो रहा है कि कहीं सोफी के विचार-स्वातंत्र्य का जादू तुम्हारे ऊपर भी तो नहीं चल गया।

इन्दु ने इसका कुछ उत्तर न दिया। भय होता था कि मेरे मुंह से कोई ऐसा शब्द न निकल पड़े, जिससे अम्मां के मन में यह संदेह और भी जम जाए, तो बेचारी सोफी का यहां रहना ही कठिन हो जाए। वह रास्ते-भर मौन धारण किए बैठी रही। जब गाड़ी फिर मकान पर पहुंची, और वह उतरकर अपने कमरे की ओर चली, तो जाह्नवी ने कहा—बेटी, मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूं, महेन्द्र से इस विषय में अब एक शब्द भी न कहना, नहीं तो मुझे बहुत दु:ख होगा।

इन्दु ने माता को मर्माहत भाव से देखा और अपने कमरे में चली गई। सौभाग्य से महेन्द्रकुमार भोजन करके सीधे बाहर चले गए, नहीं तो इन्दु के लिए अपने उद्‌गारों का रोकना अत्यंत कठिन हो जाता। उसके मन में रह-रहकर इच्छा होती थी कि चलकर सोफिया से क्षमा मांगूं, साफ-साफ कह दूं—बहन, मेरा कुछ बस नहीं है। मैं कहने को रानी हूं, वास्तव में मुझे उतनी स्वाधीनता भी नहीं है, जितनी मेरे घर की महरियों को है। लेकिन यह सोचकर रह जाती थी कि पति-निंदा मेरी धर्म-मर्यादा के प्रतिकूल है। मैं सोफी की निगाहों से गिर जाऊंगी। वह समझेगी, इसमें जरा भी आत्माभिमान नहीं है।

नौ बजे विनयसिंह उससे मिलने आए। वह मानसिक अशांति की दशा में बैठी हुई अपने संदूकों में से सोफी के लिए खरीदे हुए कपड़े निकाल रही थी और सोच रही थी कि इन्हें उनके पास कैसे भेजूं। खुद जाने का साहस न होता था। विनयसिंह को देखकर बोली—क्यों विनय, अगर तुम्हारी स्त्री अपनी किसी सहेली को कुछ दिनों के लिए अपने साथ रखना चाहे, तो तुम उसे मना कर दोगे, या खुश होगे?

विनय–मेरे सामने यह समस्या कभी आएगी ही नहीं, इसलिए मैं इसकी कल्पना करके अपने मस्तिष्क को कष्ट नहीं देना चाहता।

इन्दु–यह समस्या तो पहले ही उपस्थित हो चुकी है।

विनय–बहन, मुझे तुम्हारी बातों से डर लग रहा है।

इन्दु–इसीलिए कि तुम अपने को धोखा दे रहे हो, लेकिन वास्तव में तुम उससे बहुत गहरे पानी में हो, जितना तुम समझते हो। क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा कई-कई दिनों तक घर में न आना, नित्य सेवा-समिति के कामों में व्यस्त रहना, मिस सोफिया की ओर आंख उठाकर न देखना, उसके साये से भागना, उस अंतर्द्वंद्व को छिपा सकता है, जो तुम्हारे हृदय-तल में विकराल रूप से छिड़ा हुआ है? लेकिन याद रखना, इस द्वंद्व की एक झंकार भी न सुनाई दे, नहीं तो अनर्थ हो जाएगा। सोफिया तुम्हारा इतना सम्मान करती है, जितना कोई सती अपने पुरुष का भी न करती होगी। वह तुम्हारी भक्ति करती है। तुम्हारे संयम, त्याग और सेवा ने उसे मोहित कर लिया है। लेकिन अगर मुझे धोखा नहीं हुआ है, तो उसकी भक्ति में प्रणय का लेश भी नहीं है। यद्यपि तुम्हें सलाह देना व्यर्थ है, क्योंकि तुम इस मार्ग की कठिनाइयों को खूब जानते हो, तथापि मैं तुमसे यही अनुरोध करती हूं कि तुम कुछ दिनों के लिए कहीं चले जाओ। तब तक कदाचित् सोफी भी अपने लिए कोई-न-कोई रास्ता ढूंढ़ निकालेगी। संभव है, इस समय सचेत हो जाने से दो जीवनों का सर्वनाश होने से बच जाए।

विनय–बहन, जब तुम सब कुछ जानती हो ही, तो तुमसे क्या छिपाऊं। अब मैं सचेत नहीं हो सकता। इन चार-पांच महीनों में मैंने जो मानसिक ताप सहन किया है, उसे मेरा हृदय ही जानता है। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, मैं आंखें खोकर गढ़े में गिर रहा हूं, जान-बूझकर विष का प्याला पी रहा हूं। कोई बाधा, कोई कठिनाई, कोई शंका अब मुझे सर्वनाश से नहीं बचा सकती। हां, इसका मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि इस आग की एक चिनगारी या एक लपट भी सोफी तक न पहुंचेगी। मेरा सारा शरीर भस्म हो जाए, हड्डियां तक राख हो जाएं, पर सोफी को उस ज्वाला की झलक तक न दिखाई देगी। मैंने भी यही निश्चय किया है कि जितनी जल्दी हो सके, मैं यहां से चला जाऊं- अपनी रक्षा के लिए नहीं, सोफी की रक्षा के लिए। आह ! इससे तो यह कहीं अच्छा था कि सोफी ने मुझे उसी आग में जल जाने दिया होता, मेरा परदा ढक जाता। अगर अम्मां को यह बात मालूम हो गई, तो उनकी क्या दशा होगी। इसकी कल्पना से ही मेरे रोयें खड़े हो जाते हैं। बस, अब मेर लिए मुंह में कालिख लगाकर कहीं डूब मरने के सिवा और कोई उपाय नहीं है।

यह कहकर विनयसिंह सहसा बाहर चले गए। इन्दु 'बैठो-बैठो' कहती रह गई। वह इस समय आवेश में उससे बहुत ज्यादा कह गए थे, जितना वह कहना चाहते थे। और देर तक बैठते, तो न जाने क्या-क्या कह जाते। इन्दु की दशा उस प्राणी की-सी थी, जिसके पैर बंधे हों और सामने उसका घर जल रहा हो। वह देख रही थी, यह आग सारे घर को जला देगी, विनय के ऊंचे-ऊंचे मंसूबे, माता की बड़ी-बड़ी अभिलाषाएं, पिता के बड़े-बड़े अनुष्ठान, सब विध्वंस हो जाएंगे। वह इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी सारी रात करवटें बदलती रही। प्रातःकाल उठी, तो द्वार पर उसके लिए पालकी खड़ी थी। वह माता के गले से लिपटकर रोई, पिता के चरणों को आंसुओं से धोया और घर से चली। रास्ते में सोफी का कमरा पड़ता था। इन्दु ने उस कमरे की ओर ताका भी नहीं। सोफी उठकर द्वार पर आई, और आंखों में आंसू

भरे हुए उससे हाथ मिलाया। इन्दु ने जल्दी से हाथ छुड़ा लिया और आगे बढ़ गई।

नौ

सोफिया इस समय उस अवस्था में थी, जब एक साधारण हंसी की बात, एक साधारण आंखों का इशारा, किसी का उसे देखकर मुस्करा देना, किसी महरी का उसकी आज्ञा का पालन करने में एक क्षण विलंब करना, ऐसी हजारों बातें, जो नित्य घरों में होती हैं और जिनकी कोई परवा भी नहीं करता, उसका दिल दुखाने के लिए काफी हो सकती थीं। चोट खाए हुए अंग को मामूली-सी ठेस भी असह्य हो जाती है। फिर इन्दु का बिना उससे कुछ कहे-सुने चला जाना क्यों न दु:खजनक होता। इन्दु तो चली गई, पर वह बहुत देर तक अपने कमरे के द्वार पर मूर्ति की भांति खड़ी सोचती रही—यह तिरस्कार क्यों? मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, जिसका मुझे यह दंड मिला है? अगर उसे यह मंजूर न था कि मुझे साथ ले जाती, तो साफ-साफ कह देने में क्या आपत्ति थी? मैंने उसके साथ चलने के लिए आग्रह तो किया न था। क्या मैं इतना नहीं जानती कि विपत्ति में कोई किसी का साथी नहीं होता? वह रानी है, उसकी इतनी ही कृपा क्या कम थी कि मेरे साथ हंस-बोल लिया करती थी। मैं उसकी सहेली बनने के योग्य कब थी, क्या मुझे इतनी भी समझ न थी। लेकिन इस तरह आंखें फेर लेना कौन-सी भलमंसी है। राजा साहब ने न माना होगा, यह केवल बहाना है। राजा साहब इतनी-सी बात को कभी अस्वीकार नहीं कर सकते। इन्दु ने खुद ही सोचा होगा—वहां बड़े-बड़े आदमी मिलने आवेंगे, उनसे इसका परिचय क्योंकर कराऊंगी, कदाचित् यह शंका हुई हो कि कहीं इसके सामने मेरा रंग फीका न पड़ जाए। बस, यही बात है, अगर मैं मूर्खा, रूप-गुणविहीना होती, तो वह मुझे जरूर साथ ले जाती, मेरी हीनता से उसका रंग और चमक उठता। मेरा दुर्भाग्य !

वह अभी द्वार पर खड़ी ही थी कि जाह्नवी बेटी को बिदा करके लौटीं, और सोफी के कमरे में आकर बोलीं—बेटी, मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने ही तुम्हें रोक लिया। इन्दु को बुरा लगा, पर करूं क्या, वह तो गई ही तुम भी चली जातीं, तो मेरा दिन कैसे कटता? विनय भी राजपूताना जाने को तैयार बैठे हैं, मेरी तो मौत हो जाती। तुम्हारे रहने से मेरा दिल बहलता रहेगा। सच कहती हूं, तुमने मुझ पर कोई मोहिनी-मंत्र फूंक दिया है।

सोफिया—आपकी शालीनता है, जो ऐसा कहती हैं। मुझे खेद यही है, इन्दु ने जाते समय मुझसे हाथ भी न मिलाया।

जाह्नवी—केवल लज्जावश बेटी, लज्जावश ! मैं तुझसे सत्य कहती हूं, ऐसी सरला बालिका संसार में न होगी। तुझे रोककर मैंने उस पर घोर अन्याय किया है। मेरी बच्ची का वहां जरा भी जी नहीं लगता, महीने-भर रह जाती है, तो स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इतनी बड़ी रियासत है, महेन्द्र सारा बोझ उसी पर डाल देते हैं। उन्हें तो म्युनिसिपैलिटी ही से फुरसत नहीं मिलती। बेचारी आय-व्यय का हिसाब लिखते-लिखते घबरा जाती है, उस पर एक-एक पैसे का हिसाब ! महेन्द्र को हिसाब रखने की धुन है। जरा-सा-भी फर्क पड़ा, तो उसके सिर हो

जाते हैं। इन्दु को अधिकार है, जितना चाहे खर्च करे, पर हिसाब जरूर लिखे। राजा साहब किसी की रू-रियायत नहीं करते। कोई नौकर एक पैसा भी खा जाए, तो उसे निकाल देते हैं, चाहे उसने उनकी सेवा में अपना जीवन बिता दिया हो। यहां मैं इन्दु को कभी कड़ी निगाह से भी नहीं देखती, चाहे घी का घड़ा लुढ़का दे। वहां जरा-जरा-सी बात पर राजा साहब की घुड़कियां सुननी पड़ती हैं। बच्ची से बात नहीं सही जाती। जवाब तो देती नहीं—और यही हिन्दू स्त्री का धर्म है—पर रोने लगती है। वह दया की मूर्ति है। कोई उसका सर्वस्व खा जाए, लेकिन ज्यों ही उसके सामने आकर रोया, बस उसका दिल पिघला। सोफी, भगवान् ने मुझे दो बच्चे दिए, और दोनों ही को देखकर हृदय शीतल हो जाता है। इन्दु जितनी ही कोमल प्रकृति और सरल हृदया है, विनय उतना ही धैर्यशील और साहसी है। थकना तो जानता ही नहीं। मालूम होता है, दूसरों की सेवा करने के लिए ही उसका जन्म हुआ है। घर में किसी टहलनी को भी कोई शिकायत हुई, और सब काम छोड़कर उसकी दवा-दारू करने लगा। एक बार मुझे ज्वर आने लगा था—इस लड़के ने तीन महीने तक द्वार का मुंह नहीं देखा। नित्य मेरे पास बैठा रहता, कभी पंखा झलता, कभी पांव सहलाता, कभी रामायण और महाभारत पढ़कर सुनाता। कितना कहती, बेटा जाओ, घूमो-फिरो, आखिर ये लौंडियां-बांदियां किस दिन काम आएंगी, डाक्टर रोज आते ही हैं, तुम मेरे साथ सती होते हो, पर किसी तरह न जाता। अब कुछ दिनों से सेवा-समिति का आयोजन कर रहा है। कुंवर साहब को जो सेवा-समिति से इतना प्रेम है, वह विनय ही के सत्संग का फल है, नहीं तो आज से तीन साल पहले इनका-सा विलासी सारे नगर में न था। दिन में दो बार हजामत बनती थी। दरजनों धोबी और दरजी कपड़े धोने और सीने के लिए नौकर थे। पेरिस से एक कुशल धोबी कपड़े संवारने के लिए आया था। कश्मीर और इटली के बावरची खाना पकाते थे। तस्वीरों का इतना व्यसन था कि कई बार अच्छे चित्र लाने के लिए इटली तक की यात्रा की। तुम उन दिनों मंसूरी रही होगी। सैर करने निकलते, तो सशस्त्र सवारों का एक दल साथ चलता। शिकार खेलने की लत थी, महीनों शिकार खेलते रहते। कभी कश्मीर, कभी बीकानेर, कभी नेपाल, केवल शिकार खेलने जाते। विनय ने उनकी काया ही पलट दी। जन्म का विरागी है। पूर्व-जन्म में अवश्य कोई ऋषि रहा होगा।

सोफी—आपके दिल में सेवा और भक्ति के इतने ऊंचे भाव कैसे जागृत हुए? यहां तो प्राय: रानियां अपने भोग-विलास में ही मग्न रहती हैं?

जाह्नवी—बेटी, यह डाक्टर गांगुली के सदुपदेश का फल है। जब इन्दु दो साल की थी, तो मैं बीमार पड़ी। डाक्टर गांगुली मेरी दवा करने के लिए आए। हृदय का रोग था, जी घबराया करता मानो किसी ने उच्चाटन-मंत्र मार दिया हो। डाक्टर महोदय ने मुझे महाभारत पढ़कर सुनाना शुरू किया। उसमें मेरा ऐसा जी लगा कि कभी-कभी आधी रात तक बैठी पढ़ा करती। थक जाती तो डाक्टर साहब से पढ़वाकर सुनती। फिर तो वीरतापूर्ण कथाओं को पढ़ने का मुझे ऐसा चस्का लगा कि राजपूतों की ऐसी कोई कथा नहीं, जो मैंने न पढ़ी हो। उसी समय से मेरे मन में जातिप्रेम का भाव अंकुरित हुआ। एक नई अभिलाषा उत्पन्न हुई—मेरी कोख से भी कोई ऐसा पुत्र जन्म लेता, जो अभिमन्यु, दुर्गादास और प्रताप की भांति जाति का मस्तक ऊंचा करता। मैंने व्रत किया कि पुत्र हुआ, तो उसे देश और जाति के हित के लिए समर्पित कर दूंगी। मैं उन दिनों तपस्विनी की भांति जमीन पर सोती, केवल एक बार रूखा भोजन करती, अपने बरतन

तक अपने हाथ से धोती थी। एक वे देवियां थीं, जो जाति की मर्यादा रखने के लिए प्राण तक दे देती थीं।, एक मैं अभागिनी हूं कि लोक-परलोक की सब चिंताएं छोड़कर केवल विषय-वासनाओं में लिप्त हूं। मुझे जाति की इस अधोगति को देखकर अपनी विलासिता पर लज्जा आती थी। ईश्वर ने मेरी सुन ली। तीसरे साल विनय का जन्म हुआ। मैंने बाल्यावस्था ही से उसे कठिनाइयों का अभ्यास कराना शुरू किया। न कभी गद्दों पर सुलाती, न कभी मेहरियों और दाइयों की गोद में जाने देती, न कभी मेवे खाने देती। दस वर्ष की अवस्था तक केवल धार्मिक कथाओं द्वारा उसकी शिक्षा हुई। इसके बाद मैंने उसे डाक्टर गांगुली के साथ छोड़ दिया। मुझे उन्हीं पर पूरा विश्वास था, और मुझे इसका गर्व है कि विनय की शिक्षा-दीक्षा का भार जिस पुरुष पर रखा, वह इसके सर्वथा योग्य था। विनय पृथ्वी के अधिकांश प्रांतों का पर्यटन कर चुका है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त योरप की प्रधान भाषाओं का उसे अच्छा ज्ञान है। संगीत का उसे इतना अभ्यास है कि अच्छे-अच्छे कलावंत उसके सामने मुंह खोलने का साहस नहीं कर सकते। नित्य कंबल बिछाकर जमीन पर सोता है और कंबल ही ओढ़ता है। पैदल चलने में कई बार इनाम पा चुका है। जलपान के लिए मुट्ठी-भर चने, भोजन के लिए रोटी और साग, बस इसके सिवा संसार के और सभी भोज्य पदार्थ उसके लिए वर्जित-से हैं। बेटी, मैं तुझसे कहां तक कहूं, पूरा त्यागी है। उसके त्याग का सबसे उत्तम फल यह है कि उसके पिता को भी त्यागी बनना पड़ा। जवान बेटे के सामने बूढ़ा बाप कैसे विलास का दास बना रह सकता है। मैं समझती हूं कि विषय-भोग से उनका मन तृप्त हो गया, और बहुत अच्छा हुआ। त्यागी पुत्र का भोगी पिता, एक अत्यंत हास्यास्पद दृश्य होता। वह मुक्त हृदय से विनय के सत्कार्यों में भाग लेते हैं और मैं कह सकती हूं कि उनके अनुराग के बगैर विनय को कभी इतनी सफलता न प्राप्त होती। समिति में इस समय एक सौ नवयुवक हैं, जिनमें कितने ही संपन्न घरानों के हैं। कुंवर साहब की इच्छा है कि समिति के सदस्यों की पूर्ण संख्या पांच सौ तक बढ़ा दी जाए। डाक्टर गांगुली इस वृद्धावस्था में भी अदम्य उत्साह से समिति का संचालन करते हैं। वही इसके अध्यक्ष हैं। जब व्यवस्थापक सभा के काम से अवकाश मिलता है, तो नित्य दो-ढाई घंटे युवकों को शरीर-विज्ञान संबंधी व्याख्यान देते हैं। पाठ्यक्रम तीन वर्षों में समाप्त हो जाता है, तब सेवा-कार्य आरंभ होता है। अब की बीस युवक उत्तीर्ण होंगे, और यह निश्चय किया गया है कि वे दो साल भारत का भ्रमण करें, पर शर्त यह है कि उनके साथ एक लुटिया, डोर, धोती और कंबल के सिवा और सफर का सामान न हो। यहां तक कि खर्च के लिए रुपये भी न रखे जाएं। इससे कई लाभ होंगे—युवकों को कठिनाइयों का अभ्यास होगा, देश की यथार्थ दशा का ज्ञान होगा, दृष्टि-क्षेत्र विस्तीर्ण हो जाएगा, और सबसे बड़ी बात यह है कि चरित्र बलवान् होगा; धैर्य, साहस, उद्योग, संकल्प आदि गुणों की वृद्धि होगी। विनय इन लोगों के साथ जा रहा है, और मैं गर्व से फूली नहीं समाती कि मेरा पुत्र जाति-हित के लिए यह आयोजन कर रहा है; और तुमसे सच कहती हूं, अगर कोई ऐसा अवसर आ पड़े कि जाति-रक्षा के लिए उसे प्राण भी देना पड़े, तो मुझे जरा भी शोक न होगा। शोक तब होगा, जब मैं उसे ऐश्वर्य के सामने सिर झुकाते या कर्त्तव्य के क्षेत्र में पीछे हटते देखूंगी। ईश्वर न करे, मैं वह दिन देखने के लिए जीवित रहूं। मैं नहीं कह सकती कि उस वक्त मेरे चित्त की क्या दशा होगी। शायद मैं विनय के रक्त की प्यासी हो जाऊं, शायद इन निर्बल हाथों में इतनी शक्ति आ जाए कि मैं उसका गला घोट दूं।

यह कहते-कहते रानी के मुख पर एक विचित्र तेजस्विता की झलक दिखाई देने लगी, अश्रुपूर्ण नेत्रों में आत्मगौरव की लालिमा प्रस्फुटित होने लगी। सोफिया आश्चर्य से रानी का मुंह ताकने लगी। इस कोमल काया में इतना अनुरक्त और परिष्कृत हृदय छिपा हुआ है, इसकी वह कल्पना भी न कर सकती थी।

एक क्षण में रानी ने फिर कहा-बेटी, मैं आवेश में तुमसे अपने दिल की कितनी ही बातें कह गई, पर क्या करूं, तुम्हारे मुख पर ऐसी मधुर सरलता है, जो मेरे मन को आकर्षित करती है। इतने दिनों में मैंने तुम्हें खूब पहचान लिया। तुम सोफी नहीं, तुम स्त्री के रूप में विनय हो। कुंवर साहब तो तुम्हारे ऊपर मोहित हो गए हैं। घर में आते हैं, तो तुम्हारी चर्चा जरूर करते हैं। यदि धार्मिक बाधा न होती, तो मुसकिराकर उन्होंने मिस्टर सेवक के पास विनय के विवाह का संदेशा कभी का भेज दिया होता।

सोफी का चेहरा शर्म से लाल हो गया, लंबी-लंबी पलकें नीचे को झुक गईं और अधरों पर एक अति सूक्ष्म, शांत, मृदुल मुस्कान की छटा दिखाई दी। उसने दोनों हाथों से मुंह छिपा लिया और बोली-आप मुझे गालियां दे रही हैं, मैं भाग जाऊंगी।

रानी-अच्छा, शरमाओ मत। लो, यह चर्चा ही न करूंगी। मेरा तुमसे यही अनुरोध है कि अब तुम्हें यहां किसी बात का संकोच न करना चाहिए। इन्दु तुम्हारी सहेली थी, तुम्हारे स्वभाव से परिचित थी, तुम्हारी आवश्यकताओं को समझती थी। मुझमें इतनी बुद्धि नहीं है। तुम इस घर को अपना घर समझो, जिस चीज की जरूरत हो, निस्संकोच भाव से कह दो। अपनी इच्छा के अनुसार भोजन बनवा लो। जब सैर करने को जी चाहे, गाड़ी तैयार करा लो। किसी नौकर को कहीं भेजना चाहो, भेज दो, मुझसे कुछ पूछने की जरूरत नहीं। मुझसे कुछ कहना हो, तुरंत चली आओ, पहले से सूचना देने का काम नहीं। यह कमरा अगर पसंद न हो, तो मेरे बगल वाले कमरे में चलो, जिसमें इन्दु रहती थी। वहां जब मेरा जी चाहेगा, तुमसे बातें कर लिया करूंगी। जब अवकाश हो, मुझे इधर-उधर के समाचार सुना देना। बस, यही समझो कि तुम मेरी प्राइवेट सेक्रेटरी हो।

यह कहकर जाह्नवी चली गई। सोफी का हृदय हल्का हो गया। उसे बड़ी चिंता हो रही थी कि इन्दु के चले जाने पर यहां मैं कैसे रहूंगी, कौन मेरी बात पूछेगा, बिन-बुलाए मेहमान की भांति पड़ी रहूंगी। यह चिंता शांत हो गई।

उस दिन से उसका और भी आदर-सत्कार होने लगा। लौंडियां उसका मुंह जोहती रहतीं, बार-बार आकर पूछ जातीं- मिस साहब, कोई काम तो नहीं है? कोचवान दोनों जून पूछ जाता-हुक्म हो तो गाड़ी तैयार करूं। रानीजी भी दिन में एक बार जरूर आ बैठतीं। सोफी को अब मालूम हुआ कि उनका हृदय स्त्री-जाति के प्रति सदिच्छाओं से कितना परिपूर्ण था। उन्हें भारत की देवियों को ईंट और पत्थर के सामने सिर झुकाते देखकर हार्दिक वेदना होती थी। वह उनके जड़वाद को, उनके मिथ्यावाद को, उनके स्वार्थवाद को भारत की अधोगति का मुख्य कारण समझती थीं। इन विषयों पर सोफी से घंटों बातें किया करतीं।

इस कृपा और स्नेह ने धीरे-धीरे सोफी के दिल से विरानेपन के भावों को मिटाना शुरू किया। उसके आचार-विचार में परिवर्तन होने लगा। लौंडियों से कुछ कहते हुए अब झेंप न होती, भवन के किसी भाग में जाते हुए संकोच न होता, किंतु चिंताएं ज्यों-ज्यों घटती थीं, विलास-प्रियता बढ़ती थी। उसके अवकाश की मात्रा में वृद्धि होने लगी। विनोद से रुचि होने

लगी। कभी-कभी प्राचीन कवियों के चित्रों को देखती, कभी बाग की सैर करने चली जाती, कभी प्यानो पर जा बैठती, यहां तक कि कभी-कभी जाह्नवी के साथ शतरंज भी खेलने लगी। वस्त्राभूषण से अब वह उदासीनता न रही। गाउन के बदले रेशमी साड़ियां पहनने लगी। रानीजी के आग्रह से कभी-कभी पान भी खा लेती। कंघी-चोटी से प्रेम हुआ। चिंता त्यागमूलक होती है। निश्चिंतता का आमोद-विनोद से मेल है।

एक दिन, तीसरे पहर, वह अपने कमरे में बैठी हुई कुछ पढ़ रही थी। गरमी इतनी सख्त थी कि बिजली के पंखे और खस की टट्टियों के होते हुए भी शरीर से पसीना निकल रहा था। बाहर लू से देह झुलसी जा रही थी। सहसा प्रभु सेवक आकर बोले—सोफी, जरा देर चलकर एक झगड़े का निर्णय कर दो। मैंने एक कविता लिखी है, विनयसिंह को उसके विषय में कई शंकाएं हैं। मैं कुछ कहता हूं, वह कुछ कहते हैं, फैसला तुम्हारे ऊपर छोड़ा गया है। जरा चलो।

सोफी—मैं काव्य संबंधी विवाद का क्या निर्णय करूंगी, पिंगल का अक्षर तक नहीं जानती, अलंकारों का लेश-मात्र भी ज्ञान नहीं, मुझे व्यर्थ ले जाते हो।

प्रभु सेवक—उस झगड़े का निर्णय करने के लिए पिंगल जानने की जरूरत नहीं। मेरे और उनके आदर्श में विरोध है। चलो तो।

सोफी आंगन में निकली, तो ज्वाला-सी देह में लगी। जल्दी-जल्दी पग उठाते हुए विनय के कमरे में आई, जो राजभवन के दूसरे भाग में था। आज तक वह यहां न आई थी। कमरे में कोई सामान न था। केवल एक कंबल बिछा हुआ था। और जमीन पर ही दस-पांच पुस्तकें रखी हुई थीं। न पंखा, न खस की टट्टी, न परदे, न तस्वीरें। पछुआ सीधे कमरे में आती थी। कमरे की दीवारें जलते तवे की भांति तप रही थीं। वहीं विनय कंबल पर सिर झुकाए बैठे हुए थे। सोफी को देखते ही वह उठ खड़े हुए और उसके लिए कुर्सी लाने दौड़े।

सोफी—कहां जा रहे हैं?

प्रभु सेवक—(मुस्कराकर) तुम्हारे लिए कुर्सी लाने !

सोफी—वह कुर्सी लाएंगे और मैं बैठूंगी ! कितनी भद्दी बात है !

प्रभु सेवक—मैं रोकता भी, तो वह न मानते।

सोफी—इस कमरे में इनसे कैसे रहा जाता है।

प्रभु सेवक—पूरे योगी हैं। मैं तो प्रेम-वश चला आता हूं।

इतने में विनय ने एक गद्देदार कुर्सी लाकर सोफी के लिए रख दी। सोफी संकोच और लज्जा से गड़ी जाती थी। विनय की ऐसी दशा हो रही थी, मानो पानी में भीग रहे हैं। सोफी मन में कहती थी—कैसा आदर्श जीवन है ! विनय मन में कहते थे—कितना अनुपम सौंदर्य है ! दोनों अपनी-अपनी जगह खड़े रहे। आखिर विनय को एक उक्ति सूझी। प्रभु सेवक की ओर देखकर बोले—हम और तुम वादी हैं, खड़े रह सकते हैं, पर न्यायाधीश का तो उच्च स्थान पर बैठना ही उचित है।

सोफी ने प्रभु सेवक की ओर ताकते हुए उत्तर दिया—खेल में बालक अपने को भूल नहीं जाता।

अंत में तीनों प्राणी कंबल पर बैठे। प्रभु सेवक ने अपनी कविता पढ़ सुनाई। कविता माधुर्य में डूबी हुई, उच्च और पवित्र भावों से परिपूर्ण थी। कवि ने प्रसादगुण कूट-कूटकर

भर दिया था। विषय था–एक माता का अपनी पुत्री को आशीर्वाद। पुत्री ससुराल जा रही है, माता उसे गले लगाकर आशीर्वाद देती है–पुत्री, तू पति-परायणा हो, तेरी गोद फले, उसमें फूल के-से कोमल बच्चे खेलें, उनकी मधुर हास्य-ध्वनि से तेरा घर और आंगन गूंजे। तुझ पर लक्ष्मी की कृपा हो। तू पत्थर भी छुए, तो कंचन हो जाए, तेरा पति तुझ पर उसी भांति अपने प्रेम की छाया रखे, जैसे छप्पर दीवार को अपनी छाया में रखता है।

कवि ने इन्हीं भावों के अंतर्गत दांपत्य जीवन का ऐसा संतुलित चित्र खींचा था कि उसमें प्रकाश, पुष्प और प्रेम का आधिक्य था, कहीं वे अंधेरी घाटियां न थीं, जिनमें हम गिर पड़ते हैं, कहीं वे कांटे न थे, जो हमारे पैरों में चुभते हैं, कहीं वह विकार न था, जो हमें मार्ग से विचलित कर देता है। कविता समाप्त करके प्रभु सेवक ने विनयसिंह से कहा–अब आपको इसके विषय में जो कुछ कहना हो, कहिए।

विनयसिंह ने सकुचाते हुए उत्तर दिया–मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका।

प्रभु सेवक–फिर से कहिए।

विनयसिंह–बार-बार वही बातें क्या कहूं।

प्रभु सेवक–मैं आपके कथन का भावार्थ कर दूं?

विनयसिंह–मेरे मन में एक बात आई, कह दी, आप व्यर्थ उसे इतना बढ़ा रहे हैं।

प्रभु सेवक–आखिर आप उन भावों को सोफी के सामने प्रकट करते क्यों शर्माते हैं?

विनयसिंह–शर्माता नहीं हूं, लेकिन आपसे मेरा कोई विवाद नहीं है। आपको मानव-जीवन का यह आदर्श सर्वोत्तम प्रतीत होता है, मुझे वह अपनी वर्तमान अवस्था के प्रतिकूल जान पड़ता है। इसमें झगड़े की कोई बात नहीं है।

प्रभु सेवक–(हंसकर) हां, यही तो मैं आपसे कहलाना चाहता हूं कि आप उसे वर्तमान अवस्था के प्रतिकूल क्यों समझते हैं? क्या आपके विचार में दांपत्य जीवन सर्वथा निंद्य है? और, क्या संसार के समस्त प्राणियों को संन्यास धारण कर लेना चाहिए?

विनयसिंह–यह मेरा आशय कदापि नहीं कि संसार के समस्त प्राणियों को संन्यास धारण कर लेना चाहिए, मेरा आशय केवल यह था कि दांपत्य जीवन स्वार्थपरता का पोषक है। इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं, और इस अधोगति की दशा में, जबकि स्वार्थ हमारी नसों में कूट-कूटकर भरा हुआ है, जबकि हम बिना स्वार्थ के कोई काम या कोई बात नहीं करते, यहां तक कि माता-पुत्र-संबंध में–गुरु-शिष्य-संबंध में–पत्नी-पुरुष-संबंध में स्वार्थ का प्राधान्य हो गया है, किसी उच्चकोटि के कवि के लिए दांपत्य जीवन की सराहना करना–उसकी तारीफों के पुल बांधना–शोभा नहीं देता। हम दांपत्य सुख के दास हो रहे हैं। हमने इसी को अपने जीवन का लक्ष्य समझ रखा है। इस समय हमें ऐसे व्रतधारियों की, त्यागियों की, परमार्थ-सेवियों की आवश्यकता है, जो जाति के उद्धार के लिए अपने प्राण तक दे दें। हमारे कविजनों को इन्हीं उच्च और पवित्र भावों को उत्तेजित करना चाहिए। हमारे देश में जनसंख्या जरूरत से ज्यादा हो गई है। हमारी जननी संतान-वृद्धि के भार को अब नहीं संभाल सकती। विद्यालयों में, सड़कों पर, गलियों में इतने बालक दिखाई देते हैं कि समझ में नहीं आता, ये क्या करेंगे। हमारे देश में इतनी उपज भी नहीं होती कि सबके लिए एक बार इच्छापूर्ण भोजन भी प्राप्त हो। भोजन का अभाव ही हमारे नैतिक और आर्थिक पतन का मुख्य कारण है। आपकी कविता सर्वथा असामयिक है। मेरे विचार में इससे समाज का उपकार नहीं हो

सकता। इस समय हमारे कवियों का कर्त्तव्य है त्याग का महत्व दिखाना, ब्रह्मचर्य में अनुराग उत्पन्न करना, आत्मनिग्रह का उपदेश करना। दांपत्य तो दासत्व का मूल है और यह समय उसके गुण-गान के लिए अनुकूल नहीं है।

प्रभु सेवक—आपको जो कुछ कहना था, कह चुके?

विनयसिंह—अभी बहुत कुछ कहा जा सकता है। पर इस समय इतना ही काफी है।

प्रभु सेवक—मैं आपसे पहले ही कह चुका हूं कि बलिदान और त्याग के आदर्श की मैं निंदा नहीं करता। वह मनुष्य के लिए सबसे ऊंचा स्थान है, और वह धन्य है, जो उसे प्राप्त कर ले। किंतु जिस प्रकार कुछ व्रतधारियों के निर्जल और निराहार रहने से अन्न और जल की उपयोगिता में बाधा नहीं पड़ती, उसी प्रकार दो-चार योगियों के त्याग से दांपत्य जीवन त्याज्य नहीं हो जाता। दांपत्य मनुष्य के सामाजिक जीवन का मूल है। उसका त्याग कर दीजिए, बस, हमारे सामाजिक संगठन का शीराजा बिखर जाएगा, और हमारी दशा पशुओं के समान हो जाएगी। गार्हस्थ्य को ऋषियों ने सर्वोच्च धर्म कहा है; और अगर शांत हृदय से विचार कीजिए तो विदित हो जाएगा कि ऋषियों का यह कथन अत्युक्ति-मात्र नहीं है। दया, सहानुभूति, सहिष्णुता, उपकार, त्याग आदि देवोचित गुणों के विकास जैसे सुयोग गार्हस्थ्य जीवन में प्राप्त होते हैं, और किसी अवस्था में नहीं मिल सकते। मुझे तो यहां तक कहने में संकोच नहीं है कि मनुष्य के लिए यही एक ऐसी अवस्था है, जो स्वाभाविक कही जा सकती है। जिन कृत्यों ने मानव-जाति का मुख उज्ज्वल कर दिया है, उनका श्रेय योगियों को नहीं, दांपत्य-सुख-भोगियों को है। हरिश्चन्द्र योगी नहीं थे, रामचन्द्र योगी नहीं थे, कृष्ण त्यागी नहीं थे। नेपोलियन त्यागी नहीं था, नेलसन योगी नहीं था। धर्म और विज्ञान के क्षेत्र में त्यागियों ने अवश्य कीर्ति-लाभ की है, लेकिन कर्मक्षेत्र में यश का सेहरा भोगियों के ही सिर बंधा है। इतिहास में ऐसा एक भी प्रमाण नहीं मिलता कि किसी जाति का उद्धार त्यागियों द्वारा हुआ हो। आज भी हिन्दुस्तान में दस लाख से अधिक त्यागी बसते हैं, पर कौन कह सकता है कि उनसे समाज का कुछ उपकार हो रहा है। संभव है, अप्रत्यक्ष रूप से होता हो, पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं होता। फिर यह आशा क्योंकर की जा सकती है कि दांपत्य जीवन की अवहेलना से जाति का विशेष उपकार होगा? हां, अगर अविचार को आप उपकार कहें, तो अवश्य उपकार होगा।

यह कथन समाप्त करके प्रभु सेवक ने सोफिया से कहा—तुमने दोनों वादियों के कथन सुन लिए, तुम इस समय न्याय के आसन पर हो, सत्यासत्य का निर्णय करो।

सोफी—इसका निर्णय तो तुम आप ही कर सकते हो। तुम्हारी समझ में संगीत तो बहुत अच्छी चीज है?

प्रभु सेवक—अवश्य।

सोफी—लेकिन, अगर किसी के घर में आग लगी हुई हो, तो उसके निवासियों को गाते-बजाते देखकर तुम उन्हें क्या कहोगे?

प्रभु सेवक—मूर्ख कहूंगा, और क्या।

सोफी—क्यों, गाना तो कोई बुरी चीज नहीं?

प्रभु सेवक—तो यह साफ-साफ क्यों नहीं कहतीं कि तुमने इन्हें डिग्री दे दी? मैं पहले ही समझ रहा था कि तुम इन्हीं की तरफ झुकोगी?

सोफी—अगर यह भय था, तो तुमने मुझे निर्णायक क्यों बनाया था? तुम्हारी कविता

उच्चकोटि की है। मैं इसे सर्वांग-सुंदर कहने को तैयार हूं। लेकिन तुम्हारा कर्त्तव्य है कि अपनी इस अलौकिक शक्ति को स्वदेश-बंधुओं के हित में लगाओ। अवनति की दशा में शृंगार और प्रेम का राग अलापने की जरूरत नहीं होती, इसे तुम भी स्वीकार करोगे। सामान्य कवियों के लिए कोई बंधन नहीं है–उन पर कोई उत्तरदायित्व नहीं है। लेकिन तुम्हें ईश्वर ने जितनी ही महत्वपूर्ण शक्ति प्रदान की है, उतना ही उत्तरदायित्व भी तुम्हारे ऊपर ज्यादा है।

जब सोफिया चली गई, तो विनय ने प्रभु सेवक से कहा–मैं इस निर्णय को पहले ही से जानता था। तुम लज्जित तो न हुए होगे?

प्रभु सेवक–उसने तुम्हारी मुरौवत की है।

विनयसिंह–भाई, तुम बड़े अन्यायी हो। इतने युक्तिपूर्ण निर्णय पर भी उनके सिर इलजाम लगा ही दिया। मैं तो उनकी विचारशीलता का पहले ही से कायल था। आज से भक्त हो गया। इस निर्णय ने मेरे भाग्य का निर्णय कर दिया। प्रभु, मुझे स्वप्न में भी यह आशा न थी कि मैं इतनी आसानी से लालसा का दास हो जाऊंगा मैं मार्ग से विचलित हो गया, मेरा संयम कपटी मित्र की भांति परीक्षा के पहले ही अवसर पर मेरा साथ छोड़ गया। मैं भली-भांति जानता हूं कि मैं आकाश के तारे तोड़ने जा रहा हूं–वह फल खाने जा रहा हूं, जो मेरे लिए वर्जित है। खूब जानता हूं प्रभु, कि मैं अपने जीवन को नैराश्य की वेदी पर बलिदान कर रहा हूं। अपनी पूज्य माता के हृदय पर कुठाराघात कर रहा हूं, अपनी मर्यादा की नौका को कलंक के सागर में डुबो रहा हूं, अपनी महत्वाकांक्षाओं को विसर्जित कर रहा हूं, पर मेरा अंतकरण इसके लिए मेरा तिरस्कार नहीं करता। सोफिया मेरी किसी तरह नहीं हो सकती, पर मैं उसका हो गया, और आजीवन उसी का रहूंगा।

प्रभु सेवक–विनय, अगर सोफी को यह बात मालूम हो गई, तो यह यहां एक क्षण भी न रहेगी, कहीं वह आत्महत्या न कर ले। ईश्वर के लिए यह अनर्थ न करो।

विनयसिंह–नहीं प्रभु, मैं बहुत जल्द यहां से चला जाऊंगा, और फिर कभी न आऊंगा। मेरा हृदय जलकर भस्म हो जाए, पर सोफी को आंच भी न लगने पावेगी। मैं दूर देश में बैठा हुआ इस विद्या, विवेक और पवित्रता की देवी की उपासना किया करूंगा। मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मेरे प्रेम में वासना का लेश भी नहीं है। मेरे जीवन को सार्थक बनाने के लिए यह अनुराग ही काफी है। यह मत समझो कि मैं सेवा-धर्म का त्याग कर रहा हूं। नहीं, ऐसा न होगा, मैं अब भी सेवा-मार्ग का अनुगामी रहूंगा, अंतर केवल इतना होगा कि निराकार की जगह साकार की, अदृश्य की जगह दृश्यमान की भक्ति करूंगा।

सहसा जाह्नवी ने आकर कहा–विनय, जरा इन्दु के पास चले जाओ, कई दिन से उसका समाचार नहीं मिला। मुझे शंका हो रही है, कहीं बीमार तो नहीं हो गई। खत भेजने में इतना विलंब तो कभी न करती थी।

विनय तैयार हो गए। कुरता पहना, हाथ में सोटा लिया और चल दिए। प्रभु सेवक सोफी के पास आकर बैठ गए और सोचने लगे–विनयसिंह की बातें इससे कहूं या न कहूं। सोफी ने उन्हें चिंतित देखकर पूछा–कुंवर साहब कुछ कहते थे?

प्रभु सेवक–उस विषय में तो कुछ नहीं कहते थे, पर तुम्हारे विषय में ऐसे भाव प्रकट किए, जिनकी संभावना मेरी कल्पना में भी न आ सकती थी।

सोफी ने क्षण-भर जमीन की ओर ताकने के बाद कहा–मैं समझती हूं, पहले ही समझ

जाना चाहिए था, पर मैं इससे चिंतित नहीं हूं। यह भावना मेरे हृदय में उसी दिन अंकुरित हुई, जब यहां आने के चौथे दिन बाद मैंने आंखें खोलीं, और उस अर्द्धचेतना की दशा में एक देव-मूर्ति को सामने खड़े अपनी ओर वात्सल्य-दृष्टि से देखते हुए पाया। वह दृष्टि और वह मूर्ति आज तक मेरे हृदय पर अंकित है और सदैव अंकित रहेगी।

प्रभु सेवक–सोफी, तुम्हें यह कहते हुए लज्जा नहीं आती?

सोफिया–नहीं, लज्जा नहीं आती। लज्जा की बात ही नहीं है। वह मुझे अपने प्रेम के योग्य समझते हैं, यह मेरे लिए गौरव की बात है। ऐसे साधु-प्रकृति, ऐसे त्यागमूर्ति, ऐसे सदुत्साही पुरुष की प्रेम-पात्री बनाने में कोई लज्जा नहीं। अगर प्रेम-प्रसाद पाकर किसी युवती को गर्व होना चाहिए, तो वह युवती मैं हूं। यही वरदान था, जिसके लिए मैं इतने दिनों तक शांत भाव से धैर्य धारण किए हुए मन में तप कर रही थी। वह वरदान आज मुझे मिल गया है, तो यह मेरे लिए लज्जा की बात नहीं, आनंद की बात है।

प्रभु सेवक–धर्म-विरोध के होते हुए भी?

सोफिया–यह विचार उन लोगों के लिए है, जिनके प्रेम वासनाओं से युक्त होते हैं। प्रेम और वासना में उतना ही अंतर है, जितना कंचन और कांच में। प्रेम की सीमा भक्ति से मिलती है, और उनमें केवल मात्रा का भेद है। भक्ति में सम्मान का और प्रेम में सेवाभाव का आधिक्य होता है। प्रेम के लिए धर्म की विभिन्नता कोई बंधन नहीं है। ऐसी बाधाएं उस मनोभाव के लिए हैं, जिसका अंत विवाह है, उस प्रेम के लिए नहीं, जिसका अंत बलिदान है।

प्रभु सेवक–मैंने तुम्हें जता दिया, यहां से चलने के लिए तैयार रहो।

सोफिया–मगर घर पर किसी से इसकी चर्चा करने की जरूरत नहीं।

प्रभु सेवक–इससे निश्चिंत रहो।

सोफिया–कुछ निश्चय हुआ, यहां से उनके जाने का कब इरादा है?

प्रभु सेवक–तैयारियां हो रही हैं। रानीजी को यह बात मालूम हुई, तो विनय के लिए कुशल नहीं। मुझे आश्चर्य न होगा, अगर मामा से इसकी शिकायत करें।

सोफिया ने गर्व से सिर उठाकर कहा–प्रभु, कैसी बच्चों की-सी बातें करते हो? प्रेम अभय का मंत्र है। प्रेम का उपासक संसार की समस्त चिंताओं और बाधाओं से मुक्त हो जाता है।

प्रभु सेवक चले गए, तो सोफिया ने किताब बंद कर दी और बाग में आकर हरी घास पर लेट गई। उसे आज लहराते हुए फूलों में, मंद-मंद चलने वाली वायु में, वृक्षों पर चहकनेवाली चिड़ियों के कलरव में, आकाश में छाई हुई लालिमा में एक विचित्र शोभा, एक अकथनीय सुषमा, एक अलौकिक छटा का अनुभव हो रहा था। वह प्रेम-रत्न पा गई थी।

उस दिन के बाद एक सप्ताह हो गया, पर विनयसिंह ने राजपूताने को प्रस्थान न किया। वह किसी-न-किसी हीले से दिन टालते जाते थे। कोई तैयारी न करनी थी, फिर भी तैयारियां पूरी न होती थीं। अब विनय और सोफिया, दोनों ही को विदित होने लगा कि प्रेम को, जब वह स्त्री और पुरुष में हो, वासना से निर्लिप्त रखना उतना आसान नहीं है, जितना उन्होंने समझा था। सोफी ने एक किताब बगल में दबाकर प्रातःकाल बाग में जा बैठती । शाम को भी कहीं और सैर करने न जाकर वहीं आ जाती। विनय भी उससे कुछ दूर पर लिखते-पढ़ते, कुत्ते से खेलते या किसी मित्र से बातें करते अवश्य दिखाई देते। दोनों एक दूसरे की ओर दबी आंखों

से देख लेते थे, पर संकोचवश कोई बातचीत करने में अग्रसर न होता था। दोनों ही लज्जाशील थे, पर दोनों इस मौन भाषा का आशय समझते थे। पहले इस भाषा का ज्ञान न था। दोनों के मन में एक ही उत्कंठा, एक ही विकलता, एक ही तड़प, एक ही ज्वाला थी। मौन भाषा से उन्हें तस्कीन न होती, पर किसी को वार्तालाप करने का साहस न होता। दोनों अपने-अपने मन में प्रेम-वार्ता की नई-नई उक्तियां सोचकर आते और यहां आकर भूल जाते। दोनों ही व्रतधारी, दोनों ही आदर्शवादी थे, किंतु एक का धर्मग्रंथों की ओर ताकने का जी न चाहता था, दूसरा समिति को अपने निर्धारित विषय पर व्याख्यान देने का अवसर भी न पाता था। दोनों ही के लिए प्रेम-रत्न प्रेम-मद सिद्ध हो रहा था।

एक दिन, रात को, भोजन करने के बाद सोफिया रानी जाह्नवी के पास बैठी हुई कोई समाचार-पत्र पढ़कर सुना रही थी कि विनयसिंह आकर बैठ गए। सोफी की विचित्र दशा हो गई, पढ़ते-पढ़ते भूल जाती कि कहां तक पढ़ चुकी हूं, और पढ़ी हुई पंक्तियों को फिर पढ़ने लगती, वह भी अटक-अटक कर, शब्दों पर आंखें न जमतीं। वह भूल जाना चाहती थी कि कमरे में रानी के अतिरिक्त कोई और बैठा हुआ है, पर बिना विनय की ओर देखे ही उसे दिव्य ज्ञान-सा हो जाता था कि अब वह मेरी ओर ताक रहे हैं, और तत्क्षण उसका मन अस्थिर हो जाता। जाह्नवी ने कई बार टोका-सोती तो नहीं हो? क्या बात है, रुक क्यों जाती हो? आज तुझे क्या हो गया है बेटी? सहसा उनकी दृष्टि विनयसिंह की ओर फिरी-उसी समय जब वह प्रेमातुर नेत्रों से उसकी ओर ताक रहे थे। जाह्नवी का विकसित, शांत मुख-मंडल, तमतमा उठा, मानो बाग में आग लग गई। अग्निमय नेत्रों से विनय की ओर देखकर बोलीं-तुम कब जा रहे हो?

विनयसिंह-बहुत जल्द।

जाह्नवी-मैं बहुत जल्द का आशय यह समझती हूं कि तुम कल प्रातःकाल ही प्रस्थान करोगे।

विनयसिंह-अभी साथ जाने वाले कई सेवक बाहर गए हुए हैं।

जाह्नवी-कोई चिंता नहीं। वे पीछे चले जाएंगे, तुम्हें कल प्रस्थान करना होगा।

विनयसिंह-जैसी आज्ञा।

जाह्नवी-अभी जाकर सब आदमियों को सूचना दे दो। मैं चाहती हूं कि तुम स्टेशन पर सूर्य के दर्शन करो।

विनय-इन्दु से मिलने जाना है।

जाह्नवी-कोई जरूरत नहीं। मिलने-भेंटने की प्रथा स्त्रियों के लिए है, पुरुषों के लिए नहीं, जाओ।

विनय को फिर कुछ कहने की हिम्मत न हुई, आहिस्ता से उठे और चले गए।

सोफी ने साहस करके कहा-आजकल तो राजपूताने में आग बरसती होगी।

जाह्नवी ने निश्चयात्मक भाव से कहा-कर्त्तव्य कभी आग और पानी की परवा नहीं करता। जाओ तुम भी सो रहो, सबेरे उठना है।

सोफी सारी रात बैठी रही। विनय से एक बार मिलने के लिए उसका हृदय तड़फड़ा रहा था-आह ! वह कल चले जाएंगे, और मैं उनसे विदा भी न हो सकूंगी। वह बार-बार खिड़की से झांकती कि कहीं विनय की आहट मिल जाए। छत पर चढ़कर देखा, अंधकार छाया हुआ

था, तारागण उसकी आतुरता पर हंस रहे थे। उसके जी में कई बार प्रबल आवेग हुआ कि छत पर से नीचे बाग में कूद पड़ूं, कमरे में जाऊं और कहूं-मैं तुम्हारी हूं ! आह ! अगर संप्रदाय ने हमारे और उनके बीच में बाधा न खड़ी कर दी होती, तो वह इतने चिंतित क्यों होते, मुझको इतना संकोच क्यों होता, रानी मेरी अवहेलना क्यों करतीं? अगर मैं राजपूतनी होती तो रानी सहर्ष मुझे स्वीकार करतीं, पर मैं ईसा की अनुचरी होने के कारण त्याज्य हूं। ईसा और कृष्ण में कितनी समानता है, पर उनके अनुचरों में कितनी विभिन्नता है। कैसा अनर्थ है ! कौन कह सकता है कि सांप्रदायिक भेदों ने हमारी आत्माओं पर कितना अत्याचार किया है।

ज्यों-ज्यों रात बीतती थी, सोफी का दिल नैराश्य से बैठा जाता-हाय, मैं यों ही बैठी रहूंगी और सबेरा हो जाएगा, विनय चले जाएंगे। कोई ऐसा भी तो नहीं, जिसके हाथों एक पत्र लिखकर भेज दूं। मेरे ही कारण तो उन्हें यह दंड मिल रहा है। माता का हृदय भी निर्दय होता है। मैं समझी थी, मैं ही अभागिनी हूं, पर अब मालूम हुआ, ऐसी माताएं और भी हैं।

तब वह छत पर से उतरी और अपने कमरे में जाकर लेट रही। नैराश्य ने निद्रा की शरण ली, पर चिंता की निद्रा क्षुधावस्था का विनोद है-शांतिविहीन और नीरस। जरा ही देर सोई थी कि चौंककर उठ बैठी। सूर्य का प्रकाश कमरे में फैल गया था, और विनयसिंह अपने बीसों साथियों के साथ स्टेशन जाने को तैयार खड़े थे। बाग में हजारों आदमियों की भीड़ लगी हुई थी।

वह तुरंत बाग में आ पहुंची और भीड़ को हटाती हुई यात्रियों के सम्मुख आकर खड़ी हो गई। राष्ट्रीय गान हो रहा था, यात्री नंगे सिर, नंगे पैर, एक-एक कुरता पहने, हाथ में लकड़ी लिए, गरदनों में एक-एक थैली लटकाए चलने को तैयार थे। सब-के-सब प्रसन्न-वदन, उल्लास से भरे हुए, जातीयता के गर्व से उन्मत्त थे, जिनको देखकर दर्शकों के मन गौरवान्वित हो रहे थे। एक क्षण में रानी जाह्नवी आईं और यात्रियों के मस्तक पर केसर के तिलक लगाए। तब कुंवर भरतसिंह ने आकर उनके गलों में हार पहनाए। इसके बाद डाक्टर गांगुली ने चुने हुए शब्दों में उन्हें उपेदश दिया। उपदेश सुनकर यात्री लोग प्रस्थित हुए। जयजयकार की ध्वनि सहस्र-सहस्र कंठों से निकलकर वायुमंडल को प्रतिध्वनित करने लगी। स्त्रियों और पुरुषों का एक समूह उनके पीछे-पीछे चला। सोफिया यंत्रवत् खड़ी यह दृश्य देख रही थी। उसके हृदय में बार-बार उत्कंठा होती थी, मैं भी इन्हीं यात्रियों के साथ चली जाऊं और अपने दुःखित बंधुओं की सेवा करूं। उसकी आंखें विनयसिंह की ओर लगी हुई थीं। एकाएक विनयसिंह की आंखें उसकी ओर फिरीं, उनमें कितना नैराश्य था, कितनी मर्म-वेदना, कितनी विवशता, कितनी विनय ! वह सब यात्रियों के पीछे चल रहे थे, बहुत धीरे-धीरे, मानो पैरों में बेड़ी पड़ी हुई हो। सोफिया उपचेतना की अवस्था में यात्रियों के पीछे-पीछे चली, और उसी दशा में सड़क पर आ पहुंची, फिर चौराहा मिला, इसके बाद किसी राजा का विशाल भवन मिला, पर अभी तक सोफी को खबर न हुई कि मैं इनके साथ चली आ रही हूं। उसे इस समय विनयसिंह के सिवा और कोई नजर ही न आता था। कोई प्रबल आकर्षण उसे खींचे लिए जाता था। यहां तक कि वह स्टेशन के समीप के चौराहे पर पहुंच गई। अचानक उसके कानों में प्रभु सेवक की आवाज आई, जो बड़े वेग से फिटन दौड़ाए चले आते थे।

प्रभु सेवक ने पूछा-सोफी, तुम कहां जा रही हो? जूते तक नहीं, केवल स्लीपर पहने हो।

सोफिया पर घड़ों पानी पड़ गया—आह ! मैं इस वेश में कहां चली आई ! मुझे सुधि ही न रही। लजाती हुई बोली—कहीं तो नहीं।

प्रभु सेवक—क्या इन लोगों के साथ स्टेशन तक जाओगी? आओ, गाड़ी पर बैठ जाओ। मैं भी वहीं चलता हूं। मुझे तो अभी-अभी मालूम हुआ कि ये लोग जा रहे हैं, जल्दी से गाड़ी तैयार कराके आ पहुंचा, नहीं तो मुलाकात भी न होती।

सोफी—मैं इतनी दूर निकल आई, और जरा भी खयाल न आया कि कहां जा रही हूं।

प्रभु सेवक—आकर बैठ न जाओ। इतनी दूर आई हो, तो स्टेशन तक और चली चलो।

सोफी—मैं स्टेशन न जाऊंगी। यहीं से लौट जाऊंगी।

प्रभु सेवक—मैं स्टेशन से लौटता हुआ आऊंगा। आज तुम्हें मेरे साथ घर चलना होगा।

सोफी—मैं वहां न जाऊंगी।

प्रभु सेवक—बड़े पापा बहुत नाराज होंगे। आज उन्होंने तुम्हें बहुत आग्रह करके बुलाया है।

सोफी—जब तक मामा मुझे खुद आकर न ले जाएंगी, उस घर में कदम न रखूंगी।

यह कहकर सोफी लौट पड़ी, और प्रभु सेवक स्टेशन की तरफ चल दिए।

स्टेशन पर पहुंचकर विनय ने चारों तरफ आंखें फाड़-फाड़कर देखा, सोफी न थी।

प्रभु सेवक ने उसके कानों में कहा—धर्मशाले तक यों ही रात के कपड़े पहने चली आई थी, वहां से लौट गई। जाकर खत जरूर लिखिएगा, वरना वह राजपूताने जा पहुंचेगी।

विनय ने गद्‌गद कंठ से कहा—केवल देह लेकर जा रहा हूं, हृदय यहीं छोड़े जाता हूं।

दस

बालकों पर प्रेम की भांति द्वेष का असर भी अधिक होता है। जब से मिठुआ और घीसू को मालूम हुआ था कि ताहिरअली हमारा मैदान जबरदस्ती ले रहे हैं, तब से दोनों उन्हें अपना दुश्मन समझते थे। चतारी के राजा साहब और सूरदास में जो बातें हुई थीं, उनकी उन दोनों को खबर न थी। सूरदास को स्वयं शंका थी कि यद्यपि राजा साहब ने आश्वासन दिया है, पर शीघ्र ही यह समस्या फिर उपस्थित होगी। जॉन सेवक साहब इतनी आसानी से गला छोड़ने वाले नहीं हैं। बजरंगी, नायकराम आदि भी इसी प्रकार की बातें करते रहते थे। मिठुआ और घीसू इन बातों को बड़े प्रेम से सुनते, और उनकी द्वेषाग्नि और भी प्रचंड होती थी। घीसू जब भैंसें लेकर मैदान जाता तो जोर-जोर से पुकारता—देखें, कौन हमारी जमीन लेता है, उठाकर ऐसा पटकूं कि वह भी याद करे। दोनों टांगें तोड़ दूंगा। कुछ खेल समझ लिया है। वह जरा था भी कड़े दम, कुश्ती लड़ता था। बजरंगी खुद भी जवानी में अच्छा पहलवान था। घीसू को वह शहर के पहलवानों की नाक बना देना चाहता था, जिससे पंजाबी पहलवानों को भी ताल ठोकने की हिम्मत न पड़े, दूर-दूर जाकर दंगल मारे, लोग कहें—'यह बजरंगी का बेटा है।' अभी से घीसू को अखाड़े भेजता था। घीसू अपने घमंड में समझता था कि मुझे जो पेंच मालूम हैं, उनसे जिसे चाहूं, गिरा दूं। मिठुआ कुश्ती तो न लड़ता था, पर कभी-कभी अखाड़े की तरफ जा बैठता था। उसे अपनी

पहलवानी की डींग मारने के लिए इतना ही काफी था। दोनों जब ताहिरअली को कहीं देखते, तो सुना-सुनाकर कहते—दुस्मन जाता है, उसका मुंह काला ! मिठुआ कहता—जै संकर, कांटा लगे न कंकर, दुस्मन को तंग कर। घीसू कहता—बम भोला, बैरी के पेट में गोला, उससे कुछ न जाए बोला !

ताहिरअली इन छोकरों की छिछोरी बातें सुनते और अनसुनी कर जाते। लड़कों के मुंह क्या लगें। सोचते—कहीं ये सब गालियां दे बैठें, तो इनका क्या बना लूंगा। वे दोनों समझते, डर के मारे नहीं बोलते, और भी शेर हो जाते। घीसू मिठुआ पर उन पेंचों का अभ्यास करता, जिनसे वह ताहिरअली को पटकेगा। पहले यह हाथ पकड़ा, फिर अपनी तरफ खींचा, तब वह हाथ गर्दन में डाल दिया और अडंगी लगाई, बस चित। मिठुआ फौरन गिर पड़ता था, और उसे इस पेंच के अद्‌भुत प्रभाव का विश्वास हो जाता था।

एक दिन दोनों ने सलाह की—चलकर मियांजी के लड़कों की खबर लेनी चाहिए। मैदान में जाकर जाहिर और जाबिर को खेलने के लिए बुलाया था, और खूब चपतें लगाईं। जाबिर छोटा था, उसे मिठुआ ने दाबा। जाहिर और घीसू का जोड़ था, लेकिन घीसू अखाड़ा देखे हुए था, कुछ दांव-पेच जानता ही था, आन-की-आन में जाहिर को दबा बैठा। मिठुआ ने जाबिर के चुटकियां काटनी शुरू कीं। बेचारा रोने लगा। घीसू ने जाहिर को कई घिस्से दिए, वह भी चौंधिया गया, जब देखा कि यह तो मार ही डालेगा, तो उसने भी फरियाद मचाई। इन दोनों का रोना सुनकर नन्हा सा साबिर एक पतली-सी टहनी लिए, अकड़ता हुआ पीड़ितों की सहायता करने आया, और घीसू को टहनी से मारने लगा। जब इस शस्त्र-प्रहार का घीसू पर कुछ असर न हुआ, तो उसने इससे ज्यादा चोट करने वाला बाण निकाला—घीसू पर थूकने लगा। घीसू ने जाहिर को छोड़ दिया, और साबिर के दो-तीन तमाचे लगाए। जाहिर मौका पाकर फिर उठा, और अबकी ज्यादा सावधान होकर घीसू से चिमट गया। दोनों में मल्ल-युद्ध होने लगा। आखिर घीसू ने उसे फिर पटका और मुश्कें चढ़ा दीं। जाहिर को अब रोने के सिवा कोई उपाय न सूझा, जो निर्बलों का अंतिम आधार है। तीनों की आर्त्तध्वनि माहिरअली के कान में पहुंची। वह इस समय स्कूल जाने को तैयार थे। तुरंत किताबें पटक दीं और मैदान की तरफ दौड़े। देखा, तो जाबिर और जाहिर नीचे पड़े हाय-हाय कर रहे हैं और साबिर अलग बिलबिला रहा है। कुलीनता का रक्त खौल उठा, मैं सैयद, पुलिस के अफसर का बेटा, चुंगी के मुहर्रिर का भाई, अंगरेजी के आठवें दरजे का विद्यार्थी ! यह मूर्ख, उजड्ड अहीर का लौंडा, इसकी इतनी मजाल कि मेरे भाइयों को नीचा दिखाए। घीसू को एक ठोकर लगाई और मिठुआ को कई तमाचे। मिठुआ तो रोने लगा, किंतु घीसू चिमड़ा था। जाहिर को छोड़कर उठा, हौसले बढ़े हुए थे, दो मोरचे जीत चुका था, ताल ठोककर माहिरअली से भी लिपट गया। माहिर का सफेद पाजामा मैला हो गया, आज ही जूते में रोगन लगाया था, उस पर गर्द पड़ गई, संवारे हुए बाल बिखर गए, क्रोधोन्मत्त होकर घीसू को इतनी जोर से धक्का दिया कि वह दो कदम पर जा गिरा। साबिर, जाहिर, जाबिर, सब हंसने लगे। लड़कों की चोट का प्रतिकार के साथ ही गायब हो जाती है। घीसू इनको हंसते देखकर और भी झुंझलाया, फिर उठा और माहिरअली से लिपट गया। माहिर ने उसका टेंटुआ पकड़ा और जोर से दबाने लगे। घीसू ने समझा, अब मरा, यह बिना मारे न छोड़ेगा। मरता क्या न करता, माहिर के हाथ में दांत जमा दिए, तीन दांत गड़ गए, खून बहने लगा। माहिर चिल्ला उठे, उसका गला छोड़कर अपना हाथ छुड़ाने का यत्न करने लगे, मगर घीसू किसी भांति न

छोड़ता था। खून बहते देखकर तीनों भाइयों ने फिर रोना शुरू किया। जैनब और रकिया यह हंगामा सुनकर दरवाजे पर आ गईं। देखा तो समरभूमि रक्त से प्लावित हो रही है, गालियां देती हुई ताहिरअली के पास आईं। जैनब ने तिरस्कार भाव से कहा—तुम यहां बैठे खालें नोच रहे हो, कुछ दीन-दुनिया की भी खबर है। वहां वह अहीर का लौंडा हमारे लड़कों का खून-खच्चर किए डालता है। मुए को पकड़ पाती, तो खून ही चूस लेती।

रकिया—मुआ आदमी है कि देव-बच्चा है ! माहिर के हाथ में इतनी जोर से दांत काटा है कि खून के फौवारे निकल रहे हैं। कोई दूसरा मर्द होता, तो इसी बात पर मुए को जीता गाड़ देता।

जैनब—कोई अपना होता, तो इस वक्त मूड़ीकाटे को कच्चा ही चबा जाता।

ताहिरअली घबराकर मैदान की ओर दौड़े। माहिर के कपड़े खून से तर देखे, तो जामे से बाहर हो गए। घीसू के कान पकड़कर जोर से हिलाये और तमाचे-पर-तमाचे लगाने शुरू किये। मिठुआ ने देखा, अब पिटने की बारी आई, मैदान हमारे हाथ से गया, गालियां देता हुआ भागा, इधर घीसू ने भी गालियां देनी शुरू कीं। शहर के लौंडे गालो की कला में सिद्धहस्त होते हैं। घीसू नई-नई अछूती गालियां दे रहा था और ताहिरअली गालियों का जवाब तमाचों से दे रहे थे। मिठुआ ने जाकर इस संग्राम की सूचना बजरंगी को दी—सब लोग मिलकर घीसू को मार रहे हैं, उसके मुंह से लहू निकल रहा है। वह भैंसें चरा रहा था, बस तीनों लड़के आकर भैंसों को भगाने लगे। घीसू ने मना किया, तो सबों ने मिलकर मारा, और बड़े मियां भी निकलकर मार रहे हैं। बजरंगी यह खबर सुनते ही आग हो गया। उसने ताहिरअली की माताओं को पचास रुपये दिए थे और उस जमीन को अपनी समझे बैठा था। लाठी उठाई और दौड़ा। देखा, तो ताहिरअली घीसू के हाथ-पांव बंधवा रहे हैं। पागल हो गया, बोला—बस, मुंसीजी, भला चाहते हो, तो हट जाओ, नहीं तो सारी सेखी भुला दूंगा, यहां जेहल का डर नहीं है, साल-दो साल वहीं काट आऊंगा, लेकिन तुम्हें किसी काम का न रखूंगा। जमीन तुम्हारे बाप की नहीं है। इसीलिए तुम्हें पचास रुपये दिए हैं। क्या वे हराम के रुपये थे? बस, हट ही जाओ, नहीं तो कच्चा चबा जाऊंगा, मेरा नाम बजरंगी है।

ताहिरअली ने अभी कुछ जवाब न दिया था कि घीसू ने बाप को देखते ही जोर से छलांग मारी और एक पत्थर उठाकर ताहिरअली की तरफ फेंका। वह सिर नीचा न कर लें तो माथा फट जाए। जब तक घीसू दूसरा पत्थर उठाए, उन्होंने लपककर उसका हाथ पकड़ा और इतनी जोर से ऐंठा कि वह 'आह मरा ! आह मरा !' कहता हुआ जमीन पर गिर पड़ा। अब बजरंगी आपे से बाहर हो गया। झपटकर ऐसी लाठी मारी कि ताहिरअली तिलमिलाकर गिर पड़े। कई चमार, जो अब तक इसे लड़कों का झगड़ा समझकर चुपचाप बैठे थे, ताहिरअली को गिरते देखकर दौड़े और बजरंगी को पकड़ लिया। समर-क्षेत्र में सन्नाटा छा गया। हां, जैनब और रकिया द्वार पर खड़े शब्द-बाण चलाती जाती थीं—मूड़ीकाटे ने गजब कर दिया, इस पर खुदा का कहर गिरे, दूसरा दिन देखना नसीब न हो, इसकी मैयत उठे, कोई दौड़कर साहब के पास क्यों जाकर इत्तिला नहीं करता ! अरे-अरे चमारो, बैठे मुंह क्या ताकते हो, जाकर साहब को खबर क्यों नहीं देते, कहना—अभी चलिए। साथ लाना, कहना—पुलिस लेते चलिए, यहां जान देने नहीं आए हैं।

बजरंगी ने ताहिरअली को गिरते देखा, तो संभल गया, दूसरा हाथ न चलाया। घीसू का

हाथ पकड़ा और घर चला गया। यहां घर में कुहराम मचा। दो चमार जॉन सेवक के बंगले की तरफ गए। ताहिरअली को लोगों ने उठाया और चारपाई पर लादकर कमरे में लाए। कंधे पर लाठी पड़ी थी, शायद हड्डी टूट गई थी। अभी तक बेहोश थे। चमारों ने तुरंत हल्दी पीसी और उसे गुड़-चने में मिलाकर उनके कंधे में लगाया। एक आदमी लपककर रेंड़ के पत्ते तोड़ लाया, दो आदमी बैठकर सेंकने लगे। जैनब और रकिया तो माहिरअली की मरहम-पट्टी करने लगीं, बेचारी कुल्सूम दरवाजे पर खड़ी रो रही थी। पति की ओर उससे ताका भी न जाता था। गिरने से उनके सिर में चोट आ गई थी। लहू बहकर माथे पर जम गया था। बालों में लटें पड़ गई थीं, मानो किसी चित्रकार के ब्रुश में रंग सूख गया हो। हृदय में शूल उठ रहा था, पर पति के मुख की ओर ताकते ही उसे मूर्च्छा-सी आने लगती थी, दूर खड़ी थी, यह विचार भी मन में उठ रहा था कि ये सब आदमी अपने दिल में क्या कहते होंगे। इसे पति के प्रति जरा भी प्रेम नहीं, खड़ी तमाशा देख रही है। क्या करूं, उनका चेहरा न जाने कैसा हो गया है ! वही चेहरा, जिसकी कभी बलाएं ली जाती थीं, मरने के बाद भयावह हो जाता है, उसकी ओर दृष्टिपात करने के लिए कलेजे को मजबूत करना पड़ता है। जीवन की भांति मृत्यु का भी सबसे विशिष्ट आलोक मुख ही पर पड़ता है। ताहिरअली की दिन-भर सेंक-बांध हुई। चमारों ने इस तरह दौड़-धूप की, मानो उनका कोई अपना इष्ट मित्र है। क्रियात्मक सहानुभूति ग्राम-निवासियों का विशेष गुण है। रात को भी कई चमार उनके पास बैठे सेंकते-बांधते रहे। जैनब और रकिया बार-बार कुल्सूम को ताने देतीं—बहन, तुम्हारा दिल भी गजब का है। शौहर का वहां बुरा हाल हो रहा है और तुम यहां मजे से बैठी हो। हमारे मियां के सिर में जरा-सा दर्द होता था, तो हमारी जान नाखून में समा जाती थी। आजकल की औरतों का कलेजा सचमुच पत्थर का होता है। कुल्सूम का हृदय इन बाणों से बिंध जाता था, पर यह कहने का साहस न होता था कि तुम्हीं दोनों क्यों नहीं चली जातीं? आखिर तुम भी तो उन्हीं की कमाई खाती हो, और मुझसे अधिक। किंतु इतना कहती, तो बचकर कहां जाती, दोनों उसके गले पड़ जाती। सारी रात जागती रही। बार-बार द्वार पर आहट ले आती थी। किसी भांति रात कटी। प्रात:काल ताहिरअली की आंखें खुली, दर्द से अब भी कराह रहे थे, पर अब अवस्था उतनी शोचनीय न थी। तकिए के सहारे बैठ गए। कुल्सूम ने उन्हें चमारों से बातें करते सुना। उसे ऐसा जान पड़ा कि इनका स्वर कुछ विकृत हो गया है। चमारों ने ज्योंही उन्हें होश में देखा, समझ गए कि अब हमारी जरूरत नहीं रही, अब घरवालों की सेवा-सुश्रूषा का अवसर आ गया। एक-एक करके बिदा हो गए। अब कुल्सूम ने चित्त को सावधान किया और पति के पास आ बैठी। ताहिरअली ने उसे देखा, तो क्षीण स्वर में बोले—खुदा ने मुझे नमकहरामी की सजा दी है। जिनके लिए अपने आका का बुरा चेता, वही अपने दुश्मन हो गए।

कुल्सूम—तुम यह नौकरी छोड़ क्यों नहीं देते? जब तक जमीन का मुआमला तय न हो जाएगा, एक-न-एक झगड़ा-बखेड़ा रोज होता रहेगा, लोगों से दुश्मनी बढ़ती जाएगी। यहां जान थोड़े ही देनी है। खुदा ने जैसे इतने दिन रोजी दी, वैसे ही फिर देगा। जान तो सलामत रहेगी।

ताहिर—जान तो सलामत रहेगी, पर गुजर क्योंकर होगा, कौन इतना दिए देता है? देखती हो कि अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे आदमी मारे-मारे फिरते हैं।

कुल्सूम—न इतना मिलेगा, न सही, इसका आधा तो मिलेगा। दोनों वक्त न खायंगे, एक ही वक्त ही सही, जान तो आफत में न रहेगी।

ताहिर–तुम एक वक्त खाकर खुश रहोगी, घर में और लोग भी तो हैं, उनके दुखड़े रोज कौन सुनेगा? मुझे अपनी जान से दुश्मनी थोड़े ही है, पर मजबूर हूं! खुदा को जो मंजूर होगा, वह पेश आएगा।

कुल्सूम–घर के लोगों के पीछे क्या जान दे दोगे?

ताहिर–कैसी बातें करती हो, आखिर वे लोग कोई गैर तो नहीं हैं? अपने ही भाई हैं, अपनी माएं हैं। उनकी परवरिश मेरे सिवा और कौन करेगा?

कुल्सूम–तुम समझते होगे, वे तुम्हारे मोहताज हैं, मगर उन्हें तुम्हारी रत्ती-भर भी परवा नहीं। सोचती हैं, जब तक मुफ्त का मिले, अपने खजाने में क्यों हाथ लगायें। मेरे बच्चे पैसे-पैसे को तरसते हैं और वहां मिठाईयों की हांड़ियां आती हैं, उनके लड़के मजे से खाते हैं। देखती हूं और आंखें बंद कर लेती हूं।

ताहिर–मेरा जो फर्ज है, उसे पूरा करता हूं। अगर उनके पास रुपये हैं, तो इसका मुझे क्यों अफसोस हो, वे शौक से खाएं, आराम से रहें। तुम्हारी बातों से हसद की बू आती है। खुदा के लिए मुझसे ऐसी बातें न किया करो।

कुल्सूम–पछताओगे, जब समझाती हूं, मुझ ही पर नाराज होते हो, लेकिन देख लेना, कोई बात न पूछेगा।

ताहिर–यह सब तुम्हारी नियत का कसूर है।

कुल्सूम–हां, औरत हूं, मुझे अक्ल कहां। पड़े तो हो, किसी ने झांका तक नहीं। कलक होती, तो यों चैन से न बैठी रहतीं।

ताहिरअली ने करवट ली, तो कंधे में असह्य वेदना हुई। 'आह-आह' करके चिल्ला उठे। माथे पर पसीना आ गया। कुल्सूम घबराकर बोली–किसी को भेजकर डाक्टर को क्यों नहीं बुला लेते? कहीं हड्डी पर जरब न आ गया हो।

ताहिर–हां, मुझे भी ऐसा ही खौफ होता है, मगर डाक्टर को बुलाऊं तो उसकी फीस के रुपये कहां से आवेंगे?

कुल्सूम–तनख्वाह तो अभी मिली थी, क्या इतनी जल्द खर्च हो गई?

ताहिर–खर्च तो नहीं हो गई, लेकिन फीस की गुंजाइश नहीं है। अबकी माहिर की तीन महीने की फीस देनी होगी। बारह रुपये तो फीस ही के निकल जाएंगे, सिर्फ उठारह रुपये बचेंगे। अभी तो पूरा महीना पड़ा हुआ है। क्या फाके करेंगे?

कुल्सूम–जब देखो, माहिर की फीस का तकाजा सिर पर सवार रहहा है। अभी दस दिन हुए, फीस दी नहीं गई?

ताहिर–दस दिन नहीं हुए, एक महीना हो गया।

कुल्सूम–फीस अबकी न दी जाएगी। डाक्टर की फीस उनकी फीस से जरूरी है। वह पढ़कर रुपये कमायंगे, तो मेरा घर न भरेंगे। मुझे तो तुम्हारी ही जात का भरोसा है।

ताहिर–(बात बदलकर) इन मूजियों की जब तक अच्छी तरह तंबीह न हो जाएगी, शरारत से बाज न आयंगे।

कुल्सूम–सारी शरारत इसी माहिर की थी। लड़कों में लड़ाई-झगड़ा होता ही रहता है। यह वहां न जाता तो क्यों मुआमला इतना तूल खींचता? इस पर जो अहीर के लौंडे ने जरा दांत काट लिया, तो तुम भन्ना उठे।

ताहिर—मुझे तो खून के छींटे देखते ही जैसे सिर पर भूत सवार हो गया।

इतने में घीसू की मां जमुनी आ पहुंची। जैनब ने उसे देखते ही तुरंत बुला लिया और डांटकर कहा—मालूम होता है, तेरी शामत आ गई है।

जमुनी—बेगम साहब, सामत नहीं आई है, बुरे दिन आए हैं, और क्या कहूं। मैं कल दही बेचकर लौटी, तो यह हाल सुना। सीधे आपकी खिदमत में दौड़ी, पर यहां बहुत-से आदमी जमा थे, लाज के मारे लौट गई। आज दही बेचने नहीं गई। बहुत डरते-डरते आई हूं। जो कुछ भूल-चूक हुई, उसे माफ कीजिए, नहीं तो उजड़ जाएंगे, कहीं ठिकाना नहीं है।

जैनब—अब हमारे किए कुछ नहीं हो सकता। साहब बिना मुकदमा चलाए न मानेंगे, और वह न चलाएंगे, तो हम चलाएंगे। हम कोई धुनिये-जुलाहे हैं? यों सबसे दबते फिरें, तो इज्जत कैसे रहे? मियां के बाप थानेदार थे, सारा इलाका नाम से कांपता था, बड़े-बड़े रईस हाथ बांधे सामने खड़े रहते थे। उनकी औलाद क्या ऐसी गई-गुजरी हो गई कि छोटे-छोटे आदमी बेइज्जती करें। तेरे लौंडे ने माहिर को इतनी जोर से दांत काटा कि लहू-लुहान हो गया, पट्टी बांधे पड़ा है। तेरे शौहर ने आकर लड़के को डांट दिया होता, तो बिगड़ी बात बन जाती। लेकिन उसने तो आते-ही-आते लाठी का वार कर दिया। हम शरीफ लोग हैं, इतनी रिआयत नहीं कर सकते।

रकिया—जब पुलिस आकर मारते-मारते कचूमर निकाल देगी, तब होश आएगा, नजर-नियाज देनी पड़ेगी, वह अलग। तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा।

जमुनी को अपने पति के हिस्से का व्यावहारिक ज्ञान भी मिला था। इन धमकियों से भयभीत न होकर बोली—बेगम साहब, यहां इतने रुपये कहां धरे है, दूध-पानी करके दस-पांच रुपये बटोरे हैं। वहीं तक अपनी दौड़ है। इस रोजगार में अब क्या रखा है। रुपये का तीन पसेरी तो भूसा मिलता है। एक रुपये में एक भैंस का पेट नहीं भरता। उस पर खली, बिनौला, भूसी, चोकर सभी कुछ चाहिए। किसी तरह दिन काट रहे हैं। आपके बाल-बच्चों को साल-छः महीने दूध पिला दूंगी।

जैनब समझ गई कि यह अहीरन कच्ची गोटी नहीं खेली है। इसके लिए किसी दूसरे ही मंत्र का प्रयोग करना पड़ेगा। नाक सिकोड़कर बोली—तू अपना दूध अपने घर रख, यहां दूध-घी के ऐसे भूखे नहीं हैं। यह जमीन अपनी हुई जाती है, जितने जानवर चाहूंगी,पाल लूंगी। मगर तुझसे कहे देती हूं कि तू कल से घर में न बैठने पाएगी। पुलिस की रपट तो साहब के हाथ में है, पर हमें भी खुदा ने ऐसा इल्म दिया है कि जहां एक नक्श लिखकर दम किया कि जिन्नात अपना काम करने लगे। जब हमारे मियां जिंदा थे, तो एक बार पुलिस के एक बड़े अंगरेज हाकिम से कुछ हुज्जत हो गई। बोला—हम तुमको निकाल देंगे। मियां ने कहा, हमें निकाल दोगे, तो तुम भी आराम से न बैठोगे। मियां ने आकर मुझसे कहा। मैंने उसी रात को सुलेमानी नक्श लिखकर दम किया, उसकी मेम साहब का पूरा हमल गिर गया। दौड़ा हुआ आया, खुशामदें कीं, पैरों पर गिरा, मियां से कसूर मुआफ कराया, तब मेम की जान बची। क्यों रकिया, तुम्हें याद है न?

रकिया—याद क्यों नहीं है, मैंने ही तो दुआ पढ़ी थी। साहब रात को दरवाजे पर पुकारता था।

जैनब—हम अपनी तरफ से किसी की बुराई नहीं चाहते, लेकिन जब जान पर आ बनती

है, तो सबक भी ऐसा दे देते हैं कि जिंदगी भर न भूले। अभी अपने पीर से कह दें, तो खुदा जाने क्या गजब ढाए। तुम्हें याद है रकिया, एक अहीर ने उन्हें दूध में पानी मिलाकर दिया था, उनकी जबान से इतना ही निकला—जा, तुझसे खुदा समझे। अहीर ने घर आकर देखा, तो उसकी दो सौ रु० की भैंस मर गई थी।

जमुनी ने ये बातें सुनीं, तो होश उड़ गए। अन्य स्त्रियों की भांति वह भी थाना, पुलिस, कचहरी और दरबार की अपेक्षा भूत-पिशाचों से ज्यादा डरी रहती थी। पास-पड़ोस में पिशाच-लीला देखने के अवसर आए दिन मिलते ही रहते थे। मुल्लाओं के यंत्र-मंत्र कहीं ज्यादा लागू होते हैं, यह भी जानती थी। जैनब बेगम ने उसकी पिशाच-भीरुता को लक्षित करके अपनी विषय-चातुरी का परिचय दिया। जमुनी भयभीत होकर बोली—नहीं बेगम साहब, आपको भी भगवान् ने बाल-बच्चे दिए हैं, ऐसा जुलुम न कीजिएगा, नहीं तो मर जाऊंगी।

जैनब—यह भी न करें, वह भी न करें, तो इज्जत कैसे रहे? कल को तेरा अहीर फिर लट्ठ लेकर आ पहुंचे तो? खुदा ने चाहा, तो अब वह लट्ठ उठाने लायक रह ही न जाएगा।

जमुनी थरथराकर पैरों पर गिर पड़ी और बोली—बीबी, जो हुकुम हो, उसके लिए हाजिर हूं।

जैनब ने चोट-पर चोट लगाई और जमुनी के बहुत रोने-गिड़गिड़ाने पर पच्चीस रुपये लेकर जिन्नात से उसे अभयदान दिया। घर गई, रुपये लाकर दिए और पैरों पर गिरी, मगर बजरंगी से यह बात न कही। वह चली तो जैनब ने हंसकर कहा—खुदा देता है तो छप्पर फाड़कर देता है। इसका तो सान-गुमान भी न था। तुम बेसब्र हो जाती हो, नहीं तो मैंने कुछ-न-कुछ और ऐंठा होता। सवार को चाहिए कि बाग हमेशा कड़ी रखे।

सहसा साबिर ने आकर जैनब से कहा—आपको अब्बा बुलाते हैं। जैनब वहां गई, तो ताहिरअली को पड़े कराहते देखा। कल्सूम से बोली--बीवी, गजब का तुम्हारा जिगर है। अरे भले आदमी, जाकर जरा मूंग की दलिया पका दे। गरीब ने रात को कुछ नहीं खाया, इस वक्त भी मुंह में कुछ न जाएगा, तो क्या हाल होगा?

ताहिर--नहीं, मेरा कुछ खाने को जी नहीं चाहता। आपको इसलिए तकलीफ दी है कि अगर आपके पास कुछ रुपये हों, तो मुझे कर्ज के तौर पर दे दीजिए। मेरे कंधों में बड़ा दर्द है, शायद हड्डी टूट गई है, डाक्टर को दिखाना चाहता हूं, मगर उसकी फीस के लिए रुपयों की जरूरत है।

जैनब—बेटा, भला सोचो तो, मेरे पास रुपये कहां से आएंगे, तुम्हारे सिर की कसम खाकर कहती हूं। मगर तुम डाक्टर को बुलाओ ही क्यों? तुम्हें सीधे साहब के यहां जाना चाहिए। यह हंगामा उन्हीं की बदौलत तो हुआ है, नहीं तो यहां हमसे किसी से क्या गरज थी। एक इक्का मंगवा लो और साहब यहां चले जाओ। वह एक रुक्का, लिख देंगे, तो सरकारी शफाखाने में खासी तरह इलाज हो जाएगा। तुम्हीं सोचो, हमारी हैसियत डाक्टर बुलाने की है?

ताहिरअली के दिल में यह बात बैठ गई। माता को धन्यवाद दिया। सोचा, न जाने यही बात मेरी समझ में क्यों नहीं आई। इक्का मंगवाया, लाठी के सहारे बड़ी मुश्किल से उस पर सवार हुए और साहब के बंगले पर पहुंचे।

मिस्टर सेवक, राजा महेन्द्रकुमार से मिलने के बाद, कंपनी के हिस्से बेचने के लिए बाहर चले गए थे और उन्हें लौटे हुए आज तीन दिन हो गए थे। कल वह राजा साहब से फिर मिले

थे, मगर जब उनका फैसला सुना, तो बहुत निराश हुए। बहुत देर तक बैठे तर्क-वितर्क करते रहे, लेकिन राजा साहब ने कोई संतोषजनक उत्तर न दिया। निराश होकर आए और मिसेज सेवक से सारा वृतांत कह सुनाया।

मिसेज सेवक को हिन्दुस्तानियों से चिढ़ थी। यद्यपि इसी देश के अन्न-जल से उनकी सृष्टि हुई थी, पर अपने विचार में हजरत ईसा की शरण में आकर, वह हिन्दुस्तानियों के अवगुणों से मुक्त हो चुकी थीं। उनके विचार में यहां के आदमियों को खुदा ने सज्जनता, सहृदयता, उदारता, शालीनता आदि दिव्य गुणों से संपूर्णत: वंचित रखा है। वह योरपीय सभ्यता की भक्त थी, और आहार-व्यवहार में उसी का अनुसरण करती थीं, खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, सब अंगरेजी थी; मजबूरी केवल अपने सांवले रंग से थी। साबुन के निरंतर प्रयोग और अन्य रासायनिक पदार्थों का व्यवहार करने पर भी मनोकामना न पूरी होती थी। उनके जीवन की एकमात्र यही अभिलाषा थी कि हम ईसाइयों की श्रेणी से निकलकर अंगरेजों में जा मिलें, हमें लोग साहब समझें, हमारा रब्त-जब्त अंगरेजों से हो, हमारे लड़कों की शादियां, ऐंग्लो-इंडियन या कम-से-कम उच्च श्रेणी के यूरेशियन लोगों से हों। सोफी की शिक्षा-दीक्षा अंगरेजी ढंग पर हुई थी, किंतु वह माता के बहुत आग्रह करने पर भी अंगेरजी दावतों और पार्टियों में न शरीक होती थी, और नाच से तो उसे घृणा ही थी। किंतु मिसेज सेवक इन अवसरों को हाथ से न जाने देती थी, यों काम न चलता तो विशेष प्रयत्न करके निमंत्रण-पत्र मंगवाती थीं। अगर स्वयं उनके मकान पर दावतें और पार्टियां बहुत कम होती थीं, तो इसका कारण ईश्वर सेवक की कृपणता थी।

यह समाचार सुनकर मिसेज सेवक बोलीं—देख ली हिन्दुस्तानियों की सज्जनता? फूले न समाते थे। अब तो मालूम हुआ कि ये लोग कितने कुटिल और विश्वासघातक हैं! एक अंधे भिखारी के सामने तुम्हारी यह इज्जत है। पक्षपात तो इन लोगों की घुट्टी में पड़ा हुआ है, और यह उन बड़े-बड़े आदमियों का हाल है, जो अपनी जाति के नेता समझे जाते हैं, जिनकी उदारता पर लोगों को गर्व है। मैंने मिस्टर क्लार्क से एक बार यह चर्चा की थी। उन्होंने तहसीलदारों को हुक्म दे दिया कि अपने-अपने इलाके, में तंबाकू की पैदावार बढ़ाओ। यह सोफी के आग में कूदने का पुरस्कार है। जरा-सा म्युनिसिपैलिटी का अख्तियार क्या मिल गया, सबों के दिमाग फिर गए। मिस्टर क्लार्क कहते थे कि अगर राजा साहब जमीन का मुआमला न तय करेंगे, तो मैं जाब्ते से उसे आपको दिला दूंगा।

मिस्टर जोजफ क्लार्क जिला के हाकिम थे। अभी थोड़े ही दिनों से यहां आए थे। मिसेज सेवक ने उनसे रब्त-जब्त पैदा कर लिया था। वास्तव में उन्होंने क्लार्क को सोफी के लिए चुना था। दो-एक बार उन्हें अपने घर बुला भी चुकी थीं। गृह-निर्वासन से पहले दो-तीन बार सोफी से उनकी मुलाकात भी हो चुकी थी, किंतु वह उनकी ओर विशेष आकृष्ट न हुई थी। तो भी मिसेज सेवक इस विषय में अभी निराश न हुई थीं। क्लार्क से कहती रहती थीं—सोफी मेहमानी करने गई है। इसी प्रकार अवसर पाकर उनकी प्रेमाग्नि को भड़काती रहती थी।

जॉन सेवक ने लज्जित होकर कहा—मैं क्या जानता था, यह महाशय भी दगा देंगे। यहां उनकी बड़ी ख्याति है, अपने वचन के पक्के समझे जाते हैं। खैर, कोई मुजाएका नहीं। अब कोई दूसरा उपाय सोचना पड़ेगा।

मिसेज सेवक—मैं मिस्टर क्लार्क से कहूंगी। पादरी साहब से भी सिफारिश कराऊंगी।

जॉन सेवक–मिस्टर क्लार्क को म्युनिसिपैलिटी के मुआमलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।

जॉन सेवक इस चिंता में पड़े हुए थे कि इस हंगामे की खबर मिली। सन्नाटे में आ गए। पुलिस को रिपोर्ट की। दूसरे दिन गोदाम जाने का विचार कर ही रहे थे कि ताहिरअली लाठी टेकते हुए आ पहुंचे। आते-आते-एक कुरसी पर बैठ गए। इक्के के हचकोलों ने अधमुआ-सा कर दिया था।

मिसेज सेवक ने अंगरेजी में कहा–कैसी सूरत बना ली है, मानो विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है।

जॉन सेवक–कहिए, मुंशीजी, मालूम होता है, आपको बहुत चोट आई। मुझे इसका बड़ा दु:ख है।

ताहिर–हुजूर, कुछ न पूछिए, कम्बख्तों ने मार डालने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी।

जॉन सेवक–और इन्हीं दुष्टों की आप सिफारिश कर रहे थे।

ताहिर–हुजूर, अपनी खता की बहुत सजा पा चुका। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मेरी गरदन की हड्डी पर जरब आ गया है।

जॉन सेवक–यह आपकी भूल है। हड्डी टूट जाना कोई मामूली बात नहीं है। आप यहां तक किसी तरह न आ सकते थे। चोट जरूर आई है, मगर दो-चार रोज मालिश कर लेने से आराम हो जाएगा। आखिर यह मारपीट हुई क्यों?

ताहिर–हुजूर, यह सब उसी शैतान बजरंगी अहीर की हरकत है।

जॉन सेवक–मगर चोट खा जाने ही से आप निरपराध नहीं हो सकते। मैं इसे आपकी नादानी और असावधानी समझता हूं। आप ऐसे आदमियों से उलझे ही क्यों? आपको मालूम है, इसमें मेरी कितनी बदनामी है?

ताहिर–मेरी तरफ से तो कोई ज्यादती नहीं हुई।

जॉन सेवक–जरूर हुई, वरना देहातों के आदमी किसी से छेड़कर लड़ने नहीं आते। आपको इस तरह रहना चाहिए कि लोगों पर आपका रोब रहे। यह नहीं कि छोटे-छोटे आदमियों को आपसे मार-पीट करने की हिम्मत हो।

मिसेज सेवक–कुछ नहीं, यह सब इनकी कमजोरी है। कोई राह चलते किसी को नहीं मारता।

ईश्वर सेवक कुरसी पर पड़े-पड़े बोले–खुदा के बेटे, मुझे अपने साए में ले, सच्चे दिल से उसकी बंदगी न करने की यही सजा है।

ताहिरअली को यह बातें घाव पर नमक के समान लगीं। ऐसा क्रोध आया कि इसी वक्त कह दूं, जहन्नुम में जाए तुम्हारी नौकरी, पर जॉन सेवक को उनकी दुरवस्था से लाभ उठाने की एक युक्ति सूझ गई। फिटन तैयार कराई और ताहिरअली को लिए हुए राजा महेन्द्रकुमार के मकान पर जा पहुंचे। राजा साहब शहर का गश्त लगाकर मकान पर पहुंचे ही थे कि जॉन सेवक का कार्ड पहुंचा। झुंझलाये, लेकिन शील आ गया, बाहर निकल आए। मिस्टर सेवक ने कहा–क्षमा कीजिएगा, आपको कुसमय कष्ट हुआ, किंतु पांड़ेपुर वालों ने इतना उपद्रव मचा रखा है कि मेरी समझ में नहीं आता, आपके सिवा किसका दामन पकड़ूं। कल सबों ने मिलकर गोदाम पर धावा कर दिया। शायद आग लगा देना चाहते थे; पर आग तो न लगा सके, हां, यह

मेरे एजेंट हैं, सब-के सब इन पर टूट पड़े। इनको और इनके भाइयों को मारते-मारते बेदम कर दिया। इतने पर भी उन्हें तस्कीन न हुई, जनाने मकान में घुस गए, और अगर स्त्रियां अंदर से द्वार न बंद कर लें तो उनकी आबरू बिगड़ने में कोई संदेह न था। इनके तो ऐसी चोटें लगी हैं कि शायद महीनों चलने-फिरने लायक न हो, कंधे की हड्डी टूट गई है।

महेन्द्रकुमारसिंह स्त्रियों का बड़ा सम्मान करते थे। उनका अपमान होते देखकर तैश में आ जाते थे। रौद्र रूप धारण करके बोले—सब जनाने में घुस गए?

जॉन सेवक—किवाड़ तोड़ना चाहते थे, मगर चमारों ने धमकाया तो हट गए।

महेन्द्रकुमार—कमीने ! स्त्रियों पर अत्याचार करना चाहते थे।

जॉन सेवक—यही तो इस ड्रामा का सबसे लज्जास्पद अंश है।

महेन्द्रकुमार—लज्जास्पद नहीं महाशय, घृणास्पद कहिए।

जॉन सेवक—अब यह बेचारे कहते हैं कि या तो मेरा इस्तीफा लीजिए, या गोदाम की रक्षा के लिए चौकीदारों का प्रबंध कीजिए। स्त्रियां इतनी भयभीत हो गई हैं कि वहां एक क्षण भी नहीं रहना चाहतीं। यह सारा उपद्रव उसी अंधे की बदौलत हो रहा है।

महेन्द्रकुमार—मुझे तो वह बहुत गरीब, सीधा-सा आदमी मालूम होता है, मगर है छंटा हुआ। उसी की दीनता पर तरस खाकर मैंने निश्चय किया था कि आपके लिए कोई दूसरी जमीन तलाश करूं। लेकिन जब उन लोगों ने शरारत पर कमर बांधी है और आपको ज़बरदस्ती वहां से हटाना चाहते हैं, तो इसका उन्हें अवश्य दंड मिलेगा।

जॉन सेवक—बस, यही बात है, वे लोग मुझे वहां से निकाल देना चाहते हैं। अगर रिआयत की गई, तो मेरे गोदाम में जरूर आग लग जाएगी।

महेन्द्रकुमार—मैं खूब समझ रहा हूं। यों मैं स्वयं जनवादी हूं और उस नीति का हृदय से समर्थन करता हूं, पर जनवाद के नाम पर देश में जो अशांति फैली हुई है, उसका मैं घोर विरोधी हूं। ऐसे जनवाद से तो धनवाद, एकवाद, सभी वाद अच्छे हैं। आप निश्चिंत रहिए।

इसी भांति कुछ देर और बातें करके राजा साहब को खूब भरकर जॉन सेवक विदा हुए। रास्ते में ताहिरअली सोचने लगे—साहब को मेरी दुर्गति से अपना स्वार्थ सिद्ध करने में जरा भी संकोच नहीं हुआ। क्या ऐसे धनी-मानी, विशिष्ट, विचारशील विद्वान प्राणी भी इतने स्वार्थ-भक्त होते हैं।

जॉन सेवक अनुमान से उनके मन के भाव ताड़ गए। बोले—आप सोच रहे होंगे, मैंने बातों में इतना रंग क्यों भरा, केवल घटना का यथार्थ वृत्तांत क्यों न कह सुनाया, किंतु सोचिए, बिना रंग भरे मुझे यह फल प्राप्त हो सकता? संसार में किसी काम का अच्छा या बुरा होना उसकी सफलता पर निर्भर है। एक व्यक्ति राजसत्ता का विरोध करता है। यदि अधिकारियों ने उसका दमन कर दिया, तो वह राजद्रोही कहा जाता है, और प्राणदंड पाता है। यदि उसका उद्देश्य पूरा हो गया, तो वह अपनी जाति का उद्धारकर्ता और विजयी समझा जाता है, उसके स्मारक बनाए जाते हैं। सफलता में दोषों को मिटाने की विलक्षण शक्ति है। आप जानते हैं, दो साल पहले मुस्तफा कमाल क्या था? बागी, देश उसके खून का प्यासा था। आज वह अपनी जाति का प्राण है। क्यों? इसीलिए कि वह सफल-मनोरथ हुआ। लेनिन कई साल पहले प्राणभय से अमेरिका भागा था, आज वह प्रधान है। इसीलिए कि उसका विद्रोह सफल हुआ। मैंने राजा साहब को स्वपक्षी बना लिया, फिर रंग भरने का दोष कहां रहा?

इतने में फिटन बंगले पर आ पहुंची। ईश्वर सेवक ने आते ही आते पूछा–कहो, क्या कर आए?

जॉन सेवक ने गर्व से कहो–राजा को अपना मुरीद बना आया। थोड़ा-सा रंग तो जरूर भरना पड़ा, पर उसका असर बहुत अच्छा हुआ।

ईश्वर सेवक–खुदा, मुझ पर दया-दृष्टि कर। बेटा, रंग मिलाए बगैर भी दुनिया का कोई काम चलता है? सफलता का यही मूल-मंत्र है, और व्यवसाय की सफलता के लिए तो यह सर्वथा अनिवार्य है। आपके पास अच्छी-से-अच्छी वस्तु है, जब तक आप स्तुति नहीं करते, कोई ग्राहक खड़ा ही नहीं होता। अपनी अच्छी वस्तु को अमूल्य, दुर्लभ, अनुपम कहना बुरा नहीं। अपनी औषधि को आप सुधा-तुल्य रामबाण अक्सीर, ऋषि-प्रदत्त, संजीवनी, जो चाहें, कह सकते हैं, इसमें कोई बुराई नहीं। किसी उपदेशक से पूछो, किसी वकील से पूछो, किसी लेखक से पूछो, सभी एक स्वर से कहेंगे कि रंग और सफलता समानार्थक हैं। यह भ्रम है कि चित्रकार ही को रंगों की जरूरत होती है। अब तो तुम्हें निश्चय हो गया कि वह जमीन मिल जाएगी?

जॉन सेवक–जी हां, अब कोई संदेह नहीं है।

यह कहकर उन्होंने प्रभु सेवक को पुकारा और तिरस्कार करके बोले–बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? जरा पांड़ेपुर क्यों नहीं चले जाते? अगर तुम्हारा यही हाल रहा, तो मैं कहां तक तुम्हारी मदद करता फिरूंगा।

प्रभु सेवक–मुझे जाने में कोई आपत्ति नहीं, पर इस समय मुझे सोफी के पास जाना है।

जॉन सेवक–पांड़ेपुर से लौटते हुए सोफी के पास बहुत आसानी से जा सकते हो।

प्रभु सेवक–मैं सोफी से मिलना ज्यादा जरूरी समझता हूं।

जॉन सेवक–तुम्हारे रोज-रोज मिलने से क्या फायदा, जब तुम आज तक उसे घर लाने में सफल नहीं हो सके?

प्रभु सेवक के मुंह से ये शब्द निकलते-निकलते रह गए–मामा ने जो आग लगा दी है, वह मेरे बुझाए नहीं बुझ सकी। तुरंत अपने कमरे में आए, कपड़े पहने और उसी वक्त ताहिरअली के साथ पांड़ेपुर चलने को तैयार हो गए। ग्यारह बज चुके थे, जमीन से आग की लपट निकल रही थी, दोपहर का भोजन तैयार था, मेज लगा दी थी, किंतु प्रभु सेवक माता और पिता के बहुत आग्रह करने पर भी भोजन पर न बैठे। ताहिरअली खुदा से दुआ कर रहे थे कि किसी तरह दोपहरी यहीं कट जाए, पंखे के नीचे टट्टियों से छनकर आने वाली शीतल वायु ने उनकी पीड़ा को बहुत शांत कर दिया था, किंतु प्रभु सेवक के हठ ने उन्हें यह आनंद न उठाने दिया।

ग्यारह.

भैरो पासी अपनी मां का सपूत बेटा था। यथासाध्य उसे आराम से रखने की चेष्टा करता रहता था। इस भय से कि कहीं बहू सास को भूखा न रखे, वह उसकी थाली अपने सामने परसा

लिया करता था और उसे अपने साथ ही बिठाकर खिलाता था। बुढ़िया तंबाकू पीती थी। उसके वास्ते एक सुंदर, पीतल से मढ़ा हुआ नारियल लाया था। आप चाहे जमीन पर सोए, पर उसे खाट पर सुलाता। कहता, इसने न जाने कितने कष्ट झेलकर मुझे पाला-पोसा है, मैं इससे जीते-जी कभी उरिन नहीं हो सकता। अगर मां का सिर भी दर्द करता तो बेचैन हो जाता, ओझे-सयाने बुला लाता। बुढ़िया को गहने-कपड़े का भी शौक था। पति के राज में जो सुख न पाये थे, वे बेटे के राज में भोगना चाहती थी। भैरो ने उसके लिए हाथों के कड़े, गले की हंसली और ऐसी ही कई चीजें बनवा दी थीं। पहनने के लिए मोटे कपड़ों की जगह कोई रंगीन छींट लाया करता था। अपनी स्त्री को ताकीद करता रहता था कि अम्मां को कोई तकलीफ न होने पाए। इस तरह बुढ़िया का मन बढ़ गया था। जरा-सी कोई बात इच्छा के विरुद्ध होती, तो रूठ जाती और बहू को आड़े हाथों लेती। बहू का नाम सुभागी था। बुढ़िया ने उसका नाम अभागी रख छोड़ा था। बहू ने जरा चिलम भरने में देर की, चारपाई बिछाना भूल गई, या मुंह से निकलते ही उसका पैर दबाने या सिर की जुंए निकालने न आ पहुंची, तो बुढ़िया उसके सिर हो जाती। उसके बाप और भाइयों के मुंह में कालिख लगाती, सबों की दाढियां जलाती, और उसे गालियों ही से संतोष न होता, ज्योंही भैरो दूकान से आता, एक-एक की सौ-सौ लगाती। भैरो सुनते ही जल उठता, कभी जली-कटी बातों से और कभी डंडे से स्त्री की खबर लेता। जगधर से उसकी गहरी मित्रता थी। यद्यपि भैरो का घर बस्ती के पश्चिम सिरे पर था, और जगधर का घर पूर्व सिरे पर, किंतु जगधर की यहां बहुत आमद-रफ्त थी। यहां मुफ्त में ताड़ी पीने को मिल जाती थी, जिसे मोल लेने के लिए उसके पास पैसे न थे। उसके घर में खाने वाले बहुत थे, कमाने वाला अकेला वही था। पांच लड़कियां थीं, एक लड़का और स्त्री। खोंचे की बिक्री में इतना लाभ कहां कि इतने पेट भरे और ताड़ी-शराब भी पिए। वह भैरो की हां-में-हां मिलाया करता था। इसलिए सुभागी उससे जलती थी।

दो-तीन साल पहले की बात है, एक, रात के समय, भैरो और जगधर बैठे हुए ताड़ी पी रहे थे। जाड़ों के दिन थे। बुढ़िया खा-पीकर, अंगीठी सामने रखकर, आग ताप रही थी। भैरो ने सुभागी से कहा—थोड़े-से मटर भून ला। नमक, मिर्च, प्याज भी लेती आना। ताड़ी के लिए चिखने की जरूरत थी। सुभागी ने मटर तो भूने, लेकिन प्याज घर में न था। हिम्मत न पड़ी कि कह दे—प्याज नहीं है। दौड़ी हुई कुंजड़े की दुकान पर गई। कुंजड़ा दूकान बंद कर चुका था। सुभागी ने बहुत चिरौरी की, पर उसने दुकान न खोली। विवश होकर उसने भुने हुए मटर लाकर भैरो के सामने रख दिए। भैरो ने प्याज न देखा, तो तेवर बदले। बोला—क्या मुझे बैल समझती है कि भुने हुए मटर लाकर रख दिये, प्याज क्यों नहीं लाई?

सुभागी ने कहा—प्याज घर में नहीं है, तो क्या मैं प्याज हो जाऊं?

जगधर—प्याज के बिना मटर क्या अच्छे लगेंगे?

बुढ़िया—प्याज तो अभी कल ही धेले का आया था। घर में कोई चीज तो बचती ही नहीं। न जाने इस चुड़ैल का पेट है या भाड़।

सुभागी—मुझसे कसम ले लो, जो प्याज हाथ से भी छुआ हो। ऐसी जीभ होती, तो इस घर में एक दिन भी निबाह न होता।

भैरो—प्याज नहीं था, तो लाई क्यों नहीं?

जगधर–जो चीज घर में न रहे, उसकी फिकर रखनी चाहिए।

सुभागी–मैं क्या जानती थी कि आज आधी रात को प्याज की धुन सवार होगी।

भैरो ताड़ी के नशे में था। नशे में भी क्रोध का-सा गुण है, निर्बलों ही पर उतरता है। डंडा पास ही धरा था, उठाकर एक डंडा सुभागी को मारा। उसके हाथ की सब चूड़ियां टूट गईं। घर से भागी। भैरो पीछे दौड़ा। सुभागी एक दूकान की आड़ में छिप गई। भैरो न बहुत ढूंढ़ा, जब उसे न पाया तो घर जाकर किवाड़ बंद कर लिए और फिर रात भर खबर न ली। सुभागी ने सोचा, इस वक्त जाऊंगी तो प्राण न बचेंगे। पर रात-भर रहूंगी कहां? बजरंगी के घर गई। उसने कहा–ना, बाबा, मैं यह रोग नहीं पालता। खोटा आदमी है, कौन उससे रार मोल ले। ठाकुरदीन के द्वार बंद थे। सूरदास बैठा खाना पका रहा था। उसकी झोपड़ी में घुस गई और बोली–सूरे, आज रात-भर मुझे पड़ रहने दो, मारे डालता है, अभी जाऊंगी, तो एक हड्डी भी न बचेगी।

सूरदास ने कहा–आओ, लेट रहो, भोरे चली जाना, अभी नसे में होगा।

दूसरे दिन जब भैरो को यह बात मालूम हुई, तो सूरदास से गाली-गलौच की और मारने की धमकी दी। सुभागी उसी दिन से सूरदास पर स्नेह करने लगी। जब अवकाश पाती, तो उसके पास आ बैठती, कभी-कभी उसके घर में झाड़ू लगा जाती, कभी घरवालों की आंख बचाकर उसे कुछ दे जाती, मिठुआ को अपने घर बुला ले जाती और उसे गुड़-चबेना खाने को देती।

भैरो ने कई बार उसे सूरदास के घर से निकलते देखा। जगधर ने दोनों को बातें करते हुए पाया। भैरो के मन में संदेह हो गया कि इन दोनों में कुछ साठ-गांठ है, तभी से वह सूरदास से खार खाता था। उससे छेड़कर लड़ता। नायकराम के भय से उसकी मरम्मत न कर सकता था। सुभागी पर उसका अत्याचार दिनोंदिन बढ़ता जाता था और जगधर, शांत स्वभाव होने पर भी, भैरो का पक्ष लिया करता था।

जिस दिन बजरंगी और ताहिरअली में झगड़ा हुआ था, उसी दिन भैरो और सूरदास में भी संग्राम छिड़ गया। बुढ़िया ने दोपहर को नहाया था। सुभागी उसकी धोती छांटना भूल गई। गरमी के दिन थी ही, रात को नौ बजे बुढ़िया को फिर गरमी मालूम हुई। गरमियों के दिन में दो बार स्नान करती थी, जाड़ों में दो महीने में एक बार ! जब वह नहाकर धोती मांगने लगी, तो सुभागी को याद आई। काटो तो बदन में लहू नहीं। हाथ जोड़कर बोली–अम्मां, आज धोती धोने की याद नहीं रही। तुम जरा देर मेरी धोती पहन लो, तो मैं उसे छांटकर अभी सुखाए देती हूं।

बुढ़िया इतनी क्षमाशील न थी, हजारों गालियां सुनाईं और गीली धोती पहने बैठी रही। इतने में भैरो दूकान से आया और सुभागी से बोला–जल्दी खाना ला, आज संगत होने वाली है। आओ, अम्मां, तुम भी खा लो।

बुढ़िया बोली–नहाकर गीली धोती पहने बैठी हूं। अब अपने हाथों धोती धो लिया करूंगी।

भैरा–क्या इसने धोती नहीं धोई?

बुढ़िया–वह अब मेरी धोती क्यों धोने लगी ! घर की मालकिन है। यही क्या कम है कि एक रोटी खाने को देती है।

सुभागी ने बहुत कुछ उज्र किया, किंतु भैरो ने एक न सुनी, डंडा लेकर मारने दौड़ा। सुभागी

भागी और आकर सूरदास के घर में घुस गई। पीछे-पीछे भैरो भी वहीं पहुंचा। झोपड़े में घुसा और चाहता था कि सुभागी का हाथ पकड़कर खींच ले कि सूरदास उठकर खड़ा हो गया और बोला—क्या बात है भैरो, इसे क्यों मार रहे हो?

भैरो गर्म होकर बोला—द्वार पर से हट जाओ, नहीं तो पहले तुम्हारी हड्डियां तोड़ूंगा, सारा बगुलाभगतपन निकल जाएगा। बहुत दिनों से तुम्हारा रंग देख रहा हूं, आज सारी कसर निकाल लूंगा।

सूरदास—मेरा क्या छैलापन तुमने देखा? बस, यही न कि मैंने सुभागी को घर से निकाल नहीं दिया?

भैरो—बस, अब चुप ही रहना। ऐसे पापी न होते, तो भगवान् ने आंखें क्यों फोड़ दी होतीं। भला चाहते हो, तो सामने से हट जाओ।

सूरदास—मेरे घर में तुम उसे न मारने पाओगे, यहां से चली जाए, तो जितना चाहे मार लेना।

भैरो—हटता है सामने से कि नहीं?

सूरदास—मैं अपने घर यह उपद्रव न मचाने दूंगा।

भैरो ने क्रोध में आकर सूरदास को धक्का दिया। बेचारा बेलाग खड़ा था, गिर पड़ा, पर फिर उठा और भैरो की कमर पकड़कर बोला—अब चुपके से चले जाओ, नहीं तो अच्छा न होगा !

सूरदास था तो दुबला-पतला, पर उसकी हड्डियां लोहे की थीं। बादल-बूंदी, सरदी-गरमी झेलते-झेलते उसके अंग ठोस हो गए थे। भैरो को ऐसा ज्ञात होने लगा, मानो कोई लोहे का शिकंजा है। कितना ही जोर मारता, पर शिकंजा जरा भी ढीला न होता था। सुभागी ने मौका पाया, तो भागी। अब भैरो जोर-जोर से गालियां देने लगा। मुहल्ले वाले यह शोर सुनकर आ पहुंचे। नायकराम ने मजाक करके कहा—क्यों सूरे अच्छी सूरत देखकर आंखें खुल जाती हैं क्या? मुहल्ले ही में?

सूरदास—पंडाजी, तुम्हें दिल्लगी सूझी है और यहां मुंह में कालिख लगाई जा रही है। अंधा था, अपाहिज था, भिखारी था, नीच था, पर चोरी-बदमासी के इलजाम से तो बचा हुआ था। आज वह इलजाम भी लग गया।

बजरंगी—आदमी जैसा आप होता है, वैसा ही दूसरों को समझता है।

भैरो—तुम कहां के बड़े साधू हो। अभी आज ही लाठी चलाकर आए हो। मैं दो साल से देख रहा हूं, मेरी घरवाली इससे आकर अकेले में घंटों बातें करती है। जगधर ने भी उसे यहां से रात को आते-जाते देखा है। आज ही, अभी, उसके पीछे यह मुझसे लड़ने को तैयार था।

नायकराम—सुभा होने की बात ही है। अंधा आदमी देवता थोड़े ही होता है, और फिर देवता लोग भी तो काम के तीर से नहीं बचे। सूरदास तो फिर भी आदमी है, और अभी उमर ही क्या है?

ठाकुरदीन—महाराज, क्यों अंधे के पीछे पड़े हुए हो। चलो, कुछ भजन-भाव हो।

नायकराम—तुम्हें भजन-भाव सूझता है, यहां एक भले आदमी की इज्जत का मुआमला आ पड़ा है। भैरो, हमारी एक बात मानो तो कहें। तुम सुभागी को मारते बहुत हो, इससे उसका

मन तुमसे नहीं मिलता। अभी दूसरे दिन बारी आती है, अब महीनों में दो बार से ज्यादा न आने पाए।

भैरो देख रहा था कि मुझे लोग बना रहे हैं। तिनककर बोला–अपनी मेहरिया है, मारते-पीटते, हैं, तो किसी का साझा है? जो घोड़ी पर कभी सवार ही नहीं हुआ, वह दूसरों को सवार होना क्या सिखाएगा? वह क्या जाने, औरत कैसे काबू में रहती है?

यह व्यंग नायकराम पर था, जिसका अभी तक विवाह नहीं हुआ था। घर में धन था, यजमानों की बदौलत किसी बात की चिंता न थी, किंतु न जाने क्यों अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ था। वह हजार-पांच सौ रुपये से गम खाने को तैयार था, पर कहीं शिप्पा न जमता था। भैरो ने समझा था, नायकराम दिल में कट जाएंगे। मगर वह छंटा हुआ शहरी गुंडा ऐसे व्यंगों को कब ध्यान में लाता था। बोलो–कहो बजरंगी इसका कुछ जवाब दो, औरतें कैसे बस में रहती है?

बजरंगी–मार-पीट से नन्हा-सा लड़का तो बस में आता ही नहीं, औरत क्या बस में आएगी।

भैरो–बस में आए औरत का बाप, औरत किस खेत की मूली है। मार से भूत भागता है।

बजरंगी–तो औरत भी भाग, जायगी, लेकिन काबू में न आयगी।

नायकराम–बहुत अच्छी कही बजरंगी, बहुत पक्की कही, वाह-वाह ! मार से भूत भागता है, तो औरत भी भाग जाएगी। अब तो कट गई तुम्हारी बात?

भैरो–बात क्या कट जायगी, दिल्लगी है? चूने को जितना ही कूटो, उतना ही चिमटता है।

जगधर–ये सब कहने की बातें हैं। औरत अपने मन से बस में आती है, और किसी तरह नहीं।

नायकराम–क्यों बजरंगी, नहीं है कोई जवाब?

ठाकुरदीन–पंडाजी, तुम दोनों को लड़ाकर तभी दम लोगे; बिचारे अपाहिज आदमी के पीछे पड़े हो।

नायकराम–तुम सूरदास को क्या समझते हो, यह देखने ही में इतने दुबले हैं। अभी हाथ मिलाओ, तो मालूम हो। भैरो, अगर इन्हें पछाड़ दो, तो पांच रुपये इनाम दूं।

भैरो–निकल जाओगे।

नायकराम–निकलने वाले को कुछ कहता हूं। यह देखो ठाकुरदीन के हाथ में रखे देता हूं।

जगधर–क्या ताकते हो भैरो, ले पड़ो।

सूरदास–मैं नहीं लड़ता।

नायकराम–सूरदास, देखो, नाम-हंसाई मत कराओ। मर्द होकर लड़कने से डरते हो? हार ही जाओगे या और कुछ।

सूरदास–लेकिन भाई, मैं पेंच-पाच नहीं जानता। पीछे से यह न कहाना, हाथ क्यों पकड़ा। मैं जैसे चाहूंगा, वैसे लड़ूं।

जगधर–हां-हां, तुम जैसे चाहना, वैसे लड़ना।

सूरदास–अच्छा तो आओ, कौन आता है !

नायकराम—अंधे आदमी को जीवट देखना। चलो भैरो, आओ मैदान में।

भैरो—अंधे से क्या लड़ूं !

नायकराम—बस, इसी पर इतना अकड़ते थे?

जगधर—निकल आओ भैरो, एक झपट्टे में तो मार लोगे !

भैरो—तुम्हीं क्यों नहीं लड़ जाते, तुम्हीं इनाम ले लेना।

जगधर को रुपयों की नित्य चिंता रहती थी। परिवार बड़ा होने के कारण किसी तरह चूल न बैठती थी, घर में एक-न-एक चीज घटी ही रहती थी। धनोपार्जन के किसी उपाय को हाथ से न छोड़ना चाहता था। बोला—क्यों सूरे, हमसे लड़ोगे?

सूरदास—तुम्हीं आ जाओ, कोई सही।

जगधर—क्यों पंडाजी, इनाम दोगे न?

नायकराम—इनाम तो भैरो के लिए था, लेकिन कोई हरज नहीं। हां, सर्त यह है कि एक ही झपट्टे में गिरा दो।

जगधर ने धोती ऊपर चढ़ा ली और सूरदास से लिपट गया। सूरदास ने उसकी एक टांग पकड़ ली और इतने जोर से खींचा कि जगधर धम से गिर पड़ा। चारों तरफ से तालियां बजने लगीं।

बजरंगी बोला—वाह, सूरदास, वाह ! नायकराम ने दौड़कर उसकी पीठ ठोंकी।

भैरो—मुझे तो कहते थे, एक ही झपट्टे में गिरा दोगे, तुम कैसे गिर गए?

जगधर—सूरे ने टांग पकड़ ली, नहीं तो क्या गिरा लेते। वह अड़ंगा मारता कि चारों खाने चित गिरते।

नायकराम—अच्छा, तो एक बाजी और हो जाए।

जगधर—हां-हां, अबकी देखना।

दोनों योद्धाओं में फिर मल्ल-युद्ध होने लगा। सूरदास ने अबकी जगधर का हाथ पकड़कर इतने जोर से ऐंठा कि वह 'आह ! आह !' करता हुआ ज़मीन पर बैठ गया। सूरदास ने तुरंत उसका हाथ छोड़ दिया और गरदन पकड़कर दोनों हाथों से ऐसा दबोचा कि जगधर की आंखें निकल आईं, नायकराम ने दौड़कर सूरदास को हटा लिया। बजरंगी ने जगधर को उठाकर बैठाया और हवा करने लगा।

भैरो ने बिगड़कर कहा—यह कोई कुस्ती है कि जहां पकड़ पाया, वहीं धर दबाया। यह तो गंवारों की लड़ाई हैं, कुस्ती थोड़े ही है।

नायकराम—यह बात तो पहले ही तय हो चुकी थी।

जगधर संभलकर उठ बैठा और चुपके से सरक गया। भैरो भी उसके पीछे चलता हुआ उनके जाने के बाद यहां खूब कहकहे उड़े, और सूरदास की खूब पीठ ठोंकी गई। सबको आश्चर्य हो रहा था कि सूरदास-जैसा दुर्बल आदमी जगधर-जैसे-मोटे ताजे आदमी को कैसे दबा बैठा। ठाकुरदीन यंत्र-मंत्र का कायल था। बोला—सूरे को किसी देवता का इष्ट है। हमें भी बताओ सूरे, कौन-सा मंत्र जगाया था?

सूरदास—सौ मंत्रों का मंत्र हिम्मत है। ये रुपये जगधर को दे देना, नहीं तो मेरी कुसल नहीं है।

ठाकुरदीन—रुपये क्यों दे दूं, कोई लूट है? तुमने बाजी मारी है, तुमको मिलेंगे।

नायकराम—अच्छा सूरदास, ईमान से बता दो, सुभागी को किस मंत्र से बस में किया? अब तो यहां सब लोग अपने ही हैं, कोई दूसरा नहीं है। मैं भी कहीं कंपा लगाऊं।

सूरदास ने करुण स्वर में कहा—पंडाजी, अगर तुम भी मुझसे ऐसी बातें करोगे, तो मैं मुंह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊंगा। मैं पराई स्त्री को अपनी माता, बेटी, बहन समझता हूं। जिस दिन मेरा मन इतना चंचल हो जाएगा, तुम मुझे जीता न देखोगे। यह कहकर सूरदास फूट-फूटकर रोने लगा। जरा देर में आवाज संभालकर बोला—भैरो रोज उसे मारता है। बिचारी कभी-कभी मेरे पास आकर बैठ जाती है। मेरा अपराध इतना ही है कि मैं उसे दुत्कार नहीं देता। इसके लिए चाहे कोई मुझे बदनाम करे, चाहे जो इलजाम लगाए, मेरा जो धरम था, वह मैंने किया। बदनामी के डर से जो आदमी धरम से मुंह फेर ले, वह आदमी नहीं है।

बजरंगी—तुम्हें हट जाना था, उसकी औरत थी, मारता चाहे पीटता, तुमसे मतलब?

सूरदास—भैया, आंखों देखकर रहा नहीं जाता, यह तो संसार का व्यवहार है; पर इतनी-सी बात पर कोई बड़ा कलंक तो नहीं लगा देता। मैं तुमसे सच कहता हूं, आज मुझे जितना दुःख हो रहा है, उतना दादा के मरने पर भी न हुआ था। मैं अपाहिज, दूसरों के टुकड़े खाने वाला और मुझ पर यह कलंक ! (रोने लगा)

नायकराम—तो रोते क्यों हो भले आदमी, अंधे हो तो क्या मर्द नहीं हो? मुझे तो कोई यह कलंक लगाता, तो और खुस होता। ये हजारों आदमी जो तड़के गंगा-स्नान करने जाते हैं, वहां नजरबाजी के सिवा और क्या करते हैं ! मंदिरों में इसके सिवा और क्या होता है ! मेले-ठेलों में भी यही बहार रहती है। यही तो मरदों के काम हैं। अब सरकार के राज में लाठी-तलवार का तो कहीं नाम नहीं रहा, सारी मनुसई इस नजरबाजी में रह गई है। इसकी क्या चिंता ! चलो भगवान् का भजन हो, यह सब दुःख दूर हो जाएगा।

बजरंगी को चिंता लगी हुई थी—आज की मार-पीट का न जाने क्या फल हो? कल पुलिस द्वार पर आ जाएगी। गुस्सा हराम होता है। नायकराम ने आश्वासन दिया—भले आदमी, पुलिस से क्या डरते हो? कहो, थानेदार को बुलाकर नचाऊं, कहो इसपेट्र को बुलाकर चपतियाऊं। निश्चिंत बैठे रहो, कुछ न होने पाएगा। तुम्हारा बाल भी बांका हो जाए, तो मेरा जिम्मा।

तीनों आदमी यहां से चले। दयागिरि पहले ही से इनकी राह देख रहे थे। कई गाड़ीवान और बनिए भी आ बैठे थे। जरा देर में भजन की तानें उठने लगीं। सूरदास अपनी चिंताओं को भूल गया, मस्त होकर गाने लगा। कभी भक्ति से विह्वल होकर नाचता, उछलने-कूदने लगता, कभी रोता, कभी हंसता। सभा विसर्जित हुई तो सभी प्राणी प्रसन्न थे, सबके हृदय निर्मल हो गए थे, मलिनता मिट गई थी, मानो किसी रमणीक स्थान की सैर करने आए हों। सूरदास तो मंदिर के चबूतरे ही पर लेटा, और लोग अपने-अपने घर गए। किंतु थोड़ी ही देर बाद सूरदास को फिर उन्हीं चिंताओं ने आ घेरा—मैं क्या जानता था कि भैरो के मन में मेरी ओर से इतना मैल है, नहीं तो सुभागी को अपने झोपड़े में आने ही क्यों देता। जो सुनेगा, वही मुझ पर थूकेगा। लोगों को ऐसी बातों पर कितनी जल्द विश्वास आ जाता है। मुहल्ले में कोई अपने दरवाजे पर खड़ा न होने देगा। ऊंह ! भगवान् तो सबके मन की बात जानते हैं। आदमी का धरम है कि किसी को दुःख में देखे, तो उसे तसल्ली दे। अगर अपना धरम पालने में भी कलंक लगता है, तो लगे, बला से। इसके लिए कहां तक रोऊं? कभी-न-कभी तो लोगों को मेरे मन का

हाल मालूम ही हो जाएगा।

किंतु जगधर और भैरो दोनों के मन में ईर्ष्या का फोड़ा पक रहा था। जगधर कहता था—मैंने तो समझा था, सहज में पांच रुपये मिल जायंगे, नहीं तो क्या कुत्ते ने काटा था कि उससे भिड़ने जाता? आदमी काहे को है, लोहा है।

भैरो—मैं उसकी ताकत की परिच्छा कर चुका हूं। ठाकुरदीन सच कहता है, उसे किसी देवता का इस्ट है।

जगधर—इस्ट-विस्ट कुछ नहीं है, यह सब बेफ़िकरी है। हम-तुम गृहस्ती के जंजाल में फसे हुए हैं, नोन-तेल-लकड़ी की चिंता सिर पर सवार रहती है, घाटे-नफे के फेर में पड़े रहते हैं। उसे कौन चिंता है? मजे से जो कुछ मिल जाता है, खाता है और मीठी नींद सोता है। हमको-तुमको रोटी-दाल भी दोनों जून नसीब नहीं होती है। उसे क्या कमी है, किसी ने चावल दिए, कहीं मिठाई पा गया, घी-दूध बजरंगी के घर से मिल ही जाता है। बल तो खाने से होता है।

भैरो—नहीं, यह बात नहीं। नसा खाने से बल का नास हो जाता है।

जगधर—कैसी उलटी बात करते हो; ऐसा होता, तो फौज में गोरों को बरांडी क्यों पिलाई जाती? अंगरेज सभी सराब पीते हैं, तो क्या कमजोर होते हैं?

भैरा—आज सुभागी आती है, तो गला दबा देता हूं।

जगधर—किसी के घर छिपी बैठी होगी।

भैरो—अंधे ने मेरी आबरू बिगाड़ दी। बिरादरी में यह बात फैलेगी, तो हुक्का बंद हो जाएगा, भात देना पड़ जाएगा।

जगधर—तुम्हीं तो ढिंढोरा पीट रहे हो। यह नहीं, पटकनी खाई थी, तो चुपके से घर चले आते। सुभागी आती तो उससे समझते। तुम लगे वहीं दुहाई देने।

भैरो—इस अंधे को मैं ऐसा कपटी न समझता था, नहीं तो अब तक कभी उसका मजा चखा चुका होता। अब उस चुड़ैल को घर न रखूंगा। चमार के हाथों यह बेआबरूई !

जगधर—इससे बड़ी और क्या बदनामी होगी, गला काटने का काम है।

भैरो—बस, यही मन में आता है कि चलकर एक गंड़ासा मारकर काम तमाम कर दूं। लेकिन नहीं, मैं उसे खेला-खेलाकर मारूंगा। सुभागी का दोस नहीं। सारा तूफान इसी ऐबी अंधे का खड़ा किया हुआ है।

जगधर—दोस दोनों का है।

भैरो—लेकिन छेड़छाड़ तो पहले मर्द ही करता है। उससे तो अब मुझे कोई वास्ता नहीं रहा, जहां चाहे जाए, जैसे चाहे रहे। मुझे तो अब इसी अंधे से भुगतना है। सूरत से कैसा गरीब मालूम होता है, जैसे कुछ जानता ही नहीं, और मन में इतना कपट भरा हुआ है। भीख मांगते दिन जाते हैं, उस पर भी अभागे की आंखें नहीं खुलतीं। जगधर, इसने मेरा सिर नीचा कर दिया। मैं दूसरों पर हंसा करता था, अब जमाना मुझ पर हंसेगा। मुझे सबसे बड़ा मलाल तो यह है कि अभागिन गई भी तो, चमार के साथ गई। अगर किसी ऐसे आदमी के साथ जाती, जो जात-पांत में, देखने-सुनने में, धन-दौलत में मुझसे बढ़कर होता, तो मुझे इतना रंज न होता। जो सुनेगा, अपने मन में यही कहेगा कि मैं इस अंधे से भी गया-बीता हूं।

जगधर—औरतों का सुभाव कुछ समझ में नहीं आता, नहीं तो, कहां तुम और कहां वह

अंधा। मुंह पर मक्खियां भिनका करती हैं, मालूम होता है, जूते खाकर आया है।

भैरो—और बेहया कितना बड़ा है ! भीख मांगता है, अंधा है; पर जब देखो हंसता ही रहता है। मैंने उसे कभी रोते ही नहीं देखा।

जगधर—घर में रुपये गड़े हैं; रोए उसकी बला। भीख तो दिखाने को मांगता है।

भैरो—अब रोएगा। ऐसा रुलाऊंगा कि छठी का दूध याद आ जाएगा।

यों बातें करते हुए दोनों अपने-अपने घर गए। रात के दो बजे होंगे कि अकस्मात् सूरदास की झोपड़ी से ज्वाला उठी। लोग अपने-अपने द्वारों पर सो रहे थे। निद्रावस्था में भी उपचेतना जागती रहती है। दम-के-दम में सैकड़ों आदमी जमा हो गए। आसमान पर लाली छाई हुई थी, ज्वालाएं लपक-लपककर आकाश की ओर दौड़ने लगीं। कभी उनका आकार किसी मंदिर के स्वर्ण-कलश का-सा हो जाता था, कभी वे वायु के झोंको से यों कंपित होने लगती थीं, मानो जल में चांद का प्रतिबिंब है। आग बुझाने का प्रयत्न किया जा रहा था; पर झोपड़े की आग, ईर्ष्या की आग की भांति कभी नहीं बुझती। कोई पानी ला रहा था, कोई यों ही शोर मचा रहा था, किंतु अधिकांश लोग चुपचाप खड़े नैराश्यपूर्ण दृष्टि से अग्निदाह को देख रहे थे, मानो किसी मित्र की चिताग्नि है।

सहसा सूरदास दौड़ा हुआ आया और चुपचाप ज्वाला के प्रकाश में खड़ा हो गया।

बजरंगी ने पूछा—यह कैसे लगी सूरे, चूल्हे में तो आग नहीं छोड़ दी थी?

सूरदास—झोपड़े में जाने का कोई रास्ता नहीं है?

बजरंगी—अब तो अंदर-बाहर सब एक हो गया। दीवारें जल रही हैं।

सूरदास—किसी तरह नहीं जा सकता?

बजरंगी—कैसे जाओगे? देखते नहीं हो, यहां तक लपटें आ रही हैं !

जगधर—सूरे, क्या आज चूल्हा ठंडा नहीं किया था?

नायकराम—चूल्हा ठंडा किया होता, तो दुसमनों का कलेजा कैसे ठंडा होता।

जगधर—पंडाजी, मेरा लड़का काम न आए, अगर मुझे कुछ भी मालूम हो। तुम मुझ पर नाहक सुभा करते हो।

नायकराम—मैं जानता हूं, जिसने लगाई है. बिगाड़ न दूं, तो कहना।

ठाकुरदीन—तुम क्या बिगाड़ोगे, भगवान् आप ही बिगाड़ देंगे। इसी तरह जब मेरे घर में चोरी हुई थी, तो सब स्वाहा हो गया था।

जगधर—जिसके मन में इतनी खुटाई हो, भगवान् उसका सत्यानास कर दें।

सूरदास—अब तो लपट नहीं आती।

बजरंगी—हां, फूस जल गया, अब धरन जल रही है।

सूरदास—अब तो अंदर जा सकता हूं?

नायकराम—अंदर तो जा सकते हो, पर बाहर नहीं निकल सकते। अब चलो आराम से सो रहो; जो होना था, हो गया। पछताने से क्या होगा?

सूरदास—हां, सो रहूंगा। जल्दी क्या है !

थोड़ी देर में रही-सही आग भी बुझ गई। कुशल यह हुई कि और किसी के घर में आग न लगी। सब लोग इस दुर्घटना पर आलोचनाएं करते हुए बिदा हुए। सन्नाटा छा गया। किंतु सूरदास अब भी वहीं बैठा हुआ था। उसे झोपड़े के जल जाने का दुःख न था, बरतन आदि ! के जल जाने

का भी दु:ख न था, दु:ख था उस पोटली का, जो उसकी उम्र-भर की कमाई थी, जो उसके जीवन की सारी आशाओं का आधार थी, जो उसकी सारी यातनाओं और याचनाओं का निष्कर्ष था। इस छोटी-सी पोटली में उसका, उसके पितरों का और उसे नामलेवा का उद्धार संचित था। यही उसके लोक और परलोक, उसकी दीन-दुनिया का आशा-दीपक थी। उसने सोचा पोटली के साथ रुपये थोड़े ही जल गए होंगे? अगर रुपये पिघल भी गए होंगे, तो चांदी कहां जाएगी? क्या जानता था कि आज यह विपत्ति आने वाली है, नहीं तो यहीं न सोता ! पहले तो कोई झोपड़ी के पास आता ही न; और अगर आग लगाता भी, तो पोटली को पहले ही निकाल लेता। सच तो यों है कि मुझे यहां रुपये रखने ही न चाहिए थे। पर रखता कहां? मुहल्ले में ऐसा कौन है, जिसे रखने को देता? हाय ! पूरे पांच सौ रुपये थे, कुछ पैसे ऊपर हो गए थे। क्या इसी दिन के लिए पैसे-पैसे बटोर रहा था? खा लिया होता, तो कुछ तस्कीन होती। क्या सोचता था और क्या हुआ ! गया जाकर पितरों को पिंड देने का इरादा किया था। अब उनसे कैसे गला छूटेगा? सोचता था, कहीं मिठुआ की सगाई ठहर जाए, तो कर डालूं। बहू घर में आ जाए, तो एक रोटी खाने को मिले। अपने हाथों ठोंक-ठोंक कर खाते एक जुग बीत गया। बड़ी भूल हुई। चाहिए था कि जैसे-जैसे हाथ में रुपये आते, एक-एक काम पूरा करता जाता। बहुत पांव फैलाने का यही फल है !

उस समय तक राख ठंडी हो चुकी थी। सूरदास अटकल से द्वार की ओर से झोपड़े में घुसा; पर दो-तीन पग के बाद एकाएक पांव भूभल में पड़ गया। ऊपर राख थी लेकिन नीचे आग। तुरंत पांव खींच लिया और अपनी लकड़ी से राख को उलटने-पलटने लगा, जिससे नीचे की आग भी जल्द राख हो जाए। आध घंटे में उसने सारी राख नीचे से ऊपर कर दी, और तब फिर डरते-डरते राख में पैर रखा। राख गरम थी, पर असह्य न थी। उसने उसी जगह की सीध में राख को टटोलना शुरू किया, जहां छप्पर में पोटली रखी थी। उसका दिल धड़क रहा था। उसे विश्वास था कि रुपये मिलें, या न मिलें, पर चांदी तो कहीं गई ही नहीं। सहसा वह उछल पड़ा। कोई भारी चीज हाथ लगी। उठा लिया, पर टटोलकर देखा, तो मालूम हुआ ईंट का टुकड़ा है। फिर टटोलने लगा, जैसे कोई आदमी पानी में मछलियां टटोले। कोई चीज हाथ न लगी। तब तो उसने नैराश्य की उतावली और अधीरता के साथ सारी राख छान डाली। एक-एक मुट्ठी राख हाथ में लेकर देखी। लोटा मिला, तवा मिला, किंतु पोटली न मिली। उसका वह पैर, जो अब तक सीढ़ी पर था, फिसल गया और अब वह अथाह गहराई में जा पड़ा। उसके मुख से सहसा एक चीख निकल आई। वह वहीं राख पर बैठ गया और बिलख-बिलखकर रोने लगा। यह फूस की राख न थी, उसकी अभिलाषाओं की राख थी। अपनी बेबसी का इतना दु:ख उसे कभी न हुआ था।

तड़का हो गया, सूरदास अब राख के ढेर को बटोरकर एक जगह एकत्र कर रहा था। आशा से ज्यादा दीर्घजीवी और कोई वस्तु नहीं होती।

उसी समय जगधर आकर बोला—सूरे, सच कहना, तुम्हें मुझ पर तो सुभा नहीं है?

सूरे को शुबहा तो था, पर उसने इसे छिपाकर कहा—तुम्हारे ऊपर क्यों सुभा करूंगा? तुमसे मेरी कौन-सी अदावत थी?

जगधर—मुहल्ले वाले तुम्हे भड़काएंगे, पर मैं भगवान् से कहता हूं, मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता।

सूरदास–अब तो जो कुछ होना था, हो चुका। कौन जाने, किसी ने लगा दी, या किसी की चिलम से उड़कर लग गई? यह भी तो हो सकता है कि चूल्हे में आग रह गई हो। बिना जाने-बूझे किस पर सुभा करूं?

जगधर–इसी से तुम्हें चिता दिया कि कहीं सुभे में मैं भी न मारा जाऊं।

सूरदास–तुम्हारी तरफ से मेरा दिल साफ है।

जगधर को भैरो की बातों से अब यह विश्वास हो गया कि उसी की शरारत है। उसने सूरदास को रुलाने की बात की थी। उस धमकी को इस तरह पूरा किया। वह वहां से सीधे भैरो के पास गया। वह चुपचाप बैठा नारियल पी रहा था, पर मुख से चिंता और घबराहट झलक रही थी। जगधर को देखते ही बोला–कुछ सुना, लोग क्या बातचीत कर रहे हैं?

जगधर–सब लोग तुम्हारे ऊपर सुभा करते हैं। नायकराम की धमकी तो तुमने अपने कानों से सुनी।

भैरो–यहां ऐसी धमकियों की परवा नहीं है। सबूत क्या है कि मैंने लगाई?

जगधर–सच कहो, तुम्हीं ने लगाई?

भैरो–हां, चुपके से एक दियासलाई लगा दी।

जगधर–मैं कुछ-कुछ पहले ही समझ गया था, पर यह तुमने बुरा किया। झोपड़ी जलाने से क्या मिला? दो-चार दिन में फिर दूसरी झोपड़ी तैयार हो जाएगी।

भैरो–कुछ हो, दिल की आग तो ठंडी हो गई ! यह देखो !

यह कहकर उसने एक थैली दिखाई, जिसका रंग धुएं से काला हो गया था। जगधर ने उत्सुक होकर पूछा–इसमें क्या है? अरे ! इसमें तो रुपये भरे हुए हैं।

भैरो–यह सुभागी को बहका ले जाने का जरीबाना है।

जगधर–सच बताओ, ये रुपये कहां मिले?

भैरो–उसी झोपड़े में। बड़े जतन से धरन की आड़ में रखे हुए थे। पाजी रोज राहगीरों को ठग-ठगकर पैसे लाता था, और इसी थैली में रखता था। मैंने गिने हैं। पांच सौ से ऊपर हैं। न जाने कैसे इतने रुपये जमा हो गए। बचा को इन्हीं रुपयों की गरमी थी। अब गरमी निकल गई। अब देखूं किस बल पर उछलते हैं। बिरादरी को भोज-भात देने का सामान हो गया। नहीं तो इस बखत इतने रुपये कहां मिलते? आजकल तो देखते ही हो, बल्लमटेरों के मारे बिकरी कितनी मंदी है।

जगधर–मेरी तो सलाह है कि रुपये उसे लौटा दो। बड़ी मसक्कत की कमाई है। हजम न होगी।

जगधर दिल का खोटा आदमी नहीं था, पर इस समय उसने यह सलाह उसे नेक-नीयती से नहीं, हसद से दी थी। उसे यह असह्य था कि भैरो के हाथ इतने रुपये लग जायं। भैरो आधे रुपये उसे देता, तो शायद उसे तस्कीन हो जाती पर भैरो से यह आशा न की जा सकती थी। बेपरवाही से बोला–मुझे अच्छी तरह हजम हो जाएगी। हाथ में आए हुए रुपये को नहीं लौटा सकता। उसने तो भीख ही मांगकर जमा किए हैं, गेहूं तो नहीं तौला था।

जगधर–पुलिस सब खा जाएगी।

भैरो–सूरे पुलिस में न जाएगा। रो-धोकर चुप हो रहेगा।

जगधर–गरीब की हाय बड़ी जान-लेवा होती है।

भैरो–वह गरीब है। अंधा होने से ही गरीब हो गया? जो आदमी दूसरों की औरतों पर डोरे डाले, जिसके पास सैकड़ों रुपये जमा हों, जो दूसरों को रुपये उधार देता हो, वह गरीब है? गरीब जो कहो, तो हम-तुम हैं। घर में ढूंढ़ आओ, एक पूरा रुपया न निकलेगा। ऐसे पापियों को गरीब नहीं कहते। अब भी मेरे दिल का कांटा नहीं निकला। जब तक उसे रोते न देखूंगा, यह कांटा न निकलेगा। जिसने मेरी आबरू बिगाड़ दी, उसके साथ तो चाहे करूं, मुझे पाप नहीं लग सकता।

जगधर का मन आज खोंचा लेकर गलियों का चक्कर लगाने में न लगा। छाती पर सांप लोट रहा था–इसे दम-के-दम में इतने रुपये मिल गए, अब मौज उड़ाएगा। तकदीर इस तरह खुलती है। यहां कभी पड़ा हुआ पैसा भी न मिला। पाप-पुन्न की कोई बात नहीं । मैं ही कौन दिन-भर पुन्न किया करता हूं? दमड़ी-छदाम-कौड़ियों के लिए टेनी मारता हूं। बाट खोटे रखता हूं, तेल की मिठाई को घी की कहकर बेचता हूं। ईमान गंवाने पर भी हाथ कुछ नहीं लगता। जानता हूं , यह बुरा काम है, पर बाल-बच्चों को पालना भी तो जरूरी है। इसने ईमान खोया, तो कुछ लेकर खोया, गुनाह बेलज्जत नहीं रहा। अब दो-तीन दुकानों का और ठेका ले लेगा। ऐसा ही कोई माल मेरे हाथ भी पड़ जाता, तो जिंदगानी सुफल हो जाती।

जगधर के मन में ईर्ष्या का अंकुर जमा। भैरो के घर से लौटा तो देखा कि सूरदास राख बटोरकर उसे आटे की भांति गूंध रहा है। सारा शरीर भस्म से ढका हुआ है और पसीने की धारें निकल रही हैं। बोला–सूरे, क्या ढूंढ़ते हो?

सूरदास–कुछ नहीं। यहां रखा ही क्या था ! यही लोटा-तवा देख रहा था।

जगधर–और वह थैली किसकी है, जो भैरो के पास है?

सूरदास चौंका। क्या इसीलिए भैरो आया था? जरूर यही बात है। घर में आग लगाने के पहले रुपये निकाल लिए होंगे।

लेकिन अंधे भिखारी के लिए दरिद्रता इतनी लज्जा की बात नहीं है, जितना धन। सूरदास जगधर से अपनी आर्थिक हानि को गुप्त रखना चाहता था। वह गया करना चाहता था, मिठुआ का ब्याह करना चाहता था, कुआं बनवाना चाहता था; किंतु इस ढंग से कि लोगों को आश्चर्य हो कि इसके पास रुपये कहां से आए, लोग यही समझें कि भगवान् दीनजनों की सहायता करते हैं। भिखारियों के लिए धन-संचय पाप-संचय से कम अपमान की बात नहीं है। बोला–मेरे पास थैली-वैली कहां? होगी किसी की। थैली होती, तो भीख मांगता?

जगधर–मुझसे उड़ते हो? भैरो मुझसे स्वयं कह रहा था कि झोपड़े में धरन के ऊपर यह थैली मिली। पांच सौ रुपये से कुछ बेसी हैं।

सूरदास–वह तुमसे हंसी करता होगा। साढ़े पांच रुपये तो कभी जुड़े ही नहीं, साढ़े पांच सौ कहां से आते।

इतने में सुभागी वहां आ पहुंची। रात-भर मंदिर के पिछवाड़े अमरूद के बाग में छिपी बैठी थी। वह जानती थी, आग भैरो ने लगाई है। भैरो ने उस पर जो कलंक लगाया था, उसकी उसे विशेष चिंता न थी, क्योंकि वह जानती थी किसी को इस पर विश्वास न आएगा। लेकिन मेरे कारण सूरदास का यों सर्वनाश हो जाए, इसका उसे बड़ा दु:ख था। वह इस समय उसको तस्कीन देने आई थी। जगधर को वहां खड़े देखा, तो झिझकी। भय हुआ, कहीं यह मुझे पकड़ न ले। जगधर को वह भैरो ही का दूसरा अवतार समझती थी। उसने प्रण कर लिया था कि अब

भैरों के घर न जाऊंगी, अलग रहूंगी और मेहनत-मजूरी करके जीवन का निर्वाह करूंगी। यहां कौन लड़के रो रहे हैं, एक मेरा ही पेट उसे भारी है न? अब अकेले ठोंके और खाय, और बुढ़िया के चरण धो-धोकर पिए, मुझसे तो यह नहीं हो सकता। इतने दिन हुए, इसने कभी अपने मन से धेले का सेंदुर भी न दिया होगा, तो मैं क्यों उसके लिए मरूं?

वह पीछे लौटना ही चाहती थी कि जगधर ने पुकारा—सुभागी, कहां जाती है? देखी अपने खसम की करतूत, बेचारे सूरदास को कहीं का न रखा।

सुभागी ने समझा, मुझे झांसा दे रहा है। मेरे पेट की थाह लेने के लिए यह जाल फेंका है। व्यंग से बोली—उसके गुरु तो तुम्हीं हो, तुम्हीं ने मंत्र दिया होगा।

जगधर—हां, यही मेरा काम है, चोरी-डाका न सिखाऊं, तो रोटिया क्योंकर चलें।

सुभागी ने फिर व्यंग किया—रात ताड़ी पीने को नहीं मिली क्या?

जगधर—ताड़ी के बदले क्या अपना ईमान बेच दूंगा? जब तक समझता था, भला आदमी है, साथ बैठता था, हंसता-बोलता था, ताड़ी भी पी लेता था, कुछ ताड़ी के लालच से नहीं जाता था (क्या कहना है, आप ऐसे धर्मात्मा तो हैं।) लेकिन आज से कभी उसके पास बैठते देखना, तो कान पकड़ लेना। जो आदमी दूसरों के घर में आग लगाए, गरीबों के रुपये चुरा ले जाए, वह अगर मेरा बेटा भी हो तो उसकी सूरत न देखूं। सूरदास ने न जाने कितने जतन से पांच सौ रुपये बटोरे थे। वह सब उड़ा ले गया। कहता हूं, लौटा दो, तो लड़ने पर तैयार होता है।

सूरदास—फिर वही रट लगाए जाते हो। कह दिया कि मेरे पास रुपये नहीं थे, कहीं और जगह से मार लाया होगा। मेरे पास पांच सौ रुपये होते, तो चैन की बंसी न बजाता, दूसरों के सामने हाथ क्यों पसारता?

जगधर—सूरे, अगर तुम भरी गंगा में कहो कि मेरे रुपये नहीं हैं, तो मैं न मानूंगा। मैंने अपनी आंखों से वह थैली देखी है। भैरो ने अपने मुंह से कहा है कि यह थैली झोपड़े में धरन के ऊपर मिली। तुम्हारी बात कैसे मान लूं?

सुभागी—तुमने थैली देखी है?

जगधर—हां, देखी नहीं तो क्या झूठ बोल रहा हूं?

सुभागी—सूरदास, सच-सच बता दो, रुपये तुम्हारे हैं।

सूरदास—पागल हो गई है क्या? इनकी बातों में आ जाती है। भला मेरे पास रुपये कहां से आते?

जगधर—इनसे पूछ, रुपये न थे, तो इस घड़ी राख बटोरकर क्या ढूंढ़ रहे थे?

सुभागी ने सूरदास के चेहरे की तरफ अन्वेषण की दृष्टि से देखा। उसकी उस बीमार की-सी दशा थी, जो अपने प्रियजनों की तस्कीन के लिए अपनी असह्य वेदना को छिपाने का असफल प्रयत्न कर रहा हो। जगधर के निकट आकर बोली—रुपये जरूर थे, इसका चेहरा कहे देता है।

जगधर—मैंने थैली अपनी आंखों से देखी है।

सुभागी—अब चाहे वह मुझे मारे या निकाले, पर रहूंगी उसी के घर। कहां-कहां थैली को छिपाएगा? कभी तो मेरे हाथ लगेगी। मेरे ही कारण इस पर यह बिपत पड़ी है। मैंने ही उजाड़ा है, मैं ही बसाऊंगी। जब तक इसके रुपये न दिला दूंगी, मुझे चैन न आयेगा।

यह कहकर वह सूरदास से बोली–तो अब रहोगे कहां?

सूरदास ने यह बात न सुनी। वह सोच रहा था–रुपये मैंने ही तो कमाये थे, क्या फिर नहीं कमा सकता? यही न होगा, जो काम इस साल होता, वह कुछ दिनों के बाद होगा। मेरे रुपये थे ही नहीं, शायद उस जन्म में मैंने भैरो के रुपये चुराए होंगे। यह उसी का दंड मिला है। मगर बेचारी सुभागी का अब क्या हाल होगा? भैरो उसे अपने घर में कभी न रखेगा। बिचारी कहां मारी-मारी फिरेगी। यह कलंक भी मेरे सिर लगना था। कहीं का न हुआ। धन गया, घर गया, आबरू गई, जो जमीन बच रही है, वह भी न जाने जाएगी या बचेगी। अंधापन ही क्या थोड़ी बिपत थी कि नित ही एक-न-एक चपत पड़ती रहती है। जिसके जी में आता है, चार खोटी-खरी सुना देता है।

इन दु:खजनक विचारों से मर्माहत-सा होकर वह रोने लगा। सुभागी जगधर के साथ भैरो के घर की ओर चली जा रही थी और यहां सूरदास अकेला बैठा हुआ रो रहा था।

सहसा वह चौंक पड़ा। किसी ओर से आवाज आई–तुम खेल में रोते हो।

मिठुआ घीसू के घर से रोता हुआ चला आता था, शायद घीसू ने मारा था। इस पर घीसू उसे चिढ़ा रहा था–खेल में रोते हो।

सूरदास कहां तो नैराश्य, ग्लानि, चिंता और क्षोभ के अपार जल में गोते खा रहा था, कहां यह चेतावनी सुनते ही उसे ऐसा मालूम हुआ, किसी ने उसका हाथ पकड़कर किनारे पर खड़ा कर दिया। वाह ! मैं तो खेल में रोता हूं। कितनी बुरी बात है ! लड़के भी खेल में रोना बुरा समझते हैं, रोने वाले को चिढ़ाते हैं, और मैं खेल में रोता हूं। सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाजी-पर-बाजी हारते हैं, चोट-पर-चोट खाते हैं, धक्के-पर-धक्के सहते हैं; पर मैदान में डटे रहते हैं, उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ते। हिम्मत उनका साथ नहीं छोड़ती, दिल पर मालिन्य के छींटे भी नहीं आते, न किसी से जलते हैं, न चिढ़ते हैं। खेल में रोना कैसा? खेल हंसने के लिए, दिल बहलाने के लिए है, रोने के लिए नहीं।

सूरदास उठ खड़ा हुआ, और विजय-गर्व की तरंग में राख के ढेर को दोनों हाथ से उड़ाने लगा।

आवेग में हम उद्दिष्ट स्थान से आगे निकल जाते हैं। वह संयम कहां है, जो शत्रु पर विजय पाने के बाद तलवार को म्यान में कर ले?

एक क्षण में मिठुआ, घीसू और मुहल्ले के बीसों लड़के आकर इस भस्म-स्तूप के चारों ओर जमा हो गए और मारे प्रश्नों के सूरदास को परेशान कर दिया। उसे राख फेंकते देखकर सबों को खेल हाथ आया। राख की वर्षा होने लगी। दम-के-दम में सारी राख बिखर गई, भूमि पर केवल काला निशान रह गया।

मिठुआ ने पूछा–दादा, अब हम रहेंगे कहां?

सूरदास–दूसरा घर बनाएंगे।

मिठुआ–और कोई फिर आग लगा दे?

सूरदास–तो फिर बनाएंगे।

मिठुआ–और फिर लगा दे?

सूरदास–तो हम फिर बनाएंगे।

मिठुआ–और कोई हजार बार लगा दे?

सूरदास–तो हम हजार बार बनाएंगे।

बालकों को संख्याओं से विशेष रुचि होती है। मिठुआ ने फिर पूछा–और जो कोई सौ लाख बार लगा दे?

सूरदास ने उसी बालोचित सरलता से उत्तर दिया–तो हम भी सौ लाख बार बनाएंगे।

जब वहां राख की एक चुटकी भी न रही, तो सब लड़के किसी दूसरे खेल की तलाश में दौड़े। दिन अच्छी तरह निकल आया था। सूरदास ने भी लकड़ी संभाली और सड़क की तरफ चला। उधर जगधर यहां से नायकराम के पास गया, और वहां भी यह वृत्तांत सुनाया। पंडा ने कहा–मैं भैरो के बाप से रुपये वसूल करूंगा, जाता कहां है, उसकी हड्डियों से रुपये निकालकर दम लूंगा, अंधा अपने मुंह से चाहे कुछ कहे या न कहे।

जगधर वहां से बजरंगी, दयागिरि, ठाकुरदीन आदि मुहल्ले के सब छोटे-बड़े आदमियों से मिला और यह कथा सुनाई। आवश्यकतानुसार यथार्थ घटना में नमक-मिर्च भी लगाता जाता था। सारा मुहल्ला भैरो का दुश्मन हो गया था।

सूरदास तो सड़क के किनारे राहगीरों की जय मना रहा था, यहां मुहल्ले वालों ने उसकी झोंपड़ी बसानी शुरू की। किसी ने फूस दिया, किसी ने बांस दिए, किसी ने धरन दी, कई आदमी झोपड़ी बनाने में लग गए। जगधर ही इस संगठन का प्रधानमंत्री था। अपने जीवन में शायद ही उसने इतना सदुत्साह दिखाया हो। ईर्ष्या में तम-ही-तम नहीं होता, कुछ सत् भी होता है। संध्या तक झोपड़ी तैयार हो गई, पहले से कहीं ज्यादा बड़ी और पायेदार। जमुनी ने मिट्टी के दो घड़े और दो-तीन हांड़ियां लाकर रख दी। एक चूल्हा भी बना दिया। सबने गुट कर रखा था कि सूरदास को झोपड़े के बनने की जरा भी खबर न हो। जब वह शाम को आए, तो घर देखकर चकित हो जाए, और पूछने लगे, किसने बनाई, तब सब लोग कहें, आप-ही-आप तैयार हो गया।

बारह

प्रभु सेवक ताहिरअली के साथ चले, तो पिता पर झल्लाए हुए थे–यह मुझे कोल्हू का बैल बनाना चाहते हैं। आठों पहर तंबाकू ही के नशे में डूबा पड़ा रहूं, अधिकारियों की चौखट पर मस्तक रगड़ूं, हिस्से बेचता फिरूं, पत्रों में विज्ञापन छपवाऊं, बस सिगरेट की डिबिया बन जाऊं। यह मुझसे नहीं हो सकता। मैं धन कमाने की कल नहीं हूं, मनुष्य हूं, धन-लिप्सा अभी तक मेरे भावों को कुचल नहीं पाई है। अगर मैं अपनी ईश्वरदत्त रचना-शक्ति से काम न लूं, तो यह मेरी कृतघ्नता होगी। प्रकृति ने मुझे धनोपार्जन के लिए बनाया ही नहीं, नहीं तो वह मुझे इन भावों से क्यों भूषित करती। कहते तो हैं कि अब मुझे धन की क्या चिंता, थोड़े दिनों का मेहमान हूं, मानो ये सब तैयारियां मेरे लिए हो रही हैं। लेकिन अभी कह दूं कि आप मेरे लिए यह कष्ट न उठाइए, मैं जिस दशा में हूं, उसी में प्रसन्न हूं, तो कुहराम मच जाए। अच्छी विपत्ति गले पड़ी, जाकर देहातियों पर रोब जमाइए, उन्हें धमकाइए, उनको गालियां सुनाइए। क्यों? उन सबों ने कोई नई बात नहीं की है। कोई उनकी जाएदाद पर जबरदस्ती हाथ बढ़ाएगा, तो

वे लड़ने पर उतारू हो ही जाएंगे। अपने स्वत्वों की रक्षा करने का उनके पास और साधन ही क्या है? मेरे मकान पर आज कोई अधिकार करना चाहे, तो मैं कभी चुपचाप न बैठूंगा। धैर्य तो नैराश्य की अंतिम अवस्था का नाम है। जब तक हम निरुपाय नहीं हो जाते, धैर्य की शरण नहीं लेते। इन मियांजी को भी जरा-सी चोट आ गई, तो फरियाद लेकर पहुंचे। खुशामदी है, चापलूसी से अपना विश्वास जमाना चाहता है। आपको भी गरीबों पर रोब जमाने की धुन सवार होगी। मिलकर नहीं रहते बनता। पापा की भी यही इच्छा है। खुदा करे, सब-के-सब बिगड़े खड़े हों, गोदाम में आग लगा दें और इन महाशय की ऐसी खबर लें कि यहां से भागते ही बने। ताहिरअली से सरोष होकर बोले—क्या बात हुई कि सब-के-सब बिगड़ खड़े हुए?

ताहिर—हुजूर, बिलकुल बेसबब। मैं तो खुद ही इन सबों से जान बचाता रहता हूं।

प्रभु सेवक—किसी कार्य के लिए कारण का होना आवश्यक है, पर आज मालूम हुआ कि वह भी दार्शनिक रहस्य है, क्यों?

ताहिर—(बात न समझकर) जी हां, और क्या !

प्रभु सेवक—जी हां, और क्या के क्या मानी? क्या आप बात भी नहीं समझते, या बहरेपन का रोग है? मैं कहता हूं, बिना चिनगारी के आग नहीं लग सकती, पर आप फरमाते हैं, जी हां, और क्या। आपने कहां तक शिक्षा पाई है?

ताहिर—(कातर स्वर से) हुजूर, मिडिल तक तालिम पाई थी, पर बदकिस्मती से पास न हो सका। मगर जो काम मैं कर सकता हूं, वह मिडिल पास कर दे, तो जो जुर्माना कहिए, दूं। बहुत दिनों तक चुंगी में मुंशी रह चुका हूं।

प्रभु सेवक—तो फिर आपके पांडित्य और विद्वत्ता पर किसे शंका हो सकती है ! आपके कथन के आधार पर मुझे मान लेना चाहिए कि आप शांत बैठे हुए पुस्तकावलोकन में मग्न थे, या संभवत: ईश्वर-भजन में तन्मय हो रहे थे, और विद्रोहियों का एक सशस्त्र दल पहुंचकर आप पर हमले करने लगा।

ताहिर—हुजूर तो खुद ही चल रहे हैं, मैं क्या अर्ज करूं, तहकीकात कर लीजिएगा।

प्रभु सेवक—सूर्य को सिद्ध करने के लिए दीपक की जरूरत नहीं होती। देहाती लोग प्राय: बड़े शांतिप्रिय होते हैं। जब तक उन्हें भड़काया न जाए, लड़ाई-दंगा नहीं करते। आपकी तरह उन्हें ईश्वर-भजन से रोटियां नहीं मिलतीं। सारे दिन सिर खपाते हैं, तब रोटियां नसीब होती हैं। आश्चर्य है कि आपके सिर पर जो कुछ गुजरी, उसके कारण भी नहीं बता सकते। इसका आशय इसके सिवा और क्या हो सकता है कि या तो आपको खुदा ने बहुत मोटी बुद्धि दी है, या आप अपना रोब जमाने के लिए लोगों पर अनुचित दबाव डालते हैं।

ताहिर—हुजूर, झगड़ा लड़कों से शुरू हुआ। मुहल्ले के कई लड़के मेरे लड़कों को मार रहे थे। मैंने जाकर उन सबों की गोशमाली कर दी। बस, इतनी जरा-सी बात पर लोग चढ़ आए।

प्रभु सेवक—धन्य हैं, आपके साथ भगवान् ने उतना अन्याय नहीं किया है, जितना मैं समझता था। आपके लड़कों में और मुहल्ले के लड़कों में मार-पीट हो रही थी। आपने अपने लड़कों के रोने की आवाज सुनी और आपका खून उबलने लगा। देहातियों के लड़कों की इतनी हिम्मत कि आपके लड़कों को मारें ! खुदा का गजब ! आपकी शराफत यह अत्याचार न सह सकी। आपने औचित्य, दूरदर्शिता और सहज बुद्धि को समेटकर ताक पर रख दिया और उन दुस्साहसी लड़कों को मारने दौड़े। तो अगर आप-जैसे सभ्य पुरुष को बाल-संग्राम में हस्तक्षेप

करते देखकर और लोग भी आपका अनुसरण करें, तो आपको शिकायत न होनी चाहिए। आपको दुनिया में इतने दिनों तक रहने के बाद यह अनुभव हो जाना चाहिए था कि लड़कों के बीच में बूढ़ों को न पड़ना चाहिए। इसका नतीजा बुरा होता है। अगर आप इस अनुभव से वंचित थे, तो आपको इस पाठ के लिए प्रसन्न होना चाहिए, जिससे आपको एक परमावश्यक और महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके लिए फरियाद करने की जरूरत न थी।

फिटन उड़ी जाती थी और उसके साथ ताहिरअली के होश भी उड़े जाते थे—मैं समझता था, इन हजरत में ज़्यादा इंसानियत होगी, पर देखता हूं तो यह अपने बाप से भी दो अंगुल ऊंचे हैं। न हारी मानते हैं, न जीती। ये ताने बर्दाश्त नहीं हो सकते। कुछ मुफ्त में तनख्वाह नहीं देते। काम करता हूं, मजदूरी लेता हूं। तानों-ही-तानों में मुझे कमीना, अहमक, जाहिल, सब कुछ बना डाला। अभी उम्र में मुझसे कितने छोटे हैं। माहिर से दो-चार साल बड़े होंगे, मगर मुझे इस तरह आड़े हाथों ले रहे हैं, गोया मैं नादान बच्चा हूं। दौलत ज्यादा होने से क्या अक्ल भी ज्यादा हो जाती है? चैन से जिंदगी बसर होती है, जभी ये बातें सूझ रही हैं। रोटियों के लिए ठोकरें खानी पड़तीं, तो मालूम होता, तजुर्बा क्या चीज है। आका कोई बात एतराज के लायक देखे, तो उसे समझाने का हक है, इसकी मुझे शिकायत नहीं, पर जो कुछ कहो, नरमी और हमदर्दी के साथ। यह नहीं कि जहर उगलने लगीं, कलेजे को चलनी बना डालो।

यही बातें हो रही थीं कि पांड़ेपुर आ पहुंचा। सूरदास आज बहुत प्रसन्नचित्त नजर आता था। और दिन सवारियों के निकल जाने के बाद दौड़ता था। आज आगे ही से उनका स्वागत किया, फिटन देखते ही दौड़ा। प्रभु सेवक ने फिटन रोक दी और कर्कश स्वर में बोले—क्यों सूरदास, मांगते हो भीख, बनते हो साधु और काम करते हो बदमाशों का? मुझसे फौजदारी करने का हौसला हुआ है।

सूरदास—कैसी फौजदारी हुजूर? मैं अंधा-अपाहिज आदमी भला क्या फौजदारी करूंगा।

प्रभु सेवक—तुम्हीं ने तो मुहल्ले वालों को साथ लेकर मेरे मुंशीजी पर हमला किया था और गोदाम में आग लगाने को तैयार थे?

सूरदास—सरकार, भगवान् से कहता हूं, मैं नहीं था। आप लोगों का मंगता हूं, जान-माल का कल्यान मनाता हूं, मैं क्या फौजदारी करूंगा?

प्रभु सेवक—क्यों मुंशीजी, यही अगुआ था न?

ताहिर—नहीं हुजूर, इशारा इसी का था, पर यह वहां न था।

प्रभु सेवक—मैं इन चालों को खूब समझता हूं। तुम जानते होगे, इन धमकियों से ये लोग डर जाएंगे, मगर एक-एक से चक्की न पिसवाई, तो कहना कि कोई कहता था। साहब को तुमने क्या समझा है ! अगर हाकिमों से झूठों भी कह दें, तो सारा मुहल्ला बंध जाए। मैं तुम्हें जताए देता हूं।

फिटन आगे बढ़ी, तो जगधर मिला। खोंचा हथेली पर रखे, एक हाथ से मक्खियां उड़ाता चला जाता था। प्रभु सेवक को देखते ही सलाम करके खड़ा हो गया। प्रभु सेवक ने पूछा—तुम भी कल फौजदारी करने वालों में थे?

जगधर—सरकार, मैं टके का आदमी क्या खाके फौजदारी करूंगा, और बिचारे सूरदास की क्या मजाल है कि सरकार के सामने अकड़ दिखाए। अपनी ही बिपत में पड़ा हुआ है। किसी ने रात को बिचारे की झोपड़ी में आग लगा दी। बरतन-भांड़ा सब जल गया। न जाने

किस-किस जतन से कुछ रुपये जुटाए थे, वे भी लुट गए। गरीब ने सारी रात रो-रोकर काटी है। आज हम लोगों ने उसका झोपड़ा बनाया है। अभी छुट्टी मिली है, तो खोंचा लेकर निकला हूं। हुकुम हो, तो कुछ खिलाऊं। कचालू खूब चटपटे हैं।

प्रभु सेवक का जी ललचा गया। खोंचा उतारने को कहा और कचालू, दही-बड़े, फुलौड़ियां खाने लगे। भूख लगी हुई थी। ये चीजें बहुत प्रिय लगीं। कहा—सूरदास ने तो यह बात मुझसे न कही?

जगधर—वह कभी न कहेगा। कोई गला भी काट ले, तो सिकायत न करेगा।

प्रभु सेवक—तब तो वास्तव में कोई महापुरुष है। कुछ पता न चला, किसने झोपड़े में आग लगाई थी?

जगधर—सब मालूम हो गया, हुजूर, पर क्या किया जाए। कितना कहा गया कि उस पर थाने में रपट कर दे, मुदा कहता है, कौन किसी को फंसाए ! जो कुछ भाग में लिखा था, वह हुआ। हजूर, सारी करतूत इसी भैरो ताड़ी वाले की है।

प्रभु सेवक—कैसे मालूम हुआ? किसी ने उसे आग लगाते देखा?

जगधर—हुजूर, वह खुद मुझसे कह रहा था। रुपयों की थैली लाकर दिखाई। इससे बढ़कर और क्या सबूत होगा?

प्रभु सेवक—भैरो के मुंह पर कहोगे?

जगधर—नहीं सरकार, खून हो जाएगा।

सहसा भैरो सिर पर ताड़ी का घड़ा रखे आता हुआ दिखाई दिया। जगधर ने तुरंत खोंचा उठाया और बिना पैसे लिए कदम बढ़ाता हुआ दूसरी तरफ चल दिया। भैरो ने समीप आकर सलाम किया। प्रभु सेवक ने आंखें दिखाकर पूछा—तू ही भैरो ताड़ी वाला है न?

भैरो—(कांपते हुए) हां हजूर, मेरा ही नाम भैरो है।

प्रभु सेवक—तू यहां लोगों के घर में आग लगाता फिरता है?

भैरो—हजूर, जवानी की कसम खाता हूं, किसी ने हजूर से झूठ कह दिया है।

प्रभु सेवक—तू कल मेरे गोदाम पर फौजदारी करने में शरीक था।

भैरो—हजूर का ताबेदार हूं, आपसे फौजदारी करूंगा? मुंसीजी से पूछिए, झूठ कहता हूं या सच। सरकार, न जाने क्यों सारा मोहल्ला मुझसे दुश्मनी करता है। अपने घर में एक रोटी खाता हूं, वह भी लोगों से नहीं देखा जाता। यह जो अंधा है, हजूर, एक ही बदमास है। दूसरों की बहू-बेटियों पर बुरी निगाह रखता है। मांग-मांगकर रुपये जोड़ लिए हैं, लेन-देन करता है। सारा मोहल्ला उसके कहने में है। उसी के चेले बजरंगी ने फौजदारी की है। मालमस्त है, गाएं-भैंसें हैं, पानी मिला-मिलाकर दूध बेचता है। उसके सिवा किसका गुरदा है कि हजूर से फौजदारी करे।

प्रभु सेवक—अच्छा ! इस अंधे के पास रुपये भी हैं?

भैरो—हजूर, बिना रुपये के इतनी गरमी और कैसे होगी। जब पेट भरता है, तभी तो बहू-बेटियों पर निगाह डालने की सूझती है।

प्रभु सेवक—बेकार क्या बकता है, अंधा आदमी क्या बुरी निगाह डालेगा? मैंने तो सुना है, वह बहुत सीधा-सादा आदमी है।

भैरो—आपका कुत्ता आपको थोड़े ही काटता है, आप तो उसकी पीठ सुहलाते हैं, पर

न्हें काटने दौड़ता है, वे तो उसे इतना सीधा-सादा न समझेंगे।

इतने में भैरो की दूकान आ गई। कई गाहक उसकी राह देख रहे थे। वह अपनी दूकान चला गया। तब प्रभु सेवक ने ताहिरअली से कहा—आप कहते हैं, सारा मुहल्ला मिलकर े मारने आया था। मुझे इस पर विश्वास नहीं आता। जहां लोगों में इतना बैर-विरोध है वहां ना एका होना असंभव है। दो आदमी मिले, दोनों एक-दूसरे के दुश्मन। अगर आपकी जगह ई दूसरा आदमी होता, तो इन वैमनस्य से मनमाना फायदा उठाता। उन्हें आपस में लड़ाकर से तमाशा देखता। मुझे तो इन आदमियों पर क्रोध के बदले दया आती है।

बजरंगी का घर मिला। तीसरा पहर हो गया था। वह भैंसों की नांद में पानी डाल रहा । फिटन पर ताहिरअली के साथ प्रभु सेवक को बैठे देखा, तो समझ गया—मियांजी अपने लिक को लेकर रोब जमाने आए हैं। जानते हैं, इस तरह मैं दब जाऊंगा। साहब अमीर होंगे, पने घर के होंगे। मुझे कायल कर दें तो अभी जो जुरमाना लगा दें, वह देने को तैयार हूं, लेकिन ब मेरा कोई कसूर नहीं, कसूर सोलहों आने मियां ही का है, तो मैं क्यों दबूं? न्याय से दबा , पद से दबा लें, लेकिन भबकी से दबने वाले कोई और होंगे।

ताहिरअली ने इशारा किया, यही बजरंगी है। प्रभु सेवक ने बनावटी क्रोध धारण करके हा—क्यों बे, कल के हंगामे में तू भी शरीक था।

बजरंगी—सरीक किसके साथ था? मैं अकेला था।

प्रभु सेवक—तेरे साथ सूरदास और मुहल्ले के और लोग न थे? झूठ बोलता है !

बजरंगी—झूठ नहीं बोलता, किसी का दबैल नहीं हूं। मेरे साथ न सूरदास था और न हल्ले का कोई दूसरा आदमी। मैं अकेला था।

घीसू ने हांक लगाई—पादड़ी ! पादड़ी !

मिठुआ बोला—पादड़ी आया, पादड़ी आया।

दोनों अपने हमजोलियों को यह आनंद-समाचार सुनाने दौड़े, पादड़ी गाएगा, तस्वीरें खाएगा, किताबें देगा, मिठाइयां और पैसे बांटेगा। लड़कों ने सुना, तो वे भी इस लूट का माल ाने दौड़े। एक क्षण में वहां बीसों बालक जमा हो गए। शहर के दूरवर्ती मोहल्लों में अंग्रेजी त्रधारी पुरुष पादड़ी का पर्याय है। नायकराम भंग पीकर बैठे हुए थे, पादड़ी का नाम सुनते उठे, उनकी बेसुरी तानों में उन्हें विशेष आनंद मिलता था। ठाकुरदीन ने भी दूकान छोड़ दी, हें पादड़ियों से धार्मिक वाद-विवाद करने की लत थी। अपना धर्मज्ञान प्रकट करने के ऐसे र अवसर पाकर न छोड़ते थे। दयागिरि भी आ पहुंचे, पर जब लोग फिटन के पास पहुंचे, भेद खुला। प्रभु सेवक बजरंगी से कह रहे थे—तुम्हारी शामत न आए, नहीं तो साहब तुम्हें ाह कर देंगे। किसी काम के न रहोगे। तुम्हारी इतनी मजाल !

बजरंगी इसका जवाब देना ही चाहता था कि नायकराम ने आगे बढ़कर कहा—उस पर प क्यों बिगड़ते हैं, फौजदारी मैंने की है, जो कहना हो, मुझसे कहिए।

प्रभु सेवक ने विस्मित होकर पूछा—तुम्हारा क्या नाम है?

नायकराम को कुछ तो राजा महेन्द्रकुमार के आश्वासन, कुछ विजया की तरंग और कुछ नी शक्ति के ज्ञान ने उच्छृंखल बना दिया था। लाठी सीधी करता हुआ बोला—लट्ठमार पांडे।

इस जवाब में हेकड़ी की जगह हास्य का आधिक्य था। प्रभु सेवक का बनावटी ध हवा हो गया। हंसकर बोले—तब तो यहां ठहरने में कुशल नहीं है, कहीं बिल खोदना

चाहिए।

नायकराम अक्खड़ आदमी था। प्रभु सेवक के मनोभाव न समझ सका। भग्न हुआ—यह मेरी हंसी उड़ा रहे हैं, मानो कह रहे हैं कि तुम्हारी बकवास से क्या होता है, हम जमीन लेंगे और जरूर लेंगे। तिनककर बोला—आप हंसते क्या हैं, क्या समझ रखा है कि अंधे की जमीन सहज ही में मिल जाएगी? इस धोखे में न रहिएगा।

प्रभु सेवक को भी अब क्रोध आया। पहले उन्होंने समझा था, नायकराम दिल्लगी कर रहा है। अब मालूम हुआ कि वह सचमुच लड़ने पर तैयार है। बोले—इस धोखे में नहीं हूं, कठिनाइयों को खूब जानता हूं। अब तक भरोसा था कि समझौते से सारी बातें तय हो जाएंगी, इसीलिए आया था। लेकिन तुम्हारी इच्छा कुछ और हो, तो वही सही। अब तक मैं तुम्हें निर्बल समझता था, और निर्बलों पर अपनी शक्ति का प्रयोग न करना चाहता था। पर आज जाना कि तुम हेकड़ हो, तुम्हें अपने बल का घमंड है। इसलिए अब हम तुम्हें भी अपने हाथ दिखाएं, तो कोई अन्याय नहीं है।

इन शब्दों में नेकनीयती झलक रही थी। ठाकुरदीन ने कहा—हजूर, पंडाजी की बातों का खियाल न करें। इनकी आदत ही ऐसी है, जो कुछ मुंह में आया, बक डालते हैं। हम लोग आपके ताबेदार हैं।

नायकराम—आप दूसरों के बल पर कूदते होंगे, यहां अपने हाथों के बल का भरोसा करते हैं। आप लोगों के दिल में जो अरमान हों, निकाल डालिए। फिर न कहना कि धोखे में वार किया। (धीरे से) एक ही हाथ में सारी किरस्तानी निकल जाएगी।

प्रभु सेवक—क्या कहा, जरा जोर से क्यों से क्यों नहीं कहते?

नायकराम—(कुछ डरकर) कह तो रहा हूं, जो अरमान हो, निकाल डालिए।

प्रभु सेवक—नहीं, तुमने कुछ और कहा है।

नायकराम—जो कुछ कहा है, वही फिर कह रहा हूं। किसी का डर नहीं है।

प्रभु सेवक—तुमने गाली दी है।

यह कहते हुए प्रभु सेवक फिटन से नीचे उतर पड़े, नेत्रों से ज्वाला-सी निकलने लगी, नथुने फड़कने लगे, सारा शरीर थरथराने लगा, एड़ियां ऐसी उछल रही थीं मानो किसी उबलती हुई हांड़ी का ढक्कन है। आकृति विकृत हो गई थी। उनके हाथ में केवल एक पतली-सी छड़ी थी। फिटन से उतरते ही वह झपटकर नायकराम के कल्ले पर पहुंच गए, उसके हाथ से लाठी छीनकर फेंक दी, और ताबड़तोड़ कई बेंत लगाए। नायकराम दोनों हाथों से वारों को रोकता पीछे हटता जाता था। ऐसा जान पड़ता था कि वह अपने होश में नहीं है। वह यह जानता था कि भद्र पुरुष मार खाकर चाहे चुप रह जाएं, गाली नहीं सह सकते। कुछ तो पश्चात्ताप, कुछ आघात की अविलंबिता और कुछ परिणाम के भय ने उसे वार करने का अवकाश ही न दिया। इन अविरल प्रहारों से वह चौंधिया-सा गया। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रभु सेवक उसके जोड़ के न थे, किंतु उसमें वह सत्साहस, वह न्याय-पक्ष का विश्वास न था, जो संख्या और शस्त्र तथा बल की परवा नहीं करता।

और लोग भी हतबुद्धि-से खड़े रहे, किसी ने बीच-बचाव तक न किया। बजरंगी नायकराम के पसीने की जगह खून बहाने वालों में था। दोनों साथ खेले और एक ही अखाड़े में लड़े थे। ठाकुरदीन और कुछ न कर सकता था, तो प्रभु सेवक के सामने खड़ा हो सकता

था, किंतु दोनों-के-दोनों गुमसुम-से ताकते रहे। यह सब कुछ पल मारने में हो गया। प्रभु सेवक अभी तक बेंत चलाते ही जाते थे। जब छड़ी से कोई असर न होते देखा, तो ठोकर चलानी शुरू की। यह चोट कारगर हुई। दो-ही-तीन ठोकरें पड़ी थीं कि नायकराम जांघ में चोट खाकर गिर पड़ा। उसके गिरते ही बजरंगी ने दौड़कर प्रभु सेवक को हटा दिया और बोला—बस साहब, बस, अब इसी में कुशल है कि आप चले जाइए, नहीं तो खून तो जाएगा।

प्रभु सेवक—हमको कोई चरकटा समझ लिया है बदमाश, खून पी जाऊंगा, गाली देता है।

बजरंगी—बस, अब बहुत न बढ़िए, यह उसी गाली का फल है कि आप यों खड़े हैं, नहीं तो अब तक न जाने क्या हो गया होता।

प्रभु सेवक क्रोधोन्माद से निकलकर विचार के क्षेत्र में पहुंच चुके थे। आकर फिटन पर बैठ गए और घोड़े को चाबुक मारा, घोड़ा हवा हो गया।

बजरंगी ने जाकर नायकराम को उठाया। घुटनों में बहुत चोट आई थी, खड़ा न हुआ जाता था। मालूम होता था, हड्डी टूट गई है। बजरंगी का कंधा पकड़कर धीरे-धीरे लंगड़ाते हुए घर चले।

ठाकुरदीन ने कहा—नायकराम, भला मानो या बुरा, भूल तुम्हारी थी। ये लोग गाली नहीं बर्दाश्त कर सकते।

नायकराम—अरे, तो मैंने गाली कब दी थी भाई, मैंने तो यही कहा था कि एक ही हाथ में किरस्तानी निकल जाएगी। बस, इसी पर बिगड़ गया।

जमुनी अपने द्वार पर खड़े-खड़े यह तमाशा देख रही थी। आकर बजरंगी को कोसने लगी—खड़े मुंह ताकते रहे, और वह लौंडा मार-पीटकर चला गया। सारी पहलवानी धरी रह गई।

बजरंगी—मैं तो जैसे घबरा गया।

जमुनी—चुप भी रहो। लाज नहीं आती। एक लौंडा आकर सबको पछाड़ गया। यह तुम लोगों के घमंड की सजा है।

ठाकुरदीन—बहुत सच कहती हो जमना, यह कौतुक देखकर यही कहना पड़ता है कि भगवान् को हमारे गरूर की सजा देनी थी, नहीं तो क्या ऐसे-ऐसे जोधा कठपुतलियों की भांति खड़े रहते। भगवान् किसी का घमंड नहीं रखते।

नायकराम—यही बात होगी भाई, मैं अपने घमंड में किसी को कुछ न समझता था।

ये बातें करते हुए लोग नायकराम के घर आए। किसी ने आग बनाई, कोई हल्दी पीसने लगा। थोड़ी देर में मुहल्ले के और लोग आकर जमा हो गया। सबको आश्चर्य होता था कि नायकराम-जैसा फेकैत और लठैत कैसे मुंह की खा गया। कहां सैकड़ों के बीच से बेदाग निकल आता था, कहां एक लौंडे ने लथेड़ डाला। भगवान् की मरजी है।

जगधर हल्दी का लेप करता हुआ बोला—यह सारी आग भैरो की लगाई हुई है उसने रास्ते ही में साहब के कान भर दिए थे। मैंने तो देखा, उसकी जेब में पिस्तौल भी था।

नायकराम—पिस्तौल और बंदूक सब देखूंगा, अब तो लाग पड़ गई।

ठाकुरदीन—कोई अनुस्ठान करवा दिया जाए।

जगधर—अनुस्ठान का किरस्तानों पर कुछ बस नहीं चलता।

नायकराम—इसे बीच बाजार में फिटन रोककर मारूंगा, फिर कहीं मुंह दिखाने लायक न रहेगा। अब मन में यही ठन गई है।

सहसा भैरो आकर खड़ा हो गया। नायकराम ने ताना दिया—तुम्हें तो बड़ी खुशी हुई होगी भैरो !

भैरो—क्यों भैया?

नायकराम—मुझ पर मार न पड़ी है !

भैरो—क्या मैं तुम्हारा दुसमन हूं भैया? मैंने तो अभी दूकान पर सुना। होस उड़ गए। साहब देखने में तो बहुत सीधा-सादा मालूम होता था। मुझसे हंस-हंसकर बातें कीं, यहां आकर न जाने कौन भूत उस पर सवार हो गया।

नायकराम—उसका भूत मैं उतार दूंगा, अच्छी तरह उतार दूंगा, जरा खड़ा तो होन दो। हां, यहां जो कुछ राय हो, उसकी खबर वहां न होने पाए, नहीं तो चौकन्ना हो जाएगा।

बजरंगी—यह न कहो घर का भेदी लंका दाहे। कौन जाने, कोई आदमी साबासी लूटने के लिए, इनाम लेने के लिए, सुरखरू बनने के लिए, वहां सारी बातें लगा आए।

भैरो—मुझी पर सक कर रहे हो न? तो मैं इतना नीच नहीं हूं कि घर का भेद दूसरों से खोलता फिरूं। इस तरह चार आदमी एक जगह रहते हैं, तो आपस में खटपट होती ही है, लेकिन इतना कमीना नहीं हूं कि भभीखन की भांति अपने भाई के घर में आग लगवा दूं। क्या इतना नहीं जानता कि मरने-जीने में, बिपत-संपत में मुहल्ले के लोग ही काम आते हैं? कभी किसी के साथ बिस्वासघात किया है? पंडाजी ही कह दें, कभी उनकी बात दुलखी है? उनकी आड़ न होती तो, पुलिस ने अब तक मुझे कब का लदवा दिया होता, नहीं तो रजिस्टर में नाम तक नहीं है।

नायकराम—भैरो, तुमने अवसर पड़ने पर कभी साथ नहीं छोड़ा, इतना तो मानना ही पड़ेगा।

भैरो—पंडाजी, तुम्हारा हुक्म हो, तो आग में कूद पडूं।

इतने में सूरदास भी आ पहुंचा। सोचता आता था, आज कहां खाना बनाऊंगा। इसकी क्या चिंता है; बस, नीम के पेड़ के नीचे बाटियां लगाऊंगा। गरमी के तो दिन हैं, कौन पानी बरस रहा है। ज्योंही बजरंगी के द्वार पर पहुंचा कि जमुनी ने आज का सारा वृत्तांत कह सुनाया। होश उड़ गए। उपले-ईंधन की सुधि न रही। सीधे नायकराम के यहां पहुंचा। बजरंगी ने कहा—आओ सूरे, बड़ी देर लगाई, क्या अभी चले आते हो? आज तो यहां बड़ा गोलमाल हो गया।

सूरदास—हां, जुमनी ने अभी मुझसे कहा। मैं तो सुनते ही ठक रह गया।

बजरंगी—होनहार थी, और क्या। है तो लौंडा, पर हिम्मत का पक्का है। जब तक हम लोग हां-हां करें, तब तक फिटन पर से कुछ ही तो पड़ा और लगा हाथ-पर-हाथ चलाने।

सूरदास—तुम लोगों ने पकड़ भी न लिया?

बजरंगी—सुनते तो हो, जब तक दौड़े, तब तक तो उसने हाथ चला ही दिया।

सूरदास—बड़े आदमी गाली सुनकर आपे से बाहर हो जाते हैं।

जगधर—जब बीच बाजार में बेभाव की पड़ेंगी, तब रोएंगे। अभी तो फूले न समाते होंगे।

बजरंगी—जब चौक में निकलै, तो गाड़ी रोककर जूतों से मारै।

सूरदास–अरे, अब जो हो गया, सो हो गया, उसकी आबरू बिगाड़ने से क्या मिलेगा?

नायकराम–तो क्या मैं यों ही छोड़ दूंगा! एक-एक बेंत के बदले अगर सौ-सौ जूते न लगाऊं तो मेरा नाम नायकराम नहीं। यह चोट मेरे बदन पर नहीं, मेरे कलेजे पर लगी है। बड़े-बड़ों का सिर नीचा कर चुका हूं, इन्हें मिटाते क्या देर लगती है। (चुटकी बजाकर) इस तरह उड़ा दूंगा।

सूरदास–बैर बढ़ाने से कुछ फायदा न होगा। तुम्हारा तो कुछ न बिगड़ेगा, लेकिन मुहल्ले के सब आदमी बंध जाएंगे।

नायकराम–कैसी पागलों की-सी बातें करते हो। मैं कोई धुनिया-चमार हूं कि इतनी बेइज्जती कराके चुप हो जाऊं? तुम लोग सूरदास को कायल क्यों नहीं करते जी? क्या चुप होके बैठ रहूं? बोलो बजरंगी, तुम लोग भी डर रहे हो कि वह किरस्तान सारे मुहल्ले को पीसकर पी जाएगा?

बजरंगी–औरों की तो मैं नहीं कहता, लेकिन मेरा बस चले, तो उसके हाथ-पैर तोड़ दूं, चाहे जेहल ही क्यों न काटना पड़े। यह तुम्हारी ही बेइज्जती नहीं है, मुहल्ले भर के मुंह में कालिख लग गई है।

भैरो–तुमने मेरे मुंह से बात छीन ली। क्या कहूं, उस बख्त मैं न था, नहीं तो हड्डी तोड़ डालता।

जगधर–पंडाजी, मुंह-देखी नहीं कहता, तुम चाहे दूसरों के कहने-सुनने में आ जाओ, लेकिन मैं बिना उसकी मरम्मत किए न मानूंगा।

इस पर कई आदमियों ने कहा–मुखिया की इज्जत गई, तो सबकी गई। वही तो किरस्तान है, जो गली-गली ईसा मसीह के गीत गाते फिरते हैं। डोमड़ा, चामर, जो गिरजा में जाकर खाना खा ले, वही किरस्तान हो जाता है। वही बाद को कोट-पतलून पहनकर साहब बन जाते हैं।

ठाकुरदीन–मेरी तो सलाह यही है कि कोई अनुस्ठान करा दिया जाए।

नायकराम–अब बताओ सूरे, तुम्हारी बात मानूं या इतने आदमियों की? तुम्हें यह डर होगा कि कहीं मेरी जमीन पर आंच न आ जाए, तो इससे तुम निरिंचत रहो। राजा साहब ने जो बात कह दी, उसे पत्थर की लकीर समझो। साहब सिर रगड़कर मर जाए, तो भी अब जमीन नहीं पा सकते।

सूरदास–जमीन की मुझे चिंता नहीं है। मरूंगा, तो सिर पर लाद थोड़े ही ले जाऊंगा। पर अंत में यह सारा पाप मेरे ही सिर पड़ेगा। मैं ही तो इस सारे तूफान की जड़ हूं, मेरे ही कारन तो यह रगड़-झगड़ मची हुई है, नहीं तो साहब को तुमसे कौन दुसमनी थी।

नायकराम–यारो, सूरे को समझाओ।

जगधर–सूरे, सोचो, हम लोगों की कितनी बेआबरुई हुई है।

सूरदास–आबरू को बनाने-बिगाड़ने वाला आदमी नहीं है, भगवान् है। उन्हीं की निगाह में आबरू बनी रहनी चाहिए। आदमियों की निगाह में आबरू की परख कहां है। जब सूद खाने वाला बनिया और घूस लेने वाला हाकिम और झूठ बोलने वाला गवाह बेआबरू नहीं समझा जाता, लोग उसका आदर-मान करते हैं, तो यहां सच्ची आबरू की कदर करने वाला कोई है ही नहीं।

बजरंगी–तुमसे कुछ मतलब नहीं, हम लोग जो चाहेंगे, करेंगे।

सूरदास—अगर मेरी बात न मानोगे, तो मैं जाके साहब से सारा माजरा कह सुनाऊंगा।

नायकराम—अगर तुमने उधर पैर रखा, तो याद रखना, वहीं खोदकर गाड़ दूंगा। तुम्हें अंधा-अपाहिज समझकर तुम्हारी मुरौवत करता हूं, नहीं तो तुम हो किस खेत की मूली ! क्या तुम्हारे कहने से अपनी इज्जत गंवा दूं, मां-बाप-दादों के मुंह पर कालिख लगवा दूं ! बड़े आए हो वहां से ज्ञानी बनके। तुम भीख मांगते हो, तुम्हें अपनी इज्जत फिकिर न हो, यहां तो आज तक पीठ में धूल नहीं लगी।

सूरदास ने इसका कुछ जवाब न दिया। चुपके से उठा और मंदिर के चबूतरे पर जाकर लेट गया। मिठुआ प्रसाद के इंतजार में वहीं बैठा हुआ था। उसे पैसे निकालकर दिए कि सत्तू-गुड़ लाकर खा ले। मिठुआ खुश होकर बनिए की दूकान की ओर दौड़ा। बच्चों को सत्तू और चबेना रोटियों से अधिक प्रिय होता है।

सूरदास के चले जाने के बाद कुछ देर तक लोग सन्नाटे में बैठे रहे। उसके विरोध ने उन्हें संशय में डाल दिया था। उसकी स्पष्टवादिता से सब लोग डरते थे। यह भी मालूम था कि वह जो कुछ कहता है, उसे पूरा कर दिखाता है। इसलिए आवश्यक था कि पहले सूरदास से निबट लिया जाए। उसे कायल करना मुश्किल था। धमकी से भी कोई काम न निकल सकता था। नायकराम ने उस पर लगे हुए कलंक का समर्थन करके उसे परास्त करने का निश्चय किया। बोला—मालूम होता है, उन लोगों ने अंधे को फोड़ लिया है।

भैरो—मुझे भी यही संदेह होता है।

जगधर—सूरदास फूटने वाला आदमी नहीं है।

बजरंगी—कभी नहीं।

ठाकुरदीन—ऐसा स्वभाव तो नहीं है, पर कौन जाने। किसी की नहीं चलाई जाती। मेरे ही घर चोरी हुई, तो क्या बाहर के चोर थे? पड़ोसियों ही की करतूत थी। पूरे एक हजार का माल उठ गया। और वही लोग, जिन्होंने माल उड़ाया, अब तक मेरे मित्र बने हुए हैं। आदमी का मन छिन-भर में क्या से क्या हो जाता है।

नायकराम—शायद जमीन का मामला करने पर राजी हो गया हो, पर साहब ने इधर आंख उठाकर भी देखा, तो बंगले में आग लगा दूंगा। (मुस्कराकर) भैरो मेरी मदद करेंगे ही।

भैरा—पंडाजी, तुम लोग मेरे ऊपर सुभा करते हो, पर मैं जवानी की कसम खाता हूं, जो उसके झोपड़े के पास भी गया होऊं। जगधर मेरे यहां आते-जाते हैं, इन्हीं से ईमान से पूछिए।

नायकराम—जो आदमी किसी की बहू-बेटी पर बुरी निगाह करे, उसके घर में आग लगाना बुरा नहीं। मुझे पहले तो विश्वास नहीं आता था, पर आज उसके मिजाज का रंग बदला हुआ है।

बजरंगी—पंडाजी, सूरे को तुम आज तीस बरसों से देख रहे हो। ऐसी बात न कहो।

जगधर—सूरे में और चाहे जितनी बुराइयां हो, यह बुराई नहीं है।

भैरो—मुझे भी ऐसा जान पड़ता है कि हमने हक-नाहक उस पर कलंक लगाया। सुभागी आज सबेरे आकर मेरे पैरों पर गिर पड़ी और तब से घर से बाहर नहीं निकली। सारे दिन अम्मां की सेवा-टहल करती रही।

यहां तो ये बातें होती रहीं कि प्रभु सेवक का सत्कार क्योंकर किया जाएगा। उसी के कार्यक्रम का निश्चय होता रहा। उधर प्रभु सेवक घर चले, तो आज के कृत्य पर उन्हें वह

संतोष तो न था, जो सत्कार्य का सबसे बड़ा इनाम है पर इसमें संदेह नहीं कि उनकी आत्माशांत थी।

कोई भला आदमी अपशब्दों को सहन नहीं कर सकता, और न करना ही चाहिए। अगर कोई गालियां खाकर चुप रहे, तो इसका अर्थ यही है कि वह पुरुषार्थहीन है, उसमें आत्माभिमान नहीं। गालियां खाकर भी जिसके खून में जोश न आए, वह जड़ है, पशु है, मृतक है।

प्रभु सेवक को खेद यह था कि मैंने यह नौबत आने ही क्यों दी। मुझे उनसे मैत्री करनी चाहिए थी। उन लोगों को ताहिरअली के गले मिलाना चाहिए था, पर यह समय-सेवा किससे सीखूं? उंह ! ये चालें वह चले, जिसे फैलने की अभिलाषा हो, यहां तो सिमटकर रहना चाहते हैं। पापा सुनते ही झल्ला उठेंगे। सारा इलजाम मेरे ही सिर मढ़ेंगे। मैं ही बुद्धिहीन, विचारहीन, अनुभवहीन प्राणी हूं ! अवश्य हूं। जिसे संसार में रहकर सांसारिकता का ज्ञान न हो, वह मंदबुद्धि है। पापा बिगड़ेंगे, मैं शांत भाव से उनका क्रोध सह लूंगा। अगर वह मुझसे निराश होकर यह कारखाना खोलने का विचार त्याग दें, तो मैं मुंह-मांगी मुराद पा जाऊं।

किंतु प्रभु सेवक को कितना आश्चर्य हुआ, जब सारा वृत्तांत सुनकर भी जॉन सेवक के मुख पर क्रोध का कोई लक्षण न दिखाई दिया, यह मौन व्यंग्य और तिरस्कार से कहीं ज्यादा दुस्सह था। प्रभु सेवक चाहते थे कि पापा मेरी खूब तंबीह करें, जिसमें मुझे अपनी सफाई देने का अवसर मिले, मैं सिद्ध कर दूं कि इस दुर्घटना का जिम्मेदार मैं नहीं हूं। मेरी जगह कोई दूसरा आदमी होता, तो उसके सिर भी यही विपत्ति पड़ती। उन्होंने दो-एक बार पिता के क्रोध को उकसाने की चेष्टा की, किंतु जॉन सेवक ने केवल एक बार उन्हें तीव्र दृष्टि से देखा, और उठकर चले गए। किसी कवि की यशेच्छा श्रोताओं के मौन पर इतनी मर्माहत न हुई होगी।

मिस्टर जॉन सेवक छलके हुए दूध पर आंसू न बहाते थे। प्रभु सेवक के कार्य की तीव्र आलोचना करना व्यर्थ था। वह जानते थे कि इसमें आत्मसम्मान कूट-कूटकर भरा हुआ है। उन्होंने स्वयं इस भाव का पोषण किया था। सोचने लगे—इस गुत्थी को कैसे सुलझाऊं? नायकराम मुहल्ले का मुखिया है। सारा मुहल्ला इसके इशारों का गुलाम है। सूरदास तो केवल स्वर भरने के लिए है। और, नायकराम मुखिया ही नहीं, शहर का मशहूर गुंडा भी है। बड़ी कुशल हुई कि प्रभु सेवक वहां से जीता-जागता लौट आया। राजा साहब बड़ी मुश्किलों से सीधे हुए थे। नायकराम उनके पास जरूर फरियाद करेगा, अबकी हमारी ज्यादती साबित होगी। राजा साहब को पूंजी वालों से यों ही चिढ़ है, यह कथा सुनते ही जामे से बाहर हो जाएंगे। फिर किसी तरह उनका मुंह सीधा न होगा। सारी रात जॉन सेवक इसी उधेड़बुन में पड़े रहे। एकाएक उन्हें एक बात सूझी। चेहरे पर मुस्कराहट की झलक दिखाई दी। संभव है, यह चाल सीधी पड़ जाए, तो फिर बिगड़ा हुआ काम संवर जाए। सुबह को हाजिरी खाने के बाद फिटन तैयार कराई और पांड़ेपुर चल दिए।

नायकराम ने पैरों में पट्टियां बांध ली थीं, शरीर में हल्दी की मालिश कराए हुए थे, एक डोली मंगवा रखी थी और राजा महेन्द्रकुमार के पास जाने को तैयार थे। अभी मुहूर्त में दो-चार पल की कसर थी। बजरंगी और जगधर साथ जाने वाले थे। सहसा फिटन पहुंची, तो लोग चकित हो गए। एक क्षण में सारा मुहल्ला आकर जमा हो गया, आज क्या होगा।

जॉन सेवक नायकराम के पास जाकर बोले—आप ही का नाम नायकराम पांड़े है न? मैं आपसे कल की बातों के लिए क्षमा मांगने आया हूं। लड़के ने ज्योंही मुझसे यह समाचार

कहा, मैंने उसको खूब डांटा, और रात ज्यादा न हो गई होती, तो मैं उसी वक्त आपके पास आया होता। लड़का कुमार्गी और मूर्ख है। कितना ही चाहता हूं कि उसमें जरा आदमीयत आ जाए, पर ऐसी उलटी समझ है कि किसी बात पर ध्यान ही नहीं देता। विद्या पढ़ने के लिए विलायत भेजा, वहां से भी पास हो आया, पर सज्जनता न आई। उसकी नादानी का इससे बढ़कर और क्या सबूत होगा कि इतने आदमियों के बीच में आपसे बेअदबी कर बैठा। अगर कोई आदमी शेर पर पत्थर फेंके, तो उसकी वीरता नहीं, उसका अभिमान भी नहीं, उसकी बुद्धिहीनता है। ऐसा प्राणी दया के योग्य है, क्योंकि जल्द या देर में वह शेर के मुंह का ग्रास बन जाएगा। इस लौंडे की ठीक यही दशा है। आपने मुरौवत न की होती, क्षमा से न काम लिया होता, तो न जाने क्या हो जाता। जब आपने इतनी दया की है, तो दिल से मलाल भी निकाल डालिए।

नायकराम चारपाई पर लेट गए, मानो खड़े रहने में कष्ट हो रहा है, और बोले–साहब दिल से मलाल तो न निकलेगा, चाहे जान निकल जाए। इसे चाहे हम लोगों की मुरौवत कहिए चाहे उनकी तकदीर कहिए कि वह यहां से बेदाग चले गए, लेकिन मलाल तो दिल में बना हुआ है। वह तभी निकलेगा, जब या तो मैं न रहूंगा या वह न रहेंगे। रही भलमनसी, भगवान् ने चाहा तो जल्द ही सीख जाएंगे। बस, एक बार हमारे हाथ में फिर पड़ जाने दीजिए। हमने बड़े-बड़ों को भलामानुस बना दिया, उनकी क्या हस्ती है।

जॉन सेवक–अगर आप इतनी आसानी से उसे भलमनसी सिखा सकें, तो कहिए आप ही के पास भेज दूं, मैं तो सब कुछ करके हार गया।

नायकराम–बोलो भाई बजरंगी, साहब की बातों का जवाब दो, मुझसे तो बोला नहीं जाता, रात कराह-कराहकर काटी है। साहब कहते हैं, माफ कर दो, दिल में मलाल न रखो, मैं तो यह सब व्यवहार नहीं जानता। यहां तो ईंट का जवाब पत्थर से देना सीखा है।

बजरंगी–साहब लोगों का यही दस्तूर है। पहले तो मारते हैं, और जब देखते हैं कि अब हमारे ऊपर भी मार पड़ा चाहती है, तो चेट कहते हैं, माफ कर दो, यह नहीं सोचते कि जिसने मार खाई है, उसे बिना मारे कैसे तस्कीन होगी।

जॉन सेवक–तुम्हारा यह कहना ठीक है, लेकिन यह समझ लो कि क्षमा बदले के भय से नहीं मांगी जाती। भय से आदमी छिप जाता है, दूसरों की मदद मांगने दौड़ता है, क्षमा नहीं मांगता। क्षमा आदमी उसी वक्त मांगता है, जब उसे अपने अन्याय और बुराई का विश्वास हो जाता है, और जब उसकी आत्मा उसे लज्जित करने लगती है। प्रभु सेवक से तुम माफी मांगने को कहो, तो कभी न राजी होगा। तुम उसकी गरदन पर तलवार चलाकर भी उसके मुंह से क्षमा-याचना का एक शब्द नहीं निकलवा सकते। अगर विश्वास न हो, तो इसकी परीक्षा कर लो। इसका कारण यही है कि वह समझता है, मैंने कोई ज्यादती नहीं की। वह कहता है, मुझे उन लोगों ने गालियां दीं। लेकिन मैं इसे किसी तरह नहीं मान सकता कि आपने उसे गालियां दी होंगी। शरीफ आदमी न गालियां देता है, न गालियां सुनता है। मैं जो क्षमा मांग रहा हूं, वह इसलिए कि मुझे यहां सरासर उसकी ज्यादती मालूम होती है। मैं उसके दुर्व्यवहार पर लज्जित हूं, और मुझे इसका दुःख है कि मैंने उसे यहां क्यों आने दिया। सच पूछिए, तो अब मुझे यही पछतावा हो रहा है कि मैंने इस जमीन को लेने की बात ही क्यों उठाई। आप लोगों ने मेरे गुमाश्ते को मारा, मैंने पुलिस में रपट तक न की। मैंने निश्चय कर लिया कि अब इस जमीन का नाम

न लूंगा। मैं आप लोगों को कष्ट नहीं देना चाहता, आपको उजाड़कर अपना घर नहीं बनाना चाहता। अगर तुम लोग खुशी से दोगे, तो लूंगा, नहीं तो छोड़ दूंगा। किसी का दिल दुखाना सबसे बड़ा अधर्म कहा गया है। जब तक आप लोग मुझे क्षमा न करेंगे, मेरी आत्मा को शांति न मिलेगी।

उद्दंडता सरलता का केवल उग्र रूप है। साहब के मधुर वाक्यों ने नायकराम का क्रोध शांत कर दिया। कोई दूसरा आदमी इतनी ही आसानी से उसे साहब की गरदन पर तलवार चलाने के लिए उत्तेजित कर सकता था; संभव था, प्रभु सेवक को देखकर उसके सिर पर फिर खून सवार हो जाता; पर इस समय साहब की बातों ने उसे मंत्रमुग्ध-सा कर दिया। बोला–कहो बजरंगी, क्या कहते हो?

बजरंगी–कहना क्या है, जो अपने सामने मस्तक नवाये, उसके सामने मस्तक नवाना ही पड़ता है। साहब यह भी तो कहते हैं कि अब हम जमीन से कोई सरोकार न रखेंगे, तो हमारे और उनके बीच में झगड़ा ही क्या रहा?

जगधर–हां, झगड़े का मिट जाना ही अच्छा है। बैर-विरोध से किसी का भला नहीं होता।

भैरो–छोटे साहब को चाहिए कि आकर पंडाजी से खता माफ करावें। अब वह कोई बालक नहीं हैं कि आप उनकी ओर से सिपारिस करें। बालक होते, तो दूसरी बात थी, तब हम लोग आप ही को उलाहना देते। वह पढ़े-लिखे आदमी हैं, मूंछ-दाढ़ी निकल आई हैं। उन्हें खुद आकर पंडाजी से कहना-सुनना चाहिए।

नायकराम–हां, यह बात पक्की है। जब तक वह थूककर न चाटेंगे, मेरे दिल से मलाल न निकलेगा।

जॉन सेवक–तो तुम समझते हो कि दाढ़ी-मूंछ आ जाने से बुद्धि भी आ जाती है? क्या ऐसे आदमी नहीं देखे हैं, जिनके बाल पक गए हैं, दांत टूट गए हैं, और अभी तक अक्ल नहीं आई? प्रभु सेवक अगर बुद्धू न होता, तो वह इतने आदमियों के बीच में और पंडाजी-जैसे पहलवान पर हाथ न उठाता। उसे तुम कितना ही दबाओ, पर मुआफी न मांगेगा। रही जमीन की बात, अगर तुम लोगों की मरजी है कि मैं इस मुआमले को दबा रहने दूं, तो यही सही। पर शायद अभी तक तुम लोगों ने इस समस्या पर विचार नहीं किया, नहीं तो कभी विरोध न करते। बतलाइए पंडाजी, आपको क्या शंका है?

नायकराम–भैरो, इसका जवाब दो। अब तो साहब ने तुमको कायल कर दिया!

भैरो–कायल क्या कर दिया, साहब यही कहते हैं न कि छोटे साहब को अक्कल नहीं है। तो वह कुएं में क्यों नहीं कूद पड़ते, अपने दांतों से अपना हाथ क्यों नहीं काट लेते? ऐसे आदमियों को कोई कैसे पागल समझ ले?

जॉन सेवक–जो आदमी यह न समझे कि किस मौके पर कौन काम करना चाहिए, किसी मौके पर कौन बात करनी चाहिए, वह पागल नहीं तो और क्या है?

नायकराम–साहब, उन्हें मैं पागल तो किसी तरह न मानूंगा। हां, आपका मुंह देखकर उनसे बैर न बढ़ाऊंगा। आपकी नम्रता ने मेरा सिर झुका दिया है। सच कहता हूं, आपकी भलमनसी और शराफत ने मेरा गुस्सा ठंडा कर दिया, नहीं तो मेरे दिल में न जाने कितना गुबार भरा हुआ था। अगर आप थोड़ी देर और न आते, तो आज शाम तक छोटे साहब अस्पताल में होते। आज तक कभी मेरी पीठ में धूल नहीं लगी। जिंदगी में पहली बार मेरा इतना अपमान हुआ और पहली बार मैंने क्षमा करना भी सीखा। यह आपकी बुद्धि की बरकत है। मैं आपकी

खोपड़ी को मान गया। अब साहब की दूसरी बात का जवाब दो बजरंगी।

बजरंगी—उसमें अब काहे का सवाल-जवाब। साहब ने तो कह दिया कि मैं उसका नाम न लूंगा। बस, झगड़ा मिट गया।

जॉन सेवक—लेकिन अगर उस जमीन के मेरे हाथ में आने से तुम्हारा सोलहों आने फायदा हो, तो भी तुम हमें न लेने दोगे?

बजरंगी—हमारा फायदा क्या होगा, हम तो मिट्टी में मिल जाएंगे।

जॉन सेवक—मैं तो दिखा दूंगा कि यह तुम्हारा भ्रम है। बतलाओ, तुम्हें क्या एतराज है?

बजरंगी—पंडाजी, के हजारों जात्री आते हैं, वे सब इसी मैदान में ठहरते हैं। दस-दस, बीस-बीस दिन पड़े रहते हैं, वहीं खाना बनाते हैं, वहीं सोते भी हैं। सहर के धरमसालों में देहात के लोगों को आराम कहां? यह जमीन न रहे, तो कोई जात्री यहां झांकने भी न आए।

जॉन सेवक—यात्रियों के लिए, सड़क के किनारे, खपरैल के मकान बनवा दिए जाएं, तो कैसा?

बजरंगी—इतने मकान कौन बनवाएगा?

जॉन सेवक—इसका मेरा जिम्मा। मैं वचन देता हूं कि यहां धर्मशाला बनवा दूंगा।

बजरंगी—मेरी और मुहल्ले के दूसरे आदमियों की गाएं-भैंसें कहां चरेंगी?

जॉन सेवक—अहाते में घास चराने का तुम्हें अख्तियार रहेगा। फिर, अभी तुम्हें अपना सारा दूध लेकर शहर जाना पड़ता है। हलवाई तुमसे दूध लेकर मलाई, मक्खन, दही बनाता है, और तुमसे कहीं ज्यादा सुखी है। यह नफा उसे तुम्हारे ही दूध से तो होता है। तुम अभी यहां मलाई-मक्खन बनाओ, तो लेगा कौन? जब यहां कारखाना खुल जाएगा, तो हजारों आदमियों की बस्ती हो जाएगी, तुम दूध की मलाई बेचोगे, दूध अलग बिकेगा। इस तरह तुम्हें दोहरा नफा होगा। तुम्हारे उपले घर बैठे बिक जाएंगे। तुम्हें तो कारखाना खुलने से सब नफा-ही-नफा है।

नायकराम—आता है समझ में न बजरंगी?

बजरंगी—समझ में क्यों नहीं आता, लेकिन एक मैं दूध की मलाई बना लूंगा, और लोग भी तो हैं, दूध खाने के लिए जानवर पाले हुए हैं। उन्हें तो मुस्किल पड़ेगी।

ठाकुरदीन—मेरी ही एक गाय है। चोरों का बस चलता, तो इसे भी ले गए होते। दिन-भर वह चरती है। सांझ-सबेरे दूध दूहकर छोड़ देता हूं। धेले का भी चारा नहीं लेना पड़ता। तब तो आठ आने रोज का भूसा भी पूरा न पड़ेगा।

जॉन सेवक—तुम्हारी पान की दूकान है न? अभी तुम दस-बारह आने पैसे कमाते होगे। तब तुम्हारी बिक्री चौगुनी जो जाएगी। इधर की कमी उधर पूरी हो जाएगी। मजदूरों को पैसे की पकड़ नहीं होती, काम से जरा फुरसत मिली कि कोई पान पर गिरा, कोई सिगरेट पर दौड़ा। खोंचेवाले की खासी बिक्री होगी, और शराब-ताड़ी का तो पूछना ही क्या, चाहो तो पानी को शराब बनाकर बेचो। गाड़ी-वालों की मजदूरी बढ़ जाएगी। यही मौहल्ला चौक की भांति गुलजार हो जाएगा। तुम्हारे लड़के अभी शहर पढ़ने जाते हैं, तब यहीं मदरसा खुल जाएगा।

जगधर—क्या यहां मदरसा भी खुलेगा?

जॉन सेवक—हां, कारखाने के आदमियों के लड़के आखिर पढ़ने कहां जाएंगे? अंगरेजी भी पढ़ाई जाएगी।

जगधर—फीस कुछ कम ली जाएगी?

जॉन सेवक–फीस बिलकुल ही न ली जाएगी, कम-ज्यादा कैसी।

जगधर–तब तो बड़ा आराम हो जाएगा।

नायकराम–जिसका माल है, उसे क्या मिलेगा?

जॉन सेवक–जो तुम लोग तय कर दो। मैं तुम्हीं को पंच मानता हूं। बस, उसे राजी करना तुम्हारा काम है।

नायकराम–वह राजी ही है। आपने बात-की-बात में सबको राजी कर लिया, नहीं तो यहां लोग मन में न जाने क्या-क्या समझे बैठे थे। सच है, विद्या बड़ी चीज है।

भैरो–वहां ताड़ी की दुकान के लिए कुछ देना तो न पड़ेगा?

नायकराम–कोई और खड़ा हो गया, तो चढ़ा-ऊपरी होगी ही।

जॉन सेवक–नहीं, तुम्हारा हक सबसे बढ़कर समझा जाएगा।

नायकराम–तो फिर तुम्हारी चांदी है भैरो !

जॉन सेवक–तो अब मैं चलूं पंडाजी, अब आपके दिल में मलाल तो नहीं है?

नायकराम–अब कुछ कहलाइए न, आपका-सा भलामानुस आदमी कम देखा।

जॉन सेवक चले गए तो बजरंगी ने कहा–कहीं सूरे राजी न हुए, तो?

नायकराम–हम तो राजी करेंगे। चार हजार रुपये दिलाने चाहिए। अब इसी समझौते में कुसल है। जमीन रह नहीं सकती। यह आदमी इतना चतुर है कि इससे हम लोग पेस नहीं पा सकते। यों निकल जाएगी तो हमारे साथ यह सलूक कौन करेगा? सेंत में जस मिलता हो, तो छोड़ना न चाहिए।

जॉन सेवक घर पहुंचे, तो डिनर तैयार था। प्रभु सेवक ने कहा–आप कहां गए थे? जॉन सेवक ने रूमाल से मुंह पोंछते हुए कहा–हर एक काम करने को तमीज चाहिए। कविता रच लेना दूसरी बात है, काम कर दिखाना दूसरी बात। तुम एक काम करने गए। मौहल्ले-भर से लड़ाई ठानकर चले आए। जिस समय मैं पहुंचा हूं, सारे आदमी नायकराम के द्वार पर जमा थे। वह डोली में बैठकर शायद राजा महेन्द्रसिंह के पास जाने को तैयार था। मुझे सबों ने यों देखा जैसे फाड़ खायंगे। लेकिन मैंने कुछ इस तरह धैर्य और विनय से काम लिया, उन्हें दलीलों और चिकनी-चुपड़ी बातों से ऐसा ढर्रे पर लाया कि जब चला, तो सब मेरा गुणानुवाद कर रहे थे। जमीन का मुआमला भी तय हो गया। उसके मिलने में अब कोई बाधा नहीं है।

प्रभु सेवक–पहले तो सब उस जमीन के लिए मरने-मारने पर तैयार थे।

जॉन सेवक–और कुछ कसर थी, तो वह तुमने जाकर पूरी कर दी। लेकिन याद रखो, ऐसे विषयों में सदैव मार्मिक अवसर पर निगाह रखनी चाहिए। यही सफलता का मूल-मंत्र है। शिकारी जानता है, किस वक्त हिरन पर निशाना मारना चाहिए। वकील जानता है, अदालत पर कब उसकी युक्तियों को सबसे अधिक प्रभाव पड़ सकता है। एक महीना नहीं, एक दिन पहले, मेरी बातों का इन आदमियों पर जरा भी असर न होता। कल तुम्हारी उद्दंडता ने वह अवसर प्रस्तुत कर दिया। मैं क्षमा प्रार्थी बनकर उनके सामने गया। मुझे दबकर, झुककर, दीनता से, नम्रता से अपनी समस्या को उनके सम्मुख उपस्थित करने का अवसर मिला। यदि उनकी ज्यादती होती, तो मेरी ओर से भी कड़ाई की जाती। उस दशा में दबना नीति और आचरण के विरुद्ध होता। ज्यादती हमारी ओर से हुई, बस यही मेरी जीत थी।

ईश्वर सेवक बोले–ईश्वर, इस पापी को अपनी शरण में ले। बर्फ आजकल बहुत महंगी

हो गई है, फिर समझ में नहीं आता, क्यों इतनी निर्दयता से खर्च की जाती है। सुराही का पानी काफी ठंडा होता है।

जॉन सेवक—पापा, क्षमा कीजिए, बिना बर्फ के प्यास ही नहीं बुझती।

ईश्वर सेवक—खुदा ने चाहा बेटा, तो उस जमीन का मुआमला तय हो जाएगा। आज तुमने बड़ी चतुरता से काम किया।

मिसेज सेवक—मुझे इन हिन्दुस्तानियों पर विश्वास नहीं आता। दगाबाजी कोई इनसे सीख ले। अभी सब-के-सब हां-हां कर रहे हैं, मौका पड़ने पर सब निकल जाएंगे। महेन्द्रसिंह ने नहीं धोखा दिया? यह जाति ही हमारी दुश्मन है। इनका वश चले, तो एक ईसाई भी मुल्क में न रहने पाए।

प्रभु सेवक—मामा, यह आपका अन्याय है। पहले हिन्दुस्तानियों को ईसाइयों से कितना ही द्वेष रहा हो, किंतु हालत बदल गई है। हम खुद अंगरेजों की नकल करके उन्हें चिढ़ाते हैं। प्रत्येक अवसर पर अंगरेजों की सहायता से उन्हें दबाने की चेष्टा करते हैं। किंतु यह हमारी राजनीतिक भ्रांति है। हमारा उद्धार देशवासियों से भ्रातृभाव रखने में है, उन पर रोब जमाने में नहीं। आखिर हम भी तो इसी जननी की संतान हैं। यह असंभव है कि गोरी जातियां केवल धर्म के नाते हमारे साथ भाईचारे का व्यवहार करें। अमेरिका के हबशी ईसाई हैं, लेकिन अमेरिका के गोरे उनके साथ कितना पाशविक और अत्याचारपूर्ण बर्ताव करते हैं। हमारी मुक्ति भारतवासियों के साथ है।

मिसेज सेवक—खुदा वह दिन न लाए कि हम इन विधर्मियों की दोस्ती को अपने उद्धार का साधन बनाएं। हम शासनाधिकारियों के सहधर्मी हैं। हमारा धर्म, हमारी रीति-नीति, हमारा आहार-व्यवहार अंगरेजों के अनुकूल है। हम और वे एक कलीसा में, एक परमात्मा के सामने, सिर झुकाते हैं। हम इस देश में शासक बनकर रहना चाहते हैं, शासित बनकर नहीं। तुम्हें शायद कुंवर भरतसिंह ने यह उपदेश दिया है। कुछ दिन और उनकी सोहबत रही, तो शायद तुम भी ईसू से विमुख हो जाओ।

प्रभु सेवक—मुझे तो ईसाइयों में जागृति के विशेष लक्षण नहीं दिखाई देते है।

जॉन सेवक—प्रभु सेवक, तुमने बड़ा गहन विषय छेड़ दिया। मेरे विचार में हमारा कल्याण अंगरेजों के साथ मेल-जोल करने में है। अंगरेज इस समय भारतवासियों की संयुक्त शक्ति से चिंतित हो रहे हैं। हम अंगरेजों से मैत्री करके उन पर अपनी राजभक्ति का सिक्का जमा सकते हैं, और मनमाने स्वत्व प्राप्त कर सकते हैं। खेद यही है कि हमारी जाति ने अभी तक राजनीतिक क्षेत्र में पग ही नहीं रखा। यद्यपि देश में हम अन्य जातियों से शिक्षा में कहीं आगे बढ़े हुए हैं, पर अब तक राजनीति पर हमारा कोई प्रभाव नहीं है। हिन्दुस्तानियों से मिलकर हम गुम हो जाएंगे, खो जाएंगे। उनसे पृथक् रहकर विशेष अधिकार और विशेष सम्मान प्राप्त कर सकते हैं।

ये ही बातें हो रही थीं कि एक चपरासी ने आकर एक खत दिया। यह जिलाधीश मिस्टर क्लार्क का खत था। उनके यहां विलायत से कई मेहमान आए हुए थे। क्लार्क ने उनके सम्मान में एक डिनर दिया था, और मिसेज सेवक तथा मिस सोफिया सेवक को उसमें सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया था। साथ ही मिसेज सेवक से विशेष अनुरोध भी किया था कि सोफिया को एक सप्ताह के लिए अवश्य बुला लीजिए।

चपरासी के चले जाने के बाद मिसेज सेवक ने कहा–सोफी के लिए यह स्वर्ण-संयोग है।

जॉन सेवक–हां, है तो, पर वह आयगी कैसे?

मिसेज सेवक–उसके पास यह पत्र भेज दूं?

जॉन सेवक–सोफी इसे खोलकर देखेगी भी नहीं। उसे जाकर लिवा क्यों नहीं लातीं?

मिसेज सेवक–वह तो आती ही नहीं।

जॉन सेवक–तुमने कभी बुलाया ही नहीं, आती क्योंकर?

मिसेज सेवक–वह आने के लिए कैसी शर्त लगाती है।

जॉन सेवक–अगर उसकी भलाई चाहती हो, तो अपनी शर्तों को तोड़ दो।

मिसेज सेवक–वह गिरजा न जाए, तो भी जबान न खोलूं?

जॉन सेवक–हजारों ईसाई कभी गिरजा नहीं जाते, और अंगरेज तो बहुत कम आते हैं।

मिसेज सेवक–प्रभु मसीह की निंदा करे, तो भी चुप रहूं?

जॉन सेवक–वह मसीह की निंदा नहीं करती, और न कर सकती है। जिसे ईश्वर ने जरा भी बुद्धि दी है, वह प्रभु मसीह का सच्चे दिल से सम्मान करेगा। हिन्दू तक ईसू का नाम आदर के साथ लेते हैं। अगर सोफी मसीह को अपना मुक्तिदाता, ईश्वर का बेटा या ईश्वर नहीं समझती, तो उस पर जब्र क्यों किया जाए? कितने ही ईसाइयों को इस विषय में शंकाएं हैं। चाहे वे उन्हें भयवश प्रकट न करें। मेरे विचार में अगर कोई प्राणी अच्छे कर्म करता है और शुद्ध विचार रखता है तो वह मसीह के उस भक्त से कहीं श्रेष्ठ है, जो मसीह का नाम तो जपता है, पर नीयत का खराब है।

ईश्वर सेवक–या खुदा, इस खानदान पर अपना साया फैला। बेटा, ऐसी बातें जबान से न निकालो। मसीह का दास कभी सन्मार्ग से नहीं फिर सकता। उस पर प्रभु मसीह की दया दृष्टि रहती है।

जॉन सेवक–(स्त्री से) तुम कल सुबह चली जाओ, रानी से भेंट भी हो जाएगी और सोफी को भी लेती आओगी।

मिसेज सेवक–अब जाना ही पड़ेगा। जी तो नहीं चाहता; पर जाऊंगी। उसी की टेक रहे।

सूरदास संध्या समय घर आया, और सब समाचार सुने, तो नायकराम से बोला–तुमने मेरी जमीन साहब को दे दी?

नायकराम–मैंने क्यों दी? मुझसे वास्ता?

सूरदास–मैं तो तुम्हीं को सब कुछ समझता था और तुम्हारे ही बल पर कूदता था, पर आज तुमने भी साथ छोड़ दिया। अच्छी बात है। मेरी भूल थी कि तुम्हारे बल पर फूला हुआ था। यह उसी की सजा है। अब न्याय के बल पर लड़ूंगा, भगवान् ही का भरोसा करूंगा।

नायकराम–बजरंगी, जरा भैरो को बुला लो, इन्हें सब बातें समझा दे। मैं इनसे कहां तक मगज लगाऊं।

बजरंगी–भैरो को क्यों बुला लूं, क्या मैं इतना भी नहीं कर सकता। भैरो को इतना सिर चढ़ा दिया, इसी से तो उसे घमंड हो गया.है।

यह कहकर बजरंगी ने जॉन सेवक की सारी आयोजनाएं कुछ बढ़ा-घटाकर बयान कर दीं और बोला–बताओ, जब कारखाने से सबका फायदा है, तो हम साहब से क्यों लड़ें?

सूरदास–तुम्हें विश्वास हो गया कि सबका फायदा होगा?

बजरंगी–हां, हो गया। मानने लायक बात होती है, तो मानी ही जाती है।

सूरदास–कल तो तुम लोग जमीन के पीछे जान देने पर तैयार थे, मुझ पर संदेह कर रहे थे कि मैंने साहब से मेल कर लिया, आज साहब के एक ही चकमे में पानी हो गए?

बजरंगी–अब तक किसी ने ये सब बातें इतनी सफाई से न समझाई थीं। कारखाने से सारे मुहल्ले का, सारा सहर का फायदा है। मजूरों की मजूरी बढ़ेगी, दूकानदारों की बिक्री बढ़ेगी। तो अब हमें तो झगड़ा नहीं है। तुमको भी हम यही सलाह देते हैं, कि अच्छे दाम मिल रहे हैं, जमीन दे डालो। यों न दोगे, तो जाबते से ले ली जाएगी। इससे क्या फायदा?

सूरदास–अधर्म और अविचार कितना बढ़ जाएगा, यह भी मालूम है?

बजरंगी–धन से तो अधर्म होता ही है, पर धन को कोई छोड़ नहीं देता।

सूरदास–तो अब तुम लोग मेरा साथ न दोगे? मत दो। जिधर न्याय है, उधर किसी की मदद की इतनी जरूरत भी नहीं है। मेरी चीज है, बाप-दादों की कमाई है, किसी दूसरे का उस पर कोई अख्तियार नहीं है। अगर जमीन गई, तो उसके साथ मेरी जान भी जाएगी।

यह कहकर सूरदास उठ खड़ा हुआ और अपने झोपड़े के द्वार पर आकर नीम के नीचे लेट रहा।

तेरह

विनयसिंह के जाने के बाद सोफिया को ऐसा प्रतीत होने लगा कि रानी जाह्नवी मुझसे कुछ खिंची हुई हैं। वह अब उसे पुस्तकें तथा पत्र पढ़ने या चिट्ठियां लिखने के लिए बहुत कम बुलातीं, उसके आचार-व्यवहार को संदिग्ध दृष्टि से देखतीं। यद्यपि अपनी बदगुमानी को वह यथासाध्य प्रकट न होने देतीं, पर सोफी को ऐसा खयाल होता कि मुझ पर अविश्वास किया जा रहा है। वह जब कभी बाग में सैर करने चली जाती या कहीं घूमने निकल जाती, तो लौटने पर उसे ऐसा मालूम होता कि मेरी किताबें उलट-पलट दी गई हैं। वह बदगुमानी उस वक्त और भी असह्य हो जाती, जब डाकिए के आने पर रानीजी स्वयं उसके हाथ से पत्र आदि लेतीं और बड़े ध्यान से देखतीं कि सोफिया का कोई पत्र तो नहीं है। कई बार सोफिया को अपने पत्रों के लिफाफे फटे हुए मिले। वह इस कूटनीति का रहस्य खूब समझती थी। यह रोक-थाम केवल इसलिए है कि मेरे और विनयसिंह के बीच में पत्र-व्यवहार न होने पाए। पहले रानीजी सोफिया से विनय और इन्दु की चर्चा अक्सर किया करतीं। अब भूलकर भी विनय का नाम न लेतीं। यह प्रेम की पहली परीक्षा थी।

किंतु आश्चर्य यह था कि सोफिया में अब वह आत्माभिमान न था, जो नाक पर मक्खी न बैठने देता था। वह अब अत्यंत सहनशील हो गई थी। रानीजी से द्वेष करने के बदले वह उनकी संशय-निवृत्ति के लिए अवसर खोजा करती थी। उसे रानीजी का बर्ताव सर्वथा

न्यायसंगत मालूम होता था। वह सोचती इनकी परम अभिलाषा है कि विनय का जीवन आदर्श हो और मैं उनके आत्मसंयम में बाधक न बनूं। मैं इन्हें कैसे समझाऊं कि आपकी अभिलाषा को मेरे हाथों जरा-सा भी झोंका न लगेगा। मैं तो स्वयं अपना जीवन एक ऐसे उद्देश्य पर समर्पित कर चुकी हूं, जिसके लिए वह काफी नहीं। मैं स्वयं किसी इच्छा को अपने उद्देश्य-मार्ग का कांटा न बनाऊंगी। लेकिन उसे यह अवसर न मिलता था। जो बातें जबान पर नहीं आ सकतीं, उनके लिए कभी अवसर नहीं मिलता।

सोफी को बहुधा अपने मन की चंचलता पर खेद होता। वह मन को इधर से हटाने के लिए पुस्तकावलोकन में मग्न हो जाना चाहती; लेकिन जब पुस्तक सामने खुली रहती और मन कहीं और जा पहुंचता, तो वह झुंझलाकर पुस्तक बंद कर देती और सोचती यह मेरी क्या दशा है ! क्या माया यह कपट-रूप धारण करके मुझे सन्मार्ग से विचलित करना चाहती है? मैं जानकर क्यों अनजान बनी जाती हूं?

तब वह प्रतिज्ञा करती कि मैं इस कांटे को हृदय से निकाल डालूंगी। लेकिन प्रेम-ग्रस्त प्राणियों की प्रतिज्ञा कायर की समर-लालसा है, जो द्वंद्वी की ललकार सुनते ही विलुप्त हो जाती है। सोफिया विनय को तो भूल जाना चाहती थी, पर इसके साथ ही शंकित रहती थी कि कहीं वह मुझे भूल न जाएं। जब कई दिनों तक उनका कोई समाचार नहीं मिला तो उसने समझा—मुझे भूल गए, जरूर भूल गए। मुझे उनका पता मालूम होता, तो कदाचित् रोज एक पत्र लिखती, दिन में कई-कई पत्र भेजती, पर उन्हें एक पत्र लिखने का भी अवकाश नहीं ! वह मुझे भूल जाने का उद्योग कर रहे हैं। अच्छा ही है। वह एक क्रिश्चियन स्त्री से क्यों प्रेम करने लगे? उनके लिए एक-से-एक परम सुंदरी, सुशिक्षिता, प्रेमपरायणा राजकुमारियां नहीं हैं?

एक दिन इन भावनाओं ने उसे इतना व्याकुल किया कि वह रानी के कमरे में जाकर विनय के पत्रों को पढ़ने लगी और एक क्षण में जितने पत्र मिले, सब पढ़ डाले। देखूं, मेरी ओर कोई संकेत है या नहीं; कोई वाक्य ऐसा है, जिसमें से प्रेम की सुगंध आए? किंतु ऐसा शब्द एक भी न मिला, जिससे वह खींच-तानकर भी कोई गुप्त आशय निकाल सकती। हां, उस पहाड़ी देश में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, उनका विस्तार से उल्लेख किया गया था। युवावस्था को अतिशयोक्ति से प्रेम है। हम बाधाओं पर विजय पाकर नहीं, उनकी विशद व्याख्या करके अपना महत्व बढ़ाना चाहते हैं। अगर सामान्य ज्वर है, तो वह सन्निपात कहा जाता है। एक दिन पहाड़ों में चलता पड़ा, तो वह नित्य पहाड़ों से सिर टकराना कहा जाता है। विनयसिंह के पत्र ऐसी ही वीर-कथाओं से भरे हुए थे। सोफिया यह हाल पढ़कर विकल हो गई। वह इतनी विपत्ति झेल रहे हैं, और मैं यहां आराम से पड़ी हूं। वह इसी उद्वेग में अपने कमरे में आई और विनय को एक लंबा पत्र लिखा, जिसका एक-एक शब्द प्रेम में डूबा हुआ था। अंत में उसने बड़े प्रेम-विनीत शब्दों में प्रार्थना की कि मुझे अपने पास आने की आज्ञा दीजिए, मैं अब यहां नहीं रह सकती। उसकी शैली अज्ञात रूप से कवित्वमय हो गई। पत्र समाप्त करके वह उसी वक्त पास ही के लेटरबक्स में डाल आई।

पत्र डाल आने के बाद जब उसका उद्वेग शांत हुआ, तो उसे विचार आया कि मेरा रानीजी के कमरे में छिपकर जाना और पत्रों को पढ़ना किसी तरह उचित न था। वह सारे दिन इसी चिंता में पड़ी रही। बार-बार अपने को धिक्कारती। ईश्वर ! मैं कितनी अभागिनी हूं। मैंने अपना जीवन सच्चे धर्म की जिज्ञासा पर अर्पण कर दिया था। बरसों से सत्य की मीमांसा में रत हूं,

पर वासना की पहली ही ठोकर में नीचे गिर पड़ी। मैं क्यों इतनी दुर्बल हो गई हूं? क्या मेरा पवित्र उद्देश्य वासनाओं के भंवर में पड़कर डूब जाएगा? मेरी आदत इतनी बुरी हो जाएगी कि मैं किसी की वस्तुओं की चोरी करूंगी, इसकी मैंने कभी कल्पना भी न की थी। जिनका मुझ पर इतना विश्वास, इतना भरोसा, इतना प्रेम, इतना आदर है, उन्हीं के साथ मेरा यह विश्वासघात ! अगर अभी यह दशा है, तो भगवान् ही जाने, आगे चलकर क्या दशा होगी। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि जीवन का अंत हो जाए। आह ! वह पत्र, जो मैं अभी छोड़ आई हूं, वापस मिल जाता, तो मैं फाड़ डालती।

वह इसी चिंता और ग्लानि में बैठी हुई थी कि रानीजी कमरे में आईं। सोफिया उठ खड़ी हुई और अपनी आंखें छिपाने के लिए जमीन की ओर ताकने लगी। किंतु आंसू पी जाना आसान नहीं है। रानी ने कठोर स्वर में पूछा—सोफी, क्यों रोती हो।

जब हम अपनी भूल पर लज्जित होते हैं, तो यथार्थ बात आप-ही-आप हमारे मुंह से निकल पड़ती है। सोफी हिचकती हुई बोली—जी, कुछ नहीं.... मुझसे एक अपराध हो गया है, आपसे क्षमा मांगती हूं।

रानी ने और भी तीव्र स्वर में पूछा—क्या बात है?

सोफी—आज जब आप सैर करने गई थीं, तो मैं आपके कमरे में चली गई थी।

रानी—क्या काम था?

सोफी लज्जा से आरक्त होकर बोली—मैंने आपकी कोई चीज नहीं छुई।

रानी—मैं तुम्हें इतना नीच नहीं समझती।

सोफी—एक पत्र देखना था।

रानी—विनयसिंह का?

सोफिया ने सिर झुका लिया। वह अपनी दृष्टि में स्वयं इतनी पतित हो गई थी कि जी चाहता था, जमीन फट जाती और मैं उसमें समा जाती। रानी ने तिरस्कार के भाव से कहा—सोफी, तुम मुझे कृतघ्न समझोगी, मगर मैंने तुम्हें अपने घर में रखकर बड़ी भूल की। ऐसी भूल मैंने कभी न की थी। मैं न जानती थी कि तुम आस्तीन का सांप बनोगी। इससे बहुत अच्छा होता कि विनय उसी दिन आग में जल गया होता। तब मुझे इतना दु:ख न होता। मैं तुम्हारे आचरण को पहले न समझी। मेरी आंखों पर परदा पड़ा था। तुम जानती हो, मैंने क्यों विनय को इतनी जल्द यहां से भगा दिया? तुम्हारे कारण, तुम्हारे प्रेमाघातों से बचाने के लिए। लेकिन अब भी तुम भाग्य की भांति उसका दामन नहीं छोड़तीं। आखिर तुम उससे क्या चाहती हो? तुम्हें मालूम है, तुमसे उसका विवाह नहीं हो सकता। अगर मैं हैसियत और कुल-मर्यादा का विचार न करूं, तो भी तुम्हारे और हमारे बीच में धर्म की दीवार खड़ी है। इस प्रेम का फल इसके सिवा और क्या होगा कि तुम अपने साथ उसे भी ले डूबोगी और मेरी चिर संचित अभिलाषाओं को मिट्टी में मिला दोगी? मैं विनय को ऐसा मनुष्य बनाना चाहती हूं, जिस पर समाज को गर्व हो, जिसके हृदय में अनुराग हो, साहस हो, धैर्य हो, जो संकटों के सामने मुंह न मोड़े, जो सेवा के हेतु सदैव सिर को हथेली पर लिए रहे, जिसमें विलासिता का लेश भी न हो, जो धर्म पर अपने को मिटा दे। मैं उसे सपूत बेटा, निश्चल मित्र और नि:स्वार्थ सेवक बनाना चाहती हूं। मुझे उसके विवाह की लालसा नहीं, अपने पोतों को गोद में खेलाने की अभिलाषा नहीं। देश में आत्मसेवी पुरुषों और संतान-सेवी माताओं का अभाव नहीं है। धरती उनके बोझ से दबी जाती है। मैं अपने बेटे

को सच्चा राजपूत बनाना चाहती हूं। आज वह किसी की रक्षा के निमित्त अपने प्राण दे दे, तो मुझसे अधिक भाग्यवती माता संसार में न होगी। तुम मेरे इस स्वर्ण-स्वप्न को विछिन्न कर रही हो। मैं तुम्हें सत्य कहती हूं सोफी, अगर तुम्हारे उपकार के बोझ से दबी न होती, तो तुम्हें इस दशा में विष देकर मार्ग से हटा देना अपना कर्त्तव्य समझती। मैं राजपूतनी हूं, मरना भी जानती हूं और मारना भी जानती हूं। इसके पहले कि तुम्हें विनय से पत्र-व्यवहार करते देखूं, मैं तुम्हारा गला घोंट दूंगी। मैं तुमसे भिक्षा मांगती हूं, विनय को अपने प्रेम-पाश में फंसाने की चेष्टा न करो, नहीं तो इसका फल बुरा होगा। तुम्हें ईश्वर ने बुद्धि दी है, विवेक दिया है। विवेक से काम लो। मेरे कुल का सर्वनाश न करो।

सोफी ने रोते हुए कहा—मुझे आज्ञा दीजिए, आज चली जाऊं।

रानी कुछ नर्म होकर बोलीं—मैं तुम्हें जाने को नहीं कहती। तुम मेरे सिर और आंखों पर रहो, (लज्जित होकर) मेरे मुंह से इस समय जो कटु शब्द निकले हैं, उनके लिए क्षमा करो। वृद्धावस्था बड़ी अविनयशील होती है। यह तुम्हारा घर है। शौक से रहो। विनय अब शायद फिर न आयगा। हां, वह शेर का सामना कर सकता है, पर मेरे क्रोध का सामना नहीं कर सकता। वह वन-वन की पत्तियां तोड़ेगा, पर घर न आयगा। अगर तुम्हें उससे प्रेम है, तो अपने को उसके हित के लिए बलिदान करने को तैयार हो जाओ। अब उसकी जीवन-रक्षा का केवल एक ही उपाय है। जानती हो, वह क्या है?

सोफी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

रानी—जानना चाहती हो?

सोफी ने सिर हिलाकर कहा—हां।

रानी—आत्मसमर्पण के लिए तैयार हो?

सोफी ने फिर सिर हिलाकर कहा—हां।

रानी—तो तुम किसी सुयोग्य पुरुष से विवाह कर लो। विनय को दिखा दो कि तुम उसे भूल गईं, तुम्हें उसकी चिंता नहीं है। यही नैराश्य उसको बचा सकता है। हो सकता है कि यह नैराश्य उसे जीवन से विरक्त कर दे, वह ज्ञान-लाभ का आश्रय ले, जो नैराश्य का एकमात्र शरणस्थल है, पर संभावना होने पर भी इस उपाय के सिवा दूसरा अवलंब नहीं है। स्वीकार करती हो?

सोफी रानी के पैरों पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—उनके हित के लिए....कर सकती हूं।

रानी ने सोफी को उठाकर गले लगा लिया और करुण स्वर में बोलीं—मैं जानती हूं तुम उसके लिए सब कुछ कर सकती हो। ईश्वर तुम्हें इस प्रतिज्ञा को पूरा करने का बल प्रदान करें।

यह कहकर जाह्नवी वहां से चली गईं। सोफी एक कोच पर बैठ गई और दोनों हाथों से मुंह छिपाकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसका रोम-रोम ग्लानि से पीड़ित हो रहा था। उसे जाह्नवी पर क्रोध न था। उसे उन पर असीम श्रद्धा हो रही थी। कितना उच्च और पवित्र उद्देश्य है। वास्तव में मैं ही दूध की मक्खी हूं, मुझी को निकल जाना चाहिए। लेकिन रानी का अंतिम आदेश उसके लिए सबसे कड़ुवा ग्रास था। वह योगिनी बन सकती थी, पर प्रेम को कलंकित करने की कल्पना ही से उसे घृणा होती थी। उसकी दशा उस रोगी की-सी थी, जो किसी बाग

में सैर करने जाए और फल तोड़ने के अपराध में पकड़ लिया जाए। विनय के त्याग ने उसे उनका भक्त बना दिया। भक्ति ने शीघ्र ही प्रेम का रूप धारण किया और अब वही प्रेम उसे बलात् नारकी अंधकार की ओर खींचे लिया जाता था। अगर वह हाथ-पैर छुड़ाती है, तो भय है—वह इसके आगे कुछ न सोच सकी। विचार-शक्ति शिथिल हो गई। अंत में सारी चिंताएं, सारी ग्लानि, सारा नैराश्य, सारी विडंबना एक ठंडी सांस में विलीन हो गई।

शाम हो गई थी। सोफिया मन--मारे उदास बैठी बाग की तरफ टकटकी लगाए ताक रही थी, मानो कोई विधवा पति-शोक में मग्न हो। सहसा प्रभु सेवक ने कमरे में प्रवेश किया।

सोफिया ने प्रभु सेवक से कोई बात नहीं की। चुपचाप अपनी जगह पर मूर्तिवत् बैठी रही। वह उस दशा को पहुंच गई थी, जब सहानुभूति से भी अरुचि हो जाती है। नैराश्य की अंतिम अवस्था विरक्ति होती है।

लेकिन प्रभु सेवक अपनी नई रचना सुनाने के लिए इतने उत्सुक हो रहे थे कि सोफी के चेहरे की ओर उनका ध्यान ही न गया। आते-ही-आते बोले—सोफी ! देखो, मैंने आज रात को यह कविता लिखी है। जरा ध्यान देकर सुनना। मैंने अभी कुंवर साहब को सुनाई है। उन्हें बहुत आनंद आया।

यह कहकर प्रभु सेवक ने मधुर स्वर में अपनी कविता सुनानी शुरू की । कवि ने मृत्युलोक के एक दुःखी प्राणी के हृदय के वह भाव व्यक्त किए थे, जो तारागण को देखकर उठे थे। वह एक-एक चरण झूम-झूमकर पढ़ते थे, और उसे दो-दो, तीन-तीन बार दुहराते थे, किंतु सोफिया ने एक बार भी दाद न दी, मानो वह काव्य-रस-शून्य हो गई थी। जब पूरी कविता समाप्त हो गई, तो प्रभु सेवक ने पूछा—इसके विषय में तुम्हारा क्या विचार है?

सोफिया ने कहा—अच्छी तो है।

प्रभु सेवक—मेरी सूक्तियों पर तुमने ध्यान नहीं दिया। तारागण की आज तक किसी कवि ने देवात्माओं से उपमा नहीं दी है। मुझे तो विश्वास है कि इस कविता के प्रकाशित होते ही कवि-समाज में हलचल मच जाएगी।

सोफिया—मुझे तो याद आता है कि शेली और वर्ड्सवर्थ इस उपमा को पहले ही बांध चुके हैं। यहां के कवियों ने भी कुछ ऐसा ही वर्णन किया है। कदाचित् ह्यूगो की एक कविता का शीर्षक भी यही है। संभव है, तुम्हारी कल्पना उन कवियों से लड़ गई हो।

प्रभु सेवक—मैंने काव्य-साहित्य तुमसे बहुत ज्यादा देखा है, पर मुझे कहीं यह उपमा नहीं दिखाई दी।

सोफिया—खैर, हो सकता है, मुझी को याद ने होगा। कविता बुरी नहीं है।

प्रभु सेवक—अगर कोई दूसरा कवि यह चमत्कार दिखा दे, तो उसकी गुलामी करूं।

सोफिया—तो मैं कहूंगी, तुम्हारी निगाह में अपनी स्वाधीनता का मूल्य बहुत ज्यादा नहीं है।

प्रभु सेवक—तो मैं भी यही कहूंगा कि कवित्व के रसास्वादन के लिए अभी तुम्हें बहुत अभ्यास करने की जरूरत है।

सोफिया—मुझे अपने जीवन में इससे अधिक महत्व के काम करने हैं। आजकल घर के क्या समाचार हैं?

प्रभु सेवक—वही पुरानी दशा चली जाती है। मैं तो आजिज आ गया हूं। पापा को अपने

कारखाने की धुन लगी हुई है, और मुझे उस काम से घृणा है। पापा और मामा, दोनों हरदम भुनभुनाते रहते हैं। किसी का मुंह ही नहीं सीधा होता। कहीं ठिकाना नहीं मिलता, नहीं तो इस माया के घोंसले में एक दिन भी न रहता। कहां जाऊं, कुछ समझ में नहीं आता।

सोफिया—बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने गुणी और विद्वान् होकर भी तुम्हें अपने निर्वाह का कोई उपाय नहीं सूझता। क्या कल्पना के संसार में आत्मसम्मान का कोई स्थान नहीं है?

प्रभु सेवक—सोफी, मैं और सब कुछ कर सकता हूं पर गृह-चिंता का बोझ नहीं उठा सकता। मैं निर्द्वंद्व, निश्चिंत, निर्लिप्त रहना चाहता हूं। एक सुरम्य उपवन में, किसी सघन वृक्ष के नीचे, पक्षियों का मधुर कलरव सुनता हुआ काव्य-चिंतन में मग्न पड़ा रहूं, यही मेरे जीवन का आदर्श है।

सोफिया—तुम्हारी जिंदगी इसी भांति स्वप्न देखने में गुजरेगी।

प्रभु सेवक—कुछ हो, चिंता से तो मुक्त हूं, स्वच्छंद तो हूं।

सोफिया—जहां आत्मा और सिद्धांतों की हत्या होती हो, वहां से स्वच्छंदता कोसों भागती है। मैं इसे स्वच्छंदता नहीं कहती, यह निर्लज्जता है। माता-पिता की निर्दयता कम पीड़ाजनक नहीं होती, बल्कि दूसरों का अत्याचार इतना असह्य नहीं होता, जितना माता-पिता का।

प्रभु सेवक—उहं, देखा जाएगा, सिर पर जो आ जाएगी, झेल लूंगा, मरने के पहले ही क्यों रोऊं।

यह कहकर प्रभु सेवक ने पांड़ेपुर की घटना बयान की, और इतनी डींगें मारीं कि सोफी चिढ़कर बोली—रहने भी दो, एक गंवार को पीट लिया, तो कौन-सा बड़ा काम किया। अपनी कविताओं में तो अहिंसा के देवता बन जाते हो, वहां जरा-सी बात इतने जामे से बाहर हो गए।

प्रभु सेवक—गाली सह लेता?

सोफिया—जब तुम मारने वाले को मारोगे, गाली देने वाले को भी मारोगे, तो अहिंसा का निर्वाह कब करोगे? राह चलते तो किसी को कोई नहीं मारता। वास्तव में किसी युवक को उपदेश करने का अधिकार नहीं है, चाहे उसकी कवित्व-शक्ति कितनी ही विलक्षण हो। उपदेश करना सिद्ध पुरुषों ही का काम है। यह नहीं कि जिसे जरा तुकबंदी आ गई, वह लगा शांति, संतोष और अहिंसा का पाठ पढ़ाने। जो बात दूसरों को सिखलाना चाहते हो, वह पहले स्वयं सीख लो।

प्रभु सेवक—ठीक यही बात विनय ने भी अपने पत्र में लिखी है। लो, याद आ गया। यह तुम्हारा पत्र है। मुझे याद ही न रही थी। यह प्रसंग न आ जाता, तो जेब में रक्खे ही लौट जाता।

यह कहकर प्रभु सेवक ने एक लिफाफा निकालकर सोफिया के हाथ में रख दिया।

सोफिया ने पूछा—आजकल कहां हैं?

प्रभु सेवक—उदयपुर के पहाड़ी प्रांतों में घूम रहे हैं। मेरे नाम जो पत्र आया है, उसमें तो उन्होंने साफ लिखा है कि मैं इस सेवा-कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य हूं। मुझमें उतनी सहनशीलता नहीं, जितनी होनी चाहिए। युवावस्था अनुभव-लाभ का समय है। अवस्था प्रौढ़ हो जाने पर ही सार्वजनिक कार्यों में सम्मिलित होना चाहिए। किसी युवक को सेवा-कार्य करने को भेजना वैसा ही है, जैसे किसी बच्चे वैद्य को रोगियों के कष्ट निवारण के

लिए भेजना।

प्रभु सेवक चले गए, तो सोफिया सोचने लगी—यह पत्र पढ़ूं या न पढ़ूं? विनय इसे रानीजी से गुप्त रखना चाहते हैं, नहीं तो यहीं के पते से न भेजते? मैंने अभी रानीजी को वचन दिया है, उनसे पत्र-व्यवहार न करूंगी। इस पत्र को खोलना उचित नहीं। रानीजी को दिखा दूं। इससे उनके मन में मुझ पर जो संदेह है, वह दूर हो जाएगा। मगर न जाने क्या बातें लिखी हैं। संभव है, कोई ऐसी बात हो, जो रानी के क्रोध को और भी उत्तेजित कर दे। नहीं, इस पत्र को गुप्त ही रखना चाहिए। रानी को दिखाना मुनासिब नहीं।

उसने फिर सोचा—पढ़ने से क्या फायदा, न जाने मेरे चित्त की क्या दशा हो। मुझे अब अपने ऊपर विश्वास नहीं रहा। अब इस प्रेमांकुर को जड़ से उखाड़ना ही है, तो उसे क्यों नहीं सींचूं? इस पत्र को रानी के हवाले कर देना ही उचित है।

सोफिया ने और ज्यादा सोच-विचार न किया। शंका हुई, कहीं मैं विचलित न हो जाऊं। चलनी में पानी नहीं ठहरता।

उसने उसी वक्त वह पत्र ले जाकर रानी को दे दिया। उन्होंने पूछा—किसका पत्र है? यह तो विनय की लिखावट जान पड़ती है। तुम्हारे नाम आया है न? तुमने लिफाफा खोला नहीं?

सोफिया—जी नहीं।

रानी ने प्रसन्न होकर कहा—मैं तुम्हें आज्ञा देती हूं, पढ़ो। तुमने अपना वचन पालन किया, इससे मैं बहुत खुश हुई।

सोफिया—मुझे क्षमा कीजिए।

रानी—मैं खुशी से कहती हूं, पढ़ो, देखो, क्या लिखते हैं?

सोफिया—जी नहीं।

रानी ने पत्र ज्यों-का-त्यों संदूक में बंद कर दिया। खुद भी नहीं पढ़ा। कारण, यह नीति-विरुद्ध था। तब सोफिया से बोली—बेटी, अब मेरी तुमसे एक और याचना है। विनय को एक पत्र लिखो, और उसमें स्पष्ट लिख दो, हमारा और तुम्हारा कल्याण इसी में है कि हममें केवल भाई और बहन का संबंध रहे। तुम्हारे पत्र से यह प्रकट होना चाहिए कि तुम उनके प्रेम की अपेक्षा उनके जातीय भावों की ज्यादा कद्र करती हो। तुम्हारा यह पत्र मेरे और उनके पिता के हजारों उपदेशों से अधिक प्रभावशाली होगा। मुझे विश्वास है, तुम्हारा पत्र पाते ही उनकी चेष्टाएं बदल जाएंगी और वह कर्त्तव्य-मार्ग पर सुदृढ़ हो जाएंगे। मैं इस कृपा के लिए जीवन-पर्यंत तुम्हारी आभारी रहूंगी।

सोफी ने कातर स्वर में कहा—आपकी आज्ञा पालन करूंगी।

रानी—नहीं, केवल मेरी आज्ञा पालन करना काफी नहीं है। अगर उससे यह भासित हुआ कि किसी की प्रेरणा से लिखा गया है, तो उसका असर जाता रहेगा।

सोफिया—आपको पत्र लिखकर दिखा दूं?

रानी—नहीं, तुम्हीं भेज देना।

सोफिया जब वहां से आकर पत्र लिखने बैठी, तो उसे सूझता ही न था कि क्या लिखूं। सोचने लगी—वह मुझे निर्मम समझेंगे, अगर लिख दूं, मैंने तुम्हारा पत्र पढ़ा ही नहीं, तो उन्हें कितना दुःख होगा। कैसे कहूं कि मैं तुमसे प्रेम नहीं करती?

वह मेज पर से उठ खड़ी हुई और निश्चय किया, कल लिखूंगी। एक किताब पढ़ने लगी। भोजन का समय हो गया। नौ बज गए। अभी वह मुंह-हाथ धोकर बैठी ही थी कि उसने रानी को द्वार से अंदर की ओर झांकते देखा। समझी, किसी काम से जा रही होंगी, फिर किताब देखने लगी। पंद्रह मिनट भी न गुजरे थे कि रानी फिर दूसरी तरफ से लौटीं, और कमरे में झांका।

सोफी को उनका यों मंडलाना बहुत नागवार मालूम हुआ। उसने समझा--यह मुझे बिलकुल काठ की पुतली बनाना चाहती हैं। बस, इनके इशारों पर नाचा करूं। इतना तो नहीं हो सका कि जब मैंने बंद लिफाफा उनके हाथ में रख दिया, तो मुझे खत पढ़कर सुना देतीं। आखिर मैं लिखूं क्या? नहीं मालूम, उन्होंने अपने खत में क्या लिखा है? सहसा उसे ध्यान आया कि कहीं मेरा पत्र उपदेश के रूप में न हो जाए। वह इसे पढ़कर शायद मुझसे चिढ़ जाएं। अपने प्रेमियों से हम उपदेश और शिक्षा की बातें नहीं, प्रेम और परितोष की बातें सुनना चाहते हैं। बड़ी कुशल हुई, नहीं तो वह मेरा उपदेश-पत्र पढ़कर न जाने दिल में क्या समझते। उन्हें खयाल होता, गिरजा में उपदेश सुनते-सुनते इसकी प्रेम-भावनाएं निर्जीव हो गई हैं। अगर वह मुझे ऐसा पत्र लिखते, तो मुझे कितना बुरा मालूम होता। आह ! मैंने बड़ा धोखा खाया। पहले मैंने समझा था, उनसे केवल आध्यात्मिक प्रेम करूंगी। अब विदित हो रहा है कि आध्यात्मिक प्रेम या भक्ति केवल धर्म-जगत् ही की वस्तु है। स्त्री और पुरुष में पवित्र प्रेम होना असंभव है। प्रेम पहले उंगली पकड़कर तुरंत ही पहुंचा पकड़ता है। यह भी जानती हूं कि यह प्रेम मुझे ज्ञान के ऊंचे आदर्श से गिरा रहा है। हमें जीवन इसलिए प्रदान किया गया है कि सद्‌विचारों और सत्कार्यों से उसे उन्नत करें और एक दिन अनंत ज्योति में विलीन हो जाएं। यह भी जानती हूं कि जीव नश्वर है, अनित्य है और संसार के सुख भी अनित्य और नश्वर हैं। यह सब जानते हुए भी पतंग की भांति दीपक पर गिर रही हूं। इसीलिए तो कि प्रेम में वह विस्मृति है, जो संयम, ज्ञान और धारणा पर परदा डाल देती है। भक्तजन भी, जो आध्यात्मिक आनंद भोगते रहते है, वासनाओं से मुक्ति नहीं हो सकते। जिसे कोई बलात् खींच लिए जाता हो, उससे कहना कि तू मत जा, कितना बड़ा अन्याय है।

पीड़ित प्राणियों के लिए रात एक कठिन तपस्या है। ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, सोफी की उद्विग्नता बढ़ती जाती थी। आधी रात तक मनोभावों से निरंतर संग्राम करने के बाद अंत को उसने विवश होकर हृदय के द्वार प्रेम-क्रीड़ाओं के लिए उन्मुक्त कर दिए, जैसे किसी रंगशाला का व्यवस्थापक दर्शकों की रेल-पेल से तंग आकर शाला का पट सर्वसाधारण के लिए खोल देता है। बाहर का शोर भीतर के मधुर स्वर-प्रवाह में बाधक होता है। सोफी ने अपने को प्रेम-कल्पनाओं की गोद में डाल दिया। अबाध रूप से उनका आनंद उठाने लगी।

'क्यों विनय, तुम मेरे लिए क्या-क्या मुसीबतें झेलोगे? अपमान, अनादर, द्वेष, माता-पिता का विरोध, तुम मेरे लिए यह सब विपत्ति सह लोगे? लेकिन धर्म? वह देखो, तुम्हारा मुख उदास हो गया। तुम सब कुछ करोगे; पर धर्म नहीं छोड़ सकते। मेरी भी यही दशा है। मैं तुम्हारे साथ उपवास कर सकती हूं, तिरस्कार, अपमान, निंदा, सब कुछ भोग सकती हूं, पर धर्म को कैसे त्याग दूं? ईसा का दामन कैसे छोड़ दूं? ईसाइयत की मुझे परवा नहीं, यह केवल स्वार्थों का संघटन है, लेकिन उस पवित्र आत्मा से क्योंकर मुंह मोड़ूं, जो क्षमा और दया का अवतार थी? क्या यह संभव नहीं कि मैं ईसा के दामन से लिपटी रहकर भी अपनी प्रेमाकांक्षाओं को तृप्त

करूं? हिन्दू-धर्म की उदार छाया में किसके लिए शरण नहीं? आस्तिक भी हिन्दू है, नास्तिक भी हिन्दू है, तैंतीस करोड़ देवताओं को मानने वाला भी हिन्दू है। जहां महावीर के भक्तों के लिए स्थान है, बुद्धदेव के भक्तों के लिए स्थान है, वहां क्या ईसू के भक्त के लिए स्थान नहीं है? तुमने मुझे अपने प्रेम का निमंत्रण दिया है, मैं उसे अस्वीकार क्यों करूं? मैं भी तुम्हारे साथ सेवा-कार्य में रत हो जाऊंगी, तुम्हारे साथ वनों में विचरूंगी, झोपड़ी में रहूंगी।

आह, मुझसे बड़ी भूल हुई। मैंने नाहक वह पत्र रानीजी को दे दिया। मेरा पत्र था, मुझे उसके पढ़ने का पूरा अधिकार था। मेरे और उनके बीच प्रेम का नाता है, जो संसार के और सभी संबंधों से पवित्र और श्रेष्ठ है। मैं इस विषय में अपने अधिकार को त्यागकर विनय के साथ अन्याय कर रही हूं। नहीं, मैं उनसे दगा कर रही हूं। मैं प्रेम को कलंकित कर रही हूं। उनके मनोभावों का उपहास कर रही हूं। यदि वह मेरा पत्र पढ़े बिना ही फाड़कर फेंक देते, तो मुझे इतना दु:ख होता कि उन्हें कभी क्षमा न करती। क्या करूं? जाकर रानीजी से वह पत्र मांग लूं? उसे देने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मन में चाहे कितना ही बुरा मानें, पर मेरी अमानत मुझे अवश्य दे देंगी। वह मेरी मामा की भांति अनुदार नहीं हैं। मगर मैं उनसे मांगूं क्यों? वह मेरी चीज है, किसी अन्य प्राणी का उस पर कोई दावा नहीं। अपनी चीज ले लेने के लिए मैं किसी दूसरे का एहसान क्यों उठाऊं?

ग्यारह बज रहे थे। भवन में चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। नौकर-चाकर सब सो गए थे। सोफिया ने खिड़की से बाहर बाग की ओर देखा। ऐसा मालूम होता था कि आकाश से दूध की वर्षा हो रही है। चांदनी खूब छिटकी हुई थी। संगमरमर की दोनों परियां, जो हौज के किनारे खड़ी थीं, उसे निस्स्वर संगीत की प्रकाशमयी प्रतिमाओं-सी प्रतीत होती थीं, जिससे सारी प्रकृति उल्लसित हो रही थी।

सोफिया के हृदय में प्रबल उत्कंठा हुई कि इसी क्षण चलकर अपना पत्र लाऊं। वह दृढ़ संकल्प करके अपने कमरे से निकली, और निर्भय होकर रानीजी के दीवानखाने की ओर चली। वह अपने हृदय को बार-बार समझा रही थी—मुझे भय किसका है, अपनी चीज लेने जा रही हूं, कोई पूछे, तो उससे साफ-साफ कह सकती हूं। विनयसिंह का नाम लेना कोई पाप नहीं है।

किंतु निरंतर यह आश्वासन मिलने पर भी उसके कदम इतनी सावधानी से उठते थे कि बरामदे के पक्के फर्श पर भी कोई आहट न होती थी। उसकी मुखाकृति से वह अशांति झलक रही थी, जो आंतरिक दुश्चिंता का चिह्न है। वह सहमी हुई आंखों से दाहिने-बाएं, आगे-पीछे, ताकती जाती थी। जरा-सा भी कोई खटका होता, तो उसके पांव स्वत: रुक जाते थे, और वह बरामदे के खंभों की आड़ में छिप जाती थी। रास्ते में कई कमरे थे। यद्यपि उनमें अंधेरा था, रोशनी गुल हो चुकी थी, तो भी वह दरवाजों पर एक क्षण के लिए रुक जाती थी, कि कोई उनमें बैठा न हो। सहसा एक टेरियर कुत्ता, जिसे रानीजी बहुत प्यार करती थीं, सामने से आता हुआ दिखाई दिया। सोफी के रोयें खड़े हो गए। इसने जरा भी मुंह खोला, और सारे घर में हलचल हुई। कुत्ते ने उसकी ओर सशंक नेत्रों से देखा, और अपने निर्णय की सूचना देना ही चाहता था कि सोफिया ने धीरे-से उसका नाम लिया, और उसे गोद में उठाकर उसकी पीठ सहलाने लगी। कुत्ता दुम हिलाने लगा, लेकिन अपनी राह जाने के बदले वह सोफिया के साथ हो लिया। कदाचित् उसकी पशु-चेतना ताड़ रही थी कि कुछ दाल में काला जरूर है। इस प्रकार पांच

कमरों के बाद रानीजी का दीवानखाना मिला। उसके द्वार खुले हुए थे, लेकिन अंदर अंधेरा था। कमरे में बिजली के बटन लगे हुए थे। उंगलियों की एक अति सूक्ष्म गति से कमरे में प्रकाश हो सकता था। लेकिन इस समय बटन का दबाना उसे बारूद के ढेर में दियासलाई लगाने से कम भयकारक न था। प्रकाश से वह कभी इतनी भयभीत न हुई थी। मुश्किल तो यह थी कि प्रकाश के बगैर वह सफल मनोरथ भी न हो सकती थी। यही अमृत भी था, और विष भी। उसे क्रोध आ रहा था कि किवाड़ों में शीशे क्यों लगे हुए हैं? परदे हैं, वे भी इतने बारीक कि आदमी का मुंह दिखाई देता है। घर न हुआ, कोई सजी हुई दुकान हुई। बिलकुल अंगरेजी नकल है। और, रोशनी ठंडी करने की जरूरत ही क्या थी? इससे तो कोई बहुत बड़ी किफायत नहीं हो जाती।

हम जब किसी तंग सड़क पर चलते हैं, तो हमें सवारियों का आना-जाना बहुत ही कष्टदायक जान पड़ता है। जी चाहता है कि इन रास्तों पर सवारियों के आने की रोक होनी चाहिए। हमारा अख्तियार होता, तो इन सड़कों पर कोई सवारी न आने देते, विशेषत: मोटरों को। लेकिन उन्हीं सड़कों पर जब हम किसी सवारी पर बैठकर निकलते हैं, तो पग-पग पर पथिकों को हटाने के लिए रुकने पर झुंझलाते हैं कि ये सब पटरी पर क्यों नहीं चलते, ख्वामख्वाह बीच में धंसे पड़ते हैं। कठिनाइयों में पड़कर परिस्थिति पर क्रुद्ध होना मानव-स्वभाव है।

सोफिया कई मिनट तक बिजली के बटन के पास खड़ी रही। बटन दबाने की हिम्मत न पड़ती थी। सारे आंगन में प्रकाश फैल जाएगा, लोग चौंक पड़ेंगे। अंधेरे में सोता हुआ मनुष्य भी उजाला फैलते ही जाग पड़ता है। विवश होकर उसने मेज को टटोलना शुरू किया। दावत लुढ़क गई, स्याही मेज पर फैल गई और उसके कपड़ों पर दाग पड़ गए। उसे विश्वास था कि रानी ने पत्र अपने हैंडबैग में रखा होगा। जरूरी चिट्ठियां उसी में रखती थीं। बड़ी मुश्किल से उसे बैग मिला। वह उसमें से एक-एक पत्र निकालकर अंधेरे में देखने लगी। लिफाफे अधिकांश एक ही आकार के थे, निगाहें कुछ काम न कर सकीं। आखिर इस तरह मनोरथ पूरा न होते देखकर उसने हैंडबैग उठा लिया और कमरे से बाहर निकली। सोचा, मेरे कमरे में अभी तक रोशनी है, वहां वह पत्र सहज ही में मिल जाएगा। इसे लाकर फिर यहां रख दूंगी। लेकिन लौटती बार वह इतनी सावधानी से पांव न उठा सकी। आती बार वह पग-पग पर इधर-उधर देखती हुई आई थी। अब बड़े वेग से चली जा रही थी, इधर-उधर देखने की फुरसत न थी। खाली हाथ उज्र की गुजांइश थी। रंगे हुए हाथों के लिए कोई उज्र, कोई बहाना नहीं है।

अपने कमरे में पहुंचते ही सोफिया ने द्वार बंद कर दिया और परदे डाल दिए। गरमी के मारे सारी देह पसीने से तर थी, हाथ इस तरह कांप रहे थे, मानो लकवा गिर गया हो। वह चिट्ठियों को निकाल-निकालकर देखने लगी। और पत्रों केवल देखना ही न था, उन्हें अपनी जगह सावधानी से रखना भी था। पत्रों का एक दफ्तर सामने था, बरसों की चिट्ठियां वहां निर्वाण सुख भोग रही थीं। सोफिया को उनकी तलाशी लेते घंटों गुजर गए, दफ्तर समाप्त होने को आ गया; उसे अब कुछ-कुछ निराशा होने लगी; यहां तक कि अंतिम पत्र भी उलट-पलटकर रख दिया गया। तब सोफिया ने एक लंबी सांस ली। उसकी दशा उस मनुष्य की-सी थी, जो किसी मेले में अपने खोए हुए बंधु को ढूंढ़ता हो, वह चारों ओर आंखें फाड़-फाड़कर देखता है, उसका नाम लेकर जोर-जोर से पुकारता है, उसे भ्रम होता है; वह खड़ा है, लपककर उसके

पास जाता है और लज्जित होकर लौट आता है। अंत को वह निराश होकर जमीन पर बैठ जाता और रोने लगता है।

सोफिया भी रोने लगी। वह पत्र कहां गया? रानी ने तो उसे मेरे सामने ही इसी बैग में रख दिया था? उनके और सभी पत्र यहां मौजूद हैं। क्या उसे कहीं और रख दिया? मगर आशा उस घास की भांति है, जो ग्रीष्म के ताप से जल जाती है, भूमि पर उसका निशान तक नहीं रहता, धरती ऐसी उज्ज्वल हो जाती है, जैसे टकसाल का नया रुपया, लेकिन पावस की बूंद पड़ते ही फिर जली हुई जड़ें पनपने लगती हैं और उसी शुष्क स्थल पर हरियाली लहराने लगती है।

सोफिया की आशा फिर हरी हुई। कहीं मैं कोई पत्र छोड़ तो नहीं गई। उसने दुबारा पत्रों को पढ़ना शुरू किया और ज्यादा ध्यान देकर। एक-एक लिफाफे को खोलकर देखने लगी कि कहीं रानी ने उसे किसी दूसरे लिफाफे में रख दिया हो। जब देखा कि इस तरह तो सारी रात गुजर जाएगी, तो उन्हीं लिफाफों को खोलने लगी, जो भारी मालूम होते थे। अंत को यह शंका भी मिट गई। उस लिफाफे का कहीं पता न था। अब आशा की जड़ें भी सूख गईं। पावस की बूंद न मिली।

सोफिया चारपाई पर लेट गई, मानो थक गई हो। सफलता में अनंत सजीवता होती है, विफलता में असह्य अशक्ति। आशा मद है, निराशा मद का उतार। नशे में हम मैदान की तरफ दौड़ते हैं, सचेत होकर हम घर में विश्राम करते हैं। आशा जड़ की ओर ले जाती है, निराशा चैतन्य की ओर। आशा आंखें बंद कर देती है, निराशा आंखें खोल देती है। आशा सुलाने वाली थपकी है, निराशा जगाने वाला चाबुक।

सोफिया को इस वक्त अपनी नैतिक दुर्बलता पर क्रोध आ रहा था—मैंने व्यर्थ ही अपनी आत्मा के सिर यह अपराध मढ़ा। क्या मैं रानी से अपना पत्र न मांग सकती थी? उन्हें उसके देने में जरा भी विलंब न होता। फिर मैंने वह पत्र उन्हें दिया ही क्यों? रानीजी को कहीं मेरा यह कपट-व्यवहार मालूम हो गया, और अवश्य ही मालूम हो जाएगा, तो वह मुझे अपने मन में क्या समझेंगी? कदाचित् मुझसे नीच और निकृष्ट कोई प्राणी न होगा।

सहसा सोफिया के कानों में झाड़ू लगने की आवाज आई। वह चौंकी, क्या सबेरा हो गया? परदा उठाकर द्वार खोला, तो दिन निकल आया था। उसकी आंखों में अंधेरा छा गया। उसने बड़ी कातर दृष्टि से हैंडबैग की ओर देखा और मूर्ति के समान खड़ी रह गई। बुद्धि शिथिल हो गई। अपनी दशा और अपने कृत्य पर उसे ऐसा क्रोध आ रहा था कि गरदन पर छुरी फेर लूं। कौन-सा मुंह दिखाऊंगी? रानी बहुत तड़के उठती हैं, मुझे अवश्य ही देख लेंगी। किंतु अब हो ही क्या सकता है? भगवन्! तुम दीनों के आधार-स्तंभ हो, अब लाज तुम्हारे हाथ है। ईश्वर करे, अभी रानी न उठी हों। उसकी इस प्रार्थना में कितनी दीनता, कितनी विवशता, कितनी व्यथा, कितनी श्रद्धा और कितनी लज्जा थी। कदाचित् इतने शुद्ध हृदय से उसने कभी प्रार्थना न की होगी।

अब एक क्षण भी विलंब करने का अवसर न था। उसने बैग उठा लिया और बाहर निकली। आत्म-गौरव कभी इतना पद-दलित न हुआ होगा। उसके मुंह में कालिख लगी होती, तो भी वह शायद इस भांति आंखें चुराती हुई न जाती। कोई भद्र पुरुष अपराधी के रूप में बेड़ियां पहने जाता हुआ भी इतना लज्जित न होगा। जब वह दीवानखाने के द्वार पर पहुंची, तो उसका

हृदय यों धड़कने लगा, मानो कोई हथौड़ा चला रहा हो। वह जरा देर ठिठकी, कमरे में झांककर देखा, रानी बैठी हुई थीं। सोफिया की इस समय जो दशा हुई, उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। वह गड़ गई, कट गई, सिर पर बिजली गिर पड़ती, नीचे की भूमि फट जाती, तो भी कदाचित् वह इस महान् संकट के सामने उसे पुष्प-वर्षा या जल-विहार के समान सुखद प्रतीत होती। उसने जमीन की ओर ताकते हुए हैंडबैग चुपके से ले जाकर मेज पर रख दिया। रानी ने उसकी ओर उस दृष्टि से देखा, जो अंतस्तल पर शर के समान लगती है। उसमें अपमान भरा हुआ था, क्रोध न था, दया न थी, ज्वाला न थी, तिरस्कार था—विशुद्ध, सजीव और सशब्द।

सोफिया लौटना ही चाहती थी कि रानी ने पूछा—क्या विनय का पत्र ढूंढ़ रही थीं?

सोफिया अवाक् रह गई। मालूम हुआ, किसी ने कलेजे में बर्छी मार दी।

रानी ने फिर कहा—उसे मैंने अलग रख दिया है, मंगवा दूं?

सोफिया ने उत्तर न दिया। उसके सिर में चक्कर-सा आने लगा। मालूम हुआ, कमरा घूम रहा है।

रानी ने तीसरा बाण चलाया—क्या यही सत्य की मीमांसा है।

सोफिया मूर्च्छित होकर फर्श पर गिर पड़ी।

चौदह

सोफिया को होश आया तो वह अपने कमरे में चारपाई पर पड़ी हुई थी। उसके कानों में रानी के अंतिम शब्द गूंज रहे थे—क्या यहीं सत्य की मीमांसा है? वह अपने को इस समय इतनी नीच समझ रही थी कि घर का मेहतर भी उसे गालियां देता, तो शायद सिर न उठाती। वह वासना के हाथों में इतनी परास्त हो चुकी थी कि अब उसे अपने संभलने की कोई आशा न दिखाई देती थी। उसे भय होता था कि मेरा मन मुझसे वह सब कुछ करा सकता है, जिसकी कल्पना-मात्र से मनुष्य का सिर लज्जा से झुक जाता है। मैं दूसरों पर कितना हंसती थी, अपनी धार्मिक प्रवृत्ति पर कितना अभिमान करती थी, मैं पुनर्जन्म और मुक्ति, पुरुष और प्रकृति जैसे गहन विषयों पर विचार करती थी, और दूसरों को इच्छा तथा स्वार्थ का दास समझकर उनका अनादर करती थी। मैं समझती थी, परमात्मा के समीप पहुंच गई हूं, संसार की उपेक्षा करके अपने को जीवनमुक्त समझ रही थी; पर आज मेरी सद्भक्ति का परदाफाश हो गया। आह ! विनय को ये बातें मालूम होंगी, तो वह अपने मन में क्या समझेंगे? कदाचित् मैं उनकी निगाहों में इतनी गिर जाऊंगी कि वह मुझसे बोलना भी पसंद न करें। मैं अभागिनी हूं, मैंने उन्हें बदनाम किया, अपने कुल को कलंकित किया, अपनी आत्मा की हत्या की, अपने आश्रयदाताओं की उदारता को कलुषित किया। मेरे कारण धर्म भी बदनाम हो गया, नहीं तो क्या आज मुझसे यह पूछा जाता—क्या यही सत्य की मीमांसा है?

उसने सिरहाने की ओर देखा। अलमारियों पर धर्म-ग्रंथ सजे हुए रखे थे। उन ग्रंथों की ओर ताकने की उसकी हिम्मत न पड़ी। यही मेरे स्वाध्याय का फल है ! मैं सत्य की मीमांसा करने चली थी और इस बुरी तरह गिरी कि अब उठना कठिन है।

सामने दीवार पर बुद्ध भगवान् का चित्र लटक रहा था। उनके मुख पर कितना तेज था। सोफिया की आंखें झुक गईं। उनकी ओर ताकते हुए उसे लज्जा आती थी। बुद्ध के अमरत्व का उसे कभी इतना पूर्ण विश्वास न हुआ था। अंधकार में लकड़ी का कुंदा भी सजीव हो जाता है। सोफी के हृदय पर ऐसा ही अंधकार छाया हुआ था।

अभी नौ बजे का समय था, पर सोफिया को भ्रम हो रहा था कि संध्या हो रही है। वह सोचती थी—क्या मैं सारे दिन सोती रह गई, किसी ने मुझे जगाया भी नहीं ! कोई क्यों जगाने लगा? यहां अब मेरी परवा किसे है, और क्यों हो ! मैं कुलक्षणा हूं, मेरी जात से किसी का उपकार न होगा, जहां रहूंगी, वहीं आग लगाऊंगी। मैंने बुरी साइत में इस घर में पांव रखे थे। मेरे हाथों यह घर वीरान हो जाएगा, मैं विनय को अपने साथ डूबो दूंगी, माता का शाप अवश्य पड़ेगा। भगवन्, आज मेरे मन में ऐसे विचार क्यों आ रहे हैं?

सहसा मिसेज सेवक कमरे में दाखिल हुईं। उन्हें देखते ही सोफिया को अपने हृदय में एक जलोद्‌गार-सा उठता हुआ जान पड़ा। वह दौड़कर माता के गले से लिपट गई। यही अब उसका अंतिम आश्रय था। यहीं अब उसे वह सहानुभूति मिल सकती थी, जिसके बिना उसका जीना दूभर था, यहीं अब उसे वह विश्राम, वह शांति, वह छाया मिल सकती थी, जिसके लिए उसकी संतप्त आत्मा तड़प रही थी। माता की गोद के सिवा कौन उसे छाती से लगा सकता है, कौन उसके दिल पर मरहम रख सकता है? मां के कटु शब्द और उसका निष्ठुर व्यवहार, सब कुछ इस सुख-लालसा के आवेग में विलुप्त हो गया। उसे ऐसा जान पड़ा, ईश्वर ने मेरी दीनता पर तरस खाकर मामा को यहां भेजा है। माता की गोद में अपना व्यथित मस्तक रखकर एक बार फिर उसे उस बल और धैर्य का अनुभव हुआ, जिसकी याद अभी तक दिल से न मिटी थी। वह फूट-फूट कर रोने लगी। लेकिन माता की आंखों में आंसू न थे। वह मिस्टर क्लार्क के निमंत्रण का सुख-संवाद सुनाने के लिए अधीर हो रही थीं। ज्योंही सोफिया के आंसू थमे, मिसेज सेवक ने कहा—आज तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। मिस्टर क्लार्क ने तुम्हें अपने यहां निमंत्रित किया है।

सोफिया ने कुछ उत्तर न दिया। उसे माता की यह बात भद्दी मालूम हुई।

मिसेज सेवक ने फिर कहा—जब से तुम यहां आई हो, वह कई बार तुम्हारा कुशल-समाचार पूछ चुके हैं। जब मिलते हैं, तुम्हारी चर्चा जरूर करते हैं। ऐसा सज्जन सिविलियन मैंने नहीं देखा। उनका विवाह किसी अंगरेज के खानदान में हो सकता है, और यह तुम्हारा सौभाग्य है कि वह अभी तक तुम्हें याद करते हैं।

सोफिया ने घृणा से मुंह फेर लिया। माता की सम्मान-लोलुपता असह्य थी। न मुहब्बत की बातें हैं, न आश्वासन के शब्द, न ममता के उद्‌गार। कदाचित् प्रभु मसीह ने भी निमंत्रित किया होता, तो वह इतनी प्रसन्न न होतीं।

मिसेज सेवक बोलीं—अब तुम्हें इनकार न करना चाहिए। विलंब से प्रेम ठंडा हो जाता है और फिर उस पर कोई चोट नहीं पड़ सकती। ऐसा स्वर्ण-सुयोग फिर न हाथ आयगा, एक विद्वान् ने कहा है—प्रत्येक प्राणी को जीवन में केवल एक बार अपने भाग्य की परीक्षा का अवसर मिलता है, और वही भविष्य का निर्णय कर देता है। तुम्हारे जीवन में यह वही अवसर है। इसे छोड़ दिया, तो फिर हमेशा पछताओगी।

सोफिया ने व्यथित होकर कहा—अगर मिस्टर क्लार्क ने मुझे निमंत्रित न किया होता,

तो शायद आप मुझे याद भी न करतीं?

मिसेज सेवक ने अवरुद्ध कंठ से कहा–मेरे मन में जो कुछ है, वह तो ईश्वर ही जानता है, पर ऐसा कोई दिन नहीं जाता कि मैं तुम्हारे और प्रभु के लिए ईश्वर से प्रार्थना न करती होऊं। यह उन्हीं प्रार्थनाओं का शुभ फल है कि तुम्हें यह अवसर मिला है।

यह कहकर मिसेज सेवक जाह्नवी से मिलने गईं। रानी ने उनका विशेष आदर न किया। अपनी जगह पर बैठे-बैठे बोलीं–आपके दर्शन तो बहुत दिनों के बाद हुए।

मिसेज सेवक ने सूखी हंसी हंसकर कहा–अभी मेरी वापसी की मुलाकात आपके जिम्मे बाकी है।

रानी–आप मुझसे मिलने आईं ही कब? पहले भी सोफिया से मिलने आई थीं, और आज भी। मैं तो आज आपको एक खत लिखने वाली थी, अगर बुरा न मानिए, तो एक बात पूछूं?

मिसेज सेवक–पूछिए, बुरा क्यों मानूंगी।

रानी–मिस सोफिया की उम्र तो ज्यादा हो गई, आपने उसकी शादी की कोई फिक्र की या नहीं? अब तो उसका जितनी जल्द विवाह हो जाए, उतना ही अच्छा। आप लोगों में लड़कियां बहुत सयानी होने पर ब्याही जाती हैं।

मिसेज सेवक–इसकी शादी कब की हो गई होती, कई अंगरेज बेतरह पीछे पड़े, लेकिन यह राजी ही नहीं होती। इसे धर्म-ग्रंथों से इतनी रुचि है कि विवाह को जंजाल समझती है। आजकल जिलाधीश मिस्टर क्लार्क के पैगाम आ रहे हैं। देखूं, अब भी राजी होती है या नहीं। आज मैं उसे ले जाने ही के इरादे से आई हूं। मैं हिन्दुस्तानी ईसाइयों से नाते नहीं जोड़ना चाहती। उनका रहन-सहन मुझे पसंद नहीं है, और सोफी जैसी सुशिक्षिता लड़की के लिए कोई अंगरेज पति मिलने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

जाह्नवी–मेरे विचार में विवाह सदैव अपने स्वजातियों में करना चाहिए। योरपियन लोग हिन्दुस्तानी ईसाइयों का बहुत आदर नहीं करते, और अनमेल विवाहों का परिणाम अच्छा नहीं होता।

मिसेज सेवक–(गर्व के साथ) ऐसा कोई योरपियन नहीं है, जो मेरे खानदान में विवाह करना मर्यादा के विरुद्ध समझे। हम और वे एक हैं। हम और वे एक ही खुदा को मानते हैं, एक ही गिरजा में प्रार्थना करते हैं और एक ही नबी के अनुचर हैं। हमारा और उनका रहन-सहन, खान-पान, रीति-व्यवहार एक है। यहां अंगरेजों के समाज में, क्लब में, दावातों में हमारा एक-सा सम्मान होता है। अभी तीन-चार दिन हुए, लड़कियों को इनाम देने का जलसा था। मिस्टर क्लार्क ने खुद मुझे उस जलसे का प्रधान बनाया और मैंने ही इनाम बांटे। किसी हिन्दू या मुसलमान लेडी को यह सम्मान न प्राप्त हो सकता था।

रानी–हिन्दू या मुसलमान, जिन्हें कुछ भी अपने जातीय गौरव का खयाल है, अंगरेजों के साथ मिलना-जुलना अपने लिए सम्मान की बात नहीं समझते। यहां तक कि हिन्दुओं में जो लोग अंगरेजों से खान-पान रखते हैं, उन्हें लोग अपमान की दृष्टि से देखते हैं, शादी-विवाह का तो कहना ही क्या! राजनीतिक प्रभुत्व की बात और है। डाकुओं का एक दल विद्वानों की एक सभा को बहुत आसानी से परास्त कर सकता है। लेकिन इससे विद्वानों का महत्व कुछ कम नहीं होता। प्रत्येक हिन्दू जानता है कि मसीह बौद्ध काल में यहां आए थे, यहां उनकी शिक्षा हुई थी और जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया, उसी का पश्चिम में प्रचार किया। फिर कैसे

हो सकता है कि हिन्दू अंगरेजों को श्रेष्ठ समझें?

दोनों महिलाओं में इसी तरह नोक-झोंक होती रही। दोनों एक दूसरे को नीचा दिखाना चाहती थीं, दोनों एक दूसरे के मनोभावों को समझती थीं। कृतज्ञता या धन्यवाद के शब्द किसी के मुंह से न निकले। यहां तक कि जब मिसेज सेवक विदा होने लगीं, तो रानी जाह्नवी उनको पहुंचाने के लिए कमरे के द्वार तक भी न आईं। अपनी जगह पर बैठे-बैठे हाथ बढ़ा दिया और अभी मिसेज सेवक कमरे ही में थीं कि अपना समाचार-पत्र पढ़ने लगीं।

मिसेज सेवक-सोफिया के पास आई, तो वह तैयार थी। किताबों के गट्ठर बंधे हुए थे। कई दासियां इधर-उधर इनाम के लालच में खड़ी थीं। मन में प्रसन्न थीं, किसी तरह यह बला टली। सोफिया बहुत उदास थी। इस घर को छोड़ते हुए उसे दु:ख हो रहा था। उसे अपने उद्दिष्ट स्थान का पता न था। उसे कुछ न मालूम था कि तकदीर कहां ले जाएगी, क्या-क्या विपत्तियों झेलनी पड़ेगी, जीवन-नौका किस घाट लगेगी। उसे ऐसा मालूम हो रहा था। कि विनयसिंह से फिर मुलाकात न होगी, उनसे सदा के लिए बिछुड़ रही हूं। रानी की अपमान-भरी बातें, उनकी भर्त्सना और अपनी भ्रांति सब कुछ भूल गई। हृदय के एक-एक तार से यही ध्वनि निकल रही थी-अब विनय से फिर भेंट न होगी।

मिसेज सेवक बोलीं-कुंवर साहब से भी मिल लूं।

सोफिया डर रही थी कि कहीं मामा को रात की घटना की खबर न मिल जाए, कुंवर साहब कहीं दिल्लगी-ही-दिल्लगी में कह न डालें। बोली-उनसे मिलने में देर होगी, फिर मिल लीजिएगा।

मिसेज सेवक-फिर किसे इतनी फुरसत है !

दोनों कुंवर साहब के दीवानखाने में पहुंचीं। यहां इस वक्त स्वयंसेवकों की भीड़ लगी हुई थी। गढ़वाल प्रांत में दुर्भिक्ष का प्रकोप था। न अन्न था, न जल। जानवर मरे जाते थे, पर मनुष्यों को मौत भी न आती थी, एड़ियां रगड़ते थे, सिसकते थे। यहां से पचास स्वयंसेवकों का एक दल, पीड़ितों का कष्ट निवारण करने के लिए जाने वाला था। कुंवर साहब इस वक्त उन लोगों को छांट रहे थे। उन्हें जरूरी बातें समझा रहे थे। डाक्टर गांगुली ने इस वृद्धावस्था में भी इस दल का नेतृत्व स्वीकार कर लिया था। दोनों आदमी इतने व्यस्त थे कि मिसेज सेवक की ओर किसी ने ध्यान न दिया। आखिर वह स्वयं बोलीं-डाक्टर साहब, आपका कब जाने का विचार है?

कुंवर साहब ने मिसेज सेवक की तरफ देखा और बड़े तपाक से आगे बढ़कर हाथ मिलाया, कुशल-समाचार पूछा और ले जाकर एक कुर्सी पर बैठा दिया। सोफिया मां के पीछे जाकर खड़ी हो गई।

कुंवर साहब-ये लोग गढ़वाल जा रहे हैं। आपने पत्रों में देखा होगा, वहां लोगों पर कितना घोर संकट पड़ा हुआ है।

मिसेज सेवक-खुदा इन लोगों का उद्योग सफल करे। इनके त्याग की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। मैं देखती हूं, यहां इनकी खासी तादाद है।

कुंवर साहब-मुझे इतनी आशा न थी, विनय की बातों पर विश्वास न होता था।, सोचता था, इतने वालंटियर कहां मिलेंगे। सभी को नवयुवकों के निरुत्साह का रोना रोते हुए देखता था, इनमें जोश नहीं है, त्याग नहीं हैं, जान नहीं है, सब अपने स्वार्थ-चिंतन में मतवाले हो

रहे हैं। कितनी ही सेवा-समितियां स्थापित हुईं पर एक भी पनप न सकी। लेकिन अब मुझे अनुभव हो रहा है कि लोगों को हमारे नवयुवकों के विषय में कितना भ्रम हुआ था। अब तक तीन सौ नाम दर्ज हो चुके हैं। कुछ लोगों ने आजीवन सेवा-धर्म पालन करने का व्रत लिया है। इनमें कई आदमी तो हजारों रुपये माहवार की आय पर लात मारकर आए हैं। इन लोगों का सत्साहस देखकर मैं बहुत आशावादी हो गया हूं।

मिसेज सेवक—मिस्टर क्लार्क कल आपकी बहुत प्रशंसा कर रहे थे। ईश्वर ने चाहा, तो आप शीघ्र ही सी० आई० ई० होंगे और मुझे आपको बधाई देने का अवसर मिलेगा।

कुंवर साहब—(लजाते हुए) मैं इस सम्मान के योग्य नहीं हूं। मिस्टर क्लार्क मुझे इस योग्य समझते हैं, तो वह उनकी कृपा-दृष्टि है। मिस सेवक, तैयार रहना, कल तीन बजे के मेल से यह लोग सिधारेंगे। प्रभु ने भी आने का वादा किया है।

मिसेज सेवक—सोफी तो आज घर जा रही है। (मुस्कराकर) शायद आपको जल्द ही इसका कन्यादान देना पड़े। (धीरे से) मिस्टर क्लार्क जाल फैला रहे हैं।

सोफिया शर्म से गड़ गई। उसे अपनी माता के ओछेपन पर क्रोध आ रहा था—इन सब बातों का ढिंढोरा पीटने की क्या जरूरत है? क्या यह समझती हैं कि मि० क्लार्क का नाम लेने से कुंवर साहब रोब में आ जाएंगे?

कुंवर साहब—बड़ी खुशी की बात है। सोफी, देखो, हम लोगों को और विशेषत: अपने गरीब भाइयों को न भूल जाना। तुम्हें परमात्मा ने जितनी सहृदयता प्रदान की है, वैसा ही अच्छा अवसर भी मिल रहा है। हमारी शुभेच्छाएं सदैव तुम्हारे साथ रहेंगी। तुम्हारे एहसान से हमारी गरदन सदा दबी रहेगी। कभी-कभी हम लोगों को याद करती रहना। मुझे पहले न मालूम था, नहीं तो आज इन्दु को अवश्य बुला भेजता। खैर, देश की दशा तुम्हे मालूम है। मिस्टर क्लार्क बहुत ही होनहार आदमी हैं। एक दिन जरूर यह इस देश के किसी प्रांत के विधाता होंगे। मैं विश्वास के साथ यह भविष्यवाणी कर सकता हूं। उस वक्त तुम अपने प्रभाव, योग्यता और अधिकार से देश को बहुत कुछ लाभ पहुंचा सकोगी। तुमने अपने स्वदेशवासियों की दशा देखी है, उनकी दरिद्रता का तुम्हें पूर्ण अनुभव है। इस अनुभव का उनकी सेवा और सुधार में सद्व्यय करना।

सोफिया मारे शर्म के कुछ बोल न सकी। उसकी मां ने कहा—आप रानीजी को जरूर साथ लाइएगा। मैं कार्ड भेजूंगी।

कुंवर साहब—नहीं मिसेज सेवक, मुझे क्षमा कीजिएगा। मुझे खेद है कि मैं उस उत्सव में सम्मिलित न हो सकूंगा। मैंने व्रत कर लिया है कि राज्याधिकारियों से कोई संपर्क न रखूंगा। हाकिमों की कृपा-दृष्टि, ज्ञात या अज्ञात रूप से, हम लोगों को आत्मसेवी और निरंकुश बना देती है। मैं अपने को इस परीक्षा में नहीं डालना चाहता, क्योंकि मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैं अपनी जाति में राजा और प्रजा तथा छोटे और बड़े का विभेद नहीं करना चाहता। हम सब प्रजा हैं, राजा है वह भी प्रजा है, रंक है वह भी प्रजा है। झूठे अधिकर के गर्व से अपने सिर को नहीं फिराना चाहता।

मिसेज सेवक—खुदा ने आपको राजा बनाया है। राजों ही के साथ तो राजा का मेल हो सकता है। अंगरेज लोग बाबुओं को मुंह नहीं लगाते, क्योंकि इससे यहां के राजों का अपमान होता है।

डा० गांगुली—मिसेज सेवक, यह बहुत दिनों तक राजा रह चुका है, अब इसका जी भर

गया है। मैं इसका बचपन का साथी हूं। हम दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। देखने में यह मुझसे छोटा मालूम होता है, पर कई साल बड़ा है।

मिसेज सेवक—(हंसकर) डाक्टर के लिए यह तो कोई गर्व की बात नहीं है।

डा॰ गांगुली—हम दूसरों का दवा करना जानता है, अपना दवा करना नहीं जानता। कुंवर साहब उसी बखत से pessimist है। उसी pessimism ने इसकी शिक्षा में बाधा डाली। अब भी इसका वही हाल है। हां, अब थोड़ा फेरफार हो गया है। पहले कर्म से भी निराशावादी था और वचन से भी। अब इसके वचन और कर्म में सादृश्य नहीं है। वचन से तो अब भी pessimist है; पर काम वह करता है, जिसे कोई पक्का optimist ही कर सकता है।

कुंवर साहब—गांगुली, तुम मेरे साथ अन्याय कर रहे हो। मुझमें आशावादिता के गुण ही नहीं हैं। आशावादी परमात्मा का भक्त होता है, पक्का ज्ञानी, पूर्ण ऋषि। उसे चारों ओर परमात्मा की ही ज्योति दिखाई देती है। इसी से उसे भविष्य पर अविश्वास नहीं होता। मैं आदि से भोग-विलास का दास रहा हूं, वह दिव्य ज्ञान न प्राप्त कर सका, जो आशावादिता की कुंजी है। मेरे लिए pessimism के सिवा कोई मार्ग नहीं है। मिसेज सेवक, डाक्टर महोदय के जीवन का सार है—आत्मोत्सर्ग। इन पर जितनी विपत्तियां पड़ीं, वे किसी ऋषि को भी नास्तिक बना देतीं। जिस प्राणी के सात बेटे जवान हो-होकर दगा दे जाएं, पर वह अपने कर्त्तव्य-मार्ग से जरा भी विचलित न हो, ऐसा उदाहरण बिरला ही कहीं मिलेगा। इनकी हिम्मत तो टूटना जानती ही नहीं, आपदाओं की चोटें इन्हें और भी ठोस बना देती हैं। मैं साहसहीन, पौरुषहीन प्राणी हूं। मुझे यकीन नहीं आता कि कोई शासक जाति शासितों के साथ न्याय और साम्य का व्यवहार कर सकती है। मानव-चरित्र को मैं किसी देश में, किसी काल में, इतना निष्काम नहीं पाता। जिस राष्ट्र ने एक बार अपनी स्वाधीनता खो दी, वह फिर उस पद को नहीं पा सकता। दासता ही उसकी तकदीर हो जाती है। किंतु हमारे डाक्टर बाबू मानव-चरित्र को इतना स्वार्थी नहीं समझते। इनका मत है कि हिंसक पशुओं के हृदय में भी अनंत ज्योति की किरणें विद्यमान रहती हैं, केवल परदे को हटाने की जरूरत है। मैं अंगरेजों की तरफ से निराश हो गया हूं, इन्हें विश्वास है कि भारत का उद्धार अंगरेज-जाति ही के द्वारा होगा।

मिसेज सेवक—(रुखाई से) तो क्या आप यह नहीं मानते कि अंगरेजों ने भारत के लिए जो कुछ किया है, वह शायद ही किसी जाति ने किसी जाति या देश के साथ किया हो?

कुंवर साहब—नहीं, मैं यह नहीं मानता।

मिसेज सेवक—(आश्चर्य से) शिक्षा का इतना प्रचार और भी किसी काल में हुआ था?

कुंवर साहिब— मैं उसे शिक्षा ही नहीं कहता, जो मनुष्य को स्वार्थ का पुतला बना दे।

मिसेज सेवक—रेल, तार, जहाज, डाक, ये सब विभूतियां अंगरेजों ही के साथ आईं !

कुंवर साहब—अंगरेजों के बगैर भी आ सकती थीं, और अगर आई भी हैं तो अधिकतर अंगरेजों ही के लाभ के लिए।

मिसेज सेवक—ऐसा न्याय-विधान पहले कभी न था।

कुंवर साहब—ठीक है, ऐसा न्याय-विधान कहां था, तो अन्याय को न्याय और असत्य को सत्य सिद्ध कर दे। यह न्याय नहीं, न्याय का गोरखधंधा है।

सहसा रानी जाह्नवी कमरे में आईं। सोफिया का चेहरा उन्हें देखते ही सूख गया। वह

कमरे के बाहर निकल आई, रानी के सामने खड़ी न रह सकी। मिसेज सेवक को भी शंका हुई कि कहीं चलते-चलते रानी से फिर न विवाद हो जाए। वह भी बाहर चली आईं। कुंवर साहब ने दोनों को फिटन पर सवार कराया। सोफिया ने सजल नेत्रों से कर जोड़कर कुंवरजी को प्रणाम किया। फिटन चली। आकाश पर काली घटा छाई हुई थी, फिटन सड़क पर तेजी से दौड़ी चली जाती थी और सोफिया बैठी रो रही थी। उसकी दशा उस बालक की-सी थी, जो रोटी खाता हुआ मिठाई वाले की आवाज सुनकर उसके पीछे दौड़े, ठोकर खाकर गिर पड़े, पैसा हाथ से निकल जाए और वह रोता हुआ घर लौट आवे।

पंद्रह

राजा महेन्द्रकुमारसिंह यद्यपि सिद्धांत के विषय में अधिकारियों से जौ-भर भी न दबते थे, पर गौण विषयों में वह अनायास उनसे विरोध करना व्यर्थ ही नहीं, जाति के लिए अनुपयुक्त भी समझते थे। उन्हें शांत नीति पर जितना विश्वास था, उतना उग्र नीति पर न था, विशेषत: इसलिए कि वह वर्तमान परिस्थिति में जो कुछ सेवा कर सकते थे, वह शासकों के विश्वासपात्र होकर ही कर सकते थे। अतएव कभी-कभी उन्हें विवश होकर ऐसी नीति का अवलंबन करना पड़ता था, जिससे उग्र नीति के अनुयायियों को उन पर उंगली उठाने का अवसर मिलता था। उनमें यदि कोई कमजोरी थी, तो यह कि वह सम्मान-लोलुप मनुष्य थे, और ऐसे अन्य मनुष्यों की भांति वह बहुधा औचित्य की दृष्टि से नहीं, ख्याति लाभ की दृष्टि से अपने आचरण का निश्चय करते थे। पहले उन्होंने न्याय-पक्ष लेकर जॉन सेवक को सूरदास की जमीन दिलाने से इनकार कर दिया था, पर अब उन्हें इसके विरुद्ध आचरण करने के लिए बाध्य होना पड़ रहा था। अपने सहवर्गियों को समझाने के लिए तो पांड़ेपुर वालों का ताहिरअली के घर में घुसने पर उद्यत होना ही काफी था, पर यथार्थ में जॉन सेवक और मिस्टर क्लार्क की पारस्परिक मैत्री ने ही उन्हें अपना फैसला पलट देने को प्रेरित किया था। पर अभी तक उन्होंने बोर्ड में इस प्रस्ताव को उपस्थित न किया था। यह शंका होती थी कि कहीं लोग मुझे एक धनी व्यापारी के साथ पक्षपात करने का दोषी न ठहराने लगें। उनकी आदत थी के बोर्ड में प्रस्ताव रखने के पहले वह इन्दु से, और इन्दु न होती, तो अपने किसी इष्ट-मित्र से परामर्श कर लिया करते थे। उनके सामने अपना पक्ष-समर्थन करके, उनकी शंकाओं का समाधान करने का प्रयास करके, अपना इत्मीनान कर लेते थे। यद्यपि उनके निश्चय में इस तर्कयुद्ध से कोई अंतर न पड़ता, वह अपने पक्ष पर स्थिर रहते, पर घंटे-दो-घंटे के विचार-विनिमय से उनको बड़ा आश्वासन मिलता था।

तीसरे पहर का समय था। समिति के सेवक गढ़वाल जाने के लिए स्टेशन पर जमा हो रहे थे। इन्दु ने गाड़ी तैयार करने का हुक्म दिया। यद्यपि बादल घिरा हुआ था और प्रतिक्षण गगन श्याम वर्ण हुआ जाता था, किंतु सेवकों को विदा करने के लिए स्टेशन पर जाना जरूरी था। जाह्नवी ने उसे बहुत आग्रह करके बुलाया था। वह जाने को तैयार ही थी कि राजा साहब अंदर आए और इन्दु को कहीं जाने को तैयार करके देखकर बोले—कहां जाती हो, बादल घिरा हुआ

है।

इन्दु–समिति के लोग गढ़वाल जा रहे हैं। उन्हें बिदा करने स्टेशन जा रही हूं। अम्मांजी ने बुलाया भी है।

राजा–पानी अवश्य बरसेगा।

इन्दु–परदा डाल दूंगी, और भीग भी गई, तो क्या? आखिर वे भी तो आदमी ही हैं, जो लोक-सेवा के लिए इतनी दूर जा रहे हैं।

राजा–न जाओ, तो कोई हरज है? स्टेशन पर भीड़ बहुत होगी।

इन्दु–हरज क्या होगा, मैं जाऊं या न जाऊं, वे लोग तो जाएंगे ही, पर दिल नहीं मानता। वे लोग घर-बार छोड़कर जा रहे हैं, न जाने क्या-क्या कष्ट उठायंगे, न जाने कब लौटेंगे, मुझसे इतना भी न हो कि उन्हें बिदा कर आऊं? आप भी क्यों नहीं चलते?

राजा–(विस्मित होकर) मैं?

इन्दु–हां-हां, आपके जाने में कोई हरज है?

राजा–मैं ऐसी संस्थाओं में सम्मिलित नहीं होता।

इन्दु–कैसी संस्थाओं में?

राजा–ऐसी ही संस्थाओं में !

इन्दु–क्या सेवा-समितियों से सहानुभूति रखना भी आपत्तिजनक है? मैं तो समझती हूं, ऐसे शुभ कार्यों में भाग लेना किसी के लिए भी लज्जा या आपत्ति की बात नहीं हो सकती।

राजा–तुम्हारी समझ में और मेरी समझ में बड़ा अंतर है। यदि मैं बोर्ड का प्रधान न होता, यदि मैं शासन का एक अंग न होता, अगर मैं एक रियासत का स्वामी न होता, तो स्वच्छंदता से प्रत्येक सार्वजनिक कार्य में भाग लेता। वर्तमान स्थिति में मेरा किसी संस्था में भाग लेना इस बात का प्रमाण समझा जाएगा कि राज्याधिकारियों को उमसे सहानुभूति है। मैं यह भ्रांति नहीं फैलाना चाहता। सेवा समिति युवकों का दल है, और यद्यपि इस समय उसने सेवा का आदर्श अपने सामने रखा है और वह सेवापथ पर ही चलने की इच्छा रखती है, पर अनुभव ने सिद्ध कर दिया है कि सेवा और उपकार बहुधा ऐसे रूप धारण कर लेते हैं, जिन्हें कोई शासन स्वीकार नहीं कर सकता और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसे उसका मूलोच्छेद करने के प्रयत्न करने पड़ते हैं। मैं इतना बड़ा उत्तरदायित्व अपने सिर नहीं लेना चाहता।

इन्दु–तो आप इस पद को त्याग क्यों नहीं देते? अपनी स्वाधीनता का क्यों बलिदान करते हैं?

राजा–केवल इसलिए कि मुझे विश्वास है कि नगर का प्रबंध जितनी सुंदरता से मैं कर सकता हूं, और कोई नहीं कर सकता। नगरसेवा का ऐसा अच्छा और दुर्लभ अवसर पाकर मैं अपनी स्वच्छंदता की जरा भी परवा नहीं करता। मैं एक राज्य का अधीश हूं और स्वभावतः मेरी सहानुभूति सरकार के साथ है। जनवाद और साम्यवाद को संपत्ति से वैर है। मैं उस समय तक साम्यवादियों का साथ न दूंगा, जब तक मन में यह निश्चय न कर लूं कि अपनी संपत्ति त्याग दूंगा। मैं वचन से साम्यवाद का अनुयायी बनकर कर्म से उका विरोधी नहीं बनना चाहता। कर्म और वचन में इतना घोर विरोध मेरे लिए असह्य है। मैं उन लोगों को धूर्त और पाखंडी समझता हूं, जो अपनी संपत्ति को भोगते हुए साम्य की दुहाई देते फिरते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि साम्यदेव के पुजारी बनकर वह किस मुंह से विशाल प्रासादों में रहते हैं, मोटर-बोटों

में जल-क्रीड़ा करते हैं। और संसार के सुखों का दिल खोलकर उपभोग करते हैं, अपने कमरे में से फर्श हटा देना और सादे वस्त्र पहन लेना ही साम्यवाद नहीं है। यह निर्लज्ज धूर्तता है, खुला हुआ पाखंड है। अपनी भोजनशाला के बचे-खुचे टुकड़ों को गरीबों के सामने फेंक देना साम्यवाद को मुंह चिढ़ाना, उसे बदनाम करना है।

यह कटाक्ष कुंवर साहब पर था। इन्दु समझ गई। त्योरियां बदल गईं, किंतु उसने जब्त किया और इस अप्रिय प्रशंसा को समाप्त करने के लिए बोली—मुझे देर हो रही है, तीन बजने वाले है, साढ़े तीन पर गाड़ी छूटती है, अम्मांजी से मुलाकात हो जाएगी, विनय का कुशल-समाचार भी मिल जाएगा। एक पंथ दो काज होगा।

राजा साहब—जिन कारणों से मेरा जाना अनुचित है, उन्हीं कारणों से तुम्हारा जाना भी अनुचित है। तुम जाओ या मैं जाऊं, एक ही बात है।

इन्दु उसी पांव अपने कमरे में लौट आई और सोचने लगी—यह अन्याय नहीं, तो और क्या है? घोर अत्याचार। कहने को तो मैं रानी हूं, लेकिन इतना अख्तियार भी नहीं कि घर से बाहर जा सकूं। मुझसे तो लौंडियां ही अच्छी हैं। चित्त बहुत खिन्न हुआ, आंखें सजल हो गईं। घंटी बजाई और लौंडी से कहा—गाड़ी खुलवा दो, मैं स्टेशन न जाऊंगी।

महेन्द्रकुमार भी उसके पीछे-पीछे कमरे में जाकर बोले—कहीं सैर क्यों नहीं कर आतीं?

इन्दु—नहीं, बादल घिरा हुआ है, भीग जाऊंगी।

राजा साहब—क्या नाराज हो गईं?

इन्दु—नाराज क्यों हूं? आपके हुक्म की लौंडी हूं। आपने कहा, मत जाओ, न जाऊंगी।

राजा साहब—मैं तुम्हें विवश नहीं करना चाहता। यदि मेरी शंकाओं को जान लेने के बाद भी तुम्हें वहां जाने में कोई आपत्ति नहीं दिखलाई पड़ती, तो शौक से जाओ। मेरा उद्देश्य केवल तुम्हारी सद्बुद्धि को प्रेरित करना था। मैं न्याय के बल से रोकना चाहता हूं, आज्ञा के बल से नहीं। बोलो, अगर तुम्हारे जाने से मेरी बदनामी हो, तो तुम जाना चाहोगी?

यह चिड़िया के पर काटकर उसे उड़ाना था। इन्दु ने उड़ने की चेष्टा ही न की। इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता था—कदापि नहीं, यह मेरे धर्म के प्रतिकूल है। किंतु इन्दु को अपनी परवशता इतनी अखर रही थी कि उसने इस प्रश्न को सुना ही नहीं, या सुनी भी, तो उस पर ध्यान न दिया। उसे ऐसा जान पड़ा, यह मेरे जले पर नमक छिड़क रहे हैं। अम्मां अपने मन में क्या कहेंगी? मैंने बुलाया, और नहीं आई। क्या दौलत की हवा लगी? कैसे क्षमा-याचना करूं? यदि लिखूं, अस्वस्थ हूं, तो वह एक क्षण में यहां आ पहुंचेंगी और मुझे लज्जित होना पड़ेगा। आह ! अब तक तो वहां पहुंच गई होती। प्रभु सेवक ने बड़ी प्रभावशाली कविता लिखी होगी। दादाजी का उपदेश भी मार्के का होगा। एक-एक शब्द अनुराग और प्रेम में डूबा होगा। सेवक-दल वर्दी पहने कितना सुंदर लगता होगा।

इन कल्पनाओं ने इन्दु को इतना उत्सुक किया कि वह दुराग्रह करने को उद्यत हो गई। मैं तो जाऊंगी। बदनामी नहीं, पत्थर होगी। ये सब मुझे रोक रखने के बहाने हैं। तुम डरते हो, डरो, अपने कर्मों के फल भोगो, मैं क्यों डरूं? मन में यह निश्चय करके उसने निश्चयात्मक रूप से कहा—आपने मुझे जाने की आज्ञा दे दी है, मैं जाती हूं।

राजा ने भग्न हृदय होकर कहा—तुम्हारी इच्छा, जाना चाहती हो, शौक से जाओ।

इन्दु चली गई, तो राजा साहब सोचने लगे—स्त्रियां कितनी निष्ठुर, कितनी स्वच्छंदताप्रिय,

कितनी मानशील होती हैं। चली जा रही है, मानो मैं कुछ हूं ही नहीं। इसकी जरा भी चिंता नहीं कि हुक्काम के कानों तक यह बात पहुंचेगी, तो वह मुझे क्या कहेंगे। समाचार-पत्रों के संवाददाता यह वृत्तांत अवश्य ही लिखेंगे, और उपस्थित महिलाओं में चतारी की रानी का नाम मोटे अक्षरों में लिखा नजर आएगा। मैं जानता कि इतना हठ करेगी, तो मना ही क्यों करता, खुद भी साथ जाता। एक तरफ बदनाम होता, तो दूसरी ओर बखान होता। अब तो दोनों ओर से गया। इधर भी बुरा, उधर भी बुरा बना। आज मालूम हुआ कि स्त्रियों के सामने कोरी साफगोई नहीं चलती, वे लल्लो-चप्पो ही से राजी रहती हैं।

इन्दु स्टेशन की तरफ चली, पर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती थी, उसका दिल एक बोझ से दबा जाता था। मैदान में जिसे हम विजय कहते हैं।, घर में उसी का नाम अभिनयशीलता, निष्ठुरता और अभद्रता है। इन्दु को इस विजय पर गर्व न था। अपने हठ का खेद था। सोचती जाती थी—वह मुझे अपने मन में कितनी अभिमानिनी समझ रहे होंगे। समझते होंगे, जब यह जरा-जरा-सी बातों में यों आखें फेर लेती हैं, जरा-जरा-से मतभेद में यों लड़ने पर उतारू हो जाती है, तो किसी कठिन अवसर पर इससे सहानुभूति की क्या आशा की जा सकती है। अम्मांजी यह हाल सुनेंगी तो मुझी को बुरा कहेंगी निस्संदेह मुझसे भूल हुई। लौट चलूं और उनसे अपराध क्षमा कराऊं। मेरी सिर पर न जाने क्यों भूत सवार हो जाता है। अनायास ही उलझ पड़ी ! भगवान् मुझे कब इतनी बुद्धि होगी कि उनकी इच्छा के सामने सिर झुकाना सीखूंगी?

इन्दु ने बाहर की तरफ सिर निकालकर देखा, स्टेशन का सिगनल नजर आ रहा था। नर-नारियों के समूह स्टेशन की ओर दौड़े चले जा रहे थे। सवारियों का तांता लगा हुआ था। उसने कोचवान से कहा—गाड़ी फेर दो, मैं स्टेशन न जाऊंगी, घर की तरफ चलो।

कोचवान ने कहा—सरकार अब तो आ गए, वह देखिए, कई आदमी मुझे इशारा कर रहे हैं कि घोड़ों को बढ़ाओ, गाड़ी पहचानते हैं।

इन्दु—कुछ परवा नहीं, फौरन घोड़े फेर दो।

कोचवान—क्या सरकार की तबियत कुछ खराब हो गई क्या?

इन्दु—बक-बक मत करो, गाड़ी लौटा ले चलो।

कोचवान ने गाड़ी फेर दी। इन्दु ने एक लंबी सांस ली और सोचने लगी—सब लोग मेरा इंतजार कर रहे होंगे, गाड़ी देखते ही पहचान गए थे। अम्मां कितनी खुश हुई होंगी, पर गाड़ी लौटते देखकर उन्हें और अन्य सब आदमियों को कितना विस्मय हुआ होगा। कोचवान से कहा—जरा पीछे फिरकर देखो, कोई आ तो नहीं रहा है?

कोचवान—हुजूर, कोई गाड़ी आ तो रही है।

इन्दु—घोड़ों को तेज कर दो, चौगाम छोड़ दो।

कोचवान—हुजूर, गाड़ी नहीं, मोटर है, साफ मोटर है।

इन्दु—घोड़ों को चाबुक लगाओ।

कोचवान—हुजूर, यह तो अपनी ही मोटर मालूम होती है, हींगनसिंह चला रहे हैं। खूब पहचान गया, अपनी ही मोटर है।

इन्दु—पागल हो, अपनी मोटर यहां क्यों आने लगी?

कोचवान—हुजूर, अपनी मोटर न हो, तो जो चोर की सजा, वह मेरी। साफ नजर आ

रही है, वही रंग है। ऐसी मोटर इस शहर में दूसरी है ही नहीं।

इन्दु–जरा गौर से देखो।

कोचवान–क्या देखूं, हुजूर, वह आ पहुंची, सरकार बैठे हैं।

इन्दु–ख्वाब तो नहीं देख रहा है।

कोचवान–लीजिए, हुजूर, यह बराबर आ गई।

इन्दु ने घबराकर बाहर देखा, तो सचमुच अपनी ही मोटर थी। गाड़ी के बराबर आकर वह रुक गई और राजा साहब उतर पड़े। कोचवान ने गाड़ी रोक दी। इन्दु चकित होकर बोली–आप कब आ गए?

राजा–तुम्हारे आने के पांच मिनट बाद मैं भी चल पड़ा।

इन्दु–रास्ते में तो कहीं नहीं दिखाई दिए।

राजा–लाइन की तरफ से आया हूं। इधर की सड़क खराब है। मैंने समझा, जरा चक्कर तो पड़ेगा, मगर जल्द पहुंचूंगा। तुम स्टेशन के सामने से कैसे लौट आईं। क्या बात है? तबियत तो अच्छी है? मैं तो घबरा गया। आओ मोटर पर बैठ जाओ। स्टेशन पर गाड़ी आ गई है, दस मिनट में छूट जाएगी, लोग उत्सुक हो रहे हैं।

इन्दु–अब मैं न जाऊंगी। आप तो पहुंच ही गए थे।

राजा–तुम्हें चलना पड़ेगा।

इन्दु–मुझे मजबूर न कीजिए, मैं न जाऊंगी।

राजा–पहले तो तुम यहां आने के लिए इतनी उत्सुक थीं, अब क्यों इनकार कर रही हो?

इन्दु–आपकी इच्छा के विरुद्ध आई थी। आपने मेरे कारण अपने नियम का उल्लंघन किया है, तो मैं किस मुंह से वहां जा सकती हूं? आपने मुझे सदा के लिए शालीनता का सबक दे दिया।

राजा–मैं उन लोगों से तुम्हें लाने का वादा कर आया हूं। तुम न चलोगी, तो मुझे कितना लज्जित होना पड़ेगा।

इन्दु–आप व्यर्थ इतना आग्रह कर रहे हैं। आपको मुझसे नाराज होने का यह अंतिम अवसर था। अब फिर इतना दुस्साहस न करूंगी।

राजा–एंजिन सीटी दे रहा है।

इन्दु–ईश्वर के लिए मुझे जाने दीजिए।

राजा न निराश होकर कहा–जैसी तुम्हारी इच्छा! मालूम होता है, हमारे और तुम्हारे ग्रहों में कोई मौलिक विरोध है, जो पग-पग पर अपना फल दिखाता रहता है।

यह कहकर वह मोटर पर सवार हो गए, और बड़े वेग से स्टेशन की तरफ चले। बग्घी भी आगे बढ़ी। कोचवान ने पूछा–हुजूर गईं क्यों नहीं? सरकार बुरा मान गए।

इन्दु ने इसका कुछ जवाब न दिया। वह सोच रही थी–क्या मुझसे फिर भूल हो गई? क्या मेरा जाना उचित था? क्या वह शुद्ध हृदय से मेरे जाने के लिए आग्रह कर रहे थे या एक थप्पड़ लगाकर दूसरा थप्पड़ लगाना चाहते थे? ईश्वर ही जानें। वही अंतर्यामी हैं, मैं किसी के दिल की बात क्या जानूं।

गाड़ी धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती थी। आकाश पर छाए हुए बादल फटते जाते थे, पर

इन्दु के हृदय पर छाई हुई घटा प्रतिक्षण और भी घनी होती जाती थी–आह ! क्या वस्तुतः हमारे ग्रहों में कोई मौलिक विरोध है, जो पग-पग पर मेरी आकांक्षाओं को दलित करता रहता है? मैं कितना चाहती हूं कि उनकी इच्छा के विरुद्ध एक कदम भी न चलूं, किंतु यह प्रकृति-विरोध हमेशा नीचा दिखाता है। अगर वह शुद्ध मन से अनुरोध कर रहे थे, तो मेरा इनकार सर्वथा असंगत था। आह, उन्हें मेरे हाथों फिर कष्ट पहुंचा। उन्होंने अपनी स्वाभाविक सज्जनता से मेरा अपराध क्षमा किया और मेरा मान रखने के लिए अपने सिद्धांत की परवा न की। समझे होंगे, अकेली जाएगी, तो लोग खयाल करेंगे, पति की इच्छा के विरुद्ध आई हैं, नहीं तो क्या वह भी न आते? मुझे इस अपमान से बचाने के लिए उन्होंने अपने ऊपर इतना अत्याचार किया। मेरी जड़ता से वह कितने हताश हुए हैं, नहीं तो उनके मुंह से यह वाक्य कदापि न निकलता। मैं सचमुच अभागिनी हूं।

इन्हीं विषादमय विचारों में डूबी हुई वह चन्द्रभवन पहुंची और गाड़ी से उतर कर सीधे राजा साहब के दीवानखाने में जा बैठी। आंखें चुरा रही थी कि किसी नौकर-चाकर से सामना न हो जाए। उसे ऐसा जान पड़ता था कि मेरे मुख पर कोई दाग लगा हुआ है। जी चाहता था, राजा साहब आते-ही-आते मुझ पर बिगड़ने लगें, मुझे खूब आड़े हाथों लें, हृदय को तानों से चलनी कर दें, यही उनकी शुद्ध-हृदयता का प्रमाण होगा। यदि वह आकर मुझसे मीठी-मीठी बातें करने लगे, तो समझ जाऊंगी, मेरी तरफ से उनका दिल साफ नहीं है, यह सब केवल शिष्टाचार है। वह इस समय पति की कठोरता की इच्छुक थी। गरमियों में किसान वर्षा का नहीं, ताप का भूखा होता है।

इन्दु को बहुत देर तक न बैठना पड़ा। पांच बजते-बजते राज साहब आ पहुंचे। इन्दु का हृदय धक-धक करने लगा। वह उठकर द्वार पर खड़ी हो गई। राजा साहब उसे देखते ही बड़े मधुर स्वर से बोले–तुमने आज जातीय उद्गारों का एक अपूर्व दृश्य देखने का अवसर खो दिया। बड़ा ही मनोहर दृश्य था। कई हजार मनुष्यों ने जब यात्रियों पर पुष्प-वर्षा की, तो सारी भूमि फूलों से ढक गई। सेवकों का राष्ट्रीय गान इतना भावमय, इतना प्रभावोत्पादक था कि दर्शक-वृंद मुग्ध हो गए। मेरा हृदय जातीय गौरव से उछला पड़ता था। बार-बार ही खेद होता है कि तुम न हुईं। यही समझ लो कि मैं उस आनंद को प्रकट नहीं कर सकता। मेरे मन में सेवा-समिति से विषय में जितनी शंकाएं थीं, वे सब शांत हो गईं, यही जी चाहता था कि मैं भी सब कुछ छोड़-छाड़कर इस दल के साथ चला जाता। डाक्टर गांगुली को अब तक मैं निरा बकवादी समझता था। आज मैं उनका उत्साह और साहस देखकर दंग रह गया। तुमसे बड़ी भूल हुई। तुम्हारी माताजी बार-बार पछताती थीं।

इन्दु को जिस बात की शंका थी, वह पूरी हो गई। सोचा–यह सब कपटलीला है। इनका दिल साफ नहीं है। यह मुझे बेवकूफ समझते हैं और बेवकूफ बनाना चाहते हैं। इन मीठी बातों की आड़ में कितनी कटुता छिपी हुई है। चिढ़कर बोली–मैं जाती, तो आपको जरूर बुरा मालूम होता।

राजा–(हंसकर) केवल इसलिए कि मैंने तुम्हें जाने से रोका था? अगर मुझे बुरा मालूम होता, तो मैं खुद क्यों जाता?

इन्दु–मालूम नहीं, आप क्या समझकर गए। शायद मुझे लज्जित करना चाहते होंगे।

राजा–इन्दु, इतना अविश्वास मत करो। सच कहता हूं, मुझे तुम्हारे जाने का जरा भी

मलाल न होता। मैं यह स्वीकार करता हूं कि पहले मुझे तुम्हारी जिद बुरी लगी, किंतु जब मैंने विचार किया, तो मुझे अपना आचरण सर्वथा अन्यायपूर्ण प्रतीत हुआ। मुझे ज्ञात हुआ कि तुम्हारी स्वेच्छा को इतना दबा देना सर्वथा अनुचित है। अपने इसी अन्याय का प्रायश्चित्त करने के लिए मैं स्टेशन गया। तुम्हारी यह बात मेरे मन में बैठ गई कि हुक्काम का विश्वासपात्र बने रहने के लिए अपनी स्वाधीनता का बलिदान क्यों करते हो, नेकनाम रहना अच्छी बात है, किंतु नेकनामी के लिए सच्ची बातों में दबना अपनी आत्मा की हत्या करना है। अब तो तुम्हें मेरी बातों का विश्वास आया?

इन्दु–आपकी दलीलों का जवाब नहीं दे सकता, लेकिन मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि जब मुझसे कोई भूल हो जाए, तो आप मुझे दंड दिया करें, मुझे खूब धिक्कारा करें। अपराध और दंड में कारण और कार्य का संबंध है, और यही मेरी समझ में आता है। अपराधी के सिर पर तेल चुपड़ते मैंने किसी को नहीं देखा। मुझे यह अस्वाभाविक जान पड़ता है। इससे मेरे मन में भांति-भांति की शंकाएं उठने लगती हैं।

राजा–देवी रूठती हैं, तो लोग उन्हें मनाते हैं। इसमें अस्वाभाविकता क्या है?

दोनों में देर तक सवाल-जवाब होता रहा। महेन्द्र बहेलिए की भांति दाना दिखाकर चिड़िया फंसाना चाहते थे और चिड़िया सशंक होकर उड़ जाती थी। कपट से कपट ही पैदा होता है। वह इन्दु को आश्वासित न कर सके। तब वह उसकी व्यथा को शांत करने का भार समय पर छोड़कर एक पत्र पढ़ने लगे और इन्दु दिल पर बोझ रखे हुए अंदर चली गई।

दूसरे दिन राजा साहब ने दैनिक पत्र खोला, तो उसमे सेवकों की यात्रा का वृत्तांत बड़े विस्तार से प्रकाशित हुआ था। इसी प्रसंग में लेखक ने राजा साहब की उपस्थिति पर भी टीका की थी।

'इस अवसर पर म्युनिसिपैलिटी के प्रधान राजा महेन्द्रकुमारसिंह का मौजूद होना बड़े महत्व की बात है। आश्चर्य है कि राजा साहब-जैसे विवेकशील पुरुष ने वहां जाना क्यों आवश्यक समझा? राजा साहब अपने व्यक्तित्व को अपने पद से पृथक् नहीं कर सकते और उनकी उपस्थिति सरकार को उलझन में डालने का कारण हो सकती है। अनुभव ने यह बात सिद्ध कर दी है कि वह सेवा-समितियां चाहे कितनी शुभेच्छाओं से भी गर्भित हों, पर कालांतर में वे विद्रोह और अशांति का केंद्र बन जाती हैं। क्या राजा साहब इसका जिम्मा ले सकते हैं, कि यह समिति आगे चलकर अपनी पूर्ववर्ती संस्थाओं का अनुसरण न करेगी?'

राजा साहब ने पत्र बंद करके रख दिया और विचार में मग्न हो गए। उनके मुंह से बेअख्तियार निकल गया–वही हुआ जिसका मुझे डर था। आज क्लब जाते-ही-जाते मुझ पर चारों ओर से संदेहात्मक दृष्टि पड़ने लगेगी। कल ही कमिश्नर साहब से मिलने जाना है, उन्होंने पूछा तो क्या कहूंगा? इस दुष्ट संपादक ने मुझे बुरा चरका दिया। पुलिस वालों की भांति इस समुदाय में भी मुरौवत नहीं होती, जरा भी रिआयत नहीं करते। मैं इसका मुंह बंद रखने के लिए, इसे प्रसन्न रखने के लिए कितने यत्न किया करता हूं। आवश्यक और अनावश्यक विज्ञापन छपवाकर इसकी मुट्ठियां गरम करता रहता हूं, जब कोई दावत या उत्सव होता है, तो सबसे पहले इसे निमंत्रण भेजता हूं, यहां तक कि गत वर्ष म्युनिसिपैलिटी से इसे पुरस्कार भी दिला दिया था। इन सब खातिरदारियों का यह उपहार है। कुत्ते की दुम को सौ वर्षों तक गाड़ रखो, तो भी टेढ़ी-की-टेढ़ी। अब अपनी मान-रक्षा क्योंकर करूं? इसके पास जाना तो उचित नहीं।

क्या कोई बहाना सोचूं?

राजा साहब बड़ी देर तक इसी पेसोपेश में पड़े रहे। कोई ऐसी बात सोच निकालना चाहते थे, जिससे हुक्काम की निगाहों में आबरू बनी रहे, साथ ही जनता के सामने भी आंखें नीची न करनी पड़ें; पर बुद्धि कुछ काम न करती थी। कई बार इच्छा हुई कि चलकर इन्दु से इस समस्या को हल करने में मदद लूं, पर यह समझकर कि कहीं वह कह दे कि 'हुक्काम नाराज होते हैं, तो होने दो, तुम्हें उनसे क्या सरोकार, अगर वे तुम्हें दबाएं, तो तुरंत त्याग-पत्र भेज दो', तो फिर मेरे लिए निकलने को कोई रास्ता न रहेगा, उससे कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी।

वह सारी रात इसी चिंता में डूबे रहे। इन्दु भी कुछ गुमसुम थी। प्रातःकाल दो-चार मित्र आ गए और उसी लेख की चर्चा की। एक साहब बोले—मैं कमिश्नर से मिलने गया था, तो वह उसी लेख को पढ़ रहा था और रह-रहकर जमीन पर पैर पटकता था।

राजा साहब के होश और भी उड़ गए। झट उन्हें एक उपाय सूझ गया। मोटर तैयार कराई और कमिश्नर के बंगले पर जा पहुंचे। यों तो यह महाशय राजा साहब का कार्ड पाते ही बुला लिया करते थे। आज अरदली से कहा—साहब एक जरूरी काम कर रहे हैं, मेम साहब बैठी हैं, आप एक घंटा ठहरें।

राजा साहब समझ गए कि लक्षण अच्छे नहीं हैं। बैठकर एक अंगरेजी पत्रिका के चित्र देखने लगे—वाह, कितने साफ और सुंदर चित्र हैं! हमारी पत्रिकाओं में कितने भद्दे चित्र होते हैं, व्यर्थ ही कागज लीप-पोतकर खराब किया जाता है। किसी ने बहुत किया, तो बिहारीलाल के भावों को लेकर एक सुंदरी का चित्र बनवा दिया और उसके नीचे उसी भाव का दोहा लिख दिया, किसी ने पद्माकर के कवित्त को चित्रित किया। बस, इसके आगे किसी की अक्ल नहीं दौड़ती।

किसी तरह एक घंटा गुजरा और साहब ने बुलाया। राजा साहब अंदर गए, तो साहब की त्योरियां चढ़ी हुई देखीं। एक घंटे के इंतजार से झुंझला गए थे, खड़े-खड़े बोले—आपको अवकाश हो, तो मैं कुछ कहूं, नहीं तो फिर कभी आऊंगा।

कमिश्नर साहब ने रुखाई से पूछा—मैं पहले आप से यह पूछना चाहता हूं कि इस पत्र ने आपके विषय में जो आलोचना की है, वह आपकी नजर से गुजरी है?

राजा साहब—जी हां, देख चुका हूं।

कमिश्नर—आप इसका कोई जवाब देना चाहते हैं?

राजा साहब—मैं इसकी कोई जरूरत नहीं समझता, अगर इतनी-सी बात पर मुझ पर अविश्वास किया जा सकता है और मेरी बरसों की वफादारी का कुछ विचार नहीं किया जाता, तो मुझे विवश होकर अपना पद-त्याग करना पड़ेगा। अगर आप वहां जाते, तो क्या इस पत्र को इतना साहस होता कि आपके विषय में यही आलोचना करता? हरगिज नहीं। यह मेरे भारतवासी होने का दंड है। जब तक मुझ पर ऐसी द्वेषपूर्ण टीका-टिप्पणी होती रहेगी, मैं नहीं समझ सकता कि अपने कर्त्तव्य का कैसे पालन कर सकूंगा।

कमिश्नर ने कुछ नरम होकर कहा—गवर्नमेंट के हर एक कर्मचारी का धर्म है कि किसी को अपने ऊपर ऐसे इलजाम लगाने का अवसर न दे।

राजा साहब—मैं जानता हूं आप लोगों को यह किसी तरह भूल नहीं सकता कि मैं

भारतवासी हूं, इसी प्रकार मेरे बोर्ड के सहयोगियों के लिए यह भूल जाना असंभव है कि मैं शासन का एक अंग हूं। आप जानते हैं कि मैं बोर्ड में मिस्टर जॉन सेवक को पांडेपुर की जमीन दिलाने का प्रस्ताव करने वाला हूं, लेकिन जब तक मैं अपने आचरण से यह सिद्ध न कर दूंगा कि मैंने स्वत:, बगैर किसी दबाव के, केवल प्रजा के लिए यह प्रस्ताव उपस्थित किया है, उसकी स्वीकृति की कोई आशा नहीं है। यही कारण है, जो मुझे कल स्टेशन पर ले गया था।

कमिश्नर की बांछें खिल गईं। हंस-हंसकर बातें बनाने लगा।

राजा साहब—ऐसी दशा में क्या आप समझते हैं, मेरा जवाब देना जरूरी है?

कमिश्नर—नहीं-नहीं, कभी नहीं।

राजा साहब—मुझे आपसे पूरी सहायता मिलनी चाहिए।

कमिश्नर—मैं यथाशक्ति आपकी सहायता करूंगा।

राजा साहब—बोर्ड ने मंजूर भी कर लिया, तो मुहल्ले वालों की तरफ से फसाद की आशंका है।

कमिश्नर—कुछ परवा नहीं, मैं सुपरिंटेंडेंट-पुलिस को ताकीद कर दूंगा कि वह आपकी मदद करते रहें।

राजा साहब यहां से चले, तो ऐसा मालूम होता था, मानो आकाश पर चल रहे हों। यहां से वह मि० क्लार्क के पास गए और वहां भी इसी नीति से काम लिया। दोपहर को घर आए। उनके हृदय में यह खयाल खटक रहा था कि इस बहाने से मेरा काम तो निकल गया, लेकिन मैं सूरदास के साथ कहीं ऐसी ज्यादती तो नहीं कर रहा हूं कि अंत में मुझे नगरवासियों के सामने लज्जित होना पड़े? इसी विषय में बातचीत करने के लिए वह इन्दु के पास आए और बोले—तुम कोई जरूरी काम तो नहीं कर रही हो? मुझे एक बात में तुमसे कुछ सलाह करनी है?

इन्दु डरी कि कहीं सलाह करते-करते वाद-विवाद न होने लगे। बोली—काम तो कुछ नहीं कर रही हूं, लेकिन मैं आपको कोई सलाह देने के योग्य नहीं हूं। परमात्मा ने मुझे इतनी बुद्धि ही नहीं दी। मुझे तो उन्होंने केवल खाने, सोने और आपको दिक करने के लिए बनाया है।

राजा साहब—तुम्हारे दिक करने ही में तो मजा मिलता है। बतलाओ, सूरदास की जमीन के बारे में तुम्हारी क्या राय है? तुम मेरी जगह होतीं तो क्या करतीं?

इन्दु—आखिर आपने क्या निश्चय किया?

राजा साहब—पहले तुम बताओ, तो फिर मैं बताऊंगा।

इन्दु—मेरी राय में तो सूरदास से उसके बाप-दादों की जाएदाद छीन लेना अन्याय होगा।

राजा साहब—तुम्हें मालूम है कि सूरदास को इस जाएदाद से कोई लाभ नहीं होता, केवल इधर-उधर के ढोर चरा करते हैं?

इन्दु—उसे यह इत्मीनान तो है कि जमीन मेरी है। मुहल्ले वाले उसका एहसान तो मानते ही होंगे? उसकी धर्म-प्रवृत्ति इस पुण्य कार्य से संतुष्ट होती होगी।

राजा साहब—लेकिन मैं नगर के मुख्य व्यवस्थापक की हैसियत से एक व्यक्ति के यथार्थ या कल्पित हित के लिए नगर का हजारों रुपये का नुकसान तो नहीं करा सकता? कारखाना खुलने से हजारों मनुष्य की जीविका चलेगी, नगर की आय में वृद्धि होगी, सबसे बड़ी बात यह कि उस अमित धन का एक भाग देश में रह जाएगा, जो सिगरेट के लिए अन्य देशों को

देना पड़ता है।

इन्दु ने राजा साहब के मुंह की ओर तीव्र दृष्टि से देखा। सोचा–इनका अभिप्राय क्या है? पूंजीपतियों से तो इन्हें विशेष प्रेम नहीं है। यह तो सलाह नहीं, बहस है। क्या अधिकारियों के दबाव से इन्होंने जमीन को मिस्टर सेवक के अधिकार में देने का फैसला कर लिया है और मुझसे अपने निश्चय का अनुमोदन कराना चाहते हैं? इनके भाव से तो कुछ ऐसा ही प्रकट हो रहा है। बोली–इस दृष्टिकोण से तो यही न्यायसंगत है कि सूरदास से वह जमीन छीन ली जाए।

राजा साहब–भाई, इतनी जल्द पहलू बदलने की सनद नहीं। अपनी उसी युक्ति पर स्थिर रहो। मैं केवल सलाह नहीं चाहता, मैं यह देखना चाहता हूं कि तुम इस विषय में क्या-क्या शंकाएं कर सकती हो, और मैं उनका संतोषजनक उत्तर दे सकता हूं या नहीं? मुझे जो कुछ करना था, कर चुका, अब तुमसे तर्क करके अपना इत्मीनान करना चाहता हूं।

इन्दु–अगर मेरे मुंह से कोई अप्रिय शब्द निकल जाए, तो आप नाराज तो न होंगे?

राजा साहब–इसकी परवा न करो, जातीय सेवा का दूसरा नाम बेहयाई है। अगर जरा-जरा-सी बात पर नाराज होने लगें, तो हमें पागलखाने जाना पड़े।

इन्दु–यदि एक व्यक्ति के हित के लिए आप नगर का अहित नहीं करना चाहते, तो क्या सूरदास ही ऐसा व्यक्ति है, जिसके पास दस बीघे जमीन हो? ऐसे लोग भी तो नगर में हैं, जिनके पास इससे कहीं ज्यादा जमीन है। कितने ही ऐसे बंगले हैं, जिनका घेरा दस बीघे से अधिक है। हमारे बंगले का क्षेत्र पंद्रह बीघे से कम न होगा। मि॰ सेवक के बंगले का भी पांच बीघे से कम घेरा नहीं है और दादाजी का भवन तो पूरा एक गांव है। आप इनमें से कोई जमीन इस कारखाने के लिए ले सकते हैं। सूरदास की जमीन में तो मोहल्ले के ढोर चरते हैं। अधिक, नहीं, तो एक मोहल्ले का फायदा तो होता ही है। इन हातों से तो एक व्यक्ति के सिवा और किसी का कुछ फायदा नहीं होता, यहां तक कि कोई उनमें सैर भी नहीं कर सकता, एक फूल या पत्ती भी नहीं तोड़ सकता। अगर कोई जानवर अंदर चला जाए, तो उसे तुरंत गोली मार दी जाए।

राजा साहब–(मुस्कराकर) बड़े मार्के की युक्ति है। कायल हो गया। मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं है। लेकिन शायद तुम्हें मालूम नहीं कि उस अंधे को तुम जितना दीन और असहाय समझती तो, उतना नहीं है। सारा मोहल्ला उसकी हिमायत करने पर तैयार है, यहां तक कि लोग मि॰ सेवक के गुमाश्ते के घर में घुस गए, उनके भाइयों को मारा, आग लगा दी, स्त्रियों तक की बेइज्जती की।

इन्दु–मेरे विचार में तो यह इस बात का एक और प्रमाण है कि उस जमीन को छोड़ दिया जाए। उस पर कब्जा करने से ऐसी घटनाएं कम न होंगी, बढ़ेंगी। मुझे तो भय है, कहीं खून-खराबा न हो जाए।

राजा साहब–जो लोग स्त्रियों की बेइज्जती कर सकते हैं, वे दया के योग्य नहीं।

इन्दु–जिन लोगों की जमीन आप छीन लेंगे, वे आपके पांव न सहलाएंगे।

राजा साहब–आश्चर्य है, तुम स्त्रियों के अपमान को मामूली बात समझ रही हो।

इन्दु–फौज के गोरे, रेल के कर्मचारी नित्य हमारी बहनों का अपमान करते रहते हैं, उनसे तो कोई नहीं बोलता। इसीलिए कि आप उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। अगर लोगों ने उपद्रव

किया है, तो अपराधियों पर मुकदमा दायर कीजिए, उन्हें दंड दिलाइए। उनकी जाएदाद क्यों जब्त करते हैं।

राजा साहब–तुम जानती हो, मि॰ सेवक की यहां के अधिकारियों से कितनी राह-रस्म है। मिस्टर क्लार्क तो उसके द्वार के दरबान बने हुए हैं। अगर मैं उनकी इतनी सेवा न कर सका, तो हुक्काम का विश्वास मुझ पर से उठ जाएगा।

इन्दु ने चिंतित स्वर में कहा–मैं नहीं जानती थी कि प्रधान की दशा इतनी शोचनीय होती है।

राजा साहब–अब तो मालूम हो गया। बतलाओ, अब मुझे क्या करना चाहिए?

इन्दु–पद-त्याग।

राजा साहब–मेरे पद-त्याग से जमीन बच सकेगी?

इन्दु–आप दोष-पाप से तो मुक्त हो जाएंगे।

राजा साहब–ऐसी गौण बातों के लिए पद-त्याग हास्यजनक है।

इन्दु को अपने पति के प्रधान होने का बड़ा गर्व था। इस पद को वह बहुत श्रेष्ठ और आदरणीय समझती थी। उसका खयाल था कि यहां राजा साहब पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं, बोर्ड उनके अधीन है, जो चाहते हैं, करते हैं, पर अब विदित हुआ कि उसे कितना भ्रम था। उसका गर्व चूर-चूर हो गया। उसे आज ज्ञात हुआ कि प्रधान केवल राज्याधिकारियों के हाथों का खिलौना है। उनकी इच्छा से जो चाहे करे, उनकी इच्छा के प्रतिकूल कुछ नहीं कर सकता। वह संख्या का शून्य है, जिसका मूल्य केवल दूसरी संख्याओं के सहयोग पर निर्भर है। राजा साहब की पद-लोलुपता उसे कुठाराघात के समान लगी। बोली–उपहास इतना निंद्य नहीं है, जितना अन्याय। मेरी समझ में नहीं आता कि आपने इस पद की कठिनाइयों को जानते हुए भी क्यों इसे स्वीकार किया। अगर आप न्याय-विचार से सूरदास की जमीन का अपहरण करते, तो मुझे आपसे कोई शिकायत न होती, लेकिन केवल अधिकारियों के भय से या बदनामी से बचने के लिए न्याय-पथ से मुंह फेरना अत्यंत अपमानजनक है। आपको नगरवासियों और विशेषत: दीनजनों के स्वत्व की रक्षा करनी चाहिए। अगर हुक्काम किसी पर अत्याचार करें, तो आपको उचित है कि दुखियों की हिमायत करें, निजी हानि-लाभ की चिंता न करके हुक्काम का विरोध करें, सारे नगर में–सारे देश में–तहलका मचा दें, चाहें इसके लिए पद-त्याग ही नहीं, किसी बड़ी-से-बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़े। मैं राजनीति के सिद्धांतों से परिचित नहीं हूं, पर आपका जो मानवी धर्म है, वह आपसे कह रही हूं। मैं आपको सचेत किए देती हूं कि आपने अगर हुक्काम के दबाव से सूरदास की जमीन ली, तो मैं चुपचाप बैठी न रह सकूंगी। स्त्री हूं तो क्या, पर दिखा दूंगी कि सबल-से-सबल प्राणी भी किसी दीन को आसानी से पैरों-तले नहीं कुचल सकता।

यह कहते-कहते इन्दु रुक गई। उसे ध्यान आ गया कि मैं आवेश में आकर औचित्य की सीमा से बाहर होती जाती हूं। राजा साहब इतने लज्जित हुए कि बोलने को शब्द न मिलते थे। अंत में शरमाते हुए बोले–तुम्हें मालूम नहीं कि राष्ट्र के सेवकों को कैसी-कैसी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। अगर वे अपने कर्त्तव्य का निर्भय होकर पालन करने लगें, तो जितनी सेवा वे अब कर सकते हैं, उतनी भी न कर सकें। मि॰ क्लार्क और मि॰ सेवक में विशेष घनिष्ठता हो जाने के कारण परिस्थिति बिलकुल बदल गई है। मिस सेवक जब से तुम्हारे घर से गई हैं,

मि॰ क्लार्क नित्य ही उन्हीं के पास बैठे रहते हैं, इजलास पर नहीं जाते, कोई सरकारी काम नहीं करते, किसी से मिलते तक नहीं, मिस सेवक ने उन पर मोहिनी-मंत्र-सा डाल दिया है। दोनों साथ-साथ सैर करने जाते हैं, साथ-साथ थिएटर देखने जाते हैं। मेरा अनुमान है कि मिस सेवक ने वचन दे दिया है।

इन्दु–इतनी जल्द ! अभी उसे हमारे यहां से गए एक सप्ताह से ज्यादा न हुआ होगा।

राजा साहब–मिसेज सेवक ने पहले ही से सब कुछ पक्का कर रखा था। मिस सेवक के वहां जाते ही प्रेम-क्रीड़ा शुरू हो गई।

इन्दु ने अब तक सोफिया को एक साधारण ईसाई की लड़की समझ रखा था। यद्यपि वह उससे बहन का-सा बर्ताव करती थी, उसकी योग्यता का आदर करती थी, उससे प्रेम करती थी, किंतु दिल में उसे अपने से नीचा समझती थी। पर मि॰ क्लार्क से उसके विवाह की बात ने उसके हृद्गत भावों को आंदोलित कर दिया। सोचने लगी–मि॰ क्लार्क से विवाह हो जाने के बाद जब सोफिया मिसेज क्लार्क बनकर मुझसे मिलेगी, तो अपने मन में मुझे तुच्छ समझेगी, उसके व्यवहार में, बातों में, शिष्टाचार में बनावटी नम्रता की झलक होगी, वह मेरे सामने जितना ही झुकेगी, उतना ही मेरा सिर नीचा करेगी। यह अपमान मेरे सहे न सहा जाएगा। मैं उससे नीची बनकर नहीं रह सकती। इस अभागे क्लार्क को क्या कोई योरपियन लेडी न मिलती थी कि सोफिया पर गिर पड़ा। कुल का नीचा होगा, कोई अंगरेज उससे अपनी लड़की का विवाह करने पर राजी न होता होगा। विनय इसी छिछोरी स्त्री पर जान देता है। ईश्वर ही जाने, अब उस बेचारे की क्या दशा होगी। कुलटा है, और क्या। जाति और कुल का प्रभाव कहां जाएगा? सुंदरी है, सुशिक्षित है, चतुर है, विचारशील है, सब कुछ सही, पर है तो ईसाइन। बाप ने लोगों को ठग-ठगाकर कुछ धन और सम्मान प्राप्त कर लिया है। इससे क्या होता है। मैं तो अब भी उससे वही पहले का-सा बर्ताव करूंगी। जब तक वह स्वयं आगे न बढ़ेगी, हाथ न बढ़ाऊंगी। लेकिन मैं चाहे जो कुछ करूं, उस पर चाहे कितना ही बड़प्पन जताऊं, उसके मन में यह अभिमान तो अवश्य ही होगा कि मेरी एक कड़ी निगाह इसके पति के सम्मान और अधिकार को खाक में मिला सकती है। संभव है, वह अब और भी विनीत भाव से पेश आय। अपने सामर्थ्य का ज्ञान हमें शीलवान बना देता है। मेरा उससे मान करना, तनना, हंसी मालूम होगी। उसकी नम्रता से तो उसका ओछापन ही अच्छा। ईश्वर करे, वह मुझसे सीधे मुंह बात न करे, तब देखने वाले उसे मन में धिक्कारेंगे, इसी में अब मेरी लाज रह सकती है, पर वह इतनी अविचारशील कहां है।

अंत में इन्दु ने निश्चय किया–मैं सोफिया से मिलूंगी ही नहीं। मैं अपने रानी होने का अभिमान तो उससे कर ही नहीं सकती। हां, एक जाति-सेवक की पत्नी बनकर, अपने कुल-गौरव का गर्व दिखाकर उसकी उपेक्षा कर सकती हूं।

ये सब बातें एक क्षण में इन्दु के मन में आ गईं। बोली–मैं आपको कभी दबने की सलाह न दूंगी।

राजा साहब–और यदि दबना पड़े?

इन्दु–तो अपने को अभागिनी समझूंगी।

राजा साहब–यहां तक तो कोई हानि नहीं, पर कोई आंदोलन तो न उठाओगी? यह इसलिए पूछता हूं कि तुमने अभी मुझे यह धमकी दी है।

इन्दु—मैं चुपचाप न बैठूंगी। आप दबें, मैं क्यों दबूं?

राजा साहब—चाहे मेरी कितनी ही बदनामी हो जाए?

इन्दु—मैं इसे बदनामी नहीं समझती।

राजा साहब—फिर सोच लो। यह मानी हुई बात है कि वह जमीन मि० सेवक को अवश्य मिलेगी, मैं रोकना भी चाहूं, तो नहीं रोक सकता, और यह भी मानी हुई बात है कि इस विषय में तुम्हें मौनव्रत का पालन करना प्रड़ेगा।

राजा साहब अपने सार्वजनिक जीवन में अपनी सहिष्णुता और मृदु व्यवहार के लिए प्रसिद्ध थे, पर निजी व्यवहारों में वह इतने क्षमाशील न थे। इन्दु का चेहरा तमतमा उठा, तेज होकर बोली—अगर आपको अपना सम्मान प्यारा है, तो मुझे भी अपना धर्म प्यारा है।

राजा साहब गुस्से के मारे वहां से उठकर चले गए और इन्दु अकेली रह गई।

सात-आठ दिनों तक दोनों के मुंह में दही जमा रहा। राजा साहब कभी घर में आ जाते, तो दो-चार बातें करके यों भागते, जैसे पानी में भीग रहे हों। न वह बैठते, न इन्दु उन्हें बैठने को कहती। उन्हें यह दु:ख था कि इसे मेरी जरा भी परवा नहीं है। पग-पग पर मेरा रास्ता रोकती है। मैं अपना पद त्याग दूं, तब इसे तस्कीन होगी। इसकी यही इच्छा है कि सदा के लिए दुनिया से मुंह मोड़ लूं, संसार से नाता तोड़ लूं, घर में बैठा-बैठा राम-नाम भजा करूं, हुक्काम से मिलना-जुलना छोड़ दूं, उनकी आंखों में गिर जाऊं, पतित हो जाऊं। मेरे जीवन की सारी अभिलाषाएं और कामनाएं इसके सामने तुच्छ हैं, दिल में मेरी सम्मान-भक्ति पर हंसती है। शायद मुझे नीच, स्वार्थी और आत्मसेवी समझती है। इतने दिनों तक मेरे साथ रहकर भी इसे मुझसे प्रेम नहीं हुआ, मुझसे मन नहीं मिला। पत्नी पति की हितचिंतक होती है, यह नहीं कि उसके कामों का मजाक उड़ाए, उसकी निंदा करे। इसने साफ कह दिया है कि मैं चुपचाप न बैठूंगी। न जाने क्या करने का इरादा है। अगर समाचार-पत्रों में एक छोटा-सा पत्र भी लिख देगी तो मेरा काम तमाम हो जाएगा, कहीं का न रहूंगा, डूब मरने का समय होगा। देखूं, यह नाव कैसे पार लगती है।

इधर इन्दु को दु:ख था कि ईश्वर ने इन्हें सब कुछ दिया है, यह हाकिमों से क्यों इतना दबते हैं, क्यों इतनी ठकुरसुहाती करते हैं, अपने सिद्धांतों पर स्थिर क्यों नहीं रहते, उन्हें क्यों स्वार्थ के नीचे रखते हैं, जाति-सेवा का स्वांग क्यों भरते हैं? वह भी कोई आदमी है, जिसने मानापमान के पीछे धर्म और न्याय का बलिदान कर दिया हो? एक वे योद्धा थे, जो बादशाहों के सामने सिर न झुकाते थे, अपने वचन पर, अपनी मर्यादा पर मर मिटते थे। आखिर लोग इन्हें क्या कहते होंगे। संसार को धोखा देना आसान नहीं। इन्हें चाहें भ्रम हो कि लोग मुझे जाति का सच्चा भक्त समझते हैं, पर यथार्थ में सभी इन्हें पहचानते हैं। सब मन में कहते होंगे, कितना बना हुआ आदमी है।

शनै:-शनै: उसके विचारों में परिवर्तन होने लगा—यह उनका कसूर नहीं है, मेरा कसूर है। मैं क्यों उन्हें अपने आदर्श के अनुसार बनाना चाहती हूं? आजकल प्राय: इसी स्वभाव के पुरुष होते हैं। उन्हें संसार चाहे कुछ कहे, चाहे कुछ समझे, पर उनके घरों में तो कोई मीन-मेख नहीं निकालता। स्त्री का कर्त्तव्य है कि अपने पुरुष की सहगामिनी बने। पर प्रश्न यह है, क्या स्त्री का अपने पुरुष से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है? इसे तो बुद्धि स्वीकार नहीं करती। दोनों अपने कर्मानुसार पाप-पुण्य के अधिकारी होते हैं। वास्तव में

यह हमारे भाग्य का दोष है, अन्यथा हमारे विचारों में क्यों इतना भेद होता? कितना चाहती हूं कि आपस में कोई अंतर न होने पाए, कितना बचाती हूं, पर आए दिन कोई-न-कोई विघ्न उपस्थित हो ही जाता है। अभी एक घाव नहीं भरने पाया था कि दूसरा चरका लगा। क्या मेरा सारा जीवन यों ही बीतेगा? हम जीवन में शांति की इच्छा रखते हैं, प्रेम और मैत्री के लिए जान देते हैं। जिसके सिर पर नित्य नंगी तलवार लटकती हो, उसे शांति कहां? अंधेर तो यह है कि मुझे चुप भी नहीं रहने दिया जाता। कितना कहती थी कि मुझे इस बहस में न घसीटिए, इन कांटों में न दौड़ाइए, पर न माना। अब तो मेरे पैरों में कांटे चुभ गए, दर्द से कराहती हूं, तो कानों पर उंगली रखते हैं। मुझे रोने की स्वाधीनता भी नहीं। 'जबरा मारे और रोने न दे।' आठ दिन गुजर गए, बात भी नहीं पूछी कि मरती हो या जीती। बिलकुल उसी तरह पड़ी हूं, जैसे कोई सराय हो। इससे तो कहीं अच्छा था कि मर जाती। सुख गया, आराम गया, पल्ले क्या पड़ा, रोना और झींकना। जब यही दशा है, तो कब तक निभेगी, बकरे की मां कब तक खैर मनाएगी ! दोनों के दिल एक दूसरे से फिर जाएंगे, कोई किसी की सूरत भी न देखना चाहेगा।

शाम हो गई थी। इन्दु का चित्त बहुत घबरा रहा था। उसने सोचा, जरा अम्मांजी के पास चलूं कि सहसा राजा साहब सामने आकर खड़े हो गए। मुख निष्प्रभ हो रहा था, मानो घर में आग लगी हुई हो। भय-कंपित स्वर में बोले—इन्दु, मिस्टर क्लार्क मिलने आए हैं। अवश्य उसी जमीन के संबंध में कुछ बातचीत करेंगे। अब मुझे क्या सलाह देती हो? मैं एक कागज लाने का बहाना करके चला आया हूं।

यह कहकर उन्होंने बड़े कातर नेत्रों से इन्दु की ओर देखा, मानो सारे संसार की विपत्ति उन्हीं के सिर आ पड़ी हो, मानो कोई देहाती किसान पुलिस के पंजे में फंस गया हो। जरा सांस लेकर फिर बोले—अगर मैंने इनसे विरोध किया, तो मुश्किल में फंस जाऊंगा। तुम्हें मालूम नहीं, इन अंगरेज हुक्काम के कितने अधिकार होते हैं। यों चाहूं, तो इसे नौकर रख लूं, मगर इसकी एक शिकायत में मेरी आबरू खाक में मिल जाएगी। ऊपर वाले हाकिम इसके खिलाफ मेरी एक भी न सुनेंगे। रईसों को इतनी स्वतंत्रता भी नहीं, जो एक साधारण किसान को है। हम सब इनके हाथों के खिलौने हैं, जब चाहें, जमीन पर पटककर चूर-चूर कर दें। मैं इसकी बात दुलख नहीं सकता। मुझ पर दया करो।

इन्दु ने क्षमा-भाव से देखकर कहा—मुझसे आप क्या करने को कहते हैं?

राजा साहब—यही कि या तो मौन रहकर इस अत्याचार का तमाशा देखो, या मुझे अपने हाथों से थोड़ी-सी संखिया दे दो।

राजा साहब की इस कापुरुषता और विवशता, उनके भय-विकृत मुखमंडल, दयनीय दीनता तथा क्षमा-प्रार्थना पर इन्दु करुणार्द्र हो गई—इस करुणा में सहानुभूति न थी, सम्मान न था। यह वह दया थी, जो भिखारी को देखकर किसी उदार प्राणी के हृदय में उत्पन्न होती है। सोचा—हा ! इस भय का भी कोई ठिकाना है। बच्चे हौआ से भी इतना न डरते होंगे। मान लिया, क्लार्क नाराज ही हो गया, तो क्या करेगा? पद से वंचित नहीं कर सकता, यह उसके सामर्थ्य के बाहर है, रियासत जब्त नहीं करा सकता, हाहाकार मच जाएगा। अधिक-से-अधिक इतना कर सकता है कि अफसरों को शिकायत लिख भेजे। पर इस समय इनसे तर्क करना व्यर्थ है। इनके होश-हवास ठिकाने नहीं हैं। बोली—अगर आप समझते हैं कि क्लार्क

की अप्रसन्नता आपके लिए दुस्सह है, तो जिस बात से वह प्रसन्न हो, वही कीजिए। मैं वादा करती हूं कि आपके बीच में मुंह न खोलूंगी। जाइए, साहब को देर हो रही होगी, कहीं इसी बात पर न नाराज हो जाएं !

राजा साहब इस व्यंग्य से दिल में ऐंठकर रह गए। नन्हा-सा मुंह निकल आया। चुपके से उठे और चले गए, वैसे ही, जैसे कोई गरज का बावला असामी महाजन के इनकार से निराश होकर उठे। इन्दु के आश्वासन से उन्हें संतोष न हुआ। सोचने लगे–मैं इसकी नजरों में गिर गया। बदनामी से इतना डरता था, पर घर ही में मुंह दिखाने लायक न रहा।

राजा साहब के जाते ही इन्दु ने एक लंबी सांस ली और फर्श पर लेट गई। उसके मुह से सहसा ये शब्द निकले–इनका हृदय से कैसे सम्मान करूं? इन्हें अपना उपास्य देव कैसे समझूं? नहीं जानती, इस अभक्ति के लिए क्या दंड मिलेगा। मैं अपने पति की पूजा करना चाहती हूं, पर दिल पर मेरा काबू नहीं। भगवन् ! तुम मुझे इस कठिन परीक्षा में क्यों डाल रहे हो?

सोलह

अरावली की पहाड़ियों में एक वट-वृक्ष के नीचे विनयसिंह बैठे हुए हैं। पावस ने उस जन-शून्य, कठोर, निष्प्रभ, पाषाणमय स्थान को प्रेम, प्रमोद और शोभा से मंडित कर दिया है, मानो कोई उजड़ा हुआ घर आबाद हो गया हो। किंतु विनय की दृष्टि इस प्राकृतिक सौंदर्य की ओर नहीं, वह चिंता की उस दशा में हैं, जब आंखें खुली रहती हैं और कुछ नही सूझता, कान खुले रहते हैं और कुछ सुनाई नहीं देता, बाह्य चेतना शून्य हो गई है। उनका मुख निस्तेज हो गया है, शरीर इतना दुर्बल कि पसलियों की एक-एक हड्डी गिनी जा सकती है।

हमारी अभिलाषाएं ही जीवन का स्रोत हैं, उन्हीं पर तुषारपात हो जाए, तो जीवन का प्रवाह क्यों न शिथिल हो जाए।

उनके अंतस्तल में निरंतर भीषण संग्राम होता रहता है। सेवा-मार्ग उनका ध्येय था। प्रेम के कांटे उसमें बाधक हो रहे थे। उन्हें अपने मार्ग से हटाने के लिए वह सदैव यत्न करते रहते हैं। कभी-कभी वह आत्मग्लानि से विकल होकर सोचते हैं, सोफी ने मुझे उस अग्नि-कुंड से निकाला ही क्यों। बाहर की आग केवल देह का नाश करती है, जो स्वयं नश्वर है, भीतर की आग अनंत आत्मा का सर्वनाश कर देती है।

विनय की यहां आए कई महीने हो गए, पर उनके चित्त की अशांति समय के साथ बढ़ती ही जाती है। वह आने को तो यहां लज्जावश आ गए थे, पर एक-एक घड़ी एक-एक युग के समान बीत रही है। पहले उन्होंने यहां के कष्टों को खूब बढ़ा-चढ़ाकर अपनी माता को पत्र लिखे। उन्हें विश्वास था कि अम्मांजी मुझे बुला लेंगी। पर वह मनोरथ पूरा न हुआ। इतने ही में सोफिया का पत्र मिल गया, जिसने उनके धैर्य के टिमटिमाते हुए दीपक को बुझा दिया। अब उनके चारों ओर अंधेरा था। वह इस अंधेरे में चारों ओर टटोलते फिरते थे और कहीं राह न पाते थे। अब उनके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है, कोई निश्चित मार्ग नहीं है, बेमांझी की

नाव है, जिसे एकमात्र तरंगों की दया का ही भरोसा है।

किंतु इस चिंता और ग्लानि की दशा में भी वह यथासाध्य अपने कर्त्तव्य का पालन करते जाते हैं। जसवंतनगर के प्रांत में एक बच्चा भी नहीं है, जो उन्हें न पहचानता हो। देहात के लोग उनके इतने भक्त हो गए हैं कि ज्योंही वह किसी गांव में जा पहुंचते हैं, सारा गांव उनके दर्शनों के लिए एकत्र हो जाता है। उन्होंने उन्हें अपनी मदद आप करना सिखाया है। इस प्रांत के लोग अब वन्य जंतुओं को भगाने के लिए पुलिस के यहां नहीं दौड़े जाते, स्वयं संगठित होकर उन्हें भगाते हैं, जरा-जरा-सी बात पर अदालतों के द्वार नहीं खटखटाने जाते, पंचायतों में समझौता कर लेते हैं, जहां कभी कुंए न थे, वहां अब पक्के कुंए तैयार हो गए हैं, सफाई की ओर भी लोग ध्यान देने लगे हैं, दरवाजों पर कूड़े-करकट के ढेर नहीं जमा किए जाते। सारांश यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अब केवल अपने ही लिए नहीं, दूसरों के लिए भी है, वह अब अपने को प्रतिद्वंद्वियों से घिरा हुआ नहीं, मित्रों और सहयोगियों से घिरा हुआ समझता है। सामूहिक जीवन का फिर पुनरुद्धार होने लगा है।

विनय को चिकित्सा का भी अच्छा ज्ञान है। उनके हाथों सैकड़ों रोगी आरोग्य-लाभ कर चुके हैं। कितने ही घर, जो परस्पर के कलह से बिगड़ गए थे, फिर आबाद हो गए हैं। ऐसी अवस्था में उनका जितना सेवा-सत्कार करने के लिए लोग तत्पर रहते हैं, उसका अनुमान करना कठिन नहीं, पर सेवकों के भाग्य में सुख कहां? विनय को रूखी रोटियों और वृक्ष की छाया के अतिरिक्त और किसी वस्तु से प्रयोजन नहीं। इस त्याग और विरक्ति ने उन्हें उस प्रांत में सर्वमान्य और सर्वप्रिय बना दिया है।

किंतु ज्यों-ज्यों उनमें प्रजा की भक्ति होती जा रही है, प्रजा पर उनका प्रभाव बढ़ता जाता है, राज्य के अधिकारी वर्ग उनसे बदगुमान होते जाते हैं। उनके विचार में प्रजा दिन-दिन सरकश होती जाती है। दारोगाजी की मुट्ठियां अब गर्म नहीं होतीं, कामदार और अन्य कर्मचारियों के यहां मुकदमे नहीं आते, कुछ हत्थे नहीं चढ़ता, यह प्रजा में विद्रोहात्मक भाव के लक्षण नहीं, तो क्या है? यही विद्रोह के अंकुर हैं, इन्हें उखाड़ देने ही में कुशल है।

जसवंतनगर से दरबार को नित्य नई-नई सूचनाएं—कुछ यथार्थ, कुछ कल्पित—भेजी जाती हैं, और विनयसिंह को जाब्ते के शिकंजे में खींचने का आयोजन किया जाता है। दरबार ने इन सूचनाओं से आशंकित होकर कई गुप्तचरों को विनय के आचार-विचार की टोह लगाने के लिए तैनात कर दिया है, पर उनकी निस्पृह सेवा किसी को उन पर आघात करने का अवसर नहीं देती।

विनय के पांव में बेवाय फटी थी, चलने में कष्ट होता था। बरगद के नीचे ठंडी-ठंडी हवा जो लगी, तो बैठे-बैठे सो गए। आंख खुली, तो दोपहर ढल चुकी थी। झपटकर उठ बैठे, लकड़ी संभाली और आगे बढ़े। आज उन्होंने जसवंतनगर में विश्राम करने का विचार किया था। दिन भागा चला जाता था। तीसरे पहर के बाद सूर्य की गति तीव्र हो जाती है। संध्या होती जाती थी और जसवंतनगर का कहीं पता न था। इधर बेवाय के कारण एक-एक कदम उठाना दुस्सह था। हैरान थे कि क्या करूं? किसी किसान का झोपड़ा भी नजर न आता था कि वहीं रात काटें। पहाड़ों में सूर्यास्त ही से हिंसक पशुओं की आवाजें सुनाई देने लगती हैं। इसी हैसबैस में पड़े हुए थे कि सहसा उन्हें दूर से एक आदमी आता दिखाई दिया। उसे देखकर वह इतने प्रसन्न हुए कि अपनी राह छोड़कर कई कदम उसकी तरफ चले। समीप आया, तो मालूम

हुआ कि डाकिया है। वह विनय को पहचानता था। सलाम करके बोला—इस चाल से तो आप आधी रात तक भी जसवंतनगर न पहुंचेंगे।

विनय—पैर में बेवाय फट गई है, चलते नहीं बनता। तुम खूब मिले। मैं बहुत घबरा रहा था कि अकेले कैसे जाऊंगा। अब एक से दो हो गए, कोई चिंता नहीं है। मेरा भी कोई पत्र है?

डाकिए ने विनयसिंह के हाथ में एक पत्र रख दिया। रानीजी का पत्र था। यद्यपि अंधेरा हो रहा था, पर विनय इतने उत्सुक हुए कि तुरत लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ने लगे। एक क्षण में उन्होंने पत्र समाप्त कर दिया और तब एक ठंडी सांस भरकर लिफाफे में रख दिया। उनके सिर में ऐसा चक्कर आया कि गिरने का भय हुआ। जमीन पर बैठ गए। डाकिए ने घबराकर पूछा—क्या कोई बुरा समाचार है? आपका चेहरा पीला पड़ गया है।

विनय—नहीं, कोई ऐसी खबर नहीं। पैरों में दर्द हो रहा है, शायद मैं आगे न जा सकूंगा।

डाकिया—यहां इस बीहड़ में अकेले पड़े रहिएगा?

विनय—डर क्या है।

डाकिया—इधर जानवर बहुत हैं, अभी कल एक गाय उठा ले गए।

विनय—मुझे जानवर भी न पूछेंगे। तुम जाओ, मुझे यहीं छोड़ दो।

डाकिया—यह नहीं हो सकता, मैं भी यहीं पड़ रहूंगा।

विनय—तुम मेरे लिए क्यों अपनी जान सकंट में डालते हो? चले जाओ, घड़ी रात गए तक पहुंच जाओगे।

डाकिया—मैं तो तभी जाऊंगा, अब आप भी चलेंगे। मेरी जान की कौन हस्ती है। अपना पेट पालने के सिवा और क्या करता हूं। आपके दम से तो हजारों का भला होता है। जब आपको अपनी चिंता नहीं है, तो मुझे अपनी क्या चिंता है।

विनय—भाई, मैं तो मजबूर हूं। चला ही नहीं जाता।

डाकिया—मैं आपको कंधे पर बैठाकर ले चलूंगा, पर यहां न छोडूंगा।

विनय—भाई, तुम बहुत दिक कर रहे हो। चलो, लेकिन मैं धीरे-धीरे चलूंगा। तुम न होते, तो आज मैं यहीं पड़ रहता।

डाकिया—आप न होते, तो मेरी जान की कुशल न थी। यह न समझिए कि मैं केवल आपकी खातिर इतनी जिद कर रहा हूं, मैं इतना पुण्यात्मा नहीं हूं। अपनी रक्षा के लिए आपको साथ लिए चलता हूं। (धीरे से) मेरे पास इस वक्त ढाई सौ रुपये हैं। दोपहर को एक जगह सो गया, बस देर हो गई। आप मेरे भाग्य से मिल गए, नहीं तो डाकुओं से जान न बचती।

विनय—यह तो बड़े जोखिम की बात है। तुम्हारे पास कोई हथियार है?

डाकिया—मेरे हथियार आप हैं। आपके साथ मुझे कोई खटका नहीं है। आपको देखकर किसी डाकू की मजाल नहीं कि मुझ पर हाथ उठा सके। आपने डकैतों को भी बस में कर लिया है।

सहसा घोड़ों की टाप की आवाज कान में आई। डाकिये ने घबराकर पीछे देखा। पांच सवार भाले उठाए, घोड़े बढ़ाए चले आते थे। उसके होश उड़ गए, काटो तो बदन में लहू नहीं। बोला—लीजिए, सब आ ही पहुंचे। इन सबों के मारे इधर रास्ता चलना कठिन हो गया है। बड़े हत्यारे हैं। सरकारी नौकरों को तो छोड़ना ही नहीं जानते। अब आप ही बचाएं, तो मेरी जान बच सकती है।

इतने में पांचों सवार सिर पर आ पहुंचे। उनमें से एक ने पुकारा—अबे, ओ डाकिये,

इधर आ, तेरे थैले में क्या है?

विनयसिंह जमीन पर बैठे हुए थे। लकड़ी टेककर उठे कि इतने में एक सवार ने डाकिये पर भाले का वार किया। डाकिया सेना में रह चुका था। वार को थैले पर रोका। भाला थैले के आर-पार हो गया। वह दूसरा वार करनेवाला ही था कि विनय सामने आकर बोले—भाइयो, यह क्या अंधेर करते हो। क्या थोड़े-से रुपयों के लिए एक गरीब की जान ले लोगे?

सवार—जान इतनी प्यारी है, तो रुपये क्यों नहीं देता?

विनय—जान भी प्यारी है और रुपये भी प्यारे हैं। दो में से एक भी नहीं दे सकता।

सवार—तो दोनों ही देने पड़ेंगे।

विनय—तो पहले मेरा काम तमाम कर दो। जब तक मैं हूं, तुम्हारा मनोरथ पूरा न होगा।

सवार—हम साधु-संतों पर हाथ नहीं उठाते। सामने से हट जाओ।

विनय—जब तक मेरी हड्डियां तुम्हारे घोड़ों के पैरों-तले न रौंदी जाएंगी, मैं सामने से न हटूंगा।

सवार—हम कहते हैं, सामने से हट जाओ। क्यों हमारे सिर हत्या का पाप लगाते हो?

विनय—मेरा जो धर्म है, वह मैं करता हूं, तुम्हारा जो धर्म हो, वह तुम करो। गरदन झुकाए हुए हूं।

दूसरा सवार—तुम कौन हो?

तीसरा सवार—बेधा हुआ है, मार दो एक हाथ, गिर पड़े, प्रायश्चित कर लेंगे।

पहला सवार—आखिर तुम हो कौन?

विनय—मैं कोई हूं, तुम्हें इससे मतलब?

दूसरा सवार—तुम तो इधर के रहने वाले नहीं जान पड़ते। क्यों बे डाकिये, यह कौन हैं?

डाकिया—यह तो नहीं जानता, पर इनका नाम है विनयसिंह। धर्मात्मा और परोपकारी आदमी हैं। कई महीनों से इस इलाके में ठहरे हुए हैं।

विनय का नाम सुनते ही पांचों सवार घोड़ों पर से कूद पड़े और विनय के सामने हाथ बांधकर खड़े हो गए। सरदार ने कहा—महाराज, हमारा अपराध क्षमा कीजिए। हमने आपका नाम सुना था। आज आपके दर्शन पाकर हमारा जीवन सफल हो गया। इस इलाके में आपका यश घर-घर गाया जा रहा है। मेरा लड़का घोड़े से गिर पड़ा था। पसली की हड्डी टूट गई थी। जीने की कोई आशा न थी। आप ही के साथ के एक महाराज हैं इन्द्रदत्त। उन्होंने आकर लड़के को देखा, तो तुरंत मरहम-पट्टी की और एक महीने तक रोज आकर उसकी दवा-दारू करते रहे। लड़का चंगा हो गया। मैं तो प्राण भी दे दूं, तो आपसे उऋण नहीं हो सकता। अब हम पापियों का उद्धार कीजिए। हमें आज्ञा दीजिए कि आपके चरणों की रज माथे पर लगाएं। हम तो इस योग्य भी नहीं हैं।

विनय ने मुस्कराकर कहा—अब तो इस डाकिये की जान न लोगे? तुमसे हमें डर लगता है।

सरदार—महाराज, हमें अब लज्जित न कीजिए। हमारा अपराध क्षमा कीजिए। डाकिया महाशय, तुम आज किसी भले आदमी का मुंह देखकर उठे थे, नहीं तो अब तक तुम्हारा प्राण-पखेरू आकाश में उड़ता होता। मेरा नाम सुना है न? वीरपालसिंह मैं ही हूं, जिससे राज्य के नौकरों को नेस्तनाबूद करने का प्रण कर लिया है।

विनय—राज्य के नौकरों पर इतना अत्याचार क्यों करते हो?

वीरपाल—महाराज, आप तो कई महीनों से इस इलाके में हैं, क्या आपको इन लोगों की करतूतें मालूम नहीं हैं? ये लोग प्रजा को दोनों हाथों से लूट रहे हैं। इनमें न दया है, न धर्म। हैं हमारे ही भाई-बंद, पर हमारी ही गरदन पर छुरी चलाते हैं। किसी ने जरा साफ कपड़े पहने, और ये लोग उसके सिर हुए। जिसे घूस न दीजिए, वही आपका दुश्मन है। चोरी कीजिए, डाके डालिए, घरों में आग लगाइए, गरीबों का गला काटिए, कोई आपसे न बोलेगा। बस, कर्मचारियों की मुट्ठियां गर्म करते रहिए। दिन-दहाड़े खून कीजिए, पर पुलिस की पूजा कर दीजिए, आप बेदाग छूट जाएंगे, आपके बदले कोई बेकसूर फांसी पर लटका दिया जाएगा। कोई फरियाद नहीं सुनता। कौन सुने, सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। यही समझ लीजिए कि हिंसक जंतुओं का एक गोल है, सब-के-सब मिलकर शिकार करते हैं और मिल-जुलकर खाते हैं। राजा है, वह काठ का उल्लू। उसे विलायत में जाकर विद्वानों के सामने बड़े-बड़े व्याख्यान देने की धुन है। मैंने यह किया और वह किया, बस डींगें मारना उसका काम है। या तो विलायत की सैर करेगा, या यहां अंगरेजों के साथ शिकार खेलेगा, सारे दिन उन्हीं की जूतियां सीधी करेगा। इसके सिवा उसे कोई काम नहीं। प्रजा जिए या मरे, उसकी बला से। बस, कुशल इसी में है कि कर्मचारी जिस कल बैठाएं उसी कल बैठिए, शिकायत न कीजिए, जबान न हिलाइए, रोइए, तो मुंह बंद करके। हमने लाचार होकर इस हत्या-मार्ग पर पग रखा है। किसी तरह तो इन दुष्टों की आंखें खुलें। इन्हें मालूम हो कि हमें भी दंड देने वाला कोई है। ये पशु से मनुष्य हो जाएं।

विनय—मुझे यहां की स्थिति का कुछ ज्ञान तो था; पर यह न मालूम था कि दशा इतनी शोचनीय है। मैं अब स्वयं राजा साहब से मिलूंगा और यह सारा वृत्तांत उनसे कहूंगा।

वीरपाल—महाराज, कहीं ऐसी भूल भी न कीजिएगा, नहीं तो लेने के देने पड़ जाएंगे। यह अंधेर-नगरी है। राजा में इतना ही विवेक होता, तो राज्य की यह दशा ही क्यों होती? वह उलटे आप ही के सिर हो जाएगा।

विनय—इसकी चिंता नहीं। संतोष तो हो जाएगा कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। मुझे तुमसे भी कुछ कहना है। तुम्हारा यह विचार कि इन हत्याकांडों से अधिकारीवर्ग प्रजापरायण हो जाएगा, मेरी समझ में निर्मूल और भ्रमपूर्ण है। रोग का अंत करने के लिए रोगी का अंत कर देना न बुद्धि-संगत है, न न्याय-संगत। आग आग से शांत नहीं होती, पानी से शांत होती है।

वीरपाल—महाराज, हम आपसे तर्क तो नहीं कर सकते, पर इतना जानते हैं कि विष विष ही से शांत होता है। जब मनुष्य दुष्टता की चरम सीमा पर पहुंच जाता है, जब उसमें दया और धर्म लुप्त हो जाता है, जब उसके मनुष्यत्व का सर्वनाश हो जाता है, जब वह पशुओं के-से आचरण करने लगता है, जब उसमें आत्मा की ज्योति मलिन हो जाती है, तब उसके लिए केवल एक ही उपाय शेष रह जाता है, और वह है प्राणदंड। व्याघ्र-जैसे हिंसक पशु सेवा से वशीभूत हो सकते हैं, पर स्वार्थ को कोई दैविक शक्ति परास्त नहीं कर सकती।

विनय—ऐसी शक्ति है तो। हां, केवल उसका उचित उपयोग करना चाहिए।

विनय ने अभी बात भी न पूरी की थी कि अकस्मात् किसी तरफ से बंदूक की आवाज कानों में आई। सवारों ने चौंककर एक-दूसरे की ओर देखा और एक तरफ घोड़े छोड़ दिए। दम-के-दम में घोड़े पहाड़ों में जाकर गायब हो गए। विनय की समझ में कुछ न आया कि

बंदूक की आवाज कहां से आई और पांचों सवार क्यों भागे। डाकिये से पूछा--ये सब किधर जा रहे हैं?

डाकिया—बंदूक की आवाज ने किसी शिकार की खबर दी होगी, उसी तरफ गए हैं। आज किसी सरकारी नौकर की जान पर जरूर बनेगी।

विनय—अगर यहां के कर्मचारियों का यही हाल है, जैसा इन्होंने बयान किया तो मुझे बहुत जल्द महाराज की सेवा में जाना पड़ेगा।

डाकिया—महाराज, अब आपसे क्या परदा है, सचमुच यही हाल है। हम लोग तो टके के मुलाजिम ठहरे, चार पैसे ऊपर से न कमाएं तो बाल-बच्चों को कैसे पालें, तलब है, वह साल-साल भर तक नहीं मिलती, लेकिन यहां जो जितने ही ऊंचे ओहदे पर है, उसका पेट भी उतना ही बड़ा है।

दस बजते-बजते दोनों आदमी जसवंतनगर पहुंच गए। विनय बस्ती के बाहर ही एक वृक्ष के नीचे बैठ गए और डाकिये से जाने को कहा। डाकिये ने उनसे अपने घर चलने का बहुत आग्रह किया। जब वह किसी तरह न राजी हुए, तो अपने घर से उनके वास्ते भोजन बनवा लाया। भोजन के उपरांत दोनों आदमी उसी जगह लेटे। डाकिया उन्हें अकेला छोड़कर घर न आया। वह तो थका था, लेटते ही सो गया, पर विनय को नींद कहां। रानीजी के पत्र का एक-एक शब्द उनके हृदय में कांटे के समान चुभ रहा था। रानी ने लिखा था--तुमने मेरे साथ और अपने बंधुओं के साथ दगा की है। मैं तुम्हें कभी क्षमा न करूंगी। तुमने मेरी अभिलाषाओं को मिट्टी में मिला दिया। तुम इतनी आसानी से इंद्रियों के दास हो जाओगे, इसकी मुझे लेश-मात्र भी आशंका न थी। तुम्हारा वहां रहना व्यर्थ है, घर लौट आओ और विवाह करके आनंद से भोग-विलास करो। जाति-सेवा के लिए जिस आचरण की आवश्यकता है, जिस मनोबल की आवश्यकता है, वह तुमने नहीं पाया और न पा सकोगे। युवावस्था में हम लोग अपनी योग्यताओं की बहुत कल्पनाएं कर लेते हैं। तुम भी उसी भ्रांति में पड़ गए। मैं तुम्हें बुरा नहीं कहती। तुम शौक से लौट आओ, संसार में सभी अपने-अपने स्वार्थ में रत हैं, तुम भी स्वार्थ-चिंतन में मग्न हो जाओ। हां, अब मुझे तुम्हारे ऊपर वह घमंड न होगा, जिस पर मैं फूली हुई थी। तुम्हारे पिताजी को अभी यह वृत्तांत मालूम नहीं है। वह सुनेंगे, तो न जाने उनकी क्या दशा होगी। किंतु यह बात अगर तुम्हें अभी नहीं मालूम है, तो मैं बताए देती हूं कि अब तुम्हें अपनी प्रेम-क्रीड़ा के लिए कोई दूसरा क्षेत्र ढूंढ़ना पड़ेगा, क्योंकि मिस सोफिया की मंगनी मि॰ क्लार्क से हो गई है और दो-चार दिन में विवाह होने वाला है। यह इसीलिए लिखती हूं कि तुम्हें सोफिया के विषय में कोई भ्रम न रहे और विदित हो जाए कि जिसके लिए तुमने जीवन की और अपने माता-पिता की अभिलाषाओं का खून किया, उसकी दृष्टि में तुम क्या हो।

विनय के मन में ऐसा उद्वेग हुआ कि इस वक्त सोफिया सामने आ जाती, जो उसे धिक्कारता--यही मेरे अनंत हृदयानुराग का उपहार है? तुम्हारे ऊपर मुझे कितना विश्वास था, पर अब ज्ञात हुआ कि वह तुम्हारी प्रेमक्रीड़ा मात्र थी। तुम मेरे लिए आकाश की देवी थीं। मैंने तुम्हें एक स्वर्गीय आलोक, दिव्य ज्योति समझ रखा था। आह ! मैं अपना धर्म तक तुम्हारे चरणों पर निछावर करने को तैयार था। क्या इसीलिए तुमने मुझे ज्वालाओं के मुख से निकाला था? खैर, जो हुआ, अच्छा हुआ। ईश्वर ने मेरे धर्म की रक्षा की, यह व्यथा भी शांत ही हो जाएगी। मैं तुम्हें व्यर्थ ही कोस रहा हूं। तुमने वही किया, जो इस परिस्थिति में अन्य स्त्रियां करतीं। मुझे

दु:ख इसलिए हो रहा है कि मैं तुमसे कुछ और ही आशाएं रखता था। यह मेरी भूल थी। मैं जानता हूं कि मैं तुम्हारे योग्य नहीं था। मुझमें वे गुण कहां हैं, जिनका तुम आदर कर सकतीं, पर यह भी जानता हूं कि मेरी जितनी भक्ति तुममें थी और अब भी है, उतनी शायद ही किसी में हो सकती है। क्लार्क विद्वान्, चतुर, योग्य, गुणों का आगार ही क्यों न हो, लेकिन अगर मैंने तुम्हें पहचानने में धोखा नहीं खाया है, तो तुम उसके साथ प्रसन्न न रह सकोगी।

किंतु इस समय उन्हें इस नैराश्य से कहीं अधिक वेदना इस विचार से हो रही थी कि मैं माताजी की नज़रों में गिर गया—उन्हें कैसे मालूम हुआ? क्या सोफी ने उन्हें मेरा पत्र तो नहीं दिखा दिया? अगर उसने ऐसा किया है, तो वह मुझ पर इससे अधिक कठोर आघात न कर सकती थी। क्या प्रेम निठुर होकर द्वेषात्मक भी हो जाता है? नहीं, सोफी पर यह संदेह करके मैं उस पर अत्याचार न करूंगा। समझ गया, इन्दु की सरलता ने यह आग लगाई है। उसने हंसी-हंसी में अम्मांजी से कह दिया होगा। न जाने उसे कभी बुद्धि होगी या नहीं। उसकी तो दिल्लगी हुई, और यहां मुझ पर जो बीत रही है, मैं ही जानता हूं।

यह सोचते-सोचते विनय के मन में प्रत्याघात का विचार उत्पन्न हुआ। नैराश्य में प्रेम भी द्वेष का रूप धारण कर लेता है। उनकी प्रबल इच्छा हुई कि सोफिया को एक लंबा पत्र लिखूं और उसे जी भरकर धिक्कारूं। वह इस पत्र की कल्पना करने लगे—त्रियाचरित्र की कथाएं पुस्तकों में बहुत पढ़ी थीं, पर कभी उन पर विश्वास न आता था। मुझे यह गुमान ही न होता था कि स्त्री, जिसे परमात्मा ने पवित्र, कोमल तथा देवोपम भावों का आगार बनाया है, इतनी निर्दय और इतनी मलिन-हृदय हो सकती है, पर यह तुम्हारा दोष नहीं, यह तुम्हारे धर्म का दोष है, जहां प्रेम-व्रत का कोई आदर्श नहीं है। अगर तुमने हिन्दू-धर्म-ग्रंथों का अध्ययन किया है, तो तुमको एक नहीं, अनेक ऐसी देवियों के दर्शन हुए होंगे, जिन्होंने एक बार प्रेम-व्रत धारण कर लेने के बाद जीवनपर्यंत पर-पुरुष की कल्पना भी नहीं की। हां, तुम्हें ऐसी देवियां भी मिली होंगी, जिन्होंने प्रेम-व्रत लेकर ही आजीवन अक्षय वैधव्य का पालन किया। मि० क्लार्क की सहयोगिनी बनकर तुम एक ही छलांग में विजित से विजेताओं की श्रेणी में पहुंच जाओगी, और बहुत संभव है, इसी गौरव-कामना ने तुम्हें यह वज्राघात करने पर आरूढ़ किया हो, पर तुम्हारी आंखें जल्द खुलेंगी और तुम्हें ज्ञात होगा कि तुमने अपना सम्मान बढ़ाया नहीं, खो दिया है।

इस भांति विनय ने दुष्कल्पनाओं की धुन में दिल का खूब गुबार निकाला। अगर इन विषाक्त भावों का एक छींटा भी सोफिया पर छिड़क सकता, तो उस विरहिणी की न जाने क्या दशा होती। कदाचित् उसकी जान ही पर बन जाती। पर विनयसिंह को स्वयं अपनी क्षुद्रता पर घृणा हुई—मेरे मन में ऐसे कुविचार क्यों आ रहे हैं। उसका परम कोमल हृदय ऐसे निर्दय आघातों को सहन नहीं कर सकता। उसे मुझसे प्रेम था। मेरा मन कहता है कि अब भी उसे मेरे प्रति सहानुभूति है। मगर मेरे ही समान वह भी धर्म, कर्त्तव्य, समाज और प्रथा की बेड़ियों में बंधी हुई है। हो सकता है कि उसके माता-पिता ने उसे मजबूर किया हो और उसने अपने को उनकी इच्छा पर बलिदान कर दिया हो। यह भी हो सकता है कि माताजी ने उसे मेरे प्रेम-मार्ग से हटाने के लिए यह उपाय निकाला हो। वह जितनी ही सहृदय हैं, उतनी ही क्रोधशील भी। मैं बिना जाने-बूझे सोफिया पर यह मिथ्या दोषारोपण करके अपनी उच्छृंखलता का परिचय दे रहा हूं।

इसी उद्विग्न दशा में करवटें बदलते-बदलते विनय की आंखें झपक गईं। पहाड़ी देशों

में रातें बड़ी सुहावनी होती हैं। एक ही झपकी में तड़का हो गया। मालूम नहीं, कब तक पड़े सोया करते, लेकिन पानी के झीसें मुंह पर पड़े, घबराकर उठ बैठे। बादल घिरे हुए थे और हल्की-हल्की फुहार पड़ रही थी। जसवंतनगर चलने का विचार करके उठे थे कि कई आदमियों को घोड़े भगाए अपनी तरफ आते देखा। समझे, शायद वीरपालसिंह और उनके साथी होंगे, पर समीप आए, तो मालूम हुआ कि रियासत की पुलिस के आदमी हैं। डाकिया उनके पास ही सोया हुआ था, पर उसका पता न था, वह पहले ही उठकर चला गया था।

अफसर ने पूछा—तुम्हारा ही नाम विनयसिंह है?

'जी हां।'

'कल रात को तुम्हारे साथ कई आदमियों ने यहां पड़ाव डाला था?'

'जी नहीं, मेरे साथ केवल यहां के डाकघर का एक डाकिया था।'

'तुम वीरपालसिंह को जानते हो?'

'इतना ही जानता हूं कि वह मुझे रास्ते में मिल गया, वहां से कहां गया, यह मैं नहीं जानता।'

'तुम्हें यह मालूम था कि वह डाकू है?'

'उसने यहां के राजकर्मचारियों के विषय में इसी शब्द का प्रयोग किया था।'

'इसका आशय मैं यह समझता हूं कि तुम्हें यह बात मालूम थी।'

'उसने यहां से तीन मील पर सरकारी खजाने की गाड़ी लूट ली है और एक सिपाही की हत्या कर डाली है। पुलिस को संदेह है कि यह संगीन वारदात तुम्हारे इशारे से हुई है। इसीलिए हम तुम्हें गिरफ्तार करते हैं।'

'यह मेरे ऊपर घोर अन्याय है। मुझे उस डाके और हत्या की ज़रा भी खबर नहीं है।'

'इसका फैसला अदालत से होगा।'

'कम-से-कम मुझे इतना पूछने का अधिकार तो है कि पुलिस को मुझ पर यह संदेह करने का क्या कारण है?'

'उसी डाकिये का बयान है, जो रात को तुम्हारे साथ यहां सोया था।'

विनय ने विस्मित होकर कहा—यह उसी डाकिये का बयान है।

'हां, उसने घड़ी रात रहे इसकी सूचना दी। अब आपको विदित हो गया होगा कि रियासत की पुलिस आप-जैसे महाशयों से कितनी सतर्क रहती है।'

मानव-चरित्र कितना दुर्बोध और जटिल है, इसका विनय को जीवन में पहली ही बार अनुभव हुआ। इतनी श्रद्धा और भक्ति की आड़ में इतनी कुटिलता और पैशाचिकता।

दो सिपाहियों ने विनय के हाथों में हथकड़ी डाल दी, उन्हें घोड़े पर सवार कराया और जसवंतनगर की ओर चले।

सत्रह

विनयसिंह छः महीनों से कारागार में पड़े हुए हैं। न डाकुओं का कुछ पता मिलता है और न उन पर अभियोग चलाया जाता है। अधिकारियों को अब भी भ्रम है कि इन्हीं के इशारे से डाका पड़ा था। इसीलिए वे उन पर नाना प्रकार के अत्याचार किया करते हैं। जब इस नीति से काम नहीं चलता दिखाई देता, तो प्रलोभन से काम लेते हैं और फिर वही पुरानी नीति ग्रहण करने लगते हैं। विनयसिंह पहले अन्य कैदियों के साथ रखे गए थे. लेकिन जब उन्होंने अपराधियों को उनकी ओर बहुत आकृष्ट होते देखा, तो इस भय से कि कहीं जेल में उपद्रव न हो जाए, उन्हें सबसे अलग एक काल-कोठरी में बंद कर दिया। कोठरी बहुत तंग थी, एक भी खिड़की न थी, दोपहर को अंधेरा छाया रहता था, दुर्गंध इतनी कि नाक फटती थी। चौबीस घंटे में केवल एक बार द्वार खुलता, रक्षक भोजन रखकर फिर द्वार बंद कर देता। विनय को कष्ट सहने की बान पड़ गई थी, भूख-प्यास सह सकता था, ओढ़न-बिछावन की उसे जरूरत न थी, इससे उसे कोई विशेष कष्ट न होता था, पर अंधकार और दुर्गंध उसके लिए नई सजा थी। भीतर उसका दम घुटने लगता था। निर्मल, स्वच्छ वायु में सांस लेने के लिए वह तड़प-तड़पकर रह जाता था। ताजी हवा कितनी बहुमूल्य होती है, इसका अब उसे प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा था। किंतु दुर्व्यवहारों को सहते हुए भी वह दुःखी या भग्न-हृदय न होता था। इन कठिन परीक्षाओं ही में उसे जाति का उद्धार दिखाई देता था। वह अपने मन में कहता था—यह कठिन व्रत निष्फल नहीं जा सकता। जब तक हम कठिनाइयां झेलना न सीखेंगे, जब तक हम भोग-विलास का परित्याग न करेंगे, हमसे देश का कुछ उपकार नहीं हो सकता। यही विचार उसे धैर्य देता रहता था।

किंतु जब सोफिया की कलुषता की याद आ जाती, तो उसका सारा धैर्य, उत्साह और आत्मोत्सर्ग नैराश्य में विलीन हो जाता था। वह अपने को कितना ही समझाता कि सोफिया ने जो कुछ किया, विवश होकर किया होगा, पर इस युक्ति से उसे संतोष न होता था—क्या सोफिया स्पष्ट नहीं कह सकती थी कि मैं विवाह नहीं करना चाहती? विवाह के विषय में माता-पिता की इच्छा हमारे यहां निश्चयात्मक है, लेकिन ईसाइयों में स्त्री की इच्छा ही प्रधान समझी जाती है। अगर सोफिया को क्लार्क से प्रेम न था, तो क्या वह उन्हें कोरा जवाब न दे सकती थी? यथार्थ में कोमल जाति का प्रेम-सूत्र भी कोमल होता है, जो जरा-से झटके से टूट सकता है। जब सोफिया-जैसी विचारशीला, आन पर जान देने वाली, सिद्धांत-प्रिय, उन्नत हृदया युवती यों विचलित हो सकती है, तो दूसरी स्त्रियों से क्या आशा की जा सकती है? इस जाति पर विश्वास करना ही व्यर्थ है। सोफी ने मुझे सदा के लिए सचेत कर दिया, ऐसा पाठ हृदयंगम करा दिया, जो कभी न भूलेगी। जब सोफिया दगा कर सकती है, तो ऐसी कौन स्त्री है, जिस पर विश्वास किया जा सके? आह! क्या जानता था कि इतना त्याग, इतनी सरलता, इतनी सदाकांक्षा भी अंत में स्वार्थ के सामने सिर झुका देगी। अब जीवन-पर्यंत स्त्री की ओर आंख उठाकर भी न देखूंगा। उससे यों दूर रहूंगा, जैसे काली नागिन से, उससे यों बचकर चलूंगा, जैसे कांटे से। किसी से घृणा करना सज्जनता और औचित्य के विरुद्ध है, मगर अब इस जाति से घृणा करूंगा।

इस नैराश्य, शोक और चिंता में पड़े-पड़े कभी-कभी वह इतना व्यग्र हो जाता कि जी

में आता—चलकर उस वज्र-हृदया के सामने दीवार से सिर टकराकर प्राण दे दूं, जिसमें उसे भी ग्लानि हो। मैं यहां अग्निकुंड में जल रहा हूं, हृदय में फफोले पड़े हुए हैं, वहां किसी को खबर भी नहीं, आमोद-प्रमोद का आंनद उठाया जा रहा है। उसकी आंखों के सम्मुख एड़ियां रगड़-रगड़कर प्राण देता, तो उसे भी अपनी कुटिलता और निर्दयता पर लज्जा आती। भगवन्, मुझे इन दुश्चिंताओं के लिए क्षमा करना। मैं दुःखी हूं, वह भी मेरे सदृश नैराश्य की आग में जलती! क्लार्क उसके साथ उसी भांति दगा करता, जैसे उसने मेरे साथ की है। अगर मेरी अहित-कामना में सत्य का कुछ अंश है अगर प्रेम-मार्ग से विमुख होने का कुछ भी दंड है, तो एक दिन अवश्य उसे भी शोक और व्यथा के आंसू बहाते देखूंगा। यह असंभव है कि खूने-नाहक रंग न लाए।

लेकिन यह नैराश्य सर्वथा व्यथाकारक ही न था, उसमें आत्मपरिष्कार के अंकुर भी छिपे हुए थे। विनय के हृदय में फिर वह सद्भाव जागृत हो गया, जिसे प्रेम की कल्पनाओं ने निर्जीव बना डाला था। नैराश्य ने स्वार्थ का संहार कर दिया।

एक दिन विनयसिंह रात के समय लेटे सोच रहे थे कि न जाने मेरे साथियों पर क्या गुजरी, मेरी ही तरह वे भी तो विपत्ति में नहीं फंस गए, किसी की कुछ खबर ही नहीं कि सहसा उन्हें अपने सिरहाने की ओर एक धमाके की आवाज सुनाई दी। वह चौंक पड़े, और कान लगाकर सुनने लगे। मालूम हुआ कि कुछ लोग दीवार खोद रहे हैं। दीवार पत्थर की थी, मगर बहुत पुरानी थी। पत्थरों के जोड़ों में लोनी लग गई थी। पत्थर की सिलें आसानी से अपनी जगह छोड़ती जाती थीं। विनय को आश्चर्य हुआ—ये कौन लोग हैं? अगर चोर हैं, तो जेल की दीवार तोड़ने से इन्हें क्या मिलेगा? शायद समझते हैं, जेल के दारोगा का यही मकान है। वह इसी हैस-बैस में थे कि अंदर प्रकाश की एक झलक आई। मालूम हो गया कि चोरों ने अपना काम पूरा कर लिया। सेंध के सामने जाकर बोले—तुम कौन हो? यह दीवार क्यों खोद रहे हो?

बाहर से आवाज आई—हम आपके पुराने सेवक हैं। हमारा नाम वीरपालसिंह है।

विनय ने तिरस्कार के भाव से कहा—क्या तुम्हारे लिए किसी खजाने की दीवारें नहीं हैं, जो जेल की दीवार खोद रहे हो? यहां से चले जाओ, नहीं तो मैं शोर मचा दूंगा।

वीरपाल—महाराज, हमसे उस दिन बड़ा अपराध हुआ, क्षमा कीजिए। हमें न मालूम था कि केवल एक क्षण हमारे साथ रहने के कारण आपको यह कष्ट भोगना पड़ेगा, नहीं तो हम सरकारी खजाना न लूटते। हमको रात-दिन यही चिंता लगी हुई थी कि किसी भांति आपके दर्शन करें और आपको इस संकट से निकालें। आइए, आपके लिए घोड़ा हाजिर है।

विनय—मैं अधर्मियों के हाथों अपनी रक्षा नहीं कराना चाहता। अगर तुम समझते हो कि मैं इतना बड़ा अपराध सिर पर रखे हुए जेल से भागकर अपनी जान बचाऊंगा, तो तुम धोखे में हो। मुझे अपनी जान इतनी प्यारी नहीं है।

वीरपाल—अपराधी तो हम हैं, आप तो सर्वथा निरपराध हैं, आपके ऊपर तो अधिकारियों ने यह घोर अन्याय किया है। ऐसी दशा में आपको यहां से निकल जाने में कुछ पसोपेश न करना चाहिए।

विनय—जब तक न्यायालय मुझे मुक्त न करे, मैं यहां से किसी तरह नहीं जा सकता।

वीरपाल—यहां के न्यायालयों से न्याय की आशा रखना चिड़िया से दूध निकालना है। हम सब-के-सब इन्हीं अदालतों के मारे हुए हैं। मैंने कोई अपराध नहीं किया था, मैं अपने

गांव का मुखिया था, किंतु मेरी सारी जाएदाद केवल इसीलिए जब्त कर ली गई कि मैंने एक असहाय युवती को इलाकेदार के हाथों से बचाया था। उसके घर में वृद्धा माता के सिवा और कोई न था। हाल में विधवा हो गई थी। इलाकेदार की कुदृष्टि उस पर पड़ गई और वह युवती को उसके घर से निकाल ले जाने का प्रयास करने लगा। मुझे टोह मिल गई। रात को ज्योंही इलाकेदार के आदमियों ने वृद्धा के घर में घुसना चाहा, मैं अपने कई मित्रों को साथ लेकर वहां जा पहुंचा और उन दुष्टों को मारकर घर से निकाल दिया। बस, इलाकेदार उसी दिन से मेरा जानी दुश्मन हो गया। मुझ पर चोरी का अभियोग लगाकर कैद करा दिया। अदालत अंधी थी, जैसा इलाकेदार ने कहा, वैसा न्यायाधीश ने किया। ऐसी अदालतों से आप व्यर्थ न्याय की आशा रखते हैं।

विनय—तुम लोग उस दिन मुझसे बातें करते-करते बंदूक की आवाज सुनकर ऐसे भागे कि मुझे तुम पर अब विश्वास ही नहीं आता।

वीरपाल—महाराज, कुछ न पूछिये, बंदूक की आवाज सुनते ही हमें उन्माद-सा हो गया। हमें जब रियासत से कोई बदला लेने का अवसर मिलता है, तो हम अपने को भूल जाते हैं। हमारे ऊपर कोई भूत सवार हो जाता है। रियासत ने हमारा सर्वनाश कर दिया है। हमारे पुरखों ने अपने रक्त से इस राज्य की बुनियाद डाली थी, आज यह राज्य हमारे रक्त का प्यासा हो रहा है। हम आपके पास से भागे, तो थोड़ी ही दूर पर अपने गोल के कई आदमियों को रियासत के सिपाहियों से लड़ते पाया। हम पहुंचते ही सरकारी आदमियों पर टूट पड़े, उनकी बंदूकें छीन लीं, एक आदमी मार गिराया और रुपयों की थैलियां घोड़ों पर लादकर भाग निकले। जब से सुना है कि आप हमारी सहायता करने के संदेह में गिरफ्तार किए गए हैं, तब से इसी दौड़-धूप में हैं कि आपको यहां से निकल ले जाएं। यह जगह आप जैसे-धर्मपरायण, निर्भीक और स्वाधीन पुरुष के लिए उपयुक्त नहीं है। यहां उसी का निबाह है, जो पल्ले दरजे का घाघ, कपटी, पाखंडी और दुरात्मा हो, अपना काम निकालने के लिए बुरे-से-बुरा काम करने से भी न हिचके।

विनयसिंह ने बड़े गर्व से उत्तर दिया—अगर तुम्हारी बातें अक्षरशः सत्य हों, तो भी मैं कोई ऐसे काम न करूंगा, जिससे रियासत की बदनामी हो। मुझे अपने भाइयों के साथ में विष का प्याला पीना मंजूर है, पर रोकर उनको संकट में डालना मंजूर नहीं। इस राज्य को हम लोगों ने सदैव गौरव की दृष्टि से देखा है, महाराजा साहब को आज भी हम उसी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। वह उन्हीं सांगा और प्रताप के वंशज हैं जिन्होंने हिन्दू-जाति की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। हम महाराजा को अपना रक्षक, अपना हितैषी, क्षत्रिय-कुल-तिलक समझते हैं। उनके कर्मचारी सब हमारे भाई-बंद हैं। फिर यहां की अदालत पर क्यों न विश्वास करें? वे हमारे साथ अन्याय भी करें, तो भी हम जबान न खोलेंगे। राज्य पर दोषारोपण करके हम अपने को उस महान् वस्तु के अयोग्य सिद्ध करते हैं, जो हमारे जीवन का लक्ष्य और इष्ट है।

'धोखा खाइएगा।'

'इसकी कोई चिंता नहीं।'

'मेरे सिर से कलंक कैसे उतरेगा?'

'अपने सत्कार्यों से।'

वीरपाल समझ गया कि यह अपने सिद्धांत से विचलित न होंगे। पांचों आदमी घोड़ों

वार हो गए और एक क्षण में हेमंत के घने कुहरे ने उन्हें अपने परदे में छिपा लिया। घोड़ों की टाप की ध्वनि कुछ देर तक कानों में आती रही, फिर वह भी गायब हो गई।

अब विनय सोचने लगे—प्रातःकाल जब लोग सेंध देखेंगे, तो दिल में क्या खयाल करेंगे? उन्हें निश्चय हो जाएगा कि मैं डाकुओं से मिला हुआ हूं और गुप्त रीति से भागने की चेष्टा कर रहा हूं। लेकिन नहीं, जब देखेंगे कि मैं भागने का अवसर पाकर भी न भागा, तो उनका दिल मेरी तरफ से साफ हो जाएगा। यह सोचते हुए उन्होंने पत्थर के टुकड़े चुन-चुनकर सेंध को बंद करना शुरू किया। उनके पास केवल एक हल्का-सा कंबल था, और हेमंत की तुषार-सिक्त वायु इस सूराख की राह से सन-सन आ रही थी। खुले मैदान में शायद उन्हें कभी इतनी ठंडी न लगी थी। हवा सुई की भांति रोम-रोम में चुभ रही थी। सेंध बंद करने के बाद वह लेट गए।

प्रातःकाल जेलखाने में हलचल मच गई। नाजिम, इलाकेदार, सभी घटना-स्थल पर पहुंच गए। तहकीकात होने लगी। विनयसिंह ने संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया। अधिकारियों को बड़ी चिंता हुई कि कहीं वही डाकू इन्हें निकाल न ले जाएं। उनके हाथों मे हथकड़ियां और पैरों में बेड़ियां डाल दी गईं। निश्चय हो गया कि इन पर आज ही अभियोग चलाया जाए। सशस्त्र पुलिस उन्हें अदालत की ओर ले चली। हजारों आदमियों की भीड़ साथ हो गई। सब लोग यही कह रहे थे—हुक्काम ऐसे सज्जन, सहृदय और परोपकारी पुरुष पर अभियोग चलाते हैं, बुरा करते हैं। बेचारे ने न जाने किस बुरी साइत में यहां कदम रखे थे। हम तो अभागे हैं ही, अपने पिछले कर्मों का फल भोग रहे हैं, हमें अपने हाल पर छोड़ देते, व्यर्थ इस आग में कूदे। कितने ही लोग रो रहे थे। सबको निश्चय था कि न्यायाधीश इन्हें कड़ी सजा देगा। प्रतिक्षण दर्शकों की संख्या बढ़ती जाती थी और पुलिस को भय हो रहा था कि कहीं ये लोग बिगड़ न जाएं। सहसा एक मोटर आई और शोफर ने उतरकर पुलिस अफसर को एक पत्र दिया। सब लोग ध्यान से देख रहे थे कि देखें, अब क्या होता है। इतने में विनयसिंह मोटर पर सवार कराए गए और मोटर हवा हो गई। सब लोग चकित रह गए।

जब मोटर कुछ दूर चली गई, तो विनय ने शोफर से पूछा—मुझे कहां लिए जाते हो? शोफर ने कहा—आपको दीवान साहब ने बुलाया है।

विनय ने और कुछ न पूछा। उन्हें उस समय भय के बदले हर्ष हुआ कि दीवान से मिलने का यह अच्छा अवसर मिला। अब उनसे यहां की स्थिति पर बातें होंगी। सुना है, विद्वान् आदमी हैं। देखूं, इस नीति का क्योंकर समर्थन करते हैं।

एकाएक शोफर बोला—यह दीवान एक ही पाजी है। दया करना तो जानता ही नहीं। एक दिन बचा को इसी मोटर से ऐसा गिराऊंगा कि हड्डी-पसली का पता न लगेगा।

विनय—जरूर गिराओ, ऐसे अत्याचारियों की यही सजा है।

शोफर ने कौतूहलपूर्ण नेत्रों से विनय को देखा। उसे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। विनय के मुंह से ऐसी बात सुनने की उसे आशा न थी। उसने सुना था कि वह देवोपम गुणों के आगार हैं, उनका हृदय पवित्र है। बोला—आपकी भी यही इच्छा है?

विनय—क्या किया जाए, ऐसे आदमियों पर और किसी बात का तो असर ही नहीं होता।

शोफर—अब तक मुझे यही शंका होती थी कि लोग मुझे हत्यारा कहेंगे, लेकिन जब आप-जैसे देव-पुरुष की यह इच्छा है, तो मुझे क्या डर? बचा बहुत रात को घूमने निकला

करते हैं। एक ठोकर में तो काम तमाम हो जाएगा।

विनय यह सुनकर ऐसा चौंके, मानो कोई भयंकर स्वप्न देखा हो। उन्हें ज्ञात हुआ कि मैंने एक द्वेषात्मक भाव का समर्थन करके कितना बड़ा अनर्थ किया। अब उनकी समझ में आया कि विशिष्ट पुरुषों को कितनी सावधानी से मुंह खोलना चाहिए, क्योंकि उनका एक-एक शब्द प्रेरणा-शक्ति से परिपूर्ण रहता है। वह मन में पछता रहे थे कि मेरे मुंह से ऐसी बात निकली ही क्यों, और किसी भांति कमान से निकले हुए तीर को फेर लाने का उपाय सोच रहे थे कि इतने में दीवान साहब का भवन आ गया। विशाल फाटक पर दो सशस्त्र सिपाही खड़े थे और फाटक से थोड़ी दूर पर पीतल की दो तोंपे रखी हुई थीं। फाटक पर मोटर रुक गई और दोनों सिपाही विनयसिंह को अंदर ले चले। दीवान साहब दीवानेखाने में विराजमान थे। खबर पाते ही विनय को बुला लिया।

दीवान साहब का डील ऊंचा, शरीर सुगठित और वर्ण गौर था। अधेड़ हो जाने पर भी उनकी मुख-श्री किसी खिले हुए फूल के समान थी। तनी हुई मूंछें थीं, सिर पर रंग-बिरंगी उदयपुरी पगिया, देह पर एक चुस्त शिकारी कोट, नीचे उदयपुरी पाजामा, ऊपर एक भारी ओवरकोट। छाती पर कई तमगे और सम्मान-सूचक चिह्न शोभा दे रहे थे। उदयपुरी रिसाले के साथ योरपीय महासमर में सम्मिलित हुए थे और वहां कई कठिन अवसरों पर अपने असाधारण पुरुषार्थ से सेना-नायकों को चकित कर दिया था। यह उसी सुकीर्ति का फल था कि वह इस पद पर नियुक्त हुए थे। सरदार नीलकण्ठसिंह नाम था। ऐसा तेजस्वी पुरुष विनयसिंह की निगाहों से कभी न गुजरा था।

दीवान साहब ने विनय को देखते ही मुस्कराकर उन्हें एक कुर्सी पर बैठने का संकेत किया और बोले—ये आभूषण तो आपकी देह पर बहुत शोभा नहीं देते, किंतु जनता कि दृष्टि में इनका जितना आदर है, उतना मेरे इन तमगों और पट्टियों का कदापि नहीं है। यह देखकर मुझे आपसे डाह हो, तो कुछ अनुचित है?

विनय ने समझा था, दीवान साहब जाते-ही-जाते गरज पड़ेंगे, लाल-पीली आंखें दिखाएंगे। वह उस बर्ताव के लिए तैयार थे। अब जो दीवान साहब की ये सहृदयतापूर्ण बातें सुनीं, तो संकोच में पड़ गए। उस कठोर उत्तर के लिए यहां कोई स्थान न था, जिसे उन्होंने मन में सोच रखा था। बोले—यह तो कोई ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं है, जिसके लिए आपको डाह करना पड़े।

दीवान साहब—(हंसकर) आपके लिए दुर्लभ नहीं है, पर मेरे लिए तो दुर्लभ है। मुझमें वह सत्साहस, सदुत्साह नहीं है, जिसके उपहार-स्वरूप ये सब चीजें मिलती हैं। मुझे आज मालूम हुआ कि आप कुंवर भरतसिंह के सुपुत्र हैं। उनसे मेरा पुराना परिचय है। अब वह शायद मुझे भूल गए हों। कुछ तो इस नाते कि आप मेरे एक पुराने मित्र के बेटे हैं और कुछ इस नाते से कि आपने युवावस्था में विषय-वासनाओं को त्यागकर लोक-सेवा का व्रत धारण किया है, मेरे दिल में आपके प्रति विशेष प्रेम और सम्मान है। व्यक्तिगत रूप से मैं आपकी सेवाओं को स्वीकार करता हूं और इस थोड़े-से समय में आपने रियासत का जो कल्याण किया है, उसके लिए आपका कृतज्ञ हूं। मुझे खूब मालूम है कि आप निरपराध हैं और डाकुओं से आपका कोई संबंध नहीं हो सकता। इसका मुझे गुमान तक नहीं है। महाराजा साहब से भी आपके संबंध में अभी घंटे-भर बातें हुईं। वह भी मुक्त कंठ से आपकी प्रशंसा करते हैं। लेकिन

परिस्थितियां हमें आपसे यह याचना करने के लिए मजबूर कर रही हैं कि बहुत अच्छा हो, अगर आप...अगर आप प्रजा से अपने को अलग रखें। मुझे आपसे यह कहते हुए बहुत खेद हो रहा है कि अब यह रियासत आपका सत्कार करने का आंनद नहीं उठा सकती।

विनय ने अपने उठते हुए क्रोध को दबाकर कहा–आपने मेरे विषय में जो सद्‌भाव प्रकट किए हैं, उनके लिए आपका कृतज्ञ हूं। पर खेद है कि मैं आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। समाज की सेवा करना ही मेरे जीवन का मुख्य उद्देश्य है और समाज से पृथक् होकर मैं अपना व्रत भंग करने में असमर्थ हूं।

दीवान साहब–अगर आपके जीवन का मुख्य उद्देश्य यही है, तो आपको किसी रियासत में आना उचित न था। रियासतों को आप सरकार की हरमसरा समझिए, जहां सूर्य के प्रकाश का भी गुजर नहीं हो सकता। हम सब इस हरमसरा के हब्शी ख्वाजासरा हैं। हम किसी की प्रेम-रस-पूर्ण दृष्टि को इधर उठने न देंगे, कोई मनचला जवान इधर कदम रखने का साहस नहीं कर सकता। अगर ऐसा हो, तो हम अपने पद के अयोग्य समझे जाएं। हमारा रसीला बादशाह, इच्छानुसार मनोविनोद के लिए, कभी-कभी यहां पदार्पण करता है। हरमसरा के सोये हुए भाग्य उस दिन जग जाते हैं। आप जानते ही हैं, बेगमों की सारी मनोकमानाएं उनकी छवि-माधुरी, हाव-भाव और बनाव-सिंगार पर निर्भर होती हैं, नहीं तो रसीला बादशाह उनकी ओर आंख उठाकर भी न देखे। हमारे रसीले बादशाह पूर्वीय राग-रस के प्रेमी हैं, उनका हुक्म है कि बेगमों का वस्त्राभूषण पूर्वीय हो, शृंगार पूर्वीय हो, रीति-नीति पूर्वीय हो, उनकी आंखें लज्जपूर्ण हों, पश्चिम की चंचलता उनमें न आने पाए, उनकी गति मरालों की गति की भांति मंद हो, पश्चिम की ललनाओं की भांति उछलती-कूदती न चलें, वे ही परिचारिकाएं हों, वे ही हरम की दारोगा, वह हब्शी गुलाम, वही ऊंची चहारदीवारी, जिसके अंदर चिड़िया भी न पर मार सके। आपने इस हरमसरा में घुस आने का दुस्साहस किया है, यह हमारे रसीले बादशाह को एक आंख नहीं भाता, और आप अकेले नहीं हैं, आपके साथ समाज-सेवकों का एक जत्था है। इस जत्थे के संबंध में भांति-भांति की शंकाएं हो रही हैं। नादिरशाही हुक्म है कि जितनी जल्द हो सके, यह जत्था हरमसरा से दूर हटा दिया जाए। यह देखिए, पोलिटिकल रेजिडेंट ने आपके सहयोगियों के कृत्यों की गाथा लिख भेजी है। कोई कोटे में कृषकों की सभाएं बनाता फिरता है, कोई बीकानेर में बेगार की जड़ खोदने पर तत्पर हो रहा है, कोई मारवाड़ में रियासत के उन करों का विरोध कर रहा है, जो परंपरा से वसूल होते चले आए हैं। आप लोग साम्यवाद का डंका बजाते फिरते हैं। आपका कथन है, प्राणि-मात्र को खाने-पहनने और शांति से जीवन व्यतीत करने का समान स्वत्व है। इस हरमसरा में इन सिद्धांतों और विचारों का प्रचार करके आप हमारी सरकार को बदगुमान कर देंगे, और उसकी आंखें फिर गईं, तो संसार में हमारा कहीं ठिकाना नहीं है। हम आपको अपने प्रेम-कुंज में आग न लगाने देंगे।

हम अपनी दुर्बलताओं को व्यंग्य की ओट में छिपाते हैं। दीवान साहब ने व्यंग्योक्ति का प्रयोग करके विनय की सहानुभूति प्राप्त करनी चाही थी, पर विनय मनोविज्ञान से इतने अनभिज्ञ न थे, उनकी चाल भांप गए और बोले–हमारा अनुमान था कि हम अपनी नि:स्वार्थ सेवा से आपको अपना हमदर्द बना लेंगे।

दीवान साहब–इसमें आपको पूरी सफलता हुई है। हमको आपसे हार्दिक सहानुभूति है, लेकिन आप जानते ही हैं कि रेजिडेंट साहब की इच्छा के विरुद्ध हम तिनका तक नहीं हिला

सकते। आप हमारे ऊपर दया कीजिए, हमें इसी दशा में छोड़ दीजिए, हम जैसे पतितों का उद्धार करने में आपको यश के बदले अपयश ही मिलेगा।

विनय—आप रेजिडेंट के अनुचित हस्तक्षेप का विरोध क्यों नहीं करते?

दीवान साहब—इसलिए कि हम आपकी भांति निस्पृह और निस्वार्थ नहीं हैं। सरकार की रक्षा में हम मनमाने कर वसूल करते हैं, मनमाने कानून बनाते हैं, मनमाने दंड लेते हैं, कोई चूं नहीं कर सकता। यही हमारी कारगुजारी समझी जाती है, इसी के उपलक्ष्य में हमको बड़ी-बड़ी उपाधियां मिलती हैं, पद की उन्नति होती है। ऐसी दशा में हम उनका विरोध क्यों करें?

दीवान साहब की इस निर्लज्जता पर झुंझलाकर विनयसिंह ने कहा—इससे तो यह कहीं अच्छा था कि रियासतों का निशान ही न रहता।

दीवान साहब—इसीलिए तो हम आपसे विनय कर रहे हैं कि अब किसी और प्रांत की ओर अपनी दया दृष्टि कीजिए।

विनय—अगर मैं जाने से इंकार करूं?

दीवान साहब—तो मुझे बड़े दु:ख के साथ आपको उसी न्यायालय के सिपुर्द करना पड़ेगा, जहां न्याय का खून होता है।

विनय—निरपराध?

दीवान साहब—आप पर डाकुओं की सहायता का अपराध लगा हुआ है।

विनय—अभी आपने कहा है कि आपको मेरे विषय में ऐसी शंका नहीं है।

दीवान साहब—वह मेरी निजी राय थी, यह मेरी राजकीय सम्मति है।

विनय—आपको अख्तियार है।

विनयसिंह फिर मोटर पर बैठे, तो सोचने लगे—जहां ऐसे-ऐसे निर्लज्ज, अपनी अपकीर्ति पर बगलें बजाने वाले कर्णधार हैं, उस नौका को ईश्वर ही पार लगाए, तो लगे। चलो, अच्छा ही हुआ। जेल में रहने से माताजी को तो तस्कीन होगी। यहां से जान बचाकर भागता, तो वह मुझसे बिलकुल निराश हो जातीं। अब उन्हें मालूम हो जाएगा कि उनका पत्र निष्फल नहीं हुआ। चलूं, अब न्यायालय का स्वांग भी देख लूं।

अठारह

सोफिया घर आई, तो उसके आत्मगौरव का पतन हो चुका था, अपनी ही निगाहों में गिर गई थी। उसे अब न रानी पर क्रोध था, न अपने माता-पिता पर, केवल अपनी आत्मा पर क्रोध था, जिसके हाथों उसकी इतनी दुर्गति हुई थी, जिसने उसे कांटों में उलझा दिया था। उसने निश्चय किया, मन को पैरों से कुचल डालूंगी, उसका निशान मिटा दूंगी। दुविधा में पड़कर वह अपने मन को अपने ऊपर शासन करने का अवसर न देना चाहती थी, उसने सदा के लिए मुंह बंद कर देने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। वह जानती थी, मन का मुंह बंद करना नितांत कठिन है, लेकिन वह चाहती थी, अब अगर मन कर्त्तव्य मार्ग से विचलित हो, तो उसे अपने अनौचित्य पर लज्जा आए, जैसे कोई तिलकधारी वैष्णव शराब की भट्ठी में जाते हुए झिझकता

है और शर्म से गर्दन नहीं उठा सकता, उसी तरह उसका मन भी संस्कार के बंधनों में पड़कर कुत्सित वासनाओं से झिझके। इस आत्मदान के लिए वह कलुषता और कुटिलता का अपराध सिर पर लेने को तैयार थी, यावज्जीवन नैराश्य और वियोग की आग में जलने के लिए तैयार थी। वह आत्मा से उस अपमान का बदला लेना चाहती थी, जो उसे रानी के हाथों सहना पड़ा था। उसका मन शराब पर टूटता था, वह उसे विष पिलाकर उसकी प्यास बुझाना चाहती थी। उसने निश्चय कर लिया था, अपने को मि० क्लार्क के हाथों में सौंप दूंगी। आत्मदमन का इसके सिवा और कोई साधन न था।

किंतु उसका आत्मसम्मान कितना ही दलित हो गया हो, बाह्य सम्मान अपने पूर्ण ओज पर था। अपने घर में उसका इतना आदर-सत्कार कभी न हुआ था। मिसेज सेवक की आंखों में वह कभी इतनी प्यारी न थी। उनके मुख से उसने कभी इतनी मीठी बातें न सुनी थीं। यहां तक कि वह अब उसकी धार्मिक विवेचनाओं से भी सहानुभूति प्रकट करती थीं। ईश्वरोपासना के विषय में भी अब उस पर अत्याचार न किया जाता था। वह अब अपनी इच्छा की स्वामिनी थी, और मिसेज सेवक यह देखकर आनंद से फूली न समाती थीं कि सोफिया सबसे पहले गिरजाघर पहुंच जाती थी। वह समझती थीं, मि० क्लार्क के सत्संग से यह सुसंस्कार हुआ है।

परंतु सोफिया के सिवा यह और कौन जान सकता है कि उसके दिल पर क्या बीत रही है। उसे नित्य प्रेम का स्वांग भरना पड़ता था, जिससे उसे मानसिक घृणा होती थी। उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध कृत्रिम भावों की नकल करनी पड़ती थी। उसे प्रेम और अनुराग के वे शब्द तन्मय होकर सुनने पड़ते थे, जो उसके हृदय पर हथौड़ों की चोटों की भांति पड़ते थे। उसे उन अनुरक्त चितवनों का लक्ष्य बनना पड़ता था, जिनके सामने वह आंखें बंद कर लेना चाहती थी। मिस्टर क्लार्क की बातें कभी-कभी इतनी रसमयी हो जाती थीं, कि सोफी का जी चाहता था, इस स्वरचित रहस्य को खोल दूं। इस कृत्रिम जीवन का अंत कर दूं, लेकिन इसके साथ ही उसे अपनी आत्मा की व्यथा और जलन में एक ईर्ष्यामय आनंद का अनुभव होता था। पापी, तेरी यही सजा है, तू इसी योग्य है, तूने मुझे जितना अपमानित किया है, उसका तुझे प्रायश्चित करना पड़ेगा।

इस भांति विरहिणी रो-रोकर जीवन के दिन काट रही थी और विडंबना यह थी कि वह व्यथा शांत होती नजर न आती थी। सोफिया अज्ञात रूप से मि० क्लार्क से कुछ खिंची हुई रहती थी, हृदय बहुत दबाने पर भी उनसे न मिलता था। उसका यह खिंचाव क्लार्क की प्रेमाग्नि को और भी उत्तेजित करता रहता था। सोफिया इस अवस्था में भी अगर उन्हें मुंह न लगाती थी, तो इसका मुख्य कारण मि० क्लार्क की धार्मिक प्रवृत्ति थी। उसकी निगाह में धार्मिकता से बढ़कर कोई अवगुण न था। वह इसे अनुदारता, द्वेष, अहंकार और संकीर्णता का द्योतक समझती थी। क्लार्क दिल-ही-दिल में समझते थे कि सोफिया को मैं अभी नहीं पा सका, और इसीलिए बहुत उत्सुक होने पर भी उन्हें सोफिया से प्रस्ताव करने का साहस न होता था। उन्हें यह पूर्ण विश्वास न होता था कि मेरी प्रार्थना स्वीकृत होगी। किंतु आशा-सूत्र उन्हें सोफिया के दामन से बांधे हुए था।

इसी प्रकार एक वर्ष से अधिक गुजर गया और मिसेज सेवक को अब संदेह होने लगा कि सोफिया कहीं हमें सब्ज बाग तो नहीं दिखा रही है? आखिर एक दिन उन्होंने सोफिया से कहा--मेरी समझ में नहीं आता, तू रात-दिन मि० क्लार्क के साथ बैठी-बैठी क्या किया करती

है! क्या बात है? क्या वह प्रोपोज (प्रस्ताव) ही नहीं करते, यह तू ही उनसे भागी-भागी फिरती है?

सोफिया शर्म से लाल होकर बोली-वह प्रोपोज ही नहीं करना चाहते, तो क्या मैं उनकी जबान हो जाऊं?

मिसेज सेवक-यह तो हो ही नहीं सकता कि स्त्री चाहे और पुरुष प्रस्ताव न करे। वह तो आठों पहर अवसर देखा करता है। तू ही उन्हें फटकने न देती होगी।

सोफिया-मामा, ऐसी बातें करके मुझे लज्जित न कीजिए।

मिसेज सेवक-कसूर तुम्हारा है, और अगर तुम दो-चार दिन में मि० क्लार्क को प्रोपोज करने का अवसर न दोगी, तो फिर मैं तुम्हें रानी साहबा कि पास भेज दूंगी और फिर बुलाने का नाम भी न लूंगी।

सोफी थर्रा गई। रानी के पास लौटकर जाने से मर जाना कहीं अच्छा था। उसने मन में ठान लिया-आज वह करूंगी, जो आज तक किसी स्त्री ने न किया होगा। साफ कह दूंगी, मेरे घर का द्वार मेरे लिए बंद है। अगरआप मुझे आश्रय देना चाहते हों, तो दीजिए, नहीं तो मैं अपने लिए कोई और रास्ता निकालूं। मुझसे प्रेम की आशा न रखिए। आप मेरे स्वामी हो सकते हैं, प्रियतम नहीं हो सकते। यह समझकर आप मुझे अंगीकार करते हों, तो कीजिए, वरना फिर मुझे अपनी सूरत न दिखाइएगा।

संध्या हो गई थी। माघ का महीना था, उस पर हवा, फिर बादल, सर्दी के मारे हाथ-पांव अकड़े जाते थे। न कहीं आकाश का पता था, न पृथ्वी का। चारों तरफ कुहरा-ही-कुहरा नजर आता था। रविवार था। ईसाई स्त्रियां और पुरुष साफ-सुथरे कपड़े और मोटे-मोटे ओवरकोट पहने हुए एक-एक करके गिरजाघर में दाखिल हो रहे थे। एक क्षण में जॉन सेवक, उनकी स्त्री, प्रभु सेवक और ईश्वर सेवक फिटन से उतरे। लोग तो तुरंत अंदर चले गए, केवल सोफिया बाहर रह गई। सहसा प्रभु सेवक ने बाहर आकर पूछा-क्यों सोफी, मिस्टर क्लार्क अंदर गए?

सोफिया-हां, अभी-अभी गए हैं।

प्रभु सेवक-और तुम?

सोफिया ने दीन भाव से कहा-मैं भी चली जाऊंगी।

प्रभु सेवक-आज तुम बहुत उदास मालूम होती हो।

सोफिया की आंखें अश्रुपूर्ण हो गईं। बोली-हां, प्रभु, आज मैं बहुत उदास हूं। आज मेरे जीवन में सबसे महान् संकट का दिन है, क्योंकि आज मैं क्लार्क को प्रोपोज करने के लिए मजबूर करूंगी। मेरा नैतिक और मानसिक पतन हो गया। अब मैं अपने सिद्धांतों पर जान देनेवाली, अपने ईमान को ईश्वरीय इच्छा समझने वाली, धर्म-तत्वों को तर्क की कसौटी पर परखनेवाली सोफिया नहीं हूं। वह सोफिया संसार में नहीं है। अब मैं जो कुछ हूं, वह अपने मुंह से कहते हुए मुझे स्वयं लज्जा आती है।

प्रभु सेवक कवि होते हुए भी उस भावना-शक्ति से वंचित था, जो दूसरों के हृदय में बैठकर उनकी दशा का अनुभव करती है। वह कल्पना-जगत में नित्य विचरता रहता था और ऐहिक सुख-दु:ख से अपने को चिंतित बनाना उसे हास्यास्पद जान पड़ता था। ये दुनिया के झमेले हैं, इनमें क्यों सिर खपाएं, मनुष्य को भोजन करना और मस्त रहना चाहिए। यही शब्द

सोफिया के मुख से सैकड़ों बार सुन चुका था। झुंझलाकर बोला–तो इसमें रोने-धोने की क्या जरूरत है? अम्मां से साफ-साफ क्यों नहीं कह देतीं? उन्होंने तुम्हें मजबूर तो नहीं किया है?

सोफिया ने उसका तिरस्कार करते हुए कहा–प्रभु, ऐसी बातों से दिल न दुखाओ। तुम क्या जानो, मेरे दिल पर क्या गुजर रही है। अपनी इच्छा से कोई विष का प्याला नहीं पीता। शायद ही कोई ऐसा दिन जाता हो कि मैं तुमसे अपनी सैकड़ों बार की कही हुई कहानी न कहती होऊं। फिर भी तुम कहते हो, तुम्हें मजबूर किसने किया? तुम तो कवि हो, तुम इतने भाव-शून्य कैसे हो गए? मजबूरी के सिवा आज मुझे कौन यहां खींच लाया? आज मेरी यहां आने की जरा भी इच्छा नहीं थी, पर यहां मौजूद हूं। मैं तुमसे सत्य कहती हूं, धर्म का रहा-सहा महत्व भी मेरे दिल से उठ गया। मूर्खों को यह कहते हुए लज्जा नहीं आती कि मजहब खुदा की बरकत है। मैं कहती हूं, वह ईश्वरीय कोप है–दैवी वज्र है, जो मानव जाति के सर्वनाश के लिए अवतरित हुआ है। इसी कोप के कारण आज मैं विष का घूंट पी रही हूं। रानी जाह्नवी जैसी सहृदय महिला के मुझसे यों आंखें फेर लेने का और क्या कारण था? मैं उस देव-पुरुष से क्यों छल करती, जिसकी हृदय में आज भी उपासना करती हूं, और नित्य करती रहूंगी? अगर यह कारण न होता, तो मुझे अपनी आत्मा को यह निर्दयतापूर्ण दंड देना ही क्यों पड़ता? मैं इस विषय पर जितना ही विचार करती हूं, उतना ही धर्म के प्रति अश्रद्धा बढ़ती है। आह ! मेरी निष्ठुरता से विनय को कितना दु:ख हुआ होगा, इसकी कल्पना ही से मेरे प्राण सूख जाते हैं। वह देखो, मि० क्लार्क बुला रहे हैं। शायद सरमन (उपदेश) शुरू होने वाला है। चलनी पड़ेगा, नहीं तो मामा जीता न छोड़ेंगी।

प्रभु सेवक तो कदम बढ़ाते हुए जा पहुंचे, सोफिया दो-ही-चार कदम चली थी कि एकाएक उसे सड़क पर किसी के गाने की आहट मिला। उसने सिर उठाकर चहारदीवारी के ऊपर से देखा, एक अंधा आदमी, हाथ में खंजरी लिए, यह गीत गाता हुआ चला जाता है।

भई, क्यों रन से मुंह मोड़ै?
वीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना,
क्यों निज मरजादा छोड़ै?
भई, क्यों रन से मुंह मोड़ै?
क्यों जीत की तुझको इच्छा, क्यों हार की तुझको चिंता,
क्यों दु:ख से नाता जोड़ै?
भई, क्यों रन से मुंह मोड़ै?
तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,
क्यों धरम-नीति को तोड़ै?
भई, क्यों रन से मुंह मोड़ै?

सोफिया ने अंधे को पहचान लिया, सूरदास था। वह इस गीत को कुछ इस तरह मस्त होकर गाता था कि सुनने वालों के दिल पर चोट-सी लगती थी। लोग राह चलते-चलते सुनने को खड़े हो जाते थे। सोफिया तल्लीन होकर गीत सुनती रही। उसे इस पद में जीवन का संपूर्ण रहस्य कूट-कूटकर भरा हुआ मालूम होता था :

तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,
क्यों धरम-नीति को तोड़ै? भई, क्यों रन से मुंह मोड़ै?

राग इतना सुरीला, इतना मधुर, इतना उत्साहपूर्ण था, कि एक समां-सा छा गया। राग पर खंजरी की ताल और भी आफत करती थी। जो सुनता था, सिर धुनता था।

सोफिया भूल गई कि मैं गिरजे में जा रही हूं, सरमन की जरा भी याद न रही। वह बड़ी दर तक फाटक पर खड़ी यह सरमन सुनती रही। यहां तक कि सरमन समाप्त हो गया, भक्तजन बाहर निकल कर चले। मि० क्लार्क ने आकर धीरे से सोफिया के कंधे पर हाथ रखा, तो वह चौंक पड़ी।

क्लार्क–लार्ड बिशप का सरमन समाप्त हो गया और तुम अभी तक यहीं खड़ी हो।

सोफिया–इतनी जल्द! मैं जरा इस अंधे का गाना सुनने लगी। सरपन कितनी देर हुआ होगा?

क्लार्क–आध घंटे से कम न हुआ होगा। लार्ड बिशप के सरमन संक्षिप्त होते हैं, पर अत्यंत मनोहर। मैंने ऐसा दिव्य ज्ञान में डूबा हुआ उपदेश आज तक न सुना था, इंग्लैंड में भी नहीं। खेद है, तुम न आईं।

सोफिया–मुझे आश्चर्य होता है कि मैं यहां आध घंटे तक खड़ी रही।

इतने में मिस्टर ईश्वर सेवक अपने परिवार के साथ आकर खड़े हो गए। मिसेज सेवक ने क्लार्क को मातृस्नेह से देखकर पूछा–क्यों विलियम, सोफी आज के सरमन के विषय में क्या कहती है?

क्लार्क–यह तो अंदर गईं ही नहीं।

मिसेज सेवक ने सोफिया को अवहेलना की दृष्टि से देखकर कहा–सोफी, यह तुम्हारे लिए शर्म की बात है।

सोफी लज्जित होकर बोली–मामा, मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मैं इस अंधे का गाना सुनने के लिए जरा रुक गई, इतने में सरमन समाप्त हो गया।

ईश्वर सेवक–बेटी, आज का सरमन सुधा-तुल्य था, जिसने आत्म को तृप्त कर दिया। जिसने नहीं सुना, वह उम्र-भर पछताएगा। प्रभु, मुझे अपने दामन में छिपा। ऐसा सरमन आज तक न सुना था।

मिसेज सेवक–आश्चर्य है कि उस स्वर्गोपम सुधा-वृष्टि के सामने तुम्हें यह ग्रामीण गान अधिक प्रिय मालूम हुआ।

प्रभु सेवक–मामा, यह न कहिए। ग्रामीणों के गाने में कभी-कभी इतना रस होता है। जो बड़े-बड़े कवियों को रचनाओं में भी दुर्लभ है।

मिसेज सेवक–अरे, यह तो वही अंधा है, जिसकी जमीन हमने ले ली है। आज यहां कैसे आ पहुंचा? अभागे ने रुपये न लिए, अब गली-गली भीख मांगता फिरता है।

सहसा सूरदास ने उच्च स्वर से कहा–दुहाई है पंचो, दुहाई। सेवक साहब और राजा साहब ने मेरी जमीन जबर्दस्ती छीन ली है। मुझ दुखिया की फरियाद कोई नहीं सुनता। दुहाई है।

दुरबल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
मुई खाल की सांस सों भसम ह्वै जाए।।

क्लार्क ने मि० सेवक से पूछा–उसकी जमीन तो मुआवजा देकर ली गई थी न? अब यह कैसा झगड़ा है?

मि० सेवक–उसने मुआवजा नहीं लिया। रुपये खजाने में जमा कर दिए गए हैं। बदमाश आदमी है।

एक ईसाई बैरिस्टर ने, जो चतारी के राजा साहब के प्रतियोगी थे, सूरदास से पूछा–क्यों अंधे, कैसी जमीन थी? राजा साहब ने कैसे ले ली?

सूरदास–हजूर, मेरे बाप-दादों की जमीन है। सेवक साहब वहां चुरुट बनाने का कारखाना खोल रहे हैं। उनके कहने से राजा साहब ने वह जमीन मुझसे छीन ली है। दुहाई है सरकार की, दुहाई पंचो, गरीब की कोई नहीं सुनता।

ईसाई बैरिस्टर ने क्लार्क से कहा–मेरे विचार में व्यक्तिगत लाभ के लिए किसी की जमीन पर कब्जा करना मुनासिब नहीं है।

क्लार्क–बहुत अच्छा मुआवजा दिया गया है।

बैरिस्टर–आप किसी को मुआवजा लेने के लिए मजबूर नहीं कर सकते, जब तक आप यह न सिद्ध कर दें कि आप जमीन को किसी सार्वजनिक कार्य के लिए ले रहे हैं।

काशी आयरन वर्क्स के मालिक मिस्टर जॉन बर्ड ने, जो जॉन सेवक के पुराने प्रतिद्वंद्वी थे, कहा–बैरिस्टर साहब, क्या आपको नहीं मालूम है कि सिगरेट का कारखाना खोलना परम परमार्थ है? सिगरेट पीने वाले आदमी को स्वर्ग पहुंचने में जरा भी दिक्कत नहीं होती।

प्रोफेसर चार्ल्स सिमियन, जिन्होंने सिगरेट के विरोध में एक पैंफ्लेट लिखा था, बोले–अगर सिगरेट के कारखाने के लिए सरकार जमीन दिला सकती है, तो कोई कारण नहीं है कि चकलों के लिए न दिलाए। सिगरेट के कारखाने के लिए जमीन पर कब्जा करना उस धारा का दुरुपयोग करना है। मैंने अपने पैंफ्लेट में संसार के बड़े-बड़े विद्वानों और डाक्टरों की सम्मतियां लिखी थीं। स्वास्थ्य-नाश का मुख्य कारण सिगरेट का बहुत प्रचार है। खेद है, उस पैंफ्लेट की जनता ने कदर न की।

काशी रेलवे यूनियन के मंत्री मिस्टर नीलमणि ने कहा–ये सभी नियम पूंजीपतियों के लाभ के लिए बनाए गए हैं, और पूंजीपतियों ही को यह निश्चय करने का अधिकार दिया गया है कि उन नियमों का कहां व्यवहार करें। कुत्ते को खाल की रखवाली सौंपी गई है। क्यों अंधे, तेरी जमीन कुल कितनी है?

सूरदास–हजूर, दस बीघे से कुछ ज्यादा ही होगी। सरकार, बाप-दादों की यही निसानी है। पहले राजा साहब मुझसे मोल मांगते थे, जब मैंने न दिया, तो जबरदस्ती ले ली। हजूर, अंधा-अपाहिज हूं, आपके सिवा किससे फरियाद करूं? कोई सुनेगा तो सुनेगा, नहीं भगवान् तो सुनेंगे।

जॉन सेवक अब वहां पल भर भी न ठहर सके। वाद-विवाद हो जाने का भय था और संयोग से उनके सभी प्रतियोगी एकत्र हो गए थे। मिस्टर क्लार्क भी सोफिया के साथ अपनी मोटर पर आ बैठे। रास्ते में जॉन सेवक ने कहा–राजा साहब ने इस अंधे की फरियाद सुन ली, तो उनके हाथ-पांव फूल जाएंगे।

मिसेज सेवक–पाजी आदमी है। इसे पुलिस के हवाले क्यों नहीं करा देते?

ईश्वर सेवक–नहीं बेटा, ऐसा भूल कर भी न करना, नहीं तो अखबार वाले इस बात का बतंगड़ बनाकर तुम्हें बदनाम कर देंगे। प्रभु, मेरा मुंह अपने दामन में छिपा और इस दुष्ट की जबान बंद कर दे।

मिसेज सेवक–दो-चार दिन में आप ही शांत हो जाएगा। ठेकेदारों को ठीक कर लिया न?

जॉन सेवक—हां, काम तो आजकल में शुरू हो जाने वाला है, मगर इस मूजी को चुप करना आसान नहीं है। मुहल्ले वालों को तो मैंने फोड़ लिया, वे सब इसकी मदद न करेंगे, मगर मुझे आशा थी, उधर से सहारा न पाकर इसकी हिम्मत टूट जाएगी। वह आशा पूरी न हुई। मालूम होता है, बड़े जीवन का आदमी है, आसानी से काबू में आने वाला नहीं है। राजा साहब का म्युनिसिपल बोर्ड में अब वह जोर नहीं रहा, नहीं तो कोई चिंता न थी। उन्हें पूरे साल-भर तक बोर्ड वालों की खुशामद करनी पड़ी, तब जाकर वह प्रस्तावमंजूर करा सके। ऐसा न हो, बोर्ड वाले फिर कोई चाल चलें।

इतने में राजा महेन्द्रकुमार की मोटर सामने आकर रुकी। राजा साहब बोले—आपसे खूब मुलाकात हुई। मैं आपके बंगले से लौटा आ रहा हूं। आइए, हम और आप सैर कर आएं। मुझे आपसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।

जब जॉन सेवक मोटर पर आ बैठे, तो बातें होने लगीं। राजा साहब ने कहा—आपका सूरदास तो एक ही दुष्ट निकला। कल से सारे शहर में घूम-घूमकर गाता है और हम दोनों को बदनाम करता है। अंधे गाने में कुशल होते ही हैं। उसका स्वर बहुत ही लोचदार है। बात-की-बात में हजारों आदमी घेर लेते हैं। जब खूब जमाव हो जाता है, तो वह दुहाई मचाता है और हम दोनों को बदनाम करता है।

जॉन सेवक—अभी चर्च में आ पहुंचा था। बस वही दुहाई देता था। प्रोफेसर सिमियन, मि॰ नीलमणि आदि महापुरुषों को तो आप जानते ही हैं, उसे और भी उकसा रहे हैं। शायद अभी वहीं खड़ा हो।

महेन्द्रकुमार—मिस्टर क्लार्क से तो कोई बातचीत नहीं हुई?

जॉन सेवक—थे तो वह भी, उनकी सलाह है कि अंधे को पागलखाने भेज दिया जाए। मैं मना न करता, तो वह उसी वक्त थानेदार को लिखते।

महेन्द्रकुमार—आपने बहुत अच्छा किया, उन्हें मना कर दिया। उसे पागलखाने या जेलखाने भेज देना आसान है, लेकिन जनता को यह विश्वास दिलाना कठिन है कि उसके साथ अन्याय नहीं किया गया। मुझे तो उसकी दुहाई-तिहाई की परवा न होती, पर आप जानते हैं, हमारे कितने दुश्मन हैं। अगर उसका यही ढंग रहा, तो दस-पांच दिनों में हम सारे शहर में नक्कू बन जाएंगे।

जॉन सेवक—अधिकार और बदनामी का तो चोली-दामन का साथ है। इसकी चिंता न कीजिए। मुझे तो यह अफसोस है कि मैंने मुहल्ले वालों को काबू में लाने के लिए बड़े-बड़े वादे कर लिए। जब अंधे पर किसी का कुछ असर ही न हुआ तो मेरे वादे बेकार हो गए।

महेन्द्रकुमार—अजी, आपकी तो जीत-ही-जीत है, गया तो मैं। इतनी जमीन आपको दस हजार से कम में न मिलती। धर्मशाला बनवाने में आपके इतने ही रुपये लगेंगे। मिट्टी तो मेरी खराब हुई। शायद जीवन में यह पहला ही अवसर है कि जनता की आंखों में गिरता हुआ नजर आता हूं। चलिए जरा पांड़ेपुर तक हो आएं। संभव है, मुहल्ले वालों को समझाने का अब भी कुछ असर हो।

मोटर पांड़ेपुर की तरफ चली। सड़क खराब थी, राजा साहब ने इंजीनियर को ताकीद कर दी थी कि सड़क की मरम्मत का प्रबंध किया जाए, पर अभी तक कहीं कंकड़ भी न नजर आता था। उन्होंने अपनी नोटबुक में लिखा, इसका जवाब तलब किया जाए। चुंगीघर पहुंचे,

तो देखा कि चुंगी का मुंशी आराम से चारपाई पर लेटा हुआ है और कई गाड़ियां सड़क पर रवन्ने के लिए खड़ी हैं। मुंशीजी ने मन में निश्चय कर लिया है कि गाड़ी पीछे एक रुपया लिए बिना रवन्ना न दूंगा, नहीं तो गाड़ियों को यहीं रात-भर खड़ी रखूंगा। राजा साहब ने जाते-ही-जाते गाड़ी वालों को रवन्ना दिला दिया और मुंशीजी के रजिस्टर पर यह कैफियत लिख दी। पांड़ेपुर पहुंचे तो अंधेरा हो चला था। मोटर रुकी। दोनों महाशय उतरकर मंदिर पर आए। नायकराम लुंगी बांधे हुए भंग घोंट रहे थे, दौड़े हुए आए। बजरंगी नॉद में पानी भर रहा था, आकर खड़ा हो गया। सलाम-बंदगी के पश्चात् जॉन सेवक ने नायकराम से कहा-अंधा तो बहुत बिगड़ा हुआ है।

नायकराम-सरकार, बिगड़ा तो इतना है कि जिस दिन डौंड़ी पिटी, उस दिन से घर नहीं आया। सारे दिन शहर में घूमता है, भजन गाता है और दुहाई मचाता है।

राजा साहब-तुम लोगों ने उसे कुछ समझाया नहीं?

नायकराम-दीनबंधु, अपने सामने किसी को कुछ समझता ही नहीं। दूसरा आदमी हो, तो मार-पीट की धमकी से सीधा हो जाए, पर उसे तो डर-भय जैसे छू ही नहीं गया। उसी दिन से घर नहीं आया।

राजा साहब-तुम लोग उसे समझा-बुझाकर यहां लाओ। सारा संसार छान आए हो, एक मूर्ख को काबू में नहीं ला सकते?

नायकराम-सरकार, समझाना-बुझाना तो मैं नहीं जानता, जो हुकुम हा, तो हाथ-पैर तोड़कर बैठा दूं, आप ही चुप हो जाएगा।

राजा साहब-छी, छी, कैसी बातें करते हो। मैं देखता हूं, यहां पानी का नल नहीं है। तुम लोगों को तो बहुत कष्ट होता होगा। मिस्टर सेवक, आप यहां नल पहुंचाने का ठेका ले लीजिए।

नायकराम-बड़ी दया है दीनबंधु, नल आ जाए तो क्या कहना है।

राजा साहब-तुम लोगों ने कभी इसके लिए दरख्वास्त ही नहीं दी।

नायकराम-सरकार, यह बस्ती हद-बाहर है।

राजा साहब-कोई हरज नहीं, नल लगा दिया जाएगा।

इतने में ठाकुरदीन ने आकर कहा-सरकार, मेरी भी कुछ खातिरी हो जाए।

यह कहकर उसने चांदी के वरक में लिपटे हुए पान के बीड़े दोनों महानुभावों की सेवा में अर्पित किए। मि० सेवक को, अंगरेजी वेश-भूषा रखने पर भी, पान से घृणा न थी, शौक से खाया। राजा साहब मुंह में पान रखते हुए बोले-क्या यहां लालटेनें नहीं हैं? अंधेरे में तो बड़ी तकलीफ होती होगी?

ठाकुरदीन ने नायकराम की ओर मार्मिक दृष्टि से देखा, मानो यह कह रहा है कि मेरे बीड़ा ने यह रंग जमा दिया। बोला-सरकार, हम लोगों की कौन सुनता है? अब हजूर की निगाह हो गई है, तो लग ही जाएंगी। बस, और कहीं नहीं, इसी मंदिर पर एक लालटेन लगा दी जाए। साधु-महात्मा आते हैं, तो अंधेरे में उन्हें कष्ट होता है। लालटेन से मंदिर की सोभा बढ़ जाएगी। सब आपको आसीरवाद देंगे।

राजा साहब-तुम लोग एक प्रार्थना-पत्र भेज दो।

ठाकुरदीन-हजूर के परताप से दो-एक साधू-संत रोज ही आते रहते हैं। अपने से जो

कुछ हो सकता है, उनका सेवा-सत्कार करता हूं, नहीं तो यहां और कौन पूछने वाला है। सरकार, जब से चोरी हो गई, तब से हिम्मत टूट गई।

दोनों आदमी मोटर पर बैठने वाले ही थे कि सुभागी एक लाल साड़ी पहने, घूंघट निकाले, आकर जरा दूर पर खड़ी हो गई, मानो कुछ कहना चाहती है। राजा साहब ने पूछा—यह कौन है? क्या कहना चाहती है?

नायकराम—सरकार, एक पासिन है। क्या है सुभागी, कुछ कहने आई है?

सुभागी—(धीरे-से) कोई सुनेगा?

राजा साहब—हां, हां, कह, क्या कहती है?

सुभागी—कुछ नहीं मालिक, यही कहने आई थी कि सूरदास के साथ बड़ा अन्यान्य हुआ है। अगर उनकी फरियाद न सुनी गई, तो वह मर जाएंगे।

जॉन सेवक—उनके मर जाने के डर से सरकार अपना काम छोड़ दे?

सुभागी—हजूर, सरकार का काम परजा को पालना है कि उजाड़ना? जब से यह जमीन निकल गई है, बेचारे को न खाने की सुध है, न पीने की। हम गरीब औरतों का तो वही एक आधार है, नहीं तो मुहल्ले के मरद कभी औरतों को जीता न छोड़ते और मरदों की तो मिली-भगत है। मरद चाहे औरत के अंग-अंग, पोर-पोर काट डाले, कोई उसको मने नहीं करता। चोर-चोर मौसेरे भाई हो जाते हैं। वही एक बेचारा था कि हम गरीबों की पीठ पर खड़ा हो जाता था।

भैरो भी आकर खड़ा हो गया था। बोला—हजूर, सूरे न होता, तो यह आपके सामने खड़ी न होती। उसी ने जान पर खेलकर इसकी जान बचाई थी।

राजा साहब—जीवट का आदमी मालूम होता है।

नायकराम—जीवट क्या है सरकार, बस यह समझिए कि हत्या के बल जीता है।

राजा साहब—बस, यह बात तुमने बहुत ठीक कही, हत्या ही के बल जीतता है। चाहूं, तो आज पकड़वा दूं, पर सोचता हूं, अंधा है, उस पर क्या गुस्सा दिखाऊं। तुम लोग उसके पड़ोसी हो, तुम्हारी बात कुछ-न-कुछ सुनेगा ही। तुम लोग उसे समझाओ। नायकराम, हम तुमसे बहुत जोर देकर कहे जाते हैं।

एक घंटा रात जा चुकी थी। कुहरा और भी घना हो गया था। दुकानों के दीपकों के चारों तरफ कोई मोटा कागज-सा पड़ा हुआ जान पड़ता था। दोनों महाशय बिदा हुए, पर दोनों ही चिंता में डूबे हुए थे। राजा साहब सोच रहे थे कि देखें, लालटेन और पानी के नल का कुछ असर होता है या नहीं। जॉन सेवक को चिंता थी कि कहीं मुझे जीती-जिताई बाजी न खोनी पडे।

उन्नीस

सोफिया अपनी चिंताओं में ऐसी व्यस्त हो रही थी कि सूरदास को बिलकुल भूल-सी गई थी। उसकी फरियाद सुनकर उसका हृदय कांप उठा। उस दीन प्राणी पर इतना घोर

अत्याचार ! उसकी दयालु प्रकृति यह अन्याय न सह सकी। सोचने लगी—सूरदास को इस विपत्ति से क्योंकर मुक्त करूं? इसका उद्धार कैसे हो? अगर पापा से कहूं तो वह हर्गिज न सुनेंगे। उन्हें अपने कारखाने की ऐसी धुन सवार है कि वह इस विषय में मेरे मुंह से एक शब्द सुनना भी पसंद न करेंगे।

बहुत सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया—चलकर इन्दु से प्रार्थना करूं। अगर वह राजा साहब से जोर देकर कहेगी, तो संभव है, राजा साहब मान जाएं। पिता से विरोध करते उसे बड़ा दु:ख होता था, पर उसकी धार्मिक दृष्टि में दया का महत्व इतना ऊंचा था कि उसके सामने पिता के हानि-लाभ की कोई हस्ती न थी। जानती थी, राजा साहब दीन-वत्सल हैं और उन्होंने सूरदास पर केवल मि० क्लार्क की खातिर से यह वज्राघात किया है। जब उन्हें ज्ञात हो जाएगा कि मैं उसे काम के लिए उनकी जरा भी कृतज्ञ न रहूंगी, तो शायद वह अपने निर्णय पर पुन: विचार करने के लिए तैयार हो जाए। यहां ज्योंही यह बात खुलेगी, सारा घर मेरा दुश्मन हो जाएगा, पर इसकी क्या चिंता? इस भय से मैं अपना कर्त्तव्य तो नहीं छोड़ सकती।

इसी हैस-बैस में तीन गुजर गए। चौथे दिन प्रात:काल वह इन्दु से मिलने चली। सवारी किराए की थी। सोचती जाती थी—ज्योंही अंदर कदम रखूंगी, इन्दु दौड़कर गले लिपट जाएगी, शिकायत करेगी कि इतने दिनों के बाद क्यों आई हो। हो सकता है कि आज मुझे आने भी न दे। वह राजा साहब को जरूर राजी कर लेगी। न जाने पापा ने राजा साहब को कैसे चकमा दिया।

यही सोचते-सोचते वह राजा साहब के मकान पर पहुंच गई और इन्दु को खबर दी। उसे विश्वास था कि मुझे लेने के लिए इन्दु खुद निकल आएगी, किंतु पंद्रह मिनट इंतजार करने के बाद एक दासी आई और उसे अंदर ले गई।

सोफिया ने जाकर देखा कि इन्दु अपने बैठने के कमरे में दुशाला ओढ़े, अंगीठी के सामने एक कुर्सी पर बैठी हुई है। सोफिया ने कमरे में कदम रखा, तब भी इन्दु कुर्सी से न उठी, यहां तक कि सोफिया ने हाथ बढ़ाया, तब भी रुखाई से हाथ बढ़ा देने के सिवा इन्दु मुंह से कुछ न बोली। सोफिया ने समझा, इसका जी अच्छा नहीं है। बोली—सिर में दर्द है क्या?

उसकी समझ ही में न आता था कि बीमारी के सिवा इस निष्ठुरता का और भी कोई कारण हो सकता है।

इन्दु ने क्षीण स्वर में कहा—नहीं, अच्छी तो हूं। इस सर्दी-पाले में तो तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ !

सोफिया मानशीला स्त्री थी। इन्दु की इस निष्ठुरता से उसके दिल पर चोट-सी लगी। पहला विचार तो हुआ उलटे पांव वापस जाऊं, मगर यह सोचकर कि यह बहुत ही हास्यजनक बात होगी, उसने दुस्साहस करके एक कुर्सी खींची और उस पर बैठ गई।

'आपसे मिले साल-भर से अधिक हो गया।'

'हां, मुझे कहीं आने-जाने की फुरसत कम रहती है। मड़ियाहू की रानी साहब एक महीने में तीन बार आ चुकी हैं, मैं एक बार भी न जा सकी।'

सोफिया दिल में हंसती हुई व्यंग से बोली—जब रानियों को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, तो मैं किस गिनती में हूं। क्या कुछ रियासत का काम भी देखना पड़ता है?

'कुछ नहीं, और सब कुछ। राजा साहब को जातीय कार्यों से अवकाश ही नहीं मिलता,

तो घर का कारोबार देखने वाला भी तो कोई चाहिए। मैं भी देखती हूं कि जब इन्हीं कामों की बदौलत उनका यह सम्मान है, जो बड़े-से-बड़े हाकिमें को भी प्राप्त नहीं है, तो उनसे ज्यादा छेड़-छाड़ नहीं करती।'

सोफिया अभी तक न समझ सकी कि इन्दु की अप्रसन्नता का कारण क्या है। बोली–आप बड़ी भाग्यशालिनी हैं कि इस तरह उनके सत्कार्यों में हाथ बंटा सकती हैं। राजा साहब की सुकीर्ति आज सारे शहर में छाई हुई है, लेकिन बुरा न मानिएगा, कभी-कभी वह भी मुंह-देखी कर जाते हैं और बड़ों के आगे छोटों की परवा नहीं करते।

'शायद उनकी यह पहली शिकायत है, जो मेरे कान में आई है।'

'हां, दुर्भाग्यवश यह काम मेरे ही सिर पड़ा। सूरदास को तो आप जानती ही हैं। राजा साहब ने उसकी जमीन पापा को दे दी है। बेचारा आजकल गली-गली दुहाई देता फिरता है। पिता के विरुद्ध एक शब्द भी मुंह से निकालना मेरे लिए लज्जास्पद है, यह समझती हूं। फिर भी यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि इस मौके पर राजा साहब को एक दीन प्राणी पर ज्यादा दया करनी थी।'

इन्दु ने सोफिया को प्रश्नसूचक नेत्रों से देखकर कहा–आजकल पिता से भी अनबन है क्या?

सोफिया ने गर्व से कहा–न्याय और कर्त्तव्य के सामने पिता, पुत्र या पति का पक्षपात न किया जाए, तो कोई लज्जा की बात नहीं है।

'तो तुम्हें पहले अपने पिता ही को सन्मार्ग पर लाना चाहिए था। राजा साहब ने जो कुछ किया, तुम्हारी खातिर किया, और तुम्हीं उन पर इलजाम रखती हो? कितनी शोक की बात है। उन्हें मि० सेवक, मि० क्लार्क या संसार के किसी अन्य व्यक्ति से दबने की जरूरत नहीं है, किंतु इस अवसर पर उन्होंने तुम्हारे पापा का पक्ष न लिया होता, तो शायद सबसे पहले तुम्हीं उन पर कृतघ्नता का दोषारोपण करतीं। सूरदास पर यह अन्याय इसलिए किया गया कि तुमने एक संकट में विनय की रक्षा की है, और तुम अपने पिता की बेटी हो।'

सोफिया ये कठोर शब्द सुनकर तिलमिला गई। बोली–अगर मैं जानती कि मेरी उस क्षुद्र सेवा का यहां प्रतिकार किया जाएगा, तो शायद विनयसिंह के समीप न जाती। क्षमा कीजिए, मुझसे भूल हुई कि आपके पास यह शिकायत लेकर आई। सुना करती थी, अमीरों में स्थिरता नहीं होती। आज इसका प्रमाण मिल गया। लीजिए, जाती हूं। मगर इतना कहे जाती हूं कि चाहे पापा मेरा मुंह देखना भी पाप समझें, पर मैं इस विषय में कदापि चुप न बैठूंगी।

इन्दु कुछ नरम होकर बोली–आखिर तुम राजा साहब से क्या चाहती हो?

'क्या ऐश्वर्य पाकर बुद्धि भी मंद हो जाती है?'

'मैं प्यादे से वजीर नहीं बनी हूं।'

'खेद है, आपने अब तक मेरा आशय नहीं समझा।'

'खेद करने से तो बातें मेरी समझ में न आएंगी।'

'मैं चाहती हूं कि सूरदास की जमीन उसे लौटा दी जाए।'

'तुम्हें मालूम है, इसमें राजा साहब का कितना अपमान होगा?'

'अपमान अन्याय से अच्छा है।'

'यह भी जानती हो कि जो कुछ हुआ, तुम्हारे...मि० क्लार्क की प्रेरणा से हुआ है?'

'यह तो नहीं जानती, क्योंकि इस विषय में मेरी उनसे कभी बातचीत नहीं हुई। लेकिन जानती भी, तो राजा साहब की मान-हानि के विचार से पहले राजा साहब ही से अनुनय-विनय करना उचित समझती। अपनी भूल अपने ही हाथों सुधर जाए, तो यह उससे कहीं अच्छा है कि कोई दूसरा उसे सुधारे।'

इन्दु को चोट लगी। समझा, यह मुझे धमकी दे रही है। मि० क्लार्क के अधिकार पर इतना अभिमान ! तनकर बोली—मैं नहीं समझती कि किसी राज्याधिकारी को बोर्ड के फैसले में भी दखल देने का मजाज है, और चाहे एक दीन अंधे पर अत्याचार ही क्यों न करना पड़े, राजा साहब अपने फैसले को बहाल रखने के लिए कोई बातें उठा न रखेंगे। एक राजा का सम्मान एक क्षुद्र न्याय से कहीं ज्यादा महत्व की वस्तु है।

सोफिया ने व्यथित होकर कहा—इसी क्षुद्र न्याय के लिए सत्यवादी पुरुषों ने सिर कटवा दिए हैं।

इन्दु ने कुर्सी की बांह पर हाथ पटककर कहा—न्याय का स्वांग भरने का युग अब नहीं रहा।

सोफिया ने कुछ उत्तर न दिया। उठ खड़ी हुई और बोली—इस कष्ट के लिए क्षमा कीजिएगा।

इन्दु अंगीठी की आग उकसाने लगी। सोफिया की ओर आंख उठाकर भी न देखा।

सोफिया यहां से चली, तो इन्दु के दुर्व्यवहार से उसका कोमल हृदय विदीर्ण हो रहा था। सोचती जाती थी—वह हंसमुख, प्रसन्नचित्त, विनोदशील इन्दु कहां है? क्या ऐश्वर्य मानव-प्रकृति को भी दूषित कर देता है? मैंने तो आज तक कभी इसका दिल दुखाने वाली बात नहीं कही। क्या मैं ही कुछ और हो गई हूं, या वही कुछ और हो गई है? इसने मुझसे सीधे मुंह बात भी नहीं की। बात करना तो, दूर, उलटे और गालियां सुनाईं। मैं इस पर कितना विश्वास करती थी? समझती थी, देवी है। आज इसका यथार्थ स्वरूप दिखाई पड़ा। लेकिन मैं इसके ऐश्वर्य के सामने क्यों सिर झुकाऊं? इसने अकारण, निष्प्रयोजन ही मेरा अपमान किया। शायद रानीजी ने इसके कान भरे हों। लेकिन सज्जनता भी कोई चीज है।

सोफिया ने उसी क्षण इस अपमान का पूरा, बल्कि पूरे से भी ज्यादा बदला लेने का निश्चय कर लिया। उसने यह विचार न किया—संभव है, इस समय किसी कारण इसका मन खिन्न रहा हो, अथवा किसी दुर्घटना ने इसे असमंजस में डाल रखा हो। उसने तो सोचा—ऐसी अभद्रता, ऐसी दुर्जनता के लिए दारुण-से-दारुण मानसिक कष्ट, बड़ी-से-बड़ी आर्थिक क्षति, तीव्र-से-तीव्र शारीरिक व्यथा का उज्र भी काफी नहीं। इसने मुझे चुनौती दी है, स्वीकार करती हूं। इसे अपनी रियासत का घमंड है, मैं दिखा दूंगी कि यह सूर्य का स्वयं प्रकाश नहीं, चांद की पराधीन ज्योति है। इसे मालूम हो जाएगा कि राजा और रईस, सब-के-सब शासनाधिकारियों के हाथों के खिलौने हैं, जिन्हें वे अपनी इच्छा के अनुसार बनाते-बिगाड़ते रहते हैं।

दूसरे ही दिन से सोफिया ने अपनी कपट-लीला आरंभ कर दी। मि० क्लार्क से उसका प्रेम बढ़ने लगा। द्वेष के हाथों की कठपुतली बन गई। अब उनकी प्रेम-मधुर बातें सिर झुकाकर सुनती, उनकी गर्दन में बांहें डालकर कहती—तुमने प्रेम करना किससे सीखा? दोनों अब निरंतर साथ नजर आते, सोफिया दफ्तर में भी साहब का गला न छोड़ती, बार-बार चिट्ठियां लिखती—जल्द आओ, मैं तुम्हारी बाट जोह रही हूं। और यह सारा प्रेमाभिनय केवल इसलिए था कि इन्दु से

अपमान का बदला लूं। न्याय-रक्षा का अब उसे लेश-मात्र ध्यान न था, केवल इन्दु का दर्प-मर्दन करना चाहती थी।

एक दिन वह मि० क्लार्क को पांड़ेपुर की तरफ सैर कराने ले गइ। जब मोटर गोदाम के सामने से होकर गुजरी, तो उसने ईंट और कंकड़ के ढेरों की ओर संकेत करके कहा—पापा बड़ी तत्परता से काम कर रहे हैं।

क्लार्क—हां, मुस्तैद आदमी हैं। मुझे तो उनकी श्रमशीलता पर डाह होती है।

सोफी—पापा ने धर्म-अधर्म का विचार नहीं किया। कोई माने या न माने, मैं तो यही कहूंगी कि अंधे के साथ अन्याय हुआ।

क्लार्क—हां, अन्याय तो हुआ। मेरी तो बिलकुल इच्छा न थी।

सोफी—तो आपने क्यों अपनी स्वीकृति दी?

क्लार्क—क्या करता?

सोफी—अस्वीकार कर देते। साफ लिख देना चाहिए था कि इस काम के लिए किसी की जमीन नहीं जब्त की जा सकती।

क्लार्क—तुम नाराज न हो जातीं?

सोफी—कदापि नहीं। आपने शायद मुझे अब तक नहीं पहचाना।

क्लार्क—तुम्हारे पापा जरूर ही नाराज हो जाते।

सोफी—मैं और पापा एक नहीं हैं। मेरे और उनके आचार-व्यवहार में दिशाओं का अंतर है।

क्लार्क—इतनी बुद्धि होती, तो अब तक तुम्हें कब का पा गया होता। मैं तुम्हारे स्वभाव और विचारों से परिचित न था। समझा, शायद यह अनुमति मेरे लिए हितकर हो।

सोफी—सारांश यह कि मैं ही इस अन्याय की जड़ हूं। राजा साहब ने मुझे प्रसन्न करने के लिए बोर्ड में यह प्रस्ताव रखा। आपने भी मुझी को प्रसन्न करने के लिए स्वीकृति प्रदान की। आप लोगों ने मेरी तो मिट्टी ही खराब कर दी।

क्लार्क—मेरे सिद्धांतों से तुम परिचित हो। मैंने अपने ऊपर बहुत जब्र करके यह प्रस्ताव स्वीकार किया है।

सोफी—आपने अपने ऊपर जब्र नहीं किया है, मेरे ऊपर किया है, और आपको इसका प्रायश्चित करना पड़ेगा।

क्लार्क—मैं न जानता था कि तुम इतनी न्यायप्रिय हो।

सोफी—मेरी तारीफ करने से इस पाप का प्रायश्चित न होगा।

क्लार्क—मैं अंधे को किसी दूसरी गांव में इतनी ही जमीन दिला दूंगा।

सोफिया—क्या उसी की जमीन उसे नहीं लौटाई जा सकती?

क्लार्क—कठिन है।

सोफिया—असंभव तो नहीं है?

क्लार्क—असंभव से कुछ ही कम है।

सोफिया—तो समझ गई, असंभव नहीं है, आपको यह प्रायश्चित करना ही पड़ेगा। कल ही उस प्रस्ताव को मंसूख कर दीजिए।

क्लार्क—प्रिये, तुम्हें मालूम नहीं, उसका क्या परिणाम होगा।

सोफिया—मुझे इसकी चिंता नहीं। पापा को बुरा लगेगा, लगे। राजा साहब का अपमान होगा, हो। मैं किसी के लाभ या सम्मान-रक्षा के लिए अपने ऊपर पाप का भार क्यों लूं? क्यों ईश्वरीय दंड की भागिनी बनूं? आप लोगों ने मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे सिर पर एक महान् पातक का बोझ रख दिया है। मैं इसे सहन नहीं कर सकती। आपको अंधे की जमीन वापस करनी पड़ेगी।

ये बातें हो ही रही थीं कि सैयद ताहिरअली ने सोफिया को मोटर पर बैठे जाते देखा, तो तुरंत आकर सामने खड़े हो गए और सलाम किया। सोफी ने मोटर रोक दी और पूछा—कहिए, मुंशीजी, इमारत बनने लगी?

ताहिर—जी हां, कल दाग-बेल पड़ेगी, पर मुझे यह बेल मुढ़े चढ़ती नहीं नजर आती।

सोफिया—क्यों? क्या कोई वारदात हो गई?

ताहिर—हुजूर, जब से इस अंधे ने शहर में आह-फरियाद शुरू की है, तब से अजीब मुसीबत का सामना हो गया है। मुहल्ले वाले तो अब नहीं बोलते, लेकिन शहर के शोहदे-लुच्चे रोजाना आकर मुझे धमकियां देते हैं। कोई घर में आग लगाने को आमादा होता है, कोई लूटने को दौड़ता है, कोई मुझे कत्ल करने की धमकी देता है। आज सुबह कई सौ आदमी लाठियां लिए आ गए और गोदाम को घेर लिया। कुछ लोग सीमेंट और चूने के ढेरों को बखेरने लगे। कई आदमी पत्थर की सिलों को तोड़ने लगे। मैं तनहा क्या कर सकता था? यहां के मजदूर खौफ के मारे जान लेकर भागे। कयामत का सामना था। मालूम होता था, अब आन-की-आन में महशर बरपा हो जाएगा। दरवाजा बंद किए बैठा अल्लाह-अल्लाह कर रहा था कि किसी तरह यह हंगामा फरो हो। बारे, दुआ कबूल हुई। ऐन उसी वक्त अंधा न जाने किधर से आ निकला और बिजली की तरह कड़ककर बोला—'तुम लोग यह ऊधम मचाकर मुझे क्यों कलंक लगा रहे हो? आग लगाने से मेरे दिल की आग न बुझेगी, लहू बहाने से मेरा चित्त शांत न होगा। आप लोगों की दुआ से यह आग और जलन मिटेगी। परमात्मा से कहिए, मेरा दुःख मिटाए। भगवान् से विनती कीजिए, मेरा संकट हरें। जिन्होंने मुझ पर जुल्म किया है, उनके दिल में दया-धरम जागे, बस मैं आप लोगों से और कुछ नहीं चाहता।' इतना सुनते ही कुछ लोग तो हट गए, मगर कितने ही आदमी बिगड़कर बोले—तुम देवता हो, तो बने रहो, हम देवता नहीं हैं, हम तो जैसे के साथ तैसा करेंगे। उन्हें भी तो गरीबों पर जुल्म करने का मजा मिल जाए।—यह कहकर वे लोग पत्थरों को उठा-उठाकर पटकने लगे। तब इस अंधे ने वह काम किया, जो औलिया ही कर सकते हैं। हुजूर, मुझे तो कामिल यकीन हो गया कि यह कोई फरिश्ता है। उसकी बातें अभी तक कानों में गूंज रही हैं। उसकी तस्वीर अभी तक आंखों के सामने खिंची हुई है। उसने जमीन से एक बड़ा-सा पत्थर का टुकड़ा उठा लिया और उसे अपने माथे पर सामने रखकर बोला—अगर तुम लोग अब भी मेरी बिनती न सुनोगे, तो इसी दम इस पत्थर से सिर टकराकर जान दे दूंगा। मुझे मर जाना मंजूर है, पर यह अंधेर नहीं देख सकता। उसके मुंह से इन बातों का निकलना था कि चारों तरफ सन्नाटा छा गया। जो जहां था, वह वहीं बुत बन गया। जरा देर में लोग आहिस्ता-आहिस्ता रुखसत होने लगे और कोई आध घंटे में सारा मजमा गायब हो गया। तब सूरदास उठा और लाठी टेकता हुआ जिधर से आया था, उसी तरफ चला गया। हुजूर, मुझे तो पूरा यकीन है कि वह इंसान नहीं, कोई फरिश्ता है।

सोफी—उसे किसी से इन दुष्टों के आने की खबर मिल गई होगी।

ताहिर—हुजूर, मेरा तो कयास है कि उसे इल्म गैब है।

सोफी–(मुस्कराकर) आपने पापा को इसकी इत्तिला नहीं दी?

ताहिर--हुजूर, तब से मौका ही नहीं मिला। खुद बाल-बच्चों को तनहा छोड़कर नहीं जा सकता। आदमी सब पहले ही भाग गए थे। इसी फिक्र में खड़ा था कि हुजूर की मोटर नजर आई।

क्लार्क–यह अंधा जरूर कोई असाधारण पुरुष है।

सोफी–तुम उससे दो-चार बातें करके देखो। उसके आध्यात्मिक और दार्शनिक विचार सुनकर चकित हो जाओगे। साधु भी है और दार्शनिक भी। कहीं हम उसके विचारों को व्यवहार में ला सकते, तो निश्चय सांसारिक जीवन सुखमय हो जाता। जाहिल है, बिलकुल निरक्षर, लेकिन उसका एक-एक वाक्य विद्वानों के बड़े-बड़े ग्रंथों पर भारी है।

मोटर चली, तो सोफी बोली–आप लोग ऐसे साधुजनों पर भी अन्याय करने से बाज नही आते, जो अपने शत्रुओं पर एक कंकड़ भी उठाकर नहीं फेंकता। प्रभु मसीह में भी तो यही गुण सर्वप्रधान था।

क्लार्क–प्रिये, अब लज्जित न करो। इसका प्रायश्चित निश्चय होगा।

सोफी–राजा साहब इसका घोर विरोध करेंगे।

क्लार्क–थुह ! उनमें इतना नैतिक साहस नहीं है। वह जो कुछ करते हैं, हमारा रुख देखकर करते हैं। इस वजह से उन्हें कभी असफलता नहीं होती। हां, उनमें यह विशेष गुण है कि वह हमारे प्रस्तावों का रूपांतर करके अपना काम बना लेते हैं और उन्हें जनता के सामने ऐसी चतुरता से उपस्थित करते हैं कि लोगों की दृष्टि में उनका सम्मान बढ़ जाता है। हिन्दुस्तानी रईसों और राजनीतिज्ञों में आत्मविश्वास का बड़ा अभाव होता है। वे हमारी सहायता से वह कर सकते हैं, जो हम नहीं कर सकते, पर हमारी सहायता कि बिना कुछ भी नहीं कर सकते।

मोटर सिगरा आ पहुंची। सोफिया उतर पड़ी। क्लार्क ने उसे प्रेम की दृष्टि से देखा, हाथ मिलाया और चले गए।

बीस

मि० क्लार्क ने मोटर से उतरते ही अरदली को हुक्म दिया–डिप्टी साहब को फौरन हमारा सलाम दो। नाजिर, अहलमद और अन्य कर्मचारियों को भी तलब किया गया। सब-के-सब घबराये–यह आज असमय क्यों तलबी हुई, कोई गलती तो नहीं पकड़ी गई? किसी ने रिश्वत की शिकायत तो नहीं कर दी? बेचारों के हाथ-पांव फूल गए।

डिप्टी साहब बिगड़े–मैं कोई साहब का जाती नौकर नहीं हूं कि जब चाहा, तलब कर लिया। कचहरी के समय के भीतर जितनी बार चाहें, तलब करें, लेकिन यह कौन-सी बात है कि जब जी में आया, सलाम भेज दिया। इरादा किया, न चलूं, पर इतनी हिम्मत कहां कि साफ-साफ इनकार कर दें। बीमारी का बहाना करना चाहा, मगर अरदली ने कहा–हुजूर, इस वक्त न चलेंगे, तो साहब बहुत नाराज होंगे। कोई बहुत जरूरी काम है, तभी तो मोटर से उतरते ही आपको सलाम दिया।

आखिर डिप्टी साहब को मजबूर होकर आना पड़ा। छोटे अमलों ने जरा भी चूं न की,

अरदली की सूरत देखते ही हुक्का छोड़ा, चुपके से कपड़े पहने, बच्चों को दिलासा दिया और हाकिम के हुक्म को अकाल-मृत्यु समझते हुए, गिरते-पड़ते बंगले पर आ पहुंचे। साहब के सामने आते हो डिप्टी साहब का सारा गुस्सा उड़ गया, इशारों पर दौड़ने लगे। मि० क्लार्क ने सूरदास की जमीन की मिसिल मंगवाई, उसे बड़े गौर से पढ़वाकर सुना, तब डिप्टी साहब से राजा महेन्द्रकुमार के नाम एक परवाना लिखवाया, जिसका आशय यह था—पांड़ेपुर में सिगरेट के कारखाने के लिए जो जमीन ली गई, वह उस धारा के उद्देश्य के विरुद्ध है, इसलिए मैं अपनी अनुमति वापस लेता हूं। मुझे इस विषय में धोखा दिया गया है और एक व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए कानून का दुरुपयोग किया गया है।

डिप्टी साहब ने दबी जबान में शंका की—हुजूर, अब आपको वह हुक्म मंसूख करने का मजाज नहीं है, क्योंकि सरकार ने उसका समर्थन कर दिया है।

मिस्टर क्लार्क ने कठोर स्वर में कहा—हमीं सरकार हैं, हमने वह कानून बनाया है, हमको सब अख्तियार है। आप अभी राजा साहब को परवाना लिख दें, कल लोकल गवर्नमेंट को उसकी नकल भेज दीजिएगा। जिले के मालिक हम हैं, सूबे की सरकार नहीं। यहां बलवा हो जाएगा, तो हमको उसका इंतजाम करना पड़ेगा, सूबे की सरकार यहां न आएगी।

अमले थर्रा उठे, डिप्टी साहब को दिल में कोसने लगे—यह क्यों बीच में बोलते हैं। अंगरेज है, कहीं गुस्से में आकर मार बैठे, तो उसका क्या ठिकाना। जिले का बादशाह है, जो चाहे करे, अपने से क्या मतलब।

डिप्टी साहब की छाती भी धड़कने लगी, फिर जबान न खुली। परवाना तैयार हो गया, साहब ने उस पर हस्ताक्षर किया, उसी वक्त एक अरदली राजा साहब के पास परवाना लेकर पहुंचा। डिप्टी साहब यहां से उठे, तो मि० जॉन सेवक को इस हुक्म की सूचना दे दी।

जॉन सेवक भोजन कर रहे थे। यह समाचार सुना, तो भूख गायब हो गई। बोले—यह मि० क्लार्क को क्या सूझी?

मिसेज सेवक ने सोफी की ओर तीव्र दृष्टि से देखकर पूछा—तूने इनकार तो नहीं कर दिया? जरूर कुछ गोलमाल किया है।

सोफिया ने सिर झुकाकर कहा—बस, आपका गुस्सा मुझी पर रहता है, जो कुछ करती हूं, मैं ही करती हूं।

ईश्वर सेवक—प्रभु मसीह, इस गुनहगार को अपने दामन में छिपा। मैं आखिर तक मना करता रहा कि बुड्ढे की जमीन मत लो, मगर कौन सुनता है। दिल में कहते होंगे, यह तो सठिया गया है, पर यहां दुनिया देखे हुए हैं। राजा डरकर क्लार्क के पास आया होगा।

प्रभु सेवक—मेरा भी यही विचार है। राजा साहब ने स्वयं मिस्टर क्लार्क से कहा होगा। आजकल उनका शहर में निकलना मुश्किल हो रहा है। अंधे ने सारे शहर में हलचल मचा दी है।

जॉन सेवक—मैं सोच रहा था, कल शांति-रक्षा के लिए पुलिस के जवान मांगूंगा, इधर यह गुल खिला। कुछ बुद्धि काम नहीं करती कि क्या बात हो गई।

प्रभु सेवक—मैं तो समझता हूं, हमारे लिए इस जमीन को छोड़ देना ही बेहतर होगा। आज सूरदास न पहुंच जाता, तो गोदाम की कुशल न थी, हजारों रुपये का सामान खराब हो जाता, यह उपद्रव शांत होने वाला नहीं है।

जॉन सेवक ने उसकी हंसी उड़ाते हुए कहा–हां, बहुत अच्छी बात है, हम सब मिलकर उस अंधे के पास चलें और उसके पैरों पर सिर झुकाएं। आज उसके डर से जमीन छोड़ दूं, कल चमड़े की आढ़त तोड़ दूं, परसों यह बंगला छोड़ दूं और इसके बाद मुंह छिपाकर यहां से कहीं चला जाऊं। क्यों, यही सलाह है न? फिर शांति-ही-शांति है, न किसी से लड़ाई, न झगड़ा। यह सलाह तुम्हें मुबारक रहे। संसार शांति-भूमि नहीं, समर-भूमि है। यहां वीरों और पुरुषार्थियों की विजय होती है, निर्बल और कायर मारे जाते हैं। मि० क्लार्क और राजा महेन्द्रकुमार की हस्ती ही क्या है, सारी दुनिया भी अब इस जमीन को मेरे हाथों से नहीं छीन सकती। मैं सारे शहर में हलचल मचा दूंगा, सारे हिन्दुस्तान को हिला डालूंगा। अधिकारियों की स्वेच्छाचारिता की यह मिसाल देश के सभी पत्रों में उद्धृत की जाएगी, कौंसिलों और सभाओं में एक नहीं, सहस्र-सहस्र कंठों से घोषित की जाएगी और उसकी प्रतिध्वनि अंगरेजी पार्लियामेंट तक में पहुंचेगी। यह स्वजातीय उद्योग और व्यवसाय का प्रश्न है। इस विषय में समस्त भारत के रोजगारी, क्या हिन्दुस्तानी और क्या अंगरेज, मेरे सहायक होंगे, और गवर्नमेंट कोई इतनी निर्बुद्धि नहीं है कि वह व्यवसासियों की सम्मिलित ध्वनि पर कान बंद कर ले। यह व्यापार-राज्य का युग है। योरप के बड़े-बड़े शक्तिशाली साम्राज्य पूंजीपतियों के इशारों पर बनते-बिगड़ते रहते हैं, किसी गवर्नमेंट का साहस नहीं है कि उनकी इच्छा का विरोध करे। तुमने मुझे समझा क्या है, मैं वह नरम चारा नहीं हूं, जिसे क्लार्क और महेन्द्र खा जाएंगे।

प्रभु सेवक तो ऐसे सिटपिटाए कि फिर जबान न खुली। धीरे-से उठकर चले आए। सोफिया भी एक क्षण के लिए सन्नाटे में आ गई। फिर सोचने लगी -अगर पापा ने आंदोलन किया भी, तो उसका नतीजा कहीं बरसों में निकलेगा, और यही कौन कह सकता है कि क्या नतीजा होगा, अभी से उसकी क्या चिंता? उसके गुलाबी होंठों पर विजय-गर्व की मुस्कराहट दिखाई दी। इस समय वह इन्दु के चेहरे का उड़ता हुआ रंग देखने के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर सकती थी–काश, मैं वहां मौजूद होती। देखती तो कि इन्दु के चेहरे पर कैसी झेंप है। चाहे सदैव के लिए नाता टूट जाता, पर इतना जरूर कहती–देखा अपने राजा साहब का अधिकार और बल? इसी पर इतना इतराती थीं? किंतु क्या मालूम था कि क्लार्क इतनी जल्दी करेंगे।

भोजन करके वह अपने कमरे में गई और रानी इन्दु के मानसिक संताप का कल्पनातीत आनंद उठाने लगी–राजा साहब बदहवास, चेहरे का रंग उड़ा हुआ, आकर इन्दु के पास बैठ जाएंगे, इन्दु देवी लिफाफा देखेंगी, आंखों पर विश्वास न आएगा, फिर रोशनी तेज करके देखेंगी, तब राजा के आंसू पोंछेंगी–आप व्यर्थ इतने खिन्न होते हैं, आप अपनी ओर से शहर में डुग्गी पिटवा दीजिए कि हमने सूरदास की जमीन सरकार से लड़कर वापस दिला दी। सारे नगर में आपके न्याय की धूम मच जाएगी। लोग समझेंगे, आपने लोकमत का सम्मान किया है। खुशामदी टट्टू कहीं का! चाल से विलियम को उल्लू बनाना चाहता था। ऐसी मुंह की खाई है कि याद ही करेगा। खैर, आज न सही, कल, परसों, नरसों, कभी तो इन्दुदेवी से मुलाकात होगी ही। कहां तक मुंह छिपाएंगी।

यह सोचते-सोचते सोफिया मेज पर बैठ गई और इस वृत्तांत पर एक प्रहसन लिखने लगी। ईर्ष्या से कल्पना-शक्ति उर्वर हो जाती है। सोफिया ने आज तक कभी प्रहसन न लिखा था। किंतु इस समय ईर्ष्या के उद्गार में उसने एक घंटे के अंदर चार दृश्यों का एक विनोदपूर्ण

ड्रामा लिख डाला। ऐसी-ऐसी चोट करने वाली अन्योक्तियां और हृदय में चुटकियां लेने वाली फबतियां लेखनी से निकलीं कि उसे अपनी प्रतिभा पर स्वयं आश्चर्य होता था। उसे एक बार यह विचार हुआ कि मैं यह क्या बेवकूफी कर रही हूं। विजय पाकर परास्त शत्रु को मुंह चिढ़ाना परले सिरे की नीचता है, पर ईर्ष्या ने उसके समाधान के लिए एक युक्ति ढूंढ़ निकाली—ऐसे कपटी, सम्मान-लोलुप, विश्वास-घातक, प्रजा के मित्र बनकर उनकी गर्दन पर तलवार चलाने वाले, चापलूस रईसों की यही सजा है, यही उनके सुधार का एकमात्र साधन है। जनता की निगाहों में गिर जाने का भय ही उन्हें सन्मार्ग पर ला सकता है। उपहास का भय न हो, तो वे शेर हो जाएं, अपने सामने किसी को कुछ न समझें।

प्रभु सेवक मीठी नींद सो रहे थे। आधी रात बीत चुकी थी। सहसा सोफिया ने आकर जगाया, चौंककर उठ बैठे और यह समझकर कि शायद उसके कमरे में चोर घुस आए हैं, द्वार की ओर दौड़े। गोदाम की घटना आंखों के सामने फिर गई। सोफी ने हंसते हुए उनका हाथ पकड़ लिया और पूछा—कहां भागे जाते हो?

प्रभु सेवक—क्या चोर हैं? लालटेन जला लूं?

सोफिया—चोर नहीं है, जरा मेरे कमरे में चलो, तुम्हें एक चीज सुनाऊं। अभी लिखी है।

प्रभु सेवक—वाह-वाह ! इतनी-सी बात के लिए नींद खराब कर दी। क्या फिर सबेरा न होता, क्या लिखा है?

सोफिया—एक प्रहसन है।

प्रभु सेवक—प्रहसन। कैसा प्रहसन? तुमने प्रहसन लिखने का कब से अभ्यास किया?

सोफिया—आज ही। बहुत जब्त किया कि सबेरे सुनाऊंगी, पर न रहा गया।

प्रभु सेवक सोफिया के कमरे में आए और एक ही क्षण में दोनों ने ठट्टे मार-मारकर हंसना शुरू किया। लिखते समय सोफिया को जिन वाक्यों पर जरा भी हंसी न आई थी, उन्हीं को पढ़ते समय उससे हंसी रोके न रुकती थी। जब कोई हंसने वाली बात आ जाती, तो सोफी पहले ही से हंस पड़ती, प्रभु सेवक मुंह खोले हुए उसकी ओर ताकता, बात कुछ समझ में न आती, मगर उसकी हंसी पर हंसता, और ज्योंही बात समझ में आ जाती, हास्य-ध्वनि और भी प्रचंड हो जाती। दोनों के मुख आरक्त हो गए, आंखों से पानी बहने लगा, पेट में बल पड़ गए, यहां तक कि जबड़ों में दर्द होने लगा। प्रहसन के समाप्त होते-होते ठट्टे की जगह खांसी ने ले ली। खैरियत थी कि दोनों तरफ से द्वार बंद थे, नहीं तो उस निस्तब्धता में सारा बंगला हिल जाता।

प्रभु सेवक—नाम भी खूब रखा, राजा मुछेन्द्रसिंह। महेन्द्र और मुछेन्द्र की तुक मिलती है। पिलपिली साहब के हंटर खाकर मुछेन्द्रसिंह का झुक-झुककर सलाम करना खूब रहा। कहीं राजा साहब जहर न खा लें।

सोफिया—ऐसा हयादार नहीं है।

प्रभु सेवक—तुम प्रहसन लिखने में निपुण हो।

थोड़ी देर में दोनों अपने-अपने कमरे में सोए। सोफिया प्रातःकाल उठी और मि० क्लार्क का इंतजार करने लगी। उसे विश्वास था कि वह आते ही होंगे, उनसे सारी बातें स्पष्ट रूप से मालूम होंगी, अभी तो केवल अफवाह सुनी है। संभव है, राजा साहब घबराए हुए उनके

पास अपना दुखड़ा रोने के लिए आए हों, लेकिन आठ बज गए और क्लार्क का कहीं पता न था। वह भी तड़के आने को तैयार थे, पर आते हुए झेंपते थे कि कहीं सोफिया यह न समझे कि इस जरा-सी बात का मुझ पर एहसान जताने आए हैं। इससे अधिक भय यह था कि वहां लोगों को क्या मुंह दिखाऊंगा, या तो मुझे देखकर लोग दिल-ही-दिल में जलेंगे, या खुल्लमखुल्ला दोषारोपण करेंगे। सबसे ज्यादा खौफ ईश्वर सेवक का था कि कहीं वह दुष्ट, पापी, शैतान, काफिर न कह बैठें। वृद्ध आदमी हैं, उनकी बातों का जवाब ही क्या? इन्हीं कारणों से वह आते हुए हिचकिचाते थे और दिल में मना रहे थे कि सोफिया ही इधर आ निकले।

नौ बजे तक क्लार्क का इंतजार करने के बाद सोफिया अधीर हो उठी। इरादा किया, मैं ही चलूं कि सहसा मि॰ जॉन सेवक आकर बैठ गए और सोफिया को क्रोधोन्मत नेत्रों से देखकर बोले—सोफी, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। तुमने मेरे सारे मंसूबे खाक में मिला दिए।

सोफिया—मैंने ! मैंने क्या किया? मैं आपका आशय नहीं समझी।

जॉन सेवक—मेरा आशय यह है कि तुम्हारी ही दुष्प्रेरणा से मि॰ क्लार्क ने अपना पहला हुक्म रद्द किया है।

सोफिया—आपको भ्रम है।

जॉन सेवक—मैंने बिना प्रमाण के आज तक किसी पर दोषारोपण नहीं किया। मैं अभी इन्दुदेवी से मिलकर आ रहा हूं। उन्होंने इसके प्रमाण दिए कि यह तुम्हारी करतूत है।

सोफिया—आपको विश्वास है कि इन्दु ने मुझ पर जो इलजाम रखा है, वह ठीक है?

जॉन सेवक—उसे असत्य समझने के लिए मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है।

सोफिया—उसे सत्य समझने के लिए यदि इन्दु का वचन काफी है, तो उसे असत्य समझने के लिए मेरा वचन क्यों काफी नहीं है?

जॉन सेवक—सच्ची बात विश्वासोत्पादक होती है।

सोफिया—यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं अपनी बातों में वह नमक-मिर्च नहीं लगा सकती, लेकिन मैं इसका आपको विश्वास दिलाती हूं कि इन्दु ने हमारे और विलियम के बीच में द्वेष डालने के लिए यह स्वांग रचा है।

जॉन सेवक ने भ्रम में पड़कर कहा—सोफी, मेरी तरफ देख। क्या तू सच कह रही है?

सोफिया ने लाख यत्न किए कि पिता की ओर निश्शंक दृष्टि से देखे, किंतु आंखें आप-ही-आप झुक गईं। मनोवृत्ति वाणी को दूषित कर सकती है, पर अंगों पर उसका जोर नहीं चलता। जिह्वा चाहे निःशब्द हो जाए, पर आंखें बोलने लगती हैं। मिस्टर जॉन सेवक ने उसकी लज्जा-पीड़ित आंखें देखीं और क्षुब्ध होकर बोले—आखिर तुमने क्या समझकर ये कांटे बोए?

सोफिया—आप मेरे ऊपर घोर अन्याय कर रहे हैं। आपको विलियम ही से इसका स्पष्टीकरण कराना चाहिए। हां, इतना अवश्य कहूंगी कि सारे शहर में बदनाम होने की अपेक्षा मैं उस जमीन का आपके अधिकार से निकल जाना कहीं अच्छा समझती हूं।

जॉन सेवक—अच्छा । तो तुमने मेरी नेकनामी के लिए यह चाल चली है? तुम्हारा बहुत अनुगृहीत हूं। लेकिन यह विचार तुम्हें बहुत देर में हुआ। ईसाई-जाति यहां केवल अपने धर्म के कारण इतनी बदनाम है कि उससे ज्यादा बदनाम होना असंभव है। जनता का बस चले, तो आज हमारे सौ गिरजाघर मिट्टी के ढेर हो जाएं। अंगरेजों से लोगों को इतनी चिढ़ नहीं है। वे समझते

हैं कि अंगरेजों का रहन-सहन और आचार-विचार स्वजातीय है—उनके देश और जाति के अनुकूल हैं। लेकिन जब कोई हिन्दुस्तानी, चाहे वह किसी मत का हो, अंगरेजी आचरण करने लगता है, तो जनता उसे बिलकुल गया-गुजरा समझ लेती है, वह भलाई या बुराई के बंधनों से मुक्त हो जाता है, उससे किसी को सत्कार्य की आशा नहीं होती, उसके कुकर्मों पर किसी को आश्चर्य नहीं होता। मैं यह कभी न मानूंगा कि तुमने मेरी सम्मान-रक्षा के लिए यह प्रयास किया है। तुम्हारा उद्देश्य केवल मेरे व्यापारिक लक्ष्यों का सर्वनाश करना है। धार्मिक विवेचनाओं ने तुम्हारी व्यावहारिक बुद्धि को डावांडोल कर दिया है। तुम्हें इतनी समझ भी नहीं है कि त्याग और परोपकार केवल एक आदर्श है—कवियों के लिए, भक्तों के मनोरंजन के लिए, उपदेशकों की वाणी को अलंकृत करने के लिए। मसीह, बुद्ध और मूसा के जन्म लेने का समय अब नहीं रहा, धन-ऐश्वर्य निंदित होने पर भी मानवीय इच्छाओं का स्वर्ग है और रहेगा। खुदा के लिए तुम मुझ पर अपने धर्म-सिद्धांतों की परीक्षा मत करो, मैं तुमसे नीति और धर्म के पाठ नहीं पढ़ना चाहता। तुम समझती हो, खुदा ने न्याय, सत्य और दया का तुम्हीं को इजारेदार बना दिया है, और संसार में जितने धनी-मानी पुरुष हैं, सब-के-सब अन्यायी, स्वेच्छाचारी और निर्दयी हैं, लेकिन ईश्वरीय विधान की कायल होकर भी तुम्हारा विचार है कि संसार में असमता और विषमता का कारण केवल मनुष्य की स्वार्थपरायणता है, तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि तुमने धर्म-ग्रंथों का अनुशीलन आंखें बंद करके किया है, उनका आशय नहीं समझा। तुम्हारे इस दुर्व्यवहार से मुझे जितना दु:ख हो रहा है, उसे प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं, और यद्यपि मैं कोई वली या फकीर नहीं हूं, लेकिन याद रखना, कभी-न-कभी तुम्हें पितृद्रोह का खमियाजा उठाना पड़ेगा।

अहित-कामना क्रोध की पराकाष्ठा है। 'इसका फल तुम ईश्वर से पाओगे'—यह वाक्य कृपाण और भाले से ज्यादा घातक होता है। जब हम समझते हैं कि किसी दुष्कर्म का दंड देने के लिए भौतिक शक्ति काफी नहीं है, तब हम आध्यात्मिक दंड का विधान करते हैं। उससे न्यून कोई दंड हमारे संतोष के लिए काफी नहीं होता।

जॉन सेवक ये कोसने सुनाकर उठ गए। किंतु सोफिया को इन दुर्वचनों से लेशमात्र भी दु:ख न हुआ। उसने यह ऋण भी इन्दु ही के खाते में दर्ज किया और उसकी प्रतिहिंसा ने और उग्र रूप धारण किया, उसने निश्चय किया—इस प्रहसन को आज ही प्रकाशित करूंगी। अगर एडीटर ने न छापा, तो स्वयं पुस्तकाकार छपवाऊंगी और मुफ्त बाटूंगी। ऐसी कालिख लग जाए कि फिर किसी को मुंह न दिखा सके।

ईश्वर सेवक ने जॉन सेवक की कठोर बातें सुनीं, तो बहुत नाराज हुए। मिसेज सेवक को भी यह व्यवहार बुरा लगा। ईश्वर सेवक ने कहा—न जाने तुम्हें अपने हानि-लाभ का ज्ञान कब होगा। बनी हुई बात को निभाना मुश्किल नहीं है। बिगड़ी हुई बात को बनाना मुश्किल है। तुम्हें इस अवसर पर इतने धैर्य और गंभीरता से काम लेना था कि जितनी क्षति हो चुकी है, उसकी पूर्ति हो जाए। घर का एक कोना गिर पड़े, तो सारा घर गिरा देना बुद्धिमत्ता नहीं है। जमीन गई तो ऐसी कोई तदबीर सोचो कि उस पर फिर तुम्हारा कब्जा हो। यह नहीं कि जमीन के साथ अपनी मान-मर्यादा भी खो बैठो। जाकर राजा साहब को मि० क्लार्क के फैसले की अपील करने पर तैयार करो और मि० क्लार्क से अपना मेल-जोल बनाए रखो। यह समझ लो कि उनसे तुम्हें कोई नुकसान ही नहीं पहुंचा। सोफी को बरहम करके तुम क्लार्क को अनायास

अपना शत्रु बना रहे हो। हाकिमों तक पहुंच रहेगी, तो ऐसी कितनी ही जमीनें मिलेंगी। प्रभु मसीह, मुझे अपने दामन में छिपाओ और यह संकट टालो।

मिसेज सेवक—मैं तो इतनी मिन्नतों से उसे यहां लाई और तुम सारे किये-धरे पर पानी फेर देते हो।

ईश्वर सेवक—प्रभु, मुझे आसमान की बादशाहत दे। अगर यही मान लिया जाए कि सोफी के इशारे से यह बात हुई, तो भी हमें उससे कोई शिकायत न होनी चाहिए, बल्कि मेरे दिल में तो उसका सम्मान और बढ़ गया है, उसे खुदा ने सच्ची रोशनी प्रदान की है, उसमें भक्ति और विश्वास की बरकत है। उसने जो कुछ किया है, उसकी प्रशंसा न करना न्याय का गला घोंटना है। प्रभु मसीह ने अपने को दीन-दु:खी प्राणियों पर बलिदान कर दिया। दुर्भाग्य से हममें उतनी श्रद्धा नहीं है। हमें अपनी स्वार्थपरता पर लज्जित होना चाहिए। सोफी के पवित्र मनोभावों की उपेक्षा करना उचित नहीं। पापी पुरुष किसी साधु को देखकर दिल में शरमाता है, उससे बैर नहीं ठानता।

जॉन सेवक—यह न भक्ति है और न धर्मानुराग, केवल दुराग्रह और द्वेष है।

ईश्वर सेवक ने इसका कुछ जवाब न दिया। अपनी लकड़ी टेकते हुए सोफी के कमरे में आए और बोले—बेटी, मेरे आने से तुम्हारा कोई हरज तो नहीं हुआ?

सोफिया—नहीं-नहीं, आइए, बैठिए।

ईश्वर सेवक—ईसू, इस गुनाहगार को ईमान की रोशनी दे। अभी जॉन सेवक ने तुम्हें बहुत कुछ बुरा-भला कहा है, उन्हें क्षमा करो। बेटी, दुनिया में खुदा की जगह अपना पिता ही होता है, उसकी बातों का बुरा न मानना चाहिए। तुम्हारे ऊपर खुदा का हाथ है, खुदा की बरकत है। तुम्हारे पिता का सारा जीवन स्वार्थ-सेवा में गुजरा है और वह अभी तक उसका उपासक है। खुदा से दुआ करो कि उसके हृदय का अंधकार ज्ञान की दिव्य ज्योति से दूर कर दे। जिन लोगों न हमारे प्रभु मसीह को नाना प्रकार के कष्ट दिए थे, उनके विषय में प्रभु ने कहा था—खुदा, उन्हें मुआफ कर। वे नहीं जानते कि हम क्या करते हैं।

सोफी—मैं आपसे सच कहती हूं, मुझे पापा की बातों का जरा भी मलाल नहीं है, लेकिन वह मुझ पर मिथ्या दोष लगाते हैं। इन्दु की बातों के सामने मेरी बातों को कुछ समझते ही नहीं।

ईश्वर सेवक—बेटी, यह उनकी भूल है। मगर तुम अपने दिल से उन्हें क्षमा कर दो। सांसारिक प्राणियों की इतनी निंदा की गई है, पर न्याय से देखो, तो वे कितनी दया के पात्र हैं। आखिर आदमी जो कुछ करता है, अपने बाल-बच्चों के लिए ही तो करता है—उन्हीं के सुख और शांति के लिए, उन्हीं को संसार की वक्र दृष्टि से बचाने के लिए वह निंदा, अपमान, सब कुछ सहर्ष सह लेता है, यहां तक कि अपनी आत्मा और धर्म को भी उन पर अर्पित कर देता है। ऐसी दशा में जब वह देखता है कि जिन लोगों के हित के लिए मैं अपना रक्त और पसीना एक कर रहा हूं, वे ही मुझसे विरोध कर रहे हैं, तो वह झुंझला जाता है। तब उसे सत्यासत्य का विवेक नहीं रहता। देखो, क्लार्क से भूलकर भी इन बातों का जिक्र न करना, नहीं तो आपस में मनोमालिन्य बढ़ेगा। वचन देती हो?

ईश्वर सेवक जब उठकर चले गए, तो प्रभु सेवक ने आकर पूछा—वह प्रहसन कहां भेजा?

सोफिया—अभी तो कहीं नहीं भेजा, क्या भेज ही दूं?

प्रभु सेवक—जरूर-जरूर मजा आ जाएगा, सारे शहर में धूम मच जाएगी।

सोफिया–जरा दो-एक दिन देख लूं।

प्रभु सेवक–शुभ कार्य में विलंब न होना चाहिए, आज ही भेजो, मैंने भी आज अपनी कथा समाप्त कर दी। सुनाऊं?

सोफिया–हां-हां, पढ़ो।

प्रभु सेवक ने अपनी कविता सुनानी शुरू की। एक-एक शब्द करुण रस में सराबोर था। कथा इतनी दर्दनाक थी कि सोफी की आंखों से आंसू की झड़ी लग गई। प्रभु सेवक भी रो रहे थे। क्षमा और प्रेम के भाव एक-एक शब्द से उसी भांति टपक रहे थे, जैसे आंखों से आंसू की बूंदें। कविता समाप्त हो गई, तो सोफी ने कहा–मैंने कभी अनुमान भी न किया था कि तुम इस रस का आस्वादन इतनी कुशलता से करा सकते हो। जी चाहता है, तुम्हारी कलम चूम लूं। उफ! कितनी अलौकिक क्षमा है। बुरा न मानना, तुम्हारी रचना तुमसे कहीं ऊंची है। ऐसे पवित्र, कोमल और ओजस्वी भाव तुम्हारी कलम से कैसे निकल आते हैं?

प्रभु सेवक–उसी तरह, जैसे इतने हास्योत्पादक और गर्वनाशक भाव तुम्हारी कलम से निकले। तुम्हारी रचना तुमसे कहीं नीची है।

सोफी–मैं क्या, और मेरी रचना क्या। तुम्हारा एक-एक छंद बलि जाने के योग्य है। वास्तव में क्षमा मानवीय भावों में सर्वोपरि है। दया का स्थान इतना ऊंचा नहीं। दया वह दाना है, जो पोली धरती पर उगता है। इसके प्रतिकूल क्षमा वह दाना है, जो कांटों में उगता है। दया वह धारा है, जो समतल भूमि पर बहती है, क्षमा कंकड़ों और चट्टानों में बहने वाली धारा है। दया का मार्ग सीधा और सरल है; क्षमा का मार्ग टेढ़ा और कठिन है। तुम्हारा एक-एक शब्द हृदय में चुभ जाता है। आश्चर्य है, तुममें क्षमा का लेश भी नहीं है।

प्रभु सेवक–सोफी, भावों के सामने आचरण का कोई महत्व नहीं है। कवि का कर्मक्षेत्र सीमित होता है, पर भावक्षेत्र अनंत और अपार है। उस प्राणी को तुच्छ मत समझो, जो त्याग और निवृत्ति का राग अलापता हो, पर स्वयं कौड़ियों पर जान देता हो। संभव है, उसकी वाणी किसी महान् पापी के हृदय में जा पहुंचे।

सोफी–जिसके वचन और कर्म में इतना अंतर हो, उसे किसी और ही नाम से पुकारना चाहिए।

प्रभु सेवक–नहीं सोफी, यह बात नहीं है। कवि के भाव बतलाते हैं कि यदि उसे अवसर मिलता, तो वह क्या कुछ हो सकता था। अगर वह अपने भावों की उच्चता को न प्राप्त कर सका, तो उसका कारण केवल यह है कि परिस्थिति उसके अनुकूल न थी।

भोजन का समय आ गया। इसके बाद सोफी ने ईश्वर सेवक को बाइबिल सुनाना शुरू किया। आज की भांति विनीत और शिष्ट वह कभी न हुई थी। ईश्वर सेवक की ज्ञान-पिपासा उसकी चेतना को दबा बैठती थी। निद्रावस्था ही उनकी आंतरिक जागृति थी। कुर्सी पर लेटे हुए वह खर्राटे ले-लेकर देव-ग्रंथ का श्रवण करते थे। पर आश्चर्य यह था कि पढ़ने वाला उन्हें निद्रा-मग्न समझकर ज्योंही चुप हो जाता, वह तुरंत बोल उठते–हां-हां, पढ़ो, चुप क्यों हो, मैं सुन रहा हूं।

सोफी को बाइबिल का पाठ करते-करते संध्या हो गई, तो उसका गला छूटा। ईश्वर सेवक बाग में टहलने चले गए और प्रभु सेवक को सोफी से गपशप करने का मौका मिला।

सोफी–बड़े पापा एक बार पकड़ पाते हैं, तो फिर गला नहीं छोड़ते।

प्रभु सेवक—मुझसे कभी बाइबिल पढ़ने को नहीं कहते। मुझसे तो क्षण-भर भी वहां न ठा जाय। तुम न जाने कैसे बैठी पढ़ती रहती हो।

सोफी—क्या करूं, उन पर दया आती है।

प्रभु सेवक—बना हुआ है। मतलब की बात पर कभी नहीं चूकता। यह सारी भक्ति केवल दखाने की है।

सोफी—यह तुम्हारा अन्याय है। उनमें और चाहे कोई गुण न हो, पर प्रभु मसीह पर उनका ढ़ विश्वास है। चलो, कहीं सैर करने चलते हो?

प्रभु सेवक—कहां चलोगी? चलो, यहीं हौज के किनारे बैठकर कुछ काव्य-चर्चा करें। झे तो इससे ज्यादा आनंद और किसी बात में नहीं मिलता।

सोफी—चलो, पांडेपुर की तरफ चलें। कहीं सूरदास मिल गया, तो उसे यह खबर सुनाएंगे।

प्रभु सेवक—फूला न समाएगा, उछल पड़ेगा।

सोफी—जरा शह पा जाए, तो इस राजा को शहर से भगाकर ही छोड़े।

दोनों ने सड़क पर आकर एक तांगा किया और पांडेपुर चले। सूर्यास्त हो चुका था। कचहरी के अमले बगल में बस्ते दबाए, भीरुता और स्वार्थ की मूर्ति बने चले आते थे। बंगलों में टेनिस हो रहा था। शहर के शोहदे दीन-दुनिया से बेखबर पान वालों की दूकानों पर जमा थे। बनियों की दूकानों पर मजदूरों की स्त्रियां भोजन की सामग्रियां ले रही थीं। तांगा बरना नदी के पुल पर पहुंचा था कि अकस्मात् आदमियों की एक भीड़ दिखाई दी। सूरदास खंजरी बजाकर गा रहा था। सोफी ने तांगा रोक दिया और तांगे वाले से कहा—जाकर उस अंधे को बुला ला।

एक क्षण में सूरदास लाठी टेकता हुआ आया और सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

सोफी—मुझे पहचानते हो सूरदास?

सूरदास—हां, भला हजूर ही को न पहचानूंगा।

सोफी—तुमने तो हम लोगों को सारे शहर में खूब बदनाम किया।

सूरदास—फरियाद करने के सिवा मेरे पास और कौन बल था?

सोफी—फरियाद का क्या नतीजा निकला?

सूरदास—मेरी मनोकामना पूरी हो गई। हाकिमों ने मेरी जमीन मुझे दे दी। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि कोई काम तन-मन से किया जाय, और उसका कुछ फल न निकले। तपस्या से तो भगवान् मिल जाते हैं। बड़े साहब के अरदली ने कल रात ही को मुझे यह हाल सुनाया। आज पांच बराम्हनों को भोजन कराना है। कल घर चला जाऊंगा।

प्रभु सेवक—मिस साहब ही ने बड़े साहब से कह-सुनकर तुम्हारी जमीन दिलवाई है। इनके पिता और राजा साहब दोनों ही इनसे नाराज हो गए हैं। इनकी तुम्हारे ऊपर बड़ी दया है।

सोफी—प्रभु, तुम बड़े पेट के हल्के हो। यह कहने से क्या फायदा कि मिस साहब ने जमीन दिलवाई है? यह तो कोई बहुत बड़ा काम नहीं है।

सूरदास—साहब, यह तो मैं उसी दिन जान गया था, जब मिस साहब से पहले-पहल बातें हुई थीं। मुझे उसी दिन मालूम हो गया था कि इनके चित में दया और धरम है। इसका फल भगवान् इनको देंगे?

सोफी–सूरदास, यह मेरी सिफारिश का फल नहीं, तुम्हारी तपस्या का फल है। राज साहब को तुमने खूब छकाया। अब थोड़ी-सी कसर और है। ऐसा बदनाम कर दो कि शहर म किसी को मुंह न दिखा सकें, इस्तीफा देकर अपने इलाके की राह लें।

सूरदास–नहीं मिस साहब, यह खिलाड़ियों की नीति नहीं है। खिलाड़ी जीतकर हारने वाले खिलाड़ी की हंसी नहीं उड़ाता, उससे गले मिलता है और हाथ जोड़कर कहता है–'भैया, अग हमने खेल में तुमसे कोई अनुचित बात कही हो, या कोई अनुचित ब्यौहार किया हो, तो हम माफ करना।' इस तरह दोनों खिलाड़ी हंसकर अलग होते हैं, खेल खतम होते ही दोनों मि बन जाते हैं, उनमें कोई कपट नहीं रहता। मैं आज राजा साहब के पास गया था और उनके हा जोड़ आया। उन्होंने मुझे भोजन कराया। जब चलने लगा तो बोले, मेरा दिल तुम्हारी ओर से साप है, कोई संका मत करना।

सोफिया–ऐसे दिल के साफ तो नहीं हैं, मौका पाकर अवश्य दगा करेंगे, मैं तुमसे क देती हूं।

सूरदास–नहीं मिस साहब, ऐसा मत कहिए, किसी पर संदेह करने से अपना चित्त मली होता है। वह बिदवान हैं, धरमात्मा हैं, कभी दगा नहीं कर सकते। और जो दगा ही करेंगे, त उन्हीं का धरम जाएगा; मुझे क्या, मैं फिर इसी तरह फरियाद करता रहूंगा। जिस भगवान् ने अबक बार सुना है, वही भगवान् फिर सुनेंगे।

प्रभु सेवक–और जो कोई मुआमला खड़ा करके कैद करा दिया तो?

सूरदास–(हंसकर) इसका फल उन्हें भगवान् से मिलेगा। मेरा धरम तो यही कि जब कोई मेरी चीज पर हाथ बढ़ाए, तो उसका हाथ पकड़ लूं। वह लड़े, तो लड़ूं और उ चीज के लिए प्रान तक दे दूं। चीज मेरे हाथ आएगी इससे मुझे मतलब नहीं; मेरा का तो लड़ना है, और वह भी धरम की लड़ाई लड़ना। अगर राजा साहब दगा भी करें, तो मैं उन दगा न करूंगा।

सोफिया–लेकिन मैं तो राजा साहब को इतने सस्ते न छोड़ूंगी।

सूरदास–मिस साहब, आप बिदवान होकर ऐसी बातें करती हैं, इसका मुझे अचरज ह आपके मुंह से ये बातें सोभा नहीं देतीं। नहीं, आप हंसी कर रही हैं। आपसे कभी ऐसा का नहीं हो सकता।

इतने में किसी ने पुकारा–सूरदास, चलो, ब्राह्मण लोग आ गए हैं।

सूरदास लाठी टेकता हुआ घाट की ओर चला। तांगा भी चला।

प्रभु सेवक ने कहा–चलोगी मि॰ क्लार्क की तरफ?

सोफिया–नहीं, घर चलो।

रास्ते में कोई बातचीत नहीं हुई। सोफिया किसी विचार में मग्न थी। दोनों आदमी सिग पहुंचे, तो चिराग जल चुके थे। सोफी सीधे अपने कमरे में गई, मेज का ड्राअर खोला, प्रहस का हस्त-लेख निकाला और टुकड़े-टुकड़े करके जमीन पर फेंक दिया।

इक्कीस

ूरदास के आर्तनाद ने महेन्द्रकुमार की ख्याति और प्रतिष्ठा को जड़ से हिला दिया। वह आकाश
े बातें करने वाला कीर्ति-भवन क्षण भर में धाराशायी हो गया। नगर के लोग उनकी सेवाओं
ो भूल-से गए। उनके उद्योग से नगर का कितना उपकार हुआ था, उसकी किसी को याद
ी न रही। नगर की नालियां और सड़कें, बगीचे और गलियां, उनके अविश्रांत प्रयत्नों की कितनी
नुगृहीत थीं। नगर की शिक्षा और स्वास्थ्य को उन्होंने किस हीनावस्था से उठाकर उन्नति के
ार्ग पर लगाया था, इसकी ओर कोई ध्यान ही न देता था। देखते-देखते युगांतर हो गया। लोग
नके विषय में आलोचनाएं करते हुए कहते—अब वह जमाना नहीं रहा, जब राजे-रईसों के
ाम आदर से लिए जाते थे, जनता को स्वयं ही उनमें भक्ति होती थी। वे दिन बिदा हो गए।
ेश्वर्य-भक्ति प्राचीन काल की राज्य-भक्ति ही का एक अंश थी। प्रजा अपने राजा, जागीरदार,
हां तक कि अपने जमींदार पर सिर कटा देती थीं। यह सर्वमान्य नीति-सिद्धांत था कि राजा
ोक्ता है, प्रजा भोग्य है। यही सृष्टि का नियम था, लेकिन आज राजा और प्रजा में भोक्ता और
ोग्य का संबंध नहीं है, अब सेवक और सेव्य का संबंध है। अब अगर राजा की इज्जत है,
ो उसकी सेवा-प्रवृत्ति के कारण। अन्यथा उसकी दशा दांतों-तले दबी हुई जिह्वा की सी है।
जा को कभी उस पर विश्वास नहीं आता। अब जनता उसी का सम्मान करती है, उसी पर
योछावर होती है, जिसने अपना सर्वस्व प्रजा पर अर्पित कर दिया हो, जो त्याग-धन का धनी हो।
ब तक कोई सेवा-मार्ग पर चलना नहीं सीखता, जनता के दिलों में घर नहीं कर पाता।

राजा साहब को अब मालूम हुआ कि प्रसिद्धि श्वेत वस्त्र के सदृश है, जिस पर एक धब्बा
ी नहीं छिप सकता। जिस तरफ उनकी मोटर निकल जाती, लोग उन पर आवाजें कसते, यहां तक
ि कभी-कभी तालियां भी पड़तीं। बेचारे बड़ी विपत्ति में फंसे हुए थे। ख्याति-लाभ करने चले थे,
र्यादा से भी हाथ धोया। और अवसरों पर इन्दु से परामर्श कर लिया करते थे, इससे हृदय को शांति
िलती थी, पर अब वह द्वार भी बंद था। इन्दु से सहानुभूति की कोई आशा न थी।

रात के नौ बजे थे। राजा साहब अपने दीवानखाने में बैठे हुए इसी समस्या पर विचार
र रहे थे—लोग कितने कृतघ्न होते हैं ! मैंने अपने जीवन के सात वर्ष उनकी निरंतर सेवा में
यतीत कर दिये, अपना कितना समय, कितना अनुभव, कितना सुख उनकी नजर किया !
सका मुझे आज यह उपहार मिल रहा है कि एक अंधा भिखारी मुझे सारे शहर में गालियां
ेता फिरता है और कोई उसकी जबान नहीं पकड़ता, बल्कि लोग उसे और भी उकसाते और
त्तेजित करते हैं। इतने सुव्यवस्थित रूप से अपने इलाके का प्रबंध करता, तो अब तक निकासी
ें लाखों रुपये की वृद्धि हो गई होती। एक दिन वह था कि जिधर से निकल जाता था,
ोग खड़े हो-होकर सलाम करते थे, सभाओं में मेरा व्याख्यान सुनने के लिए लोग उत्सुक
हते थे और मुझे अंत में बोलने का अवसर मिलता था, और एक दिन यह है कि मुझ पर तालियां
ड़ती हैं और मेरा स्वांग निकालने की तैयारियां हो जाती हैं। अंधे में फिर भी विवेक है, नहीं
ो बनारस के शोहदे दिन-दहाड़े मेरा घर लूट लेते।

सहसा अरदली ने आकर मि० क्लार्क का आज्ञा-पत्र उनके सामने रख दिया। राजा साहब
े चौंककर लिफाफा खोला, तो अवाक् रह गए। विपत्ति-पर-विपत्ति। रही-सही इज्जत भी
ाक में मिल गई।

चपरासी–हुजूर, कुछ जवाब देंगे?

राजा साहब–जवाब की जरूरत नहीं।

चपरासी–कुछ इनाम नहीं मिला। हुजर ही....

राजा साहब ने उसे और कुछ न कहने दिया। जेब से एक रुपया निकालकर फेंक दिया। अरदली चला गया।

राजा साहब सोचने लगे–दुष्ट को इनाम मांगते शर्म भी नहीं आती, मानो मेरे नाम कोई धन्यवाद-पत्र लाए हैं। कुत्ते हैं, और क्या, कुछ न दो, तो काटने दौड़ें, झूठी-सच्ची शिकायतें करें। समझ में नहीं आता, क्लार्क ने क्यों अपना हुक्म मंसूख कर दिया। जॉन सेवक से किसी बात पर अनबन हो गई क्या? शायद सोफिया ने क्लार्क को ठुकरा दिया। चलो, यह भी अच्छा ही हुआ। लोग यह तो कहेंगे ही कि अंधे ने राजा साहब को नीचा दिखा दिया, पर इस दुहाई से तो गला छूटेगा।

उनकी दशा इस समय उस आदमी की-सी थी, जो अपने मुंह-जोर घोड़े के भाग जाने पर खश हो। अब हड्डियों के टूटने का भय तो नहीं रहा। मैं घाटे में नहीं हूं। अब रूठी रानी भी प्रसन्न हो जायंगी। इन्दु से कहूंगा, मैंने ही मिस्टर क्लार्क से अपना फैसला मंसूख करने के लिए कहा है।

वह कई दिन से इन्दु से मिलने न गए थे। अंदर जाते हुए डरते थे कि इन्दु के तानों का क्या जवाब दूंगा। इन्दु भी इस भय से उनके पास न आती थी कि कहीं फिर मेरे मुंह से कोई अप्रिय शब्द न निकल जाय। प्रत्येक दांपत्य-कलह के पश्चात् जब वह उसके कारणों पर शांत हृदय से विचार करती थी, तो उसे ज्ञात होता था कि मैं ही अपराधिनी हूं, और अपने दुराग्रह पर उसे हार्दिक दु:ख होता था। उसकी माता ने बाल्यावस्था ही से पतिव्रत का बड़ा ऊंचा आदर्श उसके सम्मुख रखा था। उस आदर्श से गिरने पर वह मन-ही-मन कुढ़ती और अपने को धिक्कारती थी–मेरा धर्म उनकी आज्ञा का पालन करना है। मुझे तन-मन से उनकी सेवा करनी चाहिए। मेरा सबसे पहला कर्त्तव्य उनके प्रति है, देश और जाति का स्थान गौण है, पर मेरा दुर्भाग्य बार-बार मुझे कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित कर देता है। मैं इस अंधे के पीछे बरबस उनसे उलझ पड़ी। वह विद्वान् हैं, विचारशील हैं। यह मेरी धृष्टता है कि मैं उनकी अगुआई करने का दावा करती हूं। जब मैं छोटी-छोटी बातों में मानापमान का विचार करती हूं, तो उनसे कैसे आशा करूं कि वह प्रत्येक विषय में निष्पक्ष हो जाएं।

कई दिनों तक मन में यह खिचड़ी पकाते रहने के कारण उसे सूरदास से चिढ़ हो गई। सोचा–इसी अभागे के कारण मैं यह मनस्ताप भोग रही हूं। इसी ने यह मनोमालिन्य पैदा कराया है। आखिर उस जमीन से मुहल्ले वालों ही का निस्तार होता है न, तो जब उन्हें कोई आपत्ति नहीं है, तो अंधे की क्यों नानी मरती है। किसी की जमीन पर कोई जबरदस्ती क्यों अधिकार करे, यह ढकोसला है, और कुछ नहीं। निर्बल जन आदिकाल से ही सताए जाते हैं और सताए जाते रहेंगे। जब यह व्यापक नियम है, तो क्या एक कम, क्या एक ज्यादा।

इन्हीं दिनों सूरदास ने राजा साहब को शहर में बदनाम करना शुरू किया, तो उसके ममत्व का पलड़ा बड़ी तेजी से दूसरी ओर झुका। उसे सूरदास के नाम से चिढ़ हो गई–यह टके का आदमी और इसका इतना साहस कि हम लोगों के सिर चढ़े। अगर साम्यवाद का यही अर्थ है, तो ईश्वर हमें इससे बचाये। यह दिनों का फेर है, नहीं तो इसकी क्या मजाल थी कि हमारे ऊपर छींटे उड़ाता।

इन्दु दीन जनों पर दया कर सकती थी—दया में प्रभुत्व का भाव अंतर्हित है—न्याय न कर सकती थी, न्याय की भित्ति साम्य पर है। सोचती—यह उस बदमाश को पुलिस के हवाले क्यों नहीं कर देते? मुझसे तो यह अपमान न सहा जाता। परिणाम चाहे कुछ होता, पर इस समय तो इस बुरी तरह पेश आती कि देखने वालों के रोएं खड़े हो जाते।

वह इन्हीं कुत्सित विचारों में पड़ी हुई थी कि सोफिया ने जाकर उसके सामने राजा साहब पर सूरदास के साथ अन्याय करने का अपराध लगाया, खुली हुई धमकी दे गई। इन्दु को इतना क्रोध आया कि सूरदास को पाती, तो उसका मुंह नोच लेती। सोफिया के जाने के बाद वह क्रोध में भरी हुई राजा साहब से मिलने आई, पर बाहर मालूम हुआ कि वह कुछ दिन के लिए इलाके पर गए हुए हैं। ये दिन उसने बड़ी बेचैनी में काटे। अफसोस हुआ कि गए और मुझसे पूछा भी नहीं।

राजा साहब जब इलाके में लौटे, तो उन्हें मि. क्लार्क का परवाना मिला। वह उस पर विचार कर रहे थे कि इन्दु उनके पास आई और बोली—इलाके पर गए और मुझे खबर तक न हुई, मानो मैं घर में हूं ही नहीं।

राजा ने लज्जित होकर कहा—ऐसा ही एक जरूरी काम था। एक दिन की भी देर हो जाती, तो इलाके में फौजदारी हो जाती। मुझे अब अनुभव हो रहा है कि ताल्लुकेदारों के अपने इलाके पर न रहने से प्रजा को कितना कष्ट होता है।

'इलाके में रहते, तो कम-से-कम इतनी बदनामी तो न होती।'

'अच्छा, तुम्हें भी मालूम हो गया। तुम्हारा कहना न मानने में मुझसे बड़ी भूल हुई। इस अंधे ने ऐसी विपत्ति में डाल दिया कि कुछ करते-धरते नहीं बनता। सारे शहर में बदनाम कर रहा है। न जाने शहर वालों को इससे इतनी सहानुभूति कैसे हो गई। मुझे इसकी जरा भी आशंका न थी कि यह शहर वालों को मेरे विरुद्ध खड़ा कर देगा।'

'मैंने तो जब से सुना है कि अंधा तुम्हें बदनाम कर रहा है, तब से ऐसा क्रोध आ रहा है कि वश चले, तो उसे जीता चुनवा दूं।'

राजा साहब ने प्रसन्न होकर कहा—तो हम दोनों घूम-घामकर एक ही लक्ष्य पर आ पहुंचे।

'इस दुष्ट को ऐसा दंड देना चाहिए कि उम्र-भर याद रहे।'

'मिस्टर क्लार्क ने इसका फैसला खुद ही कर दिया। सूरदास की जमीन वापस कर दी गई।'

इन्दु को ऐसा मालूम हुआ कि ज्मीन धंस रही है और मैं उसमें समाई जा रही हूं। वह दीवार न थाम लेती, तो जरूर गिर पड़ती—सोफिया ने मुझे यों नीचा दिखाया है। मेरे साथ यह कूट-नीति चली है, हमारी मर्यादा को धूल में मिलाना चाहती है। चाहती है कि मैं उसके कदम चूमूं। कदापि नहीं।

उसने राजा साहब से कहा—अब आप क्या करेंगे?

'कुछ नहीं, करना क्या है। सच पूछो, तो मुझे इसका जरा भी दु:ख नहीं है। मेरा तो गला छूट गया।'

'और हेठी कितनी हुई।'

'हेठी जरूर हुई, पर इस बदनामी से अच्छी है।'

इन्दु का मुख-मंडल गर्व से तमतमा उठा। बोली—यह बात आपके मुंह से शोभा नहीं

देती। यह नेकनामी-बदनामी का प्रश्न नहीं है, अपनी मर्यादा-रक्षा का प्रश्न है। आपकी कुल-मर्यादा पर आघात हुआ है, उसकी रक्षा करना आपका परम धर्म है, चाहे उसके लिए न्याय के सिद्धांतों की बलि ही क्यों न देनी पड़े। मि० क्लार्क की हस्ती ही क्या है, मैं किसी सम्राट के हाथों भी अपनी मर्यादा की हत्या न होने दूंगी।, चाहे इसके लिए मुझे अपना सर्वस्व, यहां तक कि प्राण भी देना पड़े। आप तुरंत गवर्नर को मि० क्लार्क के न्याय-विरुद्ध हस्तक्षेप की सूचना दीजिए। हमारे पूर्वजों ने अंगरेजों की उस समय प्राण रक्षा की थी, जब उनकी जानों के लाले पड़े हुए थे। सरकार उन एहसानों को मिटा नहीं सकती। नहीं, आप स्वयं जाकर गवर्नर से मिलिए, उनसे कहिए कि मि० क्लार्क के हस्तक्षेप से मेरा अपमान होगा, मैं जनता की दृष्टि से गिर जाऊंगा और शिक्षित वर्ग को सरकार में भी लेश-मात्र विश्वास न रहेगा। साबित कर दीजिए कि किसी रईस का अपमान करना दिल्लगी नहीं है।

राजा साहब ने चिंतित स्वर में कहा—मि० क्लार्क से सदा के लिए विरोध हो जाएगा मुझे आशा नहीं कि उनके मुकाबले में गवर्नर मेरा पक्ष ले तुम इन लोगों को जानती नहीं हो। इनकी अफसरी-मातहती दिखाने भर की है, वास्तव में सब एक हैं। एक जो करता है, सब उसका समर्थन करते हैं। व्यर्थ की हैरानी होगी।

'अगर गवर्नर न सुने, तो वाइसराय से अपील कीजिए। विलायत जाकर वहां से नेताओं से मिलिए। यह कोई छोटी बात नहीं है, आपके सिर पर एक महान् उत्तरदायित्व का भार आ पड़ा है, इससे जौ-भर दबना आपको सदा के लिए कलंकित कर देगा।

राजा साहब ने एक मिनट तक विचार करके कहा—तुम्हें यहां के शिक्षितों का हाल मालूम नहीं है। तुम समझती होगी कि वे मेरी सहायता करेंगे, या कम-से-कम सहानुभूति ही दिखाएंगे, पर जिस दिन मैंने प्रत्यक्ष रूप से मि० क्लार्क की शिकायत की, उसी दिन से लोग मेरे घर आना-जाना छोड़ देंगे। कोई मुंह तक न दिखाएगा। लोग रास्ता कतराकर निकल जाएंगे। इतना ही नहीं, गुप्त रूप से क्लार्क से मेरी शिकायतें करेंगे और मुझे हानि पहुंचाने में कोई बात उठा न रखेंगे। हमारे भद्र समाज की नैतिक दुर्बलता अत्यंत लज्जाजनक है। सब-के-सब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सरकार के आश्रित हैं। जब तक उन्हें मालूम होगा कि हुक्काम से मेरी मैत्री है, तभी तक मेरा आदर-सत्कार करते हैं। जिस दिन मालूम होगा कि जिलाधीश की निगाह मुझसे फिर गई, उसी दिन से मेरे मान-सम्मान की इति समझो। अपने बंधुओं की यही दुर्बलता और कुटिल स्वार्थ-लोलुपता है, जो हमारे निर्भीक, सत्यवादी और हिम्मत के धनी नेताओं को हताश कर देती है।

राजा साहब ने बहुत हीले-हवाले किए, परिस्थिति का बहुत ही दुराशापूर्ण चित्र खींचा, लेकिन इन्दु अपने ध्येय से जौ-भर भी न टली। वह उनके हृदय में उस सोए हुए भाव को जगाना चाहती थी, जो कभी प्रताप और सांगा, टीपू और नाना के नाम पर लहालोट हो जाता था। वह जानती थी कि वह भाव प्रभुत्व-प्रेम की घोर निद्रा में मग्न है, मरा नहीं। बोली—अगर मान लें कि आपकी सारी शंकाएं पूरी हो जायं, आपका सम्मान मिट जाय, सारा शहर आपका दुश्मन हो जाए, हुक्काम आपको संदेह की दृष्टि से देखने लगें, यहां तक कि आपके इलाके के जब्त होने की नौबत भी आ जाय, तब भी मैं आपसे यही कहती जाऊंगी, अपने स्थान पर अटल रहिए। यही हमारा क्षात्र धर्म है। आज ही यह बात समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो जाएगी और सारी दुनिया नहीं, तो कम-से-कम समस्त भारत आपकी ओर उत्सुक नेत्रों से देखेगा कि आप जातीय

गौरव की कितने धैर्य, साहस और त्याग के साथ रक्षा करते हैं। इस संग्राम में हमारी हार भी महान् विजय का स्थान पाएगी, क्योंकि वह पशुबल की नहीं, आत्मबल की लड़ाई है। लेकिन मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि आपकी शंकाएं निर्मूल सिद्ध होंगी। एक कर्मचारी के अन्याय की फरियाद सरकार के कानों में पहुंचाकर आप उस सुदृढ़ राजभक्ति का परिचय देंगे, सरकार की न्याय-नीति पर पूर्ण विश्वास की घोषणा करेंगे, जो साम्राज्य का आधार है। बालक माता के सामने रोए, हठ करे, मचले; पर माता की ममता क्षण-मात्र भी कम नहीं होती। मुझे तो निश्चय है कि सरकार अपने न्याय की धाक जमाने के लिए आपका और भी सम्मान करेगी। जातीय आंदोलन के नेता प्राय: उच्च कोटि की उपाधियों से विभूषित किए जाते हैं, और, कई कारण नहीं कि आपको भी वही सम्मान न प्राप्त हो।

यह युक्ति राजा साहब को विचारणीय जान पड़ी। बोले--अच्छा, सोचूंगा। इतना कहकर बाहर चले गए।

दूसरे दिन सुबह जॉन सेवक राजा साहब से मिलने आए। उन्होंने भी यही सलाह दी कि इस मुआमले में जरा भी न दबना चाहिए। लड़ूंगा तो मैं, आप केवल मेरी पीठ ठोकते जाइएगा। राजा साहब को कुछ ढाढस हुआ, एक से दो हुए। संध्या समय वह कुंवर साहब से सलाह लेने गए। उनकी भी यही राय हुई। डॉक्टर गांगुली तार द्वारा बुलाए गए। उन्होंने यहां तक जोर दिया कि 'आप चुप भी हो जाएंगे, तो मैं व्यवस्थापक सभा में इस विषय को अवश्य उपस्थित करूंगा। सरकार हमारे वाणिज्य-व्यवसाय की ओर इतनी उदासीन नहीं रह सकती। यह न्याय-अन्याय या मानापमान का प्रश्न नहीं है, केवल व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा का प्रश्न है।'

राजा साहब इन्दु से बोले—लो भाई, तुम्हारी ही सलाह पक्की रही। जान पर खेल रहा हूं।

इन्दु ने उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखकर कहा—ईश्वर ने चाहा तो आपकी विजय ही होगी।

बाईस

सैयद ताहिरअली को पूरी आशा थी कि जब सिगरेट का कारखाना बनना शुरू हो जायगा, तो मेरी कुछ-न-कुछ तरक्की अवश्य हो जाएगी। मि० सेवक ने उन्हें इसका वचन दिया था। इस आशा के सिवा उन्हें अब तक ऋणों को चुकाने का कोई उपाय न नजर आता था, जो दिनों-दिन बरसात की घास के समान बढ़ते जाते थे। वह स्वयं बड़ी किफायत से रहते थे। ईद के अतिरिक्त कदाचित् और कभी दूध उनके कंठ के नीचे न जाता था। मिठाई उनके लिए हराम थी। पान-तंबाकू का उन्हें शौक ही न था। किंतु वह खुद चाहे कितनी किफायत करें, घरवालों की जरूरतों में काट-कपट करना न्याय-विरुद्ध समझते थे। जैनब और रकिया अपने लड़कों के लिए दूध लेना आवश्यक समझती थीं। कहतीं—यही तो लड़कों के खाने-पीने की उम्र है। इसी उम्र में तो उनकी हड्डियां चौड़ी-चकली होती हैं, दिल और दिमाग बढ़ते हैं। इस उम्र में लड़कों को मुकव्वी खाना न मिले, तो उनकी सारी जिंदगी बरबाद हो जाती है।

लड़कों के विषय में यह कथन सत्य हो या नहीं, पर पान-तंबाकू के विषय में ताहिर

अली की विमाताएं जिस युक्ति का प्रतिपादन करती थीं, उसकी सत्यता स्वयंसिद्ध थी—स्त्रियों का इनके बगैर निबाह ही नहीं हो सकता। कोई देखे तो कहे, क्या इनके यहां पान तक मयस्सर नहीं? यही तो अब शराफत की एक निशानी रह गई है, मामाएं नहीं, खवासें नहीं, तो क्या पान से भी गए। मर्दों को पान की ऐसी जरूरत नहीं। हाकिमों से मिलना-जुलना पड़ता है, पराई बंदगी करते हैं, उन्हें पान की क्या जरूरत।

विपत्ति यह थी कि माहिर और जाबिर तो मिठाइयां खाकर ऊपर से दूध पीते और साबिर और नसीमा खड़े मुंह ताका करते। जैनब बेगम कहतीं—इनके गुड़ के बाप कोल्हू ही, खुदा के फजल से जिंदा हैं। सबको खिलाकर खिलाएं, तभी खिलाना कहलाए। सब कुछ तो इन्हीं की मुट्ठी में है, जो चाहें खिलाएं, जैसे चाहें रखें, कोई हाथ पकड़ने वाला है?

वे दोनों दिन-भर बकरी की तरह पान चबाया करतीं, कुल्सूम को भोजन के पश्चात् एक बीड़ा भी मुश्किल से मिलता था। अपनी इन जरूरतों के लिए ताहिरअली से पूछने या चादर देखकर पांव फैलाने की जरूरत न थी।

प्रातःकाल था। चमड़े की खरीद हो रही थी। सैकड़ों चमार बैठे चिलम पी रहे थे। यही एक समय था, जब ताहिरअली को अपने गौरव का कुछ आनंद मिलता था। इस वक्त उन्हें अपने महत्त्व का हल्का-सा नशा हो जाता था। एक चमार द्वार पर झाड़ू लगाता, एक उनका तख्त साफ करता, एक पानी भरता, किसी को साग-भाजी लाने के लिए बाजार भेज देते और किसी से लकड़ी चिराते। इतने आदमियों को अपनी सेवा में तत्पर देखकर उन्हें मालूम होता था कि मैं भी कुछ हूं। उधर जैनब और रकिया परदे में बैठी पानदान का खर्च वसूल करती। साहब ने ताहिरअली को दस्तूरी लेने से मना किया था, स्त्रियों को पान-पत्ते का खर्च लेने का निषेध न किया था। इस आमदनी से दोनों ने अपने-अपने लिए गहने बनवा लिए थे। ताहिरअली इस रकम का हिसाब लेना छोटी बात समझते थे।

इसी समय जगधर आकर बोला—मुंसीजी, हिसाब कब तक चुकता कीजिएगा? मैं कोई लखपती थोड़े ही हूं कि रोज मिठाइयां देता जाऊं, चाहे दाम मिलें या न मिलें। आप जैसे दो-चार गाहक और मिल जाएं, तो मेरा दिवाला ही निकल जाए। लाइए, रुपये दिलवाइए, अब हीला-हवाला न कीजिए, गांव-मुहल्ले की बहुत मुरौवत कर चुका। मेरे सिर भी तो महाजन का लहना-तगादा है। यह देखिए कागद, हिसाब कर दीजिए।

देनदारों के लिए हिसाब का कागज यमराज का परवाना है। वे उसकी ओर ताकने का साहस नहीं कर सकते। हिसाब देखने का मतलब है, रुपये अदा करना। देनदार ने हिसाब का चिट्ठा हाथ में लिया और पाने वाले का हृदय आशा से विकसित हुआ। हिसाब का परत हाथ में लेकर फिर कोई हीला नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि देनदारों को खाली हाथ हिसाब देखने का साहस नहीं होता।

ताहिरअली ने बड़ी नम्रता से कहा—भई, हिसाब सब मालूम है, अब बहुत जल्द तुम्हारा बकाया साफ हो जायगा। दो-चार दिन और सब्र करो।

जगधर—कहां तक सबर करूं साहब? दो-चार दिन करते-करते तो महीनों हो गए। *मिठाइयां खाते बखत तो मीठी मालूम होती हैं, दाम देते क्यों कड़ुवा लगता है?*

ताहिर—बिरादर, आजकल जरा तंग हो गया हूं, मगर अब जल्द कारखाने का काम शुरू होगा, तो मेरी भी तरक्की होगी। बस, तुम्हारी एक-एक कौड़ी चुका दूंगा।

जगधर—ना साहब, आज तो मैं रुपये लेकर ही जाऊंगा। महाजन के रुपये न दूंगा, तो आज मुझे छटांक-भर भी सौदा न मिलेगा। भगवान् जानते हैं, जो मेरे घर में टका भी हो। यह समझिए कि आप मेरा नहीं, अपना दे रहे हैं। आपसे झूठ बोलता होऊं, तो जवानी काम न आए। रात बाल-बच्चे भूखे ही सो रहे। सारे मुहल्ले में सदा लगाई, किसी ने चार आने पैसे न दिए।

चमारों के चौधरी को जगधर पर दया आ गई। ताहिरअली से बोला—मुंसीजी, मेरा पावना इन्हीं को दे दीजिए, मुझे दो-चार दिन में दे दीजिएगा।

ताहिर—जगधर, मैं खुदा को गवाह करके कहता हूं, मेरे पास रुपये नहीं हैं, खुदा के लिए दो-चार दिन ठहर जाओ।

जगधर—मुंसीजी, झूठ बोलना गाय खाना है, महाजन के रुपये आज न पहुंचे, तो कहीं का न रहूंगा।

ताहिरअली ने घर में आकर कुल्सूम से कहा—मिठाई वाला सिर पर सवार है, किसी तरह टलता ही नहीं। क्या करूं, रोकड़ में से दस रुपये निकालकर दे दूं?

कुल्सूम ने चिढ़कर कहा—जिसके दाम आते हैं, वह सिर पर सवार होगा ही। अम्मांजानों से क्यों नहीं मांगते? मेरे बच्चों को तो मिठाई मिली नहीं, जिन्होंने उचक-उचककर खाया-खिलाया है, वे दाम देने की बेर क्यों भीगी बिल्ली बनी बैठी हुई हैं?

ताहिर—इसी मारे तो मैं तुमसे कोई बात कहता नहीं। रोकड़ से ले लेने में क्या हरज है? तनख्वाह मिलते ही जमा कर दूंगा।

कुल्सूम—खुदा के लिए कहीं यह गजब न करना। रोकड़ को काला सांप समझो। कहीं आज ही साहब रकम की जांच करने लगे तो?

ताहिर—अजी नहीं, साहब को इतनी फुरसत कहां कि रोकड़ मिलाते रहें।

कुल्सूम—मैं अमानत की रकम छूने को न कहूंगी। ऐसा ही है, तो नसीमा का तौक उतारकर कहीं गिरो रख दो, और तो मेरे किए कुछ नहीं हो सकता।

ताहिरअली को दु:ख तो हुआ, पर करते क्या। नसीमा का तौक निकालते थे, और रोते थे। कुल्सूम उसे प्यार करती थी और फुसलाकर कहती थी, तुम्हें नया तौक बनवाने जा रहे हैं। नसीमा फूली न समाती थी कि मुझे नया तौक मिलेगा।

तौक रूमाल में लिये हुए ताहिरअली बाहर निकले, और जगधर को अलग ले जाकर बोले—भई, इसे ले जाओ, कहीं गिरो रखकर अपना काम चलाओ। घर में रुपये नहीं हैं।

जगधर—उधार सौदा बेचना पाप है, पर करूं क्या, नगद बेचने लगूं, तो घूमता ही रह जाऊं।

यह कहकर उसने सकुचाते हुए तौक ले लिया और पछताता हुआ चला गया। कोई दूसर आदमी अपने गाहक को इतना दिक करके रुपये वसूल न करता। उसे लड़की पर दया आ ह जाती, जो मुस्कराकर कह रही थी, मेरा तौक कब बनाकर लाओगे? परंतु जगधर गृहस्थ के असह्य भार के कारण उससे कहीं असज्जन बनने पर मजबूर था, जितना वह वास्तव में था।

जगधर को गए आध घंटा भी न गुजारा था कि बजरंगी त्योरियां बदले हुए आक बोला—मुंसीजी, रुपये देने हों, तो दीजिए, नहीं तो कह दीजिए, बाबा, हमसे नहीं हो सकत

बस, हम सबर कर लें। समझ लेंगे कि एक गाय नहीं लगी। रोज-रोज दौड़ाते क्यों हैं?

ताहिर–बिरादर, जैसे इतने दिनों तक सब्र किया है, थोड़े दिन और करो। खुदा ने चाहा, तो अबकी तुम्हारी एक पाई भी न रहेगी।

बजरंगी–ऐसे वादे तो आप बीसों बार कर चुके हैं।

ताहिर–अबकी पक्का वादा करता हूं।

बजरंगी–तो किस दिन हिसाब कीजिएगा?

ताहिरअली असमंजस में पड़ गए, कौन-सा दिन बतलाएं। देनदारों को हिसाब के दिन का उतना ही भय होता है, जितना पापियों को। वे 'दो-चार', 'बहुत जल्द', 'आज-कल में' आदि अनिश्चयात्मक शब्दों की आड़ लिया करते हैं। ऐसे वादे पूरे किए जाने के लिए नहीं, केवल पाने वालों को टालने के लिए किए जाते हैं। ताहिरअली स्वभाव से खरे आदमी थे। तकाजों से उन्हें बड़ा कष्ट होता था। वह तकाजों से उतना ही डरते थे, जितना शैतान से। उन्हें दूर से देखते ही उनके प्राण-पखेरू छटपटाने लगते थे। कई मिनट तक सोचते रहे, क्या जवाब दूं, खर्च का यह हाल है, और तरक्की के लिए कहता हूं, तो कोरा जवाब मिलता है। आखिरकार बोले–दिन कौन-सा बताऊं, चार-छः दिन में जब आ जाओगे, उसी दिन हिसाब हो जायगा।

बजरंगी–मुंसीजी, मुझसे उड़नघाइयां न बताइए। मुझे भी सभी तरह के गाहकों से काम पड़ता है। अगर दस दिन में आऊंगा, तो आप कहेंगे, इतनी देर क्यों की, अब रुपये खर्च हो गए। चार-पांच दिन में आऊंगा तो आप कहेंगे, अभी तो रुपये मिले ही नहीं। इसलिए मुझे कोई दिन बता दीजिए, जिसमें मेरा हरज न हो और आपको भी सुभीता हो।

ताहिर–दिन बता देने में मुझे कोई उज्र न होता, लेकिन बात यह है कि मेरी तनख्वाह मिलने की कोई तारीख मुकर्रर नहीं है, दो-चार दिन का हेर-फेर हो जाता है। एक हफ्ते के बाद किसी लड़का को भी भेज दोगे, तो रुपये मिल जाएंगे।

बजरंगी–अच्छी बात है, आप ही का कहना सही। अगर अबकी वादाखिलाफी कीजिएगा, तो फिर मांगने न आऊंगा।

बजरंगी चला गया, तो ताहिरअली डींगें मारने लगे–तुम लोग समझते होगे, ये लोग इतनी-इतनी तलब पाते हैं, घर में बटोरकर रखते होंगे, और यहां खर्च का यह हाल है कि आधा महीना भी नहीं खत्म होता और रुपये उड़ जाते हैं। शराफत रोग हैं, और कुछ नहीं।

एक चमार ने कहा–हजूर, बड़े आदमियों का खर्च भी बड़ा होता है। आप ही लोगों की बदौलत तो गरीबों की गुजर होती है। घोड़े की लात घोड़ा ही सह सकता है।

ताहिर–अजी, सिर्फ पान में इतना खर्च हो जाता है कि उतने में दो आदमियों का अच्छी तरह गुज़र हो सकता है।

चमार–हजूर, देखते नहीं है क्या। बड़े आदमियों की बड़ी बात होती है।

ताहिरअली के आंसू अच्छी तरह न पुंछने पाए थे कि सामने से ठाकुरदीन आता हुआ दिखाई दिया। बेचारे पहले ही कोई बहाना सोचने लगे। इतने में उसने आकर सलाम किया और बोला–मुंसीजी कारखाने में कब से हाथ लगेगा?

ताहिर–मसाला जमा हो रहा है। अभी इंजीनियर ने नक्शा नहीं बनाया है, इसी वजह से देर हो रही है।

ठाकुरदीन–इंजीनियर ने भी कुछ लिया होगा? बड़ी बेईमान जात है हजूर, मैंने भी कुछ दिन ठेकेदारी की है, जो कमाता था, इंजीनियरों को खिला देता था। आखिर घबराकर छोड़ बैठा। इंजीनियर के भाई डॉक्टर होते हैं। रोगी चाहे मरता हो, पर फीस लिए बिना बात न सुनेंगे। फीस के नाम से रिआयत भी करेंगे, तो गाड़ी के किराए और दवा के दाम में कस लेंगे। (हिसाब की परत दिखाकर) जरा इधर भी एक निगाह हो जाए।

ताहिर–सब मालूम है, तुमने गलत थोड़े ही लिखा होगा।

ठाकुरदीन–हज़ूर, ईमान है, तो सब कुछ है। साथ कोई न जायगा। तो मुझे क्या हुकुम होता है?

ताहिर–दो-चार दिन की मुहलत दो।

ठाकुरदीन–जैसी आपकी मरजी। हजूर, चोरी हो जाने से लाचार हो गया, नहीं तो दो-चार रुपयों की कौन बात थी। उस चोरी में तबाह हो गया। घर में फूटा लोटा तक न बचा। दाने को मुहताज हो गया हजूर! चोरों को आंखों के सामने भागते देखा, उनके पीछे दौड़ा। पागलखाने तक दौड़ता चला गया। अंधेरी रात थी, ऊंच-खाल कुछ न सूझता था। एक गढ़े में गिर पड़ा। फिर उठा। माल बड़ा प्यारा होता है। लेकिन चोर निकल गए थे। थाने में इत्तलाय की, थानेदारों की खुशामद की। मुदा गई हुई लच्छमी कहीं लौटती है। तो कब आऊं?

ताहिर–तुम्हारे आने की जरूरत नहीं, मैं खुद भिजवा दूंगा।

ठाकुरदीन–जैसी आपकी खुसी, मुझे कोई उजर नहीं है। मुझे तगादा करते आप ही सरम आती है। कोई भलामानुस हाथ में पैसे रहते हुए टालमटोल नहीं करता, फौरन निकालकर फेंक देता है। आज जरा पान लेने जाना था, इसीलिए चला आया था। सब न हो सकें, थोड़ा-बहुत दे दीजिए। किसी तरह काम न चला, तब आपके पास आया। आदमी पहचानता हूं हजूर, पर मौका ऐसा ही आ पड़ा है।

ठाकुरदीन की विनम्रता और प्रफुल्लित सहृदयता ने ताहिरअली को मुग्ध कर दिया। तुरंत संदूक खोला और पांच रुपये निकालकर उसके सामने रख दिए। ठाकुरदीन ने रुपये उठाये नहीं, एक क्षण कुछ विचार करता रहा, तब बोला–ये आपके रुपये हैं कि सरकारी रोकड़ के हैं?

ताहिर–तुम ले जाओ, तुम्हें आम खाने से मतलब कि पेड़ गिनने से?

ठाकुरदीन–नहीं मुंसीजी, यह न होगा। अपने रुपये हों, तो दीजिए, मालिक की रोकड़ हो, तो रहने दीजिए, फिर आकर ले जाऊंगा। आपके चार पैसे खाता हूं, तो आपको आंखों से देखकर गढ़े में न गिरने दूंगा। बुरा मानिए, तो मान जाइए, इसकी चिंता नहीं, सफा बात करने के लिए बदनाम हूं, आपके रुपये यों अलल्ले-तलल्ले खर्च होंगे, तो एक दिन आप धोखा खायेंगे। सराफत ठाटबाट बढ़ने में नहीं हैं, अपनी आबरू बचाने में है।

ताहिरअली ने सजल नयन होकर कहा–रुपये लेते जाओ।

ठाकुरदीन उठ खड़ा हुआ और बोला–जब आपके पास हों, तब देना।

अब तक तो ताहिरअली को कारखाने के बनने की उम्मीद थी। इधर आमदनी बढ़ी, उधर मैंने रुपये दिए, लेकिन जब मि० क्लार्क ने अनिश्चित समय तक के लिए कारखाने का काम बंद करवा दिया, तब ताहिरअली का अपने लेनदारों को समझाना मुश्किल हो गया। लेनदारों ने ज्यादा तंग करना शुरू किया। ताहिरअली बहुत चिंतित रहने लगे, बुद्धि कुछ काम न करती थी। कुल्सूम

कहती थी—ऊपर का खर्च सब बंद कर दिया जाय। दूध, पान और मिठाइयों के बिना आदमी को कोई तकलीफ नहीं हो सकती। ऐसे कितने आदमी हैं जिन्हें इस जमाने में ये चीजें मयस्सर हैं? और की क्या कहूं, मेरे ही लड़के तरसते हैं। मैं पहले भी समझा चुकी हूं और अब फिर समझाती हूं कि जिनके लिए तुम अपना खून और पसीना एक कर रहे हो, वे तुम्हारी बात भी न पूछेंगे। पर निकलते ही साफ उड़ न जायं, तो कहना। अभी से रुख देख रही हूं। औरों को सूद पर रुपये दिए जाते हैं, जेवर बनवाए जाते हैं, लेकिन घर के खर्च को कभी कुछ मांगो, तो टका-सा जवाब मिलता है, मेरे पास कहां। तुम्हारे ऊपर इन्हें कुछ तो रहम आना चाहिए। आज दूध, मिठाइयां बंद कर दो, तो घर में रहना मुश्किल हो जाए।

तीसरा पहर था। ताहिरअली बरामदे में उदास बैठे हुए थे। सहसा भैरो आकर बैठ गया, और बोला—क्यों मुंसीजी, क्या सचमुच अब यहां कारखाना न बनेगा?

ताहिर—बनेगा क्यों नहीं, अभी थोड़े दिनों के लिए रुक गया है।

भैरो—मुझे तो बड़ी आसा थी कि कारखाना बन गया, तो मेरा बिकरी-बट्टा बढ़ जायगा, दुकान पर बिकरी बिल्कुल मंदी है। मैं चाहता हूं कि यहां सबेरे थोड़ी देर बैठा करूं। आप मंजूर कर लें, तो अच्छा हो। मेरी थोड़ी-बहुत बिकरी हो जायगी। आपको भी पान खाने के लिए कुछ नजर कर दिया करूंगा।

किसी और समय ताहिरअली ने भैरो को डाट बताई होती। ताड़ी की दूकान खोलने की आज्ञा देना उनके धर्म-विरुद्ध था। पर इस समय रुपये की चिंता ने उन्हें असमंजस में डाल दिया। इससे पहले भी धनाभाव के कारण उनके कर्म और सिद्धांतों में कई बार संग्राम हो चुका था, और प्रत्येक अवसर पर उन्हें सिद्धांतों ही का खून करना पड़ा था। आज फिर वही संग्राम हुआ और फिर सिद्धांतों ने परिस्थितियों के सामने सिर झुका दिया। सोचने लगे—क्या करूं? इसमें मेरा क्या कसूर? मैं किसी बेजा खर्च के लिए शरा नहीं तोड़ रहा हूं, हालात ने मुझे बेबस कर दिया है। कुछ झेंपते हुए बोले—यहां ताड़ी की बिकरी न होगी।

भैरो—हुजूर, बिकरी तो ताड़ी की महक से होगी। नसेबाजों की ऐसी आदत होती है कि न देखें, तो चाहे बरसों न पिएं, पर नसा सामने देखकर उनसे नहीं रहा जाता।

ताहिर—मगर साहब के हुक्म के बगैर मैं कैसे इजाजत दे सकता हूं?

भैरो—आपकी जैसी मरजी ! मेरी समझ में तो साहब से पूछने की जरूरत ही नहीं। मैं कौन यहां दूकान रखूंगा। सबेरे एक घड़ा लाऊंगा, घड़ी-भर में बेचकर अपनी राह लूंगा। उन्हें खबर ही न होगी कि यहां कोई ताड़ी बेचता है।

ताहिर—नमकहरामी सिखाते हो, क्यों?

भैरो—हजूर, इसमें नमकहरामी काहे की, अपने दांव-घात पर कौन नहीं लेता?

सौदा पट गया। भैरो एकमुश्त पंद्रह रुपये देने को राजी हो गया। जाकर सुभागी से बोला—देख, सौदा कर आया न। तू कहती थी, वह कभी न मानेंगे इस्लाम हैं, उनके यहां ताड़ी-सराब मना है, पर मैंने कह न दिया था कि इस्लाम हो चाहे बाम्हन हो, धरम-करम किसी में नहीं रह गया। रुपये पर सभी लपक पड़ते हैं। ये मियां लोग बाहर ही से उजले कपड़े पहने दिखाई देते हैं। घर में भूनी भांग नहीं होती। मियां ने पहले तो दिखाने के लिए इधर-उधर किया, फिर पंद्रह रुपये में राजी हो गए। पंद्रह रुपये तो पंद्रह दिन में सीधे हो जायंगे।

सुभागी पहले घर की मालकिन बनना चाहती थी, इसलिए रोज डंडे खाती थी। अब वह

घर-भर की दासी बनकर मालकिन बनी हुई है। रुपये-पैसे उसी के हाथ में रहते हैं। सास, जो उसकी सूरत से जलती थी, दिन में सौ-सौ बार उसे आशीर्वाद देती है। सुभागी ने चटपट रुपये निकालकर भैरो को दिए। शायद दो बिछुड़े मित्र इस तरह टूटकर गले न मिलते होंगे, जैसे ताहिरअली इन रुपयों पर टूटे। रकम छोटी थी इसके बदले में उन्हें अपने धर्म की हत्या करनी पड़ी। लेनदार अपने-अपने रुपये ले गए। ताहिरअली के सिर का बोझ हल्का हुआ। मगर उन्हें बहुत रात तक नींद न आई। आत्मा की आयु दीर्घ होती है। उसका गला कट जाए, पर प्राण नहीं निकलते।

तेईस

जब तक सूरदास शहर में हाकिमों के अत्याचार की दुहाई देता रहा, उसके मुहल्ले वाले जॉन सेवक के हितैषी होने पर भी उससे सहानुभूति करते रहे। निर्बलों के प्रति स्वभावतः करुणा उत्पन्न हो जाती है। लेकिन सूरदास की विजय होते ही यह सहानुभूति स्पर्द्धा के रूप में प्रकट हुई। ये शंका पैदा हुई कि सूरदास मन में हम लोगों को तुच्छ समझ रहा होगा। कहता होगा, जब मैंने राजा महेन्द्रकुमारसिंह जैसों को नीचा दिखा दिया, उनका गर्व चूर-चूर कर दिया, तो यह लोग किस खेत की मूली हैं। सारा मुहल्ला उससे मन-ही-मन खार खाने लगा। केवल एक ठाकुरदीन था, जो अब भी उसके पास आया-जाया करता था। उसे अब यकीन हो गया था कि सूरदास को, अवश्य किसी देवता का इष्ट है, उसने जरूर कोई मंत्र सिद्ध किया है, नहीं तो उसकी इतनी कहां मजाल कि ऐसे-ऐसे प्रतापी आदमियों का सिर झुका देता। लोग कहते हैं, जंत्र-मंत्र सब ढकोसला है। यह कौतुक देखकर भी उनकी आंखें नहीं खुलतीं।

सूरदास के स्वभाव में भी अब कुछ परिवर्तन हुआ। धैर्यशील वह पहले ही से था, पर न्याय और धर्म के पक्ष में कभी-कभी उसे क्रोध आ जाता था। अब उसमें अग्नि का लेशांश भी न रहा; घूर था, जिस पर सभी कूड़े फेंकते हैं। मुहल्ले वाले राह चलते उसे छेड़ते, आवाजें कसते, ताने मारते; पर वह किसी को जवाब न देता। सिर झुकाए भीख मांगने जाता और चुपके से अपनी झोपड़ी में आकर पड़ा रहता। हां, मिठुआ के मिजाज न मिलते थे, किसी से सीधे मुंह बात न करता। कहता, यह कोई न समझे कि अंधा भीख मांगता है, अंधा बड़े-बड़ों की पीठ में धूल लगा देता है। बरबस लोगों को छेड़ता, भले आदमियों से बतबढ़ाव कर बैठता। अपने हमजोलियों से कहता, चाहूं तो सारे मुहल्ले को बंधवा दूं। किसानों के खेतों से बेधड़क चने, मटर, मूली, गाजर उखाड़ लाता, अगर कोई टोकता; तो उससे लड़ने को तैयार हो जाता था। सूरदास को नित्य उलहने मिलने लगे। वह अकेले में मिठुआ को समझाता, पर उस पर कुछ असर न होता था। अनर्थ यह था कि सूरदास की नम्रता और सहिष्णुता पर तो किसी की निगाह न जाती थी, मिठुआ की लनतरानियों और दुष्टताओं पर सभी की निगाह पड़ती थी। लोग यहां तक कह जाते थे कि सूरदास ने ही उसे सिर चढ़ा लिया है, बछवा खूंटे ही के बल कूदता है। ईर्ष्या बाल-क्रीड़ाओं को भी कपट-नीति समझती है।

आजकल सोफिया मि॰ क्लार्क के साथ सूरदास से अक्सर मिला करती थी। वह नित्य

उसे कुछ-न-कुछ देती और उसकी दिलजोई करती। पूछती रहती, मुहल्ले वाले या राजा साहब के आदमी तुम्हें दिक तो नहीं कर रहे हैं? सूरदास जवाब देता, मुझ पर सब लोग दया करते हैं। मुझे किसी से शिकायत नहीं है। मुहल्ले वाले समझते थे, यह बड़े साहब से हम लोगों की शिकायत करता है। अन्योक्तियों द्वारा यह भाव प्रकट भी करते–'सैयां भये कोतवाल, अब डर काहे का?''प्यादे से फरजी भयो, टेढ़ो-टेढ़ो जाय।' एक बार किसी चोरी के संबंध में नायकराम के घर में तलाशी हो गई। नायकराम को संदेह हुआ, सूरदास ने यह यह तीर मारा है। इसी भांति एक बार भैरो से आबकारी के दारोग ने जवाब तलब किया। भैरो ने शायद नियम के विरुद्ध आधी रात तक दूकान खुली रखी थी। भैरो का भी शुभा सूरदास ही पर हुआ, इसी ने यह चिंगारी छोड़ी है। इन लोगों के संदेह पर तो सूरदास को बहुत दुःख न हुआ लेकिन जब खुल्लमखुल्ला उसे लांछित करने लगी, तो उसे बहुत दुःख हुआ। उसे विश्वास था कि कम-से-कम सुभागी को मेरी नीयत का हाल मालूम है। उसे मुझको इन लोगों के अन्याय से बचाना चाहिए था, मगर उसका मन भी मुझसे फिर गया।

इस भांति कई महीने गुजर गए। एक दिन रात को सूरदास खा-पीकर लेटा हुआ था कि किसी ने आकर चुपके से उसका हाथ पकड़ा। सूरदास चौंका, पर सुभागी की आवाज पहचानकर बोला–क्या कहती है?

सुभागी–कुछ नहीं, जरा मड़ैया में चलो, तुमसे कुछ कहना है।

सूरदास उठा और सुभागी के साथ झोपड़े में आकर बोला–कह, क्या कहती है? अब तो तुझे भी मुझसे बैर हो गया है। गालियां देती फिरती है, चारों और बदनाम कर रही है। बतला, मैंने तेरे साथ कौन-सी बुराई की थी कि तूने मेरी बुराई पर कमर बांध ली? और लोग मुझे भला-बुरा कहते हैं, मुझे रंज नहीं होता; लेकिन जब तुझे तानें देते सुनता हूं, तो मुझे रोना आता है।, कलेजे में पीड़ा-सी होने लगती है। जिस दिन भैरो की तलबी हुई थी, तूने मुझे कितना कोसा था। सच बता, क्या तुझे भी सक हुआ था कि मैंने ही दारोगाजी से शिकायत की है? क्या तू मुझे इतना नीच समझती है? बता।

सुभागी ने करुणावरुद्ध कंठ से उत्तर दिया–मैं तुम्हारा कितना आदर करती हूं, उतना और किसी का नहीं। तुम अगर देवता होते, तो भी इतनी ही सिरधा से तुम्हारी पूजा करती।

सूरदास–मैं क्या घमंड करता हूं? साहब से किसकी सिकायत करता हूं? जब जमीन निकल गई थी, तब तो लोग मुझसे न चिढ़ते थे। अब जमीन छूट जाने से क्यों सब-के-सब मेरे दुसमन हो गए हैं? बता, मैं क्या घमंड करता हूं? मेरी जमीन छूट गई है, तो कोई बादसाही मिल गई है कि घमंड करूंगा?

सुभागी–मेरे मन का हाल भगवान् जानते होंगे।

सूरदास–तो मुझे क्यों जलाया करती है?

सुभागी–इसलिए।

यह कहकर उसने एक छोटी-सी पोटली सूरदास के हाथ में रख दी। पोटली भारी थी। सूरदास ने उसे टटोला और पहचान गया। यह उसी की पोटली थी। जो चोरी गई थी। अनुमान से मालूम हुआ कि रुपये भी उतने ही हैं। विस्मित होकर बोला–यह कहां मिली?

सुभागी–तुम्हारी मेहनत की कमाई है, तुम्हारे पास आ गई। अब जतन से रखना।

सूरदास–मैं न रखूंगा। इसे ले जा।

सुभागी–क्यों? अपनी चीज लेने में कोई हरज है?

सूरदास–यह मेरी चीज नहीं, भैरो की चीज है। इसी के लिए भैरो ने अपनी आत्मा बेची है, महंगा सौदा लिया है। मैं इसे कैसे ले लूं?

सुभागी–मैं ये सब बातें नहीं जानती। तुम्हारी चीज है, तुम्हें लेनी पड़ेगी। इसके लिए मैंने अपने घरवालों से छल किया है। इतने दिनों से इसी के लिए माया रच रही हूं। तुम न लोगे, तो इसे मैं क्या करूंगी?

सूरदास–भैरो को मालूम हो गया, तो तुम्हें जीता न छोड़ेगा।

सुभागी–उन्हें न मालूम होने पाएगा। मैंने इसका उपाय सोच लिया है।

यह कहकर सुभागी चली गई। सूरदास को और तर्क-वितर्क करने का मौका न मिला। बड़े असमंजस में पड़ा–ये रुपये लूं या क्या करूं? यह थैली मेरी है या नहीं? अगर भैरो ने इसे खर्च कर दिया होता तो? क्या चोर के घर चोरी करना पाप नहीं? क्या मैं अपने रुपये के बदले इसके रुपये ले सकता हूं? सुभागी मुझ पर कितनी दया करती है। वह इसीलिए मुझे ताने दिया करती थी कि यह भेद न खुलने पाए।

वह इसी उधेड़बुन में पड़ा हुआ था कि एकाएक 'चोर-चोर!' का शोर सुनाई दिया। पहली ही नींद थी। लोग गाफिल सो रहे थे। फिर आवाज आई–'चोर-चोर!'

भैरो की आवाज थी। सूरदास समझ गया, सुभागी ने यह प्रपंच रचा है। अपने द्वार पर पड़ा रहा। इतने में बजरंगी की आवाज सुनाई दी–किधर गया, किधर? यह कहकर वह लाठी लिए अंधेरे में एक तरफ दौड़ा। नायकराम भी घर से निकले और 'किधर-किधर' कहते हुए दौड़े। रास्ते में बजरंगी से मुठभेड़ हो गई। दोनों ने एक दूसरे को चोर समझा। दोनों ने वार किया और चोट खाकर गिर पड़े। जरा देर में बहुत-से आदमी जमा हो गए। ठाकुरदीन ने पूछा–क्या-क्या ले गया? अच्छी तरह देख लेना, कहीं छत में न चिमटा हुआ हो। चोर दीवार से क्या चिमट जाते हैं कि दिखाई नहीं देते।

सुभागी–हाय, मैं तो लुट गई। अभी तो बैठी-बैठी अम्मां का पांव दबा रही थी। इतने में न जाने मुआ कहां से आ पहुंचा।

भैरो–(चिराग से देखकर) सारी जमा-जथा लुट गई। हाय राम!

सुभागी–हाय, मैंने उसकी परछाईं देखी, तो समझी यही होंगे। जब उसने संदूक पर हाथ बढ़ाया, तो भी समझी यही होंगे।

ठाकुरदीन–खपरैल पर चढ़कर आया होगा। मेरे यहां जो चोरी हुई थी, उसमें भी चोर सब खपरैल पर चढ़कर आए थे।

इतने में बजरंगी आया। सिर से रुधिर बह रहा था, बोला–मैंने उसे भागते देखा लाठी चलाई। उसने भी वार किया। मैं तो चक्कर खाकर गिर पड़ा, पर उस पर भी ऐसा हाथ पड़ा है कि सिर खुल गया होगा।

सहसा नायकराम हाय-हाय करते आए और जमीन पर गिर पड़े। सारी देह खून से तर थी।

ठाकुरदीन–पंडाजी, क्या तुमसे भी उसका सामना हो गया क्या?

नायकराम की निगाह बजरंगी की ओर गई। बजरंगी ने नायकराम की ओर देखा। नायकराम ने दिल में कहा–पानी का दूध बनाकर बेचते हो, अब यह ढंग निकाला है। बजरंगी ने दिल में कहा–यात्रियों को लूटते हो, अब मुहल्ले वालों ही पर हाथ साफ करने लगे।

नायकराम—हां भई, यहीं गली में तो मिला। बड़ा भारी जवान था।

ठाकुरदीन—तभी तो अकेले दो आदमियों को घायल कर गया। मेरे घर में जो चोर पैठे थे, वे सब देव मालूम होते थे। ऐसे डील-डौल के तो आदमी ही नहीं देखे। मालूम होता है, तुम्हारे ऊपर उसका भरपूर हाथ पड़ा।

नायकराम—हाथ मेरा भी भरपूर पड़ा है। मैंने उसे गिरते देखा। सिर जरूर फट गया होगा। जब तक पकड़ूं निकल गया।

बजरंगी—हाथ तो मेरा भी ऐसा पड़ा कि बच्चा को छठी का दूध याद आ गया होगा। चारों खाने चित्त गिरा था।

ठाकुरदीन—किसी जाने हुए आदमी का काम है। घर के भेदिये बिना कभी चोरी नहीं होती। मेरे यहां सबों ने मेरी छोटी लड़की को मिठाई देकर नहीं घर का सारा भेद पूछ लिया था?

बजरंगी—थाने में जरूर रपट करना।

भैरो—रपट ही करके थोड़े ही रह जाऊंगा। बचा से चक्की न पिसवाऊं, तो कहना। चाहे बिक जाऊं, पर उन्हें भी पीस डालूंगा। मुझे सब मालूम है।

ठाकुरदीन—माल-का-माल ले गया, दो आदमियों को चुटैल कर गया। इसी से मैं चोरों के नगीच नहीं गया था। दूर से ही 'लेना-देना' करता रहा। जान सलामत रहे, तो माल फिर आ जाता है।

भैरो को बजरंगी पर शुभा न था, न नायकराम पर, उसे जगधर पर शुभा था। शुभा ही नहीं, पूरा विश्वास था। जगधर के सिवा किसी को न मालूम था कि रुपये कहां रखे हुए हैं। जगधर लठैत भी अच्छा था। वह पड़ोसी होकर भी घटनास्थल पर सबसे पीछे पहुंचा था। ये सब कारण उसके संदेह को पुष्ट करते थे।

यहां से लोग चलें, तो रास्ते में बातें होने लगीं। ठाकुरदीन ने कहा—कुछ अपनी कमाई के रुपये तो थे नहीं, वही सूरदास के रुपये थे।

नायकराम—पराया माल अपने घर आकर अपना हो जाता है।

ठाकुरदीन—पाप का दंड जरूर भोगना पड़ता है, चाहे जल्दी हो, चाहे देर।

बजरंगी—तुम्हारे चोरों को तो कुछ दंड न मिला।

ठाकुरदीन—मुझे कौन किसी देवता का इष्ट था। सूरदास को इष्ट है। उसकी एक कौड़ी भी किसी को हजम नहीं हो सकती, चाहे कितना ही चूरन खाए। मैं तो बद-बदकर कहता हूं। अभी उसके घर की तलाशी ली जाए, तो सारा माल बरामद हो जाए।

दूसरे दिन मुंह-अंधेरे भैरो ने कोतवाली में इत्तला दी। दोपहर तक दारोगाजी तहकीकात करने आ पहुंचे। जगधर की खानातलाशी हुई, कुछ न निकला। भैरो ने समझा, इसने माल कहीं छिपा दिया। उस दिन से भैरो के सिर एक भूत-सा सवार हो गया। वह सबेरे ही दारोगाजी के घर पहुंच जाता, दिन-भर उनकी सेवा-टहल किया करता, चिलम भरता, पैर दबाता, घोड़े के लिए घास छील लाता, थाने के चौकीदारों की खुशामद करता। अपनी दूकान पर बैठा हुआ सारे दिन इसी चोरी की चर्चा किया करता—क्या कहूं, मुझे कभी ऐसी नींद न आती थी, उस दिन न जाने कैसे सो गया। मगर बंधवा न दूं, तो नाम नहीं। दारोगाजी ताक में हैं। उसमें सब रुपये ही नहीं हैं असरफियां भी हैं। जहां बिकेंगी, बेचने वाला तुरंत पकड़ा जाएगा।

शनैः-शनैः भैरो को मुहल्ले-भर पर संदेह होने लगा। और, जलते तो लोग उससे पहले ही थे, अब सारा मुहल्ला उसका दुश्मन हो गया। यहां तक कि अंत में वह अपने घरवालों ही पर अपना क्रोध उतारने लगा। सुभागी पर फिर मार पड़ने लगी—तूने ही मुझे चौपट किया, तू इतनी बेखबर न होती, तो चोर कैसे घर में घुस आता? मैं तो दिन-भर दौरी-दूकान करता हूं, थरकर सो गया। तू घर में पड़े-पड़े क्या किया करती है? अब जहां से बने, मेरे रुपये ला, नहीं तो जीता न छोड़ूंगा। अब तक उसने अपनी मां का हमेशा अदब किया था, पर अब उसकी भी ले-दे मचाता—तू कहा करती है, मुझे रात को नींद ही नहीं आती, रात भर जागती रहती हूं। उस दिन तुझे कैसे नींद आ गई? सारांश यह कि उसके दिल में किसी तरह इज्जत, किसी का विश्वास, किसी का स्नेह न रहा। धन के साथ सद्भाव भी दिल से निकल गए। जगधर को देखकर तो उसकी आंखों में खून उतर आता था। उसे बार-बार छेड़ता कि यह गरम पड़े, तो खबर लूं, पर जगधर उससे बचता रहता था। वह खुली चोटें करने की अपेक्षा छिपे वार करने में अधिक कुशल था।

एक दिन संध्य समय जगधर ताहिरअली के पास आकर खड़ा हो गया। ताहिरअली ने पूछो—कैसे चले जी?

जगधर—आपसे एक बात कहने आया हूं। आबकारी के दारोगा अभी मुझसे मिले थे। पूछते थे—भैरो गोदाम पर दूकान रखता है कि नहीं? मैंने कहा—साहब, मुझे नहीं मालूम। तब चले गए, पर आजकल में वह इसकी तहकीकात करने जरूर आयंगे। मैंने सोचा, कहीं आपकी भी सिकायत न कर दें, इसलिए दौड़ा आया।

ताहिरअली ने दूसरे ही दिन भैरो को वहां से भगा दिया।

इसके कई दिन बाद एक दिन, रात के समय सूरदस बैठा भोजन बना रहा था कि जगधर ने आकर कहा—क्यों सूरे, तुम्हारी अमानत तो तुम्हें मिल गई न?

सूरदास ने अज्ञात भाव से कहा—कैसी अमानत?

जगधर—वही रुपये, जो तुम्हारी झोंपड़ी से उठ गए थे।

सूरदास—मेरे पास रुपये कहां थे?

जगधर—अब मुझसे न उड़ो, रत्ती-रत्ती बात जानता हूं, और खुश हूं कि किसी तरह तुम्हारी चीज उस पापी के चंगुल से निकल आई। सुभागी अपनी बात की पक्की औरत है।

सूरदास—जगधर, मुझे इस झमेले में न घसीटो, गरीब आदमी हूं। भैरो के कान में जरा भी भनक पड़ गई, तो मेरी जान तो पीछे लेगा, पहले सुभागी का गला घोंट देगा।

जगधर—मैं उससे कहने थोड़े ही जाता हूं, पर बात हुई मेरे मन की। बचा ने इतने दिनों तक हलवाई की दुकान पर खूब दादे का फातिहा पढ़ा, धरती पर पांव ही न रखता था, अब होश ठिकाने आ जायंगे।

सूरदास—तुम नाहक मेरी जान के पीछे पड़े हो।

जगधर—एक बार खिलखिलाकर हंस दो, तो मैं चला जाऊं। अपनी गई हुई चीज पाकर लोग फूले नहीं समाते। मैं तुम्हारी जगह होता, तो नाचता-कूदता, गाता-बजाता, थोड़ी देर के लिए पागल हो जाता। इतना हंसता, इतना हंसता कि पेट में बावगोला पड़ जाता, और तुम सोंठ बने बैठे हो ! ले, हंसो तो।

सूरदास—इस बखत हंसी नहीं आती।

जगधर–हंसी क्यों न आएगी, मैं तो हंसा दूंगा।

यह कहकर उसने सूरदास को गुदगुदाना शुरू किया। सूरदास विनोदशील आदमी था। ठट्ठे मारने लगा। ईर्ष्यामय परिहास का विचित्र दृश्य था। दोनों रंगशाला के नटों की भांति हंस रहे थे और यह खबर न थी कि इस हंसी का परिणाम क्या होगा। शाम की मारी सुभागी इसी वक्त बनिये की दुकान से जिंस लिए आ रही थी। सूरदास के घर में अट्टहास की आकाशभेदी ध्वनि सुनी तो चकराई। अंधे कुंए में पानी कैसा? आकर द्वार पर खड़ी हो गई और सूरदास से बोली–आज क्या मिल गया है सूरदास–जो फूले नहीं समाते?

सुरदास ने हंसी रोककर कहा–मेरी थैली मिल गई, चोर के घर में छिछोर पैठा।

सुभागी–तो सब माल अकेले ही हजम कर जाओगे?

सूरदास–नहीं, तुझे भी एक कंठी ला दूंगा, ठाकुरजी का भजन करना।

सुभागी–अपनी कंठी धर रखो, मुझे एक सोने का कंठा बनवा देना।

सूरदास–तब तो तू धरती पर पांव ही न रखेगी।

जगधर–इसे चाहे कंठा बनवाना या न बनवाना, इसकी बुढ़िया को एक नथ जरूर बनवा देना। पोपले मुंह पर नथ खूब खिलेगी, जैसे कोई बंदरिया नथ पहने हो।

इस पर तीनों ने ठट्ठा मारा। संयोग से भैरो भी उसी वक्त थाने से चला आ रहा था। ठट्ठे की आवाज सुनी, तो झोपड़ी के अंदर झांका, ये आज कैसे गुलछर्रे उड़ रहे हैं। यह तिगड्डम देखा, तो आंखों में खून उतर आया, जैसे किसी ने कलेजे पर गरम लोहा रख दिया हो। क्रोध से उन्मत्त हो उठा। सुभागी को कठोर-से-कठोर, अश्लील-से-अश्लील दुर्वचन कहे, जैसे कोई सूरमा अपनी जान बचाने के लिए अपने शस्त्रों का घातक-से-घातक प्रयोग करे–तू कुलटा है, मेरे दुश्मनों के साथ हंसती है, फाहसा कहीं की, टके-टके पर अपनी आबरू बेचती है। खबरदार, जो आज से मेरे घर में कदम रखा, खून चूस लूंगा। अगर अपनी कुशल चाहती है, तो इस अंधे से कह दे, फिर मुझे अपनी सूरत न दिखाये, नहीं तो इसकी और तेरी गरदन एक ही गंड़ासे से काटूंगा। मैं तो इधर-उधर मारा-मारा फिरूं, और तो यह कलमुंही यारों के साथ नोक-झोंक करे! पापी अंधे को मौत भी नहीं आती कि मुहल्ला साफ हो जाता, न जाने इसके करम में क्या-क्या दु:ख भोगना लिखा है। सायद जेहल में चक्की पीसकर मरेगा।

यह कहता हुआ वह चला गया। सुभागी के काटो तो बदन में खून नहीं। मालूम हुआ, सिर पर बिजली गिर पड़ी। जगधर दिल में खुश हो रहा था, जैसे कोई शिकारी हरिन को तड़पते देखकर खुश हो। कैसा बौखला रहा है। लेकिन सूरदास? आह! उसकी वही दशा थी, जो किसी सती की अपनी सतीत्व खो देने के पश्चात् होती है। तीनों थोड़ी देर तक स्तंभित खड़े रहे। अंत में जगधर ने कहा–सुभागी, अब तू कहां जायगी?

सुभागी ने उसकी ओर विषाक्त नेत्रों से देखकर कहा–अपने घर जाऊंगी। और कहां।

जगधर–बिगड़ा हुआ है, प्रान लेकर छोड़ेगा।

सुभागी–चाहे मारे, चाहे जिलाए, घर तो मेरा वही है?

जगधर–कहीं और क्यों नहीं पड़ रहती, गुस्सा उतर जाए तो चली जाना।

सुभागी–तुम्हारे घर चलती हूं, रहने दोगे?

जगधर–मेरे घर! मुझसे तो वह यों ही जलता है, फिर तो खून ही कर डालेगा।

सुभागी–तुम्हें अपनी जान इतनी प्यारी है, तो दूसरा कौन उससे बैर मोल लेगा?

यह कहकर सुभागी तुरंत अपने घर की ओर चली गई। सूरदास ने हां-नहीं कुछ न कहा। उसके चले जाने के बाद जगधर बोला–सूरे, तुम आज मेरे घर चलकर सो रहो। मुझे डर लग रहा है कि भैरो रात को कोई उपद्रव न मचाए। बदमाश आदमी है, उसका कौन ठिकाना, मार-पीट करने लगे।

सूरदास–भैरो को जितना नादान समझते हो, उतना वह नहीं है। तुमसे कुछ न बोलेगा, हां, सुभागी को जी-भर मारेगा।

जगधर–नसे में उसे अपनी सुध-बुध नहीं रहती।

सूरदास–मैं कहता हूं, तुमसे कुछ न बोलेगा। तुमसे अपने दिल की कोई बात नहीं छिपाई है, तुमसे लड़ाई करने की उसे हिम्मत न पड़ेगी।

जगधर का भय शांत तो न हुआ; पर सूरदास की ओर से निराश होकर चला गया। सूरदास सारी रात जागता रहा। इतने बड़े लांछन के बाद उसे अब यहां रहना लज्जाजनक जान पड़ता था। अब मुंह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाने के सिवा उसे और उपाय न सूझता था--मैंने तो कभी किसी की बुराई नहीं की, भगवान् मुझे क्यों यह दंड दे रहे हैं? यह किन पापों का प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है? तीरथ-यात्रा से चाहे यह पाप उतर जाए। कल कहीं चल देना चाहिए। पहले भी भैरो ने मुझ पर यही पाप लगाया था। लेकिन तब सारे मुहल्ले के लोग मुझे मानते थे, उसकी यह बात हंसी में उड़ गई। उलटे लोगों ने उसी को डांटा। अबकी तो सारा मुहल्ला मेरा दुसमन है, लोग सहज ही में विश्वास कर लेंगे, मुंह में कालिख लग जाएगी। नहीं, अब यहां से भाग जाने में ही कुसल है। देवताओं की सरन लूं, वही अब मेरी रक्षा कर सकते हैं। पर बेचारी सुभागी का क्या हाल होगा? भैरो अबकी उसे जरूर छोड़ देगा। इधर मैं भी चला जाऊंगा तो बेचारी कैसे रहेगी? उसके नैहर में भी तो कोई नहीं है। जवान औरत है, मेहनत-मजूरी कर नहीं सकती। न जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े। चलकर एक बार भैरो से अकेले में सारी बातें साफ-साफ कह दूं। भैरो से मेरी कभी सफाई से बातचीत नहीं हुई। उसके मन में गांठ पड़ी हुई है। मन में मैल रहने ही से मेरी ओर से ऐसा भरम होता है। जब तक उसका मन साफ न हो जाए, मेरा यहां से जाना उचित नहीं। लोग कहेंगे. काम किया था, तभी तो डरकर भागा, न करता, तो डरता क्यों? ये रुपये भी उसे फेर दूं। मगर जो उसने पूछा कि ये रुपये कहां मिले, तो सुभागी का नाम न बताऊंगा, कह दूंगा, मुझे झोपड़ी में रखे हुए मिले। इतना छिपाये बिना सुभागी की जान न बचेगी। लेकिन परदा रखने से सफाई कैसे होगी? छिपाने का काम नहीं है। सब कुछ आदि से अंत तक सच-सच कह दूंगा। तभी उसका मन साफ होगा।

इस विचार से उसे बड़ी शांति मिली, जैसे किसी कवि को उलझी हुई समस्या की पूर्ति से होती है।

वह तड़के ही उठा और जाकर भैरा के दरवाजे पर आवाज दी। भैरो सोया हुआ था। सुभागी बैठी रो रही थी। भैरो ने उसके घर पहुंचते ही उसकी यथाविधि ताड़ना की थी। सुभागी ने सूरदास की आवाज पहचानी। चौंकी कि यह इतने तड़के कैसे आ गया। कहीं दोनों में लड़ाई न हो जाए। सूरदास कितनी बलिष्ठ है, यह बात उससे छिपी न थी। डरी कि सूरदास रात की बातों को बदला लेने न आया हो। यों तो बड़ा सहनशील है, पर आदमी ही है, क्रोध आ गया होगा। झूठा इल्जाम सुनकर क्रोध आता ही है। कहीं गुस्से में आकर इन्हें मार न बैठे। पकड़ पाएगा, तो प्रान ही लेकर छोड़ेगा। सुभागी भैरो की मार खाती थी, घर से निकाली जाती थी, लेकिन यह मजाल न थी

कि कोई बाहरी आदमी भैरो को कुछ कहकर निकल जाए। उसका मुंह नोच लेती। उसने भैरो को जगाया नहीं, द्वार खोलकर पूछा—क्या है सूरे, क्या कहते हो?

सूरदास के मन में बड़ी प्रबल उत्कंठा हुई कि इससे पूछूं, रात तुझ पर क्या बीती; लेकिन जब्त कर गया—मुझे इससे वास्ता? उसकी स्त्री है। चाहे मारे, चाहे दुलारे। मैं कौन होता हूं पूछने वाला। बोला—भैरो क्या अभी सोते हैं? जरा जगा दे, उनसे कुछ बातें करनी हैं।

सुभागी—कौन बात है, मैं भी सुनूं?

सूरदास—ऐसी ही एक बात है, जरा जगा तो दे।

सुभागी—इस बखत जाओ, फिर कभी आकर कह देना।

सूरदास—दूसरा कौन बखत आएगा। मैं सड़क पर बैठूंगा कि नहीं? बहुत देर न लगेगी।

सुभागी—और कभी तो इतने तड़के न आते थे, आज ऐसी कौन-सी बात है?

सूरदास ने चिढ़कर कहा—उसी से कहूंगा, तुझसे कहने की बात नहीं है।

सुभागी को पूरा विश्वास हो गया कि यह इस समय आपे में नहीं है। जरूर मारपीट करेगा। बोली—मुझे मारा-पीटा थोड़े ही था, बस वहीं जो कुछ कहा-सुना वही कह-सुनकर रह गए।

सूरदास—चल, तेरे चिल्लाने की आवाज मैंने अपने कानों सुनी।

सुभागी—मारने को धमकाता था, बस मैं जोर से चिल्लाने लगी।

सूरदास—न मारा होगा। मारता भी, तो मुझे क्या, तू उसकी घरवाली है, जो चाहे करे, तू जाकर उसे भेज दे। मुझे एक बात कहनी है।

जब अब भी सुभागी न गई, तो सूरदास ने भैरो का नाम लेकर जोर-जोर से पुकारना शुरू किया। कई हांकों के बाद भैरो की आवाज सुनाई दी—कौन है, बैठो, आता हूं।

सुभागी यह सुनते ही भीतर गई और बोली—जाते हो, तो एक डंडा लेते जाओ, सूरदास है, कहीं लड़ने न आया हो।

भैरो—चल बैठ, लड़ाई करने आया है। मुझसे तिरिया-चरित्तर मत खेल।

सुभागी—मुझे उसकी त्योरियां बदली हुई मालूम होती हैं, इसी से कहती हूं।

भैरो—यह क्यों नहीं कहती कि तू उसे चढ़ाकर लाई है। वह तो इतना कीना नहीं रखता। उसके मन में कभी मैल नहीं रहता।

यह कहकर भैरो ने अपने लाठी उठाई और बाहर आया। अंधा शेर भी हो, तो उसका क्या भय? एक बच्चा भी उसे मार गिराएगा।

सूरदास ने भैरो से कहा—यहां और कोई तो नहीं है? मुझे तुमसे एक भेद की बात कहनी है।

भैरो—कोई नहीं है। कहो, क्या कहते हो?

सूरदास—तुम्हारे चोर का पता मिल गया।

भैरो—सच ! जवानी कसम !

सूरदास—हां, सच कहता हूं। वह मेरे पास आकर तुम्हारे रुपये रख गया। और तो कोई चीज नहीं गई थी?

भैरो—मुझे जलाने आए हो, अभी मन नहीं भरा?

सूरदास—नहीं, भगवान् से कहता हूं, तुम्हारी थैली मेरे घर में ज्यों-की-त्यों पड़ी मिली।

भैरो—बड़ा पागल था, फिर चोरी काहे को की थी?

सूरदास–हां, पागल ही था और क्या !

भैरो–कहां है, जरा देखूं तो।

सूरदास ने थैली कमर से निकालकर भैरो को दिखाई। भैरो ने लपककर थैली ले ली। ज्यों-की-त्यों बंद थी।

सूरदास–गिन लो, पूरे हैं कि नहीं?

भैरो–हैं, पूरे हैं, सच बताओ, किसने चुराया था?

भैरो को रुपये मिलने की इतनी खुशी न थी, जितनी चोर का नाम जानने की उत्सुकता। वह देखना चाहता था कि मैंने जिस पर शक किया था, वही है कि कोई और।

सूरदास–नाम जानकर क्या करोगे? तुम्हें अपने माल से मतलब है कि चोर के नाम से?

भैरो–नहीं, तुम्हें कसम है, बता दो, है तो इसी मुहल्ले का न?

सूरदास–हां, है तो मुहल्ले ही का; पर नाम न बताऊंगा।

भैरो–जवानी की कसम खाता हूं, उससे कुछ न कहूंगा।

सूरदास–मैं उसे वचन दे चुका हूं कि नाम न बताऊंगा। नाम बता दूं, और तुम अभी दंगा करने लगो, तब?

भैरो–बिसवास मानो, मैं किसी से न बोलूंगा। जो कसम कहो, खा जाऊं। अगर जबान खोलूं, तो समझ लेना, इसके असल में फरक है। बात और बाप एक है। अब और कौन कसम लेना चाहते हो?

सूरदास–अगर फिर गए, तो यहीं तुम्हारे द्वार पर सिर पटककर जान दे दूंगा।

भैरो–अपनी जान क्यों दे दोगे, मेरी जान ले लेना; चूं न करूंगा।

सूरदास–मेरे घर में एक बार चोरी हुई थी, तुम्हें याद है न? चोर को ऐसा सुभा हुआ होगा कि तुमने मेरे रुपये लिए हैं; इसी से उसने तुम्हारे यहां चोरी की, और मुझे रुपये लाकर दे दिए। बस, उसने मेरी गरीबी पर दया की, और कुछ नहीं। उससे मेरा और कोई नाता नहीं है।

भैरो–अच्छा, यह सब सुन चुका, नाम तो बताओ।

सूरदास–देखो, तुमने कसम खाई है।

भैरो–हां, भाई, कसम से मुकरता थोड़े ही हूं।

सूरदास–तुम्हारी घरवाली और मेरी बहन सुभागी।

इतना सुनना था कि भैरो जैसे पागल हो गया। घर में दौड़ा हुआ गया और मां से बोला–अम्मां, इसी डाइन ने मेरे रुपये चुराए थे। सूरदास अपने मुंह से कह रहा है। इस तरह से मेरा घर मूसकर यह चुड़ैल अपने धींगड़ों का घर भरती। उस पर मुझसे उड़ती थी। देख तो, तेरी क्या गत बनाता हूं। बता, सूरदास झूठ कहता है कि सच?

सुभागी ने सिर झुकाकर कहा–सूरदास झूठ बोलते हैं।

उसके मुंह से बात पूरी न निकलने पाई थी कि भैरो ने लकड़ी खींचकर मारी। वार खाली गया। इससे भैरो का क्रोध और भी बढ़ा। वह सुभागी के पीछे दौड़ा। सुभागी ने एक कोठरी में घुसकर भीतर से द्वार बंद कर लिया। भैरो ने द्वार पीटना शुरू किया। सारे मुहल्ले में हुल्लड़ मच गया, भैरो सुभागी को मारे डालता है। लोग दौड़ पड़े। ठाकुरदीन ने भीतर जाकर पूछा–क्या है,

भैरो, क्या किवाड़ तोड़े डालते हो? भले आदमी, कोई घर के आदमी पर इतना गुस्सा करता है।

भैरो—कैसा घर का आदमी जी ! ऐसे घर के आदमी का सिर काट लेना चाहिए, जो दूसरों से हंसे। आखिर मैं काना हूं, कतरा हूं, लूला, लंगड़ा हूं, मुझमें क्या ऐब है, जो यह दूसरों से हंसती है? मैं इसकी नाक काटकर तभी छोडूंगा। मेरे घर जो चोरी हुई थी, वह इसी चुड़ैल की करतूत थी। इसी ने रुपये चुराकर सूरदास को दिए थे।

ठाकुरदीन—सूरदास को !

भैरो—हां, हां सूरदास को। बाहर तो खड़ा है, पूछते क्यों नहीं? उसने जब देखा कि अब चोरी न पचेगी, तो लाकर सब रुपये मुझे दे गया है।

बजरंगी—अच्छा, तो रुपये सुभागी ने चुराए थे !

लोगों ने भैरो को ठंडा किया और बाहर खींच लाए। यहां सूरदास पर टिप्पणियां होने लगीं। किसी की हिम्मत न पड़ती थी, कि साफ-साफ कहे? सब-के-सब डर रहे थे कि कहीं मेम साहब से शिकायत न कर दे। पर अन्योक्तियों द्वारा सभी अपने मनोविचार प्रकट कर रहे थे। सूरदास को आज मालूम हुआ कि पहले काई मुझसे डरता न था, पर दिल में सब इज्जत करते थे, अब सब-के-सब मुझसे डरते हैं, पर मेरी सच्ची इज्जत किसी के दिल में नहीं है। उसे इतनी ग्लानि हो रही थी कि आकाश से वज्र गिरे और मैं यहीं जल-भुन जाऊं।

ठाकुरदीन ने धीरे से कहा—सूरे तो कभी ऐसा न था। आज से नहीं, लड़कपन से देखते हैं।

नायकराम—पहले नहीं था, अब हो गया। अब तो किसी को कुछ समझता ही नहीं।

ठाकुरदीन—प्रभुता पाकर सभी को मद हो जाता है, पर सूरे में तो मुझे कोई ऐसी बात नहीं दिखाई देती।

नायकराम—छिपा रुस्तम है ! बजरंगी, मुझे तुम्हारे ऊपर सक था।

बजरंगी—(हंसकर) पंडाजी, भगवान् से कहता हूं, मुझे तुम्हारे ऊपर सक था।

भैरो—और मुझसे जो सच पूछो, तो जगधर पर सक था।

सूरदास सिर झुकाए चारों ओर से ताने और लताड़ें सुन रहा था। पछता रहा था—मैंने ऐसे कमीने आदमी से यह बात बताई ही क्यों। मैंने तो समझा था, साफ-साफ कह देने से इसका दिल साफ हो जायगा। उसका यह फल मिला ! मेरे मुंह में तो कालिख लग ही गई, उस बेचारी का न जाने क्या हाल होगा। भगवान् अब कहां गए, क्या कथा-पुरानों ही में अपने सेवकों को उबारने आते थे, अब क्यों नहीं आकास से कोई दूत आकर कहता कि यह अंधा बेकसूर है।

जब भैरो के द्वार पर यह अभिनय होते हुए आध घंटे से अधिक हो गया, तो सूरदास के धैर्य का प्याला छलक पड़ा। अब मौन बने रहना उसके विचार में कायरता थी, नीचता थी। एक सती पर इतना कलंक थोपा जा रहा है और मैं चुपचाप खड़ा सुनता हूं ! यह महापाप है। वह तनकर खड़ा हो गया। और फटी हुई आंखें फाड़कर बोला—यारो, क्यों बिपत के मारे हुए दुखियों पर यह कीचड़ फेंक रहे हो, ये छुरियां चला रहे हो? कुछ तो भगवान् से डरो। क्या संसार में कहीं इंसाफ नहीं रहा? मैंने तो भलमनसी की कि भैरो के रुपये उसे लौटा दिए। उसका मुझे यह फल मिल रहा है ! सुभागी ने क्यों यह काम किया और क्यों मुझे रुपये दिये, यह मैं न बताऊंगा

लेकिन भगवान् मेरी इससे भी ज्यादा दुर्गत करें, अगर मैंने सुभागी को अपनी छोटी बहन के सिवा कभी कुछ और समझा हो। मेरा कसूर इतना ही है कि वह रात को मेरी झोपड़ी में आई थी। उस बखत जगधर वहां बैठा था। उससे पूछो कि हम लोगों में कौन-सी बातें हो रही थीं। अब इस मुहल्ले में मुझ-जैसे अंधे-अपाहिज आदमी का निबाह नहीं हो सकता। जाता हूं, पर इतना कहे जाता हूं कि सुभागी पर जो कलंक लगाएगा, उसका भला न होगा। वह सती है, सती को पाप लगाकर कोई सुख की नींद नहीं सो सकता। मेरा कौन कोई रोने वाला बैठा हुआ है; जिसके द्वार पर खड़ा हो जाऊंगा, वही चुटकी-भर आटा दे देगा। अब यहां से दाना-पानी उठता है, पर एक दिन आवेगा, जब तुम लोगों को सब बातें मालूम हो जाएंगी, और तब तुम जानोगे कि अंधा निरपराध था।

यह कहकर सूरदास अपनी झोपड़ी की तरफ चला गया।

चौबीस

सूरदास की जमीन वापस दिला देने के बाद सोफिया फिर मि० क्लार्क से तन गई। दिन गुजरते जाते थे और वह मि० क्लार्क से दूरतर होती जाती थी। उसे अब सच्चे अनुराग के लिए अपमान, लज्जा, तिरस्कार सहने की अपेक्षा कृत्रिम प्रेम का स्वांग भरना कहीं दुस्सह प्रतीत होता था। सोचती थी, मैं जल से बचने के लिए आग में कूद पड़ी। प्रकृति बल-प्रयोग सहन नहीं कर सकती। उसने अपने मन को बलात् विनय की ओर से खींचना चाहा था, अब उसका मन बड़े वेग से उनकी ओर दौड़ रहा था। इधर उसने भक्ति के विषय में कई ग्रंथ पढ़े थे और फलत: उसके विचारों में एक रूपांतर हो गया था। अपमान और लोक-निंदा का भय उसके दिल से मिटने लगा था। उसके सम्मुख प्रेम का सर्वोच्च आदर्श उपस्थित हो गया था, जहां अहंकार की आवाज नहीं पहुंचती। त्यागपरायण तपस्वी को सोमरस का स्वाद मिल गया था और उसके नशे में उसे सांसारिक भोग-विलास, मान-प्रतिष्ठा सारहीन जान पड़ती थीं। जिन विचारों से प्रेरित होकर उसने विनय से मुंह फेरने और क्लार्क से विवाह करने का निश्चय किया था, वे अब उसे नितांत अस्वाभाविक मालूम होते थे। रानी जाह्नवी से तिरस्कृत होकर अपने मन का दमन करने के लिए उसने अपने ऊपर यह अत्याचार किया था। पर अब उसे नजर ही न आता था कि मेरे आचरण में कलंक की कौन-सी बात थी, उसमें अनौचित्य कहां था। उसकी आत्मा अब उस निश्चय का घोर प्रतिवाद कर रही थी, उसे जघन्य समझ रही थी। उसे आश्चर्य होता था कि मैंने विनय के स्थान पर क्लार्क को प्रतिष्ठित करने का फैसला कैसे किया ! मि० क्लार्क में सद्गुणों की कमी नहीं, वह सुयोग्य हैं, शीलवान् है, उदार हैं, सहृदय हैं। वह किसी स्त्री को प्रसन्न रख सकते हैं, जिसे सांसारिक सुख-भोग की लालसा हो। लेकिन उनमें वह त्याग कहां, वह सेवा का भाव कहां, वह जीवन का उच्चादर्श कहां, वह वीर-प्रतिज्ञा कहां, वह आत्मसमर्पण कहां? उसे अब प्रेमानुराग की कथाएं और भक्ति-रस-प्रधान काव्य, जीव और आत्मा, आदि और अनादि, पुनर्जन्म और मोक्ष आदि गूढ़ विषयों की व्याख्या से कहीं आकर्षक मालूम होते थे। इसी बीच में उसे कृष्ण का जीवन-चरित्र पढ़ने का अवसर मिला था और उसने उस भक्ति

की जड़ हिला दी, जो उसे प्रभु मसीह से थी। वह मन में दोनों महान् पुरुषों की तुलना किया करती। मसीह की दया की अपेक्षा उसे कृष्ण के प्रेम से अधिक शांति मिलती थी। उसने अब तक गीता ही के कृष्ण को देखा था, और मसीह की दयालुता, सेवाशीलता और पवित्रता के आगे उसे कृष्ण का रहस्यमय जीवन गीता की जटिल दार्शनिक व्याख्याओं से भी दुर्बोध जान पड़ता था। उसका मस्तिष्क गीता के विचारोत्कर्ष के सामने झुक जाता था, पर उससे मन में भी भक्ति का भाव न उत्पन्न होता था। कृष्ण के बाल-जीवन को उसने भक्तों की कपोल-कल्पना समझ रखा था और उस पर विचार करना ही व्यर्थ समझती थी। पर अब ईसा की दया इस बाल-क्रीड़ा के सामने नीरस थी। ईसा की दया में आध्यात्मिकता थी, कृष्ण के प्रेम में भावुकता, ईसा की दया आकाश की भांति अनंत थी, कृष्ण का प्रेम एक नवकुसुमित, नवपल्लवित उद्यान की भांति मनोहर, ईसा की दया जल-प्रवाह की मधुर ध्वनि थी, कृष्ण का प्रेम बंसी की व्याकुल टेर, एक देवता था, दूसरा मनुष्य, एक तपस्वी था, दूसरा कवि, एक में जागृति और आत्मज्ञान था, दूसरे में अनुराग और उन्माद, एक व्यापारी था; हानि-लाभ पर निगाह रखने वाला, दूसरा रसिया था, अपने सर्वस्व को दोनों हाथों से लुटाने वाला; एक संयमी था, दूसरा भोगी। अब सोफिया का मन इसी प्रेम-क्रीड़ा में बसा रहता था, कृष्ण ने उसे मोहित कर लिया था, उसे अपनी बंसी की ध्वनि सुना दी थी।

मिस्टर क्लार्क का लौकिक शिष्टाचार अब उसे हास्यास्पद मालूम होता था। वह जानती थी कि यह सारा प्रेमालाप एक परीक्षा में भी सफल नहीं हो सकता। वह बहुधा उनसे रुखाई करती। वह बाहर से मुस्कराते हुए आकर उसकी बगल में कुर्सी खींचकर बैठ जाते, और यह उनकी ओर आंखें उठाकर भी न देखती। यहां तक कि कई बार उसने अपनी धार्मिक अश्रद्धा से मिस्टर क्लार्क के धर्मपरायण हृदय को कठोर आघात पहुंचाया। उन्हें सोफिया एक रहस्य-सी जान पड़ती थी, जिसका उद्‌घाटन करने में वह असमर्थ थे। उसका अनुपम सौंदर्य, उसकी हृदयाहरिणी छवि, उसकी अद्‌भुत विचारशीलता उन्हें जितने जोर से अपनी ओर खींचती थी, उतनी ही उसकी मानशीलता, विचार-स्वाधीनता और अनम्रता उन्हें भयभीत कर देती थी। उसके सम्मुख बैठे हुए वह अपनी लघुता का अनुभव करते थे, और पग-पग पर उन्हें ज्ञात होता था कि मैं इसके योग्य नहीं हूं। इसी वजह से इतनी घनिष्ठता होने पर भी उन्हें उसे वचनबद्ध करने का साहस न होता था। मिसेज सेवक आग में ईंधन डालती रहती थीं—एक ओर क्लार्क को उकसातीं, दूसरी ओर सोफी को समझातीं—तू समझती है, जीवन में ऐसे अवसर बार-बार आते हैं, यह तेरी गलती है। मनुष्य को केवल एक अवसर मिलता है, और वही उसके भाग्य का निर्णय कर देता है।

मि० जॉन सेवक ने भी अपने पिता के आदेशानुसार दोरुखी चाल चलनी शुरू की। वह गुप्त रूप से तो राजा महेन्द्रकुमारसिंह की कल घुमाते रहते थे, पर प्रकट रूप से मिस्टर क्लार्क के आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रखते थे। रहे मि० ईश्वर सेवक, वह तो समझते थे, खुदा ने सोफिया को मिस्टर क्लार्क ही के लिए बनाया है। वह अक्सर उनके यहां आते थे और भोजन भी वहीं कर लेते थे। जैसे कोई दलाल ग्राहक को देखकर उसके पीछे-पीछे हो लेता है, और उसे किसी दूसरी दुकान पर बैठने नहीं देता, वैसे ही वह मिस्टर क्लार्क को घेरे रहते थे कि कोई ऊंची दूकान उन्हें आकर्षित न कर ले। मगर इतने शुभेच्छुकों के रहते हुए भी मिस्टर क्लार्क को अपनी सफलता दुर्लभ मालूम होती थी।

सोफिया को इन दिनों बनाव-सिंगार का बड़ा व्यसन हो गया था। अब तक उसने मांग-चोटी या वस्त्राभूषण की कभी चिंता न की थी। भोग-विलास से दूर रहना चाहती थी। धर्म-ग्रंथों की यही शिक्षा थी, शरीर नश्वर है, संसार असार है, जीवन मृग-तृष्णा है, इसके लिए बनाव-संवार की जरूरत नहीं। वास्तविक शृंगार कुछ और ही है, उसी पर निगाह रखनी चाहिए। लेकिन अब तक वह जीवन को इतना तुच्छ न समझती थी। उसका रूप कभी इतने निखार पर न था। उसकी छवि-लालसा कभी इतनी सजग न थी।

संध्या हो चुकी थी। सूर्य की शीतल किरणें, किसी देवता के आशीर्वाद की भांति, तरु-पुंजों के हृदय को विहसित कर रही थीं। सोफिया एक कुंज में खड़ी आप-ही-आप मुस्करा रही थी कि मिस्टर क्लार्क का मोटर आ पहुंचा। वह सोफिया को बाग में देखकर सीधे उसके पास आए और एक कृपा-लोलुप दृष्टि से देखकर उसकी ओर हाथ बढ़ा दिया। सोफिया ने मुंह फेर लिया, मानो उनके बढ़े हुए हाथ को देखा ही नहीं।

सहसा एक क्षण बाद उसने हास्य- भाव से पूछा–आज कितने अपराधियों को दंड दिया?

मिस्टर क्लार्क झेंप गए। सकुचाते हुए बोले–प्रिये, यह तो रोज की बातें हैं, इनकी क्या चर्चा करूं?

सोफी–तुम यह कैसे निश्चय करते हो कि अमुक अपराधी वास्तव में अपराधी है? इसका तुम्हारे पास कोई यंत्र है?

क्लार्क–गवाह तो रहते हैं।

सोफी–गवाह हमेशा सच्चे होते हैं?

क्लार्क–कदापि नहीं। गवाह अक्सर झूठे और सिखाए हुए होते हैं।

सोफी–और उन्हीं गवाहों के बयान पर फैसला करते हो।

क्लार्क–इसके सिवा और उपाय ही क्या है !

सोफी–तुम्हारी असमर्थता दूसरे की जान क्यों ले? इसलिए कि तुम्हारे वास्ते मोटरकार, बंगला, खानसामे, भांति-भांति की शराबें और विनोद के अनेक साधन जुटाए जाएं?

क्लार्क ने हतबुद्धि के भांति कहा–तो क्या नौकरी से इस्तीफा दे दूं ?

सोफिया–जब तुम जानते हो कि वर्तमान शासन-प्रणाली में इतनी त्रुटियां हैं, तो तुम उसका एक अंग बनकर निरपराधियों का खून क्यों करते हो?

क्लार्क–प्रिये, मैंने इस विषय पर कभी विचार नहीं किया।

सोफिया–और बिना विचार किए ही नित्य न्याय की हत्या किया करते हो। कितने निर्दयी हो।

क्लार्क–हम तो केवल एक कल के पुर्जे हैं, हमें ऐसे विचारों से क्या प्रयोजन?

सोफी–क्या तुम्हें इसका विश्वास है कि तुमने कोई अपराध नहीं किया?

क्लार्क–यह दावा कोई मनुष्य नहीं कर सकता।

सोफी–तो तुम इसीलिए दंड से बचे हुए हो कि तुम्हारे अपराध छिपे हुए हैं?

क्लार्क–यह अस्वीकार करने को जी तो नहीं चाहता; पर विवश होकर स्वीकार करना पड़ेगा।

सोफी–आश्चर्य है कि स्वयं अपराधी होकर तुम्हें दूसरे अपराधियों को दंड देते हुए जरा भी लज्जा नहीं आती।

क्लार्क–सोफी, इसके लिए तुम फिर कभी मेरा तिरस्कार कर लेना। इस समय मुझे एक महत्व के विषय में तुमसे सलाह लेनी है। खूब विचार करके राय देना। राजा महेन्द्रकुमार ने मेरे फैसले की अपील गवर्नर के यहां की थी, इसका जिक्र तो मैं तुमसे कर ही चुका हूं। उस वक्त मैंने समझा था, गवर्नर अपील पर ध्यान न देंगे। एक जिले के अफसर के खिलाफ किसी रईस की मदद करना हमारी प्रथा के प्रतिकूल है, क्योंकि इससे शासन में विघ्न पड़ता है, किंतु छः-सात महीनों में परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई है, राजा साहब ने अपनी कूल-मर्यादा, दृढ़ संकल्प और तर्क-बुद्धि से इतनी अच्छी तरह काम लिया है कि अब शायद फैसला मेरे खिलाफ होगा। काउंसिल में हिन्दुस्तानियों का बहुमत हो जाने के कारण अब गवर्नर का महत्व बहुत कम हो गया है। यद्यपि वह काउंसिल के निर्णय को रद्द कर सकते हैं, पर इस अधिकार से वह असाधारण अवसरों पर ही काम ले सकते हैं। अगर राजा साहब की अपील वापस कर दी गई, तो दूसरे ही दिन देश में कुहराम मच जाएगा और समाचार-पत्रों को विदेशी राज्य के एक नए अत्याचार पर शोर मचाने का वह मौका मिल जायेगा जो वे नित्य खोजते रहते हैं। इसलिए गवर्नर ने मुझसे पूछा है कि यदि राजा साहब के आंसू पोंछे जाएं, तो तुम्हें कुछ दुःख तो न होगा? मेरी समझ में नहीं आता, इसका क्या उत्तर दूं। अभी तक कोई निश्चय नहीं कर सका।

सोफी–क्या इसका निर्णय करना मुश्किल है?

क्लार्क–हां, इसलिए मुश्किल है कि जन-सम्मति से राज्य करने की जो व्यवस्था हम लोगों ने खुद की है, उसे पैरों-तले कुचलना बुरा मालूम होता है। राजा कितना ही सबल हो, पर न्याय का गौरव रखने के लिए कभी-कभी राजा को भी सिर झुकाना पड़ता है। मेरे लिए कोई बात नहीं, फैसला मेरे अनुकूल हो या प्रतिकूल, मेरे ऊपर इसका कोई असर नहीं पड़ता, बल्कि प्रजा पर हमारे न्याय की धाक और बैठी जाती है। (मुस्कराकर) गवर्नर ने मुझे इस अपराध के लिए दंड भी दिया है। वह मुझे यहां से हटा देना चाहते हैं।

सोफिया–क्या तुम्हें इतना दबना पड़ेगा?

क्लार्क–हां, मैं एक रियासत का पोलिटिकल एजेंट बना दिया जाऊंगा। यह पद बड़े मजे का है, राजा तो केवल नाम के लिए होता है, सारा अख्तियार तो एजेंट ही के हाथों में रहता है। हममें जो बड़े भाग्यशाली होते हैं, उन्हीं को यह पद प्रदान किया जाता है।

सोफिया–तब तो तुम बड़े भाग्यशाली हो।

मिस्टर क्लार्क इस व्यंग से मन में कटकर रह गए। उन्होंने समझा था सोफी यह समाचार सुनकर फूली न समाएगी, और तब मुझे उससे यह कहने का अवसर मिलेगा कि यहां से जाने के पहले हमारा दांपत्य-सूत्र में बंध जाना आवश्यक है। 'तब तो तुम बड़े भाग्यशाली हो', इस निर्दय व्यंग ने उनकी सारी अभिलाषाओं पर पानी फेर दिया। इस वाक्य में वह निष्ठुरता, वह कटाक्ष, वह उदासीनता भरी हुई थी, जो शिष्टाचार की भी परवा नहीं करती। सोचने लगे–इसकी सम्मति की प्रतीक्षा किए बिना मैंने इच्छा प्रकट कर दी, कहीं यह तो इसे बुरा नहीं लगा? शायद समझती हो कि अपनी स्वार्थ-कामना से यह इतने प्रसन्न हो रहे हैं, पर उस बेकस अंधे की इन्हें जरा भी परवा नहीं कि उस पर क्या गुजारेगी। अगर यही करना था, तो यह राग ही क्यों छेड़ा था। बोले–यह तो तुम्हारे फैसले पर निर्भर है।

सोफी ने उदासीन भाव से उत्तर दिया–इन विषयों में तुम मुझसे चतुर हो।

क्लार्क–उस अंधे की फिक्र है।

सोफी ने निर्दयता से कहा—उस अंधे के खुदा तुम्हीं नहीं हो।

क्लार्क—मैं तुम्हारी सलाह पूछता हूं और तुम मुझी पर छोड़ती जाती हो।

सोफी—अगर मेरी सलाह से तुम्हारा अहित हो, तो?

क्लार्क ने बड़ी वीरता से उत्तर दिया—सोफी, मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊं कि मैं तुम्हारे लिए सब कुछ कर सकता हूं।

सोफी—(हंसकर) इसके लिए मैं तुम्हारी बहुत अनुगृहीत हूं।

इतने में मिसेज सेवक वहां आ गई और क्लार्क से हंस-हंसकर बातें करने लगीं। सोफी ने देखा, अब मिस्टर क्लार्क को बनाने का मौका नहीं रहा, तो अपने कमरे में चली आई। देखा, तो प्रभु सेवक वहां बैठे हैं। सोफी ने कहा—इन हजरत को अब यहां से बोरिया-बंधना संभालना पड़ेगा। किसी रियासत के एजेंट होंगे।

प्रभु सेवक—(चौंककर) कब?

सोफी—बहुत जल्द। राजा महेन्द्रकुमार इन्हें ले बीते।

प्रभु सेवक—तब तो तुम यहां थोड़े ही दिनों की मेहमान हो।

सोफी—मैं इनसे विवाह न करूंगी।

प्रभु सेवक—सच?

सोफी—हां, मैं कई दिन से यह फैसला कर चुकी हूं, पर तुमसे कहने का मौका न मिला।

प्रभु सेवक—क्या डरती थीं कि कहीं मैं शोर न मचा दूं?

सोफी—बात तो वास्तव में यही थी।

प्रभु सेवक—मेरी समझ में नहीं आता कि तुम मुझ पर इतना अविश्वास क्यों करती हो? जहां तक मुझे याद है, मैंने तुम्हारी बात किसी से नहीं कही।

सोफी—क्षमा करना प्रभु! न जाने क्यों मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं आता। तुममें अभी कुछ ऐसा लड़कपन है, कुछ ऐसे खुले हुए निर्द्वंद मनुष्य हो कि तुमसे कोई बात कहते उसी भांति डरती हूं,जैसे कोई आदमी वृक्ष की पतली टहनी पर पैर रखते डरता है।

प्रभु सेवक—अच्छी बात है, यों ही मुझसे डरा करो। वास्तव में मैं कोई बात सुन लेता हूं, तो मेरे पेट में चूहे दौड़ने लगते हैं, और तक जब किसी से कह न लूं, मुझे चैन ही नहीं आता। खैर, मैं तुम्हें इस फैसले पर बधाई देता हूं। मैंने तुमसे स्पष्ट तो कभी नहीं कहा; पर कई बार संकेत कर चुका हूं कि मुझे किसी दशा में क्लार्क को अपना बहनोई बनाना पसंद नहीं है। मुझे न जाने क्यों उनसे चिढ़ है। वह बेचारे मेरा बड़ा आदर करते हैं; पर अपना जी उनसे नहीं मिलता। एक बार मैंने उन्हें अपनी एक कविता सुनाई थी। उसी दिन से मुझे उनसे चिढ़ हो गई है। बैठे सोंठ की तरह सुनते रहे, मानो मैं किसी दूसरे आदमी से बातें कर रहा हूं। कविता का ज्ञान ही नहीं। उन्हें देखकर बस यही इच्छा होती है कि खूब बनाऊं। मैंने कितने ही मनुष्यों को अपनी रचना सुनाई होगी, पर विनय-जैसा मर्मज्ञ और किसी को नहीं पाया। अगर वह कुछ लिखें तो खूब लिखें। उनका रोम-रोम काव्यमय है।

सोफी—तुम इधर कभी कुंवर साहब की तरफ नहीं गए थे?

प्रभु सेवक—आज गया था, वहीं से चला आ रहा हूं विनयसिंह बड़ी विपत्ति में पड़ गए हैं। उदयपुर के अधिकारियों ने उन्हें जेल में डाल रखा है।

सोफिया के मुख पर क्रोध या शोक का कोई चिह्न न दिखाई दिया। उसने यह न पूछा,

क्यों गिरफ्तार हुए? क्या अपराध था? ये सब बातें उसने अनुमान कर लीं। केवल इतना पूछा—रानीजी तो वहां नहीं जा रही हैं?

प्रभु सेवक—न! कुंवर साहब और डॉक्टर गांगुली, दोनों जाने को तैयार हैं, पर रानी किसी को नहीं जाने देतीं। कहती हैं, विनय, अपनी मदद आप कर सकता है। उसे किसी की सहायता की जरूरत नहीं।

सोफिया थोड़ी देर में गंभीर विचार में स्थिर बैठी रही। विनय की वीर मूर्ति उसकी आंखों से सामने फिर रही थी। सहसा उसने सिर उठाया और निश्चयात्मक भाव से बोली—मैं उदयपुर जाऊंगी।

प्रभु सेवक—वहां जाकर क्या करोगी?

सोफी—यह नहीं कह सकती कि वहां जाकर क्या करूंगी। अगर और कुछ न कर सकूंगी, तो कम-से-कम जेल में रहकर विनय की सेवा तो करूंगी, अपने प्राण तो उन पर निछावर कर दूंगी। मैंने उनके साथ जो छल किया है, चाहे किसी इरादे से किया हो, वह नित्य मेरे हृदय में कांटे की भांति चुभा करता है। उससे उन्हें दु:ख हुआ होगा, उसकी कल्पना करते ही मेरा चित्त विकल हो जाता है। मैं अब उस छल का प्रायश्चित करूंगी, किसी और उपाय से नहीं, तो अपने प्राणों ही से।

यह कहकर सोफिया ने खिड़की से झांका, तो मि० क्लार्क अभी तक खड़े मिसेज सेवक से बातें कर रहे थे। मोटरकार भी खड़ी थी। वह तुरंत बाहर आकर मि० क्लार्क से बोली—विलियम, आज मामा से बातें करने ही में रात खत्म कर दोगे? मैं सैर करने के लिए तुम्हारा इतंजार कर रही हूं।

कितनी मंजुल वाणी थी। कितनी मनोहारिणी छवि से, कमल-नेत्रों में मधुर हास्य का कितना जादू भरकर, यह प्रेम-याचना की गई थी। क्लार्क ने क्षमाप्रार्थी नेत्रों से सोफिया को देखा—यह वही सोफिया है, जो अभी एक ही क्षण पहले मेरी हंसी उड़ा रही थी! तब जल पर आकाश की श्यामल छाया थी, अब उसी जल में इन्दु की सुनहरी क़िरणें नृत्य कर रही थीं, उसी लहराते हुए जल की कंपित, विहसित, चंचल छटा उसकी आंखों में थी। लज्जित होकर बोले—प्रिये, क्षमा करो, मुझे याद ही न रही, बातों में देर हो गई।

सोफिया ने माता को सरल नेत्रों से देखकर कहा—मामा, देखती हो इनकी निष्ठुरता, यह अभी से मुझसे तंग आ गए हैं। मेरी इतनी सुधि न रही कि झूठे ही पूछ लेते, सैर करने चलोगी?

मिसेज सेवक—हां, विलियम, यह तुम्हारी ज्यादती है। आज सोफी ने तुम्हें रंगे हाथों पकड़ लिया। मैं तुम्हें निर्दोष समझती थी और सारा दोष उसी के सिर रखती थी।

क्लार्क ने कुछ मुस्कराकर अपनी झेंप मिटाई और सोफिया का हाथ पकड़कर मोटर की तरफ चले। पर अब भी उन्हें शंका हो रही थी कि मेरे हाथ में जो नाजुक कलाई है, वह कोई वस्तु है या केवल कल्पना और स्वप्न। रहस्य और भी दुर्भेद्य होता हुआ दिखाई देता था। यह कोई बंदर को नचाने वाला मदारी है या बालक, जो बंदर को दूर से देखकर खुश होता है, उसे मिठाई देता है, पर बंदर के निकट आते ही भय से चिल्लाने लगता है।

जब मोटर चला, तो सोफिया ने कहा—एजेंट के अधिकार तो बड़े होते हैं, वह चाहे तो किसी रियासत के भीतरी मुआमलों में भी हस्तक्षेप कर सकता है, क्यों?

क्लार्क ने प्रसन्न होकर कहा—उसका, अधिकर सर्वत्र, यहां तक कि राजा के महल के अंदर भी होता है। रियासत को कहना ही क्या, वह राजा के खाने-सोने, आराम करने का समय तक नियत कर सकता है। राजा किससे मिले, किससे दूर रहे, किसका आदर करे, किसकी अवहेलना करे, यह सब बातें एजेंट के अधीन हैं। वह यहां तक निश्चित कर सकता है कि राजा की मेज पर कौन-कौन-से प्याले आएंगे, राजा के लिए कैसे और कितने कपड़ों की जरूरत है, यहां तक कि वह राजा के विवाह का भी निश्चय करता है। बस, यों समझो कि वह रियासत का खुदा होता है।

सोफिया—तब तो वहां-सैर-सपाटे का खूब अवकाश मिलेगा। यहां की भांति दिन-भर दफ्तर में तो न बैठना पड़ेगा?

क्लार्क—वहां, कैसा दफ्तर, एजेंट का काम दफ्तर में बैठना नहीं है। वह वहां बादशाह का स्थानापन्न होता है।

सोफिया—अच्छा, जिस रियासत में चाहो, जा सकते हो?

क्लार्क—हां, केवल पहले कुछ लिखा-पढ़ी करनी पड़ेगी। तुम कौन-सी रियासत पसंद करोगी?

सोफिया—मुझे तो पहाड़ी देशों से विशेष प्रेम है। पहाड़ों के दामन में बसे हुए गांव, पहाड़ों की गोद में चरने वाली भेड़ें और पहाड़ों से गिरने वाले जल-प्रपात, ये सभी दृश्य मुझे काव्यमय प्रतीत होते हैं। मुझे मालूम होता है, वह कोई दूसरा ही जगत है, इससे कहीं शांतिमय और शुभ्र। शैल मेरे लिए एक मधुर स्वप्न है। कौन-कौन सी रियासतें पहाड़ों में हैं?

क्लार्क—भरतपुर, जोधपुर, कश्मीर, उदयपुर....

सोफिया—बस, तुम उदयपुर के लिए लिखो। मैंने इतिहास में उदयपुर की वीर-कथाएं पढ़ी हैं, और तभी से मुझे उस देश को देखने की बड़ी लालसा है। वहां के राजपूत कितने वीर, कितने स्वाधीनता-प्रेमी, कितने आन पर जान देने वाले होते थे। लिखा है, चित्तौड़ में जितने राजपूतों ने वीर-गति पाई, उनके जनेऊ तौले गए, तो पचहत्तर मन निकले। कई हजार राजपूत-स्त्रियां एक साथ चिता पर बैठकर राख हो गईं। ऐसे प्रणवीर प्राणी संसार में शायद ही और कहीं हों।

क्लार्क—हां, वे वृत्तांत मैंने भी इतिहास में देखे हैं। ऐसी वीर जाति का जितना सम्मान किया जाए, कम है। इसीलिए उदयपुर का राजा हिन्दू राजाओं में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। उनकी वीर-कथाओं में अतिशयोक्ति से बहुत काम लिया गया है, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि इस देश में इतनी जांबाज और कोई जाति नहीं है।

सोफिया—तुम आज ही उदयपुर के लिए लिखो और संभव हो, तो हम लोग एक मास के अंदर यहां से प्रस्थान करे दें।

क्लार्क—लेकिन....कहते हुए डर लगता है....तुम मेरा आशय समझ गई, होगी....यहां से चलने के पहले मैं तुमसे वह चिर-सिंचित....मेरा जीवन....

सोफिया ने मुस्कराकर कहा—समझ गई, उसके प्रकट करने का कष्ट न उठाओ। इतनी मंदबुद्धि नहीं हूं, लेकिन मेरी निश्चय-शक्ति अत्यंत शिथिल है, यहां तक कि सैर करने के लिए चलने का निश्चय भी मैं घंटों के सोच-विचार के बाद करती हूं। ऐसे महत्त्व के विषय में, जिसका संबंध जीवन-पर्यंत रहेगा, मैं इतना जल्द कोई फैसला नहीं कर सकती। बल्कि

साफ तो यों है कि अभी तक मैं यही निर्णय नहीं कर सकी कि मुझ-जैसी निर्द्वंद्व, स्वाधीन-विचार-प्रिय स्त्री दांपत्य जीवन के योग्य है भी या नहीं। विलियम, मैं तुमसे हृदय की बात कहती हूं, गृहिणी-जीवन से मुझे भय मालूम होता है। इसलिए जब तक तुम मेरे स्वभाव से भली-भांति परिचित न हो जाओ, मैं तुम्हारे हृदय में झूठी आशाएं पैदा करके तुम्हें धोखे में नहीं डालना चाहती। अभी मेरा और तुम्हारा परियच केवल एक वर्ष का है। अब तक मैं तुम्हारे लिए केवल एक रहस्य हूं। क्यों, हूं या नहीं?

क्लार्क–हां सोफी ! वास्तव में अभी मैं तुम्हें अच्छी तरह नहीं पहचान पाया हूं।

सोफिया–फिर ऐसी दशा में तुम्हीं सोचो, हम दोनों का दाम्पत्य सूत्र में बांध जाना कितनी बड़ी नादानी है। मेरे दिल की जो पूछो, तो मुझे एक सहृदय, सज्जन, विचारशील और सच्चरित्र पुरुष के साथ मित्र बनकर रहना, उसकी स्त्री बनकर रहने से कम आनंददायक नहीं मालूम होता। तुम्हारा क्या विचार है, यह मैं नहीं जानती, लेकिन मैं स्त्री और पुरुष के संबंध को दो हृदयों के सहयोग का सबसे उत्तम रूप नहीं समझती, मैं सहानुभूति और सहवास को वासनामय संबंध से कहीं महत्वपूर्ण समझती हूं।

क्लार्क–किंतु सामाजिक और धार्मिक प्रथाएं ऐसे संबधों को....

सोफिया–हां, ऐसे संबंध अस्वाभाविक होते हैं और साधारणतः उन पर आचरण नहीं किया जा सकता। मैं भी इसे सदैव के लिए जीवन का नियम बनाने को प्रस्तुत नहीं हूं; लेकिन जब तक हम एक दूसरे को अच्छी तरह समझ न लें, जब तक हमारे अंतःकरण एक दूसरे के सामने आईने न बन जायं, उस समय तक मैं ऐसे ही संबघ को आवश्यक समझती हूं।

क्लार्क–मैं तुम्हारी इच्छाओं का दास हूं। केवल इतना कह सकता हूं कि तुम्हारे बिना मेरा जीवन वह घर है, जिसमें कोई रहने वाला नहीं; वह दीपक है, जिसमें उजाला नहीं, वह कवित्त है, जिसमें रस नहीं।

सोफिया–बस-बस ! यह प्रेमियों की भाषा केवल प्रेम-कथाओं के ही लिए शोभा देती है। यह लो, पांड़ेपुर आ गए। अंधेरा हो रहा है। सूरदास चला गया होगा। यह हाल सुनेगा, तो उस गरीब का दिल टूट जायगा।

क्लार्क–उसके निर्वाह का और कोई प्रबंध कर दूं?

सोफिया–इस भूमि से उसका निर्वाह नहीं होता था–केवल मुहल्ले के जानवर चरा करते थे। वह गरीब है, भिखारी है, पर लोभी नहीं। मुझे तो वह कोई साधु मालूम होता है।

क्लार्क–अंधे कुशाग्र बुद्धि और धार्मिक होते हैं।

सोफिया–मुझे तो उसके प्रति बड़ी श्रद्धा हो गई है। यह देखो, पापा ने काम शुरू कर दिया ! अगर उन्होंने राजा की पीठ न ठोंकी होती, तो उन्हें तुम्हारे सम्मुख आने का कदापि साहस न होता।

क्लार्क–तुम्हारे पापा बड़े चतुर आदमी हैं। ऐसे ही प्राणी संसार में सफल होते हैं। कम-से-कम मैं तो यह दोरुखी चाल न चल सकता।

सोफिया–देख लेना, दो-ही-चार वर्षों में इस मुहल्ले में कारखाने के मजदूरों के मकान होंगे, यहां का एक मनुष्य भी न रहने पाएगा।

क्लार्क–पहले तो अंधे ने बड़ा शोर-गुल मचाया था। देखें, अब क्या करता है?

सोफिया–मुझे तो विश्वास है कि वह चुप होकर कभी न बैठेगा, चाहे इस जमीन के

पीछे उसकी जान ही क्यों न चली जाए।

क्लार्क—नहीं प्रिये, ऐसा कदापि नहीं होने पाएगा। जिस दिन यह नौबत आएगी, सबसे पहले सूरदास के लिए मेरे कंठ से जय-ध्वनि निकलेगी, सबसे पहले मेरे हाथ उस पर फूलों की वर्षा करेंगे।

सोफिया ने क्लार्क को आज पहली ही बार सम्मानपूर्ण प्रेम की दृष्टि से देखा।

पच्चीस

साल-भर तक राजा महेन्द्रकुमार और मिस्टर क्लार्क में निरंतर चोटें चलती रहीं। पत्र का पृष्ठ रणक्षेत्र था और शृंखलित सूरमों की जगह सूरमों से कहीं बलवान दलीलें। मनों स्याही बह गई, कितनी ही कलमें काम आईं। दलीलें कट-कटकर रावण की सेना की भांति फिर जीवित हो जाती थीं। राजा साहब बार-बार हतोत्साह हो जाते, सरकार से मेरा मुकाबला करना चींटी का हाथी से मुकाबला करना है। लेकिन मिस्टर जॉन सेवक और उनसे अधिक इन्दु उन्हें ढाढस देती रहती थी। शहर के रईसों ने हिम्मत से कम, स्वार्थ-बुद्धि से अधिक, काम लिया। उस विनयपत्र पर, जो डॉक्टर गांगुली ने नगर-निवासियों की ओर से गर्वनर की सेवा में भेजने के लिए लिखा था, हस्ताक्षर करने के समय अधिकांश सज्जन बीमार पड़ गए, ऐसे असाध्य रोग से पीड़ित हो गए कि हाथ में कलम पकड़ने की भी शक्ति न रही। कोई तीर्थ-यात्रा करने चला गया, कोई किसी परमावश्यक काम से कहीं बाहर रवाना हो गया, जो गिने-गिनाए लोग कोई हीला न कर सके, वे भी हस्ताक्षर करने के बाद मिस्टर क्लार्क से क्षमा-प्रार्थना कर आए—हुजूर, न जाने उसमें क्या लिखा था, हमारे सामने तो केवल सादा कागज आया था, हमसे यही कहा गया कि यह पानी का महसूल घटाने की दरख्वास्त है। हमें मालूम होता कि उस सादे पत्र पर पीछे से हुजूर की शिकायत लिखी जाएगी, तो हम भूलकर भी कलम न उठाते—हां, जिन महानुभावों ने सिगरेट कपंनी के हिस्से लिए थे, उन्हें विवश होकर हस्ताक्षर करने पड़े। हस्ताक्षर करने वालों की संख्या यद्यपि बहुत न थी, पर डॉक्टर गांगुली को व्यवस्थापक सभा में सरकार से प्रश्न करने के लिए एक बहाना मिल गया। उन्होंने अदम्य उत्साह और धैर्य के साथ प्रश्नों की बाढ़ जारी रखी। सभा में डॉक्टर महोदय का विशेष सम्मान था, कितने ही सदस्यों ने उनके प्रश्नों का समर्थन किया, यहां तक कि डॉक्टर गांगुली के एक प्रस्ताव पर अधिकारियों को बहुमत से हार माननी पड़ी। इस प्रस्ताव से लोगों को बड़ी-बड़ी आशाएं थीं, किंतु जब इसका भी कुछ असर न हुआ, तो जगह-जगह सरकार पर अविश्वास प्रकट करने के लिए सभाएं होने लगी। रईसों और जमींदारों की तो भय के कारण जबान बंद थी, किंतु मध्यम श्रेणी के लोगों ने खुल्लमखुल्ला इस निरंकुशता का विरोध करना शुरू किया। कुंवर भरतसिंह को उनका नेतृत्व प्राप्त हुआ और यह स्पष्ट शब्दों में कहने लगे—अब हमें अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। हमारा उद्धार अपने ही हाथों होगा। महेन्द्रकुमार भी गुप्त रूप से इस दल को प्रोत्साहित करने लगे। डॉक्टर गांगुली के बहुत कुछ आश्वासन देने पर भी शासकों पर उन्हें अश्रद्धा हो गई। निराशा निर्बलता से उत्पन्न होती है; पर उसके गर्भ से शक्ति का जन्म होता है।

रात के नौ बज गए थे। विनयसिंह के कारावास-दंड का समाचार पाकर कुंवर साहब ने अपने हितैषियों को इस स्थिति पर विचार करने के लिए आमंत्रित किया था। डॉक्टर गांगुली, जॉन सेवक, प्रभु सेवक, राजा महेन्द्रकुमार और कई अन्य सज्जन आए हुए थे। इन्दु भी राजा साहब के साथ आई थी और अपनी माता से बातें कर रही थी। कुंवर साहब ने नायकराम को बुला भेजा था और वह कमरे के द्वार पर बैठे हुए तंबाकू मल रहे थे।

महेन्द्रकुमार बोले—रियासतों पर सरकार का बड़ा दबाव है। वे अपंग हैं और सरकार के इशारे पर चलने के लिए मजबूर हैं।

भरतसिंह ने राजा साहब का खंडन किया—जिससे किसी का उपकार न हो और जिसके अस्तित्व का आधार ही अपकार पर हो, उसका निशान जितनी जल्द मिट जाए, उतना ही अच्छा। विदेशियों के हाथों में अन्याय का यंत्र बनकर जीवित रहने से तो मर जाना ही उत्तम है।

डॉक्टर गांगुली—वहां का हाकिम लोग खुद पतित है। डरता है कि रियासत में स्वाधीन विचारों का प्रचार हो जायगा, तो हम प्रजा को कैसे लूटेगा। राजा मसनद लगाकर बैठा रहता है, उसका नौकर-चाकर मनमाना राज करता है।

जॉन सेवक ने पक्षपात-रहित होकर कहा—सरकार किसी रियासत को अन्याय करने के लिए मजबूर नहीं करती। हां, चूंकि वे अशक्त हैं, अपनी रक्षा आप नहीं कर सकतीं, इसलिए ऐसे कामों में जरूरत से ज्यादा तत्पर हो जाती हैं, जिनसे सरकार के प्रसन्न होने का उन्हें विश्वास होता है।

भरतसिंह—विनय कितना नम्र, सुशील, सुधीर है, यह आप लोगों से छिपा नहीं। मुझे इसका विश्वास ही नहीं हो सकता कि उसकी जात से किसी का अहित हो सकता है।

प्रभु सेवक कुंवर साहब के मुंह लगे हुए थे। अब तक जॉन सेवक के भय से न बोले थे, पर अब न रहा गया। बोले—क्यों, क्या पुलिस से चोरों का अहित नहीं होता? क्या साधुओं से दुर्जनों का अहित नहीं होता? और फिर गऊ-जैसे पशु की हिंसा करने वाले क्या संसार में नहीं हैं? विनय ने दलित किसानों की सेवा करनी चाही थी, उसी का यह उन्हें उपहार मिला है। प्रजा की सहन-शक्ति की भी कोई सीमा होनी चाहिए और होती है। उसकी अवहेलना करके कानून कानून ही नहीं रह जाता। उस समय उस कानून को भंग करना ही प्रत्येक विचारशील प्राणी का कर्त्तव्य हो जाता है। अगर आज सरकार का हुक्म हो कि सब लोग मुंह में कालिख लगाकर निकलें, तो इस हुक्म की उपेक्षा करना हमारा धर्म हो जायगा। उदयपुर के दरबार को कोई अधिकार नहीं है कि वह किसी को रियासत से निकल जाने पर मजबूर करे।

डॉक्टर गांगुली—उदयपुर ऐसा हुक्म दे सकता है। उसको अधिकार है।

प्रभु सेवक—मैं उसे स्वीकार नहीं करता। जिस आज्ञा का आधार केवल पशु-बल हो, उसका पालन करना आवश्यक नहीं। अगर उदयपुर में कोई उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार होती और वह बहुमत से यह हुक्म देती, तो दूसरी बात थी। लेकिन जब कि प्रजा ने कभी दरबार से यह इच्छा नहीं की, बल्कि वह विनयसिंह पर जान देती है, तो केवल अधिकारियों की स्वेच्छा हमको उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती।

राजा साहब ने इधर-उधर भीत नेत्रों से देखा कि यहां कोई मेरा शत्रु तो नहीं बैठा हुआ है। जॉन सेवक भी त्योरियां बदलने लगे।

डॉक्टर गांगुली—हम दरबार में लड़ तो नहीं सकता।

प्रभु सेवक–प्रजा को अपने स्वत्व की रक्षा के लिए उत्तेजित तो कर सकते हैं।

भरतसिंह--इसका परिणाम विद्रोह के सिवा और क्या हो सकता है, और विद्रोह का दमन करने के लिए दरबार सरकार से सहायता लेगा। हजारों बेकसों का खून हो जायगा।

प्रभु सेवक–जब तक हम खून से डरते रहेंगे, हमारे स्वत्व भी हमारे पास आने से डरते रहेंगे। उनकी रक्षा भी तो खून ही से होगी। राजनीति का क्षेत्र समर-क्षेत्र से कम भयावह नहीं है। उसमें उतरकर रक्तपात से डरना कापुरुषता है।

जॉन सेवक से अब जब्त न हुआ। बोले–तुम-जैसे भावुक युवकों को ऐसे गहन राजनीतिक विषयों पर कुछ करने के पहले अपने शब्दों को खूब तौल लेना चाहिए। यह अवसर शांति और शीतल विचार से काम लेने का है।

प्रभु सेवक ने दबी जबान से कहा, मानो मन में कह रहा है–शीतल विचार कायरता का दूसरा नाम है।

डॉक्टर गांगुली–मेरे विचार में भारतीय सरकार की सेवा में डेपुटेशन जाना चाहिए।

भरतसिंह–सरकार कह देगी, हमें दरबार के आंतरिक विषय में दखल देने का अधिकार नहीं।

महेन्द्रकुमार–दरबार ही के पास क्यों न डेपुटेशन भेजा जाय?

जॉन सेवक–हां, यही मेरी भी सलाह है। राज्य के विरुद्ध आंदोलन करना राज्य को निर्बल बना देता है और प्रजा को उद्दंड। राज्य-प्रभुत्व का प्रत्येक दशा में अक्षुण्ण रहना आवश्यक है, अन्यथा उसका फल वही होगा, जो आज साम्यवाद का व्यापक रूप धारण कर रहा है। संसार ने तीन शताब्दियों तक जनवाद की परीक्षा की और अंत में हताश हो गया। आज समस्त संसार जनवाद के आतंक से पीड़ित है। हमारा परम सौभाग्य है कि वह अग्नि-ज्वाला अभी तक इस देश में नहीं पहुंची, और हमें यत्न करना चाहिए कि उससे भविष्य में भी निश्शंक रहें।

कुंवर भरतसिंह जनवाद के बड़े पक्षपाती थे। अपने सिद्धांत का खंडन होते देखकर बोले–फूस का झोंपड़ा बनाकर आप अग्नि-ज्वाला से निश्शंक रह ही नहीं सकते। बहुत संभव है कि ज्वाला के बाहर से न आने पर भी घर ही की एक चिंगारी उड़कर उस पर गिर पड़े। आप झोंपड़ा रखिए ही क्यों! जनवाद आदर्श व्यवस्था न हो; पर संसार अभी उससे उत्तम कोई शासन-विधान नहीं निकाल सका है। खैर, जब यह सिद्ध हो गया कि हम दरबार पर कोई असर नहीं डाल सकते, तो सब्र करने के सिवा और क्या किया जा सकता है। मैं राजनीतिक विषयों से अलग रहना चाहता हूं, क्योंकि उससे कोई फ़ायदा नहीं। स्वाधीनता का मूल्य रक्त है। जब हममें उसके देने की शक्ति ही नहीं है, तो व्यर्थ में कमर क्यों बांधें, पैंतरे क्यों बदलें, ताल क्यों ठोंकें? उदासीनता ही में हमारा कल्याण है।

प्रभु सेवक–यह तो बहुत मुश्किल है कि आंखों से अपना घर लुटते देखें और मुंह न खोलें।

भरतसिंह–हां, बहुत मुश्किल है, पर अपनी वृत्तियों को साधना पड़ेगा। उसका यही उपाय है कि हम कुल्हाड़ी की बेंट न बनें। बेंट कुल्हाड़ी की मदद न करे, तो कुल्हाड़ी कठोर और तेज होने पर भी हमें बहुत हानि नहीं पहुंचा सकती। यह हमारे लिए घोर लज्जा की बात है कि हम शिक्षा, ऐश्वर्य या धन के बल पर शासकों के दाहिने हाथ बनकर प्रजा का गला काटें और इस बात पर गर्व करें कि हम हाकिम हैं।

जॉन सेवक–शिक्षित वर्ग सदैव से राज्य का आश्रित रहा है और रहेगा। राज्य-विमुख होकर वह अपना अस्तित्व नहीं मिटा सकता।

भरतसिंह–यही तो सबसे बड़ी विपत्ति है। शिक्षित वर्ग जब तक शासकों का आश्रित रहेगा, हम अपने लक्ष्य के जौ भर निकट न पहुंच सकेंगे। उसे अपने लिए थोड़े, बहुत दिनों के लिए कोई दूसरा ही अवलंब खोजना पड़ेगा।

महेन्द्रसिंह बगलें झांक रहे थे कि यहां से खिसक जाने का कोई मौका मिल जाए इस वाद-विवाद का अंत करने के इरादे से बोले–तो आप लोगों ने क्या निश्चय किया? दरबार की सेवा में डेपुटेशन भेजा जाएगा?

डॉक्टर गांगुली–हम खुद जाकर विनय को छुड़ा लायगा।

भरतसिंह–अगर वधिक ही से प्राण-याचना करनी है, तो चुप रहना ही अच्छा, कम-से-कम बात तो बनी रहेगी।

डॉक्टर गांगुली–फिर वही Pessimism का बात। हम विनय को समझाकर उसे यहां आने पर राजी कर लेगा।

रानी जाह्नवी ने इधर आते हुए इस वाक्य के अंतिम शब्द सुन लिए। गर्वसूचक भाव से बोलीं–नहीं डॉक्टर गांगुली, आप विनय पर यह कृपा न कीजिए। यह उसकी पहली परीक्षा है। इसमें उसको सहायता देना उसके भविष्य को नष्ट करना है। वह न्यायपक्ष पर है, उसे किसी से दबने की जरूरत नहीं। अगर उसने प्राण-भय से इस अन्याय को स्वीकार कर लिया, तो सबसे पहले मैं ही उसके माथे पर कालिमा का टीका लगा दूंगी।

रानी के ओजपूर्ण शब्दों ने लोगों को विस्मित कर दिया। ऐसा जान पड़ता था कि कोई देवी आकाश से यह संदेश सुनाने के लिए उतर आई है।

एक क्षण के बाद भरतसिंह ने रानी के शब्दों का भावार्थ किया–मेरे खयाल में अभी विनयसिंह को उसी दशा में छोड़ देना चाहिए। यह उसकी परीक्षा है। मनुष्य बड़े-से-बड़े काम जो कर सकता है, वह यही है कि आत्मरक्षा के लिए मर मिटे। यही मानवीय जीवन का उच्चतम उद्देश्य है। ऐसी ही परीक्षाओं में सफल होकर हमें वह गौरव प्राप्त हो सकता है कि जाति हम पर विश्वास कर सके।

गांगुली–रानी हमारा देवी हैं। हम उनके सामने कुछ नहीं कह सकता। पर देवी लोगों का बात संसार वालों के व्यवहार योग्य नहीं हो सकता। हमको पूरा आसा है कि हमारा सरकार जरूर बोलेगा।

रानी–सरकार की न्यायशीलता का एक दृष्टांत तो आपके सामने ही है। अगर अब भी आपको उस पर विश्वास हो, तो मैं यही कहूंगी कि आपको कुछ दिनों किसी औषधि का सेवन करना पड़ेगा।

गांगुली–दो-चार दिन में यह बात मालूम हो जाएगा। सरकार को भी तो अपनी नेकनामी-बदनामी का डर है।

महेन्द्रकुमार बहुत देर के बाद बोले–राह देखते-देखते तो आंखें पथरा गईं। हमारी आशा इतनी चिरंजीवी नहीं।

सहसा टेलीफोन की घंटी बोली–कुंवर साहब ने पूछा–कौन महाशय हैं?

'मैं हूं प्राणनाथ। मिस्टर क्लार्क का तबादला हो गया।'

'कहां?'

'पोलिटिकल विभाग में जा रहे हैं। ग्रेड कम कर दिया गया है।'

डॉक्टर गांगुली—अब बोलिए, मेरी बात सच हुआ कि नहीं? आप कौन कहता था, सरकार का नीयत बिगड़ा हुआ है। पर हम कहता था, उसको हमारा बात मानना पड़ेगा।

महेन्द्रकुमार—अजी, प्राणनाथ मसखरा है, आपसे दिल्लगी कर रहा होगा।

भरतसिंह—नहीं, मुझसे तो उसने कभी दिल्लगी नहीं की।

रानी—सरकार ने इतने नैतिक साहस से शायद पहली बार ही काम लिया है।

गांगुली—अब वह जमाना नहीं है, जब सरकार प्रजा-मत की उपेक्षा कर सकता था। अब कार्उसिल का प्रस्ताव उसे मानना पड़ता है।

भरतसिंह—जमाना तो वही है, और सरकार की नीति में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। इसमें जरूर कोई-न-कोई राजनीतिक रहस्य है।

जॉन सेवक—व्यापारी मंडल ने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करके गवर्नमेंट के छक्के छुड़ा दिए।

महेन्द्रकुमार—मेरा डेपुटेशन बड़े मौके से पहुंचा था।

गांगुली—मैंने काउंसिल को ऐसा संघटित कर दिया था कि हमको इतना बड़ा मेजॉरिटी कभी नहीं मिला।

इन्दु रानी के पीछे खड़ी थी। बोली—विनय-पत्र पर मेरे ही उद्योग से इतने आदमियों के नाम आए थे। मुझे तो विश्वास है, यह उसी की करामात है।

नायकराम अब तक चुपचाप बैठे हुए थे। उनकी समझ में न आता था कि यहां क्या बातें हो रही हैं। टेलीफोन की बात उनकी समझ में आई। अब उन्हें ज्ञात हुआ कि लोग सफलता का सेहरा अपने-अपने सिर बांध रहे हैं। ऐसे अवसर पर भला वह कब चूकने वाले थे। बोले—सरकार, यहां भी गाफिल बैठने वाले नहीं हैं। सिविल सारजंट के कान में यह बात डाल दी थी कि राजा साहब की ओर से पूरा एक हजार लठैत जवान तैयार बैठा हुआ है। उनका हुक्म बहाल न हुआ, तो खून-खच्चर हो जायगा, शहर में तूफान आ जाएगा। उन्होंने लाट साहब से यह बात जरूर ही कही होगी।

महेन्द्रकुमार—मैं तो समझता हूं, यह तुम्हारी धमकियों ही की करामात है।

नायकराम—धर्मावतार, धमकियां कैसी, खून की नदी बह जाती। आपका ऐसा अकबाल है कि चाहूं, तो एक बार शहर लुटवा दूं। ये लाल साफे खड़े मुंह ताकते रह जायं।

प्रभु सेवक ने हास्य-भाव से कहा—सच पूछिए, तो यह उस कविता का फल है, जो मैंने 'हिन्दुस्तान-रिव्यू' में लिखी थी।

रानी—प्रभु, तुमने यह चपत खूब लगाई। डॉक्टर गांगुली अपना सिर सुहला रहे हैं। क्यों डॉक्टर, बैठी या नहीं? एक तुच्छ सफलता पर आप लोग इतने फूले नहीं समाते। इसे विजय न समझिए, यह वास्तव में पराजय है, जो आपको अपने अभीष्ट से कोसों दूर हटा देती है, आपके गले में फंदे को और भी मजबूत कर देती है। बाजे वाले सरदी में बाजे को आग से सेंकते हैं, केवल इसीलिए कि उसमें से कर्ण मधुर स्वर निकले। आप लोग भी सेंके जा रहे हैं, अब चोटों के लिए पीठ मजबूत कर लीजिए।

यह कहती हुई जाह्नवी अंदर चली गई, पर उनके जाते ही इस तिरस्कार का असर भी जाता रहा, लोग फिर वही राग अलापने लगे।

महेन्द्रकुमार–क्लार्क महोदय भी क्या याद करेंगे कि किसी से पाला पड़ा था।

गांगुली–अब इससे कौन इनकार कर सकता है कि ये लोग कितने न्यायप्रिय होते हैं।

जॉन सेवक–अब जरा उस अंधे की भी खबर लेनी चाहिए।

नायकराम–साहब, उसको हार-जीत का कोई गम नहीं है। उस जमीन की दस गुनी भी मिल जाए, तो भी वह इसी तरह रहेगा।

जॉन सेवक–मैं कल ही से मिल में काम लगा दूंगा। जरा मिस्टर क्लार्क को भी देख लूं।

महेन्द्रकुमार–मैं तो अभिवादन-पत्र न दूंगा। उनकी तरफ से कोशिश तो होगी, पर बोर्ड का बहुमत मेरे साथ है।

गांगुली–ऐसा हाकिम लोग को अभिवादन-पत्र देने का काम नहीं।

महेन्द्रकुमार के पेट में चूहे दौड़ रहे थे कि इन्दु से भी इस सुख-संवाद पर बातें करूं। यों तो बहुत ही गंभीर पुरुष थे, पर इस विजय ने बालोचित उल्लास से विह्वल कर दिया था। एक नशा-सा छाया हुआ था। रानी के जाने के जरा देर बाद वह विहसित मुख, प्रसन्नचित्त, अज्ञात भाव से अकड़ते, गर्व से मस्तक उठाए अंदर दाखिल हुए। इन्दु रानी के पास बैठी हुई थी। खड़ी होकर बोली–आखिर साहब बहादुर को बोरिया-बंधना संभालना पड़ा न !

महेन्द्रकुमारसिंह रानी के सामने अपना कुत्सित आनंद न प्रकट कर सके। बोले–हां, अब तो टलना ही पड़ेगा।

इन्दु–अब कल मैं इन लेडी साहब का कुशल-समाचार पूछूंगी, जो धरती पर पांव न रखती थीं, अपने आगे किसी को कुछ समझती ही न थीं। बुलाकर दावत करूं?

महेन्द्रकुमार–कभी न आएगी, और जरूरत ही क्या है।

इन्दु–जरूरत क्यों नहीं ! झेंपेगी तो, सिर तो नीचा हो जाएगा। न आएगी, न सही। अम्मां, आपने तो देखा है, सोफिया पहले कितनी नम्र और मिलनसार थी; लेकिन क्लार्क से विवाह की बातचीत होते ही मिजाज आसमान पर चढ़ गया।

रानी ने गंभीर भाव से कहा–बेटी, यह तुम्हारा भ्रम है। सोफिया मिस्टर क्लार्क से कभी विवाह न करेगी। अगर मैं आदमियों को कुछ पहचान सकती हूं तो देख लेना, मेरी बात ठीक उतरती है या नहीं।

इन्दु–अम्मां, क्लार्क से उसकी मंगनी हो गई है। संभव है, गुप्त रूप से विवाह भी हो गया हो। देखती नहीं हो, दोनों कितने घुले-मिले रहते हैं।

रानी–कितने ही घुले-मिले रहें, पर उनका विवाह न हुआ है, न होगा। मैं अपनी संकीर्णता के कारण सोफिया की कितनी ही उपेक्षा करूं, किंतु वह सती है, इसमें अणुमात्र भी संदेह नहीं। उसे लज्जित करके तुम पछताओगी।

इन्दु–अगर वह इतनी उदार है, तो आपके बुलाने से अवश्य आएगी।

रानी–हां, मुझे पूर्ण विश्वास है।

इन्दु–तो बुला भेजिए, मुझे दावत का प्रबंध क्यों न करना पड़े।

रानी–तुम यहां बुलाकर उसका अपमान करना चाहती हो। मैं तुमसे अपने हृदय की बात कहती हूं। अगर वह ईसाइन न होती, तो आज के पांचवें वर्ष मैं उससे विनय का विवाह करती और इसे अपना धन्य भाग समझती।

इन्दु को ये बातें कुछ अच्छी न लगीं। उठकर अपने कमरे में चली गई। एक क्षण में महेन्द्रकुमार भी वहां पहुंच गए और दोनों डींगे मारने लगे। कोई लड़का खेल में जीतकर भी इतना उन्मत्त न होता होगा।

उधर दीवानखाने से भी सभा उठ गई। लोग अपने-अपने घर गए। जब एकांत हो गया, तो कुंवर साहब ने नायकराम को बुलाकर कहा—पंडाजी, तुमसे मैं एक काम लेना चाहता हूं, करोगे?

नायकराम—सरकार, हुकुम हो, तो सिर देने को हाजिर हैं। ऐसी क्या बात है भला?

कुंवर साहब—देखो, दुनियादारी मत करो। मैं जो काम लेना चाहता हूं, वह सहज नहीं। बहुत समय, बहुत बुद्धि, बहुत बल व्यय करना पड़ेगा। जान-जोखिम भी है। अगर दिल इतना मजबूत हो, तो हामी भरो, नहीं साफ-साफ जवाब दे दो, मैं कोई यात्री नहीं कि तुम्हें अपनी धाक बिठाना जरूरी हो। मैं तुम्हें जानता हूं और तुम मुझे जानते हो। इसलिए साफ बातचीत होनी चाहिए।

नायकराम—सरकार, आपसे दुनियादारी करके भगवान् को क्या मुंह दिखाऊंगा। आपका नमक तो रोम-रोम में सना हुआ है। अगर मेरे काबू की बात होगी, तो पूरी करूंगा, चाहे जान ही पर क्यों न आ बने। आपके हुकुम देने की देर है।

कुंवर—विनय को छुड़ाकर ला सकते हो?

नायकराम—दीनबंधु, अगर प्राण देकर भी ला सकूंगा, तो उठा न रखूंगा।

कुंवर—तुम जानते हो, मैंने तुमसे यह सवाल क्यों किया। मेरे यहां सैकड़ों आदमी हैं। खुद डॉक्टर गांगुली जाने को तैयार हैं। महेन्द्र को भेज दूं, तो वह भी चले जाएंगे। लेकिन इन लोगों के सामने मैं अपनी बात नहीं छेड़ना चाहता। सिर पर यह इल्जाम नहीं लेना चाहता कि कहते कुछ हैं, और करते कुछ। धर्म संकट में पड़ा हुआ हूं। पर बेटे की मुहब्बत नहीं मानती। हूं तो आदमी, काठ का कलेजा तो नहीं है। कैसे सब्र करूं। उसे बड़े-बड़े अरमानों से पाला है, वही एक जिंदगी का सहारा है। तुम उसे किसी तरह अपने साथ लाओ। उदयपुर के अमले और कर्मचारी देवता नहीं, उन्हें लालच देकर जेल में जा सकते हो, विनयसिंह से मिल सकते हो, अमलों की मदद से उन्हें बाहर ला सकते हो यह कुछ कठिन नहीं। कठिन है विनय को आने पर राजी करना। वह तुम्हारी बुद्धि और चतुरता पर छोड़ता हूं। अगर तुम मेरी दशा का ज्ञान उन्हें करा सकोगे, तो मुझे विश्वास है, वह आयंगे। बोलो, कर सकते हो यह काम? इसका मेहनताना एक बूढ़े बाप के आशीर्वाद के साथ और जो कुछ चाहोगे, पेश करूंगा।

नायकराम—महाराज, कल चला जाऊंगा। भगवान् ने चाहा, तो उन्हें साथ लाऊंगा, नहीं तो फिर मुंह न दिखाऊंगा।

कुंवर—नहीं पंडाजी, जब उन्हें मालूम हो जायगा कि मैं कितना विकल हूं, तो वह चले आयंगे, वह अपने बाप की जान को सिद्धांत पर बलिदान करेंगे। उनके लिए मैंने अपने जीवन की कायापलट कर दी, यह फकीरी भेष धारण किया, क्या वह मेरे लिए इतना भी न करेंगे। पंडाजी, सोचो, जिस आदमी ने हमेशा मखमली बिछौनों पर आराम किया हो, उसे इस काठ के तख्त पर आराम मिल सकता है? विनय का प्रेम ही वह मंत्र है, जिसके वश होकर मैं यह कठिन तपस्या कर रहा हूं। जब विनय ने त्याग का व्रत ले लिया, तो मैं किस मुंह से बुढ़ापे में भोग-विलास में लिप्त रहता? आह ! ये सब जाह्नवी के बोए हुए कांटे हैं। उसके आगे मेरी कुछ

नहीं चलती। मेरा सुख-स्वर्ग उसी के कारण नरक तुल्य हो रहा है। उसी के कारण मेरा प्यारा विनय मेरे हाथों से निकला जाता है। ऐसा पुत्र-रत्न खोकर संसार मेरे लिए नरक हो जायगा। तुम कल जाओगे? मुनीम से जितना रुपये चाहो, ले लो।

नायकराम—आपके अकबाल से किसी बात की कमी नहीं। आपकी दया चाहिए, आपने इतने प्रतापी होकर जो त्याग किया है, वह कोई दूसरा करता, तो आंख निकल पड़ती। त्याग करना कोई हंसी है। यहां तो घर में भूंजी भांग नहीं, जात्रियों की सेवा-टहल न करें, तो भोजन का ठिकाना भी न हो, पर बूटी की ऐसी चाट पड़ गई है कि एक दिन न मिले, तो बावला हो जाता हूं। कोई आपकी तरह क्या खाके त्याग करेगा?

कुंवर—यह तो मानी हुई बात है कि तुम गए, तो विनय को लेकर ही लौटोगे। अब यह बताओ कि मैं तुम्हें क्या दक्षिणा दूं? तुम्हारी सबसे बड़ी अभिलाषा क्या है?

नायकराम—सरकार की कृपा बनी रहे, मेरे लिए यह कुछ कम नहीं।

कुंवर—तो इसका आशय यह है कि तुम मेरा कुछ काम नहीं करना चाहते?

नायकराम—सरकार, ऐसी बात न कहें। आप मुझे पालते हैं, आपका हुकुम न बजा लाऊंगा, तो भगवान् को क्या मुंह दिखाऊंगा। और फिर आपका काम कैसा, अपना ही काम है।

कुंवर—नहीं भाई, मैं तुम्हें सेंत में इतना कष्ट नहीं देना चाहता। यह सबसे बड़ा सलूक है, जो तुम मेरे साथ कर रहे हो। मैं भी तुम्हारे साथ वही सलूक करना चाहता हूं, जिसे तुम सबसे बड़ा समझते हो। तुम्हारे कै लड़के हैं?

नायकराम ने सिर झुकाकर कहा—धर्मावतार, अभी तो ब्याह ही नहीं हुआ।

कुंवर—अरे, यह क्या बात है ! आधी उम्र गुजार गई और तुम अभी कुंवारे ही बैठे हो।

नायकराम—सरकार, तकदीर के सिवा और क्या कहूं।

इन शब्दों में इतनी मर्मांतक वेदना भरी हुई थी कि कुंवर साहब पर नायकराम की चिरसंचित अभिलाषा प्रकट हो गई। बोले—तो तुम घर में अकेले ही रहते हो?

नायकराम—हां, धर्मावतार, भूत की भांति अकेला ही पड़ा रहता हूं। आपके अकबाल से दो खंड का मकान है। बाग-बगीचे हैं, गायें-भैंसें है, पर रहने वाला कोई नहीं, भोगने वाला कोई नहीं। हमारी बिरादरी में उन्हीं का ब्याह होता है, जो बड़े भाग्यवान होते हैं।

कुंवर—(मुस्कराकर)तो तुम्हारा विवाह कहीं ठहरा दूं।

नायकराम—महाराज, ऐसी तकदीर कहां?

कुंवर—तकदीर मैं बना दूंगा, मगर यह कैद तो नहीं है कि कन्या बहुत ऊंचे कुल की हो?

नायकराम—दीनबंधु, कन्याओं के लिए ऊंचा-नीचा कुल नहीं देखा जाता। कन्या और गऊ तो पवित्र हैं। ब्राह्मण के घर आकर और भी पवित्र हो जाती हैं। फिर जिसने दान लिया, संसार-भर का पाप हजम किया, तो फिर औरत की क्या बात है। जिसका ब्याह नहीं हुआ, सरकार, उसकी जिंदगी दो कौड़ी की।

कुंवर—अच्छी बात है, ईश्वर ने चाहा, तो लौटते ही दूल्हा बनोगे। तुमने पहले कभी चर्चा ही नहीं की।

नायकराम—सरकार, यह बात आपसे क्या कहता। अपने हेलियों-मेलियों के सिवा और

किसी से चर्चा नहीं की। कहते लाज आती है। जो सुनेगा, वह समझेगा, इसमें कोई-न-कोई ऐब जरूर है। कई बार लबारियों की बातों में आकर सैकड़ों रुपये गंवाए। अब किसी से नहीं कह सकता। भगवान् के आसरे बैठा हूं।

कुंवर–तो कल किस गाड़ी से जाओगे?

नायकराम–हजूर, डाक से चला जाऊंगा।

कुंवर–ईश्वर करे, जल्द लौटो। मेरी आंखें तुम्हारी ओर रहेंगी। यह लो, खर्च के लिए लेते जाओ।

यह कहकर कुंवर साहब ने मुनीम को बुलाकर उसके कान में कुछ कहा। मुनीम ने नायकराम को अपने साथ आने का इशारा किया और गद्दी पर बैठाकर बोला–बोलो कितना हमारा, कितना तुम्हारा?

नायकराम–क्या यह भी कोई दक्षिणा है?

मुनीम–रकम तो तुम्हारे हाथ जाती है?

नायकराम–मेरे हाथ में नहीं आती, विनयसिंह के पास भेजी जा रही है। बच्चा मुसीबत में भी मालिक से नमकहरामी करते हो ! उनके ऊपर तो बिपत पड़ी है और तुम्हें अपना घर भरने की धुन है। तुम जैसे लालचियों को तो ऐसी जगह मारे, जहां पानी न मिले।

मुनीम ने लज्जित होकर नोटों का एक पुलिंदा नायकराम को दे दिया। नायकराम ने गिनकर नोटों को कमर में बांधा और मुनीम से बोले--मेरी कुछ दक्षिणा दिलवाते हो?

मुनीम–कैसी दक्षिणा?

नायकराम–नगद रुपयों की। नौकरी प्यारी है कि नहीं? जानते हो, यहां से निकाल दिए जाओगे, तो कहीं भीख न मिलेगी। अगर भला चाहते हो, तो पचास रुपये की गड्डी बांए हाथ से बढ़ा दो, नहीं तो जाकर कुंवर साहब से जड़े देता हूं। खड़े-खड़े निकाल दिए जाओगे। जानते हो कि नहीं रानीजी को? निकाले भी जाओगे और गर्दन भी नापी जायगी। ऐसी बेभाव की पड़ेगी कि चांद गंजी हो जायगी।

मुनीम–गुरु, अब यारों ही से यह गीदड़ भभकी। इतने रुपये मिल गए, कौन कंवर विनयसिंह रसीद लिखे देते हैं।

नायकराम–रुपये लाते हो कि नहीं, बोलो चटपट?

मुनीम–गुरु, तुम तो....

नायकराम–रुपये लाते हो कि नहीं? यहां बातों की फुरसत नहीं। चटपट सोचो। मैं चला। याद रखो, कहीं भीख न मिलेगी।

मुनीम–तो यहां मेरे पास कहां है। यह तो सरकारी रकम है।

नायकराम–अच्छा, तो हैंडनोट लिख दो।

मुनीम–गुरु, जरा इधर देखो, गरीब आदमी हूं।

नायकराम–तुम गरीब हो बच्चा ! हराम की कौड़ियां खाकर मोटे पड़ गये हो, उस पर गरीब बनते हो। लिखो चटपट। कुंवर साहब जरा भी मुरौवत न करेंगे। यों ही मुझे इतने रुपये दिला दिए हैं। बस, मेरे कहने-भर की देर है। गबन का मुकदमा चल जाएगा, बेटा समझे? लाओ, बाप की पूजा करो। तुम-जैसे घाघ रोज थोड़े ही फंसते हैं।

मुनीम ने नायकराम की त्योरियों से भांप लिया कि यह अब बिना दक्षिणा लिए नहीं

छोड़ेगा। चुपके से पच्चीस रुपये निकालकर उसके हाथ में रखे और बोला—पंडित, अब दया करो, ज्यादा न सताओ।

नायकराम ने रुपये मुट्ठी में किए और बोले—ले बचा, अब किसी को न सताना, तुम्हारी टोह में रहूंगा।

नायकराम चले गए, तो मुनीम ने मन में कहा—ले जाओ, समझ लेंगे, खैरात किया। कुंवर भरतसिंह उस वक्त दीवानखाने के द्वार पर खड़े थे। आज वायु की शीतलता में आनंद न था। गगन-मंडल में चमकते हुए तारागण व्यंग-दृष्टि की भांति हृदय में चुभते थे। सामने, वृक्षों के कुंज में विनय की स्मृति-मूर्ति, श्याम, करुण स्वर की भांति कंपित, धुएं की भांति असंबद्ध, यों निकलती हुई मालूम हुई, जैसे किसी संतप्त हृदय से हाय की ध्वनि निकलती है।

कुंवर साहब कई मिनट तक खड़े रोते रहे। विनय के लिए उनके अंतःकरण से इस भांति शुभेच्छाएं निकल रही थीं, जैसे उषाकाल में बाल-सूर्य की स्निग्ध, मधुर, मंद, शीतल किरणें निकलती हैं।

छब्बीस

अरावली की हरी-भरी झूमती हुई पहाड़ियों के दामन में जसवन्तनगर यों शयन कर रहा है, जैसे बालक माता की गोद में। माता के स्तन से दूध की धारें, प्रेमोद्‌गार से विकल, उबलती मीठे स्वरों में गाती निकलती हैं और बालक के नन्हें-से मुख में न समाकर नीचे बह जाती हैं। प्रभात की स्वर्ण-किरणों में नहाकर माता का स्नेह-सुंदर मुख निखर गया है, और बालक भी, अंचल से मुंह निकाल-निकालकर, माता के स्नेह-प्लावित मुख की ओर देखता है, हुमुकता है, और मुस्कराता है, पर माता बार-बार उसे अंचल से ढंक लेती है कि कहीं उसे नजर न लग जाए।

सहसा तोप के छूटने की कर्ण-कटु ध्वनि सुनाई दी। माता का हृदय कांप उठा, बालक गोद से चिमट गया।

फिर वही भंयकर ध्वनि। मां दहल उठी, बालक सिमट गया।

फिर तो लगातार तोंपे छूटने लगीं। माता के मुख पर आशंका के बादल छा गए। आज रियासत के नए पोलिटिकल एजेंट यहां आ रहे हैं। उन्हीं के अभिवादन में सलामियां उतारी जा रही हैं।

मिस्टर क्लार्क और सोफिया को यहां आए एक महीना गुजार गया। जागीरदारों की मुलाकातों, दावतों, नजरानों से इतना अवकाश ही न मिला कि आपस में कुछ बातचीत हो। सोफिया बार-बार विनयसिंह का जिक्र करना चाहती, पर न तो उसे मौका ही मिलता और न यही सूझता कि कैसे वह जिक्र छेडूं। आखिर जब पूरा महीना खत्म हो गया, तो एक दिन उसने क्लार्क से कहा—'इन दावतों का तांता तो लगा ही रहेगा, और बरसात बीती जा रही है। अब यहां जी नहीं लगता, जरा पहाड़ी प्रांतों की सैर करनी चाहिए। पहाड़ियों में खूब बहार होगी।' क्लार्क भी सहमत हो गए।

एक सप्ताह से दोनों रियासत की सैर कर रहे हैं। रियासत के दीवान सरदार नीलकण्ठ राव भी साथ हैं। जहां ये लोग पहुंचते हैं, बड़ी धूमधाम से उनका स्वागत है, सलामियां, उतारी जाती हैं, मान-पत्र मिलते हैं, मुख्य-मुख्य स्थानों की सैर कराई जाती है। पाठशालाओं, चिकित्सालयों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का निरीक्षण किया जाता है। सोफिया को जेलखानों के निरीक्षण का बहुत शौक है। वह बड़े ध्यान से कैदियों को, उनके भोजनालयों को, जेल के नियमों को देखती है, और कैदखानों के सुधार के लिए कर्मचारियों से विशेष आग्रह करती है। आज तक कभी इन अभागों की ओर किसी एजेंट ने ध्यान न दिया था। उनकी दशा शोचनीय थी, मनुष्यों से ऐसा व्यवहार किया जाता था कि जिसकी कल्पना ही से रोमांच हो आता है। पर सोफिया के अविरत प्रयत्न से उनकी दशा सुधरने लगी है। आज जसवन्तनगर को मेहमानों की सेवा-सत्कार का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, और सारा कस्बा, अर्थात् वहां के राजकर्मचारी, पगड़ियां बांधे, इधर-उधर दौड़ते फिरते हैं। किसी के होश-हवास ठिकाने नहीं हैं, जैसे नींद में किसी ने भेड़िये का स्वप्न देखा हो। बाजार कर्मचारियों ने सुसज्जित कराए हैं, जेल के कैदियों और शहर के चौकीदारों ने कुलियों और मजदूरों का काम किया है। बस्ती का कोई प्राणी बिना अपना परिचय दिए हुए सड़कों पर नहीं आने पाता। नगर के किसी मनुष्य ने इस स्वागत में भाग नहीं लिया है, और रियासत ने उनकी उदासीनता का यह उत्तर दिया है। सड़कों के दोनों तरफ सशस्त्र सिपाहियों की सफें खड़ी कर दी गई हैं कि प्रजा की अशांति का कोई चिह्न न नजार आने पाए। सभाएं करने की मनाही कर दी गई है।

संध्या हो गई थी। जुलूस निकला। पैदल और सवार आगे-आगे थे। फौजी बाजे बज रहे थे। सड़कों पर रोशनी हो रही थी, पर मकानों में, छतों पर, अंधकार छाया हुआ था। फूलों की वर्षा हो रही थी, पर छतों से नहीं, सिपाहियों के हाथों से। सोफी सब कुछ समझती थी, पर क्लार्क की आंखों पर परदा-सा पड़ा हुआ था। असीम ऐश्वर्य ने उनको बुद्धि को भ्रांत कर दिया है। कर्मचारी सब कुछ कर सकते हैं, पर भक्ति पर उनका बस नहीं होता। नगर में कहीं आंनदोत्साह का चिह्न नहीं हैं, सियापा-सा छाया हुआ है, न पग-पग पर जय-ध्वनि है, न कोई रमणी आरती उतारने आती है, न कहीं गाना-बजाना है। मानो किसी पुत्र-शोक-मग्न माता के सामने विहार हो रहा हो।

कस्बे का गश्त करके सोफी, क्लार्क, सरदार नीलकण्ठ और दो-एक उच्च कर्मचारी तो राजभवन में आकर बैठे, और लोग बिदा हो गए। मेज पर चाय लाई गई। मि० क्लार्क ने बोतल से शराब उंड़ेली, तो सरदार साहब, जिन्हें इसकी दुर्गंध से घृणा थी, खिसककर सोफिया के पास आ बैठे, और बोले—जसवन्तनगर आपको कैसा पसंद आया?

सोफिया—बहुत ही रमणीक स्थान है। पहाड़ियों का दृश्य अत्यंत मनोहर है। शायद कश्मीर के सिवा ऐसी प्राकृतिक शोभा और कहीं न होगी। नगर की सफाई से चित्त प्रसन्न हो गया। मेरा तो जी चाहता है, यहां कुछ दिनों रहूं।

नीलकण्ठ डरे। एक-दो दिन तो पुलिस और सेना के बल से नगर को शांत रखा जा सकता है। पर महीने-दो महीने किसी तरह नहीं। असंभव है। कहीं ये लोग यहां जम गए, तो नगर की यथार्थ स्थिति अवश्य ही प्रकट हो जाएगी। न जाने उसका क्या परिणाम हो। बोले—यहां की बाह्य छटा के धोखे में न आइए। जलवायु बहुत खराब है। आगे आपको इससे कहीं सुंदर स्थान मिलेंगे।

सोफिया—कुछ भी हो, मैं यहां दो हफ्ते अवश्य ठहरूंगी। क्यों विलियम, तुम्हें यहां से जाने की कोई जल्दी तो नहीं है?

क्लार्क—तुम यहां रहो, तो मैं दफ्न होने को तैयार हूं।

सोफिया—लीजिए सरदार साहब, विलियम को कोई आपत्ति नहीं है।

सोफिया को सरदार साहब को दिक करने में मजा आ रहा था।

नीलकण्ठ—फिर भी मैं आपसे यही अर्ज करूंगा कि जसवन्तनगर बहुत अच्छी जगह नहीं है। जलवायु की विषमता के अतिरिक्त यहां की प्रजा में अशांति के बीज अंकुरित हो गई हैं।

सोफिया—तब तो हमारा यहां रहना और भी आवश्यक है। मैंने किसी रियासत में यह शिकायत नहीं सुनी। गवर्नमेंट ने रियासतों को आंतरिक स्वाधीनता प्रदान कर दी है। लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि रियासतों में अराजकता के कीटाणुओं को सेए जाने दिया जाए। इसका उत्तरदायित्व अधिकारियों पर है, और गवर्नमेंट को अधिकार है कि वह इस असावधानी का संतोषजनक उत्तर मांगे।

सरदार साहब के हाथ-पांव फूल गए। सोफिया से उन्होंने यह बात निश्शंक होकर कही थी। उसकी विनयशीलता से उन्होंने समझ लिया था कि मेरी नजर-भेंट ने अपना काम कर दिखाया। कुछ बेतकल्लुफ-से हो गए थे। यह फटकार पड़ी, तो आंखें चौंधिया गईं। कातर स्वर में बोले—मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि यद्यपि रियासत पर इस स्थिति का उत्तरदायित्व है; पर हमने यथासाध्य इसके रोकने की चेष्टा की और अब भी कर रहे हैं। यह बीज उस दिशा से आया, जिधर से उसके आने की संभावना न थी, या यों कहिए कि विष-बूंद सुनहरे पात्रों में लाए गए। बनारस के रईस कुंवर भरतसिंह के स्वयंसेवकों ने कुछ ऐसे कौशल से काम लिया कि हमें खबर तक न हुई। डाकुओं से धन की रक्षा की जा सकती है, पर साधुओं से नहीं। सेवकों ने सेवा की आड़ में यहां की मूर्ख प्रजा पर ऐसे मंत्र फूंके कि उन मंत्रों के उतारने में रियासत को बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। विशेषत: कुंवर साहब का पुत्र अत्यंत कुटिल प्रकृति का युवक है। उसने इस प्रांत में अपने विद्रोहात्मक विचारों का यहां तक प्रचार किया कि इसे विद्रोहियों का अखाड़ा बना दिया। उसकी बातों में कुछ ऐसा जादू होता था कि प्रजा प्यासों की भांति उसकी ओर दौड़ती थी। उसके साधु भेष, उसके सरल, नि:स्पृह जीवन, उसकी मृदुल सहृदयता और सबसे अधिक उसके देवोपम स्वरूप ने छोटे-बड़े सभी पर वशीकरण-सा कर दिया था। रियासत को बड़ी चिंता हुई। हम लोगों की नींद हराम हो गई। प्रतिक्षण विद्रोह की आग के भड़क उठने की आशंका होती थी। यहां तक कि हमें सदर से सैनिक सहायता भेजनी पड़ी। विनयसिंह तो किसी तरह गिरफ्तार हो गया, पर उसके अन्य सहयोगी अभी तक इलाके में छिपे हुए प्रजा को उत्तेजित कर रहे हैं। कई बार यहां सरकारी खजाना लुट चुका है, कई बार विनय को जेल से निकाल ले जाने का दुष्प्रयत्न किया जा चुका है, और कर्मचारियों को नित्य प्राणों की शंका बनी रहती है। मुझे विवश होकर आपसे यह वृत्तांत कहना पड़ा। मैं आपको यहां ठहरने की कदापि राय न दूंगा। अब आप स्वयं समझ सकती हैं कि हम लोगों ने जो कुछ किया, उसके सिवा और क्या कर सकते थे।

सोफिया ने बड़ी गंभीर चिंता के भाव से कहा—दशा उससे कहीं भंयकर है, जितना मैं समझती थी। इस अवस्था में विलियम का यहां से जाना कर्त्तव्य के विरुद्ध होगा। वह यहां गवर्नमेंट

के प्रतिनिधि होकर आए हैं, केवल सैर-सपाटे करने के लिए नहीं। क्यों विलियम, तुम्हें यहां रहने में कोई आपत्ति तो नहीं है? यहां की रिपोर्ट भी तो करनी पड़ेगी।

क्लार्क ने एक चुस्की लेकर कहा—तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं नरक में भी स्वर्ग का सुख ले सकता हूं। रहा रिपोर्ट लिखना, वह तुम्हारा काम है।

नीलकण्ठ—मेरी आपसे सविनय प्रार्थना है कि रियासत को संभालने के लिए कुछ और समय दीजिए। अभी रिपोर्ट करना हमारे लिए घातक होगा।

इधर तो यह अभिनय हो रहा था; सोफिया प्रभुत्व के सिंहासन पर विराजमान थी, ऐश्वर्य चंवर हिलाता था, अष्टसिद्धि हाथ बांधे खड़ी थी। उधर विनय अपनी अंधेरी काल-कोठरी में म्लान और क्षुब्ध बैठा हुआ नारी जाति की निष्ठुरता और असहृदयता पर रो रहा था। अन्य कैदी अपने-अपने कमरे साफ कर रहे थे, उन्हें कल नए कंबल और नए कुरते दिए गए थे, जो रियासत के इतिहास में एक नई घटना थी। जेल के कर्मचारी कैदियों को पढ़ा रहे थे—मेम साहब पूछें, तुम्हें क्या शिकायत है, तो सब लोग एक स्वर से कहना, हुजूर के प्रताप से हम बहुत सुखी हैं, और हुजूर के जान-माल की खैर मनाते हैं। पूछें, क्या चाहते हो, तो कहना हुजूर की दिनोंदिन उन्नति हो, इसके सिवा हम कुछ नहीं चाहते। खबरदार, जो किसी ने सिर ऊपर उठाया और कोई बात मुंह से निकाली, खाल उधेड़ दी जाएगी। कैदी फूले न समाते थे। आज मेम साहब की आमद की खुशी में मिठाइयां मिलेंगी। एक दिन की छुट्टी होगी। भगवान् उन्हें सदा सुखी रखें कि हम अभागों पर इतनी दया करती हैं।

किंतु विनय के कमरे में अभी तक सफाई नहीं हुई। नया कंबल पड़ा हुआ है, छुआ तक नहीं गया। कुरता ज्यों-का-त्यों तह किया हुआ रखा है, वह अपना पुराना कुरता ही पहने हुए है। उसके शरीर के एक-एक रोम से, मस्तिष्क के एक-एक अणु से, हृदय की एक-एक गति से यही आवाज आ रही है—सोफिया। उसके सामने क्योंकर जाऊंगा? उसने सोचना शुरू किया—सोफिया यहां क्यों आ रही है? क्या मेरा अपमान करना चाहती है? सोफी जो दया और प्रेम की सजीव मूर्ति थी? क्या वह मुझे क्लार्क के सामने बुलाकर पैरों से कुचलना चाहती है? इतनी निर्दयता, और मुझ-जैसे अभागे पर, जो आप ही अपने दिनों को रो रहा है। नहीं, वह इतनी वज्रहृदया नहीं है, उसका हृदय इतना कठोर नहीं हो सकता। यह सब मि० क्लार्क की शरारत है, वह मुझे सोफी के सामने लज्जित करना चाहते हैं, पर मैं उन्हें यह अवसर न दूंगा, मैं उनके सामने जाऊंगा ही नहीं, मुझे बलात् ले जाए, जिसका जी चाहे। क्यों बहाना करूं कि मैं बीमार हूं? साफ कह दूंगा, मैं वहां नहीं जाता। अगर जेल का यह नियम है, तो हुआ करे, मुझे ऐसे नियम की परवाह नहीं, जो बिल्कुल निरर्थक है। सुनता हूं, दोनों यहां एक सप्ताह तक रहना चाहते हैं, क्या प्रजा को पीस ही डालेंगे? अब भी तो मुश्किल से आधे आदमी बच रहे होंगे, सैकड़ों निकाल दिए गए, सैकड़ों जेल में ठूंस दिए गए, क्या इस कस्बे को बिल्कुल मिट्टी में मिला देना चाहते हैं?

सहसा जेल का दारोगा आकर कर्कश स्वर में बोला—तुमने कमरे की सफाई नहीं की? अरे । तुमने तो अभी तक कुरता भी नहीं बदला, कंबल तक नहीं बिछाया। तुम्हें हुक्म मिला या नहीं?

विनय—हुक्म तो मिला, पर मैंने उसका पालन करना आवश्यक नहीं समझा।

दारोगा ने और गरम होकर कहा—इसका यही नतीजा होगा कि तुम्हारे साथ भी और

कैदियों का-सा सलूक किया जाए। हम तुम्हारे साथ अब तक शराफत का बर्ताव करते आए हैं, इसलिए कि तुम एक प्रतिष्ठित रईस के लड़के हो, और यहां विदेश में आ पड़े हो। पर मैं शरारत नहीं बर्दाश्त कर सकता।

विनय—यह बतलाइए कि मुझे पोलिटिकल एजेंट के सामने तो न जाना पड़ेगा?

दारोगा—और यह कंबल और कुरता किसलिए दिया गया है, कभी और भी किसी ने यहां नया कंबल पाया है? तुम लोगों के तो भाग्य खुल गए?

विनय—अगर आप मुझ पर इतनी रियाअत करें कि मुझे साहब के सामने जाने पर मजबूर न करें, तो मैं आपका हुक्म मानने को तैयार हूं।

दारोगा—कैसी बेसिर-पैर की बातें करते हो जी, मेरा कोई अख्तियार है? तुम्हें जाना पड़ेगा।

विनय ने बड़ी नम्रता से कहा—मैं आपका यह एहसान कभी न भूलूंगा।

किसी दूसरे अवसर पर दारोगाजी शायद जामे से बाहर हो जाते, पर आज कैदियों को खुश रखना जरूरी था। बोले—मगर भाई, यह रिआयत करनी मेरी शक्ति के बाहर है। मुझ पर न जाने क्या आफत आ जाए। सरदार साहब मुझे कच्चा ही खा जायंगे। मेम साहब को जेलों को देखने की धुन है। बड़े साहब तो कर्मचारियों के दुश्मन हैं, मेम साहब उनसे भी बढ़-चढ़कर हैं। सच पूछो तो जो कुछ हैं, वह मेम साहब ही हैं। साहब तो उनके इशारों के गुलाम हैं। कहीं वह बिगड़ गईं, तो तुम्हारी मियाद तो दूनी हो ही जाएगी, हम भी पिस जाएंगे।

विनय—मालूम होता है, मेम साहब का बड़ा दबाव है।

दारोगा--दबाव! अजी, यह कहो कि मेम साहब ही पोलिटिकल एजेंट हैं। साहब तो केवल हस्ताक्षर करने-भर को हैं। नजर-भेंट मेम साहब के ही हाथों में जाती है।

विनय—आप मेरे साथ इतनी रिआयत कीजिए कि उनके सामने जाने के लिए मजबूर न कीजिए। इतने कैदियों में एक आदमी की कमी जान ही न पड़ेगी। हां, अगर वह मुझे नाम लेकर बुलाएंगी, तो मैं चला जाऊंगा।

दारोगा—सरदार साहब मुझे जीता निगल जाएंगे।

विनय—मगर करना आपको यही पड़ेगा। मैं अपनी खुशी से कदापि न जाऊंगा।

दारोगा—मैं बुरा आदमी हूं, मुझे दिक मत करो। मैंने इसी जेल में बड़ों-बड़ों की गरदनें ढीली कर दी हैं।

विनय—अपने को कोसने का आपको अधिकार है, पर आप जानते हैं, मैं जब्र के सामने सिर झुकाने वाला नहीं हूं।

दारोगा—भाई, तुम विचित्र प्राणी हो, उसके हुक्म से सारा शहर खाली कराया जा रहा है, और फिर भी अपनी जिद किए जाते हो। लेकिन तुम्हें अपनी जान भारी हो, मुझे अपनी जान भारी नहीं है।

विनय—क्या शहर खाली कराया जा रहा है? यह क्यों?

दारोगा—मेम साहब का हुक्म है, और क्या। जसवन्तनगर पर उनका कोप है। जब से उन्होंने यहां की वारदातें सुनी हैं, मिजाज बिगड़ गया है। उनका बस चले, तो इसे खुदवाकर फेंक दें। हुक्म हुआ है कि एक सप्ताह तक कोई जवान आदमी कस्बे में न रहने पाए। भय है कि कहीं उपद्रव न हो जाए, सदर से मदद मांगी गई है।

दारोगा ने स्थिति को इतना बढ़ाकर बयान किया, इससे उनका उद्देश्य विनयसिंह पर प्रभाव

डालना था, और उनका उद्देश्य पूरा हो गया। विनयसिंह को चिंता हुई कि कहीं मेरी अवज्ञा से क्रुद्ध होकर अधिकारियों ने मुझ पर और भी अत्याचार करने शुरू किए, और जनता को यह खबर मिली, तो वह बिगड़ खड़ी होगी और उस दशा में मैं उन हत्याओं के पाप का भागी ठहरूंगा। कौन जाने, मेरे पीछे मेरे सहयोगियों ने लोगों को और भी उभार रखा हो, उनमें उद्दंड प्रकृति के युवकों की कमी नहीं है। नहीं, हालत नाजुक है। मुझे इस वक्त धैर्य से काम लेना चाहिए। दारोगा से पूछा–मेम साहब यहां किस वक्त आएंगी?

दारोगा–उनके आने का कोई ठीक समय थोड़े ही है। धोखा देकर किसी ऐसे वक्त आ पहुंचेंगी, जब हम लोग गाफिल पड़े होंगे। इसी से कहता हूं कि कमरे की सफाई कर डालो, कपड़े बदल दो, कौन जाने, आज ही आ जाएं।

विनय–अच्छी बात है, आप जो कुछ कहते हैं, सब कर लूंगा। अब आप निश्चिंत हो जाएं।

दारोगा–सलामी के वक्त आने से इंकार तो न करोगे?

विनय–जी नहीं, आप मुझे सबसे पहले आंगन में मौजूद पाएंगे।

दारोगा–मेरी शिकायत तो न करोगे?

विनय–शिकायत करना मेरी आदत नहीं, इसे आप खूब जानते हैं।

दारोगा चला गया। अंधेरा हो चला था। विनय ने अपने कमरे में झाड़ू लगाई, कपड़े बदले, कंबल बिछा दिया। वह कोई ऐसा काम नहीं करना चाहते थे, जिससे किसी की दृष्टि उनकी ओर आकृष्ट हो, वह अपनी निरपेक्षता से हुक्काम के संदेहों को दूर कर देना चाहते थे। भोजन का समय आ गया, पर मिस्टर क्लार्क ने पदार्पण न किया। अंत में निराश होकर दारोगा ने जेल के द्वार बंद कराए और कैदियों को विश्राम करने का हुक्म दिया। विनय लेटे, तो सोचने लगे–सोफी का यह रूपांतर क्योंकर हो गया? वही लज्जा और विनय की मूर्ति, वही सेवा और त्याग की प्रतिमा आज निरंकुशता की देवनी बनी हुई है। उसका हृदय कितना कोमल था, कितना दयाशील, उसके मनोभाव कितने उच्च और पवित्र थे। उसका स्वभाव कितना सरल था, उसकी एक-एक दृष्टि हृदय पर कालिदास की एक-एक उपमा की-सी चोट करती थी, उसके मुंह से जो शब्द निकलता था, वह दीपक की ज्योति की भांति चित्त को आलोकित कर देता था। ऐसा मालूम होता था, केवल पुष्प-सुगंध से उसकी सृष्टि हुई है, कितना निष्कपट, कितना गंभीर, कितना मधुर सौंदर्य था। वही सोफी अब इतनी निर्दय हो गई है।

चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, मानो कोई तूफान आने वाला है। आज जेल के आंगन में दारोगा के जानवर न बंधे थे, न बरामदों में घास के ढेर थे। आज किसी कैदी को जेल-कर्मचारियों के जूठे बरतन नहीं मांजने पड़े, किसी ने सिपाहियों की चप्पी नहीं की। जेल के डॉक्टर की बुढ़िया महरी आज कैदियों को गालियां नहीं दे रही थी और दफ्तर में कैदियों से मिलने वाले संबंधियों के नजरानों का बांट-बखरा न होता था। कमरों में दीपक थे, दरवाजे भी खुले रखे गए थे। विनय के मन में प्रश्न उठा, क्यों न भाग चलूं? मेरे समझाने से कदाचित् लोग शांत हो जाएं। सदर से सेना आ रही है, जरा-सी बात पर विप्लव हो सकता है। अगर मैं शांति-स्थापना करने में सफल हुआ, तो वह मेरे इस अपराध का प्रायश्चित होगा। उन्होंने दबी हुई नजरों से जेल की ऊंची दीवारों को देखा, कमरे से बाहर निकलने की हिम्मत न पड़ी। किसी ने देख लिया तो? लोग यही समझेंगे कि मैं जनता को भड़काने के इरादे से भागने की चेष्टा कर रहा था।

इसी हैस-बैस में रात कट गई। अभी कर्मचारियों की नींद भी न खुली थी कि मोटर की आवाज ने आगुंतकों की सूचंना दी। दारोगा, डॉक्टर, वार्डन, चौकीदार हड़बड़ाकर निकल पड़े। पगली घंटी बजी, कैदी मैदान में निकल आए, उन्हें कतारों में खड़े होने का हुक्म दिया गया, और उसी क्षण सोफिया, मिस्टर क्लार्क और सरदार नीलकण्ठ जेल में दाखिल हुए।

सोफिया ने आते ही कैदियों पर निगाह डाली। उस दृष्टि में प्रतीक्षा न थी, उत्सुकता न थी, भय था, विकलता थी, अशांति थी। जिस आकांक्षा ने उसे बरसों रुलाया था, जो उसे यहां तक खींच लाई थी, जिसके लिए उसने अपने प्राणप्रिय सिद्धांतों का बलिदान किया था, उसी को सामने देखकर वह इस समय कातर हो रही थी, जैसे कोई परदेसी बहुत दिनों के बाद अपने गांव में आकर अंदर कदम रखते हुए डरता है कि कहीं कोई अशुभ समाचार कानों में न पड़ जाए। सहसा उसने विनय को सिर झुकाए खड़े देखा। हृदय में प्रेम का एक प्रचंड आवेग हुआ, नेत्रों में अंधेरा छा गया। घर वही था, पर उजड़ा हुआ, घास-पात से ढका हुआ, पहचानना मुश्किल था। वह प्रसन्न मुख कहां था, जिस पर कवित्त की सरलता बलि होती थी। वह पुरुषार्थ का-सा विशाल वक्ष कहां था। सोफी के मन में अनिवार्य इच्छा हुई कि विनय के पैरों पर गिर पड़ूं, उसे अश्रु-जल से धोऊं, उसे गले से लगाऊं। अक्स्मात् विनयसिंह मूर्च्छित होकर गिर पड़े, एक आर्तध्वनि थी, जो एक क्षण तक प्रवाहित होकर शोकावेग से निश्शब्द हो गई। सोफी तुरंत विनय के पास जा पहुंची। चारों तरफ शोर मच गया। जेल का डॉक्टर दौड़ा। दारोगा पागलों की भांति उछल-कूद मचाने लगा—अब नौकरों की खैरियत नहीं। मेम साहिब पूछेंगी, इसकी हालत इतनी नाजुक थी तो इसे चिकित्सालय में क्यों नहीं रखा, बड़ी मुसीबत में फंसा। इस भले आदमी को भी इसी वक्त बेहोश होना था। कुछ नहीं, इसने दम साधा है, बना हुआ है, मुझे तबाह करने पर तुला हुआ है। बचा, जाने दो मेम साहब को, तो देखना, तुम्हारी ऐसी खबर लेता हूं कि सारी बेहोशी निकल जाए, फिर कभी बेहोश होने का नाम ही न लो: यह आखिर इसे हो क्या गया, किसी कैदी को आज तक यों मूर्च्छित होते नहीं देखा। हां, किस्सों में लोगों को बात-बात में बेहोश हो जाते पढ़ा है। मिर्गी का रोग होगा और क्या !

दारोगा तो अपनी जान की खैर मना रहा था, उधर सरदार साहब मिस्टर क्लार्क से कह रहे थे—यह वही युवक है, जिसने रियासत में ऊधम मचा रखा है। सोफी ने डॉक्टर से घुड़ककर कहा, हट जाओ, और विनय को उठवाकर दफ्तर में लाई। आज वहां बहुमूल्य गलीचे बिछे हुए थे। चांदी की कुर्सियां थीं, मेज पर जारी का मेजपोश था, उस पर सुंदर गुलदस्ते थे। मेजा पर जलपान की सामग्रियां चुनी हुई थीं। तजवीज थी कि निरीक्षण के बाद साहब यहां नाश्ता करेंगे। सोफी ने विनय को कालीन के फर्श पर लिटा दिया और सब आदमियों को वहां से हट जाने का इशारा किया। उसकी करुणा और दया प्रसिद्ध थी, किसी को आश्चर्य न हुआ। जब कमरे में कोई न रहा, तो सोफी ने खिड़कियों पर परदे डाल दिए और विनय का सिर अपनी जांघ पर रखकर अपना रूमाल उस पर झलने लगीं। आंसू की गरम-गरम बूंदें उसकी आंखों से निकल-निकलकर विनय के मुख पर गिरने लगीं। उन जल बिंदुओं में कितनी प्राणप्रद शक्ति थी। उनमें उसकी समस्त मानसिक और आत्मिक शक्ति भरी हुई थी। एक-एक जल-बिंदु उसके जीवन का एक-एक बिंदु था। विनयसिंह की आंखें खुल गईं। स्वर्ग का एक पुष्प, अक्षय, अपार, सौरभ में नहाया हुआ, हवा के मृदुल झोंकों से हिलता, सामने विराज रहा था। सौंदर्य की सबसे मनोहर, सबसे मधुर छवि वह है, जब वह सजल शोक से आर्द्र होता है, वही उसका

आध्यात्मिक स्वरूप होता है। विनय चौंककर उठे नहीं, यही तो प्रेम-योगियों की सिद्धि है, यही तो उनका स्वर्ग है, यही तो स्वर्ण-साम्राज्य है, यही तो उनकी अभिलाषाओं का अंत है, इस स्वर्गीय आनंद में तृप्ति कहां। विनय के मन में करुण भवना जागृत हुई—काश, इसी भांति प्रेम-शैया पर लेटे हुए सदैव के लिए ये बंद हो जातीं! सारी आकांक्षाओं का लय हो जाता। मरने के लिए इससे अच्छा और कौन-सा अवसर होगा।

एकाएक उसे याद आ गया, सोफी को स्पर्श करना भी मेरे लिए वर्जित है। उसने तुरंत अपना सिर उसकी जांघ पर से खींच लिया और अवरुद्ध कंठ से बोला—मिसेज क्लार्क, आपने मुझ पर बड़ी दया की, इसके लिए आपका अनुगृहीत हूं।

सोफिया ने तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहा—अनुग्रह गालियों के रूप में नहीं प्रकट किया जाता।

विनय ने विस्मित होकर कहा—ऐसा घोर अपराध मुझसे कभी नहीं हुआ।

सोफिया—ख्वामखाह किसी शख्स के साथ मेरा संबंध जोड़ना गाली नहीं तो क्या है?

विनय—मिस्टर क्लार्क?

सोफिया—क्लार्क को मैं तुम्हारी जूतियों का तस्मा खोलने के योग्य भी नहीं समझती।

विनय—लेकिन अम्मांजी ने....

सोफिया—तुम्हारी अम्मांजी ने झूठ लिखा और तुमने उस पर विश्वास करके मुझ पर घोर अन्याय किया है। कोयल आम न पाकर भी निमकौड़ियों पर नहीं गिरती।

इतने में क्लार्क ने आकर पूछा—इस कैदी की क्या हालत है? डॉक्टर आ रहा है, वह इसकी दवा करेगा, चलो, देर हो रही है।

सोफिया ने रुखाई से कहा—तुम जाओ, मुझे फुरसत नहीं है।

क्लार्क—कितनी देर तक तुम्हारी राह देखूं?

सोफिया—यह मैं नहीं कह सकती। मेरे विचार में एक मनुष्य की सेवा करना सैर करने से कहीं आवश्यक है।

क्लार्क—खैर, मैं थोड़ी देर और ठहरूंगा।

यह कहकर वह बाहर चले गए, तब सोफी ने विनय के माथे से पसीना पोंछते हुए कहा—विनय, मैं डूब रही हूं, मुझे बचा लो। मैंने रानीजी की शंकाओं को निवृत्त करने के लिए यह स्वांग रचा था।

विनय ने अविश्वाससूचक भाव से कहा—तुम यहां क्लार्क के साथ क्यों आईं और उनके साथ कैसे रहती हो?

सोफिया का मुख-मंडल लज्जा से आरक्त हो गया। बोली—विनय, यह मत पूछो, मगर मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूं, मैंने जो कुछ किया, तुम्हारे लिए किया। तुम्हें इस कैद से निकालने के लिए मुझे इसके सिवा और कोई उपाय न सूझा। मैंने क्लार्क को प्रमाद में डाल रखा है। तुम्हारे ही लिए मैंने यह कपट-भेष धारण किया है। अब तुम इस वक्त कहो, सोफी, तू मेरे साथ जेल में रह, तो मैं यहां आकर तुम्हारे साथ रहूंगी। अगर तुम मेरा हाथ पकड़कर कहो, तू मेरे साथ चल, तो आज ही तुम्हारे साथ चलूंगी। मैंने तुम्हारा दामन पकड़ लिया है, और अब उसे किसी तरह नहीं छोड़ सकती, चाहे तुम ठुकरा ही क्यों न दो। मैंने अपना आत्मसम्मान तक तुम्हें समर्पित कर दिया है। विनय, यह ईश्वरीय विधान है, यह उसी की प्रेरणा

है, नहीं तो इतना अपमान और उपहास सहकर तुम मुझे जिंदा न पाते।

विनय से सोफी के दिल की थाह लेने के लिए कहा—अगर यह ईश्वरीय विधान है, तो उसने हमारे और तुम्हारे बीच में यह दीवार क्यों खड़ी कर दी है?

सोफिया—यह दीवार ईश्वर ने नहीं खड़ी की, आदमियों ने खड़ी की है।

विनय—कितनी मजबूत है।

सोफिया—हां, मगर दुर्भेद्य नहीं है।

विनय—तुम इसे तोड़ सकोगी?

सोफिया—इसी क्षण, तुम्हारी आंखों के एक इशारे पर। कोई समय था, जब मैं उस दीवार को ईश्वरकृत समझती थी और उसका सम्मान करती थी, पर अब उसका यथार्थ स्वरूप देख चुकी। प्रेम इन बाधाओं की परवा नहीं करता, यह दैहिक संबंध नहीं, आत्मिक संबंध है।

विनय ने सोफी का हाथ अपने हाथ में लिया और उसकी ओर प्रेम-विह्वल नेत्रों से देखकर बोले—तो आज से तुम मेरी, और मैं तुम्हारा हूं।

सोफी का मस्तक विनय के हृदय-स्थल पर झुक गया, और नेत्रों से जल-वर्षा होने लगी, जैसे काले बादल धरती पर झुककर एक क्षण में उसे तृप्त कर देते हैं। उसके मुख से एक शब्द भी न निकला, मौन रह गई। शोक की सीमा कंठावरोध है, पर शुष्क और दाहयुक्त, आनंद की सीमा भी कंठावरोध है, पर आर्द्र और शीतल। सोफी को अब अपने एक-एक अंग में, नाड़ियों की एक-एक गति में, आंतरिक शक्ति का अनुभव हो रहा था। नौका ने कर्णधार का सहारा पा लिया था। अब उसका लक्ष्य निश्चित था। वह अब हवा के झोंकों या लहरों के प्रवाह के साथ डावांडोल न होगी, वरन् सुव्यवस्थित रूप से अपने पथ पर चलेगी।

विनय भी दोनों पर खोले हुए आनंद के आकाश में उड़ रहा था। वहां की वायु में सुंगध थी, प्रकाश में प्राण, किसी ऐसी वस्तु का अस्तित्व न था, जो देखने में अप्रिय, सुनने में कटु, छूने में कठोर और स्वाद में कड़वी हो। वहां के फूलों में कांटे न थे, सूर्य में इतनी उष्णता न थी, जमीन पर व्याधियां न थीं, वृद्धावस्था न थी, दरिद्रता न थी, चिंता न थी, कलह न था, एक व्यापक शांति का साम्राज्य था। सोफिया इस साम्राज्य की रानी थी और वह स्वयं उसके प्रेम-सरोवर में विहार कर रहा था। इस सुख-स्वप्न के सामने यह त्याग और तप का जीवन कितना नीरस, कितना निराशाजनक था, वह अंधेरी कोठरी कितनी भयंकर।

सहसा क्लार्क ने फिर आकर कहा—डार्लिंग, अब विलंब न करो, बहुत देर हो रही है, सरदार साहब आग्रह कर रहे हैं। डॉक्टर इस रोगी की खबर लेगा।

सोफी उठ खड़ी हुई और विनय की ओर से मुंह फेरकर करुणा-कंपित स्वर में बोली—घबराना नहीं, मैं कल फिर आऊंगी।

विनय को ऐसा जान पड़ा, मानो नाड़ियों में रक्त सूखा जा रहा है। वह मर्माहत पक्षी की भांति पड़ा रहा। सोफी द्वार तक आई, फिर रूमाल लेने के बहाने लौटकर विनय के कान में बोली—घबराना नहीं, मैं कल फिर आऊंगी और हम दोनों यहां से चले जाएंगे। मैं तुम्हारी तरफ से सरदार नीलकण्ठ से कह दूंगी कि वह क्षमा मांगते हैं।

सोफी के चले जाने के बाद भी ये आतुर, उत्सुक, प्रेम में डूबे हुए शब्द किसी मधुर संगीत के अंतिम स्वरों की भांति विनय के कानों में गूंजते रहे। किंतु वह शीघ्र ही इहलोक में आने के लिए विवश हुआ। जेल के डॉक्टर ने आकर उसे दफ्तर ही में एक पलंग पर लिटा दिया

और पुष्टिकारक औषधियां सेवन कराईं। पलंग पर नर्म बिछौना था, तकिये लगे थे, पंखा झला जा रहा था, दारोगा एक-एक क्षण में कुशल पूछने के लिए आता था, और डॉक्टर तो वहां से हटने का नाम ही न लेता था। यहां तक कि विनय ने इन सुश्रूषाओं से तंग आकर डॉक्टर से कहा—मैं बिल्कुल अच्छा हूं, आप अब जाएं, शाम को आ जाइएगा।

डॉक्टर साहब डरते-डरते बोले—आपको जरा नींद आ जाए, तो मैं चला जाऊं।

विनय ने उन्हें विश्वास दिलाया कि आपके विदा होते ही मुझे नींद आएगी। डॉक्टर अपने अपराधों की क्षमा मांगते हुए चले गए। इसी बहाने से विनय ने दारोगा को भी खिसकाया, जो आज शील और दया के पुतले बने हुए थे। उन्होंने समझा था, मेम साहब के चले जाने के बाद इसकी खूब खबर लूंगा, पर वह अभिलाषा पूरी न हो सकी। सरदार साहब ने चलते समय जता दिया था कि इनकी सेवा-सत्कार में कोई कसर न रखना, नहीं तो मेम साहब जहन्नुम भेज देंगी।

शांत विचार के लिए एकाग्रता उतनी ही आवश्यक है, जितनी ध्यान के लिए। वायु की गति तराजू के पलड़ों को बराबर नहीं होने देती। विनय को अब विचार हुआ—अम्मांजी को यह हाल मालूम हुआ, तो वह अपने मन में क्या कहेंगी। मुझसे उनकी कितनी मनोकामनाएं संबद्ध हैं। सोफी के प्रेम-पाश से बचाने के लिए उन्होंने मुझे निर्वासित किया, इसीलिए उन्होंने सोफी को कलंकित किया। उनका हृदय टूट जाएगा। दु:ख तो पिताजी को भी होगा पर वह मुझे क्षमा कर देंगे, उन्हें मानवीय दुर्बलताओं से सहानुभूति है। अम्मांजी में बुद्धि-ही-बुद्धि है, पिताजी में हृदय और बुद्धि, दोनों ही हैं। लेकिन मैं इसे दुर्बलता क्यों कहूं? मैं कोई ऐसा काम नहीं कर रहा हूं, जो संसार में किसी ने न किया हो। संसार में ऐसे कितने प्राणी हैं, जिन्होंने अपने को जाति पर होम कर दिया हो? स्वार्थ के साथ जाति का ध्यान रखने वाले महानुभावों ही ने अब तक जो कुछ किया है, किया है। जाति पर मर मिटने वाले तो उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। फिर जिस जाति के अधिकारियों में न्याय और विवेक नहीं, प्रजा में उत्साह और चेष्टा नहीं, उसके लिए मर मिटना व्यर्थ है। अंधों के आगे रोकर अपना दीदा खोने के सिवा और क्या हाथ आता है?

शनै:-शनै: भावनाओं ने जीवन की सुख-सामग्रियां जमा करनी शुरू कीं—चलकर देहात में रहूंगा। वहीं एक छोटा-सा मकान बनवाऊंगा, साफ, खुला हुआ, हवादार, ज्यादा टीमटाम की जरूरत नहीं। वहीं हम दोनों सबसे अलग शांति-निवास करेंगे। आडंबर बढ़ाने से क्या फायदा। मैं बगीचे में काम करूंगा, क्यारियां बनाऊंगा, कलमें लगाऊंगा और सोफी को अपनी दक्षता से चकित कर दूंगा। गुलदस्ते बनाकर उसके सामने पेश करूंगा और हाथ बांधकर कहूंगा—सरकार, कुछ इनाम मिले। फलों की डालियां लगाऊंगा और कहूंगा—रानीजी, कुछ निगाह हो जाए। कभी-कभी सोफी भी पौधों को सींचेगी। मैं तालाब से पानी भर-भर दूंगा। वह लाकर क्यारियों में डालेगी। उसका कोमल गात पसीने से और सुंदर वस्त्र पानी से भीग जाएगा। तब किसी वृक्ष के नीचे उसे बैठाकर पंखा झलूंगा। कभी-कभी किश्ती में सैर करेंगे। देहाती डोंगी होगी, डांडे से चलने वाली। मोटरबोट में वह आनंद कहां, वह उल्लास कहां! उसकी तेजी से सिर चकरा जाता है, उसके शोर से कान फट जाते हैं। मैं डोंगी पर डांड़ा चलाऊंगा, सोफिया कमल के फूल तोड़ेगी। हम एक क्षण के लिए अलग न होंगे। कभी-कभी प्रभु सेवक भी आएंगे। ओह! कितना सुखमय जीवन होगा। कल हम दोनों घर चलेंगे, जहां मंगल बांहें फैलाए हमारा इंतजार कर रहा है।

सोफी और क्लार्क की आज संध्या-समय एक जागीरदार के यहां दावत थी। जब मेजें

सज गईं और एक हैदराबाद के मदारी ने अपने कौतुक दिखाने शुरू किए, तो सोफी ने मौका पाकर सरदार नीलकण्ठ से कहा—उस कैदी की दशा मुझे चिंताजनक मालूम होती है। उसके हृदय की गति बहुत मंद हो गई है। क्यों विलियम, तुमने देखा, उसका मुख कितना पीला पड़ गया था?

क्लार्क ने आज पहली बार आशा के विरुद्ध उत्तर दिया—मूर्च्छा में बहुधा मुख पीला हो जाता है।

सोफी—वही तो मैं भी कह रही थी कि उसकी दशा अच्छी नहीं, नहीं तो मूर्च्छा ही क्यों आती। अच्छा हो कि आप उसे किसी कुशल डॉक्टर के सिपुर्द कर दें। मेरे विचार में अब वह अपने अपराध की काफी सजा पा चुका है, उसे मुक्त कर देना उचित होगा।

नीलकण्ठ—मेम साहब, उसकी सूरत पर न जाइए। आपको ज्ञात नहीं है, यहां जनता पर उसका कितना प्रभाव है। वह रियासत में इतनी प्रचंड अशांति उत्पन्न कर देगा कि उसे दमन करना कितना कठिन हो जायगा। बड़ा ही जिद्दी है, रियासत से बाहर जानें पर राजी ही नहीं होता।

क्लार्क—ऐसे विद्रोही को कैद रखना ही अच्छा है।

सोफी ने उत्तेजित होकर कहा—मैं इसे घोर अन्याय समझती हूं, और मुझे आज पहली बार यह मालूम हुआ कि तुम इतने हृदय-शून्य हो !

क्लार्क—मुझे तुम्हारा-जैसा दयालु हृदय रखने का दावा नहीं है।

सोफी ने क्लार्क के मुख को जिज्ञासा की दृष्टि से देखा। यह गर्व, यह आत्मगौरव कहां से आया? तिरस्कार-भाव से बोली—एक मनुष्य का जीवन इतनी तुच्छ वस्तु नहीं है।

क्लार्क—साम्राज्य-रक्षा के सामने एक व्यक्ति के जीवन की कोई हस्ती नहीं। जिस दया से, जिस सहृदयता से किसी दीन प्राणी का पेट भरता हो, उसके शारीरिक कष्टों का निवारण होता हो, किसी दुःखी जीव को सांत्वना मिलती हो, उसका मैं कायल हूं, और मुझे गर्व है कि मैं उस संपत्ति से वंचित नहीं हूं, लेकिन जो सहानुभूति साम्राज्य की जड़ खोखली कर दे, विद्रोहियों को सिर उठाने का अवसर दे, प्रजा में अराजकता का प्रचार करे, उसे मैं अदूरदर्शिता ही नहीं, पागलपन समझता हूं।

सोफी के मुख-मंडल पर एक अमानुषीय तेजस्विता की आभा दिखाई दी। पर उसने जब्त किया। कदाचित् इतने धैर्य से उसने कभी काम नहीं लिया था। धर्मपरायणता को सहिष्णुता से वैर है। पर इस समय उसके मुंह से निकला हुआ एक अनर्गल शब्द भी उसके समस्त जीवन का सर्वनाश कर सकता था। नर्म होकर बोली—हां, इस विचार-दृष्टि से बेशक वैयक्तिक जीवन का कोई मूल्य नहीं रहता। मेरी निगाह इस पहलू पर न गई थी। मगर फिर भी इतना कह सकती हूं कि अगर वह मुक्त कर दिया जाए, तो फिर इस रियासत में कदम न रखेगा, और मैं यह निश्चय रूप से कह सकती हूं कि वह अपनी बात का धनी है।

नीलकण्ठ—क्या आपसे उसने इसका वादा किया है?

सोफी—हां, वादा ही समझिए, मैं उसकी जमानत कर सकती हूं।

नीलकण्ठ—इतना तो मैं भी कह सकता हूं कि वह अपने वचन से फिर नहीं सकता।

क्लार्क—जब तक उसका लिखित प्रार्थना-पत्र मेरे सामने न आए, मैं इस विषय में कुछ नहीं कर सकता।

नीलकण्ठ—हां, यह तो परमावश्यक ही है।

सोफी–प्रार्थना-पत्र का विषय क्या होगा?

क्लार्क–सबसे पहले वह अपना अपराध स्वीकार करे, और अपनी राजभक्ति का विश्वास दिलाने के बाद हलफ लेकर कहे कि इस रियासत में फिर कदम न रखूंगा। उसके साथ जमानत भी होनी चाहिए। तो नकद रुपये हों या प्रतिष्ठित आदमियों की जमानत हो। तुम्हारी जमानत का मेरी दृष्टि में कितना ही महत्त्व हो, जाब्ते में उसका कुछ मूल्य नहीं है।

दावत के बाद सोफी राजभवन में आई, तो सोचने लगी–यह समस्या क्योंकर हल हो? यों तो मैं विनय की मिन्नत-समाजत करूं, तो वह रियासत से चले जाने पर राजी हो जाएंगे, लेकिन कदाचित् वह लिखित प्रतिज्ञा न करेंगे। अगर किसी भांति मैंने रो-धोकर उन्हें इस बात पर राजी कर लिया, तो यहां कौन प्रतिष्ठित आदमी उनकी जमानत करेगा? हां, उनके घर से नकद रुपये आ सकते हैं, पर रानी साहब कभी इसे मंजूर न करेंगी। विनय को कितने ही कष्ट सहने पड़ें, उन्हें इन पर दया न आएगी। मजा तो जब है कि लिखित प्रार्थना-पत्र और जमानत की कोई शर्त ही न रहे। वह अवैध रूप से मुक्त कर दिए जाएं। इसके सिवा कोई उपाय नहीं है।

राजभवन विद्युत्-प्रकाश से ज्योतिर्मय हो रहा था। भवन के बाहर चारों तरफ सावन की काली घटा थी, और अथाह अंधकार। उस तिमिर-सागर में प्रकाशमय राजभवन ऐसा मालूम होता था, मानो नीले गगन पर चांद निकला हो। सोफी अपने सजे हुए कमरे में आईने के सामने बैठी हुई उन सिद्धियों को जगा रही है, जिनकी शक्ति अपार है–आज उसने मुद्दत के बाद बालों में फूल गूंधे हैं, फीरोजी रेशमी साड़ी पहनी है, और कलाइयों में कंगन धारण किए हैं। आज पहली बार उसने उन लालित्य-प्रसारिणी कलाओं का प्रयोग किया है, जिनमें स्त्रियां निपुण होती हैं। यह मंत्र उन्हीं को आता है कि क्योंकर केशों की एक तड़प, अंचल की एक लहर चित्त को चंचल कर देती है। आज उसने मिस्टर क्लार्क के साम्राज्यवाद को विजय करने का निश्चय किया है, वह आज अपनी सौंदर्य-शक्ति की परीक्षा करेगी।

रिम-झिम बूंदे गिर रही थीं, मानो मौलसिरी के फूल झड़ रहे हों। बूंदों में एक मधुर स्वर था। राजभवन, पर्वत-शिखर के ऊपर, ऐसा मालूम होता था, मानो देवताओं ने आनंदोत्सव की महफिल सजाई है। सोफिया प्यानो पर बैठ गई, और एक दिल को मसोसने वाला राग गाने लगी। जैसे ऊषा की स्वर्ण-छटा प्रस्फुटित होते ही प्रकृति के प्रत्येक अंग को सजग कर देती है। उसी भांति सोफी की पहली ही तान ने हृदय में एक चुटकी-सी ली। मिस्टर क्लार्क आकर एक कोच पर बैठ गए, और तन्मय होकर सुनने लगे, मानो किसी दूसरे ही संसार में पहुंच गए हैं। उन्हें कभी कोई नौका उमड़े हुए सागर में झकोले खाती नजर आती, जिस पर छोटी-छोटी सुंदर चिड़ियां मंडलाती थीं। कभी किसी अनंत वन में एक भिक्षुक, झोली कंधे पर रखे, लाठी टेकता हुआ नजर आता। संगीत से कल्पना चित्रमय हो जाती है।

जब तक सोफी गाती रही, मिस्टर क्लार्क बैठे सिर धुनते रहे। जब वह चुप हो गई तो उसके पास गए, और उसकी कुर्सी की बांहों पर हाथ रखकर, और उसके मुंह के पास मुंह ले जाकर बोले–इन उंगलियों को हृदय में रख लूंगा।

सोफी–हृदय कहां है?

क्लार्क ने छाती पर हाथ रखकर कहा–यहां तड़प रहा है।

सोफी–शायद हो, मुझे तो विश्वास नहीं आता। मेरा तो ख्याल है, ईश्वर ने तुम्हें हृदय दिया ही नहीं।

क्लार्क–संभव है, ऐसा ही हो। पर ईश्वर ने जो कसर रखी थी, वह तुम्हारे मधुर स्वर ने पूरी कर दी। शायद उसमें सृष्टि करने की भी शक्ति है।

सोफी–अगर मुझमें यह विभूति होती, तो आज मुझे एक अपरिचित व्यक्ति के सामने लज्जित न होना पड़ता।

क्लार्क ने अधीर होकर कहा–क्या मैंने तुम्हें लज्जित किया? मैंने !

सोफी–जी हां, आपने ! मुझे आज तुम्हारी निर्दयता से जितना दु:ख हुआ, उतना शायद और कभी न हुआ था। मुझे बाल्यावस्था से यह शिक्षा दी गई है कि प्रत्येक जीव पर दया करनी चाहिए, मुझे बताया गया है कि यही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है। धार्मिक ग्रंथों में भी दया और सहानुभूति ही मनुष्य का विशेष गुण बतलाया गया है। पर आज विदित हुआ कि निर्दयता का महत्त्व दया से कहीं अधिक है। सबसे बड़ा दु:ख मुझे इस बात का है कि अनजान आदमी के सामने मेरा अपमान हुआ।

क्लार्क–खुदा जानता है सोफी, मैं तुम्हारा कितना आदर करता हूं। हां, इसका खेद मुझे अवश्य है कि मैं तुम्हारी उपेक्षा करने के लिए बाध्य हुआ। इसका कारण तुम जानती ही हो। हमारा साम्राज्य तभी तक अजेय रह सकता है, जब तक प्रजा पर हमारा आतंक छाया रहे, जब तक वह हमें अपना हितचिंतक, अपना रक्षक, अपना आश्रय समझती रहे, जब तक हमारे न्याय पर उसका अटल विश्वास हो। जिस दिन प्रजा के दिल से हमारे प्रति विश्वास उठ जाएगा, उसी दिन हमारे साम्राज्य का अंत हो जाएगा। अगर साम्राज्य को रखना ही हमारे जीवन का उद्देश्य है, तो व्यक्तिगत भावों और विचारों का यहां कोई महत्त्व नहीं। साम्राज्य के लिए हम बड़े-से-बड़े नुकसान उठा सकते हैं, बड़ी-से-बड़ी तपस्याएं कर सकते हैं। हमें अपना राज्य प्राणों से भी प्रिय है, और जिस व्यक्ति से हमें क्षति की लेश-मात्र भी शंका हो, उसे हम कुचल डालना चाहते हैं, उसका नाश कर देना चाहते हैं, उसके साथ किसी भांति की रिआयत, सहानुभूति यहां तक कि न्याय का व्यवहार भी, नहीं कर सकते।

सोफी–अगर तुम्हारा ख्याल है कि मुझे साम्राज्य से इतना प्रेम नहीं, जितना तुम्हें है, और मैं उसके लिए इतने बलिदान नहीं सह सकती, जितने तुम कर सकते हो, तो तुमने मुझे बिल्कुल नहीं समझा। मुझे दावा है कि इस विषय में मैं किसी से जौ-भर भी पीछे नहीं हूं। लेकिन यह बात मेरे अनुमान में भी नहीं आती कि दो प्रेमियों में कभी इतना मतभेद हो सकता है कि सहृदयता और सहिष्णुता के लिए गुंजाइश न रहे, और विशेषत: उस दशा में जब कि दीवार के कानों के अतिरिक्त और कोई कान भी सुन रहा हो। दीवान देश-भक्ति के भावों से शून्य है, उसकी गहराई और उसके विस्तार से जरा भी परिचित नहीं। उसने तो यही समझा होगा कि जब इन दोनों में मेरे सम्मुख इतनी तकरार हो सकती है, तो घर पर न-जाने क्या दशा होगी। शायद आज से उसके दिल से मेरा सम्मान उठ गया। उसने औरों से भी यह वृत्तांत कहा होगा। मेरी तो नाक-सी कट गई। समझते हो, मैं गा रही हूं। यह गाना नहीं है, रोना है। जब दांपत्य के द्वार पर यह दशा हो रही है, जहां फूलों से, हर्षनादों से, प्रेमालिंगनों से, मृदुल हास्य से मेरा अभिवादन होना चाहिए था, तो मैं अंदर कदम रखने का क्योंकर साहस कर सकती हूं? तुमने मेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। शायद तुम मुझे Sentimental समझ रहे होगे, पर अपने चरित्र को मिटा देना मेरे वश की बात नहीं। मैं अपने को धन्यवाद देती हूं कि मैंने विवाह के विषय में इतनी दूरदृष्टि से काम लिया।

यह कहते-कहते सोफी की आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। शोकाभिनय में भी बहुधा यथार्थ शोक की वेदना होने लगती है। मिस्टर क्लार्क खेद और असमर्थता का राग अलापने लगे, पर न उपयुक्त शब्द ही मिलते थे, न विचार। अश्रु-प्रवाह तर्क और शब्द-योजना के लिए निकलने का कोई मार्ग नहीं छोड़ता। बड़ी मुश्किल से उन्होंने कहा—सोफी, मुझे क्षमा करो, वास्तव में मैं न समझता था कि इस जरा-सी बात से तुम्हें इतनी मानसिक पीड़ा होगी।

सोफी—इसकी मुझे कोई शिकायत नहीं है। तुम मेरे गुलाम नहीं हो कि मेरे इशारों पर नाचो। मुझमें वे गुण ही नहीं हैं, जो पुरुषों का हृदय खींच लेते हैं, न वह रूप है, न वह छवि है, न वह उद्दीपन-कला। नखरे करना नहीं जानती, कोप-भवन में बैठना नहीं जानती। दु:ख केवल इस बात का है कि उस आदमी ने तो मेरे एक इशारे पर मेरी बात मान ली, और तुम इतना अनुनय-विनय करने पर भी इंकार ही करते जाते हो। वह भी सिद्धांतवादी मनुष्य है, अधिकारियों की यंत्रणाएं सहीं, अपमान सहा, कारागार की अंधेरी कोठरी में कैद होना स्वीकार किया, पर अपने वचन पर सुदृढ़ रहा। इससे कोई मतलब नहीं कि उसकी टेक जा थी या बेजा, वह उसे जा समझता था। वह जिस बात को न्याय समझता था, उससे भय या लोभ या दंड उसे विचलित नहीं कर सके। लेकिन जब मैंने नरमी के साथ उसे समझाया कि तुम्हारी दशा चिंताजनक है, तो उसके मुख से ये करुणा शब्द निकले—'मेम साहब, जान की तो परवा नहीं, अपने मित्रों और सहयोगियों की दृष्टि में पतित होकर जिंदा रहना श्रेय की बात नहीं, लेकिन आपकी बात नहीं टालना चाहता। आपके शब्दों में कठोरता नहीं, सहृदयता है, और मैं अभी तक भाव-विहीन नहीं हुआ हूं।' मगर तुम्हारे ऊपर मेरा कोई मंत्र न चला। शायद तुम उससे बड़े सिद्धांतवादी हो, हालांकि अभी इसकी परीक्षा नहीं हुई। खैर, मैं तुम्हारे सिद्धांतों से सौतिया डाह नहीं करना चाहती। मेरी सवारी का प्रबंध कर दो, मैं कल ही चली जाऊंगी, और फिर अपनी नादानियों से तुम्हारे मार्ग का कंटक बनने न आऊंगी।

मिस्टर क्लार्क ने घोर आत्मवेदना के साथ कहा—डार्लिंग, तुम नहीं जानतीं, यह कितना भयंकर आदमी है। हम क्रांति से, षड्यंत्रों से, संग्राम से इतना नहीं डरते, जितना इस भांति के धैर्य और धुन से। मैं भी मनुष्य हूं—सोफी, यद्यपि इस समय मेरे मुंह से यह दावा समयोचित नहीं है, पर कम-से-कम उस पवित्र आत्मा के नाम पर, जिसका मैं एक अत्यंत दीन भक्त हूं, मुझे यह कहने का अधिकार है—मैं इस युवक का हृदय से सम्मान करता हूं, उसके दृढ़ संकल्प की, उसके साहस की, उसकी सत्यवादिता की दिल से प्रशंसा करता हूं। जानता हूं कि वह एक ऐश्वर्यशाली पिता का पुत्र है, और राजकुमारों की भांति आनंद-भोग में मग्न रह सकता है, पर उसके यही सद्गुण हैं, जिन्होंने उसे इतना अजेय बना रखा है। एक सेना का मुकाबला करना इतना कठिन नहीं है, जितना ऐसे गिने-गिनाए व्रतधारियों का, जिन्हें संसार में कोई भय नहीं है। मेरा जाति-धर्म मेरे हाथ बांधे हुए है।

सोफी को ज्ञात हो गया कि मेरी धमकी सर्वथा निष्फल नहीं हुई। विवशता का शब्द जबान पर, खेद का भाव मन में आया, और अनुमति की पहली मंजिल पूरी हुई। उसे यह भी ज्ञात हुआ कि इस समय मेरे हाव-भाव का इतना असर नहीं हो सकता, जितना बलपूर्ण आग्रह का। सिद्धांतवादी मनुष्य हाव-भाव का प्रतिकार करने के लिए अपना दिल मजबूत कर सकता है, वह अपने अंत:करण के सामने अपनी दुर्बलता को स्वीकार नहीं कर सकता, लेकिन दुराग्रह के मुकाबले में वह निष्क्रिय हो जाता है। तब उसकी एक नहीं चलती। सोफी ने कटाक्ष करते

हुए कहा–अगर तुम्हारा जातीय कर्त्तव्य तुम्हें प्यारा है, तो मुझे भी अपना आत्मसम्मान प्यारा है। स्वदेश की अभी तक किसी ने व्याख्या नहीं की, पर नारियों की मान-रक्षा उसका प्रधान अंग है और होनी चाहिए, इससे तुम इंकार नहीं कर सकते।

यह कहकर वह स्वामिनी-भाव से मेज के पास गई, और एक डाकेट का पत्र निकाला, जिस पर एजेंट आज्ञापत्र लिखा करता था।

क्लार्क–क्या करती हो सोफी? खुदा के लिए जिद मत करो।

सोफी–जेल के दारोगा के नाम हुक्म लिखूंगी।

यह कहकर वह टाइपराइटर पर बैठ गई।

क्लार्क–यह अनर्थ न करो सोफी, गजब हो जायगा।

सोफी–मैं गजब से क्या, प्रलय से भी नहीं डरती।

सोफी ने एक-एक शब्द का उच्चारण करते हुए आज्ञापत्र टाइप किया। उसने एक जगह जान-बूझकर एक अनुपयुक्त शब्द टाइप कर दिया, जिसे एक सरकारी पत्र में न आना चाहिए था। क्लार्क ने टोका–यह शब्द मत रखो।

सोफी–क्यों, धन्यवाद न दूं?

क्लार्क–आज्ञापत्र में धन्यवाद का क्या जिक्र? कोई निजी थोड़े ही है।

सोफी–हां, ठीक है, यह शब्द निकाले देती हूं। नीचे क्या लिखूं?

क्लार्क–नीचे कुछ लिखने की जरूरत नहीं। केवल मेरा हस्ताक्षर होगा।

सोफी ने संपूर्ण आज्ञापत्र पढ़कर सुनाया।

क्लार्क–प्रिये, यह तुम बुरा कर रही हो।

सोफी–काई परवा नहीं, मैं बुरा ही करना चाहती हूं। हस्ताक्षर भी टाइप कर दूं? नहीं, (मोहर निकालकर) यह मोहर किए देती हूं।

क्लार्क–जो चाहे, करो। जब तुम्हें अपनी जिद के आगे कुछ बुरा-भला नहीं सूझता, तो मैं क्या कहूं?

सोफी–कहीं और तो इसकी नकल न होगी?

क्लार्क–मैं कुछ नहीं जानता।

यह कहकर मि० क्लार्क अपने शयन-गृह की ओर जाने लगे। सोफी ने कहा–आज इतनी जल्द नींद आ गई?

क्लार्क–हां, थक गया हूं, अब सोऊंगा। तुम्हारे इस पत्र से रियासत में तहलका पड़ जायगा।

सोफी–अगर तुम्हें इतना भय है, तो मैं इस पत्र को फाड़े डालती हूं। इतना नहीं गुदगुदाना चाहती कि हंसी के बदले रोना आ जाए। बैठते हो, या देखो, यह लिफाफा फाड़ती हूं।

क्लार्क कुर्सी पर उदासीन भाव से बैठ गए, और बोले–लो बैठ गया, क्या कहती हो?

सोफी–कहती कुछ नहीं हूं, धन्यवाद का गीत सुनते जाओ।

क्लार्क–धन्यवाद की जरूरत नहीं।

सोफी ने फिर गाना शुरू किया, और क्लार्क चुपचाप बैठे सुनते रहे। उनके मुख पर करुण

प्रेमाकांक्षा झलक रही थी। यह परख और परीक्षा कब तक? इस क्रीड़ा का कोई अंत भी है? इस आकांक्षा ने उन्हें साम्राज्य की चिंता से मुक्त कर दिया—आह ! काश, अब भी मालूम हो जाता कि तू इतनी बड़ी भेंट पाकर प्रसन्न हो गई। सोफी ने उनकी प्रेमाग्नि को खूब उद्दीप्त किया, और तब सहसा प्यानो बंद कर दिया, और बिना कुछ बोले हुए अपने शयनागार में चली गई। क्लार्क वहीं बैठे रहे, जैसे कोई थका हुआ मुसाफिर अकेला किसी वृक्ष के नीचे बैठा हो।

सोफी ने सारी रात भावी जीवन के चित्र खींचने में काटी, पर इच्छानुसार रंग न दे सकी। पहले रंग भरकर उसे जरा दूर से देखती, तो विदित होता, धूप की जगह छांह है, छांह की जगह धूप, लाल रंग का आधिक्य है, बाग में अस्वाभाविक रमणीयता, पहाड़ों पर जरूरत से ज्यादा हरियाली, नदियों में अलौकिक शांति। फिर ब्रुश लेकर इन त्रुटियों को सुधारने लगती, तो सारा दृश्य जरूरत से ज्यादा नीरस, उदास और मलिन हो जाता। उसकी धार्मिकता अब अपने जीवन में ईश्वरीय व्यवस्था का रूप देखती थी। अब ईश्वर ही उसका कर्णधार था, वह अपने कर्माकर्म के गुण-दोष से मुक्त थी।

प्रातःकाल वह उठी, तो मि० क्लार्क सो रहे थे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। उसने शोफर को बुलाकर मोटर तैयार करने का हुक्म दिया, और एक क्षण में जेल की तरफ चली, जैसे कोई बालक पाठशाला से घर की तरफ दौड़े।

उसके जेल पहुंचते ही हलचल-सी पड़ गई। चौकीदार आंखें मलते हुए दौड़-दौड़कर वर्दियां पहनने लगे। दारोगाजी ने उतावली में उल्टी अचकन पहनी, और बेतहाशा दौड़े। डाक्टर साहब नंगे पांव भागे, याद न आया कि रात को जूते कहां रखे थे, और इस समय तलाश करने की फुरसत न थी। विनयसिंह बहुत रात गए सोए थे और अभी तक मीठी नींद के मजे ले रहे थे। कमरे में जलकणों से भीगी हुई वायु आ रही थी। नर्म गलीचा बिछा हुआ था। अभी तक रात का लैंप न बुझा था, मानो विनय की व्यग्रता की साक्षी दे रहा था। सोफी का रूमाल अभी तक विनय के सिरहाने पड़ा हुआ था, और उसमें से मनोहर सुगंध उड़ रही थी। दारोगा ने जाकर सोफी को सलाम किया, और वह उन्हें लिए विनय के कमरे में आई। देखा, तो नींद में हैं। रात की मीठी नींद से मुख पुष्प के समान विकसित हो गया है। होंठों पर हल्की-सी मुस्कराहट है, मानो फूल पर किरणें चमक रही हों। सोफी को विनय आज तक कभी इतना सुंदर न मालूम हुआ था।

सोफी ने डॉक्टर से पूछा—रात को इसकी कैसी दशा थी?

डॉक्टर—हुजूर, कई बार मूर्च्छा आई, पर मैं एक क्षण के लिए भी यहां से न टला। जब इन्हें नींद आ गई, तो मैं भोजन करने चला गया। अब तो इनकी दशा बहुत अच्छी मालूम होती है।

सोफी—हां, मुझे भी ऐसा ही मालूम होता है। आज वह पीलापन नहीं है। मैं अब उससे यह पूछना चाहती हूं कि इसे किसी दूसरी जेल में क्यों न भिजवा दूं। यहां का जलवायु इसके अनुकूल नहीं है। पर आप लोगों के सामने यह अपने मन की बातें न कहेगा। आप लोग जरा बाहर चले जायं, तो मैं इसे जगाकर पूछ लूं, और इसका ताप भी देख लूं। (मुस्कराकर) डाक्टर साहब, मैं भी इस विद्या से परिचित हूं, नीम-हकीम हूं, पर खतरे-जान नहीं।

जब कमरे में एकांत हो गया, तो सोफी ने विनय का सिर उठाकर अपनी जांघ पर रख

लिया, और धीरे-धीरे उसका माथा सुहलाने लगी। विनय की आंखें खुल गईं। इस तरह झपटकर उठा, जैसे नींद में किसी नदी में फिसल पड़ा हो। स्वप्न का इतना तत्काल फल शायद ही किसी को मिला हो।

सोफी ने मुस्कराकर कहा—तुम अभी तक सो रहे हो, मेरी आंखों की तरफ देखो, रात-भर नहीं झपकीं।

विनय—संसार का सबसे उज्ज्वल रत्न पाक भी मीठी नींद न लूं, तो मुझसे भाग्यहीन और कौन होगा?

सोफी—मैं तो उससे भी उज्ज्वल रत्न पाकर और भी चिंताओं में फंस गई। अब यह भय है कि कहीं वह हाथ से न निकल जाए। नींद का सुख अभाव में है, जब कोई चिंता नहीं होती। अच्छा, अब तैयार हो जाओ।

विनय—किस बात के लिए?

सोफी—भूल गए? इस अंधकार से प्रकाश में आने के लिए, इस काल-कोठरी से बिदा होने के लिए। मैं मोटर लाई हूं, तुम्हारी मुक्ति का आज्ञापत्र मेरी जेब में है। कोई अपमानसूचक शर्त नहीं है। केवल उदयपुर-राज्य में बिना आज्ञा के न आने की प्रतिज्ञा ली गई है। आओ, चलें। मैं तुम्हें रेल के स्टेशन तक पहुंचाकर लौट आऊंगी। तुम दिल्ली पहुंचकर मेरा इंतजार करना। एक सप्ताह के अंदर मैं तुमसे दिल्ली में आ मिलूंगी, और फिर विधाता भी हमें अलग न कर सकेगा।

विनयसिंह की दशा उस बालक की-सी थी, जो मिठाइयों के खोंचे को देखता है, पर इस भय से कि अम्मां मारेंगी, मुंह खोलने का साहस नहीं कर सकता। मिठाइयों का स्वाद याद करके उसकी राल टपकने लगती है। रसगुल्ले कितने रसीले हैं! मालूम होता है, दांत किसी रसकुंड में फिसल पड़े। अमिर्तियां कितनी कुरकुरी हैं, उसमें भी रस भरा होगा। गुलाबजामुन कितनी सोंधी होती है कि खाता ही चला जाय। मिठाइयों से पेट नहीं भर सकता। अम्मां पैसे न देंगी। होंगे ही नहीं, किससे मांगेंगी, ज्यादा हठ करूंगा, तो रोने लगेंगी। सजल नेत्र होकर बोला—सोफी, मैं भाग्यहीन आदमी हूं, मुझे इसी दशा में रहने दो। मेरे साथ अपने जीवन का सर्वनाश न करो। मुझे विधाता ने दु:ख भोगने ही के लिए बनाया है। मैं इस योग्य नहीं कि तुम...।

सोफी ने बात काटकर कहा—विनय, मैं विपत्ति ही की भूखी हूं। अगर तुम सुख-संपन्न होते, अगर तुम्हारा जीवन विलासमय होता, अगर तुम वासनाओं के दास होते, तो कदाचित् मैं तुम्हारी तरफ से मुंह फेर लेती। तुम्हारे सत्साहस और त्याग ही ने मुझे तुम्हारी तरफ खींचा है।

विनय—अम्मांजी को तुम जानती हो, वह मुझे कभी क्षमा न करेंगी।

सोफी—तुम्हारे प्रेम का आश्रय पाकर मैं उनके क्रोध को शांत कर लूंगी। जब वह देखेंगी कि मैं तुम्हारे पैरों की जंजीर नहीं, तुम्हारे पीछे उड़ने वाली रज हूं, तो उनका हृदय पिघल जाएगा।

विनय ने सोफी को स्नेह-पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—तुम उनके स्वभाव से परिचित नहीं हो। वह हिन्दू-धर्म पर जान देती हैं।

सोफी—मैं भी हिन्दू-धर्म पर जान देती हूं। जो आत्मिक शांति मुझे और कहीं न मिली, वह गोपियों की प्रेम-कथा में मिल गई। वह प्रेम का अवतार, जिसने गोपियों को प्रेम-रस पान

कराया, जिसने कुब्जा को डोंगा पार लगाया, जिसने प्रेम के रहस्य दिखाने के लिए ही संसार को अपने चरणों से पवित्र किया, उसी की चेरी बनकर जाऊंगी, तो वह कौन सच्चा हिन्दू है, तो मेरी उपेक्षा करेगा?

विनय ने मुस्कराकर कहा—उस छलिया ने तुम पर भी जादू डाल दिया? मेरे विचार में तो कृष्ण की प्रेम-कथा सर्वथा भक्त-कल्पना है।

सोफी—हो सकती है। प्रभु मसीह को भी तो कल्पित कहा जाता है। शेक्सपियर भी तो कल्पना-मात्र है। कौन कह सकता है कि कालिदास की सृष्टि पंचभूतों से हुई है? लेकिन इन पुरुषों के कल्पित होते हुए भी हम उनकी पवित्र कीर्ति के भक्त हैं, और वास्तविक पुरुषों की कीर्ति से अधिक। शायद इसीलिए कि उनकी रचना स्थूल परमाणु से नहीं, सूक्ष्म कल्पना से हुई है। ये व्यक्तियों के नाम हों, या न हों, पर आदर्शों के नाम अवश्य हैं। इनमें से प्रत्येक पुरुष मानवी जीवन का एक-एक आदर्श है।

विनय—सोफी, मैं तुमसे तर्क में पार न पा सकूंगा; पर मेरा मन कह रहा है कि मैं तुम्हारी सरल हृदयता से अनुचित लाभ उठा रहा हूं। मैं तुमसे हृदय की बात कहता हूं, सोफी, तुम मेरा यथार्थ रूप नहीं देख रही हो। कहीं उस पर निगाह पड़ जाय, तो तुम मेरी तरफ ताकना भी पसंद न करोगी। तुम मेरे पैरों की जांजीर चाहे न बन सको, पर मेरी दबी हुई आग को जगाने वाली हवा अवश्य बन जाओगी। माताजी ने बहुत सोच-समझकर मुझे यह व्रत दिया है। मुझे भय होता है कि एक बार मैं इस बंधन से मुक्त हुआ, तो वासना मुझे इतने वेग से बहा ले जाएगी कि फिर शायद मेरे अस्तित्व का पता ही न चले। सोफी, मुझे इस कठिनतम परीक्षा में न डालो। मैं यथार्थ में बहुत दुर्बल-चरित्र, विषयसेवी प्राणी हूं। तुम्हारी नैतिक विशालता मुझे भयभीत कर रही है। हां, मुझ पर इतनी दया अवश्य करो कि आज यहां से किसी दूसरी जगह प्रस्थान कर दो।

सोफिया—क्या मुझसे इतनी दूर भागना चाहते हो?

विनय—नहीं-नहीं, इसका और ही कारण है। न-जाने क्योंकर यह विज्ञप्ति निकल गई कि जसवन्तनगर एक सप्ताह के लिए खाली कर दिया जाए। कोई जवान आदमी कस्बे में न रहने पाए। मैं तो समझता हूं, सरदार साहब ने तुम्हारी रक्षा के लिए यह व्यवस्था की है, पर लोग तुम्हीं को बदनाम कर रहे हैं।

सोफी और क्लार्क का परस्पर तर्क-वितर्क सुनकर नीलकण्ठ ने तत्काल यह हुक्म जारी कर दिया था। उन्हें निश्चय था कि मेम साहब के सामने साहब की एक न चलेगी, और विनय को छोड़ना पड़ेगा। इसलिए पहले ही से शांति-रक्षा का उपाय करना आवश्यक था। सोफी ने विस्मित होकर पूछा—क्या ऐसा हुक्म दिया गया है?

विनय—हां, मुझे खबर मिली है। कोई चपरासी कहता था।

सोफी—मुझे जरा भी खबर नहीं। मैं अभी जाकर पता लगाती हूं, और इस हुक्म को मंसूख करा देती हूं, ऐसी ज्यादती रियासतों के सिवा और कहीं नहीं हो सकती। यह सब तो हो जायगा, पर तुम्हें अभी मेरे साथ चलना पड़ेगा।

विनय—नहीं सोफी, मुझे क्षमा करो। दूर का सुनहरा दृश्य समीप आकर बालू का मैदान हो जाता है। तुम मेरे लिए आदर्श हो। तुम्हारे प्रेम का आनंद मैं कल्पना ही द्वारा ले सकता हूं। डरता हूं कि तुम्हारी दृष्टि में गिर न जाऊं। अपने को कहां तक गुप्त रखूंगा? तुम्हें पाकर फिर मेरा जीवन नीरस हो जायगा, मेरे लिए उद्योग और उपासना की कोई वस्तु न रह जाएगी। सोफी,

मेरे मुंह से न-जाने क्या-क्या अनर्गल बातें निकल रही हैं। मुझे स्वयं संदेह हो रहा है कि मैं अपने होश में हूं या नहीं। भिक्षुक राजसिंहासन पर बैठकर अस्थिरचित्त हो जाय, तो कोई आश्चर्य नहीं। मुझे यहीं पड़ा रहने दो। मेरी तुमसे यही अंतिम प्रार्थना है कि मुझे भूल जाओ।

सोफी—मेरी स्मरण-शक्ति इतनी शिथिल नहीं है।

विनय—कम-से-कम मुझे यहां से जाने के लिए विवश न करो, क्योंकि मैंने निश्चय कर लिया है, मैं यहां से न जाऊंगा। कस्बे की दशा देखते हुए मुझे विश्वास नहीं है कि मैं जनता को काबू में रख सकूंगा।

सोफी ने गंभीर भाव से कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं तुम्हें जितना सरल-हृदय समझती थी, तुम उससे कहीं बढ़कर कूटनीतिज्ञ हो। मैं तुम्हारा आशय समझती हूं, और इसीलिए कहती हूं, जैसी तुम्हारी इच्छा। पर शायद तुम्हें मालूम नहीं है कि युवती का हृदय बालक के समान होता है। उसे जिस बात के लिए मना करो, उसी तरफ लपकेगा। अगर तुम आत्मप्रशंसा करते, अपने कृत्यों की अप्रत्यक्ष रूप से डींग मारते, तो शायद मुझे तुमसे अरुचि हो जाती। अपनी त्रुटियों और दोषों का प्रदर्शन करके तुमने मुझे और भी वशीभूत कर लिया। तुम मुझसे डरते हो, इसलिए तुम्हारे सम्मुख न आऊंगी, पर रहूंगी तुम्हारे ही साथ। जहां-जहां तुम जाओगे, मैं परछाईं की भांति तुम्हारे साथ रहूंगी। प्रेम एक भावनागत विषय है, भावना ही से उसका पोषण होता है। भावना ही से वह जीवित रहता है, और भावना ही से लुप्त हो जाता है। वह भौतिक वस्तु नहीं है, तुम मेरे हो, वह विश्वास मेरे प्रेम को सजीव और सतृष्ण रखने के लिए काफी है। जिस दिन इस विश्वास की जड़ हिल जायगी, उसी दिन इस जीवन का अंत हो जायगा। अगर तुमने यही निश्चय किया है कि इस करागार में रहकर तुम अपने जीवन के उद्देश्य को अधिक सफलता के साथ पूरा कर सकते हो, तो मैं इस फैसले के आगे सिर झुकाती हूं। इस विराग ने मेरी दृष्टि में तुम्हारे आदर को कई गुना बढ़ा दिया है। अब जाती हूं। कल शाम को फिर आऊंगी। मैंने इस आज्ञापत्र के लिए जितना त्रिया-चरित्र खेला है, वह तुमसे बता दूं, तो तुम आश्चर्य करोगे। तुम्हारी एक 'नहीं' ने मेरे सारे प्रयास पर पानी फेर दिया। क्लार्क कहेगा, मैं कहता था, वह राजी न होगा, कदाचित् व्यंग्य करे, पर कोई चिंता नहीं, कोई बहाना कर दूंगी।

यह कहते-कहते सोफी के सतृष्ण अधर विनयसिंह की तरफ झुके, पर वह काई पर फिसलने वाले मनुष्य की भांति गिरते-गिरते संभल गई। धीरे से विनयसिंह का हाथ दबाया, और द्वार की ओर चली, पर बाहर जाकर फिर लौट आई और अत्यंत दीन भाव से बोली—विनय, तुमसे एक बात पूछती हूं। मुझे आशा है कि तुम साफ-साफ बतला दोगे। मैं क्लार्क के साथ यहां आई, उससे कौशल किया, उसे झूठी आशाएं दिलाईं और अब उसे मुगालते में डाले हुए हूं। तुम इसे अनुचित तो नहीं समझते, तुम्हारी दृष्टि में मैं कलंकिनी तो नहीं हूं?

विनय के पास इसका एक ही संभावित उत्तर था। सोफी का आचरण उसे आपत्तिजनक प्रतीत होता था। उसे देखते ही उसने इस बात को आश्चर्य के रूप में प्रकट भी किया था। पर इस समय वह इस भाव को प्रकट न कर सका। यह कितना बड़ा अन्याय होता, कितनी घोर निर्दयता। वह जानता था कि सोफी ने जो कुछ किया है, वह एक धार्मिक तत्त्व के अधीन होकर। वह इसे ईश्वरीय प्रेरणा समझ रही है। अगर ऐसा न होता, तो शायद अब तक वह हताश हो गई होती। ऐसी दशा में कठोर सत्य वज्राघात के समान होता। श्रद्धा-पूर्ण तत्परता से बोले—सोफी,

तुम यह प्रश्न करके अपने ऊपर और उससे अधिक मेरे ऊपर अन्याय कर रही हो। मेरे लिए तुमने अब तक त्याग-ही-त्याग किए हैं, सम्मान, समृद्धि, सिद्धांत एक की भी परवा नहीं की। संसार में मुझसे बढ़कर कृतघ्न और कौन प्राणी होगा, जो मैं इस अनुराग का निरादर करूं।

यह कहते-कहते वह रुक गए। सोफी बोली—कुछ और कहना चाहते हो, रुक क्यों गए? यही न कि तुम्हें मेरा क्लार्क के साथ रहना अच्छा नहीं लगता। जिस दिन मुझे निराशा हो जायगी कि मैं मिथ्याचरण से तुम्हारा उपकार नहीं कर सकती, उसी दिन मैं क्लार्क को पैरों से यों ठुकरा दूंगी। उसके बाद तुम मुझे प्रेमयोगिनी के रूप में देखोगे, जिसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य होगा, तुम्हारे ऊपर समर्पित हो जाना।

सत्ताईस

नायकराम मुहल्ले वालों से बिदा होकर उदयपुर रवाना हुए। रेल के मुसाफिरों को बहुत जल्द उनसे श्रद्धा हो गई। किसी को तंबाकू मलकर खिलाते, किसी के बच्चे को गोद में लेकर प्यार करते। जिस मुसाफिर को देखते, जगह नहीं मिल रही है, इधर-उधर भटक रहा है, जिस कमरे में जाता है, धक्के खाता है, उसे बुलाकर अपनी बगल में बैठा लेते। फिर जरा देर में सवालों को तांता बांध देते—कहां मकान है? कहां जाते हो? कितने लड़का हैं? क्या कारोबार होता है? इन प्रश्नों का अंत इस अनुरोध पर होता है कि 'मेरा नाम नायकराम पंडा है, जब कभी कासी आओ, मेरा नाम पूछ लो, बच्चा-बच्चा जानता है, दो दिन, चार दिन, महीने, दो महीने, जब तक इच्छा हो, आराम से कासीवास करो; घर-द्वार, नौकर-चाकर, सब हाजिर हैं, घर का-सा आराम पाओगे; वहां से चलते समय जो चाहो, दे दो, न हो, न दो, घर आकर भेज दो, इसकी कोई चिंता नहीं, यह कभी मत सोचो, अभी रुपये नहीं हैं, फिर चलेंगे। सुभकाज के लिए महूरत नहीं देखा जाता, रेल का किराया लेकर चल खड़े हो, कासी में तो मैं हूं ही, किसी बात की तकलीफ न होगी, काम पड़ जाय तो जान लड़ा दें, तीरथ-जात्रा के लिए टालमटोल मत करो, कोई नहीं जानता, कब बड़ी जात्रा करनी पड़ जाय, संसार के झगड़े तो सदा लगे ही रहेंगे।'

दिल्ली पहुंचे, तो कई नए मुसाफिर गाड़ी में आए। आर्य-समाज के किसी उत्सव में जा रहे थे। नायकराम ने उनसे भी वही जिरह शुरू की। यहां तक की एक महाशय गर्म होकर बोले—तुम हमारे बाप-दादे का नाम पूछकर क्या करोगे? हम तुम्हारे फंदे में फंसने वाले नहीं हैं। यहां गंगाजी के कायल नहीं, और काशी ही को स्वर्गपुरी समझते हैं।

नायकराम जरा भी हताश नहीं हुए। मुस्कराकर बोले—बाबूजी, आप आरिया होकर ऐसा कहते हैं। आरिया लोगों ही ने तो हिन्दू-धरम की लाज रखी, नहीं तो अब तक सारा देस मुसलमान-किरसतान हो गया होता। हिन्दू-धरम के उद्धारक होकर आप कासी को भला कैसे न मानेंगे! उसी नगरी में राजा हरिश्चंद की परीक्षा हुई थी, वहीं बुद्ध भगवान् ने अपना धरम-चक्कर चलाया था, वहीं संकर भगवान् ने मंडन मिसिर से सास्त्रार्थ किया था; वहां जैनी आते हैं, बौध आते

हैं, बैस्नव आते हैं, वह हिन्दूओं की नगरी नहीं है, सारे संसार की नगरी वही है। दूर-दूर के लोग भी जब तक कासीजी के दरसन न कर लें, उनकी जात्रा सुफल नहीं होती। गंगाजी, मुकुत देती हैं, पाप काटती हैं, यह सब तो गंवारों को बहलाने की बातें हैं। उनसे कहो कि चलकर उस पवित्र नगरी को देख आओ, जहां कदम-कदम पर आरिया-जाति के निसान मिलते हैं, जिसका नाम लेते ही सैकड़ों महात्माओं, रिसियों, मुनियों की याद आ जाती है, तो उनकी समझ में यह बात न आएगी। पर जथार्थ में बात यही है। कासी का महातम इसीलिए है कि वह आरिया-जाति की जीती-जागती पुरातन है।

इन महाशयों को फिर काशी की निंदा करने का साहस न हुआ। वे मन में लज्जित हुए और नायकराम के धार्मिक ज्ञान के कायल हो गए। हालांकि नायकराम ने ये थोड़े-से वाक्य ऐसे अवसरों के लिए किसी व्याख्याता के भाषण से चुनकर रट लिए थे।

रेल के स्टेशनों पर वह जरूर उतरते, और रेल के कर्मचारियों का परिचय प्राप्त करते। कोई उन्हें पान खिला देता, कोई जलपान करा देता। सारा यात्रा समाप्त हो गई, पर वह लेटे तक नहीं, जरा भी आंख नहीं झपकी। जहां दो मुसाफिरों को लड़ते-झगड़ते देखते, तुरंत तीसरे बन जाते, और उनमें मेल करा देते। तीसरे दिन वह उदयपुर पहुंच गए, और रियासत के अधिकारियों से मिलते-जुलते, घूमते-घामते जसवन्तनगर में दाखिल हुए। देखा, मिस्टर क्लार्क का डेरा पड़ा हुआ है। बाहर से आने-जाने वालों की बड़ी जांच-पड़ताल होती है, नगर के द्वार बंद-सा है, लेकिन पंडे को कौन रोकता? कस्बे में पहुंचकर सोचने लगे, विनयसिंह से क्योंकर मुलाकात हो? रात को तो एक धर्मशाले में ठहरे, सबेरा होते ही जेल के दारोगा के मकान पर जा पहुंचे। दारोगाजी सोफी को बिदा करके आए थे, और नौकर से बिगड़ रहे थे कि तूने हुक्का क्यों नहीं भरा, इतने में बरामदे में पंडाजी की आहट पाकर बाहर निकल आए। उन्हें देखते ही नायकराम ने गंगाजल की शीशी निकाली, और उनके सिर पर जल छिड़क दिया।

दारोगाजी ने अन्यमस्क होकर कहा—कहां से आते हो?

नायकराम—महाराज, अस्थान तो परागराज है, पर आ रहा हूं बड़ी दूर से। इच्छा हुई, इधर भी जजमानों को आसीरबाद देता चलूं।

दारोगाजी का लड़का, जिसकी उम्र अभी चौदह-पंद्रह वर्ष की थी, निकल आया। नायकराम ने उसे नख से शिख तक बड़े ध्यान से देखा, मानो उसके दर्शनों से हार्दिक आनंद प्राप्त हो रहा है, और तब दारोगाजी से बोले—यह आपके चिरंजीव पुत्र हैं न? पिता-पुत्र की सूरत कैसी लगती है कि दूर ही से पहचान जाय। छोटे ठाकुर साहब, क्या पढ़ते हो?

लड़का ने कहा—अंगरेजी पढ़ता हूं।

नायकराम—यह तो मैं पहले ही समझ गया था। आजकल तो इसी विद्या का दौरदौरा है, राजविद्या ठहरी। किस दफे में पढ़ते हो भैया?

दारोगा—अभी तो हाल ही में अंगरेजी शुरू की है, उस पर भी पढ़ने में मन नहीं लगाते, अभी थोड़ी ही पढ़ी है।

लड़के ने समझा, मेरा अपमान हो रहा है। बोला—तुमसे तो ज्यादा पढ़ा हूं।

नायकराम—इसकी कोई चिंता नहीं, सब आ जायगा, अभी इनकी औस्था ही क्या है। भगवान् की इच्छा होगी, तो कुल का नाम रोसन कर देंगे। आपके घर में कुछ जगह-जमीन भी है?

दारोगा ने अब समझा। बुद्धि बहुत तीक्ष्ण न थी। अकड़कर कुर्सी पर बैठ गए, और बोले—हां, चित्तौड़ के इलाके में कई गांव हैं। पुरानी जागीर है। मेरे पिता महाराना के दरबारी थे, हल्दीघाटी की लड़ाई में राना प्रताप ने मेरे पूर्वज को यह जागीर दी थी। अब भी मुझे दरबार में कुर्सी मिलती है, और पान-इलायची से सत्कार होता है। कोई कार्य-प्रयोजन होता हो, तो महाराना के यहां से आदमी आता है। बड़ा लड़का मरा था, तो महाराना ने शोकपत्र भेजा था।

नायकराम—जागीरदारी का क्या कहना। जो जागीरदार, वही राजा; नाम का फरक है। असली राजा तो जागीरदार ही होते हैं, राना तो नाम के हैं।

दारोगा—बराबर राज्यकुल से आना-जाना लगा रहता है।

नायकराम—अभी इनकी कहीं बातचीत तो नहीं हो रही है?

दारोगा—अजी, लोग तो जान खा रहे हैं, रोज एक-न-एक संदेसा आता रहता है, पर मैं सबों को टका-सा जवाब दे देता हूं। जब तक लड़का पढ़-लिख न ले, तब तक उसका विवाह कर देना नादानी है।

नायकराम—यह आपने पक्की बात कही। जथारथ में ऐसा ही होना चाहिए। बड़े आदमियों की बुद्धि भी बड़ी ही होती है। पर लोक-रीत पर चलना ही पड़ता है। अच्छा, अब आज्ञा दीजिए, कई जगह जाना है। जब तक मैं लौटकर न आऊं, किसी को जबान न दीजिएगा। ऐसी कन्या आपको न मिलेगी, और न ऐसा उत्तम कुल ही पाइएगा।

दारोगा—वाह-वाह! इतनी जल्दी चले जाइएगा? कम-कम-कम भोजन तो कर लीजिए। कुछ हमें भी तो मालूम हो कि आप किसका संदेसा लाए हैं? वह कौन है, कहां रहते हैं?

नायकराम—सब कुछ मालूम हो जाएगा, पर अभी बताने का हुक्म नहीं है।

दारोगा ने लड़के से कहा—तिलक, अंदर जाओ, पंडितजी के लिए पान बनवा लाओ, कुछ नाश्ता भी लेते आना।

यह कहकर तिलक के पीछे-पीछे खुद अंदर गए, और गृहिणी से बोले—लो, कहीं से तिलक के ब्याह का संदेसा आया है। पान तश्तरी में भेजना। नाश्ते के लिए कुछ नहीं है? वह तो मुझे पहले ही मालूम था। घर में कितनी ही चीज आए, दुबारा देखने को नहीं मिलती। न जाने कहां के मरभुखे जमा हो गए हैं। अभी कल ही एक ही कैदी के घर से मिठाइयों का पूरा थाल आया था, क्या हो गया?

स्त्री—इन्हीं लड़कों से पूछो, क्या हो गया। मैं तो हाथ से छूने की भी कसम खाती हूं। यह कोई संदूक में बंद करके रखने की चीज तो है नहीं। जिसका जब जी चाहता है, निकालकर खाता है। कल से किसी ने रोटियों की ओर नहीं ताका।

दारोगा—तो आखिर तुम किस मरज की दवा हो? तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि जो चीज घर में आए, उसे यत्न से रखो, हिसाब से खर्च करो। वह लौंडा कहां गया?

स्त्री—तुम्हीं ने तो अभी उसे डांटा था, बस चला गया। कह गया है कि घड़ी-घड़ी की डांट-फटकार बरदाश्त नहीं हो सकती।

दारोगा—यह और मुसीबत हुई। ये छोटे आदमी दिन-दिन सिर चढ़ते जाते हैं, कोई कहां तक इनकी खुशामद करे, अब कौन बाजार से मिठाइयां लाए। आज तो किसी सिपाही को भी नहीं भेज सकता, न-जाने सिर से कब यह बला टलेगी। तुम्हीं चले जाओ तिलक!

तिलक—शर्बत क्यों नहीं पिला देते?

स्त्री—शक्कर भी तो नहीं है। चले क्यों नहीं जाते?

तिलक—हां, चले क्यों नही जाते। लोग देखेंगे, कहेंगे, हजरत मिठाई लिए जाते हैं।

दारोगा—तो इसमें क्या गाली है, किसी के घर चोरी तो नहीं कर रहे हो। बुरे काम से लजाना चाहिए, अपना काम करने में क्या लाज?

तिलक यों तो लाख सिर पटकने पर भी बाजार न जाते, पर इस वक्त अपने विवाह की खुशी थी, चले गए। दारोगाजी ने तश्तरी में पान रखे, और नायकराम के पास लाए।

नायकराम—सरकार, आपके घर पान नहीं खाऊंगा।

दारोगा—अजी, अभी क्या हरज है, अभी तो कोई बात भी नहीं हुई।

नायकराम—मेरा मन बैठ गया, तो सब ठीक समझिए।

दारोगा—यह तो आपने बुरी पख लगाई। यह बात नहीं हो सकती कि आप हमारे द्वार पर आएं और हम बिना यथेष्ट आदर-सत्कार किए आपको जाने दें। मैं तो मान भी जाऊंगा, पर तिलक की मां किसी तरह राजी न होंगी।

नायकराम—इसी से मैं यह संदेसा लेकर आने से इनकार कर रहा था। जिस भले आदमी के द्वार पर जाइये, वह भोजन और दच्छिना के बगैर गला नहीं छोड़ता। इसी से तो आजकल कुछ लबाड़ियों ने वर खोजने को ब्यौसाय बना लिया है। इससे यह काम करते हुए और भी संकोच होता है।

दारोगा—ऐसे धूर्त यहां नित्य ही आया करते हैं, पर मैं तो पानी को भी नहीं पूछता। जैसा मुंह होता है, वैसा बीड़ा मिलता है। यहां तो आदमी को एक नजर देखा, और उसकी नस-नस पहचान गया। आप यों न जाने पायंगे।

नायकराम—मैं जानता कि आप इस तरह पीछे पड़ जायंगे, तो लबाड़ियों ही की-सी बातचीत करता। गला तो छूट जाता।

दारोगा—यहां ऐसा अनाड़ी नहीं हूं, उड़ती चिड़िया पहचानता हूं।

नायकराम डट गए। दोपहर होते-होते बच्चे-बच्चे से उनकी मैत्री हो गई। दारोगाइन ने भी पालागन कहला भेजा। इधर से भी आशीर्वाद दिया गया। दारोगा तो दस बजे दफ्तर चले गए। नायकराम के लिए घर में पूरियां-कचौरियां, रायता, दही, चटनी, हलुआ बड़ी विधि से बनाया गया। पंडितजी ने भीतर जाकर भोजन किया। स्वामिनी ने स्वयं पंखा झला। फिर तो उन्होंने और भी रंग जमाया। लड़के-लड़कियों के हाथ देखे। दारोगाइन ने भी लजाते हुए हाथ दिखाया। पंडितजी ने अपने भाग्यरेखा-ज्ञान का अच्छा परिचय दिया और भी धाक जम गयी। शाम को दारोगाजी दफ्तर से लौटे, तो पंडितजी शान से मसनद लगाए बैठे हुए थे, और पड़ोस के कई आदमी उन्हें घेरे खड़े थे।

दारोगा ने कुर्सी पर लेटकर कहा—यह पद तो इतना ऊंचा नहीं, और न वेतन ही कुछ ऐसा अधिक मिलता है, पर काम इतनी जिम्मेदारी का है कि केवल विश्वासपात्रों को ही मिलता है। बड़े-बड़े आदमी किसी-न-किसी अपराध के लिए दंड पाकर आते हैं। अगर चाहूं, तो उनके घरवालों से एक-एक मुलाकात के लिए हजारों रुपये ऐंठ लूं, लेकिन अपना यह ढंग नहीं। जो सरकार से मिलता है, उसी को बहुत समझता हूं। किसी भीरु पुरुष का तो यहां घड़ी-भर निबाह न हो। एक-से-एक खूनी, डकैत, बदमाश आते रहते हैं, जिनके हजारों साथी होते हैं, चाहें

तो दिन-दहाड़े जेल को लुटवा लें, पर ऐसे ढंग से उन पर रोब जमाता हूं कि बदनामी भी न हो, और नुकसान भी न उठाना पड़े। अब आज-ही-कल देखिए, काशी के कोई करोड़पति राजा हैं। महाराजा भरतसिंह, उनका पुत्र राजविद्रोह के अभियोग में फंस गया है। हुक्काम तक उसका इतना आदर करते हैं, कि बड़े साहब की मेम साहब दिन में दो-दो बार उसका हाल-चाल पूछने आती है, और सरदार नीलकण्ठ बराबर पत्रों द्वारा उनका कुशल-समाचार पूछते रहते हैं। चाहूं तो महाराजा भरतसिंह से एक मुलाकात के लिए लाखों रुपये उड़ा लूं, पर यह अपना धर्म नहीं।

नायकराम—अच्छा ! क्या राजा भरतसिंह का पुत्र यहीं कैद है?

दारोगा—और यहां सरकार को किस पर इतना विश्वास है?

नायकराम—आप-जैसे महात्माओं के दरसन दुरलभ हैं। किंतु बुरा न मानिए, तो कहूं, बाल-बच्चों का भी ध्यान रखना चाहिए। आदमी घर से चार पैसे कमाने ही के लिए निकलता है।

दारोगा—अरे, तो क्या कोई कसम खाई है, पर किसी का गला नहीं दबाता। चलिए, आपको जेलखाने की सैर कराऊं। बड़ी साफ-सुथरी जगह है। मेरे यहां तो जो कोई मेहमान आता है, उसे वहीं ठहरा देता हूं। जेल के दारोगा से जेल की दोस्ती की हवा खाने के सिवा और क्या मिलेगा?

यह कहकर दारोगाजी मुस्कराए। वह नायकराम को किसी बहाने से यहां से टालना चाहते थे। नौकर भाग गया था, कैदियों और चपरासियों से काम लेने का मौका न था। सोचा—अपने हाथ चिलम भरनी पड़ेगी, बिछावन बिछाना पड़ेगा, पानी खींचना पड़ेगा, मर्यादा में बाधा उपस्थित होगी, घर का परदा खुल जायगा। इन्हें वहां ठहरा दूंगा, खाना भिजवा दूंगा, परदा ढका रह जायगा।

नायकराम—चलिए, कौन जाने, कभी आपकी सेवा में आना ही पड़े। पहले से ठौर-ठिकाना देख लूं। महाराजा साहब के लड़का ने कौन कसूर किया था?

दरोगा—कसूर कुछ नहीं था, बस हाकिमों की जिद है। यहां देहातों में घूम-घूमकर लोगों को उपदेश करता था, बस हाकिमों को उस पर संदेह हो गया कि यह राजविद्रोह फैला रहा है।, यहां लाकर कैद कर दिया। मगर आप तो अभी उसे देखिएगा ही, ऐसा गंभीर, शांत, विचारशील आदमी आज तक मैंने नहीं देखा। हां, किसी से दबता नहीं। खुशामद करके चाहो कोई पानी भरा ले, पर चाहे कि रोब से उसे दबा लें, तो जौ-भर भी न दबेगा।

नायकराम दिल में खुश थे कि बड़ी अच्छी साइत से चला था कि भगवान् आप ही सब द्वार खोले देते हैं। देखूं, अब विनयसिंह से क्या बात होती है। यों तो वह न जायंगे, पर रानीजी की बीमारी का बहाना करना पड़ेगा। वह राजी हो जाएं, यहां से निकाल ले जाना तो मेरा काम है। भगवान् की इतनी दया हो जाती, तो मेरी मनोकामना पूरी हो जाती, घर बस जाता, जिंदगी सुफल हो जाती।

अट्ठाईस

सोफिया के चले जाने के बाद विनय से विचारस्थल में भांति-भांति की शंकाएं होने लगीं। मन एक भीरु शत्रु है, जो सदैव पीठ के पीछे से वार करता है। जब तक सोफी सामने बैठी थी, उसे सामने आने का साहस न हुआ। सोफी के पीठ फेरते ही उसने ताल ठोकनी शुरू की—न जाने मेरी बातों का सोफिया पर क्या असर हुआ? कहीं वह यह तो नहीं समझ गई कि मैंने जीवन-पर्यंत के लिए सेवा-व्रत धारण कर लिया है। मैं भी कैसा मंदबुद्धि हूं, उसको माताजी की अप्रसन्नता का भय दिलाने लगा, जैसे भोले-भाले बच्चों की आदत होती है कि प्रत्येक बात पर अम्मां से कह देने की धमकी देते हैं। जब वह मेरे लिए इतना आत्मबलिदान कर ही है,यहां तक कि धर्म के पवित्र बंधन को भी तोड़ देने पर तैयार है, तो उसके सामने मेरा सेवा-व्रत और कर्त्तव्य का ढोंग रचना संपूर्णतः नीति-विरुद्ध है। मुझे वह मन में कितना निष्ठुर, कितना भीरु, कितना हृदय-शून्य समझ रही होगी। माना कि परोपकार आदर्श जीवन है; लेकिन स्वार्थ भी तो सर्वथा त्याज्य नहीं। बड़े-से-बड़ा जाति-भक्त भी स्वार्थ ही की ओर झुकता है। स्वार्थ का एक भाग मिटा देना जाति-सेवा के लिए काफी है। यही प्राकृतिक नियम है। आह ! मैंने अपने पांव में कुल्हाड़ी मारी। वह कितनी गर्वशीला है, फिर भी मेरे लिए उसने क्या-क्या अपमान न सहे। मेरी माता ने उसका जितना अपमाना किया, उतना कदाचित् उसकी माता ने किया होता, तो वह उसका मुंह न देखती। मुझे आखिर सूझी क्या ! निस्संदेह मैं उसके योग्य नहीं हूं, उसकी विशाल मनस्विता मुझे भयभीत करती है; पर क्या मेरी भक्ति मेरी त्रुटियों की पूर्ति नहीं कर सकती? जहांगीर-जैसा आत्मसेवी, मंद बुद्धि पुरुष अगर नूरजहां को प्रसन्न रख सकता है, तो क्या मैं अपने आत्मसमर्पण से, अपने अनुराग से, उसे संतुष्ट नहीं कर सकता? कहीं वह मेरी शिथिलता से अप्रसन्न होकर मुझसे सदा के लिए विरक्त न हो जाए ! यदि मेरे सेवा-व्रत, मातृभक्ति; और संकोच का यह परिणाम हुआ, तो यह जीवन दुस्सह हो जाएगा।

आह ! कितना अनुपम सौंदर्य है। उच्च शिक्षा और विचार से मुख पर कैसी आध्यात्मिक गंभीरता आ गई है। मालूम होता है, कोई देवी इन्द्रलोक से उतर आई है, मानो बहिर्जगत् से उसका कोई संबंध ही नहीं अंतर्जगत्, ही में विचरती है। विचारशीलता स्वाभाविक सौंदर्य को कितना मधुर बना देती है। विचारोत्कर्ष ही सौंदर्य का वास्तविक शृंगार है। वस्त्रोंभूषणों से तो उसकी प्राकृतिक शोभा ही नष्ट हो जाती है, वह कृत्रिम और वासनामय हो जाता है। Vulgar शब्द ही इस आशय को व्यक्त कर सकता है। हास्य और मुस्कान में जो अंतर हो, धूप और चांदनी में जो अंतर है, संगीत और काव्य में अंतर है, वही अंतर अलंकृत और परिष्कृत सौंदर्य में है। उसकी मुस्कान कितनी मनोहर है, जैसे जो वसंत की शीतल वायु या किसी कवि की अछूती सूझ। यहां किसी रूपमयी सुंदरी से बातें करने लगो, तो चित्त मलिन हो जाता है, या तो शीन-काफ ठीक नहीं, या लिंग-भेद का ज्ञान नहीं। सोफी के लिए व्रत, नियम, सिद्धांत की उपेक्षा करना क्षम्य ही नहीं, श्रेयस्कर भी है। यह मेरे लिए जीवन और मरण का प्रश्न है। उसके बगैर जीवन एक सूखे वृक्ष की भांति होगा, जिसे जल की अविरत वर्षा भी पल्लवित नहीं कर सकती। मेरे जीवन की उपयोगिता, सार्थकता ही लुप्त हो जाएगी। जीवन रहेगा, पर आनंदविहीन, प्रेमविहीन, उद्देश्यविहीन।

विनय इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि दारोगा आकर बैठ गए, और बोले–मालूम होता है, अब यह बला सिर से जल्द ही टलेगी। एजेंट साहब यहां से कूच करने वाले हैं। सरदार साहब ने शहर में डौंड़ी फिरवा दी है कि अब किसी को कस्बे से बाहर जाने की जरूरत नहीं। मालूम होता है, मेम साहब ने यह हुक्म दिया है।

विनय–मेम साहब बड़ी विचारशील महिला हैं।

दारोगा–यह बहुत ही अच्छा हुआ, नहीं तो अवश्य उपद्रव हो जाता, और सैकड़ों जानें जातीं। जैसा तुमने कहा, मेम साहब बड़ी विचारशील हैं, हालांकि उम्र अभी कुछ नहीं।

विनय–आपको खूब मालूम है कि वह कल यहां से चली जायंगी?

दारोगा–हां और क्या, सुनी-सुनाई कहता हूं? हाकिमों की बातों की घंटे-घंटे टोह लगती रहती है। रसद हैं बेगार, जो एक सप्ताह के लिए ली जानेवाली थी, बंद कर दी गई है।

विनय–यहां फिर न आंएगी?

दारोगा–तुम तो इतने अधीर हो रहे हो, मानो उन पर आसक्त हो।

विनय ने लज्जित होकर कहा–मुझसे उन्होंने कहा था कि कल तुम्हें देखने आऊंगी।

दारोगा–कह दिया होगा, पर अब उनकी तैयारी है। यहां तो खुश हैं कि बेदाग बच गए, नहीं तो और सभी जगह जेलरों पर जुरमाने किए हैं।

दारोगाजी चले गए, तो विनय सोचने लगा– सोफिया ने कल आने का वादा किया था। क्या अपना वादा भूल गई? अब न आयगी? यदि एक बार आ जाती, तो मैं उसके पैरों पर गिरकर कहता, सोफी मैं अपने होश में नहीं हूं। देवी अपने उपासक से इसलिए तो अप्रसन्न नहीं होती, कि वह उसके चरणों को स्पर्श करते हुए भी झिझकता है। यह तो उपासक की अश्रद्धा का नहीं, असीम श्रद्धा का चिह्न है।

ज्यों-ज्यों दिन गुजारता था, विनय की व्यग्रता बढ़ती जाती थी। मगर अपने मन की व्यथा किससे कहे। उसने सोचा–रात को यहां से किसी तरह भागकर सोफी के पास जा पहुंचूं! हा दुदैव, वह मेरी मुक्ति का आज्ञापत्र लाई थी, उस वक्त मेरे सिर पर न-जाने कौन-सा भूत सवार था।

सूर्यास्त हो रहा था। विनय सिर झुकाए दफ्तर के सामने टहल रहा था। सहसा उसे ध्यान आया–क्यों न फिर बेहोशी का बहाना करके गिर पड़ूं। यहां सब लोग घबरा जायंगे, और जरूर सोफी को मेरी खबर मिल जाएगी। अगर उसकी मोटर तैयार होगी, तो भी एक बार मुझे देखने आ जाएगी। पर यहां तो स्वांग भरना भी नहीं आता। अपने ऊपर खुद ही हंसी आ जाएगी। कहीं हंसी रुक न सकी, तो भद्द हो जाएगी। लोग समझ जाएंगे, बना हुआ है। काश इतना मूसलाधार पानी बरस जाता कि वह घर के बाहर निकल ही न सकती। पर कदाचित् इन्द्र को भी मुझसे बैर है, आकाश पर बादल का कहीं नाम नहीं, मानो किसी हत्यारे का दयाहीन हृदय हो। क्लार्क को ही कुछ जो जाता, तो आज उसका जाना रुक जाता।

जब अंधेरा हो गया, तो उसे सोफी पर क्रोध आने लगा–जब आज ही यहां से जाना था, तो उसने मुझसे कल आने का वादा ही क्यों किया, मुझसे जान-बूझकर झूठ क्यों बोली? क्या अब कभी मुलाकात ही न होगी? तब पूछूंगा। उसे खुद समझ जाना चाहिए था कि यह इस वक्त अस्थिर चित्त हो रहा है। उससे मेरे चित्त की दशा छिपी हुई है। वह उस अंतर्द्वंद्व को जानती

है, जो मेरे हृदय में इतना भीषण रूप धारण किए हुए है। एक ओर प्रेम और श्रद्धा है, तो दूसरी ओर अपनी प्रतिज्ञा, माता की अप्रसन्नता का भय और लोक-निंदा की लज्जा। इतने विरुद्ध भावों के समागम से यदि कोई अनर्गल बातें करने लगे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या। उसे इस दशा में मुझसे खिन्न न होना चाहिए था। अपनी प्रेममय सहानुभूति से मेरी हृदयाग्नि को शांत करना चाहिए था। अगर उसकी यही इच्छा है कि मैं इसी दशा में घुल-घुलकर मर जाऊं, तो यही सही। यह हृदय-दाह जीवन के साथ ही शांत होगा। आह ! ये दो दिन कितने आनंद के दिन थे ! रात हो रही है, फिर उसी अंधेरी, दुर्गंधमय कोठरी में बंद कर दिया जाऊंगा, कौन पूछेगा कि मरते हो या जीते। इस अंधकार में दीपक की ज्योति दिखाई भी दी, तो जब तक वहां पहुंचूं, नजरों से ओझल हो गई।

इतने में दारोगाजी फिर आए। पर अब की वह अकेले न थे, उनके साथ एक पंडितजी भी थे। विनयसिंह को ख्याल आया कि मैंने इन पंडितजी को कहीं देखा है, पर याद न आता था, कहां देखा है। दारोगाजी देर तक खड़े पंडितजी से बातें करते रहे। विनयसिंह से कोई न बोला। विनय न समझा, मुझे धोखा हुआ, कोई और आदमी होगा।

रात को सब कैदी खा-पीकर लेटे। चारों ओर के द्वार बंद कर दिए गए। विनय थरथरा रहा था कि मुझे भी अपनी कोठरी में जाना पड़ेगा, पर न जाने क्यों उसे वहीं पड़ा रहने दिया गया।

रोशनी गुल कर दी गई। चारों ओर सन्नाटा छा गया। विनय उसी उद्विग्न दशा में खड़ा सोच रहा था, कैसे यहां से निकलूं। जानता था कि चारों तरफ के द्वार बंद हैं, न रस्सी है, न कोई यंत्र, न कोई सहायक, न कोई मित्र। तिस पर भी वह प्रतीक्षा-भाव से द्वार पर खड़ा था कि शायद कोई हिकमत सूझ जाय। निराशा में प्रतीक्षा अंधे की लाठी है।

सहसा सामने से एक आदमी आता हुआ दिखाई दिया। विनय ने समझा, कोई चौकीदार होगा। डरा कि मुझे यहां खड़े देखकर कहीं उसके दिल में संदेह न हो जाये। धीरे से कमरे की ओर चला। इतना भीरु वह कभी न हुआ था। तोप के सामने खड़ा सिपाही भी बिच्छू को देखकर सशंक हो जाता है।

विनय कमरे में गए ही थे कि पीछे से वह आदमी भी अंदर आ पहुंचा। विनय ने चौंककर पूछा—कौन?

नायकराम बोले—आपका गुलाम हूं, नायकराम पंडा !

विनय—तुम यहां कहां? अब याद आया, आज तुम्हीं तो दारोगा के साथ पगड़ी बांधे खड़े थे? ऐसी सूरत बना ली थी कि पहचान ही में न आते थे। तुम यहां कैसे आ गए?

नायकराम—आप ही के पास तो आया हूं।

विनय—झूठे हो, यहां कोई यजमानी है क्या?

नायकराम—जजमान, कैसे, यहां तो मालिक ही हैं।

विनय—कब आए, कब? वहां तो सब कुशल है?

नायकराम—हां, सब कुसल ही है। कुंअर साहब ने जब से आपका हाल सुना है, बहुत घबराए हुए हैं, रानीजी भी बीमार हैं।

विनय—अम्माजी कब से बीमार हैं?

नायकराम—कोई एक महीना होने आता है। बस, घुली जाती हैं। न कुछ खाती हैं, न

पीती हैं, न किसी से बोलती हैं। न-जाने कौन रोग है कि किसी बैद, हकीम, डॉक्टर की समझ ही में नहीं आता। दूर-दूर से डॉक्टर बुलाए गए हैं, पर मरज की थाह किसी को नहीं मिलती। कोई कुछ बताता है कोई कुछ। कलकत्ते से कोई कबिराज आए हैं, वह कहते हैं, अब यह बच नहीं सकतीं। ऐसी घुल गई हैं कि देखते डर लगता है। मुझे देखा, तो धीरे से बोलीं—पंडाजी, अब डेरा कूच है। मैं खड़ा-खड़ा रोता रहा।

विनय ने सिसकते हुए कहा—हाय ईश्वर ! मुझे माता के चरणों के दर्शन भी न होंगे क्या !

नायकराम—मैंने जब बहुत पूछा, सरकार किसी को देखना चाहती हैं, तो आंखों में आंसू भरकर बोलीं, एक बार विनय को देखना चाहती हूं, पर भाग्य में देखना बदा नहीं है, न जाने उसका क्या हाल होगा।

विनय इतना रोए कि हिचकियां बंध गईं जब जरा आवाज काबू में हुई तो बोले—अम्मांजी को कभी किसी ने रोते नहीं देखा था। अब चित्त व्याकुल हो रहा है। कैसे उनके दर्शन पाऊंगा? भगवान् न-जाने किन पापों का यह दंड मुझे दे रहे हैं।

नायकराम—मैंने पूछा, हुकम हो, तो जाकर उन्हें लिवा लाऊं। इतना सुनना था कि वह जल्दी से उठकर बैठ गईं, और हाथ पकड़कर बोलीं—तुम उसे लिवा लाओगे? नहीं, वह न आएगा, वह मुझसे रूठा हुआ है। कभी न आएगा। उसे साथ लाओ, तो तुम्हारा बड़ा उपकार होगा। इतना सुनते ही मैं वहां से चल खड़ा हुआ। अब बिलम न कीजिए, कहीं ऐसा न हो कि माता की लालसा मन ही में रह जाए, नहीं तो आपको जनम-भर पछताना पड़ेगा।

विनय—कैसे चलूंगा?

नायकराम—इसकी चिंता मत कीजिए, ले तो मैं चलूंगा। जब यहां तक आ गया, तो यहां से निकलना क्या मुश्किल है।

विनय कुछ सोचकर बोले—पंडा, मैं तो चलने को तैयार हूं, पर भय यही है कि कहीं अम्मांजी नाराज न हो जाएं, तुम उनके स्वभाव को नहीं जानते।

नायकराम—भैया, इसका कोई भय नहीं। उन्होंने तो कहा है जैसे बने, वैसे लाओ। उन्होंने यहां तक कहा था कि माफी भी मांगनी पड़े, तो इस औसर पर मांग लेनी चाहिए।

विनय—तो चलो, कैसे चलते हो?

नायकराम—दिवाल फांदकर निकल जाएंगे, यह कौन मुश्किल है।

विनयसिंह को शंका हुई कि कहीं किसी की निगाह पड़ गई तो। सोफी यह सुनेगी, तो क्या कहेगी? सब अधिकारी मुझ पर तालियां बजाएंगे। सोफी सोचेगी, बड़े सत्यवादी बनते थे, अब वह सत्यवादिता कहां गई। 'किसी तरह। सोफी को यह खबर दी जा सकती, तो वह अवश्य आज्ञापत्र भेज देती, पर यह बात नायकराम से कैसे कहूं?' बोले—पकड़ गए तो?

नायकराम—पकड़ गए तो ! पकड़ेगा कौन? यहां कच्ची गोली नहीं खेले हैं। सब आदमियों को पहले ही से गांठ रखा है।

विनय—खूब सोच लो। पकड़ गए, तो फिर किसी तरह छूटकारा न होगा।

नायकराम—पकड़े जाने का तो नाम ही न लो। यह देखो, सामने ईंटें दीवाल से मिलाकर रखी हुई हैं। मैंने पहले ही से यह इंतजाम कर लिया है। मैं कई ईंटों पर खड़ा हो जाऊंगा। आप मेरे कंधे पर चढ़कर इस रस्सी को लिए हुए दिवाल पर चढ़ जाइएगा।

रस्सी उस तरफ फेंक दीजिएगा। मैं इसे मजबूत पकड़े रहूंगा, आप इधर धीरे से उतर जाइएगा। फिर वहां आप रस्सी को मजबूत पकड़े रहिएगा, मैं भी इधर से चला जाऊंगा। रस्सी बड़ी मजबूत है, टूट नहीं सकती। मगर हां, छोड़ न दीजिएगा। नहीं तो मेरी हड्डी-पसली टूट जाएगी।

यह कहकर नायकराम रस्सी का पुलिंदा लिए हुए ईंटों के पास जाकर खड़े हो गए। विनय भी धीरे-धीरे चले। सहसा किसी चीज के खटकने की आवाज आई। विनय ने चौंककर कहा—भाई, मैं न जाऊंगा। मुझे यहीं पड़ा रहने दो। माताजी के दर्शन करना मेरे भाग्य में नहीं है।

नायकराम—घबराइए मत, कुछ नहीं है।

विनय—मेरे तो पैर थरथरा रहे हैं।

नायकराम—तो इसी जीवट पर चले थे सांप के मुंह में उंगली डालने? जोखिम के समय पद-सम्मान का विचार नहीं रहता।

विनय—तुम मुझे जरूर फंसाओगे।

नायकराम—मरद होकर फंसने से इतना डरते हो। फंस ही गए, तो कौन चूड़ियां मैली हो जाएंगी। दुसमन की कैद से भागना लज्जा की बात नहीं है।

यह कहकर वह ईंटों पर खड़ा हो गया, और विनय से बोला—मेरे कंधे पर आ जाओ।

विनय—कहीं तुम गिर पड़े तो?

नायकराम—तुम्हारे जैसे पांच सवार हो जाएं, तो लेकर दौड़ूं। धरम की कमाई में बल होता है।

यह कहकर उसने विनय का हाथ पकड़कर उसे अपने कंधे पर ऐसी आसानी से उठा लिया, मानो कोई बच्चा है।

विनय—कोई आ रहा है।

नायकराम—आने दो। यह रस्सी कमर में बांध लो, और दीवार पकड़कर चढ़ जाओ।

अब विनय ने हिम्मत मजबूत की। यही निश्चयात्मक अवसर था। सिर्फ एक छलांग की जरूरत थी। ऊपर पहुंच गए, तो बेड़ा पार है, न पहुंच सके, तो अपमान, लज्जा, दंड सब कुछ है। ऊपर स्वर्ग है, नीचे नरक, ऊपर मोक्ष है, नीचे माया-जाल। दीवार पर चढ़ने में हाथों के सिवा और किसी चीज से मदद न मिल सकती थी। दुर्बल होने पर भी मजबूत आदमी थे। छलांग मारी, और बेड़ा पार हो गया, दीवार पर जा पहुंचे, और रस्सी पकड़कर नीचे उतर पड़े, दुर्भाग्यवश पीछे दीवार से मिली हुई गहरी खाई थी, जिसमें बरसात का पानी भरा हुआ था। विनय ने ज्योंही रस्सी छोड़ी, गर्दन तक पानी में डूब गए, और फिर बड़ी मुश्किल से बाहर निकले। तब रस्सी को पकड़कर नायकराम को इशारा किया। वह मंजा हुआ खिलाड़ी था। एक क्षण में नीचे आ पहुंचा। ऐसा जान पड़ता था कि वह दीवार पर बैठा था, केवल उतरने की देर थी।

विनय—देखना, खाई है !

नायकराम—पहले ही देख चुका हूं। तुमसे बताने की याद ही न रही।

विनय—तुम इस काम में निपुण हो। मैं कभी न निकल सकता। अब किधर चलोगे?

नायकराम—सबसे पहले तो देवी के मंदिर में चलूंगा वहां से फिर मोटर पर बैठकर इसटेशन की ओर। ईश्वर ने चाहा, तो आज के तीसरे दिन घर पहुंच जाएंगे। देवी सहाय न होतीं, तो इतनी जल्दी और इतनी आसानी से यह काम न होता। उन्होंने यह संकट हरा। उन्हें अपना खून चढ़ाऊंगा।

अब दोनों आजाद थे। विनय को ऐसा मालूम हो रहा था कि मेरे पांव आप-ही-आप उठे जाते हैं, वे इतने हल्के हो गए थे। जरा देर में दोनों आदमी सड़क पर आ गए।

विनय–सबेरा होते ही दौड़-धूप शुरू हो जाएगी।

नायकराम–तब तक हम लोग यहां से सौ कोस पर होंगे।

विनय–घर से भी तो वारंट द्वारा पकड़ मंगा सकते हैं।

नायकराम–वहां की चिंता मत करो। वह अपना राज है।

आज सड़क पर बड़ी हलचल थी। सैकड़ों आदमी लालटेनें लिए कस्बे से छावनी की तरफ जा रहे थे। एक गोल इधर से आता था, दूसरा उधर से। प्राय: लोगों को हाथों में लाठियां थीं। विनयसिंह को कौतूहल हुआ, आज यह भीड़-भाड़ कैसी। लोगों पर वह नि:स्तब्ध तत्परता छाई हुई थी, जो किसी भयंकर उद्वेग की सूचक होती है। किंतु किसी से कुछ पूछ न सकते थे कि कहीं यह पहचान न जाए।

नायकराम–देवी के मंदिर तक तो पैदल ही चलना पड़ेगा।

विनय–पहले इन आदमियों से तो पूछो, कहां दौड़े जा रहे हैं? मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि कहीं कुछ गड़बड़ हो गई।

नायकराम–होगा, हमें इन बातों से क्या मतलब? चलो, अपनी राह चलें।

विनय–नहीं-नहीं, जरा पूछो तो, क्या बात है?

नायकराम ने एक आदमी से पूछा, तो ज्ञात हुआ कि नौ बजे के समय एजेंट साहब अपनी मेम साहब के साथ मोटर पर बैठे हुए बाजार की तरफ से निकले। मोटर बड़ी तेजी से जा रही थी। चौराहे पर पहुंची, तो एक आदमी, जो बायीं ओर से आ रहा था, मोटर के नीचे दब गया। साहब ने आदमी को दबते हुए देखा, पर मोटर को रोका नहीं। यहां तक कि कई आदमी मोटर के पीछे दौड़े। बाजार के इस सिरे तक आते-आते मोटर को बहुत-से आदमियों ने घेर लिया। साहब ने आदमियों को डांटा कि अभी हट जाओ। जब लोग न हटे, तो उन्होंने पिस्तौल चला दी। एक आदमी तुरंत गिर पड़ा। अब लोग क्रोधोन्माद की दशा में साहब के बंगले पर जा रहे थे।

विनय ने पूछा–वहां जाने की क्या जरूरत है?

एक आदमी–जो कुछ होना है, वह हो जाएगा। यही न होगा, मारे जाएंगे। मारे तो यों ही जा रहे हैं। एक दिन तो मरना ही है। दस-पांच आदमी मर गए, तो कौन संसार सूना हो जायगा?

विनय के होश उड़ गए। यकीन हो गया कि आज कोई उपद्रव अवश्य होगा। बिगड़ी हुई जनता वह जल-प्रवाह है, जो किसी के रोके नहीं रुकता। यह लोग झल्लाए हुए हैं। इस दशा में इनसे धैर्य और क्षमा की बातें करना व्यर्थ है। कहीं ऐसा न हो कि यह लोग बंगले को घेर लें। सोफिया भी वहीं है। कहीं उस पर न आघात कर बैठें। दुरावेश में सौजन्य का नाश हो जाता है। नायकराम से बोले–पंडाजी, जरा बंगले तक होते चलें।

नायकराम–किसके बंगले तक?

विनय–पोलिटिकल एजेंट के।

नायकराम–उनके बंगले पर जाकर क्या कीजिएगा? क्या अभी तक परोपकार से जी नहीं भरा? ये जानें, वह जानें, हमसे आपसे मतलब?

विनय–नहीं मौका नाजुक है, वहां जाना जरूरी है।

नायकराम–नाहक अपनी जान के दुसमन हुए हो। वहां कुछ दंगा हो जाए तो ! मरद हैं ही, चुपचाप खड़े मुंह तो देखा न जायगा। दो-चार हाथ इधर या उधर चला ही देंगे। बस, धर-पकड़ हो जायगी। इससे क्या फायदा?

विनय–कुछ भी हो, मैं यहां यह हंगामा होते देखकर स्टेशन नहीं जा सकता।

नायकराम–रानीजी तिल-तिल पर पूछती होंगी।

विनय–तो यहां कौन हमें दो-चार दिन लगे जाते हैं, तुम यहीं ठहरो, मैं अभी आता हूं।

नायकराम–जब तुम्हें कोई भय नहीं है, तो यहां कौन रोने वाला बैठा हुआ है। मैं आगे-आगे चलता हूं। देखना, मेरा साथ न छोड़ना। यह ले लो जोखिम का मामला है। मेरे लिए यह लकड़ी काफी है।

यह कहकर नायकराम ने एक नली वाली पिस्तौल कमर से निकालकर विनय के हाथ में रख दी। विनय पिस्तौल लिए हुए आगे बढ़े। जब राजभवन के निकट पहुंचे, तो इतनी भीड़ देखी की एक-एक कदम चलना मुश्किल हो गया, और भवन से एक गोली के टप्पे पर तो उन्हें विवश होकर रुकना पड़ा। सिर-ही-सिर दिखाई देते थे। राजभवन के सामने एक बिजली की लालटेन जल रही थी, और उसके उज्ज्वल प्रकाश में हिलता, मचलता, रुकता, ठिठकता हुआ जन-प्रवाह इस तरह भवन की ओर चला जा रहा था, मानो उसे निगल जाएगा। भवन के सामने, इस प्रवाह को रोकने के लिए, वरदीपोश सिपाहियों की एक कतार, संगीने चढ़ाये, चुपचाप खड़ी थी और ऊंचे चबूतरे पर खड़ी होकर सोफी कुछ कह रही थी, पर इस हुल्लड़ में उसकी आवाज सुनाई न देती थी। ऐसा मालूम होता था कि किसी विदुषी की मूर्ति है, जो कुछ कहने का संकेत कर रही है।

सहसा सोफिया ने दोनों हाथ ऊपर उठाए। चारों ओर सन्नाटा छा गया। सोफी ने उच्च और कंपित स्वर में कहा–मैं अंतिम बार तुम्हें चेतावनी देती हूं कि यहां से शांति के साथ चले जाओ, नहीं तो सैनिकों को विवश होकर गोली चलानी पड़ेगी। एक क्षण के अंदर यह मैदान साफ हो जाना चाहिए।

वीरपालसिंह ने सामने आकर कहा–प्रजा अब ऐसे अत्याचार नहीं सह सकती।

सोफी–अगर लोग सावधानी से रास्ता चलें, तो ऐसी दुर्घटना क्यों हो !

वीरपाल–मोटर वालों के लिए भी कोई कानून है या नहीं?

सोफी–उनके लिए कानून बनाना तुम्हारे अधिकार में नहीं है।

वीरपाल–हम कानून नहीं बना सकते, पर अपनी प्राण-रक्षा तो कर सकते हैं?

सोफी–तुम विद्रोह करना चाहते हो, और उसके कुफल का भार तुम्हारे सिर पर होगा।

वीरपाल–हम विद्रोही नहीं हैं, मगर यह नहीं हो सकता कि हमारा एक भाई किसी मोटर के नीचे दब जाए, चाहे वह मोटर महाराना ही का क्यों न हो, और हम मुंह न खोलें।

सोफी–वह संयोग था।

वीरपाल–सावधानी उस संयोग को टाल सकती थी। अब हम उस वक्त तक यहां से न जायंगे, जब तक हमें वचन न दिया जायगा कि भविष्य में ऐसी दुर्घटनाओं के लिए अपराधी को उचित दंड मिलेगा, चाहे वह कोई हो।

सोफी–संयोग के लिए कोई वचन नहीं दिया जा सकता। लेकिन....

सोफी कुछ कहना चाहती थी कि किसी ने एक पत्थर उसकी तरफ फेंका, जो उसके

सिर में इतनी जोर से लगा कि वहीं सिर थामकर बैठ गई। यदि विनय तत्क्षण किसी ऊंचे स्थान पर खड़े होकर जनता को आश्वासन देते, तो कदाचित् उपद्रव न होता, लोग शांत होकर चले जाते। पत्थर सोफी के जख्मी हो जाना जनता का क्रोध शांत करने को काफी था। किंतु जो पत्थर सोफी के सिर में लगा, वही कई गुने आघात के साथ विनय के हृदय में लगा। उसकी आंखों में खून उतर आया। आपे से बाहर हो गया। भीड़ से बलपूर्वक हटाता, आदमियों को ढकेलता–कुचलता सोफी के बगल में जा पहुंचा, पिस्तौल कमर से निकाली, और वीरपालसिंह पर गोली चला दी। फिर क्या था, सैनिकों को मानो हुक्म मिल गया। उन्होंने बंदूकें छोड़नी शुरू कीं। कोहराम मच गया, लेकिन फिर भी कई मिनट तक लोग वहीं खड़े गोलियों का जवाब ईंट–पत्थर से देते रहे। दो–चार बंदूकें इधर से भी चलीं। वीरपाल बाल–बाल बच गया और विनय को निकट होने के कारण पहचान कर बोला–आप भी उन्हीं में हैं।

विनय–हत्यारा !

वीरपाल–परमात्मा हमसे फिर गया है।

विनय–तुम्हें एक स्त्री पर हाथ उठाते लज्जा नहीं आती?

चारों तरफ से आवाजें आने लगीं–विनयसिंह है, यह कहां से आ गए, यह भी उधर मिल गए, इन्हीं ने तो पिस्तौल छोड़ी है।

–बना हुआ था। घर का भेदी लंका ढाहे।

–शायद शर्त पर छोड़े गए हैं।

–धन की लालसा सिर पर सवार है।

–मार दो एक पत्थर, सिर फट जाए, यह भी हमारा दुश्मन है।

–दगाबाज है।

–इतना बड़ा आदमी और थोड़े से धन के लिए ईमान बेच बैठा !

बंदूकों के सामने निहत्थे लोग कब तक ठहरते। जब कई आदमी अपने पक्ष के लगातर गिरे, तो भगदड़ पड़ गई, कोई इधर भागा, कोई उधर। मगर वीरपालसिंह और उसके साथ के पांचों सवार, जिनके हाथों में बंदूकें थीं, राजभवन के पीछे की ओर से विनयसिंह के सिर पर आ पहुंचे। अंधेरे में किसी की निगाह उन पर न पड़ी। विनय ने पीछे की तरफ घोड़ों की टाप सुनी, तो चौंके, पिस्तौल चलाई, पर वह खाली थी।

वीरपाल ने व्यंग्य करके कहा–आप तो प्रजा के मित्र बनते थे !

विनय–तुम जैसे हत्यारों की सहायता करना मेरा नियम नहीं है।

वीरपाल–मगर हम उससे अच्छे हैं; जो प्रजा की गरदन पर अधिकारियों से मिलकर छुरी चलाए !

विनय क्रोधोवेश में बाज की तरह झपटे कि उसके हाथ से बंदूक छीन लें, किंतु वीरपाल के एक सहयोगी ने झपटकर विनयसिंह को नीचे गिरा दिया, और दूसरा साथी तलवार लेकर उनकी ओर लपका ही था कि सोफी, जो अब तक चेतनाशून्य दशा में भूमि पर पड़ी हुई थी, चीख मारकर उठी और विनयसिंह से लिपट गई। तलवार अपने लक्ष्य पर न पहुंचकर सोफी के माथे पर पड़ी। इतने में नायकराम लाठी लिये हुए आ पहुंचा, और लाठियां चलाने लगा। दो विद्रोही आहत होकर गिर पड़े। वीरपाल अब तक हतबुद्धि की भांति खड़ा था। न उसे ज्ञात था कि सोफी को पत्थर किसने मारा, न उसने अपने सहयोगियों ही को विनय पर आघात करने

के लिए कहा था। यह सब कुछ उसकी आंखों के सामने, पर उसकी इच्छा के विरुद्ध हो रहा था। पर अब अपने साथियों को गिरते देखकर वह तटस्थ न रह सका। उसने बंदूक का कुंदा तौलकर इतनी जोर से नायकराम के सिर में मारा कि उसका सिर फट गया, और एक पल में उसके तीनों साथी अपने आहत साथियों को लेकर भाग निकले। विनयसिंह संभलकर उठे, तो देखा कि बगल में नायकराम खून से तर अचेत पड़ा है और सोफी का कहीं पता नहीं। उसे कौन ले गया, क्यों ले गया, कैसे ले गया, इसकी उन्हें खबर न थी।

मैदान में एक आदमी भी न था। दो-चार लाशें अलबत्ता इधर-उधर पड़ी हुई थीं।

मिस्टर क्लार्क कहां थे? तूफान उठा और गया, आग लगी और बुझी, पर उनका कहीं पता तक नहीं। वह शराब के नशे में मस्त, दीन-दुनिया से बेखबर अपने शयनागार में पड़े हुए थे। विद्रोहियों का शोर सुनकर सोफी भवन से बाहर निकल आई थी। मिस्टर क्लार्क को इसलिए जगाने की चेष्टा न की थी कि उनके आने से रक्तपात का भय था। उसने शांत उपायों से शांति-रक्षा करनी चाही थी, और उसी का यह फल था। वह पहले ही से सतर्क हो जाती, तो कदाचित् स्थिति इतनी भयावह न होने पाती।

विनय ने नायकराम को देखा। नाड़ी का पता न था, आंखें पथरा गई थीं। चिंता, शोक और पश्चात्ताप से चित्त इतना विकल हुआ कि वह रो पड़े। चिंता थी माता की, उनके दर्शन भी न करने पाया। शोक था सोफिया का, न-जाने उसे कौन ले गया।, पश्चात्ताप था अपनी क्रोधशीलता पर कि मैं ही इस सारे विद्रोह और रक्तपात का कारण हूं। अगर मैंने वीरपाल पर पिस्तौल न चलाई होती, तो यह उपद्रव शांत हो जाता।

आकाश पर श्यामल घन घटा छाई हुई थी, पर विनय के हृदयाकाश पर छाई हुई शोक-घटा उससे कहीं घनघोर, अपार और असूझ थी।

उनतीस

मिस्टर विलियम क्लार्क अपने अन्य स्वदेश-बंधुओं की भांति सुरापान के भक्त थे, पर उसके वशीभूत न थे। वह भारतवासियों की भांति पीकर छकना न जानते थे। घोड़े पर सवार होना जानते थे, उसे काबू से बाहर न होने देते थे। पर आज सोफी ने जान-बूझकर उन्हें मात्रा से अधिक पिला दी थी, बढ़ावा देती जाती थी--वाह इतनी ही, एक ग्लास तो और लो, अच्छा यह मेरी खातिर से, वाह ! अभी तुमने मेरे स्वास्थ्य का प्याला पिया ही नहीं। सोफी ने विनय से कल मिलने का वादा किया था, पर उनकी बातें उसे एक क्षण के लिए भी चैन न लेने देती थीं। वह सोचती थी—विनय ने आज ये नए बहाने क्यों ढूंढ़ निकाले? मैंने उनके लिए धर्म की भी परवा न की, फिर भी वह मुझसे भागने की चेष्टा कर रहे हैं। अब मेरे पास और कौन-सा उपाय है? क्या प्रेम का देवता इतना पाषाण-हृदय है, क्या वह बड़ी-से-बड़ी पूजा पाकर भी प्रसन्न नहीं होता? माता की अप्रसन्नता का इतना भय उन्हें कभी न था। कुछ नहीं, अब उनका प्रेम शिथिल हो गया है। पुरुषों का चित्त चंचल होता है, इसका एक और प्रमाण मिल गया। अपनी अयोग्यता का कथन उनके मुंह से कितना अस्वाभाविक मालूम होता है, वह जो इतने उदार, इतने विरक्त,

इतने सत्यवादी, इतने कर्त्तव्यनिष्ठ हैं, मुझसे कहते हैं, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूं! हाय! वह क्या जानते हैं कि मैं उनसे कितनी भक्ति रखती हूं, मैं इस योग्य भी नहीं कि उनके चरण स्पर्श करूं। कितनी पवित्र आत्मा है, कितने उज्ज्वल विचार, कितना अलौकिक आत्मोत्सर्ग! नहीं, वह मुझसे दूर रहने ही के लिए ये बहाने कर रहे हैं। उन्हें भय है कि मैं उनके पैरों की जंजीर बन जाऊंगी, उन्हें कर्त्तव्य-मार्ग से हटा दूंगी, उनको आदर्श से विमुख कर दूंगी। मैं उनकी शंका का कैसे निवारण करूं?

दिन-भर इन्हीं विचारों में व्यग्र रहने के बाद संध्या को वह इतनी विकल हुई कि उसने रात ही को विनय से फिर मिलने का निश्चय किया। उसने क्लार्क को शराब पिलाकर इसीलिए अचेत कर दिया था कि उसे किसी प्रकार का संदेह न हो। जेल के अधिकारियों से उसे कोई भय न था। वह इस अवसर को विनय से अनुनय-विनय करने में, उनके प्रेम को जगाने में, उनकी शंकाओं को शांत करने में लगाना चाहती थी, पर उसका ये प्रयास उसी के लिए घातक सिद्ध हुआ। मिस्टर क्लार्क मौके पर पहुंच सकते, तो शायद स्थिति इतनी भंयकर न होती, कम-से-कम सोफी को ये दुर्दिन न देखने पड़ते। क्लार्क अपने प्राणों से उसकी रक्षा करते। सोफी ने उनसे दगा करके अपनी ही सर्वनाश कर लिया। अब वह न जाने कहां और किस दशा में थी। प्राय: लोगों का विचार था कि विद्रोहियों ने उसकी हत्या कर डाली, और उसके शव को आभूषणों के लोभ से अपने साथ ले गए। केवल विनयसिंह इस विचार से सहमत न थे। उन्हें विश्वास था कि सोफी अभी जिंदा है। विद्रोहियों ने जमानत के तौर पर उसे अपने यहां कैद कर रखा है, जिसमें संधि की शर्तें तय करने में सुविधा हो। सोफ़ी रियासत को दबाने के लिए उनके हाथों में एक यंत्र के समान थी।

इस दुर्घटना के रियासत में तहलका मच गया। अधिकारी वर्ग आपको डरते थे, प्रजा आपको। अगर रियासत के कर्मचारियों ही तक बात रहती, तो विशेष चिंता की बात न थी, रियासत खून के बदले खून लेकर संतुष्ट हो जाती, ज्यादा-से-ज्यादा एक की जगह चार का खून कर डालती, पर सोफी के बीच में पड़ जाने से समस्या जटिल हो गई थी, मुआमला रियासत के अधिकार-क्षेत्र के बाहर पहुंच गया था, यहां तक कि लोगों को भय था, रियासत पर कोई जवाल न आ जाए। इसीलिए अपराधियों की पकड़-धकड़ में असाधारण तत्परता से काम लिया जा रहा था। संदेह-मात्र पर लोग फांस दिए जाते थे, और उनको कठोरतम यातनाएं दी जाती थीं। साक्षी और प्रमाण की कोई मर्यादा न रह गई थी। इन अपराधियों के भाग्य-निर्णय के लिए एक अलग न्यायालय खोल दिया गया था। उसमें मंजे हुए प्रजा-द्रोहियों को छांट-छांटकर नियुक्त किया गया था। यह अदालत किसी को छोड़ना न जानती थी। किसी अभियुक्त को प्राणदंड देने के लिए एक सिपाही की शहादत काफी थी। सरदार नीलकण्ठ बिना अन्न-जल, दिन-के-दिन, विद्रोहियों की खोज लगाने में व्यस्त रहते थे। यहां तक कि हिज हाइनेस महाराजा साहब स्वयं शिमला, दिल्ली और उदयपुर एक किये हुए थे। पुलिस-कर्मचारियों के नाम रोजा ताकीदें भेजी जाती थीं। उधर शिमला से भी ताकीदों का तांता बंधा हुआ था। ताकीदों के बाद धमकियां आने लगीं। उसी अनुपात से यहां पर भी उत्तरोत्तर अत्याचार बढ़ता जाता था। मि० क्लार्क को निश्चय था कि इस विद्राह में रियासत का हाथ भी अवश्य था। अगर रियासत ने पहले ही से विद्रोहियों का जीवन कठिन कर दिया होता, तो वे कदापि इस भांति सिर न उठा सकते। रियासत के बड़े-से-बड़े अधिकरी भी उनके सामने जाते कांपते थे। वह दौरे पर निकलते, तो

एक अंगेरजी रिसाला साथ ले लेते और इलाके-के-इलाके उजड़वा देते, गांव-के-गांव तबाह करवा देते। यहां तक कि स्त्रियों पर भी अत्याचार होता था। और सबसे अधिक खेद की बात यह थी कि रियासत और क्लार्क के इन सारे दुष्कृत्यों में विनय भी मनसा-वाचा-कर्मणा सहयोग करते थे। वास्तव में उन पर प्रमाद का रंग छाया हुआ था। सेवा और उपकार के भाव हृदय से संपूर्णत: मिट गए थे। सोफी और उसके शत्रुओं का पता लगाने का उद्योग, यही एक काम उनके लिए रह गया था। मुझे दुनिया क्या कहती है, मेरे जीवन का क्या उद्देश्य है, माताजी का क्या हाल हुआ, इन बातों की ओर ध्यान ही न जाता था। अब तो वह रियासत के दाहिने हाथ बने हुए थे। अधिकारी समय-समय पर उन्हें और भी उत्तेजित करते रहते थे। विद्रोहियों के दमन में कोई पुलिस का कर्मचारी, रियासत का कोई नौकर इतना हृदयहीन, विचारहीन, न्यायहीन न बन सकता था! उनकी राज-भक्ति का वारापार न था, या यों कहिए कि इस समय वह रियासत के कर्णधार बने हुए थे, यहां तक कि सरदार नीलकण्ठ भी उनसे दबते थे। महाराना साहब को उन पर इतना विश्वास हो गया था कि उनसे सलाह लिये बिना कोई काम न करते। उनके लिए आने-जाने की कोई रोक-टोक न थी और मि० क्लार्क से तो उनकी दांतकाटी रोटी थी। दोनों एक ही बंगले में रहते थे, और अंतरंग में सरदार साहब की जगह पर विनय की नियुक्ति की चर्चा की जाने लगी थी।

प्राय: साल-भर तक रियासत में यही आपाधापी रही। जब जसवन्तनगर विद्रोहियों से पाक हो गया, अर्थात् वहां कोई जवान आदमी न रहा, तो विनय ने स्वयं सोफी का सुराग लगाने के लिए कमर बांधी। उनकी सहायता के लिए गुप्त पुलिस के कई अनुभवी आदमी तैनात किये गए। चलने की तैयारियां होने लगीं। नायकराम अभी तक कमजोर थे। उनके बचने की आशा ही न रही थी, पर जिंदगी बाकी थी, बच गए। उन्होंने विनय को जाने पर तैयार देखा, तो साथ चलने का निश्चय किया। आकर बोले-भैया, मुझे भी साथ ले चलो, मैं यहां अकेला न रहूंगा।

विनय-मैं कहीं परदेस थोड़े ही जाता हूं। सातवें दिन यहां आया करूंगा, तुमसे मुलाकात हो जायगी।

सरदार नीलकण्ठ वहां बैठे हुए थे। बोले-अभी तुम जाने के लायक नहीं हो।

नायकराम-सरदार साहब, आप भी इन्हीं की-सी कहते हैं। इनके साथ न रहूंगा, तो रानीजी को कौन मुंह दिखाऊंगा!

विनय-तुम यहां ज्यादा आराम से रह सकोगे, तुम्हारे ही भले की कहता हूं।

नायकराम-सरदार साहब, अब आप ही भैया को समझाइए। आदमी एक घड़ी की नहीं चलाता, एक हफ्ता तो बहुत है। फिर मोरचा लेना है वीरपालसिंह से, जिसका लोहा मैं भी मानता हूं। मेरी कई लाठियां उसने ऐसी रोक लीं कि एक पड़ जाती, तो काम तमाम हो जाता। पक्का फेकैत है। क्या मेरी जान तुम्हारी जान से प्यारी है?

नीलकण्ठ-हां, वीरपाल है तो एक ही शैतान। न-जाने कब, किधर से, कितने आदमियों के साथ टूट पड़े। उसके गोइंदे सारी रियासत में फैले हुए हैं।

नायकराम-तो ऐसे जोखम में कैसे इनका साथ छोड़ दूं? मालिक की चाकरी में जान भी निकल जाए, तो क्या गम है, और यह जिंदगानी है किसलिए।

विनय-भई, बात यह है कि मैं अपने साथ किसी गैर की जान जोखिम में नहीं डालना चाहता।

नायकराम–हां, जब आप मुझे गैर समझते हैं, तो दूसरी बात है। हां, गैर तो हूं ही; गैर न होता, तो रानीजी के इसारे पर कैसे यहां दौड़ा आता, जेहल में जाकर कैसे बाहर निकाल लाता और साल-भर तक खाट क्यों सेता? सरदार साहब, हजूर ही अब इंसाफ कीजिए। मैं गैर हूं? जिसके लिए जान हथेली पर लिए फिरता हूं, वही गैर समझता है।

नीलकण्ठ–विनयसिंह, यह आपका अन्याय है। आप इन्हें गैर क्यों कहते हैं? अपने हितैषियों को गैर कहने से उन्हें दु:ख होता है।

नायकराम–बस, सरदार साहब, हजूर ने लाख रुपये की बात कह दी। पुलिस के आदमी गैर नहीं हैं, और मैं गैर हूं।

विनय–अगर गैर कहने से तुम्हें दु:ख होता है, तो मैं यह शब्द वापस लेता हूं। मैंने गैर केवल इस विचार से कहा था कि तुम्हारे संबंध में मुझे घरवालों को जवाब देना पड़ेगा। पुलिसवालों के लिए तो कोई मुझसे जवाब न मांगेगा।

नायकराम–सरदार साहब, अब आप ही इसका जवाब दीजिए। यह मैं कैसे कहूं कि मुझे कुछ हो गया, तो कुंवर साहब कुछ पूछ-तांछ न करेंगे, उनका भेजा हुआ आया ही हूं। भैया को जवाबदेही तो जरूर करनी पड़ेगी।

नीलकण्ठ–यह माना कि तुम उनके भेजे हुए आए हो, मगर तुम इतने अबोध नहीं हो कि तुम्हारी हानि-लाभ की जिम्मेदारी विनयसिंह के सिर हो। तुम अपना अच्छा-बुरा आप सोच सकते हो। क्या कुंअर साहब इतना भी न समझेंगे?

नायकराम–अब कहिए धर्मावतार, अब तो मुझे ले चलना पड़ेगा, सरदार साहब ने मेरी डिगरी कर दी। मैं कोई नाबालिग नहीं हूं कि सरकार के सामने आपको जवाब देना पड़े।

अंत को विनय ने नायकराम को साथ ले चलना स्वीकार किया, और दो-तीन दिन पश्चात् दस आदमियों की एक टोली, भेष बदलकर, सब तरह लैस होकर, टोहिये कुत्तों को साथ लिए, दुर्गम पर्वतों में दाखिल हुई। पहाड़ों से आग निकल रही थी। बहुधा कोसों तक पानी की एक बूंद न मिलती; रास्ते पथरीले, वृक्षों का पता नहीं, दोपहर को लोग गुफाओं में विश्राम करते थे, रात को बस्ती से अलग किसी चौपाल या मंदिर में पड़े रहते। दो-दो आदमियों का संग था। चौबीस घंटों में एक बार सब आदमियों को एक स्थान में जमा होना पड़ता था। दूसरे दिन का कार्यक्रम निश्चय करके लोग फिर अलग-अलग हो जाते थे। नायकराम और विनयसिंह की एक जोड़ी थी। नायकराम अभी तक चलने-फिरने में कमजोर था, पहाड़ों की चढ़ाई में थककर बैठ जाता, भोजन की मात्रा भी बहुत कम हो गई थी, दुर्बल इतना हो गया था कि पहचानना कठिन था, किंतु विनयसिंह पर प्राणों को न्यौछावर करने को तैयार रहता था। यह जानता था कि ग्रामीणों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए; विविध स्वभाव और श्रेणी के मनुष्यों से परिचित था। जिस गांव में जा पहुंचता, धूम मच जाती कि काशी के पंडाजी पधारे हैं। भक्तजन जमा हो जाते, नाई-कहार आ पहुंचते, दूध-घी, फल-फूल, शाक-भाजी आदि की रेल-पेल हो जाती, किसी मंदिर के चबूतरे पर खाट पड़ जाती, बाल-वृद्ध, नर-नारी बेधड़क पंडाजी के पास आते, और यथाशक्ति दक्षिणा देते। पंडाजी बातों-बातों में उनसे गांव का सारा समाचार पूछ लेते। विनयसिंह को अब ज्ञात हुआ कि नायकराम साथ न होते, तो मुझे कितने कष्ट झेलने पड़ते। वह स्वभाव के मितभाषी, संकोचशील, गंभीर आदमी थे। उनमें वह शासन-बुद्धि न थी,

जो जनता पर आतंक जमा लेती है, न वह मधुर वाणी, जो मन को मोहती है। ऐसी दशा में नायकराम का संग उनके लिए दैवी सहायता से कम न था।

रास्ते में कभी-कभी हिंसक जंतुओं से मुठभेड़ हो जाती। ऐसे अवसरों पर नायकराम सीनासिपर हो जाता था। एक दिन चलते-चलते दोपहर हो गया। दूर तक आबादी का कोई निशान न था। धूप की प्रखरता से एक-एक पग चलना मुश्किल था। कोई कुंआ या तालाब भी नजर न आता था। सहसा एक ऊंचा टीकरा दिखाई दिया। नायकराम उस पर चढ़ गया कि शायद ऊपर से कोई गांव या कुंआ दिखाई दे। उसने शिखर पर पहुंचकर इधर-उधर निगाह दौड़ाई, तो दूर पर एक आदमी जाता हुआ दिखाई दिया। उसके हाथ में एक लकड़ी और पीठ पर एक थैली थी। कोई बिना वर्दी का सिपाही मालूम होता था। नायकराम ने उसे कई बार जोर-जोर से पुकारा, तो उसने गर्दन फेरकर देखा। नायकराम उसे पहचान गए। यह विनयसिंह के साथ का एक स्वंयसेवक था। उसे इशारे से बुलाया, और टीले से उतरकर उसके पास आए। इस सेवक का नाम इन्द्रदत्त था।

इन्द्रदत्त ने पूछा—तुम यहां कैसे आ फंसे जी? तुम्हारे कुंअर कहां हैं?

नायकराम—पहले यह बताओ कि यहां कोई गांव भी है, कहीं दाना-पानी मिल सकता है?

इन्द्रदत्त—जिसके राम धनी, उसे कौन कमी ! क्या राजदरबार ने भोजन की रसद नहीं लगाई? तेली से ब्याह करके तेल का रोना !

नायकराम—क्या करूं भाई, बुरा फंस गया हूं, न रहते बनता है, न जाते।

इन्द्रदत्त—उनके साथ तुम भी अपनी मिट्टी खराब कर रहे हो। कहां हैं आजकल?

नायकराम—क्या करोगे?

इन्द्रदत्त—कुछ नहीं, जरा मिलना चाहता था।

नायकराम—हैं तो वह भी। यहीं भेंट हो जाएगी। थैली में कुछ है?

यों बातें करते हुए दोनों विनयसिंह के पास पहुंचे। विनय ने इन्द्रदत्त को देखा, तो शत्रु-भाव से बोला—इन्द्रदत्त, तुम कहां? घर क्यों नहीं गए?

इन्द्रदत्त—आपसे मिलने की बड़ी आकांक्षा थी। आपसे कितनी ही बातें करनी हैं। पहले यह बताइए कि आपने यह चोला क्यों बदला?

नायकराम—पहले तुम अपनी थैली में से कुछ निकालो, फिर बातें होंगी।

विनयसिंह अपनी कायापलट का समर्थन करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। बोले—इसलिए कि मुझे अपनी भूल मालूम हो गई। मैं पहले समझता था कि प्रजा बड़ी सहनशील और शांतिप्रिय है। अब ज्ञात हुआ कि वह नीच और कुटिल है। उसे ज्योंही अपनी शक्ति का कुछ ज्ञान हो जाता है, वह उसका दुरुपयोग करने लगती है। जो प्राणी शक्ति का संचार होते ही उन्मत्त हो जाए, उसका अशक्त, दलित रहना ही अच्छा है। गत विद्रोह इसका ज्वलंत प्रमाण है। ऐसी दशा में मैंने जो कुछ किया, और कर रहा हूं, वह सर्वथा न्यायसंगत और स्वाभाविक है।

इन्द्रदत्त—क्या आपके विचार में प्रजा को चाहिए कि उस पर कितने ही अत्याचार किए जाएं, वह मुंह न खोले?

विनय—हां, वर्तमान दशा में यही उसका धर्म है।

इन्द्रदत्त–उसके नेताओं को भी यही आदर्श उसके सामने रखना चाहिए?

विनय–अवश्य !

इन्द्रदत्त–तो जब आपने जनता को विद्रोह के लिए तैयार देखा, तो उसके सम्मुख खड़े होकर धैर्य और शांति का उपदेश क्यों नहीं दिया?

विनय–व्यर्थ था। उस वक्त कोई मेरी न सुनता।

इन्द्रदत्त–अगर न सुनता, तो क्या आपका यह धर्म नहीं था कि दोनों दलों के बीच में खड़े होकर पहले खुद गोली का निशाना बनते?

विनय–मैं अपने जीवन को इतना तुच्छ नहीं समझता।

इन्द्रदत्त–जो जीवन सेवा और परोपकार के लिए समर्पण हो चुका हो, उसके लिए इससे उत्तम और कौन मृत्यु हो सकती थी?

विनय–आग में कूदने का नाम सेवा नहीं है। उसे दमन करना ही सेवा है।

इन्द्रदत्त–अगर वह सेवा नहीं है, तो दीन जनता को, अपनी कामुकता पर आहुति देना भी सेवा नहीं है। बहुत संभव था कि सोफिया ने अपनी दलीलों से वीरपालसिंह को निरुत्तर कर दिया होता। किंतु आपने विषय के वशीभूत होकर पिस्तौल का पहला वार किया, और इसलिए इस हत्याकांड का सारा भार आपकी ही गर्दन पर है, और जल्द या देर में आपको इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। आप जानते हैं, प्रजा को आपके नाम से कितनी घृणा है? अगर कोई आदमी आपको यहां देखकर पहचान जाए, जो उसका पहला काम यह होगा कि आपके ऊपर तीर चलाए। आपने यहां की जनता के साथ, अपने सहयोगियों के साथ, अपनी जाति के साथ और सबसे अधिक अपनी पूज्य माता के साथ जो कुटिल विश्वासघात किया है, उसका कलंक कभी आपके माथे से न मिटेगा। कदाचित् रानीजी आपको देखें, तो अपने हाथों से आपकी गरदन पर कटार चला दें। आपके जीवन से मुझे यह अनुभव हुआ कि मनुष्य का कितना नैतिक पतन हो सकता है।

विनय ने कुछ नम्र होकर कहा–इन्द्रदत्त, अगर तुम समझते हो कि मैंने स्वार्थवश अधिकारियों की सहायता की, तो तुम मुझ पर घोर अन्याय कर रहे हो। प्रजा का साथ देने में जितनी आसानी से यश प्राप्त होता है, उससे कहीं अधिक आसानी से अधिकारियों का साथ देने में अपयश मिलता है। यह मैं जानता था। किंतु सेवक का धर्म यश और अपयश का विचार करना नहीं है, उसका धर्म सन्मार्ग पर चलना है। मैंने सेवा का व्रत धारण किया है, और ईश्वर न करे कि मैं वह दिन देखने के लिए जीवित रहूं, जब मेरे सेवा-भाव में स्वार्थ का समावेश हो। पर इसका यह आशय नहीं कि मैं जनता का अनौचित्य देखकर भी उसका समर्थन करूं। मेरा व्रत मेरे विवेक की हत्या नहीं कर सकता।

इन्द्रदत्त–कम-से-कम इतना तो आप मानते ही हैं कि स्वहित के लिए जनता का अहित न करना चाहिए।

विनय–जो प्राणी इतना भी न माने, वह मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं है।

इन्द्रदत्त–क्या आपने केवल सोफिया के लिए रियासत की समस्त प्रजा को विपत्ति में नहीं डाला और अब भी उसका सर्वनाश करने की धुन में नहीं हैं?

विनय–तुम मुझ पर यह मिथ्या दोषारोपण करते हो। मैं जनता के लिए सत्य से मुंह नहीं मोड़ सकता। सत्य मुझे देश और जाति, दोनों से प्रिय है। जब तक मैं समझता था कि प्रजा सत्य-

पक्ष पर है, मैं उसकी रक्षा करता था। जब मुझे विदित हुआ कि उसने सत्य से मुंह मोड़ लिया, मैंने भी उससे मुंह मोड़ लिया। मुझे रियासत के अधिकारियों से कोई आंतरिक विरोध नहीं है। मैं वह आदमी नहीं हूं कि हुक्काम को न्याय पर देखकर भी अनायास उनसे बैर करूं, और न मुझसे यही हो सकता है कि प्रजा को विद्रोह और दुराग्रह पर तत्पर देखकर भी उसकी हिमायत करूं। अगर कोई आदमी मिस सोफिया के मोटर के नीचे दब गया, तो यह एक आकस्मिक घटना थी। सोफिया ने जान-बूझकर तो उस पर मोटर को चला नहीं दिया। ऐसी दशा में जनता का उस भांति उत्तेजित हो जाना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि वह अधिकारियों को बलपूर्वक अपने वश में करना चाहती है। आप सोफिया के प्रति मेरे आचरण पर आक्षेप करके मुझ पर ही अन्याय नहीं कर रहे हैं, वरन् अपनी आत्मा को भी कलंकित कर रहे हैं।

इन्द्रदत्त—ये हजारों आदमी निरपराध क्यों मारे गए? क्या यह भी प्रजा का ही कसूर था?

विनय—यदि आपको अधिकारियों की कठिनाइयों का कुछ अनुभव होता, तो आप मुझसे कदापि यह प्रश्न न करते। इसके लिए आप क्षमा के पात्र हैं। साल-भर पहले जब अधिकारियों से मेरा कोई संबंध न था, कदाचित् मैं भी ऐसा ही समझता था। किंतु अब मुझे अनुभव हुआ है कि उन्हें अवसरों पर न्याय का पालन करने में कितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं। मैं यह स्वीकार नहीं करता कि अधिकार पाते ही मनुष्य का रूपांतर हो जाता है। मनुष्य स्वभावत: न्याय-प्रिय होता है। उसे किसी को बरबस कष्ट देने से आनंद नहीं मिलता, बल्कि उतना ही दु:ख और क्षोभ होता है, जितना किसी प्रजासेवक को। अंतर केवल इतना ही है कि प्रजा-सेवक किसी दूसरे पर दोषारोपण करके अपने को संतुष्ट कर लेता है, यहीं उसके कर्त्तव्य की इतिश्री हो जाती है, अधिकारियों को यह अवसर प्राप्त नहीं होता। वे आप अपने आचरण की सफाई नहीं पेश कर सकते। आपको खबर नहीं कि हुक्काम ने अपराधियों को खोज निकालने में कितनी दिक्कतें उठाईं। प्रजा अपराधियों को छिपा लेती थी, और राजनीति के किसी सिद्धांत का उस पर कोई असर न होता था। अतएव अपराधियों के साथ निरपराधियों का फंस जाना संभव ही था। फिर आपको मालूम नहीं है कि इस विद्रोह ने रियासत को कितने महान संकट में डाल दिया है। अंगेरजी सरकार को संदेह है कि दरबार ने ही यह सारा षड्यंत्र रचा था। अब दरबार का कर्त्तव्य है कि वह अपने को इस आक्षेप से मुक्त करे, और जब तक मिस सोफिया का सुराग नहीं मिल जाता, रियासत की स्थिति अत्यंत चिंतामय है। भारतीय होने के नाते मेरा धर्म है कि रियासत के मुख पर से इस कालिमा को मिटा दूं, चाहे इसके लिए मुझे कितना ही अपमान, कितना ही लांछन, कितना ही कटु वचन क्यों न सहना पड़े, चाहे मेरे प्राण ही क्यों न चले जाएं। जाति-सेवक की अवस्था कोई स्थायी रूप नहीं रखती, परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहता है। कल मैं रियासत का जानी दुश्मन था, आज उसका अनन्य भक्त हूं और इसके लिए मुझे लेश-मात्र भी लज्जा नहीं।

इन्द्रदत्त—ईश्वर ने आपको तर्क-बुद्धि दी है और उससे आप दिन को रात सिद्ध कर सकते हैं, किंतु आपकी कोई उक्ति प्रजा के दिल से इस ख्याल को नहीं दूर कर सकती कि आपने उसके साथ दगा की, और इस विश्वासघात की जो यंत्रणा आपको सोफिया के हाथों मिलेगी, उससे आपकी आंखें खुल जाएंगी।

विनय ने इस भांति लपककर इन्द्रदत्त का हाथ पकड़ लिया, मानो वह भागा जा रहा हो, और बोले–तुम्हें सोफिया का पता मालूम है?

इन्द्रदत्त–नहीं।

विनय–झूठ बोलते हो।

इन्द्रदत्त–हो सकता है।

विनय–तुमको बताना पड़ेगा।

इन्द्रदत्त–आपको अब मुझसे यह पूछने का अधिकार नहीं रहा। आपका या दरबार का मतलब पूरा करने के लिए मैं दूसरों की जान संकट में नहीं डालना चाहता। आपने एक बार विश्वासघात किया है और फिर कर सकते हैं।

नायकराम–बता देंगे, आप क्यों इतने घबराए जाते हैं। इतना तो बता ही दो भैया इन्द्रदत्त, कि मेम साहब कुसल से हैं न?

इन्द्रदत्त–हां, बहुत कुशल से हैं, और प्रसन्न हैं। कम-से-कम विनयसिंह के लिए कभी विकल नहीं होतीं। सच पूछो, तो उन्हें अब इनके नाम से घृणा हो गई है।

विनय–इन्द्रदत्त, हम और तुम बचपन के मित्र हैं। तुम्हें जरूरत पड़े, तो मैं अपने प्राण तक दे दूं, पर तुम इतनी जरा-सी बात बतलाने से इंकार कर रहे हो। यही दोस्ती है?

इन्द्रदत्त–दोस्ती के पीछे दूसरों की जान क्यों विपत्ति में डालूं?

विनय–मैं माता के चरणों की कसम खाकर कहता हूं, मैं इसे गुप्त रखूंगा। मैं केवल एक बार सोफिया से मिलना चाहता हूं।

इन्द्रदत–काठ की हांड़ी बार-बार नहीं चढ़ती।

विनय–इन्द्र, मैं जीवन-पर्यंत तुम्हारा उपकार मानूंगा।

इन्द्रदत्त–जी नहीं, बिल्ली बख़्शे, मुरगा बांड़ा ही अच्छा।

विनय–मुझसे जो कसम चाहे ले लो।

इन्द्रदत्त–जिस बात के बतलाने का मुझे अधिकार नहीं, उसे बताने के लिए आप मुझसे व्यर्थ आग्रह कर रहे हैं।

विनय–तुम पाषाण-हृदय हो।

इन्द्रदत्त–मैं उससे भी कठोर हूं। मुझे जितना चाहिए, कोस लीजिए, पर सोफिया के विषय में मुझसे कुछ न पूछिए।

नायकराम–हां भैया, बस यही टेक चली जाए। मरदों का यही काम है। दो टूक कह दिया कि जानते हैं, लेकिन बतलायंगे नहीं, चाहे किसी को भला लगे या बुरा।

इन्द्रदत्त–अब तो कलई खुल गई न? क्यों कुंअर साहब महाराज, अब तो बढ़-बढ़कर बातें न करोगे?

विनय–इन्द्रदत्त, जले पर नमक न छिड़को। जो बात पूछता हूं, बतला दो, नहीं तो मेरी जान को रोना पड़ेगा। तुम्हारी जितनी खुशामद कर रहा हूं, उतनी आज तक किसी की नहीं की थी, पर तुम्हारे ऊपर जरा भी असर नहीं होता।

इन्द्रदत्त–मैं एक बार कह चुका कि मुझे जिस बात के बतलाने का अधिकार नहीं, वह किसी तरह न बताऊंगा। बस, इस विषय में तुम्हारा आग्रह करना व्यर्थ है। यह लो, अपनी राह जाता हूं। तुम्हें जहां जाना हो, जाओ।

नायकराम–सेठजी, भागो मत, मिस साहब का पता बताये बिना न जाने पाओगे।

इन्द्रदत्त–क्या जबरदस्ती पूछोगे?

नायकराम–हां, जबरदस्ती पूछूंगा। बाम्हन होकर तुमसे भिच्छा मांग रहा हूं और तुम इंकार करते हो, इसी पर धर्मात्मा, सेवक, चाकर बनते हो। यह समझ लो, बाम्हन भीख लिए बिना द्वार से नहीं जाता, नहीं पाता, तो धरना देकर बैठ जाता है, और फिर ले ही कर उठता है।

इन्द्रदत्त–मुझसे ये पंडई चालें न चलो, समझे। ऐसे भीख देने वाले कोई और होंगे।

नायकराम–क्यों बाप-दादों का नाम डुबाते हो भैया? कहता हूं, यह भीख दिए बिना अब तुम्हारा गला नहीं छूट सकता।

यह कहते हुए नायकराम चट जमीन पर बैठ गए, इन्द्रदत्त के दोनों पैर पकड़ लिए, उन पर अपना सिर रख दिया और बोले–अब तुम्हारा जो धरम हो, वह करो। मैं मूरख हूं, गंवार हूं, पर बाम्हन हूं। तुम सामरथी पुरुख हो। जैसा उचित समझो, करो।

इन्द्रदत्त अब भी न पसीजे, अपने पैरों को छुड़ाकर चले जाने की चेष्टा की, पर उनके मुख से स्पष्ट विदित हो रहा था कि इस समय बड़े असमंजस में पड़े हुए हैं, और इस दीनता की उपेक्षा करते हुए अत्यंत लज्जित हैं। वह बलिष्ठ पुरुष थे, स्वयंसेवकों में कोई उनका-सा दीर्घकाय युवक न था। नायकराम अभी कमजोर थे। निकट था कि इन्द्रदत्त अपने पैरों को छुड़ाकर निकल जाएं कि नायकराम ने विनय से कहा–भैया, खड़े क्या देखते हो? पकड़ लो इनके पांव, देखूं कैसे नहीं बताते।

विनयसिंह कोई स्वार्थ सिद्ध करने के लिए भी किसी की खुशामद करना अनुचित समझते थे, पांव पर गिरने की बात ही क्या। किसी संत-महात्मा के सामने दीन भाव प्रकट करने से उन्हें संकोच न था, अगर उससे हार्दिक श्रद्धा हो। केवल अपना काम निकालने के लिए उन्होंने सिर झुकाना सीखा ही न था। पर जब उन्होंने नायकराम को इन्द्रदत्त के पैरों पर गिरते देखा, तो आत्मसम्मान के लिए कोई स्थान न रहा। सोचा, जब मेरी खातिर नायकराम ब्राह्मण होकर यह अपमान सहन कर रहा है, तो मेरा दूर खड़े शान की लेना मुनासिब नहीं। यद्यपि एक क्षण पहले इन्द्रदत्त से उन्होंने अविनय-पूर्ण बातें की थीं और उनकी चिरौरी करते हुए लज्जा आती थीं, पर सोफी का समाचार भी इसके सिवा अन्य किसी उपाय से मिलता हुआ नहीं नजर आता था। उन्होंने आत्मसम्मान को भी सोफी पर समर्पण कर दिया। मेरे पास यही एक चीज थी, जिसे मैंने अभी तक तेरे हाथ में न दिया था। आज वह भी तेरे हवाले करता हूं। आत्मा अब भी सिर न झुकाना चाहती थी, पर कमर झुक गई। एक पल में उनके हाथ इन्द्रदत्त के पैरों के पास जा पहुंचे। इन्द्रदत्त ने तुरंत पैर खींच लिए, और विनय को उठाने की चेष्टा करते हुए बोले–विनय, यह क्या अनर्थ करते हो, हैं, हैं।

विनय की दशा उस सेवक की-सी थी, जिसे उसके स्वामी ने थूककर चाटने का दंड दिया हो। अपनी अधोगति पर रोना आ गया।

नायकराम ने इन्द्रदत्त से कहा–भैया, मुझे भिच्छुक समझकर दुत्कार सकते थे, लेकिन अब कहो।

इन्द्रदत्त संकोच में पड़कर बोले–विनय, क्यों मुझे इतना लज्जित कर रहे हो। मैं वचन दे चुका हूं कि किसी से यह भेद न बताऊंगा।

नायकराम–तुमसे कोई जबरदस्ती तो नहीं कर रहा है। जो अपना धरम समझो, वह करो, तुम आप बुद्धिमान हो।

इन्द्रदत्त ने खिन्न होकर कहा–जबरदस्ती नहीं तो और क्या है। गरज बावली होती है, पर आज मालूम हुआ कि वह अंधी भी होती है। विनय, व्यर्थ ही अपनी आत्मा पर यह अन्याय कर रहे हो। भले आदमी, क्या आत्मगौरव भी घोलकर पी गए? तुम्हें उचित था कि प्राण देकर भी आत्मा की रक्षा करते। अब तुम्हें ज्ञात हुआ होगा कि स्वार्थ-कामना मनुष्य को कितना पतित कर देती है। मैं जानता हूं, एक वर्ष पहले सारा संसार मिलकर भी तुम्हारा सिर न झुका सकता था, आज तुम्हारा यह नैतिक पतन हो रहा है। अब उठो, मुझे पाप में न डुबाओ।

विनय को इतना क्रोध आया कि इसके पैरों को खींच लूं, और छाती पर चढ़ बैठूं। दुष्ट इस दशा में भी डंक मारने से बाज नहीं आता। पर यह विचार करके कि अब तो जो कुछ होना था, हो चुका, ग्लानि-भाव से बोले–इन्द्रदत्त, तुम मुझे जितना पामर समझते हो, उतना नहीं हूं; पर सोफी के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूं। मेरा आत्मसम्मान, मेरी बुद्धि, मेरा पौरुष, मेरा धर्म, सब कुछ प्रेम के हवन-कुंड में स्वाहा हो गया। अगर तुम्हें अब भी मुझ पर दया न आए, तो मेरी कमर से पिस्तौल निकालकर एक निशाने से काम तमाम कर दो।

यह कहते-कहते विनय की आंखों में आंसू भर आए। इन्द्रदत्त ने उन्हें उठाकर कंठ से लगा लिया, और करुण भाव से बोले–विनय, क्षमा करो, यद्यपि तुमने जाति का अहित किया है, पर मैं जानता हूं कि तुमने वही किया, जो कदाचित् उस स्थिति में मैं या कोई अन्य प्राणी भी करता। मुझे तुम्हारा तिरस्कार करने का अधिकार नहीं है। तुमने अगर प्रेम के लिए आत्म-मर्यादा को तिलांजलि दे दी, तो मैं भी मैत्री और सौजन्य के लिए अपने वचन से विमुख हो जाऊंगा। जो तुम चाहते हो, वह मैं बता दूंगा। पर इससे तुम्हें कोई लाभ न होगा, क्योंकि मिस सोफिया की दृष्टि में तुम गिर गए हो, उसे अब तुम्हारे नाम से घृणा होती है। उससे मिलकर तुम्हें दु:ख होगा।

नायकराम–भैया, तुम अपनी-सी कर दो, मिस साहब को मनाना-जनाना इनका काम है। आसिक लोग बड़े चलते-पुरजे होते हैं, छंटे हुए सोहदे, देखने ही को सीधे होते हैं। मासूक को चुटकी बजाते अपना कर लेते हैं। जरा आंखों में पानी भरकर देखा, और मासूक पानी हुआ।

इन्द्रदत्त–मिस सोफिया मुझे कभी क्षमा न करेंगी, लेकिन अब उनका-सा हृदय कहां से लाऊं। हां, एक बात बतला दो। इसका उत्तर पाए बिना मैं कुछ न बता सकूंगा।

विनय–पूछो।

इन्द्रदत्त–तुम्हें वहां अकेले जाना पड़ेगा। वचन दो कि खुफिया पुलिस का कोई आदमी तुम्हारे साथ न होगा।

विनय–इससे तुम निश्चिंत रहो।

इन्द्रदत्त–अगर तुम पुलिस के साथ गए, तो सोफिया की लाश के सिवा और कुछ न पाओगे।

विनय–मैं ऐसी मूर्खता करूंगा ही क्यों!

इन्द्रदत्त–यह समझ लो कि मैं सोफी का पता बताकर उन लोगों के प्राण तुम्हारे हाथों में रखे देता हूं, जिनकी खोज में तुमने दाना-पानी हराम कर रखा है।

नायकराम–भैया, चाहे अपनी जान निकल जाए, उन पर कोई रेप न आने पाएगा। लेकिन यह भी बता दो कि वहां हम लोगों की जान का जोखम तो नहीं है?

इन्द्रदत्त—(विनय से) अगर वे लोग तुमसे बैर साधना चाहते, तो अब तक तुम लोग जीते न रहते। रियासत की समस्त शक्ति भी तुम्हारी रक्षा न कर सकती। उन लोगों को तुम्हारी एक-एक बात की खबर रहती है। यह समझ लो कि तुम्हारी जान उनकी मुट्ठी में है। इतने प्रजाद्रोह के बाद अगर तुम अभी जिंदा हो, तो यह मिस सोफिया की कृपा है। अगर मिस सोफिया की तुमसे मिलने की इच्छा होती, तो इससे जयादा आसान कोई काम न था, लेकिन उनकी तो यह हालत है कि तुम्हारे नाम ही से चिढ़ती हैं। अगर अब भी उनसे मिलने की अभिलाषा हो तो मेरे साथ आओ।

विनयसिंह को अपनी विचार-परिवर्तक शक्ति पर विश्वास था। इसकी उन्हें लेशमात्र भी शंका न थी कि सोफी मुझसे बातचीत न करेगी। हां, खेद इस बात का था कि मैंने सोफी ही के लिए अधिकारियों को जो सहायता दी, उसका यह परिणाम हुआ। काश, मुझे पहले ही मालूम हो जाता कि सोफी मेरी नीति को पसंद नहीं करती, वह मित्रों के हाथ में है, और सुखी है, तो मैं यह अनीति करता ही क्यों? मुझे प्रजा से कोई बैर तो था नहीं। सोफी पर भी इसकी कुछ-न-कुछ जिम्मेदारी है। वह मेरी मनोवृत्तियों को जानती थी। क्या वह एक पत्र भेजकर मुझे अपनी स्थिति की सूचना न दे सकती थी? जब उसने ऐसा नहीं किया, तो उसे अब मुझ पर त्यौरियां चढ़ाने का क्या अधिकार है?

यह सोचते वह इन्द्रदत्त के पीछे-पीछे चलने लगे। भूख-प्यास हवा हो गई।

तीस

चलते-चलते संध्या हो गई। पहाड़ों की संध्या मैदानों की रातों से कहीं भयानक होती है। तीनों आदती चले जाते थे, किंतु अभी ठिकाने का पता न था। पहाड़ियों के साये लंबे हो गए। सूर्य डूबने से पहले ही दिन डूब गया। रास्ता न सुझाई देता था। दोनों आदमी बार-बार इंद्रदत्त से पूछते, अब कितनी दूर है, पर यही जवाब मिलता कि चले जाओ, अब पहुंचे जाते हैं। यहां तक कि विनयसिंह ने एक बार झुंझलाकर कहा—इन्द्रदत्त, अगर तुम हमारे खून के प्यासे हो, तो साफ-साफ क्यों नहीं कहते? इस भांति कुढ़ा-कुढ़ाकर क्यों मारते हो। इन्द्रदत्त ने इसका भी वही जवाब दिया कि चले आओ, अब दूर नहीं है; हां, जरा सतर्क रहना, रास्ता दुर्गम है।

विनय को अब बार-बार पछतावा हो रहा था कि इन्द्रदत्त के साथ क्यों आया, क्यों न पहले उसके हाथों सोफिया को एक पत्र भेज दिया। पत्र का उत्तर मिलने पर जब सोफिया की लिपि पहचान लेता, तो निश्चिंत होकर इधर आता। सोफी इतनी वज्र-हृदया तो है नहीं कि पत्र का उत्तर ही न देती। यह उतावली करने में मुझसे बड़ी भूल हुई। इन्द्रदत्त की नीयत अच्छी नहीं मालूम होती। इन शंकाओं से उसका मार्ग और कठिन हो रहा था। लोग ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, रास्ता बीहड़ और विषम होता जाता था। कभी टीलों पर चढ़ना पड़ता, और कभी इतना नीचे उतरना पड़ता कि मालूम होता, रसातल को चले जा रहे हैं। कभी दाएं-बाएं गहरे खड्डों के बीच में एक पतली-सी पगडंडी मिल जाती। आंखें बिल्कुल काम न देती थीं, केवल अटकल का सहारा था, जो वास्तव में अंतर्दृष्टि है। विनय पिस्तौल चढ़ाए हुए थे, मन में निश्चय कर लिया था कि जरा भी कोई शंका हुई, तो पहला वार इन्द्रदत्त पर करूंगा।

सहसा इन्द्रदत्त रुक गए, और बोले–लीजिए, आ गए। बस, आप लोग यहीं ठहरिए, मैं जाकर उन लोगों को सूचना दे दूं।

विनय ने चकित होकर पूछा–यहां घर तो कोई नजर नहीं आता, बस सामने एक वृक्ष है।

इन्द्रदत्त–राज्यद्रोहियों के लिए ऐसे ही गुप्त स्थानों की जरूरत होती है, जहां यमराज के दूत भी न पहुंच सकें।

विनय–भई, यों अकेले छोड़कर मत जाओ। क्यों न यहीं से आवाज दो? या चलो, मैं भी चलता हूं।

इन्द्रदत्त–यहां से तो शायद शंख की ध्वनि भी न पहुंचे, और दूसरों को ले चलने का मुझे अधिकार नहीं, क्योंकि घर मेरा नहीं है, और दूसरों के घर में मैं आपको क्योंकर ले जा सकता हूं? इन गरीबों के पास यहां कोई सेना या दुर्ग नहीं, केवल मार्ग की दुर्गमता ही उनकी रक्षा करती है। मुझे देर न लगेगी।

यह कहकर वह वेग से चला और कई पग चलकर उसी वृक्ष के नीचे अदृश्य हो गया। विनयसिंह कुछ देर तक तो संशय में पड़े हुए उसकी राह देखते रहे, फिर नायकराम से बोले–इस धूर्त ने तो बुरा फंसाया। यहां इस निर्जन स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया कि बिना मौत ही मर जाएं। अभी तक लौटकर नहीं आया।

नायकराम–तुम्हें क्या चिंता, आसिक लोग तो जान हथेली पर लिए ही रहते हैं, मरे तो हम कि सूखे ही पर रहे।

विनय–मैं इसकी नीयत को ताड़ गया था।

नायकराम–तो फिर क्यों बिना कान-पूंछ हिलाए चले आए? अपने साथ मुझे भी डुबाया। क्या इस्क में अकिल घनचक्कर हो जाती है?

विनय–आध घंटे तो हुए, अभी तक किसी का पता ही नहीं। यहां से भागना भी चाहें, तो कहां जाएं। इसने जरूर दगा की। जिंदगी का यहीं तक साथ था।

नायकराम–आसिक होकर मरने से डरते हो। मरना तो एक दिन है ही, आज ही सही। डर क्या ! जब ओखली में सिर दिया, तो मूसलों का क्या गम। मारे, उसका जितना जी चाहे।

विनय–कहीं सचमुच सोफिया आ जाए !

नायकराम–फिर क्या कहने, लपककर टांग लेना, मजा तो जब आए कि तुम हाय-हाय करके रोने लगो, और वह आंचल से तुम्हारे आंसू पोंछे।

विनय–भई देखना, मैं उसे देखकर रो पड़ूं, तो हंसना मत। उसे देखते ही दौड़ूंगा और ऐसे जोर से पकड़ूंगा कि छुड़ा न सके।

नायकराम–यह मेरा अंगोछा ले लो, चट उसके पैर बांध देना।

विनय–तुम हंसी उड़ा रहे हो, और मेरा हृदय धड़क रहा है कि न-जाने क्या होने वाला है। आहा ! मैं समझ गया ! मैं इधर से एक बार गया हूं। हम जसवन्तनगर के आस-पास कहीं हैं। इन्द्रदत्त हमको भ्रम में डालने के लिए इतना चक्कर देकर लाया है।

नायकराम–जसवन्तनगर यही हो, तो हमें क्या। हम यहां चिल्लाएं, तो कौन सुनेगा !

विनय–क्या सचमुच इसने धोखा दिया क्या? मेरा तो जी चाहता है कि यहां से किसी ओर को चल दूं। अगर सोफिया ने कठोर बातें कहनी शुरू कीं, तो मेरा दिल फट जायगा। जिसके

हित के लिए इतने अधर्म और अकर्म किए, उसकी निर्दयता कैसे सही जायगी? ऐसी ही बातों से संसार से जी खट्टा हो जाता है। जिसके लिए चोर बने, वही पुकारे चोर।

नायकराम–स्त्रियों का यही हाल है।

विनय–हां, जो सुना करता था, वह आंखों के आगे आया।

नायकराम–मैं यह अंगोछा बिछाए देता हूं, पत्थर ठंडा हो गया है, आराम से लेटो। मिस साहब आएं, तो हरि इच्छा, नहीं तो तड़के यहां से चल देंगे। कहीं-न-कहीं राह मिल ही जाएगी। मैं यह पिस्तौल लिये बैठा हूं, कोई खटका हुआ, तो देखी जायगी। मेरा तो अब यहां से जी भर गया, न जाने वह कौन दिन होगा कि फिर घर के दरसन होंगे।

विनय–मेरा तो घर से नाता ही टूट गया। सोफिया के साथ जाऊंगा, तो घुसने ही न पाऊंगा, सोफिया न मिली तो जाऊंगा ही नहीं। यहीं धूनी रमाऊंगा।

नायकराम–भैया, तुम्हारे सामने बोलना छोटा मुंह बड़ी बात है, पर साथ रहते-रहते ढीठ हो गया हूं। मुझे तो मिस साहब ऐसी कोई बड़ी अपसरा नहीं मालूम होतीं। यहां तो भगवान् की दया से नित्य ही ऐसी-ऐसी सूरतें देखने में आती हैं कि मिस साहब उनके सामने पानी भरें। मुखड़ा देखो, तो जैसे हीरा दप-दप कर रहा हो। और, इनके लिए तुम राज-पाट त्यागने पर तैयार हो। सच कहता हूं, रानीजी को बड़ा कलक होगा। मां का दिल दुखाना महापाप है। कुछ हालचाल भी तो नहीं मिला, न जाने चल बसीं कि हैं।

विनय–पंडाजी, मैं सोफी के रूप का उपासक नहीं हूं। मैं स्वयं नहीं जानता कि उसमें वह कौन-सी बात है, जो मुझे इतना आकर्षित कर रही है। मैं उसके लिए राज-पाट तो क्या, अपना धर्म तक त्याग सकता हूं। अगर सारा संसार मेरे अधीन होता, तो भी मैं उसे सोफिया की भेंट कर देता। अगर आज मुझे मालूम हो जाए कि सोफी इस संसार में नहीं है, तो तुम मुझे जीता न पाओगे। उससे मिलने की आशा ही मेरा जीवन-सूत्र है। उसके चरणों पर प्राण दे देना ही मेरे जीवन की प्रथम और अंतिम अभिलाषा है।

वृक्ष की ओर लालटेन का प्रकाश दिखाई दिया। दो आदमी आ रहे थे। एक के हाथ में लालटेन थी, दूसरे के हाथ में जाजम। विनय ने दोनों को पहचान लिया। एक तो वीरपालसिंह था, दूसरा उसका साथी। वीरपाल ने समीप आकर लालटेन रख दी, और विनय को प्रणाम करके दोनों चुपचाप जाजम बिछाने लगे। जाजम बिछाकर वीरपाल बोला–आइए, बैठ जाइए, आपको बड़ा कष्ट हुआ। मिस साहब अभी आ रही हैं।

आशा और निराशा की द्विविध तरंगों में विनय का दिल बैठा जाता था। उन्हें लज्जा आ रही थी कि जिन मनुष्यों को मैंने अधिकारियों की मदद से मिटा देने का प्रयत्न किया, अंत में उन्हीं के द्वार का मुझे भिक्षुक बनाना पड़ा। मजा तो जब आता कि यह सब हथकड़ियां पहने हुए मेरे सामने आते, और मैं इन्हें क्षमा प्रदान करता। वास्तव में विजय का सेहरा इन्हीं के सिर रहा। आह ! जिन्हें मैं पामर और हत्यारा समझता था, वही आज मेरे भाग्य के विधाता बने हुए हैं।

जब वे जाजम पर जा बैठे, और नायकराम सजग होकर टहलने लगे, तो वीरपाल ने कहा–कुंअर साहब, मेरा परम सौभाग्य है कि आज आपको अपने सामने अदालत की कुर्सी पर बैठे न देखकर अपने द्वार पर बैठे देख रहा हूं, नहीं तो उन अभागों के साथ मेरी गरदन पर भी छुरी चल जाती, जिन्होंने मार खाकर रोने के सिवा और कोई अपराध नहीं किया था।

विनय–वीरपालसिंह, उन दुष्कृत्यों की चर्चा करके मुझे लज्जित न करो। अगर उनका कुछ प्रायश्चित हो सकता है, तो मैं करने को तैयार हूं।

वीरपाल–सच्चे दिल से?

विनय–हां, अगर मिस सोफिया की तुमने रक्षा की है।

वीरपाल–उन्हें तो आप अभी प्रत्यक्ष देख लेंगे।

विनय–तो मैं भी तुम्हें मुआफ कराने का यथासाध्य उद्योग करूंगा।

वीरपाल–आप जानते हैं, मैं मिस साहब को क्यों लाया? इसीलिए कि हम उन्हीं की सेवा और सिफारिश से अपनी रक्षा की आशा करते थे। हमको आशा थी कि मिस साहब के द्वारा हम प्राणदान पाने में सफल हो जायंगे, पर दुर्भाग्यवश उन्हें हमारे अनुमान से कहीं ज्यादा गहरा घाव लगा था और उसके भरने में पूरे नौ महीने लग गए। अपने मुंह से क्या कहें, पर जितनी श्रद्धा से हमने उनकी सेवा की, वह हमीं जानते हैं। यही समझ लीजिए कि मुझे छ: महीने तक घर से निकलने का मौका न मिला। इतने दिनों तक जसवन्तनगर में नर-हत्या और न्याय-हत्या का बाजार गर्म था, रोज-रोज की खबरे सुनता था, और माथा ठोंककर रह जाता था। मिस साहब को अपनी रक्षा के लिए लाया था। उनके पीछे सारा इलाका तबाह हो गया। खैर, जो कुछ परमात्मा को मंजूर था, हुआ। अब मेरी आपसे यही विनय है कि हमारे ऊपर दया-दृष्टि होनी चाहिए। आपको परमात्मा ने प्रभुता दी है आपके एक इशारे से हम लोगों की जान बच जाएगी।

विनय ने मुक्त हृदय से कहा–मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि दरबार तुम्हारे अपराध क्षमा कर देगा। हां, तुमको भी यह वचन देना पड़ेगा कि अब से तुम रियासत के प्रति द्रोह-भाव न रखोगे।

वीरपाल–मैं इसकी प्रतिज्ञा लेने को तैयार हूं। कुंअर साहब, सच तो यह है कि आपने हमें बिल्कुल अशक्त कर दिया। यह आप ही का दमन है, जिसने हमें इतना कमजोर बना दिया। जिन-जिन आदमियों पर हमें भरोसा था, वे सब दगा दे गए। शत्रु-मित्र में भेद करना कठिन हो गया। प्रत्येक प्राणी अपनी प्राण-रक्षा के लिए, अपने निर्दोष सिद्ध करने के लिए, अथवा अधिकारियों का विश्वासपात्र बनने के लिए हमारी आस्तीन का सांप हो गया। वही मैं हूं, जिसने जसवन्तनगर के सरकारी खजाना लूटा था, और वही मैं हूं, कि आज चूहे की भांति बिल में छिपा हूं। प्रतिक्षण यही डर रहता है कि कहीं पुलिस न आ जाय।

विनय–मिस सोफिया कभी मुझे याद करती हैं?

वीरपाल–मिस साहब को आपसे जितना प्रेम है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। (अपने साथी की ओर संकेत करके) इनके आघात से आपको मिस साहब ही ने बचाया था, और मिस साहब ही की खातिर से आप इतने दिनों हमारे हाथों से बचे रहे। हमें आपसे भेंट करने का अवसर न था, पर हमारी बंदूकों को था। मिस साहब आपको याद करके घंटों रोया करती थीं, पर अब उनका हृदय आपसे ऐसा फट गया है कि आपका कोई नाम भी लेता है, तो चिढ़ जाती हैं। वह तो कहती हैं, मुझे ईश्वर ने अपना धर्म परित्याग करने का यह दंड दिया है। पर मेरा विचार है कि अब भी आपके प्रति उनके हृदय में असीम श्रद्धा है। प्रेम की भांति मान भी घनिष्ठता ही से उत्पन्न होता है। आप उनसे निराश न हूजिएगा। आप राजा हैं, आपके लिए सब कुछ क्षम्य है। धर्म का बंधन तो छोटे आदमियों के लिए है।

सहसा उसी वृक्ष की ओर दूसरी लालटेन का प्रकाश दिखाई दिया। एक वृद्धा लोटा लिए

आ रही थी। उसके पीछे सोफी थी—हाथ में एक थाली लिए हुए, जिसमें एक घी का दीपक जल रहा था। वही सोफिया थी, वही तेजस्वी सौंदर्य की प्रतिमा, कांति की मंदता ने उसे एक अवर्णनीय, शुभ्र, आध्यात्मिक लावण्य प्रदान कर दिया था, मानो उसकी सृष्टि पंचभूत के नहीं, निर्मल ज्योत्स्ना के परमाणुओं से हुई हो।

उसे देखते ही विनय के हृदय में ऐसा उद्‌गार उठा कि दौड़कर उसके चरणों में गिर पड़ूं। सौंदर्य-प्रतिमा मोहित नहीं करती, वशीभूत कर लेती है।

बुढ़िया ने लोटा रख दिया, और लालटेन लिए चली गई। वीरपालसिंह और उसका साथी भी वहां से हटकर दूर चले गए। नायकराम भी उन्हीं के साथ हो लिए। अब वह निश्शंक हो गए थे।

विनय ने कहा—सोफिया, आज मेरे जीवन का Lucky day (लक्की डे) है, मैं तो निराश हो चला था।

सोफिया—मेरा परम सौभाग्य था कि आपके दर्शन हुए। आपके दर्शन बदे थे, नहीं तो मरने में कोई कसर न रह गई थी।

विनय की आंशकाएं निर्मूल होती हुई नजर आईं। इन्द्रदत्त और वीरपाल ने मुझे अनायास ही चिंता में डाल दिया था। सम्मिलन प्रेम को सजग कर देता है। मनोल्लास के प्रवाह में उनकी सरल बुद्धि किसी पुष्पमाला के समान बहती चली जाती थी। इस वाक्य में कितना तीव्र व्यंग्य था, यह उनकी समझ में न आया।

सोफी ने थाल में से दही और चावल निकालकर विनय के मस्तक पर तिलक लगाया, और मुस्कराकर बोली—अब आरती करूंगी।

विनय ने गद्‌गद होकर कहा—प्रिये, यह क्या ढकोसला कर रही हो? तुम भी इन रस्मों के जाल में फंस गईं !

सोफी—वाह ! आपका आदर-सत्कार कैसे न करूं ! आप मेरे मुक्तिदाता हैं, मुझे इन डाकुओं और बधिकों के पंजे से छुड़ा रहे हैं, आपका स्वागत कैसे न करूं ! मेरे कारण आपने रियासत में अंधेर मचा दिया, सैकड़ों निरपराधिकयों का खून कर दिया, कितने ही घरों के चिराग गुल कर दिए, माताओं को पुत्र-शोक का मजा चखा दिया, रमणियों को वैधव्य की गोद में बैठा दिया, और सबसे बड़ी बात यह कि अपनी आत्मा का, अपने सिद्धांतों का, अपने जीवन के आदर्श का मटियामेट कर दिया। इतनी कीर्ति-लाभ करने के बाद भी आपका अभिवादन न करूं? मैं इतनी कृतघ्न नहीं हूं। अब आप एक तुच्छ सेवक नहीं, रियासत के दाहिने हाथ हैं। राजे-महराजे आपका सम्मान करते हैं, मैं आपका सम्मान न करूं?

अब विनय की आंखें खुलीं। व्यंग्य का एक-एक शब्द शर के समान लगा। बोले—सोफी, मैं तुम्हारा वही भक्त और जाति का वही पुराना सेवक हूं। तुम इस भांति मेरा उपहास करके मुझ पर अन्याय कर रही हो। संभव है, भ्रम-वश मेरी जात से दूसरो का अहित हुआ हो, पर मेरा उद्देश्य केवल तुम्हारी रक्षा करना था।

सोफिया ने उत्तेजित होकर कहा—बिल्कुल झूठ है, मिथ्या है, कलंक है, यह सब मेरी खातिर नहीं, अपनी खातिर था। इसका उद्देश्य केवल उस नीच निरंकुशता को तृप्त करना था, जो तुम्हारे अंत:स्थल में सेवा का रूप धारण किए बैठी हुई है। मैंने तुम्हारी प्रभुताशीलता पर अपने को समर्पित नहीं किया था, बल्कि तुम्हारी सेवा, सहानुभूति और देशानुराग पर। मैंने

इसलिए तुम्हें अपना उपास्य देव बनाया था कि तुम्हारे जीवन का आदर्श उच्च था, तुममें प्रभु मसीह की दया, भगवान् बुद्ध का विराग और लूथर की सत्यनिष्ठा की झलक थी। क्या दुखियों को सताने वाले, निर्दय, स्वार्थप्रिय अधिकारियों की संसार में कमी थी? तुम्हारे आदर्श ने मुझे तुम्हारे कदमों पर झुकाया। जब मैं प्राणिमात्र को स्वार्थ में लिप्त देखते-देखते संसार से घृणा करने लगी थी, तुम्हारी निस्वार्थता ने मुझे अनुरक्त कर लिया। लेकिन कालगति के एक ही पलटे ने तुम्हारा यथार्थ रूप प्रकट कर दिया। मेरा पता लगाने के लिए तुमने धर्माधर्म का विचार भी त्याग दिया। जो प्राणी अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए इतना अत्याचार कर सकता है, वह घोर-से-घोर से कुकर्म भी कर सकता है। तुम अपने आदर्श से उसी समय पतित हुए, जब तुमने उस विद्रोह को शांत करने के लिए शांत उपायों की अपेक्षा क्रूरता और दमन से काम लेना उपयुक्त समझा। शैतान ने पहली बार तुम पर वार किया, और फिर तुम फिर न संभले, गिरते ही चले गए। ठोकरों-पर-ठोकरें खाते-खाते अब तुम्हारा इतना पतन हो गया है कि तुममें सज्जनता विवेक और पुरुषार्थ का लेशांश भी शेष नहीं रहा। तुम्हें देखकर मेरा मस्तक आप-ही-आप झुक जाता था। मेरे प्रेम का आधार भक्ति थी। वह आधार जड़ से हिल गया। तुमने मेरे जीवन का सर्वनाश कर दिया। आह ! मुझे जितना मुगालता हुआ है, उतना किसी को कभी न हुआ होगा ! जिस प्राणी के लिए अपने माता-पिता से विमुख हुई, देश छोड़ा, जिस पर अपने चिरसंचित सिद्धांतों का बलिदान किया, जिसके लिए अपमान, अपवाद, अपकार, सब कुछ शिरोधार्य किया, वह इतना स्वार्थभक्त, इतना आत्मसेवी, इतना विवेकहीन निकला ! कोई दूसरी स्त्री तुम्हारे इन गुणों पर मुग्ध हो सकती है, प्रेम के विषय में नारियां आदर्श और त्याग का विचार नहीं करतीं। लेकिन मेरी शिक्षा, मेरी संगति, मेरा अध्ययन और सबसे अधिक मेरे मन की प्रवृत्ति ने मुझे इन गुणों का आदर करना नहीं सिखाया। अगर आज तुम रियासत के हाथों पीड़ित, दलित, अपमानित और दंडित होकर मेरे सम्मुख आते, तो मैं तुम्हारे चरणों की रज मस्तक पर लगाती, और अपना धन्य भाग समझती। किंतु मुझे उस वस्तु से घृणा है, जिसे लोग सफल जीवन कहते हैं। सफल जीवन पर्याय है खुशामद, अत्याचार और धूर्तता का। मैं जिन महात्माओं को संसार में सर्वश्रेष्ठ समझती हूं, उनके जीवन सफल न थे। सांसारिक दृष्टि से वे लोग साधारण मनुष्यों से भी गए-गुजारे थे, जिन्होंने कष्ट झेले, निर्वासित हुए, पत्थरों से मारे गए, कोसे गए और अंत में संसार ने उन्हें बिना आंसू की एक बूंद गिराए विदा कर दिया, सुरधाम को भेज दिया। तुम पुलिस का एक दल लेकर मुझे खोजने निकले हो। इसका उद्देश्य यही तो है कि प्रजा पर आतंक जमाया जाए। मेरी दृष्टि में जिस राज्य का अस्तित्व अन्याय पर हो, उसका निशान जितनी जल्द मिट जाये, उतना ही अच्छा। खैर, अब इन बातों से क्या लाभ ! तुम्हें अपना सम्मान और प्रभुत्व मुबारक रहे, मैं इसी दशा में संतुष्ट हूं। जिनके साथ हूं, वे सहृदय हैं, वे किसी दीन प्राणी की रक्षा प्राणपण से कर सकते हैं, उनमें तुमसे कहीं अधिक सेवा और उपकार के भाव मौजूद हैं।

विनय खिन्न होकर बोले—सोफी, ईश्वर के लिए मुझ पर इतना अन्याय मत करो। अगर मैं प्रभुता और मान-सम्मान का इच्छुक होता, तो मेरी दशा ऐसी हीन न होती। मैंने वही किया, जो मुझे न्यायसंगत जान पड़ा। मैं यथासाध्य एक क्षण के लिए भी न्याय-विमुख नहीं हुआ।

सोफी—यही तो शोक है कि तुम्हें वह बात क्यों न्यायसंगत जान पड़ी, जो न्याय-विरुद्ध

थी ! इससे तुम्हारी आंतरिक प्रवृत्ति का पता मिलता है। तुम स्वभावतः स्वार्थसेवी हो। मनुष्यों को सभी पदार्थ एक-से प्रिय नहीं होते। कितने ही ऐसे प्राणी हैं, जो कीर्ति के लिए धन को ठीकरों की भांति लुटाते हैं। वह अपने को स्वार्थरहित नहीं कह सकते। स्वार्थपरता ऊंचे आदर्श से मेल नहीं खाती। जिसकी मनोवृत्ति इतनी दुर्बल है, उसकी कम-से-कम मैं इज्जत नहीं कर सकती, और इज्जत के बिना प्रेम कलंक का टीका बन जाता है।

विनय उन मनुष्यों में न थे, जिन पर प्रतिकूल दशाओं का कोई असर नहीं होता। उन पर निराशा का शीघ्र ही आधिपत्य हो जाता था। विकल होकर बोले–सोफी, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मैंने जो कुछ किया है, न्याय समझकर या परिस्थिति से विवश होकर ही किया है।

सोफी–संसार में जितने अकर्म होते हैं, वह भ्रम या परिस्थिति ही के कारण होते हैं। कोई तीसरा कारण मैंने आज तक नहीं सुना।

विनय–सोफी, अगर मैं जानता कि मेरी ओर से तुम्हारा हृदय इतना कठोर हो गया है, तो तुम्हें मुख न दिखाता।

सोफी–मैं तुम्हारे दर्शनों के लिए बहुत उत्सुक न थी।

विनय–यह मुझे नहीं मालूम था। अगर मान लो, मैंने अन्याय ही किए, तो क्या मुझे तुम्हारे हाथों यह दंड मिलना चाहिए? इसका भय मुझे माताजी से था, तुमसे न था। आह सोफी ! इस प्रेम का यों अंत न होने दो, यों मेरे जीवन का सर्वनाश न करो। उसी प्रेम के नाते, जो कभी तुम्हें मुझसे था, मुझ पर यह अन्याय न करो। यह वेदना मेरे लिए असह्य है। तुम्हें विश्वास न आयगा, क्योंकि इस समय तुम्हारा हृदय मेरी तरफ से पत्थर हो गया है, पर यह आघात मेरे लिए प्राणघातक होगा, और अगर मृत्यु के पश्चात् भी कोई जीवन है, तो उस जीवन में भी यही वेदना मेरे हृदय को तड़पाती रहेगी। सोफी, मैं मौत से नहीं डरता, भाले की नोक को हृदय में ले सकता हूं, पर यह तुम्हारी यह निष्ठुर दृष्टि, तुम्हारा यह निर्दय आघात मेरे अंतस्तल को छेदे डालता है। उससे तो यह कहीं अच्छा है कि तुम मुझे विष दे दो। मैं उस प्याले को आंखें बंद करके यों पी जाऊंगा, जैसे कोई भक्त चरणामृत पी जाता है। मुझे यह संतोष हो जायगा कि ये प्राण, जो तुम्हें भेंट कर चुका था, तुम्हारे काम आ गए।

ये प्रेम-उच्छृंखल शब्द कदाचित् और किसी समय विनय के मुंह से न निकलते, कदाचित् इन्हें फिर स्मरण करके उन्हें आश्चर्य होता कि ये वाक्य कैसे मेरे मुख से निकले, पर इस समय भावोद्गार ने उन्हें प्रगल्भ बना दिया था। सोफी उदासीन भाव से सिर झुकाए खड़ी रही। तब बेदर्दी से बोली–विनय, मैं तुमसे याचना करती हूं, ऐसी बातें न करो। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति अभी जो कुछ आदर रह गया है, उसे भी पैरों से न कुचलो, क्योंकि मैं जानती हूं, ये शब्द तुम्हारे अंतःकरण से नहीं निकल रहे हैं। इसके विरुद्ध तुम इस समय सोच रहे हो कि क्योंकि इससे इस तिरस्कार का बदला लूं। मुझे आश्चर्य होगा, अगर सूर्योदय के समय यह स्थान खुफिया पुलिस के सिपाहियों का विहार-स्थल न बन जाए, यहां के रहने वाले हिरासत में न ले लिए जाएं, और उन्हें प्राणदंड न दे दिया जाए। मेरे लिए तुमने कोई और ही युक्ति सोच रखी होगी। उसके रूप की मैं कल्पना नहीं कर सकती। लेकिन इतना कह सकती हूं, कि अगर मेरी निंदा करके, मेरे आचरण पर आक्षेप करके तुम मुझे शारीरिक या मानसिक पीड़ा पहुंचा सकोगे, तो तुम्हें उसमें लेश-मात्र भी विलंब न होगा। संभव है, मेरा यह अनुमान अन्याय-पूर्ण हो, पर

मैं इसे दिल से नहीं निकाल सकती। कोई ऐसी विभूति, कोई ऐसी सिद्धि नहीं है, जो तुम्हें फिर मेरा सम्मान-पात्र बना सके। जिसके हाथ रक्त से रंगे हुए हों, उसके लिए मेरे हृदय में स्थान नहीं है। यह न समझो कि मुझे इन बातों से दु:ख नहीं हो रहा है। एक-एक शब्द मेरे हृदय को आरे की भांति चीरे डालता है। यह भी न समझो कि तुम्हें हृदय से निकालकर मैं फिर किसी दूसरी मूर्ति को यहां मर्यादित करूंगी, हालांकि तुम्हारे मन में यह दुष्कल्पना हो, तो मुझे कौतूहल न होगा। नहीं, यही मेरी प्रथम और अंतिम प्रेम-प्रदक्षिणा है। अब यह जीवन किसी दूसरे ही मार्ग का अवलंबन करेगा। कौन जाने, ईश्वर ने मुझे कर्त्तव्य-पथ से विचलित होने का तुम्हारे हाथों यह दंड दिलाया हो। तुम्हारे लिए मैंने वह सब कुछ किया, जो न करना चाहिए था। छल, कपट, कौशल, माया, त्रिया-चरित्र, एक से भी बाज नहीं आई; क्योंकि मेरी सरल दृष्टि में तुम एक दिव्य, निष्काम, पवित्र आत्मा थे। तुम अंदाजा नहीं कर सकते कि मि० क्लार्क के साथ आने में मुझे कितनी आत्मवेदना सहनी पड़ी। मैंने समझा था, तुम मेरे जीवन-मार्ग के दीपक बनोगे, मेरे जीवन को सुधारोगे, संवारोगे, सफल बनाओगे। आखिर मुझमें कौन-सा ऐसा गुण है, जिस पर तुम रीझे हुए हो? अगर सौंदर्य के इच्छुक हो, तो संसार में सौंदर्य का अभाव नहीं, तुम्हें मुझसे कहीं रूपवती कन्या मिल सकती है। अगर मेरे वचन कर्ण-मधुर लगते हैं, तो तुम्हें मुझसे कहीं मृदुभाषिणी स्त्रियां मिल सकती हैं। निराश होने की कोई बात नहीं। जल्द या देर में तुम्हें अपनी रुचि और स्वभाव के अनुसार कोई रमणी मिल जायगी, जिसके साथ तुम अपने ऐश्वर्य और वैभव का आनंद उठा सकोगे; क्योंकि सेवक बनने की क्षमता तुममें नहीं है, और न हो सकती है। मेरा चित्त तो भूलकर भी प्रणय की ओर आंख उठाकर न देखेगा। मैं अब फिर यह रोग न पालूंगी तुमने मुझे संसार से विरक्त कर दिया, मेरी भोग-तृष्णा को शांत कर दिया। धार्मिक ग्रंथों के निरंतर पढ़ने से जो मार्ग न मिला, वह नैराश्य ने दिखा दिया। इसके लिए मैं तुम्हारी अनुगृहीत हूं। धर्म और सत्य की सेवा करके कौन-सा रत्न पाया? अधर्म! अब अधर्म की सेवा करूंगी। जानते हो, क्यों करूंगी? उन पापियों से खून का बदला लूंगी, जिन्होंने प्रजा की गरदन पर छुरियां चलाई हैं। एक-एक को जहन्नुम की आग में झोंक दूंगी, तब मेरी आत्मा तृप्त होगी। जो लोग आज निरपराधियों की हत्या करके सम्मान और कीर्ति का उपभोग कर रहे हैं, उनको नरक के अग्निकुंड में जलाऊंगी, और जब तक अत्याचारियों के इस जत्थे का मूलोच्छेद न कर दूंगी, चैन न लूंगी, चाहे इस अनुष्ठान में मुझे प्राणों ही से क्यों न हाथ धोना पड़े, चाहे रियासत में विप्लव ही क्यों न हो जाए, चाहे रियासत का निशान ही क्यों न मिट जाए? मेरी दिल में यह दुरुत्साह तुम्हीं ने पैदा किया है, और इसका इल्जाम तुम्हारी ही गरदन पर है। ईसा की क्षमा और दया, बुद्ध के धैर्य और संयम, कृष्ण के प्रेम और वैराग्य की अमर कीर्तियां भी अब इस रक्त-पिपासा को नहीं बुझा सकतीं। बरसों का मनन और चिंतन, विचार और स्वाध्याय तुम्हारे कुकर्मों की बदौलत निष्फल हो गया। बस, अब जाओ। मैं जो कुछ करूंगी, वह तुमसे कह चुकी। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह तुम भी करो। मैं आज से क्रांतिकारियों के दल में जाती हूं, तुम खुफिया पुलिस की शरण लो। जाओ, ईश्वर फिर हमें न मिलाए।

यह कहकर सोफी ने थाल उठा लिया, और चली गई, जैसे आशा हृदय से निकल जाए। विनय ने एक ठंडी सांस ली, जो आर्त्त-ध्वनि से कम करुण न थी, और जमीन पर बैठ गए, जैसे कोई हतभागिनी विधवा पति की मृत देह उठ जाने के बाद आह भरकर बैठ जाए।

तीनों आदमी, जो दूर खड़े थे, आकर विनय के पास खड़े हो गए। नायकराम न

कहा—भैया, आज तो खूब-खूब बातें हुईं। तुमने भी पकड़ पाया, तो इतने दिनों की कसर निकाल ली। आ गई पंजे में न? वह तो मैंने पहले ही कहा, था, आसिक लोग बड़े चकमेबाज होते हैं। पहले तो खूब आरती उतारी, दही-चावल का टीका लगाया। मेम हैं तो क्या, हम लोगों का तौर-तरीका जानती हैं। कब चलना तय हुआ? जल्दी चलो, मेरा भी घर बसे।

विनय के नेत्र सजल थे, पर इस वाक्य पर हंस पड़े। बोले—बस, अब देर नहीं है, घर चिट्ठी लिख दो, तैयारी करें।

नायकराम—भैया, आनंद तो जब आए कि दोनों बरातें साथ ही निकलें।

विनय—हां जी, साथ ही निकलेंगी, पहले तुम्हारी, पीछे मेरी।

नायकराम—ठाकुर, अब सवारी-सिकारी का इंतजाम करो, जिसमें हम लोग कल सबेरे ठंडे-ठंडे निकल जायं। यहां पालकी तो मिल जायगी न?

वीरपाल—सब इंतजाम हो जाएगा। अब भोजन करके आराम कीजिए, देर हो गई।

विनय—यहां से जसवन्तनगर कितनी दूर है?

वीरपाल—यह पूछकर क्या कीजिएगा?

विनय—मुझे इसी वक्त वहां पहुंचना चाहिए।

वीरपाल—(सशंक होकर) आप दिन-भर के थके-मांदे हैं, रास्ता खराब है।

विनय—कोई चिंता नहीं, चला जाऊंगा।

नायकराम—भैया, मिस साहब भी रहेंगी न, रात को कैसे चलोगे?

विनय—तुम तो सनक गए हो, मिस साहब मेरी कौन होती हैं, और मेरे साथ क्यों जाने लगीं। अगर आज मैं मर जाऊं, तो शायद उनसे ज्यादा खुशी और किसी को न होगी। तुम्हें थकावट आ गई हो, तो आराम करो, पर मैं यहां एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। मुझे कांटों की राह भी यहां की सेज से अधिक सुखकर होगी। आप लोगों में से कोई रास्ता दिखा सकता है?

वीरपाल—चलने को तो मैं खुद हाजिर हूं, पर रास्ता अत्यंत भयानक है।

विनय—कोई मुजायका नहीं। मुझे इसी वक्त पहुंचा दीजिए और हो सके, तो आंखों पर पट्टी बांध दीजिए ! मुझे अब अपने ऊपर जरा भी विश्वास नहीं रहा।

वीरपाल—भोजन तो कर लीजिए। इतना आतिथ्य तो स्वीकार कीजिए।

विनय—अगर मेरा आतिथ्य करना है, तो मुझे गोली मार दीजिए। इससे बढ़कर आप मेरा आतिथ्य नहीं कर सकते। मैंने आपका जितना अपकार किया है, यदि आपने उसका शतांश भी मेरे साथ किया होता, तो मुझे किसी प्रेरणा की जरूरत न पड़ती। मैं पिशाच हूं, हत्यारा हूं, पृथ्वी मेरे बोझ से जितनी जल्द हल्की हो जाए, उतना ही अच्छा।

नायकराम—मालूम होता है, मिस साहब सचमुच फिरंट हो गईं। मगर मैं कहे देता हूं—दो-ही-चार दिन में तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ती फिरेंगी। आसिक की हाय बुरी होती है।

वीरपाल—कुंअर साहब मेरा इतना कहना मानिए, अभी न जाइए। मुझे डर है कि कहीं मिस साहब आपके यों चले जाने से घबरा न जाएं। मैं वादा करता हूं कि कल सूर्योदय तक आप जसवन्तनगर पहुंच जायंगे। इस वक्त कुछ भोजन कर लीजिए।

विनय—मेरे लिए अब यहां का पानी भी हराम है। अगर तुम्हें नहीं चलना है, तो न सही, मुझे तुमसे इतनी खातिरदारी कराने का अधिकार नहीं है। मैं अकेला ही चला जाऊंगा।

वीरपाल विवश होकर साथ चलने को तैयार हुआ। नायकराम का भूख के मारे बुरा हाल

था, पर क्या करते, विनय को चलते देखकर उठ खड़े हुए। तीनों आदमी रवाना हुए।

आध घंटे तक तीनों आदमी चुपचाप चलते रहे। विनय को सोफिया की और सब बातें तो याद न थी, पर उनकी नीयत पर उसने जो आक्षेप किये थे, और उनके विषय में जो द्वेष-पूर्ण भविष्यवाणी की थी, उसका एक-एक शब्द उनके कानों में गूंज रहा था। सोफिया मुझे इतना नीच समझती है। परिस्थिति पर जरा भी विचार नहीं करना चाहती, मन की दशा के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ती।

सहसा उन्होंने वीरपाल से पूछा—तुम्हारे विचार में मैं आवेश में आकर यह अन्याय कर बैठा, या जैसा मिस सोफिया कहती हैं, मैं स्वभाव ही का नीच हूं?

वीरपाल—कुंअर साहब, मिस सोफिया की इस वक्त की बातों का जरा भी बुरा न मानिए। जैसे आप आवेश में आकर विवेकहीन हो गए थे, वैसे ही वह भी आवेश में अनर्गल बातें कर गई होंगी। जब आपने सेवा-धर्म और परोपकार के लिए राज्य को त्याग दिया, तो किसका मुंह है, जो आपको स्वार्थी कह सके।

विनय—न जाने इसने इतने कटु शब्द कहां सीख लिए! आदमी भिखारी को भी जवाब दे, तो नम्रता से। इसने तो मुझे इस तरह दुत्कारा, मानो कोई कुत्ता हो।

नायकराम—किसी अंगरेज को ब्याहेगी और क्या। यहां काले आदमियों के पास क्या धरा है? मुरगी का अंडा कहां मिलेगा?

विनय—तुम निरे मूर्ख हो, तुम्हें मुर्गी के अंडे ही की पड़ी है।

नायकराम—एक बात कहता था। तुम्हारे साथ वह आजादी कहां? ले जाकर रानी बना दोगे, परदे में बैठा दोगे। घोड़ी पर सवार कराकर सिकार खेलने तो न जाओगे! कमर में हाथ डालकर टमटम पर तो न बैठाओगे! टोपी उतारकर हुरे-हुरे तो न करोगे!

विनय—फिर वही उपज। अरे पोंगा महाराज, सोफिया को तुमने क्या समझा है? हमारे धर्म का जितना ज्ञान उसे है, उतना किसी पंडित को भी न होगा। वह हमारे यहां की देवियों से किसी भांति कम नहीं है। उसे तो किसी राजा के घर जन्म लेना चाहिए था, न-जाने ईसाई खानदान में क्यों पैदा हुई। मुझसे मुंह फेरकर वह अब किसी को मुंह नहीं लगा सकती। इसका मुझे उतना ही विश्वास है, जितना अपनी आंखों का। वह अब विवाह ही न करेगी।

वीरपाल—आप बहुत सत्य कहते हैं, वास्तव में देवी हैं।

विनय—सच कहना, कभी मेरी चर्चा भी करती थीं।

वीरपाल—इसके सिवा तो उन्हें और कोई बात ही न थी। घाव गहरा था, अचेत पड़ी रहती थीं, पर चौंक-चौंककर, आपको पुकारने लगतीं। कहतीं—विनय को बुला दो, उन्हें देखकर तब मरूंगी। कभी-कभी तो दिन-के-दिन आप ही की रट लगाती रह जाती थीं। जब किसी को देखतीं, यही पूछतीं, विनय आए? कहां हैं? मेरे सामने लाना। उनके चरण कहां हैं? हम लोग उनकी बेकसी देख-देखकर रोने लगते थे। जर्राह ने ऐसी चीर-फाड़ की कि आपसे क्या बताऊं, याद करके रोएं खड़े हो जाते हैं! उसे देखते ही सूख जाती थीं, लेकिन ज्योंही कह देते कि आज विनयसिंह के आने की खबर है, बस तुरंत दिल मजबूत करके मरहम-पट्टी करा लेती थीं। जर्राह से कहतीं—जल्दी करो, वह आने वाले हैं, ऐसा न हो, जायं। यह समझिए, आपके नाम ने उन्हें मृत्यु के मुख से निकाल लिया...

विनय अवरुद्ध कंठ से बोले—बस करो, अब और कुछ न कहो। यह करुण कथा नहीं सुनी जाती। कलेजा मुंह को आता है।

वीरपाल—एक दिन उसी दशा में आपके पास जाने को तैयार हो गईं। रो-रोकर कहने लगीं, उन्हें लोगों ने गिरफ्तार कर लिया है, मैं उन्हें छुड़ाने जा रही हूं...

विनय—रहने दो, वीरपाल, नहीं तो हृदय फट जायगा, उसके टुकड़े हो जायंगे। मुझे जरा कहीं लिटा दो, न-जाने क्यों जी डूबा जाता है। आह ! मुझ-जैसे अभागे का यही उचित दंड है। देवतों से मेरा सुख न देखा गया। इनसे किसी का कभी कल्याण नहीं हुआ। चले चलो, न लेटूंगा। मुझे इसी वक्त जसवन्तनगर पहुंचना है।

फिर लोग चुपचाप चलने लगे। विनय इतने वेग से चल रहे थे, मानो दौड़ रहे हैं। पीड़ित अंगों में एक विलक्षण स्फूर्ति आ गई थी। बेचारे नायकराम दौड़ते-दौड़ते हांप रहे थे। रात के दो बजे होंगे। वायु में प्राणप्रद शीतलता का समावेश हो गया था। निशा-सुंदरी प्रौढ़ा हो गई थी, जब उसकी चंचल छवि माधुर्य का रूप ग्रहण कर लेती है, जब उसकी मायाविनी शक्ति दुर्निवार्य हो जाती है। नायकराम तो कई बार ऊंघकर गिरते-गिरते बच गए। विनय को भी विश्राम करने की इच्छा होने लगी कि वीरपाल बोले—लीजिए, जसवन्तनगर पहुंच गए।

विनय—अरे, इतनी जल्द ! अभी तो चलते हुए कुल चार घंटे हुए होंगे।

वीरपाल—आज, सीधे आए।

विनय—आओ, आज यहां के अधिकारियों से तुम्हारी सफाई करा दूं।

वीरपाल—आपसे सफाई हो गई, तो अब किसी का गम नहीं। अब मुझे यहीं से रुखसत कीजिए।

विनय—एक दिन के लिए तो मेरे मेहमान हो जाइए।

वीरपाल—ईश्वर ने चाहा, तो जल्द ही आपके दर्शन होंगे। मुझ पर कृपा रखिएगा।

विनय—सोफिया से मेरा कुछ जिक्र न कीजिएगा।

वीरपाल—जब तक वह खुद न छेड़ेंगी, मैं न करूंगा।

विनय—मेरी यह घबराहट, यह बावलापन, इसका जिक्र भूलकर भी न कीजिएगा। मैं न-जाने क्या-क्या बक रहा हूं, अपनी भाषा और विचार, एक पर भी मुझे विश्वास नहीं रहा, संज्ञाहीन-सा हो रहा हूं। आप उनसे इतना ही कह दीजिएगा कि मुझसे कुछ नहीं बोले। इसका वचन दीजिए।

वीरपाल—अगर वह मुझसे कुछ न पूछेंगी, तो मैं कुछ न कहूंगा।

विनय—मेरी खातिर से इतना जरूर कह दीजिएगा कि आपका जरा भी जिक्र न करते थे।

वीरपाल—झूठ तो न बोलूंगा।

विनय—जैसी तुम्हारी इच्छा।

इकतीस

भैरो के घर से लौटकर सूरदास अपनी झोंपड़ी में आकर सोचने लगा, क्या करूं कि सहसा दयागिरि आ गए, और बोले—सूरदास, आज तो लोग तुम्हारे ऊपर बहुत गरम हो रहे हैं। कहते

हैं, इसे घमंड हो गया है। तुम इस मायाजाल में क्या पड़े हो, क्यों नहीं मेरे साथ कहीं तीर्थ-जात्रा करने चलते?

सूरदास—यही तो मैं भी सोच रहा हूं। चलो, तो मैं भी निकल पड़ूं।

दयागिरि—हां, चलो, तब तक मैं मंदिर का कुछ ठिकाना कर लूं। यहां कोई ऐसा नहीं है, जो मेरे पीछे यहां दिया-बत्ती तक कर दे, भोग-भाग लगाना तो दूर रहा।

सूरदास—तुम्हें मंदिर से कभी छुट्टी न मिलेगी।

दयागिरि—भाई, यह भी नहीं होता कि मंदिर को यों ही निराधार छोड़कर चला जाऊं, फिर-न-जाने कब लौटूं, तब तक तो यहां घास जम जायगी।

सूरदास—तो जब तुम आप ही अभी इस माया में फंसे हुए हो, तो मेरा उद्धार क्या करोगे?

दयागिरि—नहीं, अब जल्दी ही चलूंगा। जरा पूजा के लिए फूल लेता आऊं।

दयागिरि चले गए, तो सूरदास फिर सोच में पड़ा—संसार की भी क्या लीला है कि होम करते हाथ जलते हैं। मैं तो नेकी करने गया था, उसका यह फल मिला। मुहल्ले वालों को बिस्वास आ गया। बुरी बातों पर लोगों को कितनी जल्द बिस्वास आ जाता है ! मगर नेकी-बदी कभी छिपी नहीं रहती। कभी-न-कभी तो असली बात मालूम ही हो जाएगी। हार-जीत तो जिंदगानी के साथ लगी हुई है, कभी जीतूंगा, तो कभी हारूंगा, इसकी चिंता ही क्या? अभी कल बड़े-बड़ों से जीता था, आज जीत में भी हार गया। यह तो खेल में हुआ ही करता है। अब बिचारी सुभागी कहां जायगी? मुहल्ले वाले तो अब उसे यहां रहने न देंगे, और रहेगी किसके आधार पर? कोई अपना तो हो। मैके में भी कोई नहीं है। जवान औरत, अकेली कहीं रह भी नहीं सकती। जमाना ऐसा खराब आया हुआ है, उसकी आबरू कैसे बचेगी? भैरो को कितना चाहती है ! समझती थी कि मैं उसे मारने गया हूं, उसे सावधान रहने के लिए कितना जोर दे रही थी ! वह तो इतना प्रेम करती है, और भैरो का कभी मुंह ही सीधा नहीं होता। अभागिनी है और क्या। कोई दूसरा आदमी होता, तो उसके चरन धो-धोकर पीता, पर भैरो को जब देखो, उस पर तलवार ही खींचे रहता है। मैं कहीं चला गया, तो उसका कोई पुछत्तर भी न रहेगा। मुहल्ले के लोग उसकी छीछालेदर होते देखेंगे, और हंसेंगे। कहीं-न-कहीं डूब मरेगी, कहां तक संतोष करेगी। इस आंखों वाले अंधे भैरो को तनिक भी ख्याल नहीं है कि मैं इसे निकाल दूंगा, तो कहां जायगी। कल को मुसलमान या किरिसतान हो जायगी, तो सारे शहर में हलचल पड़ जायगी, पर अभी उसके आदमी को कोई समझाने वाला नहीं है। कहीं भरती वालों के हाथ पड़ गई, तो पता भी न लगेगा कि कहां गई। सभी लोग जानकर अनजान बनते हैं।

वह यही सोचता-विचारता सड़क की ओर चला था कि सुभागी आकर बोली—सूरे, मैं कहां रहूंगी?

सूरदास ने कृत्रिम उदासीनता से कहा—मैं क्या जानूं, कहां रहेगी ! अभी तू ही तो भैरो से कह रही थी कि लाठी लेकर जाओ। तू क्या यह समझती थी कि मैं भैरो को मारने गया हूं?

सुभागी—हां सूरे, झूठ क्यों बोलूं, मुझे यह खटका तो हुआ था।

सूरदास—जब तेरी समझ में मैं इतना बुरा हूं, तो फिर मुझसे क्यों बोलती है? अगर वह लाठी लेकर आता, और मुझे मारने लगता, तो तू तमासा देखती और हंसती, क्यों? तुझसे तो भैरो ही अच्छा कि लाठी-लबेद लेकर नहीं आया। जब तूने मुझसे बैर ठान रखा है, तो मैं तुझसे क्यों न बैर ठानूं?

सुभागी—(रोती हुई) सूरे, तुम भी ऐसा कहोगे, तो यहां कौन है, जिसकी आड़ में मैं छिन-भर भी बैठूंगी। उसने अभी मारा है, मगर पेट नहीं भरा, कह रहा है कि जाकर पुलिस में लिखाए देता हूं। मेरे कपड़े-लत्ते सब बाहर फेंक दिए हैं। इस झोंपड़ी के सिवा अब मुझे और कहीं सरन नहीं है।

सूरदास—मुझे भी अपने साथ मुहल्ले से निकलवाएगी क्या?

सुभागी—तुम जहां जाओगे, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

सूरदास—तब तो तू मुझे कहीं मुंह दिखाने के लायक न रखेगी। सब यही कहेंगे की अंधा उसे बहकाकर ले गया।

सुभागी—तुम तो बदनामी से बच जाओगे, लेकिन मेरी आबरू कैसे बचेगी? है कोई मुहल्ले में ऐसा, जो किसी की इज्जत-आबरू जाते देखे, तो उसकी बांह पकड़ ले? यहां तो एक टुकड़ा रोटी भी मांगूं, तो न मिले। तुम्हारे सिवा अब मेरा और कोई नहीं है। पहले मैं तुम्हें आदमी समझती थी, अब देवता समझती हूं। चाहो तो रहने दो, नहीं तो कहीं मुंह में कालिख लगाकर डूब मरूं।

सूरदास ने देर तक चिंता में मग्न रहने के बाद कहा—सुभागी, तू आप समझदार है, जैसा जी में आए, कर। मुझे तेरा खिलाना-पहनाना भारी नहीं है। अभी सहर में इतना मान है कि जिसके द्वार पर खड़ा हो जाऊंगा, वह नाहीं न करेगा। लेकिन मेरा मन कहता है कि तेरे यहां रहने से हमारा कल्यान न होगा। हम दोनों ही बदनाम हो जायंगे। मैं तुझे अपनी बहन समझता हूं, लेकिन अंधा संसार तो किसी की नियत नहीं देखता। अभी तूने देखा, लोग कैसी-कैसी बातें करते रहे? पहले भी गाली उठ चुकी है। जब तू खुल्लमखुल्ला मेरे घर में रहेगी, तब तो अनरथ ही हो जाएगा। लोग गरदन काटने पर उतारू हो जायेंगे। बता, क्या करूं?

सुभागी—जो चाहे करो, पर मैं तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊंगी।

सूरदास—यही तेरी मरजी है, तो यही सही। मैं तो सोच रहा था, कहीं चला जाऊं। न आंखों देखूंगा, न पीर होगी; लेकिन तेरी बिपत देखकर अब जाने की इच्छा नहीं होती। आ, पड़ी रह। जैसी कुछ सिर पर आएगी, देखी जाएगी। तुझे मंझधार में छोड़ देने से बदनाम होना अच्छा है।

यह कहकर सूरदास भीख मांगने चला गया। सुभागी झोपड़ी में आ बैठी। देखा, तो उस मुख्तसर घर की मुख्तसर गृहस्थी, इधर-उधर फैली पड़ी थी। कहीं लुटिया औंधी पड़ी थी, कहीं घड़े लुढ़के हुए थे। महीनों से अंदर सफाई न हुई थी, जामीन पर मनों धूल बैठी हुई थी, कुस के छप्पर में मकड़ियों ने जाले लगा लिए थे। एक चिड़िया का घोंसला भी बन गया था। सुभागी सारे दिन झोंपड़ी की सफाई करती रही। शाम को वही घर, जो 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' को चरितार्थ कर रहा था, साफ-सुथरा, लिपा-पुता नजार आता था कि उसे देखकर देवतों का रहने के लिए जी ललचाए। भैरो तो अपनी दुकान पर चला गया। सुभागी घर जाकर अपनी गठरी उठा लाई। सूरदास संध्या समय लौटा, तो सुभागी ने थोड़ा-सा चबेना उसे जलपान करने को दिया, लुटिया में पानी लाकर रख दिया, और उसे अंचल से हवा करने लगी। सूरदास को अपने जीवन में कभी यह सुख और शांति न नसीब हुई थी। गृहस्थी के दुर्लभ आनंद का उसे पहली बार अनुभव हुआ। दिन-भर सड़क के किनारे लू और लपट में जलने के बाद यह सुख उसे स्वर्गोपम जान पड़ा। एक क्षण के लिए उसके मन में एक नई इच्छा अंकुरित हो आई। सोचने लगा—मैं कितना अभागा हूं। काश, यह मेरी स्त्री होती, तो कितने आनंद से जीवन व्यतीत

होता! अब तो भैरो ने इसे घर से निकाल ही दिया, मैं रख लूं, तो इसमें कौन-सी बुराई है। इससे कहूं कैसे, न-जाने अपने दिल में क्या सोचे। मैं अंधा हूं, तो क्या आदमी नहीं हूं। बुरा तो न मानेगी। मुझसे इसे प्रेम न होता, तो मेरी इतनी सेवा क्यों करती?

मनुष्य-मात्र को, जीव-मात्र को, प्रेम की लालसा रहती है। भोग-लिप्सी प्राणियों में यह वासना का प्रकट रूप है, सरल हृदय, दीन प्राणियों में शांति-भोग का।

सुभागी ने सूरदास की पोटली खोली, तो उसमें गेहूं का आटा निकला, थोड़ा-सा चावल, कुछ चने और तीन आने पैसे। सुभागी बनिये के यहां से दाल लाई, और रोटियां बनाकर सूरदास को भोजन करने को बुलाया।

सूरदास–मिठुआ कहां है?

सुभागी–क्या जानूं, कहीं खेलता होगा। दिन में एक बार पानी पीने आया था, मुझे देखकर चला गया।

सूरदास–तुझसे सरमाता होगा। देख, मैं उसे बुलाए लाता हूं।

यह कहकर सूरदास बाहर जाकर मिठुआ को पुकारने लगा। मिठुआ और दिन जब जी चाहता था, घर में जाकर दाना निकाल लाता, भुनवाकर खाता, आज सारे दिन भूखों मरा, इस वक्त मंदिर में प्रसाद के लालच में बैठा हुआ था। आवाज सुनते ही दौड़ा। दोनों खाने बैठे। सुभागी ने सूरदास के सामने चावल और रोटियां रख दीं, और मिठआ के सामने सिर्फ चावल। आटा बहुत कम था, केवल दो रोटियां बन सकी थीं।

सूरदास ने कहा–मिट्ठू, और रोटी लोगे?

मिट्ठू–मुझे तो रोटी मिली ही नहीं।

सूरदास–तो मुझसे ले लो। मैं चावल ही खा लूंगा।

यह कहकर सूरदास ने दोनों रोटियां मिट्ठू को दे दीं। सुभागी क्रुद्ध होकर मिट्ठू से बोली–दिन-भर सांड़ की तरह फिरते हो, कहीं मजूरी क्यों नहीं करते? इसी चक्की-घर में काम करो, तो पांच-छः आने रोज मिलें।

सूरदास–अभी वह कौन काम करने लायक है। इसी उमिर में मजूरी करने लगेगा, तो कलेजा टूट जायगा।

सुभागी–मजूरों के लड़कों का कलेजा इतना नरम नहीं होता। सभी तो काम करने जाते हैं, किसी का कलेजा नहीं टूटता।

सूरदास–जब उसका जी चाहेगा, आप काम करेगा।

सुभागी–जिसे बिना हाथ-पैर हिलाए खाने को मिल जाए, उसकी बला कमा करने जाती है।

सूरदास–ऊंह, मुझे कौन किसी रीन-धन का सोच है। मांगकर लाता हूं, खाता हूं। जिस दिन पौरुख न चलेगा, उस दिन देखी जायगी, उसकी चिंता अभी से क्यों करूं?

सुभागी–मैं उसे काम पर भेजूंगी। देखूं, कैसे नहीं जाता। यह मुटमरदी है कि अंधा मांगे, और आंखों वाले मुसंडे बैठे खाएं। सुनते हो मिट्ठू, कल से काम करना पड़ेगा।

मिट्ठू–तेरे कहने से न जाऊंगा; दादा कहेंगे, तो जाऊंगा।

सुभागी–मूसल की तरह घूमना अच्छा लगता है? इतना नहीं सूझता कि अंधा आदमी तो मांगकर लाता है, और मैं चैन से खाता हूं। जनम-भर कुमार ही बने रहोगे?

मिट्ठू–तुझसे क्या मतलब, मेरा जी चाहेगा जाऊंगा, न जी चाहेगा न जाऊंगा।

इसी तरह दोनों में देर तक वाद-विवाद हुआ, यहां तक कि मिठुआ झल्लाकर चौके पर से उठ गया। सूरदास ने बहुत मनाया, पर वह खाने न बैठा। आखिर सूरदास भी आधा ही भोजन करके उठ गया।

जब वह लेटा, तो गृहस्थी का एक दूसरा चित्र उसके सामने था। यहां न वह शांति थी, न वह सुषमा, न वह मनोल्लास। पहले ही दिन यह कलह आरंभ हुआ, बिस्मिल्लाह ही गलत हुई, तो आगे कौन जाने क्या होगा। उसे सुभागी की यह कठोरता अनुचित प्रतीत होती थी। जब तक मैं कमाने को तैयार हूं, लड़के पर क्यों गृहस्थी का बोझ डालूं? जब मर जाऊंगा, तो उसके सिर पर जैसी पड़ेगी, वैसी झेलेगा।

वह अंकुर, वह नन्हीं-सी आकांक्षा, जो संध्या-समय उसके हृदय में उगी थी, इस ताप के झोंके से जल गई, अंकुर सूख गया।

सुभागी को नई चिंता सवार हुई–मिठुआ को काम पर कैसे लगाऊं? मैं कुछ उसकी लौंडी तो हूं नहीं कि उसकी थाली धोऊं, उसका खाना पकाऊं, और वह मटरगस करे। मुझे भी कोई बैठाकर न खिलाएगा। मैं खाऊं ही क्यों? जब सब काम करेंगे, तो यह क्यों छैला बना घूमेगा।

प्रातःकाल जब वह झोंपड़ी से घड़ा लेकर पानी भरने निकली, तो घीसू की मां ने देखकर छाती पर हाथ रख लिया, और बोली–क्यों री, आज रात तू यहीं रही थी क्या?

सुभागी ने कहा–हां, रही तो फिर !

जमुनी–अपना घर नहीं था।

सुभागी–अब लात खाने का बूता नहीं है।

जमुनी–तो तू दो-चार सिर कटाकर तब चैन लेगी? इस अंधे की भी मत मारी गई है कि जान-बूझकर सांप के मुंह में उंगली देता है। भैरो गला काट लेने वाले आदमी हैं। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, चली जा घर।

सुभागी–उस घर में तो अब पांव न रखूंगी, चाहे कोई मार ही डाले। सूरे में इतनी दया तो है कि डूबते हुए की बांह पकड़ ली, और दूसरा यहां कौन है?

जमुनी–जिस घर में कोई मेहरिया नहीं, वहां तेरा रहना अच्छा नहीं।

सुभागी–जानती हूं, पर किसके घर जाऊं? तुम्हारे घर आऊं, रहने दोगी? जो कुछ करने को कहोगी, करूंगी, गोबर पाथूंगी, भैंसों को घास-चारा दूंगी, पानी डालूंगी, तुम्हारा आटा पीसूंगी। रखोगी?

जमुनी–ना बाबा, यहां कौन बैठे-बिठाए रार मोल ले। अपना खिलाऊं भी, उस पर बद्दू भी बनूं।

सुभागी–रोज गाली-मार खाया करूं?

जमुनी–अपना मरद है, मारता ही है, तो क्या घर छोड़कर कोई निकल जाता है?

सुभागी–क्यों बहुत बढ़-बढ़कर बातें करती हो जमुना ! मिल गया है बैल, जिस कल चाहती हो, बैठाती हो। रात-दिन डंडा लिए सिर पर सवार रहता, तो देखती कि कैसे घर में रहती। अभी उस दिन दूध में पानी मिलाने के लिए मारने उठा था, तो चादर लेकर मैके भागी जाती थी। दूसरों को उपदेस करना सहज है। जब अपने सिर पड़ती है, तो आंखें खुलती हैं।

यह कहती हुई सुभागी कुएं पर पानी भरने चली गई। यहां भी उसने टीकाकारों को ऐसा

ही अक्खड़ जवाब दिया। पानी लाकर बर्तन धोए, चौका लगाया, और सूरदास को सड़क पर पहुंचाने चली गई। अब तक वह लाठी से टटोलता हुआ अकेले ही चला जाता था। लेकिन सुभागी से यह न देखा गया। अंधा आदमी, कहीं गिर पड़े तो। लड़के ही दिक करते हैं। मैं बैठी ही तो हूं। उससे फिर किसी ने कुछ न पूछा। यह स्थिर हो गया कि सूरदास ने उसे घर डाल लिया। अब व्यंग्य, निंदा, उपहास की गुंजाइश न थी। हां, सूरदास सबकी नजरों से गिर गया। लोग कहते–रुपये न लौटा देता, तो क्या करता। डरता होगा कि सुभागी एक दिन भैरो से कह ही देगी, मैं पहले ही से क्यों न चौकन्ना हो जाऊं। मगर सुभागी क्यों अपने घर से रुपये उड़ा ले गई? वाह ! इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है? भैरो उसे रुपये-पैसे नहीं देता, मालकिन तो बुढ़िया है। सोचा होगा, रुपये उड़ा लूं, मेरे पास कुछ पूंजी तो हो जायगी, अपने पास कहां से रखती, सूरे को भला आदमी समझकर उसके पास रख आई हो। या कौन जाने, दोनों में पहले ही से साठ-गांठ रही हो। सूरदास ने रुपये उठवा लिए हों, फिर लौटा आया हो कि इस तरह मेरा भरम बना रहेगा। अंधे पेट के बड़े गहरे होते हैं, इन्हें बड़ी दूर की सूझती है।

इस भांति कई दिनों तक गद्देबाजियां हुआ कीं।

परंतु लोगों में किसी विषय पर बहुत दिनों तक आलोचना करते रहने की आदत नहीं होती। न उन्हें इतना अवकाश होता है कि इन बातों में सिर खपाएं, न इतनी बुद्धि ही कि इन गुत्थियों को सुलझाएं। मनुष्य स्वभावत: क्रियाशील होते हैं, उनमें विवेचन-शक्ति कहां? सुभागी से बोलने-चालने, उसके साथ उठने-बैठने में किसी को आपत्ति न रही, न कोई उससे कुछ पूछता, न आवाजें कसता। हां, सूरदास की मान-प्रतिष्ठा गायब हो गई। पहले मुहल्ले-भर में उसकी धाक थी, लोगों का उसकी हैसियत से कहीं अधिक उस पर विश्वास था। उसका नाम अदब के साथ लिया जाता था। अब उसकी गणना भी सामान्य मनुष्यों में होने लगी, कोई विशेषता न रही।

किंतु भैरो के हृदय में सदैव यह कांटा खटका करता था। वह किसी भांति इस सजीव अपमान का बदला लेना चाहता था। दूकान पर बहुत कम जाता। अफसरों से शिकायत भी की गई कि यह ठेकेदार दुकान नहीं खोलता, ताड़ी-सेवियों को निराश होकर जाना पड़ता है। मादक-वस्तु-विभाग के कर्मचारियों ने भैरो को निकाल देने की धमकी भी दी, पर उसने कहा, मुझे दूकान का डर नहीं है, आप लोग जिसे चाहें रख लें। पर वहां कोई दूसरा पासी न मिला, और अफसरों ने एक दूकान टूट जाने के भय से कोई सख्ती करनी उचित न समझी।

धीरे-धीरे भैरो को सूरदास ही से नहीं, मुहल्ले-भर से अदावत हो गई। उसके विचार में मुहल्ले वालों का यही धर्म था कि मेरी हिमायत के लिए खड़े हो जाते, और सूरे को कोई ऐसा दंड देते कि वह आजीवन याद रखता–ऐसे मुहल्ले में कोई क्या रहे, जहां न्याय और अन्याय एक ही भाव बिकता है। कुकर्मियों से कोई बोलता ही नहीं। सूरदास अकड़ता हुआ चला जाता है। यह चुड़ैल आंखों में काजल लगाए फिरा करती है। कोई इन दोनों के मुंह में कालिख नहीं लगाता। ऐसे गांव में तो आग लगा देनी चाहिए। मगर किसी कारण उसकी क्रियात्मक शक्ति शिथिल पड़ गई थी। वह मार्ग में सुभागी को देख लेता, तो कतराकर निकल जाता। सूरदास को देखता, तो होंठ चबाकर रह जाता। वार करने की हिम्मत न होती। वह अब कभी मंदिर में भजन गाने न जाता, मेलों-तमाशों से भी उसे अरुचि हो गई, नशे का चस्का आप-ही-आप छूट गया। अपमान की तीव्र वेदना निरंतर होती रहती। उसने सोचा था, सुभागी मुंह में कालिख

लगाकर कहीं निकल जायगी, मेरे कलंक का दाग मिटा जायगा। मगर वह अभी तक वहां उसकी छाती पर मूंग ही नहीं दल रही थी, बल्कि उसी पुरुष के साथ विलास कर रही थी, जो उसका प्रतिद्वंद्वी था। सबसे बढ़कर दु:ख उसे इस बात का था कि मुहल्ले के लोग उन दोनों के साथ पहले ही का-सा व्यवहार करते थे, कोई उन्हें न रगेदता था, न लताड़ता था। उसे अपना अपमान सामने बैठा मुंह चिढ़ाता हुआ मालूम होता था। अब उसे गाली-गलौज से तस्कीन न हो सकती थी। वह इस फिक्र में था कि इन दोनों का काम तमाम कर दूं, इस तरह मारूं कि एड़ियां रगड़-रगड़ मरें, पानी की बूंद भी न मिले। लेकिन अकेला आदमी क्या कर सकता है। चारों ओर निगाह दौड़ाता, पर कहीं से सहायता मिलने की आशा न दिखाई देती। मुहल्ले में ऐसे जीवट का कोई आदमी न था। सोचने-सोचते उसे ख्याल आया कि अंधे ने चतारी के राजा साहब को बदनाम किया था। कारखाने वाले साहब को भी बदनाम करता फिरता था। इन्हीं लोगों से चलकर फरियाद करूं। अंधे से दिल में तो दोनों खार खाते ही होंगे, छोटे के मुंह लगना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझकर चुप रह गए होंगे। मैं जो सामने खड़ा हो जाऊंगा, तो मेरी आड़ से वे जरूर निशाना मारेंगे। बड़े आदमी हैं, वहां तक पहुंचना मुश्किल है, लेकिन जो कहीं मेरी पहुंच हो गई, और उन्होंने मेरी सुन ली, तो फिर इन बचा की ऐसी खबर लेंगे कि सारा अंधापन निकल जायगा। अंधेपन के सिवा यहां और रखा ही क्या था।

कई दिनों तक वह इसी हैस-बैस में पड़ा रहा कि उन लोगों के पास कैसे पहुंचूं। जाने की हिम्मत न पड़ती थी। कहीं उल्टे मुझी को मार बैठें, निकलवा दें तो और भी भद्द हो। आखिर एक दिन दिल मजबूत करके वह राजा साहब के मकान पर गया, और साईस के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया। साईस ने देखा, तो कर्कश कंठ से बोला—कौन हो। यहां क्या उचक्कों की तरह झांक रहे हो।

भैरो ने बड़ी दीनता से कहा—भैया, डाटो मत, गरीब-दु:खी आदमी हूं।

साईस—गरीब दुखियारे हो, तो किसी सेठ-साहूकार के घर जाते, यहां क्या रखा है !

भैरो—गरीब हूं, लेकिन भिखमंगा नहीं हूं। इज्जत-आबरू सभी की होती है। तुम्हारी ही बिरादरी में कोई किसी की बहू-बेटी लेकर निकल जाए, तो क्या उसे पंचाइत यों ही छोड़ देगी? कुछ-न-कुछ डंड तो देगी ही। पंचाइत न देगी, तो अदालत-कचहरी से तो कुछ होगा।

साईस जात का चमार था, जहां ऐसी दुर्घटनाएं आए-दिन होती रहती हैं, और बिरादरी को उनकी बदौलत नशा-पानी का सामान हाथ आता रहता है। उसके घर में नित्य यही चर्चा रहती थी, और इन बातों में उसे जितनी दिलचस्पी थी, उतनी और किसी बात से न हो सकती थी। बोला—आओ, बैठो, चिलम पियो, कौन भाई हो?

भैरो—पासी हूं, यहीं पांड़ेपुर में रहता हूं।

वह साईस के पास जा बैठा, और दोनों में सायं-सायं बातें होने लगीं, मानो वहां कोई कान लगाए उनकी बातें सुन रहा हो। भैरो ने अपना संपूर्ण वृत्तांत सुनाया और कमर से एक रुपया निकालकर साईस के हाथ में रखता हुआ बोला—भाई, कोई जुगुत निकालो कि राजा साहब के कानों में यह बात पड़ जाए। फिर तो मैं अपना सब हाल आप ही कह लूंगा। तुम्हारी दया से बोलने-चालने में ऐसा बुद्धू नहीं हूं, दरोगा से तो कभी डरा ही नहीं।

साईस को रौप्य मुद्रा के दर्शन हुए, तो मगन हो गया। आज सबेरे-सबेरे अच्छी बोहनी

हुई। बोला—मैं राजा साहब से तुम्हारी इत्तला कराए देता हूं। बुलाहट होगी, तो चले जाना। राजा साहब को घमंड तो छू ही नहीं गया। मगर देखना, बहुत देर न लगाना, नहीं तो मालिक चिढ़ जायंगे। बस, जो कुछ कहना हो, साफ-साफ कह डालना। बड़े आदमियों को बातचीत करने की फुरसत नहीं रहती। मेरी तरह थोड़े ही हैं कि दिन-भर बैठे गप्पें लड़ाया करें।

यह कहकर वह चला गया। राजा साहब इस वक्त बाल बनवा रहे थे, जो उनका नित्य का नियम था। साईस ने पहुंचकर सलाम किया।

राजा—क्या कहते हो? मेरे पास तलब के लिए मत आया करो।

साईस—नहीं हजूर, तलब के लिए नहीं आया था। वह जो सूरदास पांड़ेपुर में रहता है।

राजा—अच्छा, वह दुष्ट अंधा।

साईस—हां हजूर, वह एक औरत को निकाल ले गया है।

राजा—अच्छा ! उसे तो लोग कहते थे, बड़ा भला आदमी है। अब यह स्वांग रचने लगा !

साईस—हां हजूर, उसका आदमी फरियाद करने आया है। हुकुम हो, तो लाऊं।

राजा साहब ने सिर हिलाकर अनुमति दी, और एक क्षण में भैरो दबकता हुआ आकर खड़ा हो गया।

राजा—तुम्हारी औरत है?

भैरो—हां, हजूर, अभी कुछ दिन पहले तो मेरी ही थी !

राजा—पहले से कुछ आमद-रफ्त थी?

भैरो—होगी सरकार, मुझे मालूम नहीं।

राजा—लेकर कहां चला गया?

भैरो—कहीं गया नहीं सरकार, अपने घर में है।

राजा—बड़ा ढीठ है। गांव वाले कुछ नहीं बोलते?

भैरो—कोई नहीं बोलता हजूर।

राजा—औरत को मारते बहुत हो?

भैरो—सरकार, औरत से भूल-चूक होती है, तो कौन नहीं मारता?

राजा—बहुत मारते हो कि कम?

भैरो—हजूर, क्रोध में यह विचार कहां रहता है।

राजा—कैसी औरत है, सुंदर?

भैरो—हां, हजूर, देखने-सुनने में बुरी नहीं है।

राजा—समझ में नहीं आता, सुंदर स्त्री ने अंधे को क्यों पसंद किया। ऐसा तो नहीं हुआ कि तूने दाल में नमक ज्यादा हो जाने पर स्त्री को मारकर निकाल दिया हो, और अंधे ने रख लिया हो?

भैरो—सरकार, औरत मेरे रुपये चुराकर सूरदास को दे आई। सबेरे सूरदास रुपये लौटा गया। मैंने चकमा देकर पूछा, तो उसने चोर को भी बता दिया। इस बात पर मारता न, तो क्या करता?

राजा—और कुछ हो, अंधा है दिल का साफ।

भैरा—हजूर, नीयत का अच्छा नहीं।

यद्यपि महेन्द्रकुमारसिंह बहुत न्यायशील थे, और अपने कुत्सित मनोविचारों को प्रकट

करने में बहुत सावधान रहते थे। ख्याति-प्रिय मनुष्य को प्राय: अपनी वाणी पर पूर्ण अधिकार होता है, पर वह सूरदास से इतने जले हुए थे, उसके हाथों इतनी मानसिक यातनाएं पाई थीं कि इस समय अपने भावों को गुप्त न रख सके। बोले—अजी, उसने मुझे यहां इतना बदनाम किया कि घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया। क्लार्क साहब ने जरा उसे मुंह क्या लगा लिया कि सिर चढ़ गया। यों मैं किसी गरीब को सताना नहीं चाहता, लेकिन यह भी नहीं देख सकता कि वह भले आदमियों के बाल नोचे। इजलास तो मेरा ही है, तुम उस पर दावा कर दो। गवाह मिल जायंगे न?

भैरो—हजूर, सारा मुहल्ला जानता है।

राजा—सबों को पेश करो। यहां लोग उसके भक्त हो गए हैं। समझते हैं, वह कोई ऋषि है। मैं उसकी कलई खोल देना चाहता हूं। इतने दिनों के बाद यह अवसर मेरे हाथ आया है। मैंने अगर अब तक किसी से नीचा देखा, तो इसी अंधे से। उस पर न पुलिस का जोर था, न अदालत का। उस दीनता और दुर्बलता उसका कवच बनी हुई थी। यह मुकदमा उसके लिए वह गहरा गड्ढा होगा, जिसमें से वह निकल न सकेगा। मुझे उसकी ओर से शंका थी, पर एक बार जहां परदा खुला कि मैं निश्चिंत हुआ। विष के दांत टूट जाने पर सांप से कौन डरता है। हो सके, तो जल्दी ही यह मुकदमा दायर कर दो।

किसी बड़े आदमी को रोते देखकर हमें उससे स्नेह हो जाता है। उसे प्रभुत्व से मंडित देखकर हम थोड़ी देर के लिए भूल जाते हैं कि वह भी मनुष्य है। हम उसे साधारण मानवी दुर्बलताओं से रहित समझते हैं। वह हमारे लिए एक कौतूहल का विषय होता है। हम समझते हैं, वह न जाने क्या खाता होगा, न जाने क्या पीता होगा, न जाने क्या सोचता होगा, उसके दिल में सदैव ऊंचे विचार आते होंगे, छोटी-छोटी बातों की ओर तो उसका ध्यान ही न जाता होगा—कौतूहल का परिष्कृत रूप ही आदर है। भैरो को राजा साहब के सम्मुख जाते हुए भय लगता था, लेकिन अब उसे ज्ञात हुआ कि यह भी हमीं-जैसे मनुष्य हैं। मानो उसे आज एक नई बात मालूम हुई। जरा बेधड़क होकर बोला—हजूर, है तो अंधा, लेकिन बड़ा घमंडी है। अपने आगे तो किसी को समझता ही नहीं। मुहल्ले वाले जरा सूरदास, सूरदास कह देते हैं, तो बस फूल उठता है। समझता है, संसार में जो कुछ हूं, मैं ही हूं। हजूर, उसकी ऐसी सजा कर दें कि चक्की पीसते-पीसते दिन जाए। तब उसकी सेखी किरकिरी होगी।

राजा साहब ने त्योरी बदली। देखा, यह गंवार अब ज्यादा बहकने लगा। बोला—अच्छा, अब जाओ।

भैरा दिल में समझ रहा था, मैंने राजा साहब को अपनी मुट्ठी में कर लिया। अगर उसे चले जाने का हुक्म न मिला होता, तो एक क्षण में उसका 'हजूर' 'आप' हो जाता। संध्या तक उसकी बातों का तांता न टूटता। वह न जाने कितनी झूठी बातें गढ़ता। परनिंदा का मनुष्य की जिह्वा पर कभी इतना प्रभुत्व नहीं होता, जितना संपन्न पुरुषों के सम्मुख न जाने क्यों हम उनकी कृपा-दृष्टि के इतने अभिलाषी होते हैं। हम ऐसे मनुष्यों पर भी, जिनसे हमारा लेश-मात्र भी वैमनस्य नहीं है, कटाक्ष करने लगते हैं। कोई स्वार्थ की इच्छा न रखते हुए भी हम उनका सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं। उनका विश्वासपात्र बनने की हमें एक अनिवार्य आंतरिक प्रेरणा होती है। हमारी वाणी उस समय काबू से बाहर हो जाती है।

भैरो यहां से कुछ लज्जित होकर निकला, पर उसे अब इसमें संदेह न था कि मेरी

मनोकामना पूरी हो गई। घर आकर उसने बजरंगी से कहा–तुम्हें गवाही करनी पड़ेगी। निकल न जाना।

बजरंगी–कैसी गवाही?

भैरो–यही मेरे मामले की। इस अंधे की हेकड़ी अब नहीं देखी जाती। इतने दिनों तक सबर किए बैठा रहा कि अब भी वह सुभागी को निकाल दे, उसका जहां जी चाहे, चली जाए, मेरा आंखों के सामने से दूर हो जाए। पर देखता हूं, तो दिन-दिन उसकी पेंग बढ़ती ही जाती है। अंधा छैला बना जाता है। महीनों देह पर पानी नहीं पड़ता था, अब नित्य स्नान करता है। वह पानी लाती है, उसकी धोती छांटती है, उसके सिर में तेल मलती है। यह अंधेर नहीं देखा जाता।

बजरंगी–अंधेर तो है ही, आंखों से देख रहा हूं। सूरे को इतना छिछोरा न समझता था। पर मैं कहीं गवाही-साखी करने न जाऊंगा।

जमुनी–क्यों, कचहरी में कोई तुम्हारे कान काट लेगा?

बजरंगी–अपना मन है, नहीं जाते।

जमुनी–अच्छा तुम्हारा मन है। भैरो, तुम मेरी गवाही लिखा दो। मैं चलकर गवाही दूंगी। सांच को आंच क्या?

बजरंगी–(हंसकर) तू कचहरी जाएगी?

जमुनी–क्या करूंगी, जब मरदों की वहां जाते चूड़ियां मैली होती हैं, तो औरत ही जाएगी। किसी तरह उस कसबिन के मुंह में कालिख तो लगे।

बजरंगी–भैरो, बात यह है कि सूरे ने बुराई जरूर की, लेकिन तुम भी तो अनीत ही पर चलते थे। कोई अपने घर के आदमी को इतनी बेदरदी से नहीं मारता। फिर तुमने मारा ही नहीं, मारकर निकाल भी दिया। जब गाय की पगहिया न रहेगी, तो वह दूसरों के खेत में जायगी ही। इसमें उसका क्या दोस?

जमुनी–तुम इन्हें बकने दो भैरो, मैं तुम्हारी गवाही करूंगी।

बजरंगी–तू सोचती होगी, यह धमकी देने से मैं कचहरी जाऊंगा, यहां इतने बुद्धू नहीं हैं। और, सच्ची बात तो यह है कि सूरे लाख बुरा हो, मगर अब भी हम सबों से अच्छा है। रुपयों की थैली लौटा देना कोई छोटी बात नहीं है।

जमुनी–बस चुप रहो, मैं तुम्हें खूब समझती हूं। तुम भी जाकर चार गाल हंस-बोल आते हो न, क्या इतनी यारी भी न निभाओगे। सुभागी को सजा हो गई, तो तुम्हें भी तो नजर लड़ाने को कोई न रहेगा।

बजरंगी यह लांछन सुनकर तिलमिला उठा। जमुनी उसका आसन पहचानती थी, बोला–मुंह में कीड़े पड़ जाएंगे।

जमुनी–तो फिर गवाही देते क्यों कोर दबती है?

बजरंगी–लिखा दो भैरो, मेरा नाम, यह चुड़ैल मुझे जीने न देगी। मैं अगर हारता हूं, तो इसी से। मेरी पीठ में अगर धूल लगाती है, तो यह। नहीं तो यहां कभी किसी से दबकर नहीं चले। जाओ, लिखा दो।

भैरो यहां से ठाकुरदीन के पास गया, और वही प्रस्ताव किया। ठाकुरदीन ने कहा–हां-हां, मैं गवाही करने को तैयार हूं। मेरा नाम सबसे पहले लिखा दो। अंधे को देखकर मेरी तो अब आंखें

फूटती हैं। अब मुझे मालूम हो गया कि उसे जरूर कोई सिद्धि है, नहीं तो क्या सुभागी उसके पीछे यों दौड़ी-दौड़ी फिरती।

भैरो–चक्की पीसेंगे, तो बचा को मालूम होगा।

ठाकुरदीन–ना भैया, उसका अकबाल भारी है, वह कभी चक्की न पीसेगा, वहां से भी बेदाग लौट आएगा, हां, गवाही देना मेरा धरम है, वह मैं दे दूंगा। जो आदमी सिद्धि से दूसरों का अनभल करे, उसकी गरदन काट लेनी चाहिए। न जाने क्यों भगवान् संसार में चोरों और पापियों को जनम देते हैं। यही समझ लो कि जब से मेरी चोरी हुई, कभी नींद-भर नहीं सोया। नित्य वही चिंता बनी रहती है। यही खटका लगा रहता है कि कहीं फिर न वही नौबत आ जाए। तुम तो एक हिसाब से मजे में रहे कि रुपये सब मिल गए, मैं तो कहीं का न रहा।

भैरो–तो तुम्हारी गवाही पक्की रही?

ठाकुरदीन–हां, एक बार नहीं, सौ बार पक्की। अरे, मेरा बस चलता, तो मैं इसे खोदकर गाड़ देता। यों मुझसे सीधा कोई नहीं है, लेकिन दुष्टों के हक में मुझसे टेढ़ा भी कोई नहीं है। इनको सजा दिलाने के लिए मैं झूठी गवाही देने को तैयार हूं। मुझे तो अचरज होता है कि इस अंधे को क्या हो गया। कहां तो धरम-करम का इतना विचार, इतना परोपकार, इतना सदाचार, और कहां यह कुकरम।

भैरो यहां से जगधर के पास गया, जो अभी खोंचा बेचकर लौटा था, और धोती लेकर नहाने जा रहा था।

भैरो–तुम भी मेरे गवाह हो न?

जगधर–तुम हक-नाहक सूरे पर मुकदमा चला रहे हो। सूरा निरपराध है।

भैरो–कसम खाओगे?

जगधर–हां, जो कसम कहो, खा जाऊं। तुमने सुभागी को अपने घर से निकाल दिया, सूरे ने उसे अपने घर में जगह दे दी। नहीं तो अब तक वह न जाने किस घाट लगी होती। जवान औरत है, सुंदर है, उसके सैकड़ों गाहक हैं। सूरे ने तो उसके साथ नेकी की कि उसे कहीं बहकने न दिया। अगर तुम फिर उसे घर में लाकर रखना चाहो, और वह उसे आने न दे, तुमसे लड़ने को तैयार हो जाए, तब मैं कहूंगा कि उसका कसूर है। मैंने अपने कानों से उसे सुभागी को समझाते सुना है। वह आती ही नहीं, तो बेचारा क्या करे?

भैरो समझ गया कि यह एक लोटे जल से प्रसन्न हो जाने वाला देवता नहीं, इसे कुछ भेंट करनी पड़ेगी। उसकी लोभी प्रकृति से वह परिचित था।

बोला–भाई, मुआमला इज्जत का है। ऐसी उड़नघाइयां न बताओ। पड़ोसी का हक बहुत कुछ होता है, पर मैं तुमसे बाहर नहीं हूं, जो कुछ दस-बीस कहो, हाजिर है। पर गवाही तुम्हें देनी पड़ेगी।

जगधर–भैरो, मैं बहुत नीच हूं, लेकिन इतना नीच नहीं कि जान-सुनकर किसी भले आदमी को बेकसूर फंसाऊं।

भैरो ने बिगड़कर कहा–तो क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे ही नाम खुदाई लिख गई है? जिस बात को सारा गांव कहेगा, उसे एक तुम न कहोगे, तो क्या बिगड़ जाएगा? टिड्डी के रोके आंधी नहीं रुक सकती।

जगधर–तो भाई, उसे पीसकर पी जाओ। मैं कब कहता हूं कि मैं उसे बचा लूंगा। हां, मैं उसे पीसने में तुम्हारी मदद न करूंगा।

भैरो तो उधर गया, इधर वही स्वार्थी, लोभी, ईर्ष्यालु, कुटिल जगधर उसके गवाहों को फोड़ने का प्रयत्न करने लगा। उसे सूरदास में इतनी भक्ति न थी, जितनी भैरो से ईर्ष्या। भैरो अगर किसी सत्कार्य में भी उसकी सहायता मांगता, तो भी वह इतनी ही तत्परता से उसकी उपेक्षा करता।

उसने बजरंगी के पास जाकर कहा–क्यों बजरंगी, तुम भी भैरो की गवाही कर रहे हो?

बजरंगी–हां, जाता तो हूं।

जगधर–तुमने अपनी आंखों कुछ देखा है?

बजरंगी–कैसी बातें करते हो, रोज ही देखता हूं, कोई बात छिपी थोड़े ही है।

जगधर–क्या देखते हो? यही न कि सुभागी सूरदास के झोंपड़े में रहती है? अगर कोई एक अनाथ औरत का पालन करे, तो बुराई है? अंधे आदमी के जीवट का बखान तो न करोगे कि जो काम किसी से न हो सका, वह उसने कर दिखाया, उलटे उससे और बैर साधते हो। जानते हो, सूरदास उसे घर से निकाल देगा, तो उसकी क्या गत होगी? मुहल्ले की आबरू पुतलीघर के मजूरों के हाथ बिकेगी। देख लेना। मेरा कहना मानो, गवाही-साखी के फेर में न पड़ो, भलाई के बदले बुराई हो जायगी। भैरो तो सुभागी से इसलिए जल रहा है कि उसने उसके चुराए हुए रुपये सूरदास को क्यों लौटा दिए। बस, सारी जलन इसी की है। हम बिना जाने-बूझे क्यों किसी की बुराई करें? हां, गवाही देने ही जाते हो, तो पहले खूब पता लगा लो कि दोनों कैसे रहते हैं...

बजरंगी–(जमनी की तरफ इशारा करके) इसी से पूछो, यही अंतरजामी है, इसी ने मुझे मजबूर किया है।

जमुनी–हां, किया तो है, क्या अब भी दिल कांप रहा है?

जगधर–अदालत में जाकर गवाही देना क्या तुमने हंसी समझ ली है? गंगाजली उठानी पड़ती है, तुलसी-दल लेना पड़ता है, बेटे के सिर पर हाथ रखना पड़ता है। इसी से बाल-बच्चे वाले डरते हैं कि और कुछ।

जमुनी–सच कहो, ये सब कसमें खानी पड़ती हैं?

जगधर–बिना कसम खाए तो गवाही होती ही नहीं।

जमुनी–तो भैया, बाज आई ऐसी गवाही से, कान पकड़ती हूं। चूल्हे में जाय सूरा और भाड़ में जाय भैरो, कोई बुरे दिन काम न आएगा। तुम रहने दो।

बजरंगी–सूरदास को लड़कपन से देख रहे हैं, ऐसी आदत तो उसमें नहीं थी।

जगधर–न थी, न है, और न होगी। उसकी बड़ाई नहीं करता, पर उसे लाख रुपये भी दो, तो बुराई में हाथ न डालेगा। कोई दूसरा होता, तो गया हुआ धन पाकर चुपके से रख लेता, किसी को कानोंकान खबर भी न होती। नहीं तो जाकर सब रुपये दे आया। उसकी सफाई तो इतने ही से हो जाती है।

बजरंगी को तोड़कर जगधर ने ठाकुरदीन को घेरा। पूजा करके भोजन करने जा रहा था। जगधर की आवाज सुनकर बोला–बैठो, खाना खाकर आता हूं।

जगधर–मेरी बात सुन लो, तो खाने.बैठो। खाना कहीं भागा नहीं जाता है। तुम भी भैरो की गवाही देने जा रहे हो?

ठाकुरदीन–हां, जाता हूं। भैरो ने न कहा होता, तो आप ही जाता। मुझसे यह अनीत नहीं

देखी जाती। जमाना दूसरा है, नहीं नवाबी होती, तो ऐसे आदमी का सिर काट लिया जाता। किसी की बहू-बेटी को निकाल ले जाना कोई हंसी-ठट्ठा है !

जगधर–जान पड़ता है, देवतों की पूजा करते-करते तुम भी अंतरजामी हो गए हो। पूछता हूं, किस बात की गवाही दोगे?

ठाकुरदीन–कोई लुकी-छिपी बात है, सारा देस जानता है।

जगधर–सूरदास बड़ा गबरू जवान है, इसी से सुंदरी का मन उस पर लोट-पोट हो गया होगा, या उसके घर रुपये-पैसे, गहने-जेवर के ढेर लगे हुए हैं, इसी से औरत लोभ में पड़ गई होगी। भगवान् को देखा नहीं, लेकिन अकल से तो पहचानते हो। आखिर क्या देखकर सुभागी ने भैरो को छोड़ दिया, और सूरे के घर पड़ गई?

ठाकुरदीन–कोई किसी के मन की बात क्या जाने, और औरत के मन की बात तो भगवान् भी नहीं जानते। देवता लोग तक उससे त्राह-त्राह करते हैं !

जगधर–अच्छा, तो जाओ, मगर यह कहे देता हूं कि इसका फल भोगना पड़ेगा। किसी गरीब पर झूठा अपराध लगाने से बड़ा दूसरा पाप नहीं होता।

ठाकुरदीन–झूठा अपराध है?

जगधर–झूठा है, सरासर झूठा; रत्ती-भर भी सच नहीं। बेकस की वह हाय पड़ेगी कि जिदगानी-भर याद करोगे। जो आदमी अपना गया हुआ धन पाकर लौटा दे, वह इतना नीच नहीं हो सकता।

ठाकुरदीन–(हंसकर) यही तो अंधे की चाल है। कैसी दूर की सूझी है कि जो सुने, चक्कर में आ जाए।

जगधर–मैंने जता दिया, आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। रखोगे सुभागी को अपने घर में? मैं उसे सूरे के घर से लिवाए लाता हूं, अगर फिर कभी सूरे को उससे बातें करते देखना, तो जो चाहना, करना। रखोगे?

ठाकुरदीन–मैं क्यों रखने लगा।

जगधर–तो अगर सिवजी ने संसार-भर का बिस माथे चढ़ा लिया, तो क्या बुरा किया? जिसके लिए कहीं ठिकाना नहीं था, उसे सूरे ने अपने घर में जगह दी। इस नेकी की उसे यह सजा मिलनी चाहिए? यही न्याय है? अगर तुम लोगों के दबाव में आकर सूरे ने सुभागी को घर से निकाल दिया और उसकी आबरू बिगड़ी, तो उसका पाप तुम्हारे सिर भी पड़ेगा। याद रखना।

ठाकुरदीन देवभीरु आत्मा का था, दुविधा में पड़ गया। जगधर ने आसन पहचाना, इसी ढंग की दो-चार बातें और कीं। आखिर ठाकुरदीन गवाही देने से इंकार करने लगा। जगधर की ईर्षा किसी साधु के उपदेश का काम कर गई। संध्या होते-होते भैरो को मालूम हो गया कि मुहल्ले में कोई गवाह न मिलेगा। दांत पीसकर रह गया। चिराग जल रहे थे। बाजार की और दुकानें बंद हो रही थीं। ताड़ी की दुकान खोलने का समय आ रहा था। गाहक जमा होते जाते थे। बुढ़िया चिखौने के लिए मटर के दालमोट और चटपटे पकौड़े बना रही थी, और भैरो द्वार पर बैठा हुआ जगधर को, मुहल्ले वालों को और सारे संसार को चौपालियां सुना रहा था–सब-के-सब नामरदे हैं, आंख के अंधे, जभी तो यह दुरदसा हो रही है। कहते हैं, सूखा क्यों पड़ता है, प्लेग क्यों आता है, हैजा क्यों फैलता है, जहां ऐसे-ऐसे बेईमान, पापी, दुष्ट बसेंगे, वहां और होगा ही क्या !

भगवान् इस देस को गारत क्यों नहीं कर देते, यही अचरज है। खैर, जिंदगानी है, तो हम और जगधर इसी जगह रहते हैं, देखी जायगी।

क्रोध के आवेश में अपनी नेकियां बहुत याद आती हैं। भैरो उन उपकारों का वर्णन करने लगा, जो उसने जगधर के साथ किए थे—इसकी घर वाली मर रही थी। किसी ने बता दिया, ताजी ताड़ी पिए, तो बच जाए। मुंह-अंधेरे पेड़ पर चढ़ता था, और ताजी ताड़ी उतारकर उसे पिलाता था। कोई पांच रुपये भी देता, तो उतने सबेरे पेड़ पर न चढ़ता। मटकों ताड़ी पिला दी होगी। तमाखू पीना होता है, तो यहीं आता है। रुपये-पैसे का काम लगता है, तो मैं ही काम आता हूं, और मेरे साथ यह घाट ! जमाना ही ऐसा है।

जगधर का घर मिला हुआ था। यह सब सुन रहा था, और मुंह न खोलता था। वह सामने से वार करने में नहीं, पीछे से वार करने में कुशल था।

इतने में मिल का एक मिस्त्री, नीम-आस्तीन पहने, कोयले की भभूत लगाए और कोयले ही का-सा रंग, हाथ में हथौड़ा लिए, चमरौधा जूता डाटे, आकर बोला—चलते हो दुकान पर कि इसी झंझट में पड़े रहोगे? देर हो रही है, अभी साहब के बंगले पर जाना है।

भैरो—अजी जाओ, तुम्हें दुकान की पड़ी हुई है, यहां ऐसा जी जल रहा है कि गांव में आग लगा दूं।

मिस्त्री—क्या है क्या? किस बात पर बिगड़ रहे हो, मैं भी सुनूं।

भैरो ने संक्षिप्त रूप से सारी कथा सुना दी, और गांव वालों की कायरता और असज्जनता का दुखड़ा रोने लगा।

मिस्त्री—गांव वालों को मारो गोली। तुम्हें कितने गवाह चाहिए? जितने गवाह कहो दे दूं, एक-दो, दस-बीस। भले आदमी, पहले ही क्यों न कहा? आज ही ठीक-ठाक किए देता हूं। बस, सबों को भर-भर पेट पिला देना।

भैरो की बांछें खिल गईं। बोला—ताड़ी की कौन बात है, दुकान तुम्हारी है, जितनी चाहो पियो, पर जरा मोतबर गवाह दिलाना।

मिस्त्री—अजी, कहो तो बाबू लोगों को हाजिर कर दूं। बस, ऐसी पिला देना कि सब यहीं से गिरते हुए घर पहुंचें।

भैरो—अजी, कहो तो इतनी पिला दूं कि दो-चार लाशें उठ जाएं।

यों बातें करते हुए दोनों दुकान पर पहुंचे। वहां बीस-पच्चीस आदमी, जो इसी कारखाने के नौकर थे, बड़ी उत्कंठा से भैरो की राह देख रहे थे। भैरो ने तो पहुंचते ही ताड़ी नापनी शुरू की, और इधर मिस्त्री ने गवाहों को तैयार करना शुरू किया। कानों में बातें होने लगीं।

एक—मौका अच्छा है। अंधे के घर से निकलकर जायगी कहां ! भैरो अब उसे न रखेगा।

दूसरा—आखिर हमारे दिल-बहलाव का भी तो कोई सामान होना चाहिए।

तीसरा—भगवान् ने आप ही भेज दिया, बिल्ली के भागों छींका टूटा।

इधर तो यह मिस्कौट हो रही थी, उधर सुभागी सूरदास से कह रही थी—तुम्हारे ऊपर दावा हो रहा है।

सूरदास ने घबराकर पूछा—कैसा दावा?

सुभागी—मुझे भगा लाने का। गवाह ठीक किए जा रहे हैं। गांव का तो कोई आदमी नहीं

मिला, लेकिन पुतलीघर के बहुत-से मजूरे तैयार हैं। मुझसे अभी जगधर कह रहे थे, पहले गांव के सब आदमी गवाही देने जा रहे थे।

सूर–फिर रुक कैसे गए?

सुभागी–जगधर ने सबको समझा-बुझाकर रोक लिया।

सूर–जगधर बड़ा भलामानुस है, मुझ पर बड़ी दया करता रहता है।

सुभागी–तो अब क्या होगा?

सूर–दावा करने दे, डरने की कोई बात नहीं। तू यही कह देना कि मैं भैरो के साथ न रहूंगी। कोई कारन पूछे, तो साफ-साफ कह देना, वह मुझे मारता है।

सुभागी–लेकिन इसमें तुम्हारी कितनी बदनामी होगी !

सूर–बदनामी की चिंता नहीं, जब तक वह तुझे रखने को राजी न होगा, तो तुझे जाने ही न दूंगा।

सुभागी–वह राजी भी होगा, तो उसके घर न जाऊंगी। वह मन का बड़ा मैला आदमी है, इसकी कसर जरूर निकालेगा। तुम्हारे घर से भी चली जाऊंगी।

सूर–मेरे घर से क्यों चली जायगी? मैं तो तुझे नहीं निकालता।

सुभागी–मेरे कारन तुम्हारी कितनी जगहंसाई होगी। मुहल्ले वालों का तो मुझे कोई डर न था। मैं जानती थी कि किसी को तुम्हारे ऊपर संदेह न होगा, और होगा भी तो छिन-भर में दूर हो जायगा। लेकिन ये पुतलीघर के उजड्ड मजूरे तुम्हें क्या जानें। भैरो के यहां सब-के-सब ताड़ी पीते हैं। वह उन्हें मिलाकर तुम्हारी आबरू बिगाड़ देगा। मैं यहां न रहूंगी, तो उसका कलेजा ठंडा हो जायगा। बिस की गांठ तो मैं हूं।

सूर–जायगी कहां?

सुभागी–जहां उसके मुंह में कालिख लगा सकूं, जहां उसकी छाती पर मूंग दल सकूं।

सूर–उसके मुंह में कालिख लगेगी, तो मेरे मुंह में पहले ही न लग जाएगी। तू मेरी बहन ही तो है?

सुभागी–नहीं, मैं तुम्हारी कोई नहीं हूं। मुझे बहन-बेटी न बनाओ।

सूर–मैं कहे देता हूं, इस घर से न जाना।

सुभागी–मैं अब तुम्हारे साथ रहकर तुम्हें बदनाम न करूंगी।

सूरदास–मुझे बदनामी कबूल है, लेकिन जब तक यह न मालूम हो जाए कि तू कहां जायगी, तब तक मैं तुझे जाने ही न दूंगा।

भैरो ने रात तो किसी तरह काटी। प्रातःकाल कचहरी दौड़ा। वहां अभी द्वार बंद थे, मेहतर झाड़ू लगा रहे थे, अतएव वह एक वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर बैठ गया। नौ बजे से अमले, बस्ते बगल में दबाए, आने लगे और भैरो दौड़-दौड़कर उन्हें सलाम करने लगा। ग्यारह बजे राजा साहब इजलास पर आए, और भैरो ने मुहर्रिर से लिखाकर अपना इस्तगासा दायर कर दिया। संध्या-समय घर आया, तो बफरने लगा–अब देखता हूं, कौन माई का लाल इनकी हिमायत करता है। दोनों के मुंह में कालिख लगवाकर यहां से निकाल न दिया, तो बाप का नहीं।

पांचवें दिन सूरदास और सुभागी के नाम समन आ गया। तारीख पड़ गई। ज्यों-ज्यों पेशी का दिन निकट आता जाता था, सुभागी के होश उड़े जाते थे। बार-बार सूरदास से उलझती–तुम्हीं यह सब करा रहे हो, अपनी मिट्टी खराब कर रहे हो, और अपने साथ मुझे भी घसीट रहे हो।

मुझे चला जाने दिया होता, तो कोई तुमसे क्यों बैर ठानता? वहां भरी कचहरी में जाना, सबके सामने खड़ी होना, मुझे जहर ही-सा लग रहा है। मैं उसका मुंह न देखूंगी, चाहे अदालत मुझे मार ही डाले।

आखिर पेशी की नियत तिथि आ गई। मोहल्ले में इस मुकदमे की इतनी धूम थी कि लोगों ने अपने-अपने काम बंद कर दिए, और अदालत में जा पहुंचे। मिल के श्रमजीवी सैकड़ों की संख्या में गए। शहर में सूरदास को कितने ही आदमी जान गए थे। उनकी दृष्टि में सूरदास निरपराध था। हजारों आदमी कौतूहल-वश अदालत में आए। प्रभु सेवक पहले ही पहुंच चुके थे, इन्दु रानी और इन्द्रदत्त भी मुकदमा पेश होते-होते आ पहुंचे। अदालत में यों ही क्या कम भीड़ रहती है, और स्त्री का आना तो मंडप में वधू का आना है। अदालत में एक बाजार-सा लगा हुआ था। इजलास पर दो महाशय विराजमान थे–एक तो चतारी के राजा साहब, दूसरे एक मुसलमान, जिन्होंने योरपीय महासमर में रंगरूट भरती करने में बड़ा उत्साह दिखाया था। भैरो की तरफ से एक वकील भी था।

भैरो का बयान हुआ। गवाहों का बयान हुआ। तब उसके वकील ने उनसे अपना पक्ष-समर्थन करने के लिए जिरह की।

तब सूरदास का बयान हुआ। उसने कहा–मेरे साथ इधर कुछ दिनों से भैरो की घर वाली रहती है। मैं किसी को क्या खिलाऊं-पिलाऊंगा, पालने वाला भगवान् है। वह मेरे घर में रहती है, अगर भैरो उसे रखना चाहे, और वह रहना चाहे, तो आज चली जाए, यही तो मैं चाहता हूं। इसीलिए मैंने उसे अपने यहां रखा है, नहीं तो न जाने कहां होती।

भैरो के वकील ने मुस्कराकर कहा–सूरदास, तुम बड़े उदार मालूम होते हो, लेकिन युवती सुंदरियों के प्रति उदारता का कोई महत्त्व नहीं रहता।

सूर–इसी से न यह मुकदमा चला है। मैंने कोई बुराई नहीं की। हां, संसार जो चाहे समझे। मैं तो भगवान् को जानता हूं। वही सबकी करनी का देखने वाला है। अगर भैरो उसे अपने घर न रखेगा, और न सरकार कोई ऐसी जगह बतावेगी, जहां यह औरत इज्जत-आबरू के साथ रह सके, तो मैं उसे अपने घर से निकलने न दूंगा। वह निकलना भी चाहेगी, तो न जाने दूंगा। इसने तो जब से इस मुकदमे की खबर सुनी है, यही कहा करती है कि मुझे जाने दो, पर मैं उसे जाने नहीं देता।

वकील–साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मैंने उसे रख लिया है।

सूर–हां, रख लिया है, जैसे भाई अपनी बहन को रख लेता है, बाप बेटी को रख लेता है। अगर सरकार ने उसे जबरजस्ती मेरे घर से निकाल दिया, तो उसकी आबरू की जिम्मेदारी उसी के सर होगी।

सुभागी का बयान हुआ–भैरो मुझे बेकसूर मारता है, गालियां देता है। मैं उसके साथ न रहूंगी। सूरदास भला आदमी है, इसीलिए उसके पास रहती हूं। भैरो यह नहीं देख सकता, सूरदास के घर से मुझे निकालना चाहता है।

वकील–तू पहले भी सूरदास के घर आती-जाती थी?

सुभागी–जभी अपने घर मार खाती थी, तभी जान बचाकर उसके घर भाग जाती थी। वह मेरे आड़े आ जाता था। मेरे कारन उसके घर में आग लगी, मार पड़ी, कौन-कौन-सी दुर्गत नहीं हुई। अदालत की कसर थी, वह भी पूरी हो गई।

राजा—भैरो, तुम अपनी औरत को रखोगे?

भैरो—हां सरकार, रखूंगा।

राजा—मारोगे तो नहीं?

भैरो—कुचाल न चलेगी, तो क्यों मारूंगा?

राजा—सुभागी, तू अपने आदमी के घर क्यों नहीं जाती? वह तो कह रहा है, न मारूंगा।

सुभागी—उस पर बिस्वास नहीं है। आज ही मार-मारकर बेहाल कर देगा।

वकील—हुजूर, मुआमला साफ है, अब मजीद सबूत की जरूरत नहीं रही। सूरदास पर जुर्म साबित हो गया।

अदालत ने फैसला सुना दिया—सूरदास पर दो सौ रुपये जुर्माना और जुर्माना न अदा करे, तो छः महीने की कड़ी कैद। सुभागी पर सौ रुपये जुर्माना, जुर्माना न दे सकने पर तीन महीने की कड़ी कैद। रुपये वसूल हों तो भैरो को दिए जाएं।

दर्शकों में इस फैसले पर आलोचानाएं होने लगीं।

एक—मुझे तो सूरदास बेकसूर मालूम होता है।

दूसरा—सब राजा साहब की करामात है। सूरदास ने जमीन के बारे में उन्हें बदनाम किया था न। यह उसी की कसर निकाली गई है। ये हमारे यशमान-भोगी लीडरों के कृत्य हैं।

तीसरा—औरत तो चरबांक नहीं मालूम होती?

चौथा—भरी अदालत में बातें कर रही है, चरबांक नहीं है, तो और क्या है?

पांचवां—वह तो यही कहती है कि मैं भैरो के पास न रहूंगी।

सहसा सूरदास ने उच्च स्वर में कहा—मैं इस फैसले की अपील करूंगा।

वकील—इस फैसले की अपील नहीं हो सकती।

सूरदास—मेरी अपील पंचों से होगी। एक आदमी के कहने से मैं अपराधी नहीं हो सकता, चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी हो। हाकिम ने सजा दे दी, सजा काट लूंगा, पर पंचों का फैसला भी सुन लेना चाहता हूं।

यह कहकर उसने दर्शकों की ओर मुंह फेरा और मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा—दुहाई है, पंचो, आप इतने आदमी जमा हैं। आप लोगों ने भैरो और उसके गवाहों के बयान सुने, मेरा और सुभागी का बयान सुना, हाकिम का फैसला भी सुन लिया। अब आप लोगों से मेरी बिनती है कि क्या आप भी मुझे अपराधी समझते हैं? क्या आपको बिस्वास आ गया कि मैंने सुभागी को बहकाया और अब अपनी स्त्री बनाकर रखे हुए हूं? अगर आपको बिस्वास आ गया है, तो मैं इसी मैदान में सिर झुकाकर बैठता हूं, आप लोग मुझे पांच-पांच लात मारें। अगर मैं लात खाते-खाते मर भी जाऊं, तो मुझे दुःख न होगा। ऐसे पापी का यही दंड है। कैद से क्या होगा! और अगर आपकी समझ में मैं बेकसूर हूं, तो पुकारकर कह दीजिए, हम तुझे निरपराध समझते हैं। फिर मैं कड़ी-से-कड़ी कैद भी हंसकर काट लूंगा।

अदालत के कमरे में सन्नाटा छा गया। राजा साहब, वकील, अमले, दर्शक, सब-के-सब चकित हो गए। किसी को होश न रहा कि इस समय क्या करना चाहिए। सिपाही दर्जनों थे, पर चित्र-लिखित-से खड़े थे। परिस्थिति ने एक विचित्र रूप धारण कर लिया था, जिसकी अदालत के इतिहास में कोई उपमा न थी। शत्रु ने ऐसा छापा मारा था कि उससे प्रतिपक्षी सेना का पूर्व-नियोजित क्रम भंग हो गया।

सबसे पहले राजा साहब संभले। हुक्म दिया, इसे बाहर ले जाओ। सिपाहियों ने दोनों अभियुक्तों को घेर लिया, और अदालत के बाहर ले चले। हजारों दर्शक पीछे-पीछे चले।

कुछ दूर चलकर सूरदास जमीन पर बैठ गया और बोला—मैं पंचों का हुकुम सुनकर तभी आगे जाऊंगा।

अदालत के बाहर अदालत की मर्यादा भंग होने का भय न था। कई हजार कंठों से ध्वनि उठी—तुम बेकसूर हो, हम सब तुम्हें बेकसूर समझते हैं।

इन्द्रदत्त—अदालत बेईमान है।

कई हजार आवाजों ने दुहराया—हां, अदालत बेईमान है !

इन्द्रदत्त—अदालत नहीं है, दीनों की बलि-वेदी है।

कई हजार कंठों से प्रतिध्वनि निकली—अमीरों के हाथ में अत्याचार का यंत्र है !

चौकीदारों ने देखा कि प्रतिक्षण भीड़ बढ़ती और लोग उत्तेजित होते जाते हैं, तो लपककर एक बग्घी वाले को पकड़ा, और दोनों को उसमें बैठाकर ले चले। लोगों ने कुछ दूर तक तो गाड़ी का पीछा किया, उसके बाद अपने-अपने घर लौट गए।

इधर भैरो अपने गवाहों के साथ घर चला, तो राह में अदालत के अरदली ने घेरा। उसे दो रुपये निकालकर दिए। दुकान में पहुंचते ही मटके खुल गए, और ताड़ी के दौर चलने लगे। बुढ़िया पकौड़ियां और पूरियां पकाने लगी।

एक बोला—भैरो, यह बात ठीक नहीं। तुम भी बैठो, पियो और पिलाओ। हम-तुम बद-बदकर पिएं।

दूसरा—आज इतनी पियूंगा कि चाहे यहीं ढेर हो जाऊं। भैरो, यह कुल्हड़ भर-भर क्या देते हो, हांडी ही बढ़ा दो।

भैरो—अजी, मटके में मुंह डाल दो, हांडी-कुल्हड़ की क्या बिसात है ! आज मुद्दई का सिर नीचा हुआ है।

तीसरा—दोनों हिरासत में पड़े रो रहे होंगे। मगर भई, सूरदास को सजा हो गई तो क्या, वह है बेकसूर।

भैरो—आ गए तुम भी उसके धोखे में। इस स्वांग की तो वह रोटी खाता है। देखो, बात-की-बात में कैसा हजारों आदमियों का मन फेर दिया।

चौथा—उसे किसी देवता का इष्ट है।

भैरो—इष्ट तो तब, जब जानें कि जेहल से निकल आए।

पहला—मैं बदकर कहता हूं, वह कल जरूर जेहल से निकल आएगा।

दूसरा—बुढ़िया, पकौड़ियां ला।

तीसरा—अबे, बहुत न पी, नहीं मर जायगा। है कोई घर पर रोने वाला?

चौथा—कुछ गाना हो, उतारो ढोल-मंजीरा।

सबों ने ढोल-मंजीरा संभाला, और खड़े होकर गाने लगे—

छत्तीसी, क्या नैना झमकावै !

थोड़ी देर में एक बुड्ढा मिस्त्री उठकर नाचने लगा। बुढ़िया से अब न रहा गया। उसने भी घूंघट निकाल लिया, और नाचने लगी। शूद्रों में नृत्य और गान स्वाभाविक गुण हैं, सीखने

की जरूरत नहीं। बुड्ढा और बुढ़िया, दोनों अश्लील भाव से कमर हिला-हिलाकर थिरकने लगे। उनके अंगों की चपलता आश्चर्यजनक थी।

भैरो–मुहल्ले वाले समझते थे, मुझे गवाह ही न मिलेंगे।

एक–सब गीदड़ हैं, गीदड़।

भैरो–चलो, जरा सबों के मुंह में कालिख लगा आएं।

सब-के-सब चिल्ला उठे–हां, हां, नाच होता चले।

एक क्षण में जुलूस चला। सब-के-सब नाचते-गाते, ढोल पीटते, ऊलजलूल बकते, हु-हा करते, लड़खड़ाते हुए चले। पहले बजरंगी का घर मिला। यहां सब रुक गए, और गाया–

ग्वालिन की गैया हिरानी, तब दूध मिलावै पानी।

रात ज्यादा भीग चुकी थी, बजरंगी के द्वार बंद थे। लोग यहां से ठाकुरदीन के द्वार पर पहुंचे, और गाया–

तमोलिन के नैना रसीले, यारों से नजर मिलावै।

ठाकुरदीन भोजन कर रहा था, पर डर के मारे बाहर न निकला। जुलूस आगे बढ़ा, तो सूरदास की झोंपड़ी मिली।

भैरो बोला–बस, यहीं डट जाओ।

'ढोल ढीली पड़ गई।'

'सेंको, सेंको। झोंपड़े से फूस ले लो।'

एक आदमी ने थोड़ा-सा फूस निकाला, दूसरे ने और ज्यादा निकाला, तीसरे ने एक बोझ खींच लिया। फिर क्या था, नशे की सनक मशहूर ही है, एक ने जलता हुआ फूस झोंपड़ी पर डाल दिया और बोला–होली है, होली है ! कई आदमियों ने कहा–होली है, होली है।

भैरो–यारो, यह तुम लोगों ने बुरा किया। भाग चलो, नहीं तो धर लिए जाओगे।

भय नशे में भी हमारा पीछा नहीं छोड़ता। सब-के-सब भागे।

इधर ज्वाला प्रचंड हुई, तो मोहल्ले के लोग दौड़ पड़े। लेकिन फूस की आग किसके बस की थी ! झोपड़ा जल रहा था, और लोग बड़े दुःख और क्रोध की बातें कर रहे थे।

ठाकुरदीन–मैं तो भोजन पर बैठा, तभी सबों को आते देखा।

बजरंगी–ऐसा जी चाहता है कि जाकर भैरो को मारते-मारते बेदम कर दूं।

जगधर–जब तक एक दफे अच्छी तरह मार न खा जायगा, इसके सिर से भूत न उतरेगा।

बजरंगी–हां, अब यही होगा। घिसुआ, जरा लाठी तो निकाल ला। आज दो-चार खून हो जायंगे, तभी यह आग बुझेगी।

जमुनी–तुम्हें क्या पड़ी है, चलकर लेटो। जो जैसा करेगा, उसका फल आप भगवान् से पाएगा।

बजरंगी–भगवान् चाहे फल दें न या न दें, पर मैं तो अब नहीं मानता। जैसे देह में आग लगी हुई है।

जगधर–आग लगने की बात ही है। ऐसे पापी का तो सिर काट लेना भी पाप नहीं है।

ठाकुरदीन–जगधर, आग पर तेल छिड़कना अच्छी बात नहीं है। अगर तुमको भैरो से बैर है, तो आप जाकर उसे क्यों नहीं ललकारते, दूसरों को क्यों उकसाते हो? यही चाहते हो कि ये दोनों लड़ें-मरें, और मैं तमासा देखूं। हो बड़े नीच !

जगधर—अगर कोई बात कहना उकसाना है, तो लो, चुप रहूंगा।

ठाकुरदीन—हां, चुप रहना ही अच्छा है। तुम भी जाकर सोओ बजरंगी। भगवान् आप पापी को डंड देंगे। उन्होंने तो रावन-जैसे परतापी राजा को न छोड़ा, यह किस खेत की मूली है। यह अंधेर उनसे भी न देखा जाएगा।

बजरंगी—मारे घमंड के पागल हो गया है। चलो जगधर, जरा इन सबों से दो-दो बातें कर लें।

जगधर—ना भैया, मुझे साथ न ले जाओ। कौन जाने, वहां मार-पीट हो जाए, तो सारा इल्जाम मेरे सिर जाए कि इसी ने लड़ा दिया। मैं तो आप झगड़े से कोसों दूर रहता हूं।

इतने में मिठुआ दौड़ा हुआ आया। बजरंगी ने पूछा—कहां सोया था रे?

मिट्ठू—पंडाजी के दालान में तो। अरे, यह तो मेरी झोंपड़ी जल रही है। किसने आग लगाई?

ठाकुरदीन—इतनी देर से जागे हो। सुन नहीं रहे हो, गाना-बजाना हो रहा है?

मिट्ठू—भैरो ने आग लगाई है क्या ! अच्छा बचा, समझूंगा।

जब लोग अपने-अपने घर लौट गए, तो मिठुआ धीरे-धीरे भैरो की दुकान की तरफ गया। महफिल उठ चुकी थी। अंधेरा छाया हुआ था। जाड़े की रात, पत्ता तक न खड़कता था। दुकान के द्वार पर उपले जल रहे थे। ताड़ीखानों में आग कभी नहीं बुझती, पारसी पुरोहित भी इतनी सावधानी से आग की रक्षा न करता होगा। मिठुआ ने एक जलता हुआ उपला उठाया, और दुकान के छप्पर पर फेंक दिया। छप्पर में आग लग गई, तो मिठुआ बगटुट भागा और पंडाजी के दालान में मुंह ढांपकर सो रहा, मानो उसे कुछ खबर ही नहीं। जरा देर में ज्वाला प्रचंड हुई, सारा मुहल्ला आलोकित हो गया, चिड़ियां वृक्षों से उड़-उड़कर भागने लगीं, पेड़ों की डालें हिलने लगीं, तालाब का पानी सुनहरा हो गया, और बांसों की गांठें जोर-जोर से चिटकने लगीं। आध घंटे तक लंकादहन होता रहा, पर यह सारा शोर वन्य-रोदन के सदृश था। दुकान बस्ती से हटकर थी। भैरो नशे में बेसुध पड़ा था, बुढ़िया नाचते-नाचते थक गई थी। और कौन था, जो इस वक्त आग बुझाने जाता? अग्नि ने निर्विघ्न अपना काम समाप्त किया। मटके टूट गए, ताड़ी बह गई। जब जरा आग ठंडी हुई, तो कई कुत्तों ने आकर वहां विश्राम किया।

प्रातःकाल भैरो उठा, तो दुकान सामने न दिखाई दी। दुकान और उसके घर के बीच में दो फर्लांग का अंतर था, पर कोई वृक्ष न होने के कारण दुकान साफ नजर आती थी। उसे विस्मय हुआ, दुकान कहां गई। जरा और आगे बढ़ा, तो राख का ढेर दिखाई दिया। पांव-तले से मिट्टी निकल गई। दुकान में ताड़ी के सिवा बिक्री के रुपये भी थे। ढोल-मजीरा भी वहीं रखा रहता था। प्रत्येक वस्तु जलकर राख हो गई। मुहल्ले के लोग उधर तालाब में मुंह-हाथ धोने जाया करते थे। सब आ पहुंचे। दुकान सड़क पर थी। पथिक भी खड़े हो गए। मेला लग गया।

भैरों ने रोकर कहा—मैं तो मिट्टी में मिल गया।

ठाकुरदीन—भगवान् की लीला है। उधर वह तमासा दिखाया, इधर यह तमासा दिखाया। धन्य हो महाराज !

बजरंगी—किसी मिस्त्री की सरारत होगी। क्यों भैरो, किसी से अदावत तो नहीं थी?

भैरो—अदावत सारे मुहल्ले से है, किससे नहीं है। मैं जानता हूं, जिसकी यह बदमासी है। बंधवा न दिया, तो कहना। अभी एक को लिया है, अब दूसरे की पारी है।

जगधर दूर ही से आनंद ले रहा था। निकट न आया कि कहीं भैरो कुछ कह न बैठे, तो बात बढ़ जाए। ऐसा हार्दिक आनंद उसे अपने जीवन में कभी न प्राप्त हुआ था।

इतने में मिल के कई मजदूर आ गए। काला मिस्त्री बोला–भाई, माने या माने, मैं तो यही कहूंगा कि अंधे को किसी का इष्ट है।

ठाकुरदीन–इष्ट क्यों नहीं है। मैं तो बराबर यही कहता आता हूं। उससे जिसने बैर ठाना, उसने नीचा देखा।

भैरो–उसके इष्ट को मैं जानता हूं। जरा थानेदार आ जाएं, तो बता दूं, कौन इष्ट है।

बजरंगी जलकर बोला–अपनी बेर कैसी सूझ रही है ! क्या वह झोपड़ा न था, जिसमें पहले आग लगी? ईंट का जवाब पत्थर मिलता ही है। जो किसी के लिए गढ़ा खोदेगा, उसके लिए कुआं तैयार है। क्या उस झोपड़े में आग लगाते समय समझे थे कि सूरदास का कोई है ही नहीं?

भैरो–उसके झोपड़े में मैंने आग लगाई?

बजरंगी–और किसने लगाई?

भैरो–झूठे हो।

ठाकुरदीन–भैरो, क्यों सीनाजोरी करते हो। तुमने लगाई, या तुम्हारे किसी यार ने लगाई, एक ही बात है। भगवान् ने उसका बदला चुका दिया, तो रोते क्यों हो?

भैरो–सब किसी से समझूंगा।

ठाकुरदीन–यहां कोई तुम्हारा दबैल नहीं है।

भैरो होंठ चबाता हुआ चला गया। मानव-चरित्र कितना रहस्यमय है ! हम दूसरों का अहित करते हुए जरा भी नहीं झिझकते, किंतु जब दूसरों के हाथों हमें कोई हानि पहुंचती है, तो हमारा खून खौलने लगता है।

बत्तीस

सूरदास के मुकदमे का फैसला सुनने के बाद इन्द्रदत्त चले, तो रास्ते में प्रभु सेवक से मुलाकात हो गई। बातें होने लगीं।

इन्द्रदत्त–तुम्हारा क्या विचार है, सूरदास निर्दोष है या नहीं?

प्रभु सेवक–सर्वथा निर्दोष। मैं तो आज उसकी साधुता का कायल हो गया। फैसला सुनाने के वक्त तक मुझे विश्वास था कि अंधे ने जरूर इस औरत को बहकाया है, मगर उसके अंतिम शब्दों ने जादू का-सा असर किया। मैं तो इस विषय पर एक कविता लिखने का विचार कर रहा हूं।

इन्द्रदत्त–केवल कविता लिख डालने से काम न चलेगा। राजा साहब की पीठ में धूल लगानी पड़ेगी। उन्हें यह संतोष न होने देना चाहिए कि मैंने अंधे से चक्की पिसवाई। वह समझ रहे होंगे कि अंधा रुपये कहां से लाएगा। दोनों पर तीन सौ रुपये जुर्माना हुआ है, हमें किसी तरह जुर्माना आज ही अदा करना चाहिए। सूरदास जेल से निकले, तो सारे शहर में उसका जुलूस

निकालना चाहिए। इसके लिए दो सौ रुपये की और जरूरत होगी। कुल पांच सौ रुपये हों, तो काम चल जाए। बोलो, क्या देते हो?

प्रभु सेवक–जो उचित समझो, लिख लो।

इन्द्रदत्त–तुम पचास रुपये बिना किसी कष्ट के दे सकते हो?

प्रभु सेवक–और तुमने अपने नाम कितना लिखा है?

इन्द्रदत्त–मेरी हैसियत दस रुपये से अधिक देने की नहीं। रानी जाह्नवी से सौ रुपये ले लूंगा। कुंवर साहब ज्यादा नहीं, तो दस रुपये दे ही देंगे। जो कुछ कमी रह जाएगी, वह दूसरों से मांग ली जाएगी। संभव है, डॉक्टर गांगुली सब रुपये खुद ही दे दें, किसी से कुछ मांगना ही न पड़े।

प्रभु सेवक–सूरदास के मुहल्ले वालों से भी कुछ मिल जाएगा।

इन्द्रदत्त–उसे सारा शहर जानता है, उसके नाम पर दो-चार हजार रुपये मिल सकते हैं, पर इस छोटी-सी रकम के लिए मैं दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहता।

यों बातें करते हुए दोनों आगे बढ़ा कि सहसा इन्दु अपनी फिटन पर आती हुई दिखायी दी। इन्द्रदत्त को देखकर रुक गई और बोली–तुम कब लौटे? मेरे यहां नहीं आए !

इन्द्रदत्त–आप आकाश पर हैं, मैं पाताल में हूं, क्या बातें हों?

इन्दु–आओ, बैठ जाओ, तुमसे बहुत-सी बातें करनी हैं।

इन्द्रदत्त फिटन पर जा बैठा। प्रभु सेवक ने जेब से पचास रुपये का एक नोट निकाला और चुपके से इन्द्रदत्त के हाथ में रखकर क्लब को चल दिए।

इन्द्रदत्त–अपने दोस्तों से भी कहना।

प्रभु सेवक–नहीं भई, मैं इस काम का नहीं हूं। मुझे मांगना नहीं आता। कोई देता भी होगा, तो मेरी सूरत देखकर मुट्ठी बंद कर लेगा।

इन्द्रदत्त–(इन्दु से) आज तो यहां खूब तमाशा हुआ।

इन्दु–मुझे तो ड्रामा का-सा आनंद मिला। सूरदास के विषय में तुम्हारा क्या खयाल है?

इन्द्रदत्त–मुझे तो वह निष्कपट, सच्चा, सरल मनुष्य मालूम होता है।

इन्दु–बस बस, यही मेरा भी विचार है। मैं समझती हूं, उसके साथ अन्याय हुआ। फैसला सुनाते वक्त तक मैं उसे अपराधी समझती थी, पर उसकी अपील ने मेरे विचार में कायापलट कर दी। मैं अब तक उसे मक्कार, धूर्त, रंगा हुआ सियार समझती थी। उन दिनों उसने हम लोगों को कितना बदनाम किया। तभी से मुझे उससे घृणा हो गई थी। मैं उसे मजा चखाना चाहती थी। लेकिन आज ज्ञात हुआ कि मैंने उसके चरित्र को समझने में भूल की। वह अपनी धुन का पक्का, निर्भीक, निःस्पृह, सत्यनिष्ठ आदमी है, किसी से दबना नहीं जानता।

इन्द्रदत्त–तो इस सहानुभूति को क्रिया के रूप में भी लाइएगा? हम लोग आपस में चंदा करके जुर्माना अदा कर देना चाहते हैं। आप भी इस सत्-कार्य में योग देंगी?

इन्दु ने मुस्कराकर कहा–मैं मौखिक सहानुभूति ही काफी समझती हूं।

इन्द्रदत्त–आप ऐसा करेंगी, तो मेरा यह विचार पुष्ट हो जाएगा कि हमारे रईसों में नैतिक बल नहीं रहा। हमारे राव-रईस हर एक उचित और अनुचित कार्य में अधिकारियों की सहायता करते रहते हैं, इसीलिए जनता का उन पर से विश्वास उठ गया है। वह उन्हें अपना मित्र नहीं,

शत्रु समझती है। मैं नहीं चाहता कि आपकी गणना भी उन्हीं रईसों में हो। कम-से-कम मैंने आपको अब तक उन रईसों से अलग समझा है।

इन्दु ने गंभीर भाव से कहा—इन्द्रदत्त, मैं ऐसा क्यों कर रही हूं, इसका कारण तुम जानते हो। राजा साहब सुनेंगे, तो उन्हें कितना दु:ख होगा ! मैं उनसे छिपाकर कोई काम नहीं करना चाहती।

इन्द्रदत्त—राजा साहब से इस विषय में अभी मुझसे बातचीत नहीं हुई। लेकिन मुझे विश्वास है कि उनके भाव भी हमीं लोगों जैसे होंगे। उन्होंने इस वक्त कानूनी फैसला किया है। सच्चा फैसला उनके हृदय ने किया होगा। कदाचित् उनकी तरह न्यायपद पर बैठकर मैं भी वही फैसला करता, जो उन्होंने किया है। लेकिन वह मेरे ईमान का फैसला नहीं, केवल कानून का विधान होता। मेरी उनसे घनिष्ठता नहीं है, नहीं तो उनसे भी कुछ-न-कुछ ले मरता। उनके लिए भागने का कोई रास्ता नहीं था।

इन्दु—संभव है, राजा साहब के विषय में तुम्हारा अनुमान सत्य हो। मैं आज उनसे पूछूंगी।

इन्द्रदत्त—पूछिए, लेकिन मुझे भय है कि राजा साहब इतनी आसानी से न खुलेंगे।

इन्दु—तुम्हें भय है, और मुझे विश्वास है। लेकिन यह जानती हूं कि हमारे मनोभाव समान दशाओं में एक-से होते हैं, इसलिए आपको इंतजार के कष्ट में नहीं डालना चाहती। यह लीजिए, यह मेरी तुच्छ भेंट है।

यह कहकर इन्दु ने एक सावरेन निकालकर इन्द्रदत्त को दे दिया।

इन्द्रदत्त—इसे लेते हुए मुझे शंका होती है।

इन्दु—किस बात की?

इन्द्रदत्त—कि कहीं राजा साहब के विचार कुछ और ही हों।

इन्दु ने गर्व से सिर उठाकर कहा—इसकी कुछ परवा नहीं!

इन्द्रदत्त—हां, इस वक्त आपने रानियों की-सी बात कही। यह सावरेन सूरदास की नैतिक विजय का स्मारक है। आपका अनेक धन्यवाद। अब मुझे आज्ञा दीजिए। अभी बहुत चक्कर लगाना है। जुर्माने के अतिरिक्त और जो कुछ मिल जाए, उसे भी नहीं छोड़ना चाहता।

इन्द्रदत्त उतरकर जाना ही चाहते थे कि इन्दु ने जेब से दूसरा सावरेन निकालकर कहा—यह लो, शायद इससे तुम्हारे चक्कर में कुछ कमी हो जाए।

इन्द्रदत्त ने सावरेन जेब में रखा, और खुश-खुश चले। लेकिन इन्दु चिंतित-सी हो गई। उसे विचार आया—कहीं राजा साहब वास्तव में सूरदास को अपराधी समझते हों, तो मुझे जरूर आड़े हाथों लेंगे। खैर, होगा, मैं इतना दबना भी नहीं चाहती। मेरा कर्त्तव्य है सत्कार्य में उनसे दबाना। अगर कुविचार में पड़कर वह प्रजा पर अत्याचार करने लगें, तो मुझे उनसे मतभेद रखने का पूरा अधिकार है। बुरे कामों में उनसे दबना मनुष्य के पद से गिर जाना है। मैं पहले मनुष्य हूं, पत्नी, माता, बहन, बेटी पीछे।

इन्दु इन्हीं विचारों में मग्न थी कि मि० जॉन सेवक और उनकी स्त्री मिल गईं।

जॉन सेवक ने टोप उतारा। मिसेज सेवक बोलीं—हम लोग तो आप ही की तरफ जा रहे थे। इधर कई दिनों से मुलाकात नहीं हुई थी। जी लगा हुआ था। अच्छा हुआ राह ही में मिल गईं।

इन्दु—जी नहीं, मैं राह में नहीं मिली। यह देखिए, जाती हूं, आप जहां जाती हैं, वहीं जाइये।

जॉन सेवक—मैं तो हमेशा Compromise पसंद करता हूं। यह आगे पार्क आता है। आज बैंड भी होगा, वहीं जा बैठें।

इन्दु—यह Compromise पक्षपात-रहित तो नहीं है, लेकिन खैर।

पार्क में तीनों आदमी उतरे, और कुर्सियों पर जा बैठे। इन्दु ने पूछा—सोफिया का कोई पत्र आया था?

मिसेज सेवक—मैंने तो समझ लिया कि वह मर गई। मि० क्लार्क जैसा आदमी उसे न मिलेगा। जब तक यहां रही, टालमटोल करती रही। वहां जाकर विद्रोहियों से मिल बैठी। न जाने उसकी तकदीर में क्या है। क्लार्क से संबंध न होने का दु:ख मुझे हमेशा रुलाता रहेगा।

जॉन सेवक—मैं तुमसे हजार बार कह चुका, वह किसी से विवाह न करेगी। वह दांपत्य जीवन के लिए बनाई ही नहीं गई। वह आदर्शवादिनी है, और आदर्शवादी सदैव आनंद के स्वप्न ही देखा करता है, उसे आनंद की प्राप्ति नहीं होती। अगर कभी विवाह करेगी भी, तो कुंवर विनयसिंह से।

मिसेज सेवक—तुम मेरे सामने कुंवर विनयसिंह का नाम न लिया करो। क्षमा कीजिएगा रानी इन्दु, मुझे ऐसे बेजोड़ और अस्वाभाविक विवाह पसंद नहीं।

जॉन सेवक—पर ऐसे बेजोड़ और अस्वाभाविक विवाह कभी-कभी हो जाते हैं।

मिसेज सेवक—मैं तुमसे कहे देती हूं, और रानी इन्दु आप गवाह रहिएगा कि सोफी की शादी कभी विनयसिंह से न होगी।

जॉन सेवक—आपका इस विषय में क्या विचार है रानी इन्दु? दिल की बात कहिएगा।

इन्दु—मैं समझती हूं, लेडी सेवक का अनुमान सत्य है। विनय को सोफी से कितना ही प्रेम हो, पर वह माताजी की इतनी उपेक्षा न करेंगे। माताजी-सी दुखी स्त्री आज संसार में न होगी। ऐसा मालूम होता है, उन्हें जीवन में अब कोई आशा ही नहीं रही। नित्य गुमसुम रहती हैं। अगर किसी ने भूलकर भी विनय का जिक्र छेड़ दिया, तो मारे क्रोध के उनकी त्योरियां बदल जाती हैं। अपने कमरे से विनय का चित्र उतरवा डाला है। उनके कमरे का द्वार बंद करा दिया है, न कभी आप उसमें जाती हैं, न और किसी को जाने देती हैं, और मिस सोफिया का नाम ले लेना तो उन्हें चुटकी काट लेने के बराबर है। पिताजी को भी स्वयंसेवकों की संस्था से अब कोई प्रेम नहीं रहा। जातीय कामों से उन्हें कुछ अरुचि हो गई है। अहा ! आज बहुत अच्छी साइत में घर से चली थी। वह डॉक्टर गांगुली चले आ रहे हैं। कहिए, डॉक्टर साहब, शिमले से कब लौटे?

गांगुली—सरदी पड़ने लगी। अब वहां से सब कोई कूच हो गया। हम तो अभी आपकी माताजी के पास गया। कुंवर विनयसिंह के हाल पर उनको बड़ा दु:ख है।

जॉन सेवक—अबकी तो आपने काउंसिल में धूम मचा दी !

गांगुली—हां, अगर वहां भाषण करना, प्रश्न करना, बहस करना काम है, तो आप हमारा जितना बड़ाई करना चाहता है, करे, पर मैं उसे काम नहीं समझता, यह तो पानी चीरना है। काम उसको कहना चाहिए, जिससे देश और जाति का कुछ उपकार हो। ऐसा तो हमने कोई काम नहीं किया। हमारा तो अब वहां मन नहीं लगता। पहले तो सब आदमी एक नहीं होता, और कभी हो भी गया, तो गवर्नमेंट हमारा प्रस्ताव खारिज कर देता है। हमारा मेहनत खराब हो जाता है। यह तो लड़कों का खेल है। हमको नए कानून से बड़ी आशा थी, पर तीन-चार

साल उसका अनुभव करके देख लिया कि इससे कुछ नहीं होता। हम जहां तब था, वहीं अब भी है। मिलिटरी का खरच बढ़ता जाता है, उस पर कोई शंका करे, तो सरकार बोलता है, आपको ऐसा बात नहीं करना चाहिए। बजट बनाने लगता है, तो हर एक आइटेम में दो-चार लाख ज्यादा लिख देता है। हम काउंसिल में जब बहुत जोर देता है, तुम कैसे जीत सकता है? कभी हमारे बहुत जोर देने पर किफायत किया जाता है तो हमारा बात रखने के लिए वही फालतू रुपया निकाल देता है। मेंबर खुसी के मारे फूल जाता है—हम जीत गया, हम जीत गया। पूछो, तुम क्या जीत गया? तुम क्या जीतेगा? तुम्हारे पास जीतने का साधन ही नहीं है, तुम कैसे जीत सकता है? कभी हमारे बहुत जोर देने पर किफायत किया जाता है, तो हमारे भाइयों का नुकसान होता है। जैसे अब की हमने पुलिस-विभाग में पांच लाख काट दिया। मगर यह कमी बड़े-बड़े हाकिमों के भत्ते या तलब में नहीं किया गया। बिचारा चौकीदार, कांस्टेबल, थानेदार का तलब घटावेगा, जगह तोड़ेगा। इससे अब किफायत का बात कहते हुए भी डर लगता है कि इससे हमारे भाइयों का गरदन कटता है। सारा काउंसिल जोर देता रहा कि बंगाल की बाढ़ के सताए हुए आदमियों के सहायतार्थ बीस लाख मंजूर किया जाए, सारा काउंसिल कहता रहा कि मि० क्लार्क का उदयपुर से बदली कर दिया जाए, पर सरकार ने मंजूर नहीं किया। काउंसिल कुछ नहीं कर सकता। एक पत्ती तक नहीं तोड़ सकता। जो आदमी काउंसिल को बना सकता है, वही उसको बिगाड़ भी सकता है। भगवान् जिलाता है, तो भगवान् ही मारता है। काउंसिल को सरकार बनाता है, और वह सरकार की मुट्ठी में है। जब जाति द्वारा काउंसिल बनेगा, तब उससे देश का कल्यान होगा। यह सब जानता है, पर कुछ न करने से तो कुछ करते रहना अच्छा है। मरना भी मरना है, और खाट पर पड़े रहना भी मरना है, लेकिन एक अवस्था में कोई आशा नहीं रहता, दूसरी अवस्था में कुछ आशा रहता है। बस, इतना ही अंतर है, और कुछ नहीं।

इन्दु ने छेड़कर पूछा—जब आप जानते हैं कि वहां जाना व्यर्थ है, तो क्यों जाते हैं? क्या आप बाहर रहकर कुछ नहीं कर सकते?

गांगुली—(हंसकर) वही तो बात है इन्दुरानी, हम खाट पर पड़ा है, हिल नहीं सकता, बात नहीं कर सकता, खा नहीं सकता, लेकिन बाबा, यमराज को देखकर हम तो उठ भागेगा, रोएगा कि महाराज कुछ दिन और रहने दो। हमारा जिंदगी काउंसिल में गुजर गया, अब हमको कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखाई देता।

इन्दु—मैं तो ऐसी जिंदगी से मर जाना बेहतर समझूं। कम-से-कम यह तो आशा होगी कि कदाचित् आने वाला जीवन इससे अच्छा हो।

गांगुली—(हंसकर) हमको कोई कह दे कि मरकर तुम फिर इसी देश में आएगा, और फिर काउंसिल में जा सकेगा, तो हम यमराज से बोलेगा—बाबा,जल्दी कर। पर ऐसा तो कहता नहीं।

जॉन सेवक—मेरा विचार है कि नए चुनाव में व्यापार-भवन की ओर से खड़ा हो जाऊं।

गांगुली—आप किस दल में रहेगा?

जॉन सेवक—मेरा कोई दल न है और न होगा। मैं इसी विचार और उद्देश्य से जाऊंगा कि स्वदेशी व्यापार की रक्षा कर सकूं। मैं प्रयत्न करूंगा कि विदेशी वस्तुओं पर बड़ी कठोरता से कर लगाया जाए, इस नीति का पालन किए बिना व्यापार कभी सफल न होगा।

गांगुली—इंगलैंड को क्या करेगा?

जॉन सेवक–उसके साथ भी अन्य देशों का–सा व्यवहार होना चाहिए। मैं इंगलैंड की व्यावसायिक दासता का घोर विरोधी हूं।

गांगुलीं–(घड़ी देखकर) बहुत अच्छी बात है, आप खड़ा हो। अभी हमको यहां से अकेला जाना पड़ता है तब दो आदमी साथ–साथ जाएगा। अच्छा, अब जाता है। कई आदमियों से मिलना है।

डाक्टर गांगुली के बाद जॉन सेवक ने भी घर की राह ली। इन्दु मकान पर पहुंची, तो राजा साहब बोले–तुम कहां रह गईं?

इन्दु–रास्ते में डॉक्टर गांगुली और मि० जॉन सेवक मिल गए, बातें होने लगीं।

महेन्द्र–गांगुली को साथ क्यों न लाईं?

इन्दु–जल्दी में थे। आज तो इस अंधे ने कमाल कर दिया।

महेन्द्र–एक ही धूर्त है। जो उसके स्वभाव से परिचित न होगा, जरूर धोखे में आ गया होगा। अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए इससे उत्तम और कोई ढंग ध्यान ही में नहीं आ सकता। इसे चमत्कार कहना चाहिए। मानना पड़ेगा कि उसे मानव–चरित्र का पूरा ज्ञान है। निरक्षर होकर भी आज उसने कितने ही शिक्षित और विचारशील आदमियों को अपना भक्त बना लिया। यहां लोग उसका जुर्माना अदा करने के लिए चंदा जमा कर रहे हैं। सुना है, जुलूस भी निकालना चाहते हैं। पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि उसने उस औरत को बहकाया, और मुझे अफसोस है कि और कड़ी सजा क्यों न दी।

इन्दु–तो आपने चंदा भी न दिया होगा?

महेन्द्र–कभी–कभी तुम बेसिर–पैर की बातें करने लगती हो। चंदा कैसे देता, अपने मुंह में आप ही थप्पड़ मारता।

इन्दु–लेकिन मैंने तो दिया है। मुझे....

महेन्द्र–अगर तुमने दिया है, तो बुरा किया है।

इन्दु–मुझे यह क्या मालूम था कि....

महेन्द्र–व्यर्थ बातें न बनाओ। अपना नाम गुप्त रखने को तो कह दिया है?

इन्दु–नहीं, मैंने कुछ नहीं कहा।

महेन्द्र–तो तुमसे ज्यादा बेसमझ आदमी संसार में न होगा। तुमने इन्द्रदत्त को रुपये दिए होंगे। इन्द्रदत्त यों बहुत विनयशील और सहृदय युवक है, और मैं उसका दिल से आदर करता हूं। लेकिन इस अवसर पर वह दूसरों से चंदा वसूल करने के लिए तुम्हारा नाम उछालता फिरेगा। जरा दिल में सोचो, लोग क्या समझेंगे। शोक है। अगर इस वक्त मैं दीवार से सिर नहीं टकरा लेता, तो समझ लो कि बड़े धैर्य से काम ले रहा हूं। तुम्हारे हाथों मुझे सदैव अपमान ही मिला, और तुम्हारा यह कार्य तो मेरे मुख पर कालिमा का चिह्न है, जो कभी मिट नहीं सकता।

यह कहकर महेन्द्रकुमार निराश होकर आरामकुर्सी पर लेट गए, और छत की ओर ताकने लगे। उन्होंने दीवार से न टकराने में चाहे असीम धैर्य से काम लिया या न लिया हो, पर इन्दु ने अपने मनोभावों को दबाने में असीम धैर्य से जरूर काम लिया। जी में आता था कि कह दूं, मैं आपकी गुलाम नहीं हूं, मुझे यह बात संभव ही नहीं मालूम होती कि कोई ऐसा प्राणी भी हो सकता है, जिस पर ऐसी करुण अपील का कुछ असर ही न हो। मगर भय हुआ कि कहीं बात बढ़ न जाए। उसने चाहा कि कमरे से चली जाऊं और निर्दय प्रारब्ध को, जिसने मेरी शांति में

विघ्न डालने का ठेका-सा ले लिया है, पैरों तले कुचल डालूं, और दिखा दूं कि धैर्य और सहनशीलता से प्रारब्ध के कठोरतम आघातों का प्रतिकार किया जा समता है, किंतु ज्योंही वह द्वार की तरफ चली कि महेन्द्रकुमार फिर तनकर बैठ गए, और बोले—जाती कहां हो, क्या मेरी सूरत से भी घृणा हो गई? मैं तुमसे बहुत सफाई से पूछना चाहता हूं कि तुम इतनी निरंकुशता से क्यों काम करती हो? मैं तुमसे कितनी बार कह चुका हूं कि जिन बातों का संबंध मुझसे हो, वे मुझसे पूछे बिना न की जाया करें। हां, अपनी निजी बातों में तुम स्वाधीन हो; मगर तुम्हारे ऊपर मेरी अनुनय-विनय का कोई असर क्यों नहीं होता? क्या तुमने कसम खा ली है कि मुझे बदनाम करके, मेरे सम्मान को धूल में मिलाकर, मेरी प्रतिष्ठा को पैरों से कुचलकर तभी दम लोगी?

इन्दु ने गिड़गिड़ाकर कहा—ईश्वर के लिए इस वक्त मुझे कुछ कहने के लिए विवश न कीजिए। मुझसे भूल हुई या नहीं, इस पर मैं बहस नहीं करना चाहती। मैं माने लेती हूं कि मुझसे भूल हुई, और जरूर हुई। मैं उसका प्रायश्चित करने को तैयार हूं। अगर अब भी आपका जी न भरा हो, तो लीजिए, बैठी जाती हूं। आप जितनी देर तक और जो कुछ चाहें, कहें, मैं सिर न उठाऊंगी।

मगर क्रोध अत्यंत कठोर होता है। वह देखना चाहता है कि मेरा एक-एक वाक्य निशाने पर बैठता है या नहीं, वह मौन को सहन नहीं कर सकता। उसकी शक्ति अपार है, ऐसा कोई घातक-से-घातक शस्त्र नहीं है, जिससे बढ़कर काट करने वाले यंत्र उसकी शस्त्रशाला में न हों, लेकिन मौन वह यंत्र है, जिसके आगे उसकी सारी शक्ति विफल हो जाती है। मौन उसके लिए अजेय है। महेन्द्रकुमार चिढ़कर बोले—इसका यह आशय है कि मुझे बकवास का रोग हो गया है और कभी-कभी उसका दौरा हो जाया करता है?

इन्दु—यह आप खुद कहते हैं।

इन्दु से भूल हुई कि वह अपने वचन को निभा न सकी। क्रोध को एक चाबुक और मिला। महेन्द्र ने आंखें निकालकर कहा—यह मैं नहीं कहता, तुम कहती हो। आखिर बात क्या है? मैं तुमसे जिज्ञासा-भाव से पूछ रहा हूं कि तुम क्यों बार-बार वे ही काम करती हो, जिनसे मेरी निंदा और जग-हंसाई हो, मेरी मान-प्रतिष्ठा धूल में मिल जाए, मैं किसी को मुंह दिखाने लायक न रहूं? मैं जानता हूं, तुम जिद से ऐसा नहीं करतीं। मैं यहां तक कह सकता हूं, तुम मेरे आदेशानुसार चलने का प्रयास भी करती हो। किंतु फिर भी जो यह अपवाद हो जाता है, उसका क्या कारण है? क्या यह बात तो नहीं कि पूर्वजन्म में हम और तुम एक दूसरे के शत्रु थे, या विधाता ने मेरी अभिलाषाओं और मंसूबों का सर्वनाश करने के लिए तुम्हें मेरे पल्ले बांध दिया है? मैं बहुधा इसी विचार में पड़ा रहता हूं, पर कुछ रहस्य नहीं खुलता।

इन्दु—मुझे गुप्त ज्ञान रखने का तो दावा नहीं। हां, अगर आपकी इच्छा हो, तो मैं जाकर इन्द्रदत्त को ताकीद कर दूं कि मेरा नाम न जाहिर न होने पाए।

महेन्द्र—क्या बच्चों की-सी बातें करती हो ! तुम्हें यह सोचना चाहिए था कि यह चंदा किस नीयत से जमा किया जा रहा है। इसका उद्देश्य है मेरे न्याय का अपमान करना, मेरी ख्याति की जड़ खोदना। अगर मैं अपने सेवक की डांट-फटकार करूं, और तुम उसकी पीठ पर हाथ फेरो, तो मैं इसके सिवा और क्या समझ सकता हूं कि तुम मुझे कलंकित करना चाहती हो? चंदा तो खैर होगा ही, मुझे उसके रोकने का अधिकार नहीं है—जब तुम्हारे ऊपर कोई बस नहीं

है, तो दूसरों का क्या कहना—लेकिन मैं जुलूस कदापि न निकलने दूंगा। मैं उसे अपने हुक्म से बंद कर दूंगा, और अगर लोगों को ज्यादा तत्पर देखूंगा, तो सैनिक-सहायता लेने में भी संकोच न करूंगा।

इन्दु—आप जो उचित समझें, करें। मुझसे ये सब बातें क्यों कहते हैं?

महेन्द्र—तुमसे इसलिए कहता हूं कि तुम भी उस अंधे के भक्तों में हो। कौन कह सकता है तुमने उससे दीक्षा लेने का निश्चय नहीं किया है। आखिर रैदास भगत के चेले ऊंची जातों में भी तो हैं?

इन्दु—मैं दीक्षा को मुक्ति का साधन नहीं समझती, और शायद कभी दीक्षा न लूंगी। मगर हां, आप चाहे जितना बुरा समझें, दुर्भाग्यवश मुझे यह पूरा विश्वास हो गया है कि सूरदास निरपराध है। अगर यही उसकी भक्ति है, तो मैं अवश्य उसकी भक्त हूं!

महेन्द्र—तुम कल जुलूस में तो न जाओगी?

इन्दु—जाना तो चाहती थी, पर अब आपकी खातिर से न जाऊंगी। अपने सिर पर नंगी तलवार लटकते नहीं देख सकती।

महेन्द्र—अच्छी बात है, इसके लिए तुम्हें अनेक धन्यवाद।

इन्दु अपने कमरे में आकर लेट गई। उसका चित्त बहुत खिन्न हो रहा था। वह देर तक राजा साहब की बातों पर विचार करती रही, फिर आप-ही-आप बोली—भगवन्, यह जीवन असह्य हो गया है। या तो तुम इनके हृदय को उदार कर दो, या मुझे संसार से उठा लो। इन्द्रदत्त इस वक्त न जाने कहां होगा? क्यों न उसके पास एक रुक्का भेज दूं कि खबरदार, मेरा नाम जाहिर न होने पाए! मैंने इनसे नाहक कह दिया कि चंदा दिया। क्या जानती थी कि यह गुल खिलेगा!

उसने तुरंत घंटी बजाई, नौकर अंदर आकर खड़ा हो गया। इन्दु ने रुक्का लिखा—प्रिय इन्द्र, मेरे चंदे को किसी पर जाहिर मत करना, नहीं तो मुझे बड़ा दु:ख होगा। मुझे बहुत विवश होकर ये शब्द लिखने पड़े हैं।

फिर रुक्के को नौकर को देकर बोली—इन्द्रदत्त बाबू का मकान जानता है?

नौकर—होई तो कहूं सहर में न? पूछ लेबे।

इन्दु—शहर में तो शायद उम्र-भर उनके घर का पता न लगे।

नौकर—आप चिट्ठी तो दें, पता तो हम लगाउब, लगी न का कहीं?

इन्दु—तांगा ले लेना, काम जल्दी का है।

नौकर—हमार गोड़ तांगा से कम थोरे हैं। का हम कौनो तांगा ससुर से कम चलित है!

इन्दु—बाजार चौक से होते हुए मेरे घर तक जाना। बीस बिस्वे वह तुम्हें मेरे घर ही पर मिलेंगे। इन्द्रदत्त को देखा है? पहचानता है न?

नौकर—जेहका एक बेर देख लेई, ओहका जनम-भर न भूली। इंदर बाबू का तो सैकरन बेर देखा है।

इन्दु—किसी को यह खत मत दिखाना।

नौकर—कोऊ देखी कसस, पहले ओकी आंखि न फोड़ डारब?

इन्दु ने रुक्का दिया और नौकर चला गया। तब वह फिर लेट गई, और वे ही बातें सोचने लगी—मेरा यह अपमान इन्हीं के कारण हो रहा है। इन्द्र अपने दिल में क्या सोचगा? यही न

कि राजा साहब ने इसे डांटा होगा। मानो मैं लौंडी हूं, जब चाहते हैं डांट बता देते हैं। मुझे कोई काम करने की स्वाधीनता नहीं है। उन्हें अख्तियार है, जो चाहे, करें। मैं उनके इशारों पर चलने के लिए मजबूर हूं। कितनी अधोगति है।

यह सोचते ही वह तेजी से उठी और घंटी बजाई। लौंडी आकर खड़ी हो गई। इन्दु बोली—देख, भीखा चला तो नहीं गया? मैंने उसे एक रुक्का दिया है। जाकर उससे वह रुक्का मांग ला। अब न भेजूंगी। चला गया हो, तो किसी को साइकिल पर दौड़ा देना। चौक की तरफ मिल जायगा।

लौंडी चली गई और जरा देर में भीखा को लिए हुए आ पहुंची। भीखा बोला—जो छिन-भर और न जात, तो हम घर मां न मिलित।

इन्दु—काम तो तुमने जुर्माने का किया है कि इतना जरूरी खत और अभी तक घर में पड़े रहे। लेकिन इस वक्त यही अच्छा हुआ। यह रुक्का अब न जाएगा, मुझे दो।

उसने रुक्का लेकर फाड़ डाला। तब आज का समाचार-पत्र खोलकर देखने लगी। पहला ही शीर्षक था—शास्त्रीजी की महत्त्वपूर्ण वक्तृता। इन्दु ने पत्र को नीचे डाल दिया—यह महाशय तो शैतान से ज्यादा प्रसिद्ध हो गए। जहां देखो, वहीं शास्त्री। ऐसे मनुष्य की योग्यता की चाहे जितनी प्रशंसा की जाए, पर उसका सम्मान नहीं किया जा सकता। शास्त्री का नाम आते ही मुझे इनकी याद आ जाती है। जो आदमी जरा-जरा से मतभेद पर सिर हो जाए, दाल में जरा-सा नमक ज्यादा हो जाने पर स्त्री को घर से निकाल दे, जिसे दूसरों के मनोभावों का जरा भी लिहाज न हो, जिसे जरा भी चिंता न हो कि मेरी बातों से किसी के दिल पर क्या असर होगा, वह भी कोई आदमी है। हो सकता है कि कल कहने लगें, अपने पिता से मिलने मत जाओ। मानो मैं इनके हाथों बिक गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल उसने गाड़ी तैयार कराई, और दुशाला ओढ़कर घर से निकली। महेन्द्रकुमार बाग में टहल रहे थे। यह उनका नित्य का नियम था। इन्दु को जाते देखा, तो पूछा—इतने सबेरे कहां?

इन्दु ने दूसरी ओर ताकते हुए कहा—जाती हूं आपकी आज्ञा का पालन करने। इन्द्रदत्त से रुपये वापस लूंगी।

महेन्द्र—इन्दु, सच कहता हूं, तुम मुझे पागल बना दोगी।

इन्दु—आप मुझे कठपुतलियों की तरह नचाना चाहते हैं। कभी इधर, कभी उधर?

सहसा इन्द्रदत्त सामने से आते हुए दिखाई दिए। इन्दु उनकी ओर लपककर चली, मानो अभिवादन करने जा रही है, और फाटक पर पहुंचकर बोली—इन्द्रदत्त, सच कहना, तुमने किसी से मेरे चंदे की चर्चा तो नहीं की?

इन्द्रदत्त सिटपिटा-सा गया, जैसे कोई आदमी दुकानदार को पैसे की जगह रुपया दे आए। बोला—आपने मुझे मना तो नहीं किया था?

इन्दु—तुम झूठे हो, मैंने मना किया था।

इन्द्रदत्त—इन्दुरानी, मुझे खूब याद है कि आपने मना नहीं किया था। हां, मुझे स्वयं बुद्धि से काम लेना चाहिए था। इतनी भूल जरूर मेरी है।

इन्दु—(धीरे से) तुम महेन्द्र से इतना कह सकते हो कि मैंने इनकी चर्चा किसी से नहीं कि? मुझ पर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी। बड़े नैतिक संकट में पड़ी हुई हूं।

यह कहते-कहते इन्दु की आंखें डबडबा आईं। इन्द्रदत्त वातावरण ताड़ गया! बोला—हां, कह दूंगा—आपकी खातिर से।

एक क्षण में इन्द्रदत्त राजा साहब के पास जा पहुंचा। इन्दु घर चली गई।

महेन्द्रकुमार ने पूछा—कहिए महाशय, इस वक्त कैसे कष्ट किया?

इन्द्रदत्त—मुझे तो कष्ट नहीं हुआ, आपको कष्ट देने आया हूं। क्षमा कीजिएगा। यद्यपि यह नियम-विरुद्ध है, पर मेरी आपसे प्रार्थना है कि सूरदास और सुभागी का जुर्माना आप इसी वक्त मुझसे ले लें, और उन दोनों को रिहा करने का हुक्म दे दें। कचहरी अभी देर से खुलेगी। मैं इसे आपकी विशेष कृपा समझूंगा।

महेन्द्रकुमार—हां, नियम-विरुद्ध तो है, लेकिन तुम्हारा लिहाज करना पड़ता है? रुपये मुनीम को दे दो, मैं रिहाई का हुक्म लिख देता हूं। कितने रुपये जमा किये?

इन्द्रदत्त—बस, शाम को चुने हुए सज्जनों के पास गया था। कोई पांच सौ रुपये हो गए।

महेन्द्रकुमार—तब तो तुम इस कला में निपुण हो। इन्दुरानी का नाम देखकर न देने वालों ने भी दिए होंगे।

इन्द्रदत्त—मैं इन्दुरानी के नाम का इससे ज्यादा आदर करता हूं। अगर उनका नाम दिखाता, तो पांच सौ रुपये न लाता, पांच हजार लाता।

महेन्द्रकुमार—अगर यह सच है, तो तुमने मेरी आबरू रख ली।

इन्द्रदत्त—मुझे आपसे एक याचना और करनी है। कुछ लोग सूरदास को इज्जत के साथ उसके घर पहुंचाना चाहते हैं। संभव है, दो-चार सौ दर्शक जमा हो जाएं। मैं आपसे इसी की आज्ञा चाहता हूं।

महेन्द्रकुमार—जुलूस निकालने की आज्ञा नहीं दे सकता। शांति-भंग हो जाने की शंका है।

इन्द्रदत्त—मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि पत्ता तक न हिलेगा।

महेन्द्रकुमार—यह असंभव है।

इन्द्रदत्त—मैं इसकी जमानत दे सकता हूं।

महेन्द्रकुमार—यह नहीं हो सकता।

इन्द्रदत्त समझ गया कि राजा साहब से अब ज्यादा आग्रह करना व्यर्थ है। जाकर मुनीम को रुपये दिए, और तांगे की ओर चला। सहसा राजा साहब ने पूछा—जुलूस तो न निकलेगा न?

इन्द्रदत्त—निकलेगा। मैं रोकना चाहूं, तो भी नहीं रोक सकता।

इन्द्रदत्त वहां से अपने मित्रों को सूचना देने के लिए चले। जुलूस का प्रबंध करने में घंटों की देर लग गई। इधर उनके जाते ही राजा साहब ने जेल के दारोगा को टेलिफोन कर दिया कि सूरदास और सुभागी छोड़ दिए जाएं, और उन्हें बंद गाड़ी में बैठाकर उनके घर पहुंचा दिया जाए। जब इन्द्रदत्त सवारी, बाजे आदि लिए जेल पहुंचे, तो मालूम हुआ, पिंजरा खाली है, चिड़ियां उड़ गईं। हाथ मलकर रह गए। उन्हीं पांवों पांडेपुर चले। देखा, तो सूरदास एक नीम के नीचे राख के ढेर के पास बैठा हुआ है। एक ओर सुभागी सिर झुकाए खड़ी है। इन्द्रदत्त को देखते ही जगधर और अन्य कई आदमी इधर-उधर से आकर जमा हो गए।

इन्द्रदत्त—सूरदास, तुमने तो बड़ी जल्दी की। वहां लोग तुम्हारा जुलूस निकालने की

तैयारियां किए हुए थे। राजा साहब ने बाजी मार ली। अब बतलाओ, वे रुपये क्या हों, जो जुलूस के खर्च के लिए जमा किए गए थे?

सूरदास—अच्छा ही हुआ कि मैं यहां चुपके से आ गया। नहीं तो सहर-भर में घूमना पड़ता। जुलूस बड़े-बड़े आदमियों का निकलता है कि अंधे भिखारियों का? आप लोगों ने जरीबाना देकर छुड़ा दिया, यही कौन कम धरम किया?

इन्द्रदत्त—अच्छा बताओ, ये रुपये क्या किए जाएं? तुम्हें दे दूं?

सूरदास—कितने रुपये होंगे?

इन्द्रदत्त—कोई तीन सौ होंगे।

सूरदास—बहुत हैं। इतने में भैरो की दूकान मजे में बन जाएगी।

जगधर को बुरा लगा, बोला—पहले अपनी झोंपड़ी की तो फिकिर करो !

सूरदास—मैं इसी पेड़ के नीचे पड़ रहा करूंगा, या पंडाजी के दालान में।

जगधर—जिसकी दूकान जली है, वह बनवाएगा, तुम्हें क्या चिंता है?

सूरदास—जली तो है मेरे ही कारन !

जगधर—तुम्हारा घर भी तो जला है !

सूरदास—यह भी बनेगा, लेकिन पीछे से। दूकान न बनी, तो भैरो को कितना घाटा होगा। मेरी भीख तो एक दिन भी बंद न होगी।

जगधर—बहुत सराहने से भी आदमी का मन बिगड़ जाता है। तुम्हारी भलमनसी का लोग बखान करने लगे, तो अब तुम सोचते होगे कि ऐसा काम करूं, जिसमें और बड़ाई हो। इस तरह दूसरों को ताली पर नाचना न चाहिए।

इन्द्रदत्त—सूरदास, तुम इन लोगों को बकने दो, तुम ज्ञान-पक्ष को मत छोड़ो। ये रुपये तुम्हारे पास रखे जाता हूं, जो इच्छा हो करना।

इन्द्रदत्त चला गया, तो सुभागी ने सूरदास से कहा—उसकी दूकान बनवाने का नाम न लेना।

सूरदास—मेरे घर से पहले उसकी दूकान बनेगी। यह बदनामी सिर पर कौन ले कि सूरदास ने भैरो का घर जलवा दिया। मेरे मन में यह बात समा गई है कि हमीं में से किसी ने उसकी दूकान जलाई।

सुभागी—उससे तुम कितना ही दबो, पर वह तुम्हारा दुसमन ही बना रहेगा। कुत्ते की पूंछ कभी सीधी नहीं होती।

सूरदास—तुम दोनों फिर एक हो जाओगे, तब तुझसे पूछूंगा।

सुभागी—भगवान् मार डालें, पर उसका मुंह न दिखावें।

सूरदास—मैं कहे देता हूं, एक दिन तू भैरो के घर की देवी बनेगी।

सूरदास रुपये लिए हुए भैरो के घर की ओर चला। भैरो रपट करने को जाना तो चाहता था, पर शंका हो रही थी कि कहीं सूरदास की झोंपड़ी की भी बात चली, तो क्या जवाब दूंगा। बार-बार इरादा करके रुक जाता था। इतने में सूरदास को सामने से आते देखा, तो हक्का-बक्का रह गया। विस्मित हाकर बोला—अरे, क्या जरीबाना दे आया क्या?

बुढ़िया बोली—बेटा, इसे जरूर किसी देवता का इष्ट है, नहीं तो वहां से कैसे भाग आता !

सूरदास ने बढ़कर कहा—भैरो, मैं ईश्वर को बीच में डालकर कहता हूं, मुझे कुछ नहीं

मालूम कि तुम्हारी दूकान किसने जलाई। तुम मुझे चाहे जितना नीच समझो, पर मेरी जानकारी में यह बात कभी न होने पाती। हां, इतना कह सकता हूं कि यह किसी मेरे हितू का काम है।

भैरो–पहले यह बताओ कि तुम छूट कैसे आए? मुझे तो यही बड़ा अचरज है।

सूरदास–भगवान् की इच्छा। सहर के कुछ धर्मात्मा आदमियों ने आपस में चंदा करके मेरा जरीबाना भी दे दिया, और कोई तीन सौ रुपये जो बच रहे हैं, मुझे दे गए हैं। मैं तुमसे यह कहने आया हूं कि तुम ये रुपये लेकर अपनी दूकान बनवा लो, जिसमें तुम्हारा हरज न हो। मैं सब रुपये ले आया हूं।

भैरो भौंचक्का होकर उसकी ओर ताकने लगा, जैसे कोई आदमी आकाश से मोतियों की वर्षा होते देखे। उसे शंका हो रही थी इन्हें बटोरूं या नहीं, इनमें कोई रहस्य तो नहीं है, इनमें कोई जहरीला कीड़ा तो नहीं छिपा है, कहीं इनको बटोरने से मुझ पर कोई आफत तो न आ जाएगी। उसके मन में प्रश्न उठा, यह अंधा सचमुच मुझे रुपये देने के लिए लाया है, या मुझे ताना दे रहा है। जरा इसका मन टटोलना चाहिए। बोला–तुम अपने रुपये रखो, यहां कोई रुपयों के भूखे नहीं हैं। प्यासों मरते भी हों, तो दुसमन के हाथ से पानी न पिएं।

सूरदास–भैरो, हमारी-तुम्हारी दुसमनी कैसी? मैं तो किसी को अपना दुसमन नहीं देखता। चार दिन की जिंदगानी के लिए क्या किसी से दुसमनी की जाय! तुमने मेरे साथ कोई बुराई नहीं की। तुम्हारी जगह मैं होता, और समझता कि तुम मेरी घरवाली को बहकाए लिए जाते हो, तो मैं भी वही करता, जो तुमने किया। अपनी आबरू किसको प्यारी नहीं होती! जिसे अपनी आबरू प्यारी न हो, उसकी गिनती आदमियों में नहीं, पसुओं में है। मैं तुमसे सच कहता हूं, तुम्हारे ही लिए मैंने ये रुपये लिए, नहीं तो मेरे लिए तो पेड़ की छांह बहुत थी। मैं कहता हूं, अभी तुम्हें मेरे ऊपर संदेह हो रहा है, लेकिन कभी-न-कभी तुम्हारा मन मेरी ओर से साफ हो जायगा। ये रुपये लो, और भगवान् का नाम लेकर दूकान बनवाने में हाथ लगा दो। कम पड़ेंगे तो जिस भगवान् ने इतनी मदद की है, वही भगवान् और मदद भी करेंगे।

भैरो को इन वाक्यों में सहृदयता और सज्जनता की झलक दिखाई दी। सत्य विश्वासोत्पादक होता है। नरम होकर बोला–आओ, बैठो, चिलम पियो। कुछ बातें हों, तो समझ में आए। तुम्हारे मन का भेद ही नहीं खुलता। दुसमन के साथ तो कोई भलाई नहीं करता, तुम मेरे साथ क्यों इतनी मेहरबानी करते हो?

सूरदास–तुमने मेरे साथ कौन-सी दुसमनी की? तुमने वही किया, जो तुम्हारा धरम था। मैं रात-भर हिरासत में बैठा यही सोचता रहा कि तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हो, मैंने तो तुम्हारे साथ कोई बुराई नहीं की, तो मुझे मालूम हुआ कि तुम मेरे साथ कोई बुराई नहीं कर रहे हो। यही तुम्हारा धरम है। औरत के पीछे तो खून हो जाता है। तुमने नालस ही कर दी, तो कौन बुरा काम किया। बस, अब तुमसे मेरी यही बिनती है कि जिस तरह कल भरी अदालत में पंचों ने मुझे निरपराध कह दिया, उसी तरह तुम भी मेरी ओर से अपना मन साफ कर लो। मेरी इससे भी बड़ी दुर्गता हो, अगर मैंने तुम्हारे साथ कोई घात किया हो। हां, मुझसे एक ही बात नहीं हो सकती। मैं सुभागी को अपने घर से निकाल नहीं सकता। डरता हूं कि कोई आड़ न रहेगी, तो न जाने उसकी क्या दसा हो। मेरे यहां रहेगी, तो कौन जाने, कभी तुम्हीं उसे फिर रख लो।

भैरो का मलिन हृदय इस आंतरिक निर्मलता से प्रतिबिंबित हो गया। आज पहली बार

उसे सूरदास की नेकनीयती पर विश्वास हुआ। सोचा—अगर इसका दिल साफ न होता, तो मुझसे ऐसी बातें क्यों करता? मेरा कोई डर तो इसे है नहीं। मैं जो कुछ कर सकता था, कर चुका। इसके साथ तो सारा सहर है। सबों ने जरीबाना अदा कर दिया। ऊपर से कई सौ रुपये और दे गए। मुहल्ले में भी उसकी धाक फिर बैठ गई। चाहे तो बात-की-बात में मुझे बिगाड़ सकता है। नीयत साफ न होती, तो अब सुभागी के साथ आराम से रहता। अंधा है, अपाहिज है, भीख मांगता है, उसकी कितनी मरजाद है, बड़े-बड़े आदमी आवभगत करते हैं! मैं कितना अधम, नीच आदमी हूं, पैसे के लिए रात-दिन दगा-फरेब करता रहता हूं। कौन-सा पाप है, जो मैंने नहीं किया। इस बिचारे का घर जलाया, एक बार नहीं, दो बार; इसके रुपये उठा ले गया। यह मेरे साथ नेकी ही करता चला आता है। सुभागी के बारे में मुझे सक-ही-सक था। अगर कुछ नीयत बद होती, तो इसका हाथ किसने पकड़ा था, सुभागी को खुले खजाने रख लेता। अब तो अदालत कचहरी का भी डर नहीं रहा। यह सोचता हुआ वह सूरदास के पास आकर बोला—सूरे, अब तक मैंने तुम्हारे साथ जो बुराई-भलाई की, उसे माफ करो। आज से अगर तुम्हारे साथ कोई बुराई करूं, तो भगवान मुझसे समझें। ये रुपये मुझे मत दो, मेरे पास रुपये हैं। ये भी तुम्हारे ही रुपये हैं। दुकान बनवा लूंगा। सुभागी पर भी मुझे अब कोई संदेह नहीं रहा। मैं भगवान को बीच में डालकर कहता हूं, अब मैं कभी उसे कोई बात तक न कहूंगा। मैं अब तक धोखे में पड़ा हुआ था। सुभागी को मेरे यहां आने पर राजी कर दो। वह तुम्हारी बात को नाही न करेगी।

सूरदास—राजी ही है, बस उसे यही डर है कि तुम फिर मारने-पीटने लगोगे।

भैरो—नहीं सूरे, अब मैं उसे भी पहचान गया। मैं उसके जोग नहीं था। उसका ब्याह तो किसी धरमात्मा आदमी से होना चाहिए था। (धीरे से) आज तुमसे कहता हूं, पहली बार मैंने ही तुम्हारे घर में आग लगाई थी, और तुम्हारे रुपये चुराए थे।

सूरदास—उन बातों को भूल जाओ भैरो। मुझे सब मालूम है। संसार में कौन है, जो कहे कि मैं गंगाजल हूं। जब बड़े-बड़े साधू-संन्यासी माया-मोह में फंसे हुए हैं, तो हमारी तुम्हारी क्या बात है! हमारी बड़ी भूल यही है कि खेल को खेल की तरह नहीं खेलते। खेल में धांधली करके कोई जीत ही जाए, तो क्या हाथ आएगा? खेलना तो इस तरह चाहिए कि निगाह जीत पर रहे, पर हार से घबराए नहीं, ईमान को न छोड़े। जीतकर इतना न इतराए कि अब कभी हार होगी ही नहीं। यह हार-जीत तो जिंदगानी के साथ है। हां, एक सलाह की बात कहता हूं। तुम ताड़ी की दूकान छोड़कर कोई दूसरा रोजगार क्यों नहीं करते?

भैरो—जो कहो, वह करूं। यह रोजगार है खराब। रात-दिन जुआरी, चोर, बदमास आदमियों का ही साथ रहता है। उन्हीं की बातें सुनो, उन्हीं के ढंग सीखो। अब मुझे मालूम हो रहा है कि इसी रोजगार ने मुझे चौपट किया। बताओ, क्या करूं।

सूरदास—लकड़ी का रोजगार क्यों नहीं कर लेते? बुरा नहीं है। आजकल यहां परदेसी बहुत आयंगे, बिक्री भी अच्छी होगी। जहां ताड़ी की दूकान थी, वहीं एक बाड़ा बनवा दो और इन रुपयों से लकड़ी का काम करना सुरू कर दो।

भैरो—बहुत अच्छी बात है। मगर ये रुपये अपने ही पास रखो। मेरे मन का क्या ठिकाना। रुपये पाकर कोई और बुराई न कर बैठूं। मेरे-जैसे आदमी को तो कभी आधे पेट के सिवा भोजन न मिलना चाहिए। पैसे हाथ में आए, और सनक सवार हुई।

सूरदास—मेरे घर न द्वार, रखूंगा कहां?

भैरो—इससे तुम अपना घर बनवा लो।

सूरदास—तुम्हें लकड़ी की दूकान से नफा हो, तो बनवा देना।

भैरो—सुभागी को समझा दो।

सूरदास—समझा दूंगा।

सूरदास चला गया। भैरो घर में गया, तो बुढ़िया बोली—तुझसे मेल करने आया था न?

भैरो—हां, क्यों न मेल करेगा, मैं बड़ा लाट हूं न। बुढ़ापे में तुझे और कुछ नहीं सूझता। यह आदमी नहीं साधु है।

तेंतिस

फैक्टरी करीब-करीब तैयार हो गई थी। अब मशीनें गड़ने लगीं। पहले तो मजदूर-मिस्त्री आदि प्राय: मिल के बरामदों ही में रहते थे, वहीं पेड़ों के नीचे खाना पकाते और सोते, लेकिन जब उनकी संख्या बहुत बढ़ गई, तो मुहल्ले में मकान ले-लेकर रहने लगे। पांड़ेपुर छोटी-सी बस्ती तो थी ही, वहां इतने मकान कहां थे, नतीजा यह हुआ कि मुहल्ले वाले किराए के लालच से परदेसियों को अपने-अपने घरों में ठहराने लगे। कोई परदे की दीवार खिंचवा लेता था, कोई खुद झोपड़ा बनाकर उसमें रहने लगता, और मकान भड़ैतों को दे देता। भैरो ने लकड़ी की दुकान खोल ली थी। वह अपनी मां के साथ वहीं रहने लगा, अपना घर किराए पर दे दिया। ठाकुरदीन ने अपनी दुकान के सामने एक टट्टी लगाकर गुजर करना शुरू किया, उसके घर में एक ओवरसीयर आ डटे। जगधर सबसे लोभी था, उसने सारा मकान उठा दिया, और आप एक फूस के छप्पर में निर्वाह करने लगा। नायकराम के बरामदे में तो नित्य एक बरात ठहरती थी। यहां तक लोभ ने लोगों को घेरा कि बजरंगी ने भी मकान का एक हिस्सा उठा दिया। हां, सूरदास ने किसी को नहीं टिकाया। वह अपने नए मकान में, जो इन्दुरानी के गुप्तदान से बना था, सुभागी के साथ रहता था। सुभागी अभी तक भैरो के साथ रहने पर राजी न हुई थी। हां, भैरो की आमदरफ्त अब सूरदास के घर अधिक रहती थी।

कारखाने में अभी मशीनें न गड़ी थीं, पर उसका फैलाव दिन-दिन बढ़ता जाता था। सूरदास की बाकी पांच बीघे जमीन भी उसी धारा के अनुसार मिल के अधिकार में आ गई। सूरदास ने सुना, तो हाथ मलकर रह गया। पछताने लगा कि जॉन साहब ही से क्यों न सौदा कर लिया। पांच हजार देते थे। अब बहुत मिलेंगे, दो-चार सौ रुपये मिल जाएंगे। अब कोई आंदोलन करना उसे व्यर्थ मालूम होता था। जब पहले ही कुछ न कर सका, तो अबकी क्या कर लूंगा। पहले ही यह शंका थी, वह पूरी हो गई।

दोपहर का समय था। सूरदास एक पेड़ के नीचे बैठा झपकियां ले रहा था कि इतने में तहसील के एक चपरासी ने आकर उसे पुकारा और एक सरकारी परवाना दिया। सूरदास समझ गया कि हो-न-हो जमीन ही का कुछ झगड़ा है। परवाना लिए हुए मिल में आया कि किसी बाबू से पढ़वाए। मगर कचहरी की सुबोध लिपि बाबुओं से क्या चलती। कोई कुछ बता न सका। हारकर लौटा आ रहा था कि प्रभु सेवक ने देख लिया। तुरंत अपने कमरे में बुला लिया, और

परवाने को देखा। लिखा हुआ था—अपनी जमीन के मुआवजे के एक हजार रुपये तहसील में आकर ले जाओ।

सूरदास—कुल एक हजार है।

प्रभु सेवक—हां, इतना ही तो लिखा है।

सूरदास—तो मैं रुपये लेने न जाऊंगा। साहब ने पांच हजार देने कहे थे, उसके एक हजार रहे, घूस-घास में सौ-पचास और उड़ जाएंगे। सरकार का खजाना खाली है, भर जाएगा।

प्रभु सेवक—रुपये न लोगे, तो जब्त हो जाएंगे। यहां तो सरकार इसी ताक में रहती है कि किसी तरह प्रजा का धन उड़ा ले। कुछ टैक्स के बहाने से, कुछ रोजगार के बहाने से, कुछ किसी बहाने से हजम कर लेती है।

सूरदास—गरीबों की चीज लेती है, तो बजार-भाव से दाम न देना चाहिए? एक तो जबरदस्ती जमीन ले ली, उस पर मनमाना दाम दे दिया। यह तो कोई न्याय नहीं है।

प्रभु सेवक—सरकार यहां न्याय करने नहीं आई है भाई, राज्य करने आई है। न्याय करने से उसे कुछ मिलता है? कोई समय वह था, जब न्याय को राज्य की बुनियाद समझा जाता था। अब वह जमाना नहीं है। अब व्यापार का राज्य है, और जो इस राज्य को स्वीकार न करे, उसके लिए तारों का निशाना मारने वाली तोपें हैं। तुम क्या कर सकते हो? दीवानी में मुकदमा दायर करोगे, वहां भी सरकार ही के नौकर-चाकर न्याय-पद पर बैठे हुए हैं।

सूरदास—मैं कुछ न लूंगा। जब राजा ही अधरम करने लगा, तो परजा कहां तक जान बचाती फिरेगी?

प्रभु सेवक—इससे फायदा क्या? एक हजार मिलते हैं, ले लो, भागते भूत की लंगोटी ही भली।

सहसा इन्द्रदत्त आ पहुंचे, और बोले—प्रभु, आज डेरा कूच है, राजपूताना जा रहा हूं।

प्रभु सेवक—व्यर्थ जाते हो। एक तो ऐसी सख्त गरमी, दूसरे वहां की दशा अब बड़ी भयानक हो रही है। नाहक कहीं फस-फसा जाओगे।

इन्द्रदत्त—बस, एक बार विनयसिंह से मिलना चाहता हूं। मैं देखना चाहता हूं कि उनके स्वभाव, चरित्र, आचार-विचार में इतना परिवर्तन, नहीं रूपांतर, कैसे हो गया।

प्रभु सेवक—जरूर कोई-न-कोई रहस्य है। प्रलोभन में पड़ने वाला आदमी तो नहीं है। मैं तो उसका परम भक्त हूं। अगर वह विचलित हुए, तो मैं समझ जाऊंगा कि धर्मनिष्ठा का संसार से लोप हो गया।

इन्द्रदत्त—यह न कहो प्रभु, मानव-चरित्र बहुत ही दुर्बोध वस्तु है। मुझे तो विनय की कायापलट पर इतना क्रोध आता है कि पाऊं, तो गोली मार दूं। हां, संतोष इतना ही है कि उनके निकल जाने का इस संस्था पर कोई असर नहीं पड़ सकता। तुम्हें तो मालूम है, हम लोगों ने बंगाल में प्राणियों के उद्धार के लिए कितना भगीरथ प्रयत्न किया। कई-कई दिन तक तो हम लोगों को दाना न मयस्सर होता था।

सूरदास—भैया, कौन लोग इस भांति गरीबों का पालन करते हैं?

इन्द्रदत्त—अरे सूरदास ! तुम यहां कोने में खड़े हो ! मैंने तो तुम्हें देखा ही नहीं। कहो, सब कुशल है न?

सूरदास—सब भगवान् की दया है। तुम अभी किन लोगों की बात कह रहे थे?

इन्द्रदत्त–अपने ही साथियों की। कुंवर भरतसिंह ने कुछ जवान आदमियों को संगठित करके एक संगत बना दी है, उसके खर्च के लिए थोड़ी-सी जमीन भी दान कर दी है। आजकल हम लोग कोई सौ आदमी हैं। देश की यथाशक्ति सेवा करना ही हमारा धर्म और व्रत है। इस वक्त हममें से कुछ लोग तो राजपूताना गए हुए हैं, और कुछ लोग पंजाब गए हुए हैं, जहां सरकारी फौज ने प्रजा पर गोलियां चला दी हैं।

सूरदास–भैया, यह तो बड़े पुन्न का काम है। ऐसे महात्मा लोगों के तो दरसन करने चाहिए। तो भैया, तुम लोग चंदे भी उगाहते होगे?

इन्द्रदत्त–हां, जिसकी इच्छा होती है, चंदा भी दे देता है, लेकिन हम लोग खुद नहीं मांगते फिरते।

सूरदास–मैं आप लोगों के साथ चलूं, तो आप मुझे रखेंगे? यहां पड़े-पड़े अपना पेट पालाता हूं, आपके साथ रहूंगा, तो आदमी हो जाऊंगा।

इन्द्रदत्त ने प्रभु सेवक से अंगेरजी में कहा–कितना भोला आदमी है। सेवा और त्याग की सदेह मूर्ति होने पर भी गरूर छू तक नहीं गया, अपने सत्कार्य का कुछ मूल्य ही नहीं समझता। परोपकार इसके लिए कोई इच्छित कर्म नहीं रहा, उसके चरित्र में मिल गया है।

सूरदास ने फिर कहा–और कुछ तो न कर सकूंगा, अपढ़, गंवार ठहरा, हां जिसके सिरहाने बैठा दीजिएगा, पंखा झलता रहूंगा, पीठ पर जो कुछ लाद दीजिएगा, लिए फिरूंगा।

इन्द्रदत्त–तुम सामान्य रीति से जो कुछ करते हो, वह उससे कहीं बढ़कर है, जो हम लोग कभी-कभी विशेष अवसरों पर करते हैं। दुश्मन के साथ नेकी करना रोगियों की सेवा से छोटा काम नहीं है।

सूरदास का मुख-मंडल खिल उठा, जैसे किसी कवि ने किसी रसिक से दाद पाई हो। बोला–भैया, हमारी क्या बात चलाते हो। जो आदमी पेट पालने के लिए भीख मांगेगा, वह पुन्न-धरम क्या करेगा। बुरा न मानो, तो एक बात कहूं। छोटा मुंह बड़ी बात है, लेकिन आपका हुकुम हो, तो मुझे मावजे के जो रुपये मिले हैं, उन्हें आपकी संगत की भेंट कर दूं।

इन्द्रदत्त–कैसे रुपये?

प्रभु सेवक–इसकी कथा बड़ी लंबी है। बस, इतना ही समझ लो कि पापा ने राजा महेन्द्रकुमार की सहायता से इसकी जमीन ले ली थी, उसका एक हजार मुआवजा इसे दिया गया है। यह मिल उसी लूट के माल पर बन रही है।

इन्द्रदत्त–तुमने अपने पापा को मना नहीं किया?

प्रभु सेवक–खुदा की कसम, मैं और सोफी, दोनों ही ने पापा को बहुत रोका, पर तुम उनकी आदत जानते ही हो, कोई धुन सवार हो जाती है, तो किसी की नहीं सुनते।

इन्द्रदत्त–मैं तो अपने बाप से लड़ जाता, मिल बनती या भाड़ में जाती। ऐसी दशा में तुम्हारा कम-से-कम यह कर्त्तव्य था कि मिल से बिल्कुल अलग रहते। बाप की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है, यह मानता हूं, लेकिन जब बाप अन्याय करने लगे, तो लड़का उसका अनुगामी बनने के लिए बाध्य नहीं। तुम्हारी रचनाओं में तो एक-एक शब्द से नैतिक विकास टपकता है, ऐसी उड़ान भरते हो कि हरिश्चन्द्र और हुसैन भी मात हो जाएं, मगर मालूम होता है, तुम्हारी समस्त शक्ति शब्द-योजना ही में उड़ जाती है, क्रियाशीलता के लिए कुछ बाकी नहीं बचता। यथार्थ तो यह है कि तुम अपनी रचनाओं की गर्द को भी नहीं पहुंचते। बस, जबान के शेर हो।

सूरदास, हम लोग तुम-जैसे गरीबों से चंदे नहीं लेते। हमारे दाता धनी लोग हैं।

सूरदास–भैया, तुम न लोगे, तो कोई चोर ले जायगा। मेरे पास रुपयों का काम ही क्या है। तुम्हारी दया से पेट-भर अन्न मिल ही जाता है, रहने को झोपड़ी बन ही गई है, और क्या चाहिए। किसी अच्छे काम में लग जाना इससे कहीं अच्छा है कि चोर उठा ले जाएं। मेरे ऊपर इतनी दया करो।

इन्द्रदत्त–अगर देना ही चाहते हो, तो कोई कुंआ खुदवा दो। बहुत दिनों तक तुम्हारा नाम रहेगा।

सूरदास–भैया, मुझे नाम की भूख नहीं है। बहाने मत करो, ये रुपये लेकर अपनी संगत में दे दो। मेरे सिर से बोझ टल जायगा।

प्रभु सेवक–(अंगरेजी में) मित्र, इसके रुपये ले लो, नहीं तो इसे चैन न आएगा। इस दयाशीलता को देवोपम कहना उसका अपमान करना है। मेरी तो कल्पना भी वहां तक नहीं पहुंचती। ऐसे-ऐसे मनुष्य भी संसार में पड़े हुए हैं ! एक हम हैं कि अपने भरे हुए थाल में से एक टुकड़ा उठाकर फेंक देते हैं, तो दूसरे दिन पत्रों में अपना नाम देखने को दौड़ते हैं। संपादक अगर उस समाचार को मोटे अक्षरों में प्रकाशित न करे, तो उसे गोली मार दें। पवित्र आत्मा है।

इन्द्रदत्त–सूरदास, अगर तुम्हारी यही इच्छा है, तो मैं रुपये ले लूंगा, लेकिन इस शर्त पर कि तुम्हें जब कोई जरूरत हो, हमें तुरंत सूचना देना। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि शीघ्र ही तुम्हारी कुटी भक्तों का तीर्थ बन जायगी और लोग तुम्हारे दर्शनों को आया करेंगे।

सूरदास–तो मैं आज रुपये लाऊंगा।

इन्द्रदत्त–अकेले न जाना, नहीं तो कचहरी के कुत्ते तुम्हें बहुत दिक करेंगे। मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।

सूरदास–अब एक अरज आपसे भी है साहब ! आप पुतलीघर के मजूरों के लिए घर क्यों नहीं बनवा देते? वे सारी बस्ती में फैले हुए हैं, और रोज ऊधम मचाते रहते हैं। हमारे मुहल्ले में किसी ने औरतों को नहीं छेड़ा था, न कभी इतनी चोरियां हुईं, न कभी इतने धड़ल्ले से जुआ हुआ, न सराबियों का ऐसा हुल्लड़ रहा। जब तक मजूर लोग यहां काम पर नहीं आ जाते, औरतें घरों से पानी भरने नहीं निकलतीं। रात को इतना हुल्लड़ होता है कि नींद नहीं आती। किसी को समझाओ, तो लड़ने पर उतारू हो जाता है।

यह कहकर सूरदास चुप हो गया और सोचने लगा, मैंने बात बहुत बढ़ाकर तो नहीं कही। इन्द्रदत्त ने प्रभु सेवक को तिरस्कारपूर्ण लोचनों से देखकर कहा–भई, यह तो अच्छी बात नहीं। अपने पापा से कहो, इसका जल्दी प्रबंध करें। न जाने तुम्हारे वे सब सिद्धांत क्या हो गए। बैठे-बैठे यह सारा माजरा देख रहे हो, और कुछ करते-धरते नहीं।

प्रभु सेवक–मुझे तो सिरे से इस काम से घृणा है, मैं न इसे पसंद करता हूं और न इसके योग्य हूं। मेरे जीवन का सुख-स्वर्ग तो यही है कि किसी पहाड़ी के दामन में, एक जलधारा के तट पर, छोटी-सी झोपड़ी बनाकर पड़ा रहूं। न लोक की चिंता हो, न परलोक की। न अपने नाम को कोई रोने वाला हो, न हंसने वाला। यही मेरे जीवन का उच्चतम आदर्श है। पर उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए जिस संयम और उद्योग की जरूरत है, उससे वंचित हूं। खैर, सच्ची बात तो यह है कि इस तरफ मेरा ध्यान ही नहीं हुआ। मेरा तो यहां आना न आना दोनों बराबर है। केवल पापा के लिहाज से चला आता हूं। अधिकांश समय यही सोचने में काटता

हूं कि क्योंकर इस कैद से रिहाई पाऊं। आज ही पापा से कहूंगा।

इन्द्रदत्त–हां, आज ही कहना। तुमको संकोच हो, तो मैं कह दूं?

प्रभु सेवक–नहीं जी, इसमें क्या संकोच है। इससे तो मेरा रंग और जम जायगा। पापा को ख्याल होगा, अब इसका मन लगने लगा, कुछ इसने कहा तो ! उन्हें तो मुझसे यही रोना है कि मैं किसी बात में बोलता ही नहीं।

इन्द्रदत्त यहां से चले, तो सूरदास बहुत दूर तक उनके साथ सेवा-समिति की बातें पूछता हुआ चला आया। जब इन्द्रदत्त ने बहुत आग्रह किया, तो लौटा। इन्द्रदत्त वहीं सड़क पर खड़ा उस दुर्बल, दीन प्राणी को हवा के झोंकों से लड़खड़ाते वृक्षों की छांह में विलीन होते देखता रहा। शायद यह निश्चय करना चाहता था कि वह कोई देवता है या मनुष्य !

चौंतीस

प्रभु सेवक ने घर आते ही मकानों का जिक्र छेड़ दिया। जॉन सेवक यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए कि अब इसने कारखाने की ओर ध्यान देना शुरू किया। बोले–हां, मकानों का बनना बहुत जरूरी है। इंजीनियर से कहो, एक नक्शा बनाए। मैं प्रबंधकारिणी समिति के सामने इस प्रस्ताव को रखूंगा। कुलियों के लिए अलग-अलग मकान बनवाने की जरूरत नहीं। लंबे-लंबे बैरक बनवा दिए जाएं, ताकि एक-एक कमरे में दस-बारह मजदूर रह सकें।

प्रभु सेवक–लेकिन बहुत-से कुली ऐसे भी तो होंगे, जो बाल-बच्चों के साथ रहना चाहेंगे?

मिसेज सेवक–कुलियों के बाल-बच्चों को वहां जगह दी जाएगी, तो एक शहर आबाद हो जाएगा। तुम्हें उनसे काम लेना है कि उन्हें बसाना है। जैसे फौज के सिपाही रहते हैं, उसी तरह कुली भी रहेंगे। हां, एक छोटा-सा चर्च जरूर होना चाहिए। पादरी के लिए एक मकान होना भी जरूरी है।

ईश्वर सेवक–खुदा तुझे सलामत रखे बेटी, तेरी यह राय मुझे बहुत पंसद आई। कुलियों के लिए धार्मिक भोजन शारीरिक भोजन से कम आवश्यक नहीं। प्रभु मसीह, मुझे अपने दामन में छिपा। कितना सुंदर प्रस्ताव है। चित्त प्रसन्न हो गया। वह दिन कब आएगा, जब कुलियों के हृदय मसीह के उपदेशों से तृप्त हो जाएंगे।

जॉन सेवक–लेकिन यह तो विचार कीजिए कि मैं यह सांप्रदायिक प्रस्ताव समिति के सम्मुख कैसे रख सकूंगा? मैं अकेला तो सब कुछ नहीं हूं। अन्य मेंम्बरों ने विरोध किया, तो उन्हें क्या जवाब दूंगा? मेरे सिवा समिति में और कोई क्रिश्चियन नहीं है। नहीं, मैं इस प्रस्ताव को कदापि समिति के सामने न रखूंगा। आप स्वयं समझ सकते हैं कि इस प्रस्ताव में कितना धार्मिक पक्षपात भरा हुआ है।

मिसेज सेवक–जब कोई धार्मिक प्रश्न आता है, तो तुम उसमें ख्वाहमख्वाह मीन-मेख निकालने लगते हो। हिन्दू-कुली तो तुरंत किसी वृक्ष के नीचे दो-चार ईंट-पत्थर रखकर जल चढ़ाना शुरू कर देंगे, मुसलमान लोग भी खुले मैदान में नमाज पढ़ लेंगे, तो फिर चर्च से किसी को क्या आपत्ति हो सकती है।

ईश्वर सेवक–प्रभु मसीह, मुझ पर अपनी दया-वृष्टि कर। बाइबिल के उपदेश प्राणिमात्र के लिए शांतिप्रद हैं। उनके प्रचार में किसी को कोई एतराज नहीं हो सकता, और अगर एतराज हो भी, तो तुम इस दलील से उसे रद्द कर सकते हो कि राजा का धर्म भी राजा है। आखिर सरकार ने धर्म-प्रचार का विभाग खोला है, तो कौन ऐतराज करता है, और करे भी, तो कौन उसे सुनता है? मैं आज ही इस विषय को चर्च में पेश करूंगा, और अधिकारियों को मजबूर करूंगा कि वह कंपनी पर अपना दबाव डालें। मगर यह तुम्हारा काम है, मेरा नहीं, तुम्हें खुद इन बातों का ख्याल होना चाहिए। न हुए मि॰ क्लार्क इस वक्त।

मिसेज सेवक–वह होते, तो कोई दिक्कत ही न होती।

जॉन सेवक–मेरी समझ में नहीं आता कि मैं इस तजवीज को कैसे पेश करूंगा। अगर कंपनी कोई मंदिर या मस्जिद बनवाने का निश्चय करती, तो मैं भी चर्च बनवाने पर जोर देता। लेकिन जब तक और लोग अग्रसर न हों, मैं कुछ नहीं कर सकता, और न करना उचित ही समझता हूं।

ईश्वर सेवक–हम औरों के पीछे-पीछे क्यों चलें? हमारे हाथों में दीपक है, कंधे पर लाठी है, कमर में तलवार है, पैरों में शक्ति है, हम क्यों न आगे चलें? क्यों दूसरों का मुंह देखें?

मि॰ जॉन सेवक ने पिता से और ज्यादा तर्क-वितर्क करना व्यर्थ समझा। भोजन के पश्चात् वह आधी रात तक प्रभु सेवक के साथ बैठे हुए भिन्न-भिन्न रूप से नक्शे बनाते-बिगाड़ते रहे। किधर की जमीन ली जाए, कितनी जमीन काफी होगी, कितना व्यय होगा, कितने मकान बनेंगे। प्रभु सेवक हां-हां करता जाता था। इन बातों में मन न लगता था। कभी समाचार-पत्र देखने लगता, कभी कोई किताब उलटने-पलटने लगता, कभी उठकर बरामदे में चला जाता। लेकिन धुन सूक्ष्मदर्शी नहीं होती। व्याख्याता अपनी वाणी के प्रवाह में यह कब देखता है कि श्रोताओं में कितनों की आंखें खुली हुई हैं। प्रभु सेवक को इस समय एक नया शीर्षक सूझा था, और उस पर अपने रचना-कौशल की छटा दिखाने के लिए वह अधीर हो रहा था। नई-नई उपमाएं, नई-नई सूक्तियां, किसी जलधारा में बहकर आने वाले फूलों के सदृश, उसके मस्तिष्क में दौड़ती चली आती थीं, और वह उनका संचय करने के लिए उकता रहा था, क्योंकि एक बार आकर, एक बार अपनी झलक दिखाकर, वे सदैव के लिए विलुप्त हो जाती हैं। बारह बजे तक वह इसी संकट में पड़ा रहा। न बैठते बनता था, न उठते। यहां तक कि उसे झपकियां आने लगीं। जॉन सेवक ने भी अब विश्राम करना उचित समझा। लेकिन जब प्रभु सेवक पलंग पर गया, तो निद्रादेवी रूठ चुकी थीं। कुछ देर तक तो उसने देवी को मनाने का प्रयत्न किया, फिर दीपक के सामने बैठकर उसी विषय पर पद्य-रचना करने लगा। एक क्षण में वह किसी दूसरे ही जगत् में था। वह ग्रामीणों की भांति सराफे में पहुंचकर उसकी चमक-दमक पर लट्टू न हो जाता था। यद्यपि उस जगत् की प्रत्येक वस्तु रसमयी, सुरभित, नेत्र-मधुर मनोहर मालूम होती थी, पर कितनी ही वस्तुओं को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता था कि उन पर केवल सुनहरा आवरण चढ़ा हुआ है, वास्तव में वे या तो पुरानी हैं, अथवा कृत्रिम हैं! हां, जब उसे वास्तव में कोई नया रत्न मिल जाता था, तो उसकी मुख-श्री प्रज्वलित हो जाती थी। रचयिता अपनी रचना का सबसे चतुर पारखी होता है। प्रभु सेवक की कल्पना कभी इतनी ऊंची न उड़ी थी। एक-एक पद्य लिखकर वह उसे स्वर से पढ़ता और झूमता। जब कविता समाप्त हो गई, तो वह सोचने लगा–देखूं, इसका कवि-समाज कितना आदर करता है। संपादकों की प्रशंसा का तो कोई मूल्य

नहीं। उनमें बहुत कम ऐसे हैं, जो कविता के मर्मज्ञ हों। किसी, नए, अपरिचित कवि की सुंदर-से-सुंदर कविता स्वीकार न करेंगे, पुराने कवियों की सड़ी-गली, खोगीर की भरती, सब कुछ शिरोधार्य कर लेंगे। कवि मर्मज्ञ होते हुए भी कृपण होते हैं। छोटे-मोटे तुकबंदी करने वालों की तारीफ भले ही कर दें; लेकिन जिसे अपना प्रतिद्वंद्वी समझते हैं, उसके नाम से कानों पर हाथ रख लेते हैं। कुंअर साहब तो जरूर फड़क जाएंगे। काश, विनय यहां होते, तो मेरी कलम चूम लेते। कल कुंवर साहब से कहूंगा कि मेरा संग्रह प्रकाशित करा दीजिए। नवीन युग के कवियों में तो किसी को मुझसे टक्कर लेने का दावा हो नहीं सकता, और पुराने ढंग के कवियों से मेरा कोई मुकाबला नहीं। मेरे और उनके क्षेत्र अलग हैं। उनके यहां भाषा-लालित्य है, पिंगल की कोई भूल नहीं, खोजने पर भी कोई दोष न मिलेगा, लेकिन उपज का नाम नहीं, मौलिकता का निशान नहीं, वही चबाए हुए कौर चबाते हैं, विचारोत्कर्ष का पता नहीं होता। दस-बीस पद्य पढ़ जाओ, तो कहीं एक बात मिलती है, यहां तक कि उपमाएं भी वही पुरानी-धुरानी जो प्राचीन कवियों ने बांध रखी हैं। मेरी भाषा इतनी मंजी हुई न हो, लेकिन भरती के लिए मैंने एक पंक्ति भी नहीं लिखी। फायदा ही क्या?

प्रातःकाल वह मुंह-हाथ धो, कविता जेब में रख, बिना जलपान किए, घर से चला, तो जॉन सेवक ने पूछा—क्या जलपान न करोगे? इतने सबेरे कहां जाते हो?

प्रभु सेवक ने रुखाई से उत्तर दिया—जरा कुंवर साहब की तरफ जाता हूं।

जॉन सेवक—तो उनसे कल के प्रस्ताव के संबंध में बातचीत करना। अगर वह सहमत हो जाएं, तो फिर किसी को विरोध करने का साहस न होगा।

मिसेज सेवक—वही चर्च के विषय में न?

जॉन सेवक—अजी नहीं, तुम्हें तो अपने चर्च ही की पड़ी हुई है। मैंने निश्चय किया है कि पांडेपुर की बस्ती खाली करा ली जाए और वहीं कुलियों के मकान बनवाए जाएं। उससे अच्छी वहां कोई दूसरी जगह नहीं नजर आती।

प्रभु सेवक—रात तो आपने उस बस्ती को लेने की चर्चा न की थी।

जॉन सेवक—नहीं, आओ जरा यह नक्शा देखो। बस्ती के बाहर किसी तरफ काफी जमीन नहीं है। एक तरफ सरकारी पागलखाना है, दूसरी तरफ रायसाहब का बाग, तीसरी तरफ हमारी मिल। बस्ती के सिवा और जगह ही कहां है? और बस्ती ही कौन-सी बड़ी! मुश्किल से पंद्रह-बीस या अधिक से अधिक तीस घर होंगे। उनका मुआवजा देकर जमीन लेने की क्यों न कोशिश की जाए?

प्रभु सेवक—बस्ती को उजाड़कर मजदूरों के लिए मकान बनवाने हैं, तो रहने ही दीजिए, किसी-न-किसी तरह गुजर तो हो ही रही है।

जॉन सेवक—अगर ऐसी बस्तियों की रक्षा का विचार किया गया होता, तो आज यहां एक बंगला भी नजर न आता। ये बंगले ऊसर में नहीं बने हैं।

प्रभु सेवक—मुझे ऐसे बंगले से झोपड़ा ही पसंद है, जिसके लिए कई गरीबों के घर गिराने पड़ें। मैं कुंवर साहब से इस विषय में कुछ न कहूंगा। आप खुद कहिएगा।

जॉन सेवक—यह तुम्हारी अकर्मण्यता है। इसे संतोष और दया कहकर तुम्हें धोखे में न डालूंगा। तुम जीवन की सुख-सामग्रियां तो चाहते हो, लेकिन उन सामग्रियों के लिए जिन साधनों की जरूरत है, उनसे दूर भागते हो। हमने तुम्हें क्रियात्मक रूप से कभी धन और विभव

से घृणा करते नहीं देखा। तुम अच्छे-से-अच्छा मकान, अच्छे-से-अच्छा भोजन, अच्छे-से-अच्छा वस्त्र चाहते हो, लेकिन बिना हाथ-पैर हिलाए ही चाहते हो कि कोई तुम्हारे मुंह में शहद और शर्बत टपका दे।

प्रभु सेवक—रस्म-रिवाज से विवश होकर मनुष्य को बहुधा अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण करना पड़ता है।

जॉन सेवक—जब सुख-भोग के लिए तुम रस्म-रिवाज से विवश हो जाते हो, तो सुख-भोग के साधनों के लिए क्यों उन्हीं प्रथाओं से विवश नहीं होते? तुम मन और वचन से वर्तमान सामाजिक प्रणाली की कितनी ही उपेक्षा क्यों न करो, मुझे जरा भी आपत्ति न होगी, तुम इस विषय पर व्याख्यान दो, कविताएं लिखो, निबंध रचो, मैं खुश होकर उन्हें पढ़ूंगा और तुम्हारी प्रशंसा करूंगा, लेकिन कर्मक्षेत्र में आकर उन भावों को उसी भांति भूल जाओ, जैसे अच्छे-से-अच्छा सूट पहनकर मोटर पर सैर करते समय तुम त्याग, संतोष और आत्मनिग्रह को भूल जाते हो।

प्रभु सेवक और कितने ही विलास-भोगियों की भांति सिद्धांत-रूप से जनवाद के कायल थे। जिन परिस्थितियों में उनका लालन-पालन हुआ था, जिन संस्कारों से उनका मानसिक और आत्मिक विकास हुआ था, उनसे मुक्त हो जाने के लिए जिस नैतिक साहस की, उद्दंडता की जरूरत है, उससे वह रहित थे। वह विचार-क्षेत्र में त्याग के भावों को स्थान देकर प्रसन्न होते थे, और उन पर गर्व करते थे। उन्हें शायद कभी सूझा ही न था कि इन भावों को व्यवहार रूप में भी लाया जा सकता है। वह इतने संयमशील न थे। अपनी विलासिता को उन भावों पर बलिदान कर देते। साम्यवाद उनके लिए मनोरंजन का एक विषय था, और बस। आज तक कभी किसी ने उनके आचरण की आलोचना न की थी, किसी ने उनको व्यंग्य का निशाना न बनाया था, और मित्रों पर अपने विचार-स्वातंत्र्य की धाक जमाने के लिए उनके विचार काफी थे। कुंवर भरतीसिंह के संयम और विराग का उन पर इसलिए असर न होता था कि वह उन्हें उच्चतर श्रेणी के मनुष्य समझते थे। अशर्फियों की थैली मखमल की हो या खद्दर की, अधिक अंतर नहीं। पिता के मुख से यह व्यंग्य सुनकर ऐसे तिलमिला उठे, मानो चाबुक पड़ गया हो। आग चाहे फूस को न जला सके, लोहे की कील मिट्टी में चाहे न समा सके, कांच चाहे पत्थर की चोट से न टूट सके, व्यंग्य विरले ही कभी हृदय को प्रज्वलित करने, उसमें चुभने, और उसे चोट पहुंचाने में असफल होता है, विशेष करके जब वह उस प्राणी के मुख से निकले, जो हमारे जीवन को बना या बिगाड़ सकता है। प्रभु सेवक को मानो काली नागिन ने डस लिया, जिसके काटे को लहर भी नहीं आती। उनकी सोई हुई लज्जा जाग उठी। अपनी अधोगति का ज्ञान हुआ कुंवर साहब के यहां जाने को तैयार थे, गाड़ी तैयार कराई थी, पर वहां नहीं गए। आकर अपने कमरे में बैठ गए। उनकी आंखें भर आईं, इस वजह से नहीं कि मैं इतने दिनों तक भ्रम में पड़ा रहा, बल्कि इस ख्याल से कि पिताजी को मेरा पालन-पोषण अखरता है—यह लताड़ पाकर मेरे लिए डूब मरने की बात होगी, अगर मैं उनका आश्रित बना रहूं। मुझे स्वयं अपनी जीविका का प्रश्न हल करना चाहिए। इन्हें क्या मालूम नहीं था कि मैं प्रथाओं से विवश होकर ही इस विलास-वासना में पड़ा हुआ हूं? ऐसी दशा में इनका मुझे ताना देना घोर अन्याय है। इतने दिनों तक कृत्रिम जीवन व्यतीत करके अब मेरे लिए अपना रूपांतर कर लेना असंभव है। यही क्या कम है कि मेरे मन में ये विचार पैदा हुए। इन विचारों के रहते हुए कम-से-कम मैं औरों की भांति स्वार्थांध और धन-लोलुप तो नहीं हो सकता। लेकिन मैं व्यर्थ इतना खेद कर रहा हूं।

मुझे तो प्रसन्न होना चाहिए कि पापा ने वह काम कर दिया, जो सिद्धांत और विचार से न हुआ था। अब मुझे उनसे कुछ कहने-सुनने की जरूरत नहीं। उन्हें शायद मेरे जाने से दु:ख भी न होगा, उन्हें खूब मालूम हो गया है कि मेरी जात से उनकी धन-तृष्णा तृप्त नहीं हो सकती। आज यहां से डेरा कूच है, यही निश्चय है। चलकर कुंवर साहब से कहता हूं, मुझे भी स्वयंसेवकों में ले लीजिए। कुछ दिनों उस जीवन का आनंद भी उठाऊं। देखूं मुझमें और कोई योग्यता है, या केवल पद्य-रचना ही कर सकता हूं। अब गिरि-शृंगों की सैर करूंगा, देहातों में घूमूंगा, प्राकृतिक सौंदर्य की उपासना करूंगा, नित्य नया दाना, नया पानी, नई सैर, नए दृश्य। इससे ज्यादा आनंदप्रद और कौन जीवन हो सकता है। कष्ट भी होंगे, धूप है, वर्षा है, सरदी है, भयंकर जंतु हैं। पर कष्टों से मैं कभी भयभीत नहीं हुआ। उलझन तो मुझे गृहस्थी के झंझटों से होती है। यहां कितने अपमान सहने पड़ते हैं। रोटियों के लिए दूसरों की गुलामी ! अपनी इच्छाओं को पराधीन बना देना, नौकर अपने स्वामी को देखकर कैसा दुबक जाता है। उसके मुख-मंडल पर कितनी दीनता, कितना भय छा जाता है। न ! मैं अपनी स्वतंत्रता की अब से ज्यादा इज्जत करना सीखूंगा।

दोपहर को जब घर के सब प्राणी पंखों के नीचे आराम से सोए, तो प्रभु सेवक ने चुपके से निकलकर कुंवर साहब के भवन का रास्ता लिया। पहले तो जी में आया कि कपड़े उतार दूं, और केवल एक कुरता पहनकर चला जाऊं। पर इन फटेहालों घर में कभी न निकला था। वस्त्र-परिवर्तन के लिए कदाचित् विचार-परिवर्तन से भी अधिक नैतिक बल की जरूरत होती है। उसने केवल अपनी कविताओं की कापी ले ली, और चल खड़ा हुआ। उसे जरा भी खेद न था, जरा भी ग्लानि न थी। ऐसा खुश था, मानो कैद से छूटा है—आप लोगों को अपनी दौलत मुबारक हो। पापा ने मुझे बिल्कुल निर्लज्ज, आत्मसम्मानहीन, विलासलोलुप समझ रखा है, तभी तो जरा-सी बात पर उबल पड़े अब उन्हें मालूम हो जायगा कि मैं बिल्कुल मुरदा नहीं हूं।

कुंवर साहब दोपहर को सोने के आदी नहीं थे। फर्श पर लेटे कुछ सोच रहे थे। प्रभु सेवक जाकर बैठे गए। कुंवर साहब ने कुछ न पूछा, कैसे आए, क्यों उदास हो? आध घंटे तक बैठे रहने के बाद भी प्रभु सेवक को उनसे अपने विषय में कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी, कोई भूमिका ही न सूझती थी—यह महाशय आज गुमसुम क्यों हैं? क्या मेरी सूरत से ताड़ तो नहीं गए कि कुछ स्वार्थ लेकर आया है? यों तो मुझे देखते ही खिल उठते थे, दौड़कर छाती से लगा लेते थे, आज मुखातिब ही नहीं होते। परमुखापेक्षी होने का यही दंड है। मैं भी घर से चला तो ठीक दोपहर को, जब चिड़ियां तक घोंसले से नहीं निकलतीं। आना ही था, तो शाम को आता । इस ज़लती हुई धूप में कोई गरज का बावला ही घर ही निकल सकता है। खैर, यह पहला अनुभव है। वह निराश होकर चलने के लिए उठे कि भरतसिंह बोले—क्यों-क्यों जल्दी क्या है? या इसलिए कि मैंने बातें नहीं कीं? बातों की कमी नहीं है; इतनी बातें तुमसे करनी हैं कि समझ में नहीं आता, शुरू क्यों कर करूं ! तुम्हारे विचार में विनय ने रियासत को पक्ष लेने में भूल की?

प्रभु सेवक ने द्विविधा में पड़कर कहा—इस पर भिन्न-भिन्न पहलुओं से विचार किया जा सकता है।

कुंवर—इसका आशय यह है कि बुरा किया। उनकी माता का भी यही विचार है। वह

तो इतनी चिढ़ी हुई हैं कि उसकी सूरत भी नहीं देखना चाहतीं। लेकिन मेरा विचार है कि उसने जिस नीति का अनुसरण किया है, उस पर उसे लज्जित होने का कोई कारण नहीं। कदाचित् उन दशाओं में मैं भी यही करता। सोफी से उसे प्रेम न होता, तो भी उस अवसर पर जनता ने जो विद्रोह किया, वह उसके साम्यवाद के सिद्धांतों को हिला देने को काफी था। पर जब यह सिद्ध है कि सोफिया का अनुराग उसके रोम-रोम में समाया हुआ है, तो उसका आचरण क्षम्य ही नहीं, सर्वथा स्तुत्य है। वह धर्म केवल जत्थेबंदी है, जहां अपनी बिरादरी से बाहर विवाह करना वर्जित हो, क्योंकि इससे उसकी क्षति होने का भय है। धर्म और ज्ञान, दोनों एक हैं, और इस दृष्टि से संसार में केवल एक धर्म है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, बौद्ध ये धर्म नहीं हैं, भिन्न-भिन्न स्वार्थों के दल हैं, जिनसे हानि के सिवा आज किसी को लाभ नहीं हुआ। अगर विनय इतना भाग्यवान् हो कि सोफिया को विवाह-सूत्र में बांध सके, तो कम-से-कम मुझे जरा भी आपत्ति न होगी।

प्रभु सेवक—मगर आप जानते हैं, इस विषय में रानीजी को जितना दुराग्रह है, उतना ही मामा को भी है।

कुंवर—इसका फल यह होगा कि दोनों का जीवन नष्ट हो जाएगा। ये दोनों अमूल्य रत्न धर्म के हाथों मिट्टी में मिल जाएंगे।

प्रभु सेवक—मैं तो खुद इन झगड़ों से इतना तंग आ गया हूं कि मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है, घर से अलग हो जाऊं। घर की सांप्रदायिक जलवायु और सामाजिक बंधनों से मेरी आत्मा दुर्बल हुई जा रही है। घर से निकल जाने के सिवा कुछ नहीं सूझता। मुझे व्यवसाय से पहले ही बहुत प्रेम न था, और अब इतने दिनों के अनुभव के बाद तो मुझे उससे घृणा हो गई है।

कुंवर—लेकिन व्यवसाय तो नई सभ्यता का सबसे बड़ा अंग है, तुम्हें उससे क्यों इतनी अरुचि है?

प्रभु सेवक—इसलिए कि यहां सफलता प्राप्त करने के लिए जितनी स्वार्थपरता और नर-हत्या की जरूरत है, वह मुझसे नहीं हो सकती। मुझमें इतना उत्साह ही नहीं है। मैं स्वभावत: एकांतप्रिय हूं, और जीवन-संग्राम में उससे अधिक नहीं पड़ना चाहता, जिना मेरी कला के पूर्ण विकास और उसमें यथार्थता का समावेश करने के लिए काफी हो। कवि प्राय: एकांतसेवी हुआ किए हैं, पर इससे उनकी कवित्व-कला में कोई दूषण नहीं आने पाया। संभव था कि वे जीवन का विस्तृत और पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके अपनी कविता को और भी मार्मिक बना सकते, लेकिन साथ ही यह शंका भी थी कि जीवन-संग्राम में प्रवृत्त होने से उनकी कवि-कल्पना शिथिल हो जाती। होमर अंधा था, सूर भी अंधा था, मिलटन भी अंधा था, पर ये सभी साहित्य-गगन के उज्ज्वल नक्षत्र हैं; तुलसी, वाल्मीकि आदि महाकवि संसार से अलग, कुटियों में बसने वाले प्राणी थे, पर कौन कह सकता है कि उनकी एकांतसेवा से उनकी कवित्व-कला दूषित हो गई ! नहीं कह सकता की भविष्य में मेरे विचार क्या होंगे, पर इस समय द्रव्योपासना से बेजार हो रहा हूं।

कुंवर—तुम तो इतने विरक्त कभी न थे, आखिर बात क्या है?

प्रभु सेवक ने झेंपते हुए कहा—अब तक जीवन के कुटिल रहस्यों को न जानता था। पर अब देख रहा हूं कि वास्तविक दशा उससे कहीं जटिल है, जितनी मैं समझता था। व्यवसाय

कुछ नहीं है, अगर नर-हत्या नहीं है। आदि से अंत तक मनुष्यों को पशु समझना और उनसे पशुवत् व्यवहार करना इसका मूल सिद्धांत है। जो यह नहीं कर सकता, वह सफल व्यवसायी नहीं हो सकता। कारखाना अभी बनकर तैयार नहीं हुआ, और भूमि-विस्तार की समस्या उपस्थित हो गई। मिस्त्रियों और कारीगरों के लिए बस्ती में रहने की जगह नहीं है। मजदूरों की संख्या बढ़ेगी, तब वहां निर्वाह ही न हो सकेगा। इसलिए पापा की राय है, कि उसी कानूनी दफा के अनुसार पांड़ेपुर पर भी अधिकार कर लिया जाए, और बाशिंदों को मुआवजा देकर अलग कर दिया जाए। राजा महेन्द्रकुमार की पापा से मित्रता है ही, और वर्तमान जिलाधीश मि॰ सेनापति रईसों से उतना ही मेल-जोल रखते हैं, जितना मि॰ क्लार्क उनसे दूर रहते थे। पापा का प्रस्ताव बिना किसी कठिनाई के स्वीकृत हो जायगा, और मोहल्ले वाले जबरदस्ती निकाल दिए जाएंगे। मुझसे यह अत्याचार नहीं देखा जाता। मैं इसे रोक नहीं सकता, पर इतना तो कर सकता हूं कि उससे अलग रहूं।

कुंवर—तुम्हारे विचार में कंपनी को नफा होगा?

प्रभु सेवक—मैं समझता हूं, पहले ही साल पच्चीस रुपये सैकड़े नफा होगा।

कुंवर—तो क्या तुमने कारखाने से अलग होने का निश्चय कर लिया?

प्रभु सेवक—पक्का निश्चय कर लिया।

कुंवर—तुम्हारे पापा काम संभाल सकेंगे?

प्रभु सेवक—पापा ऐसे आधे दर्जन कारखानों को संभाल सकते हैं। उनमें अद्भूत अध्यवसाय है। जमीन का प्रस्ताव बहुत जल्द कार्यकारिणी समिति के सामने आयगा। मेरी आपसे यह विनीत प्रार्थना है कि आप उसे स्वीकृत न होने दें।

कुंवर—(मुस्कराकर) बुड्ढ़ा आदमी इतनी आसानी से नई शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकता। बूढ़ा तोता पढ़ना नहीं सीखता। मुझे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं नजर आती कि बस्ती वालों को मुआवजा देकर जमीन ले ली जाए। हां, मुआवजा उचित होना चाहिए। जब तुम कारखाने से अलग ही हो रहे हो, तो तुम्हें इन झगड़ों से क्या मतलब? ये तो दुनिया के धंधे हैं, होते आए हैं और होते जायंगे।

प्रभु सेवक—तो आप इस प्रस्ताव का विरोध न करेंगे?

कुंवर—मैं किसी ऐसे प्रस्ताव का विरोध न करूंगा, जिससे कारखाने को हानि हो। कारखाने से मेरा स्वार्थ-संबंध है, मैं उसकी उन्नति में बाधक नहीं हो सकता। हां, तुम्हारा वहां से निकल आना मेरी समिति के लिए शुभ लक्षण है। तुम्हें मालूम है, समिति के अध्यक्ष डॉक्टर गांगुली हैं, पर कुछ वृद्धावस्था और कुछ कांउसिल के कामों में व्यस्त रहने के कारण वह इस भार से मुक्त होना चाहते हैं, मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम इस भार को ग्रहण करो। समिति इस समय मंझधार में है, विनय के आचरण ने उसे एक भंयकर दशा में डाल दिया है। तुम्हें ईश्वर ने विद्या, बुद्धि, उत्साह, सब कुछ दिया है। तुम चाहो, तो समिति को उबार सकते हो, और मुझे विश्वास है कि तुम मुझे निराश न करोगे।

प्रभु सेवक की आंखें सजल हो गईं। वह अपने को इस सम्मान के योग्य न समझते थे। बोले—मैं इतना बड़ा उत्तरदायित्व स्वीकार करने के योग्य नहीं हूं। मुझे भय है कि मुझ जैसा अनुभवहीन, आलसी प्रकृति का मनुष्य समिति की उन्नति नहीं कर सकता। यह आपकी कृपा है कि मुझे इस योग्य समझते हैं, मेरे लिए सफ ही काफी है।

कुंवर साहब ने उत्साह बढ़ाते हुए कहा–तुम जैसे आदमियों को सफ में रखूं, तो नायकों को कहां से लाऊं? मुझे विश्वास है कि कुछ दिनों डॉ॰ गांगुली के साथ रहकर तुम इस काम में निपुण हो जाओगे। सज्जन लोग सदैव अपनी क्षमता की उपेक्षा करते हैं, पर मैं तुम्हें पहचानता हूं। तुममें अद्‌भुत विद्युत-शक्ति है; उससे कहीं अधिक, जितनी तुम समझते हो। अरबी घोड़ा हल में नहीं चल सकता, उसके लिए मैदान चाहिए। तुम्हारी स्वतंत्र आत्मा कारखाने में संकुचित हो रही थी, संसार के विस्तीर्ण क्षेत्र में निकलकर उसके पर लग जायंगे। मैंने विनय को इस पद के लिए चुन रखा था, लेकिन उसकी वर्तमान दशा देखकर मुझे अब उस पर विश्वास नहीं रहा। मैं चाहता हूं, इस संस्था को ऐसी सुव्यवस्थित दशा में छोड़ जाऊं कि वह निर्विघ्न अपना काम करती रहे। ऐसा न हुआ था तो मैं शांति से प्राण भी न त्याग सकूंगा। तुम्हारे ऊपर मुझे भरोसा है, क्योंकि तुम निःस्वार्थ हो। प्रभु, मैंने अपने जीवन का बहुत दुरुपयोग किया है। अब पीछे फिरकर उस पर नजर डालता हूं, तो उसका कोई भाग ऐसा नहीं दिखाई देता, जिस पर गर्व पर सकूं। एक मरुस्थल है, जहां हरियाली का निशान नहीं। इस संस्था पर मेरे जीवन-पर्यंत के दुष्कृत्यों का बोझ लदा हुआ है। यही मेरे प्रायश्चित्त का साधन और मेरे मोक्ष का मार्ग है। मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि मेरा सेवक-दल संसार में कुछ कर दिखाए, उसमें सेवा का अनुराग हो, बलिदान का प्रेम हो, जातीय गौरव का अभिमान हो। जब मैं ऐसे प्राणियों को देश के लिए प्राण-समर्पण करते देखता हूं, जिनके पास प्राण के सिवा और कुछ नहीं है, तो मुझे अपने ऊपर रोना आता है कि मैंने सब कुछ रखते हुए भी कुछ न किया। मेरे लिए इससे घातक और कोई चोट नहीं है कि यह संस्था विफल-मनोरथ हो। मैं इसके लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हूं। मैंने दस लाख रुपये इस खाते में जमा कर दिए हैं, और इच्छा है कि इस पर प्रतिवर्ष एक लाख और बढ़ाता जाऊं। इतने विशाल देश के लिए सौ सेवक बहुत कम हैं। कम-से-कम पांच सौ आदमी होने चाहिए। अगर दस साल भी और जीवित रहा तो शायद मेरी यह मनोकामना पूरी हो जाए। इन्द्रदत्त में और सब गुण तो हैं, पर वह उद्दंड स्वभाव का आदमी है। इस कारण मेरा मन उस पर नहीं जमता। मैं तुमसे साग्रह....

डॉक्टर गांगुली आ पहुंचे, और प्रभु सेवक को देखकर बोले–अच्छा, तुम यहां कुंवर साहब को मंत्र दे रहा है, तुम्हारा पापा महेन्द्रकुमार को पट्टी पढ़ा रहा है। पर मैंने साफ-साफ कह दिया कि ऐसा बात नहीं हो सकता। तुम्हारा मील है, उसका हानि-लाभ तुमको और तुम्हारे हिस्सेदारों को होगा, गरीबों को क्यों उनके घर से निकालता है; पर मेरी कोई नहीं सुनता। हम कडुवा बात कहता है न, वह काहे को अच्छा लगेगा? मैं कार्उसिल में इस पर प्रश्न करूंगा। यह कोई बात नहीं है कि आप लोग अपने स्वार्थ के लिए दूसरों पर अन्याय करें। शहर का रईस लोग हमसे नाराज हो जाएगा, हमको परवा नहीं है; हम तो वहां वही करेगा, जो हमारा आत्मा कहेगा। तुमको दूसरे किसिम का आदमी चाहिए, तो बाबा; हमसे इस्तीफा ले लो। पर हम पांड़ेपुर को उजड़ने न देगा।

कुंवर–यह बिचारे तो खुद उस प्रस्ताव का विरोध करते हैं। आज इसी बात पर पिता और पुत्र में मनमुटाव भी हो गया है। यह घर से चले आए हैं, और कारखाने से कोई संपर्क नहीं रखना चाहते।

गांगुली–अच्छा, ऐसा बात है। बहुत अच्छा हुआ। ऐसा विचारवान लोग मील का काम नहीं कर सकता। ऐसा लोग मील में जायगा, तो हम लोग कहां से आदमी लायगा? प्रभु, हम

बुड्ढ़ा हो गया, कल मर जायगा। तुम हमारा काम क्यों नहीं संभालता? हमारा सेवक-दल तुम्हारा रेस्पेक्ट करता है। तुम हमें इस भार से मुक्त कर सकता है। बुड्ढ़ा आदमी और सब कुछ कर सकता है, उत्साह तो उसके बस का बात नहीं। हम तुमको अब न छोड़ेगा काउंसिल में इतना काम है कि हमको इस काम के लिए अवकाश ही नहीं मिलता। हम काउंसिल में न गया होता, तो उदयपुर में यह सब कुछ नहीं होने पाता। हम जाकर सबको शांत कर देता। तुम इतना विद्या पढ़कर उसको धन कमाने में लगायगा, छिः छिः।

प्रभु सेवक—मैं तो सेवकों में भरती होने के लिए घर से आया ही हूं, पर मैं उसका नायक होने के योग्य नहीं हूं। वह पद आप ही को शोभा देता है। मुझे सिपाहियों ही में रहने दीजिए। मैं इसी को अपने लिए गौरव की बात समझूंगा।

गांगुली—(हंसकर) ह: ह:, काम तो अयोग्य ही लोग करता है। योग्य आदमी काम नहीं करता, वह बस बातें करता है। योग्य आदमी का आशय है बातूनी आदमी, खाली बात बात, जो जितना ही बात करता है, उतना ही योग्य होता है। वह काम का ढंग बता देगा; कहां कौन भूल हो गया, यह बता देगा, पर काम नहीं कर सकता। हम ऐसा योग्य आदमी नहीं चाहता। हमारे यहां बातें करने का काम नहीं है। हम तो ऐसा आदमी चाहता है, जो मोटा खाए, मोटा पहने, गली-गली, नगर-नगर दौड़े गरीबों का उपकार करे, कठिनाइयों में उनका मदद करे। तो कब से आएगा?

प्रभु सेवक—मैं तो अभी से हाजिर हूं।

गांगुली—(मुस्कराकर) तो पहला लड़ाई तुम्हें अपने पापा से लड़ना पड़ेगा।

प्रभु सेवक—मैं समझता हूं, पापा स्वयं इस प्रस्ताव को न उठाएंगे।

गांगुली—नहीं-नहीं, वह कभी अपना बात नहीं छोड़ेगा। हमको उससे युद्ध करना पड़ेगा, तुमको उससे लड़ना पड़ेगा। हमरी संस्था न्याय को सर्वोपरि मानती है, न्याय हमको माता-पिता से, धन-दौलत से, नाम और जस से प्यारा है। हम और सब कुछ छोड़ देगा, न्याय को न छोड़ेगा, यही हमारा व्रत है। तुमको खूब सोच-विचारकर तब यहां आना होगा।

प्रभु सेवक—मैंने खूब सोच-विचार लिया है।

गांगुली—नहीं-नहीं, जल्दी है, खूब सोच-विचार लो, यह तो अच्छा नहीं होगा कि एक बार आकर तुम फिर भाग जाए।

प्रभु सेवक—अब मृत्यु ही मुझे इस संस्था से अलग कर सकती है।

गांगुली—मि० जॉन सेवक तुमसे कहेगा, हम न्याय-अन्याय के झगड़े में नहीं पड़ता, तुम हमारा बेटा है, हमारा आज्ञा पालन करना तुम्हारा धर्म है, तो तुम क्या जवाब देगा? (हंसकर) मेरा बाप ऐसा कहता, तो मैं उससे भी न कह सकता कि हम तुम्हारा बात न मानेगा। वह हमसे बोला, तुम बैरिस्टर हो जाय, हम इंगलैंड चला गया। वहां से बैरिस्टर होकर आ गया। कई साल तक कचहरी जाकर पेपर पढ़ा करता था। जब फादर का डेथ हो गया, तो डॉक्टरी पढ़ने लगा। पिता के सामने हमको यह कहने का हिम्मत नहीं हुआ कि हम कानून नहीं पढ़ेगा।

प्रभु सेवक—पिता का सम्मान करना दूसरी बात है, सिद्धांत का पालन करना दूसरी बात। अगर आपके पिता कहते कि जाकर किसी के घर में आग लगा दो, तो आप आग लगा देते?

गांगुली—नहीं-नहीं, कभी नहीं, हम कभी आग न लगाता, चाहे पिताजी हमीं को क्यों

न जला देता। लेकिन पिता ऐसी आज्ञा दे भी तो नहीं सकता।

सहसा रानी जाह्नवी ने पदार्पण किया, शोक और क्रोध की मूर्ति, भवें झुकी हुई, माथा सिकुड़ा हुआ, मानो स्नान करके पूजा करने जाते समय कुत्ते ने छू लिया हो। गांगुली को देखकर बोलीं—आपकी तबियत काउंसिल से नहीं थकती, मैं तो जिंदगी से थक गई। जो कुछ चाहती हूं, वह नहीं होता, जो नहीं चाहती, वही होता है। डॉक्टर साहब, सब कुछ सहा जाता है, बेटे का कुत्सित व्यवहार नहीं सहा जाता, विशेषत: ऐसे बेटे का, जिसके बनाने के लिए कोई बात उठा न रखी गई हो। दुष्ट जसवन्तनगर के विद्रोह में मर गया होता, तो मुझे इतना दु:ख न होता।

कुंवर साहब और ज्यादा न सुन सके। उठकर बाहर चले गए। रानी ने उसी धुन में कहा—यह मेरा दु:ख क्या समझेंगे। इनका सारा जीवन भोग-विलास में बीता है। आत्मसेवा के सामने इन्होंने आदर्शों की चिंता नहीं की । अन्य रईसों की भांति सुख-भोग में लिप्त रहे। मैंने तो विनय के लिए कठिन तप किया है, उसे साथ लेकर महीनों पहाड़ों में पैदल चली हूं, केवल इसलिए कि छुटपने ही से उसे कठिनाइयों का आदी बनाऊं। उसके एक-एक शब्द, एक-एक काम को ध्यान से देखती रही हूं कि उसमें बुरे संस्कार न आ जाएं। अगर वह कभी नौकर पर बिगड़ा है, तो तुरत उसे समझाया है, कभी सत्य से मुंह मोड़ते देखा, तो तुरत तिरस्कार किया। यह मेरी व्यथा क्या जानेंगे?

यह कहते-कहते रानी की निगाह प्रभु सेवक पर पड़ गई, जो कोने में खड़ा किताबें उलट-पलट रहा था। उनकी जबान बंद हो गई। आगे कुछ न कह सकीं। सोफिया के प्रति जो कठोर वचन मन में थे, वे मन ही में रह गए। केवल गांगुली से इतना बोलीं—'जाते समय मुझसे मिल लीजिएगा', और चली गई।

पैंतीस

विनयसिंह आबादी में दाखिल हुए, तो सबेरा हो गया था। थोड़ी ही दूर चले थे कि एक बुढ़िया लाठी टेकती सामने से आती हुई दिखाई दी। इन्हें देखकर बोली—बेटा, गरीब हूं। बन पड़े, तो कुछ दे दो। धरम होगा।

नायकराम—सबेरे राम-नाम नहीं लेती, भीख मांगने चल खड़ी हुई। तुझे तो जैसे रात को नींद ही नहीं आई। मांगने को तो दिन-भर है।

बुढ़िया—बेटा, दुखिया हूं।

नायकराम—यहां कौन सुखिया है। रात-भर भूखों मरे। मासूक की घुड़कियां खाईं। पैर तो सीधे पड़ते नहीं, तुम्हें कहां से पैसा दें।

बुढ़िया—बेटा, धूप में मुझसे चला नहीं जाता, सिर में चक्कर आ जाता है। नई-नई बिपत है भैया, भगवान् उस अधम पापी विनयसिंह का बुरा करे, उसी के कारण बुढ़ापे में यह दिन देखना पड़ा, नहीं तो बेटा दूकान करता था, हम घर में रानी बनी बैठी रहती थीं, नौकर-चाकर थे, कौन-सा सुख नहीं था। तुम परदेसी हो, न जानते होगे, यहां दंगा हो गया था, मेरा लड़का

दूकान से हिला तक नहीं, पर उस निगोड़े विनयसिंह ने सहादत दे दी कि यह भी दंगें में मिला हुआ था। पुलिस हमारे ऊपर बहुत दिनों से दांत लगाए थी, कोई दांव न पाती थी। यह सहादत पाते ही दौड़ आ गई, लड़का पकड़ लिया गया और तीन साल की सजा हो गई। एक हजार जरीबाना हुआ। घर की बीस हजार की गृहस्थी तहस-नहस हो गई। घर में बहू है, छोटे-छोटे बच्चे हैं, इसी तरह मांग-जांचकर उनको पालती-पोसती हूं। न-जाने उसे कलमुंहे ने कब का बैर निकाला !

विनय ने जेब से एक रुपया निकलाकर बुढ़िया को दिया, और आकाश की ओर देखकर ठंडी सांस ली। ऐसी मानसिक वेदना उन्हें कभी न हुई थी।

बुढ़िया ने रुपया देखा, तो चौंक पड़ी। समझा शायद भूल से दे दिया है। बोली–बेटा, यह तो रुपया है।

विनय ने अवरुद्ध कंठ से कहा–हां, ले जाओ, मैंने भूल से नहीं दिया है।

वृद्धा आशीर्वाद देती हुई चली गई। दोनों आदमी और आगे बढ़े, तो राह में एक कुंआ मिला। उस पर पीपल का एक पेड़ था। एक छोटा-सा मंदिर भी बना हुआ था। नायकराम ने सोचा, यहीं हाथ-मुंह धो लें। दोनों आदमी कुएं पर गए, तो देख, एक विप्र महाराज पीपल के नीचे बैठे पाठ कर रहे हैं। जब वह पाठ कर चुके, तो विनय ने पूछा–आपको मालूम है, सरदार नीलकण्ठ आजकल कहां हैं?

पंडितजी ने कर्कश कंठ से कहा–हम नहीं जानते।

विनय–पुलिस के मंत्री तो होंगे?

पंडित–कह दिया, मैं नहीं जानता।

विनय–मि० क्लार्क तो दौर पर होंगे?

पंडित–मैं कुछ नहीं जानता।

नायकराम–पूजा-पाठ में देस-दुनिया की सुध ही नहीं !

पंडित–हां, जब तक मनोकामना न पूरी हो जाए, तब तक मुझे किसी से कुछ सरोकार नहीं। सबेरे-सबेरे तुमने म्लेच्छों का नाम सुना दिया, न जाने दिन कैसे कटेगा।

नायकराम–वह कौन-सी मनोकामना है?

पंडित–अपने अपमान का बदला।

नायकराम–किससे?

पंडित–उसका नाम न लूंगा। किसी बड़े रईस का लड़का है। काशी से दीनों की सहृदयता करने आया था। सैकड़ों घर उजाड़कर न-जाने कहां चल दिया। उसी के निमित्त यह अनुष्ठान कर रहा हूं। यहां आधा नगर मेरा यजमान था, सेठ-साहूकार मेरा आदर करते थे। विद्यार्थियों को पढ़ाया करता था। बुराई यह थी कि नाजिम को सलाम करने न जाता था। अमलों की कोई बुराई देखता, तो मुंह पर खोलकर कह देता। इसी से सब कर्मचारी मुझसे जलते थे। पिछले दिनों जब यहां दंगा हुआ, तो सबों ने उसी बनारस के गुंडे से मुझ पर राजद्रोह का अपराध लगवा दिया। सजा हो गई, बेंत पड़ गए, जरीबाना हो गया, मर्यादा मिट्टी में मिल गई। अब नगर में कोई द्वार पर खड़ा नहीं होने देता। निराश होकर देवी की शरण आया हूं। पुरश्चरण का पाठ कर रहा हूं जिस दिन सुनूंगा कि उस हत्यारे पर देवी ने कोप किया, उसी दिन मेरी तपस्या पूरी हो जाएगी। द्विज हूं।, लड़ाना-भीड़ना नहीं जानता, मेरे पास इसके सिवा

और कौन-सा हथियार है?

विनय किसी शराबखाने से निकलते हुए पकड़ जाते, तो भी इतनी शर्मिंदा न होते। उन्हें अब इस ब्राह्मण की सूरत याद आई, याद आया कि मैंने ही पुलिस की प्रेरणा से इसे पकड़ा दिया था। जेब से पांच रुपये निकाले, और पंडितजी से बोले—यह लीजिए, मेरी ओर से भी उस नर-पिशाच के प्रति मारण-मंत्र का जाप कर दीजिएगा। उसने मेरा भी सर्वनाश किया है। मैं भी उसके खून का प्यासा हो रहा हूं।

पंडित—महाराज, आपका भला होगा। शत्रु की देह में कीड़े न पड़ जाएं तो कहिएगा कि कोई कहता था। कुत्तों की मौत मरेगा। यहां सारा नगर उसका दुश्मन है। अब तक इसीलिए उसकी जान बची की पुलिस उसे घेरे रहती थी। मगर कब तक? जिस दिन अकेला घर से निकला, उसी दिन देवी का उस पर कोप गिरा। है वह इसी राज्य में, कहीं बाहर नहीं गया है, और न अब बचकर जा ही सकता है। काल उसके सिर पर खेल रहा है। इतने दीनों की हाय क्या निष्फल हो जाएगी?

जब यहां से और आगे चले, तो विनय ने कहा—पंडाजी, जल्दी से एक मोटर ठीक कर लो। मुझे भय लग रहा है कि कोई मुझे पहचान न ले। अपने प्राणों का इतना भय मुझे कभी न हुआ था अगर ऐसे ही दो-एक दृश्य और सामने आए, तो शायद मैं आत्मघात कर लूं। आह ! मेरा कितना पतन हुआ है ! और अब तक मैं यही समझ रहा था कि मुझसे कोई अनौचित्य नहीं हुआ। मैंने सेवा का व्रत लिया था, घर से परोपकार करने चला था। खूब परोपकार किया। शायद ये लोग मुझे जीवन-पर्यंत न भूलेंगे।

नायकराम—भैया, भूल-चूक आदमी ही से तो होती है, अब उसका पछतावा न करो।

विनय—नायकराम—यह भूल-चूक नहीं है, ईश्वरीय विधान है, ऐसा ज्ञात होता है कि ईश्वर सद्व्रतधारियों की कठिन परीक्षा लिया करते हैं। सेवक का पद इन परीक्षाओं में सफल हुए बिना नहीं मिलता। मैं परीक्षा में गिर गया, बुरी तरह गिर गया।

नायकराम का विचार था कि जरा जेल के दारोगा साहब का कुशल-समाचार पूछते चलें, लेकिन मौका न देखा, तो तुरंत मोटर-सर्विस के दफ्तर में गए। वहां मालूम हुआ कि दरबार ने सब मोटरों को एक सप्ताह के लिए रोक लिया है।

मिस्टर क्लार्क के कई मित्र बाहर से शिकर खेलने आए हुए थे। अब क्या हो? नायकराम को घोड़े पर चढ़ना न आता था, और विनय को यह उचित न मालूम होता था कि आप तो सवार होकर चलें, और वह पांव-पांव।

नायकराम—भैया, तुम सवार हो जाओ, मेरी कौन, अभी अवसर पड़ जाए, तो दस कोस जा सकता हूं।

विनय—तो मैं ही ऐसा कौन मरा जाता हूं, अब रात की थकावट दूर हो गई।

दोनों आदमियों ने कुछ जलपान किया, और उदयपुर चले। आज विनय ने जितनी बातें कीं, उतनी शायद और कभी न की थीं, और वह भी नायकराम-जैसे लट्ठ गंवार से। सोफी की तीव्र आलोचना अब उन्हें सर्वथा न्याय-संगत जान पड़ती थी। बोले—पंडाजी, यह समझ लो कि अगर दरबार ने उन सब कैदियों को छोड़ न दिया, जो मेरी शहादत से फंसे हैं, तो मैं अपना मुंह किसी को न दिखाऊंगा। मेरे लिए यही एक आशा रह गई है। तुम घर जाकर माताजी से कह देना कि वह कितना दुखी और अपनी भूल पर कितना लज्जित था !

नायकराम—भैया, तुम घर न जाओगे, तो मैं भी न जाऊंगा। अब तो जहां, तुम हो, वहीं मैं भी हूं। जो कुछ बीतेगी, दोनों ही के सिर बीतेगी।

विनय—बस, तुम्हारी यही बात बुरी मालूम होती है। तुम्हारा और मेरा कौन-सा साथ है। मैं पातकी हूं। मुझे अपने पाताकों का प्रायश्चित करना है। तुम्हारे माथे पर कोई कलंक नहीं है। तुम अपना जीवन क्यों नष्ट करोगे? मैंने अब तक सोफिया को न पहचाना था। आज मालूम हुआ कि उसका हृदय कितना विशाल है। मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है। हां, शिकायत केवल इस बात की है कि उसने मुझे अपना न समझा। वह अगर समझती कि यह मेरे हैं, तो मेरी एक-एक बात क्यों पकड़ती, जरा-जरा-सी बातों पर क्यों गुप्तचरों की भांति तीव्र दृष्टि रखती। वह यह जानती है कि मैं ठुकरा दूंगी, तो यह जान पर खेल जायंगे। यह जानकर भी उसने मेरे साथ इतनी निर्दयता क्यों की? वह यह क्यों भूल गई कि मनुष्य से भूलें होती ही हैं। संभव है, अपना समझकर ही उसने मुझे यह कठोर दंड दिया हो। दूसरों की बुराइयों की हमें परवा नहीं होती, अपनों ही को बुरी राह चलते देखकर दंड दिया जाता है। मगर अपनों को दंड देते समय इसका तो ध्यान रखना चाहिए कि आत्मीयता का सूत्र न टूट न पाए। यह सोचकर मुझे ऐसा मालूम होता है कि उसका दिल मुझसे सदैव के लिए फिर गया।

नायकराम—ईसाइन है न ! किसी अंगरेज को गांठेगी !

विनय—तुम बिल्कुल बेहूदे हो, बात करने की तमीज नहीं। मैं कहता हूं, वह अब उम्र-भर ब्रह्मचारिणी रहेगी। तुम उसे क्या जानो, बात समझो न बूझो, चट से कह उठे, किसी अंगरेज को गांठेगी। मैं उसे कुछ-कुछ जानता हूं। मेरे लिए उसने क्या-क्या नहीं किया, क्या-क्या नहीं सहा। जब उसका प्रेम याद आता है, तो कलेजे में ऐसी पीड़ा होती है कि कहीं पत्थरों से सिर टकराकर प्राण दे दूं। अब वह अजेय है, उसने अपने प्रेम का द्वार बंद कर लिया। मैंने उस जनम में न जाने कौन-सी तपस्या की थी, जिसका सुफल इतने दिनों भोगा। अब कोई देवता बनकर भी उसके सामने आए, तो वह उसकी ओर आंख उठाकर भी न देखगी। जनम से ईसाइन भले ही हो, पर संस्कारों से, कर्मों से, वह आर्य महिला है। मैंने उसे कही का न रखा। आप भी डूबा, उसे भी ले डूबा। अब तुम देखना कि रियासत को वह कैसा नाकों चने चबवाती है। उसकी वाणी में इतनी शक्ति है कि आन-की-आन में रियासत का निशान मिटा सकती है।

नायकराम—हां, है तो ऐसी ही आफत की परकाला।

विनय—फिर वही मूर्खता की बात ! मैं तुमसे कितनी बार कह चुका कि मेरे सामने उसका नाम इज्जत से लिया करो। मैं उसके विषय में किसी के मुख से एक भी अनुचित शब्द नहीं सुन सकता। वह अगर मुझे भालों से भी छेदे, तो भी उसके प्रति मेरे मन में उपेक्षा का भाव न आएगा। प्रेम में प्रतिकार नहीं होता। प्रेम अनंत क्षमा, अनंत उदारता, अनंत धैर्य से परिपूर्ण होता है।

यों बातें करते हुए दोनों ने दोपहर तक आधी मंजिल काटी। दोपहर को आराम करने लगे, तो ऐसे सोये कि शाम हो गई। रात को वहां ठहरना पड़ा। सराय मौजूद थी, विशेष कष्ट न हुआ। हां, नायकराम को आज जिंदगी में पहली बार भंग न मिली, और वह बहुत दुखी रहे। एक तोले भंग के लिए एक से दस रुपये तक देने को तैयार थे, पर आज भाग्य में उपास ही लिखा था। चारों ओर से हारकर वह सिर थाम कुएं की जगत पर आ बैठे, मानो किसी घर के

आदमी की दाह-क्रिया करके आए हों।

विनय ने कहा—ऐसा व्यसन क्यों करते हो कि एक दिन भी उसके बिना न रहा जाए? छोड़ो इसे, भले आदमी, व्यर्थ में प्राण दिए देते हो।

नायकराम—भैया, इस जनम में तो छूटती नहीं, आगे की दैव जाने। यहां तो मरते समय भी एक गोला सिराहने रख लेंगे, वसीयत कर जायंगे कि एक सेर भंग हमारी चिता में डाल देना। कोई पानी देने वाला तो है नहीं; लेकिन अगर कभी भगवान् ने वह दिन दिखाया, तो लड़कों से कह जाऊंगा कि पिंडे के साथ भंग का पिंडा भी जरूर देना। इसका मजा वही जानता है, जो इसका सेवन करता है।

नायकराम को आज भोजन अच्छा न लगा, नींद न आई, देह टूटती रही। गुस्से में सराय वाले को खूब गालियां दीं। मारने दौड़े। बनिए को डांटा कि साफ शकर क्यों न दी। हलवाई से उलझ पड़े कि मिठाइयां क्यों खराब दीं। देख तो, तेरी क्या गत बनाता हूं! चलकर सीधे सरदार साहब से कहता हूं। बचा! दूकान न लुटवा दूं, तो कहना। जानते हो, मेरा नाम नायकराम है। यहां तेल की गंध से घिन है। हलवाई पैरों पड़ने लगा, पर उन्होंने एक न सुनी। यहां तक कि धमकाकर उससे पच्चीस रुपये वसूल किए। किंतु चलते समय विनय ने रुपये वापस कर दिए। हां, हलवाई को ताकीद कर दी कि ऐसी खराब मिठाइयां न बनाया करे, और तेल की चीज के घी के दाम न लिया करे।

दूसरे दिन दोनों आदमी दस बजते-बजते उदयपुर पहुंच गए। पहला आदमी जो उन्हें दिखाई दिया, वह स्वयं सरदार साहब थे, वह टमटम पर बैठे हुए दरबार से आ रहे थे। विनय को देखते ही घोड़ा रोक दिया, और पूछा—आप कहां?

विनय ने कहा—यहीं तो आ रहा था।

सरदार—कोई मोटर न मिला? हां, न मिला होगा। तो टेलीफोन क्यों न कर दिया? यहां से सवारी भेज दी जाती। व्यर्थ इतना कष्ट उठाया।

विनय—मुझे पैदल चलने का अभ्यास है, विशेष कष्ट नहीं हुआ। मैं आज आपसे मिलना चाहता हूं, और एकांत में। आप कब मिल सकेंगे?

सरदार—आपके लिए समय निश्चित करने की जरूरत नहीं। जब जी चाहे, चले आइएगा, बल्कि वहीं ठहरिएगा भी।

विनय—अच्छी बात है।

सरदार साहब ने घोड़े को चाबुक लगाया और चल दिए। यह न हो सका कि विनय को भी बिठा लेते, क्योंकि उनके साथ नायकराम को भी बैठाना पड़ता। विनयसिंह ने एक तांगा लिया, और थोड़ी देर में सरदार साहब के मकान पर पहुंचे।

सरदार साहब ने पूछा—इधर कई दिनों से आपका कोई समाचार नहीं मिला। आपके साथ के और लोग कहां हैं? कुछ मिसेज क्लार्क का पता चला?

विनय—साथ के आदमी तो पीछे हैं, लेकिन मिसेज क्लार्क का कहीं पता न चला, सारा परिश्रम विफल हो गया। वीरपालसिंह की तो मैंने टोह लगा ली, उसका घर भी देख आया। पर मिसेज क्लार्क की खोज न मिली।

सरदार साहब ने विस्मित होकर कहा—यह आप क्या कह रहे हैं? मुझे जो सूचना मिली है, वह तो यह कहती है कि आपसे मिसेज क्लार्क की मुलाकात हुई, और अब मुझे आपसे

होशियार रहना चाहिए। देखिए, मैं वह खत आपको दिखाता हूं।

यह कहकर सरदार साहब मेज के पास गए, एक बादामी मोटे कागज पर लिखा हुआ खत उठा लाए, और विनयसिंह के हाथ में रख दिया।

जीवन में यह पहला अवसर था कि विनय ने असत्य का आश्रय लिया था। चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। बात क्योंकर निबाहें, यह समझ में न आया। नायकराम भी फर्श पर बैठे थे। समझ गए कि यह असंमजस में पड़े हुए हैं। झूठे बोलने और बातें बनाने में अभ्यस्त थे। बोले—कुंवर साहब, जरा मुझे दीजिए, किसका खत है?

विनय—इन्द्रदत्त का।

नायकराम—ओहो ! उस पगले का खत है। वही लौंडा न, जो सेवासमिति में आकर गाया करता था? उसके मां-बाप ने घर से निकाल दिया था। सरकार, पगला है। ऐसी ही ऊटपटांग बातें किया करता है।

सरदार—नहीं, किसी पगले लौंडे की लेखनशैली ऐसी नहीं हो सकती। बड़ा चतुर आदमी है। इसमें कोई संदेह नहीं। उसके पत्र इधर कई दिनों से बराबर मेरे पास आ रहे हैं। कभी मुझे धमकाता है, कभी नीति के उपदेश देता है। किंतु जो कुछ कहता है, शिष्टाचार के साथ। एक भी अशिष्ट अथवा अनर्गल शब्द नहीं होता। अगर यह वही इन्द्रदत्त है, जिसे आप जानते हैं, तो और भी आश्चर्य है। संभव है, उसके नाम से कोई दूसरा आदमी पत्र लिखता हो। यह कोई साधारण शिक्षा पाया हुआ आदमी नहीं मालूम होता।

विनयसिंह तो ऐसे सिटपिटा गए, जैसे कोई सेवक अपने स्वामी का संदूक खोलता हुआ पकड़ा जाए। मन में झुंझला रहे थे कि मैंने क्या मिथ्या भाषण किया? मुझे छिपाने की जरूरत ही क्या थी। लेकिन इन्द्रदत्त का इस पत्र से क्या उद्देश्य है? क्या मुझे बदनाम करना चाहता है?

नायकराम—कोई दूसरा ही आदमी होगा। उसका मतलब यही है कि यहां के हाकिमों को कुंवर साहब से भड़का दे। क्यों भैया, समिति में कोई विद्वान् आदमी था?

विनय—सभी विद्वान थे, उनमें मूर्ख कौन है? इन्द्रदत्त भी उच्च कोटि की शिक्षा पाए हुए हैं। पर मुझे न मालूम था कि वह मुझसे इतना द्वेष रखता है।

यह कहकर विनय ने सरदार साहब को लज्जित नेत्रों से देखा। असत्य का रूप प्रतिक्षण भयंकर तथा मिथ्यांधकार और भी सघन होता जाता था।

तब वह सकुचाते हुए बोले—सरदार साहब, क्षमा कीजिएगा, मैं आपसे झूठ बोल रहा था। इस पत्र में जो कुछ लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है। निस्संदेह मेरी मुलाकात मिसेज क्लार्क से हुई। मैं इस घटना को आपसे गुप्त रखना चाहता था, क्योंकि मैंने उन्हें इसका वचन दे दिया। था। वह वहां बहुत आराम से हैं, यहां तक कि मेरे बहुत आग्रह करने पर भी मेरे साथ न आईं।

सरदार साहब ने बेपरवाही से कहा—राजनीति में वचन का बहुत महत्त्व नहीं है। अब मुझे आपसे चौकन्ना रहना पड़ेगा। अगर इस पत्र ने मुझे सारी बातों का परिचय न दे दिया होता, तो आपने तो मुझे मुगालता देने में कोई बात उठा न रखी थी। आप जानते हैं, हमें आजकल इस विषय में गवर्नमेंट से कितनी धमकियां मिल रही हैं। यों कहिए कि मिसेज क्लार्क के सकुशल लौट आने पर ही हमारी कारगुजारी निर्भर है। खैर, यह क्या बात है? मिसेज क्लार्क आईं क्यों नहीं? क्या बदमाशों ने उन्हें आने न दिया?

विनय—वीरपालसिंह तो बड़ी खुशी से उन्हें भेजना चाहता था। यही एक साधन है, जिससे

वह अपनी प्राणरक्षा कर सकता है। लेकिन वह खुद ही आने पर तैयार न हुईं।

सरदार—मिस्टर क्लार्क से नाराज तो नहीं हैं?

विनय—हो सकता है। जिस दिन विद्रोह हुआ था, मिस्टर क्लार्क नशे में अचेत पड़े थे, शायद इसी कारण उनसे चिढ़ गई हो। ठीक-ठीक कुछ नहीं कह सकता। हां, उनसे भेंट होने से यह बात स्पष्ट हो गई कि हमने जसवन्तनगर वालों का दमन करने में बहुत-सी बातें न्याय-विरुद्ध कीं। हमें शंका थी कि विद्रोहियों ने मिसेज क्लार्क को या तो कैद कर रखा है, या मार डाला है। इसी शंका पर हमने दमन-नीति का व्यवहार किया। सबको एक लाठी से हांका। किंतु दो बातों में से एक भी सच न निकली। मिसेज क्लार्क जीवित हैं और प्रसन्न हैं। वह वहां से स्वयं नहीं आना चाहतीं। जसवन्तनगर वाले अकारण ही हमारे कोप के भागी हुए, और मैं आपसे बड़े आग्रह से प्रार्थना करता हूं। कि उन गरीबों पर दया होनी चाहिए। सैकड़ों निरपराधियों की गरदन पर छुरी फिर रही है।

सरदार साहब जान-बूझकर किसी पर अन्याय न करना चाहते थे, पर अन्याय कर चुकने के बाद अपनी भूल स्वीकार करने का उन्हें साहस न होता था। न्याय करना उतना कठिन नहीं है, जितना अन्याय का शमन करना। सोफी के गुम हो जाने से उन्हें केवल गवर्नमेंट की वक्र दृष्टि का भय था। पर सोफी का पता मिल जाना, समस्त देश के सामने अपनी अयोग्यता और नृशंसता का डंका पीटना था। मिस्टर क्लार्क को खुश करके गवर्नमेंट को खुश किया जा सकता था, पर प्रजा की जबान इतनी आसानी से न बंद की जा सकती थी।

सरदार साहब ने कुछ सकुचाते हुए कहा—यह तो मैं मान सकता हूं कि मिसेज क्लार्क जीवित हैं। लेकिन आप तो क्या, ब्रह्म भी आकर कहें कि वह वहां प्रसन्न हैं, और आना नहीं चाहतीं, तो भी मैं स्वीकार न करूंगा। यह बच्चों की-सी बात है। किसी को अपने घर से इतनी अरुचि नहीं होती कि वह शत्रुओं के साथ रहना पसंद करे। विद्रोहियों ने मिसेज क्लार्क को यह कहने के लिए मजबूर किया होगा। वे मिसेज क्लार्क को उस वक्त तक न छोड़ेंगे, जब तक हम सारे कैदियों को मुक्त न कर दें। यह विजेताओं की नीति है, और मैं इसे नहीं मान सकता। मिसेज क्लार्क को कड़ी-से कड़ी यातनाएं दी जा रही हैं, और उन्होंने उन यातनाओं से बचने के लिए आपसे यह सिफारिश की है, और कोई बात नहीं है।

विनय—मैं इस विचार से सहमत नहीं हो सकता। मिसेज क्लार्क बहुत प्रसन्न दिखाई देती थीं। पीड़ित हृदय कभी इतना निश्शंक नहीं हो सकता।

सरदार—यह आपकी आंखों का दोष है। अगर मिसेज क्लार्क स्वयं आकर मुझसे कहें कि मैं बड़े आराम से हूं, तो भी मुझे विश्वास न आयगा। आप नहीं जानते, यह लोग किन सिद्धियों से स्वाधीनता पर जान देने वाले प्राणियों पर भी आतंक जमा लेते हैं, यहां तक कि उनके पंजे से निकल आने पर भी कैदी उन्हीं की-सी कहता है, और उन्हीं की-सी करता है। मैं एक जमाने में पुलिस का कर्मचारी था। आपसे सच कहता हूं, मैंने कितने ही राजनीतिक अभियोगों में बड़े-बड़े व्रतधारियों से ऐसे अपराध स्वीकार करा दिए, जिनकी उन्होंने कल्पना तक न की थी। वीरपालसिंह इस विषय में हमसे कहीं चतुर है।

विनय—सरदार साहब, अगर थोड़ी देर के लिए मुझे यह विश्वास भी हो जाए कि मिसेज क्लार्क ने दबाव में आकर मुझसे ये बातें कही हैं, तो भी अब ठंडे हृदय से विचार करने पर मुझे ज्ञात हो रहा है कि हमें इतनी निर्दयता से दमन न करना चाहिए था। अब उन अभियुक्तों

पर कुछ रिआयत होनी चाहिए।

सरदार—रिआयत राजनीति में पराजय का सूचक है। अगर मैं यह भी मान लूं कि मिसेज क्लार्क वहां आराम से हैं, और स्वतंत्र हैं, और हमने जसवन्तनगर वालों पर घोर अत्याचार किया, फिर भी मैं रिआयत करने को तैयार नहीं हूं। रिआयत करना अपनी दुर्बलता और भ्रांति की घोषणा करना है। आप जानते हैं, रिआयत का परिणाम क्या होगा? विद्रोहियों के हौंसले बढ जाएंगे, उनके दिल से रियासत का भय जाता रहेगा, और जब भय न रहा तो राज्य भी नहीं रह सकता। राज्य-व्यवस्था का आधार न्याय नहीं, भय है। भय को आप निकाल दीजिए, और राज्य विध्वंस हो जाएगा, फिर अर्जुन की वीरता और युधिष्ठिर का न्याय भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता। सौ-दो सौ निरपराधियों का जेल में रहना, राज्य न रहने से कहीं अच्छा है। मगर मैं उन विद्रोहियों को निरपराध क्योंकर मान लूं? कई हजार आदमियों का सशस्त्र एकत्र हो जाना यह सिद्ध करता है कि वहां लोग विद्रोह करने के विचार से ही गए थे।

विनय—किंतु जो लोग उसमें सम्मिलित न थे, वे तो बेकसूर हैं?

सरदार—कदापि नहीं। उनका कर्त्तव्य था कि अधिकारियों को पहले ही से सचेत कर देते। एक चोर को किसी के घर में सेंध लगाते देखकर आप घरवालों को जगाने की चेष्टा न करें, तो आप स्वयं चोर की सहायता कर रहे हैं। उदासीनता बहुधा अपराध से भी भयंकर होती है।

विनय—कम-से-कम इतना तो कीजिए कि जो लोग मेरी शहादत पर पकड़े गए हैं, उन्हें बरी कर दीजिए।

सरदार—असंभव है।

विनय—मैं शासन-नीति के नाते नहीं, दया और सौजन्य के नाते आपसे यह विनती आग्रह करता हूं।

सरदार—कह दिया भाईजान, कि यह असंभव है। आप इसका परिणाम नहीं सोच रहे हैं।

विनय—लेकिन मेरी प्रार्थना को स्वीकार न करने का परिणाम भी अच्छा न होगा। आप समस्या को और जटिल बना रहे हैं।

सरदार—मैं खुले हए विद्रोह से नहीं डरता। डरता हूं केवल सेवकों से, प्रजा के हितैषियों से, और उनसे यहां की प्रजा का जी भर गया है। बहुत दिन बीत जायंगे, इसके पहले कि प्रजा देश-सेवकों पर फिर विश्वास करे।

विनय—अगर इसी नीयत से आपने मेरे हाथों प्रजा का अनिष्ट कराया, आपने मेरे साथ घोर विश्वासघात किया। लेकिन मैं आपको सतर्क किए देता हूं कि यदि आपने मेरा अनुरोध न माना तो आप रियासत में ऐसा विप्लव मचा देंगे, जो रियासत की जड़ हिला देगा। मैं यहां से मिस्टर क्लार्क के पास जाता हूं। उनसे भी यही अनुरोध करूंगा, और यदि वह भी न सुनेंगे, तो हिज हाइनेस की सेवा में वही प्रस्ताव उपस्थित करूंगा। अगर उन्होंने भी न सुना तो फिर इस रियासत का मुझसे बड़ा और कोई शत्रु न होगा।

यह कहकर विनयसिंह उठ खड़े हुए, और नायकराम को साथ लिया मिस्टर क्लार्क के बंगले पर जा पहुंचे। वह आज ही अपने शिकारी मित्रों को बिदा करके लौटे थे, और इस समय

विश्राम कर रहे थे। विनय ने अरदली से पूछा, तो मालूम हुआ कि साहब कुछ काम कर रहे हैं। विनय बाग में टहलने लगे। जब आध घंटे तक साहब ने न बुलाया तो उठे, और सीधे क्लार्क के कमरे में घुस गए। वह इन्हें देखते ही उठ बैठे, और बोले—आइए-आइए, आप ही की याद कर रहा था। कहिए, क्या समाचार है? सोफिया का पता तो आप ही लगा आए होंगे?

विनय—जी हां, लगा आया।

यह कहकर विनय ने क्लार्क से भी वही कथा कही, जो सरदार साहब से कही थी, और वही अनुरोध किया।

क्लार्क—मिस सोफी आपके साथ क्यों नहीं आईं?

विनय—यह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन वहां उन्हें कोई कष्ट नहीं है।

क्लार्क—तो फिर आपने नई खोज क्या की? मैंने तो समझा था, शायद आपके आने से इस विषय पर कुछ प्रकाश पड़ेगा। यह देखिए, सोफिया का पत्र है। आज ही आया है। इसे आपको दिखा तो नहीं सकता, पर इतना कह सकता हूं कि वह इस वक्त मेरे सामने आ जाए, तो उस पर पिस्तौल चलाने में एक क्षण भी विलंब न करूंगा। अब मुझे मालूम हुआ कि धर्मपरायणता छल और कुटिलता का दूसरा नाम है। इसकी धर्म-निष्ठा ने मुझे बड़ा धोखा दिया। शायद कभी किसी इतना बड़ा धोखा खाया होगा। मैंने समझा था, धार्मिकता से सहृदयता उत्पन्न होती है, पर यह मेरी भ्रांति थी। मैं इसकी धर्म-निष्ठा पर रीझ गया। मुझे इंगलैंड की रंगीली युवतियों से निराशा हो गई थी। सोफिया का सरल स्वभाव और धार्मिक प्रवृत्ति देखकर मैंने समझा, मुझे इच्छित वस्तु मिल गई। अपने समाज की उपेक्षा करके मैं उसके पास आने-जाने लगा और अंत में प्रोपोज किया। सोफिया ने स्वीकार तो कर लिया, पर कुछ दिनों तक विवाह को स्थगित रखना चाहा। मैं क्या जानता था कि उसके दिल में क्या है! राजी हो गया! उसी अवस्था में वह मेरे साथ यहां आई, बल्कि यों कहिए कि वही मुझे यहा लाई। दुनिया समझती है, वह मेरी विवाहिता थी, कदापि नहीं। हमारी तो मंगनी भी न हुई थी। अब जाकर रहस्य खुला कि वह बोलशेविकों की एजेंट है। उसके एक-एक शब्द से उसकी बोलशेविक प्रवृत्ति टपक रही है। प्रेम का स्वांग भरकर वह अंगरेजों के आंतरिक भावों का ज्ञान प्राप्त करना चाहती थी। उसका यह उद्देश्य पूरा हो गया। मुझसे जो काम निकल सकता था, वह निकालकर उसने मुझे दुत्कार दिया है। विनयसिंह, तुम नहीं अनुमान कर सकते कि मैं उससे कितना प्रेम करता था। इस अनुपम रूप-राशि के नीचे इतनी घोर कुटिलता! मुझे धमकी दी है कि इतने दिनों में अंगरेजी समाज का मुझे जो कुछ अनुभव हुआ है, उसे मैं भारतवासियों के विनोदार्थ प्रकाशित कर दूंगी। वह जो कुछ कहना चाहती है, मैं स्वयं क्या न बतला दूं? अंगरेज-जाति भारत को अंनत काल तक अपने साम्राज्य का अंग बनाए रखना चाहती है। कंजरवेटिव हो या लिबरल, रेडिकल हो या लेबर, नेशनलिस्ट हो या सोशलिस्ट, इस विषय में सभी एक ही आदर्श का पालन करते हैं। सोफी के पहले मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि रेडिकल और लेबर नेताओं के धोखे में न आओ। कजरवेटिव दल में और चाहे कितनी ही बुराइयां हों, वह निर्भीक है, तीक्ष्ण सत्य से नहीं डरता। रेडिकल और लेबर अपने पवित्र और उज्ज्वल सिद्धांतों का समर्थन करने के लिए ऐसी आशाप्रद बातें कह डालते हैं, जिनको व्यवहार में लाने का उन्हें साहस नहीं हो सकता। आधिपत्य त्याग करने की वस्तु नहीं है। संसार का इतिहास केवल इसी शब्द 'आधिपत्य-प्रेम' पर समाप्त हो

जाता है। मानव स्वभाव अब भी वही है जो सृष्टि के आदि में था। अंगरेज-जाति कभी त्याग के लिए, उच्च सिद्धांतों पर प्राण देने के लिए प्रसिद्ध नहीं रही। हम सब-से-सब, मैं लेबर हूं, साम्राज्यवादी हैं। अंतर केवल उस नीति में है, जो भिन्न-भिन्न दल इस जाति पर आधिपत्य जमाए रखने के लिए ग्रहण करते हैं। कोई कठोर शासन का उपासक है, कोई सहानुभूति का, कोई चिकनी-चुपड़ी बातों से काम निकालने का। बस ! वास्तव में नीति कोई है ही नहीं, केवल उद्देश्य है, और वह यह कि क्योंकर हमारा आधिपत्य उत्तरोत्तर सुदृढ़ हो। यही वह गुप्त रहस्य है, जिसको प्रकट करने की मझे धमकी दी गई है यह पत्र मुझे न मिला होता, तो मेरी आंखों पर परदा पड़ा रहता, और मैं सोफी के लिए क्या कुछ न कर डालता। पर इस पत्र ने मेरी आंखें खोल दीं और अब मैं आपकी सहायता नहीं कर सकता, बल्कि आपसे भी अनुरोध करता हूं कि इस बोलशेविक आंदोलन को शांत करने में रियासत की सहायता कीजिए। सोफी-जैसी चतुर, कार्यशील, धुन की पक्की युवती के हाथों में यह आंदोलन कितना भंयकर हो सकता है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है।

विनय यहां से भी निराश होकर बाहर निकले, तो सोचने लगे, अब महाराजा साहब के पास जाना व्यर्थ है। यह साफ कह देंगे, जब मंत्री और एजेंट कुछ नहीं कर सकते, तो मैं क्या कर सकता हूं। लेकिन जी न माना, तांगे वाले को राजभवन की ओर चलने का हुक्म दिया।

नायकराम—क्या गिटपिट करता रहा? आया राह पर?

विनय—यही राह पर आ जाता, तो महाराजा साहब के पास क्यों चलते?

नायकराम—हजार-दो हजार मांगता हो, तो दे क्यों नहीं देते? अफसर छोटे हो या बड़े, सभी लोभी होते हैं।

विनय—क्या पागलों की-सी बात करते हो। अंगरेजों में अगर ये बुराइयां होतीं, तो इस देश से ये लोग कब के सिधार गए होते। यों अंगरेज भी रिश्वत लेते हैं, देवता नहीं हैं, पहले-पहले अंगरेज यहां आए थे, वे तो पूरे डाकू थे, लेकिन अपने राज्यों का अपकार करके ये लोग कभी अपना उपकार नहीं करते। रिश्वत भी लेंगे, तो उसी दशा में जब राज्य को उससे कोई हानि न पहुंचे।

नायकराम चुप हो रहे। तांगा राज-भवन की ओर जा रहा था। रास्ते में कई सड़कें, कई पाठशालाएं, कई चिकित्सालय मिले। इन सबों के नाम अंगरेजी थे। यहां तक कि एक पार्क मिला, वह भी किसी अंगरेज एजेंट के नाम से संस्कृत था। ऐसा जान पड़ता था, कोई भारतीय नगर नहीं, अंगरेजों का शिविर है। तांगा जब राज-भवन के सामने पहुंचा, तो विनयसिंह उतर पड़े, और महाराजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी के पास गए। यह एक अंगरेज था। विनय से हाथ मिलाते हुए बोला—महाराजा साहब तो अभी पूजा पर है। ग्यारह बजे बैठा था, चार बजे उठेगा। क्या आप लोग इतनी देर तक पूजा किया करता है?

विनय—हमारे यहां ऐसे-ऐसे पूजा करने वाले हैं, जो कई-कई दिनों तक समाधि में मग्न रहते हैं। पूजा का वह भाग, जिसमें परमात्मा या अन्य देवतों से कल्याण की याचना की जाती है, शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, लेकिन वह भाग, जिसमें योग-क्रियाओं द्वारा आत्मशुद्धि की जाती है, बहुत विशद होता है।

सेक्रेटरी—हम जिस राजा के साथ पहले था, वह सबेरे से दो बजे तक पूजा करता था,

तब भोजन करता था, और चार बजे सोता था। फिर नौ बजे पूजा पर बैठ जाता था और दो बजे रात को उठता था। वह एक घंटे के लिए सूर्यास्त के समय बाहर निकलता था। पर इतनी लंबी पूजा मेरे विचार में अस्वाभाविक है। मैं समझता हूं कि यह न तो उपासना है, न आत्मशुद्धि की क्रिया, केवल एक प्रकार की अकर्मण्यता है।

विनय का चित्त इस समय इतना व्यग्र हो रहा था कि उन्होंने इस कटाक्ष का कुछ उत्तर न दिया। सोचने लगे—राजा साहब ने भी साफ जवाब दिया, तो मेरे लिए क्या करना उचित होगा? अभी इतने बेगुनाहों के खून से हाथ रंगे हुए हैं, कहीं सोफी ने गुप्त हत्याओं का अभियान आरंभ किया, तो उनका खून भी मेरी गरदन पर होगा। इस विचार से वह इतने व्याकुल हुए कि एक ठंडी सांस लेकर आराम-कुर्सी पर लेट गए, और आंखें बंद कर लीं। यों वह नित्य संध्या करते थे, पर आज पहली बार ईश्वर से दया-प्रार्थना की। रात-भर के जागे, दिन-भर के थके थे ही, एक झपकी आ गई। जब आंखें खुलीं, तो चार बज चुके थे। सेक्रेटरी से पूछा—अब तो हिज हाइनेस पूजा पर से उठ गए होंगे?

सेक्रेटरी—आपने तो एक लंबी नींद ले ली।

यह कहकर उसने टेलीफोन द्वारा कहा—कुंवर विनयसिंह हिज हाइनेस से मिलना चाहते हैं।

एक क्षण में जवाब आया—आने दो।

विनयसिंह महाराज के दीवानेखास में पहुंचे। वहां कोई सजावट न थी, केवल दीवारों पर देवताओं के चित्र लटके हुए थे। कालीन के फर्श पर सफेद चादर बिछी हुई थी। महाराज साहब मसनद पर बैठे हुए थे। उनकी देह पर केवल एक रेशमी चादर थी, और गले में एक तुलसी की माला। मुख से साधुता झलक रही थी। विनय को देखते ही बोले—आओ जी, बहुत दिन लगा दिए। मिस्टर क्लार्क की मेम का कुछ पता चला?

विनय—जी हां, वीरपालसिंह के घर है, और बड़े आराम से है। वास्तव में अभी मिस्टर क्लार्क से उसका विवाह नहीं हुआ है, केवल मंगनी हुई है। इनके पास आने पर राजी नहीं होती है। कहती है, मैं यहीं बड़े आराम से हूं, और मुझे भी ऐसा ही ज्ञात होता है।

महाराजा—हरि-हरि! यह तो तुमने विचित्र बात सुनाई। इनके पास आती ही नहीं! समझ गया, उन सबों ने वशीकरण कर दिया होगा। शिव-शिव! इनके पास आती ही नहीं!

विनय—अब विचार कीजिए कि वह तो जीवित है, और सुखी है, और यहां हम लोगों ने कितने ही निरपराधियों को जेल में डाल दिया, कितने ही घरों को बरबाद कर दिया, और कितनों ही को शारीरिक दंड दिया।

महाराजा—शिव-शिव! घोर अनर्थ हुआ!

विनय—भ्रम में हम लोगों ने गरीबों पर कैसे-कैसे अत्याचार किए कि उनकी याद ही से रोमांच हो आता है। महाराज बहुत उचित कहते हैं, घोर अनर्थ हुआ। ज्योंही यह बात लोगों को मालूम हो जायगी, जनता में हाहाकार मच जायगा। इसलिए अब यही उचित है कि हम अपनी भूल स्वीकार कर लें, और कैदियों को मुक्त कर दें।

महाराजा—हरि-हरि, यह कैसे होगा बेटा? राजों से भी कहीं भूल होती है! शिव-शिव! राजा तो ईश्वर का अवतार है। हरि-हरि! वह एक बार जो कर देता है, उसे फिर नहीं मिटा सकता। शिव-शिव! राजा का शब्द ब्रह्म-लेख है, वह नहीं मिट सकता, हरि-हरि!

विनय–अपनी भूल स्वीकार करने में जो गौरव है, वह अन्याय को चिरायु रखने में नहीं है। अधीश्वरों के लिए क्षमा ही शोभा देती है। कैदियों को मुक्त करने की आज्ञा दी जाए, जुरमाने के रुपये लौटा दिए जाएं, और जिन्हें शारीरिक दंड दिए गए हैं, उन्हें धन देकर संतुष्ट किया जाए। इससे आपकी कीर्ति अमर हो जाएगी, लोग आपका यश गाएंगे, और मुक्त कंठ से आशीर्वाद देंगे।

महाराजा–शिव-शिव ! बेटा, तुम राजनीति की चालें नहीं जानते। यहां एक कैदी भी छोड़ा गया, और रियासत पर वज्र गिरा। सरकार कहेगी, मेम को न-जाने किस नीयत से छिपाए हुए है, कदाचित् उस पर मोहित है, तभी तो पहले दंड का स्वांग भरकर अब विद्रोहियों को छोड़े देता है। शिव-शिव ! रियासत धूल में मिल जायगी, रसातल को चली जायगी। कोई न पूछेगा कि यह सच है या झूठ। कहीं इस पर विचार न होगा। हरि-हरि ! हमारी दशा साधारण अपराधियों से भी गई-बीती है। उन्हें तो सफाई का अवसर दिया जाता है, न्यायालय में उन पर कोई धारा लगाई जाती है, और उसी धारा के अनुसार उन्हें दंड दिया जाता है। हमसे कौन सफाई लेता है, हमारे लिए कौन-सा न्यायालय है ! हरि-हरि ! हमारे लिए न कोई कानून है, न कोई धारा। जो अपराध चाहा, लगा दिया, जो दंड चाहा, दे दिया। न कहीं अपील है, न फरियाद। राजे विषय-प्रेमी कहलाते ही हैं, उन पर यह दोषारोपण होते कितनी देर लगती है ! कहा जाएगा, तुमने क्लार्क की अति रूपवती मेम को अपने रनिवास में छिपा लिया, और झूठ-मूठ उड़ा दिया कि वह गुम हो गई? हरि-हरि ! शिव-शिव ! सुनता हूं, बड़ी रूपवती स्त्री है, चांद का टुकड़ा है, अप्सरा है। बेटा, इस अवस्था में यह कलंक न लगाओ। वृद्धावस्था भी हमें ऐसे कुत्सित दोषों से नहीं बचा सकती। मशहूर है, राजा लोग रसादि का सेवन करते हैं, इसलिए जीवन-पर्यंत हृष्ट-पुष्ट बने रहते हैं। शिव-शिव ! यह राज्य नहीं है, अपने कर्मों का दंड है। नकटा जिया बुरे हवाल। शिव-शिव ! अब कुछ नहीं हो सकता। सौ-पचास निर्दोष मनुष्यों का जेल में पड़ा रहना कोई असाधारण बात नहीं। वहां भी भोजन-वस्त्र मिलता ही है। अब तो जेलखानों की दशा बहुत अच्छी है। नए-नए कुरते दिए जाते हैं, भोजन भी अच्छा दिया जाता है। हां, तुम्हारी खातिर से इतना कर सकता हूं कि जिन परिवारों का कोई रक्षक न रह गया हो, अथवा जो जुरमाने के कारण दरिद्र हो गए हों, उन्हें गुप्त रीति से कुछ सहायता दे दी जाए। हरि-हरि ! तुम अभी क्लार्क के पास तो नहीं गए थे?

विनय–गया था, वहीं से तो आ रहा हूं।

महाराजा–(घबराकर) उनसे यह तो नहीं कह दिया कि मेम साहब बड़े आराम से हैं, और आने पर राजी नहीं हैं?

विनय–यह भी कह दिया, छिपाने की कोई बात न थी। किसी भांति उन्हें धैर्य तो हो।

महाराज–(जांघ पर हाथ पटककर) सर्वनाश कर दिया। हरि-हरि ! चौपट नाश कर दिया। शिव-शिव ! आग तो लगा दी, अब मेरे पास क्यों आए हो? शिव-शिव ! क्लार्क कहेगा, कैदी कैद में आराम से है, तो इसमें कुछ-न-कुछ रहस्य है। अवश्य कहेगा। ऐसा कहना स्वाभाविक भी है। मेरे अदिन आ गए, शिव-शिव ! मैं इस आक्षेप का क्या उत्तर दूंगा। भगवन्, तुमने घोर संकट में डाल दिया–यही कहते हैं बचपन की बुद्धि। वहां न–जाने कौन-सा शुभ समाचार कहने दौड़े थे। पहले प्रजा को भड़काया, रियासत में आग लगाई, अब यह दूसरा आघात किया। मूर्ख ! तुझे क्लार्क से कहना चाहिए था, वहां मेम को नाना प्रकार के कष्ट दिए जा रहे हैं, अनेक

यातनाएं मिल रही हैं। ओह ! शिव-शिव !

सहसा प्राइवेट सेक्रेटरी ने फोन में कहा—मिस्टर क्लार्क आ रहे हैं।

महाराजा ने खड़े होकर कहा—आ गया यमदूत, आ गया। कोई है? कोट-पतलून लाओ। तुम जाओ विनय, चले जाओ, रियासत से चले जाओ। फिर मुंह मत दिखाना, जल्दी पगड़ी लाओ, यहां से उगालदान हटा दो।

विनय को आज राजा से घृणा हो गई। सोचा, इतना नैतिक पतन, इतनी कायरता ! यों राज्य करने से डूब मरना अच्छा है। वह बाहर निकले, तो नायकराम ने पूछा—कैसी छनी?

विनय—इनकी तो मारे भय के आप ही जान निकली जाती है। ऐसा डरते हैं, मानो मिस्टर क्लार्क कोई शेर हैं, और इन्हें आते-ही-आते खा जाएंगे। मुझसे तो इस दशा में एक दिन भी न रहा जाता।

नायकराम—भैया, मेरी तो अब सलाह है कि घर लौट चलो, इस जजाल में कब तक जान खपाओगे?

विनय ने सजल नयन होकर कहा—पंडाजी, कौन मुंह लेकर घर जाऊं? मैं अब घर जाने योग्य नहीं रहा। माताजी मेरा मुंह न देखेंगी। चला था जाति की सेवा करने, जाता हूं सैकड़ों परिवारों का सर्वनाश करके। मेरे लिए तो अब डूब मरने के सिवा और कुछ नहीं रहा। न घर का रहा, न घाट का। मैं समझ गया नायकराम, मुझसे कुछ न होगा, मेरे हाथों किसी का उपकार न होगा, मैं विष बोने ही के लिए पैदा किया गया हूं, मैं सर्प हूं, जो काटने के सिवा और कुछ कर ही नहीं सकता। जिस पामर प्राणी को प्रांत-का-प्रांत गालियां दे रहा हो, जिसके अहित के लिए अनुष्ठान किए जा रहे हों, उसे संसार पर भार-स्वरूप रहने का क्या अधिकार है? आज मुझ पर कितने बेकसों की आहें पड़ रही हैं, मेरे कारण जितना आंसू बहा है, उसमें मैं डूब सकता हूं। मुझे जीवन से भय लग रहा है, जितना जिऊंगा, उतना ही अपने ऊपर पापों का भार बढ़ाऊंगा। इस वक्त अगर अचानक मेरी मृत्यु हो जाय, तो समझूं, ईश्वर ने मुझे उबार लिया।

इस तरह ग्लानि में डूबे हुए विनय उस मकान में पहुंचे, जो रियासत की ओर से इन्हें ठहरने को मिला था। विनय को देखते ही नौकर-चाकर दौड़े, कोई पानी खींचने लगा, कोई झाड़ू देने लगा, कोई बरतन धोने लगा। विनय तांगे से उतरकर सीधे दीवानखाने में गए। अंदर कदम रखा ही था कि मेज पर एक बंद लिफाफा मिला। विनय का हृदय धक-धक करने लगा। यह रानी जाह्नवी का पत्र था। लिफाफा खोलने की हिम्मत न पड़ी। कोई माता परदेस में पड़े हुए बीमार बेटे का तार पाकर इतनी शंकातुर न होती होगी। लिफाफा हाथ में लिए हुए सोचने लगे—इसमें मेरी भर्त्सना के सिवा और क्या होगा? इन्द्रदत्त ने जो कुछ जबानी कहा है, वही अधिक तीव्र शब्दों में यहां दुहराया गया होगा। लिफाफा ज्यों-का-त्यों रख दिया, और सोचने लगे—अब क्या करना चाहिए? क्यों न यहां बाजार में खड़े होकर जनता को सूचित कर दूं कि दरबार तुम्हारे साथ अन्याय कर रहा है? लेकिन इस समय पीड़ित जनता को सहायता की जरूरत है, धन कहां से आए? पिताजी को लिखूं कि आप इस समय मेरे पास जितने रुपये भेज सकें, भेज दीजिए? रुपये आ जाएं, तो यहां अनाथों में बांट दूं? नहीं, सबसे पहले वाइसराय से मिलूं, और यहां की यथार्थ स्थिति उनसे बयान करूं। संभव है, वह दरबार पर दबाव डालकर कैदियों को मुक्त करा दें। यही ठीक है। अब मुझे सब काम छोड़कर वाइसराय से मिलना चाहिए।

वह यात्रा की तैयारियां करने लगे, लेकिन रानीजी के पत्र की याद, सिर पर लटकती हुई नंगी तलवार की भांति, उन्हें उद्विग्न कर रही थी। आखिर उनसे न रहा गया, पत्र खोलकर पढ़ने लगे :

विनय, आज से कई मास पहले मैं तुम्हारी माता होने पर गर्व करती थी, पर आज तुम्हें पुत्र कहते हुए लज्जा से गड़ी जाती हूं। तुम क्या थे, क्या हो गए ! और, अगर यही दशा रही, तो अभी और न-जाने क्या हो जाओगे। अगर मैं जानती कि तुम इसी भांति मेरा सिर नीचा करोगे, तो आज तुम इस संसार में न होते। निर्दयी ! इसीलिए तूने मेरी कोख में जन्म लिया था ! इसीलिए मैंने तुझे अपना हृदय-रक्त पिला-पिलाकर पाला था ! चित्रकार जब कोई चित्र बनाते-बनाते देखता है कि इससे मेरे मन के भाव व्यक्त नहीं होते, तो वह तुरत उसे मिटा देता है। उसी भांति मैं तुझे भी मिटा देना चाहती हूं। मैंने ही तुम्हें रचा है। मैंने ही तुम्हें यह देह प्रदान की है। आत्मा कहीं से आई है, देह मेरी है। मैं उसे तुमसे वापस मांगती हूं। अगर तुममें अब भी कुछ आत्मसम्मान है, तो मेरी अमानत मुझे लौटा दो। तुम्हें जीवित देखकर मुझे दु:ख होता है। जिस कांटे से हृदय में वेदना हो रही है, उसे निकाल सकूं, तो क्यों न निकाल दूं ! क्या तुम मेरी यह अंतिम अभिलाषा पूरी करोगे? या अन्य अभिलाषाओं की भांति इसे भी धूल में मिला दोगे? मैं अब भी तुम्हें इतना लज्जा-शून्य नहीं समझती, नहीं तो मैं स्वयं आती, और तुम्हारे मर्मस्थल से वह वस्तु निकाल लेती, जो तुम्हारी कुमति का मूल है। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि संसार में कोई ऐसी वस्तु भी है, जो संतान से भी अधिक प्रिय होती है? वह आत्मगौरव है। अगर तुम्हारे-जैसे मेरे सौ पुत्र होते, तो मैं उन सबों को उसकी रक्षा के लिए बलिदान कर देती। तुम समझते होगे, मैं क्रोध से बावली हो गई हूं। यह क्रोध नहीं है, अपनी आत्मवेदना का रोदन है। जिस माता की लेखनी से ऐसे निर्दय शब्द निकलें, उसके शोक, नैराश्य और लज्जा का अनुमान तुम-जैसे दुर्बल प्राणी नहीं कर सकते। अब मैं और कुछ न लिखूंगी। तुम्हें समझाना व्यर्थ है। जब उम्र-भर की शिक्षा निष्फल हो गई, तो एक पत्र की शिक्षा का क्या फल होगा ! अब केवल दो इच्छाएं हैं—ईश्वर से तो यह कि तुम-जैसी संतान सातवें वैरी को भी न दे, और तुमसे यह कि अपने जीवन की इस क्रूर लीला को समाप्त करो।

विनय यह पत्र पढ़कर रोये नहीं, क्रुद्ध नहीं हुए, ग्लानित भी नहीं हुए। उनके नेत्र गर्वोत्तेजना से चमक उठे, मुख-मंडल पर आरक्त तेज की आभा दिखाई दी, जैसे किसी कवीश्वर के मुख से अपने पूर्वजों की वीरगाथा सुनकर मनचले राजपूत का मुख तमतमा उठे—माता, तुम्हें धन्य है। स्वर्ग में बैठी हुई वीर राजपूतानियों की वीर आत्माएं तुम्हारी आदर्शवादिता पर गर्व करती होंगी। मैंने अब तक तुम्हारी अलौकिक वीरता का परिचय न पाया था। तुमने भारत की विदुषियों का मस्तक उन्नत कर दिया। देवी ! मैं स्वयं अपने को तुम्हारा पुत्र कहते हुए लज्जित हूं। हां, मैं तुम्हारा पुत्र कहलाने के योग्य नहीं हूं। तुम्हारे फैसले के आगे सिर झुकाता हूं। अगर मेरे पास सौ जानें होतीं, तो उन सबों को तुम्हारे आत्मगौरव की रक्षा के लिए बलिदान कर देता। अभी इतना निर्लज्ज नहीं हुआ हूं। लेकिन यों नहीं। मैं तुम्हें इतना संतोष देना चाहता हूं कि तुम्हारा पुत्र जीना नहीं जानता, पर मरना जानता है। अब विलंब क्यों? जीवन में जो कुछ करना था, वह सब कर चुका। उसके अंत का इससे उत्तम और कौन अवसर मिलेगा? यह मस्तक केवल एक बार तुम्हारे चरणों पर तड़पेगा। संभव है, अंतिम समय तुम्हारा पवित्र आशीर्वाद पा जाऊं, शायद तुम्हारे मुख से ये पावन शब्द निकल जाएं कि 'मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी, तूने जीना

न जाना, लेकिन मरना जानता है।' यदि अंत समय भी तुम्हारे मुख से 'प्रिय पुत्र', ये दो शब्द सुन सका, तो मेरी आत्मा शांत हो जाएगी और नरक में भी सुख का अनुभव करेगी। काश ! ईश्वर ने पर दिए होते, तो उड़कर तुम्हारे पास पहुंच जाता।

विनय ने बाहर की तरफ देखा। सूर्यदेव किसी लज्जित प्राणी की भांति अपना कांतिहीन मुख पर्वतों की आड़ में छिपा चुके थे। नायकराम पल्थी मारे भंग घोट रहे थे। यह काम वह सेवकों से नहीं लेते थे। कहते–यह भी एक विद्या है, कोई हल्दी मसाला तो नहीं कि जो चाहे, पीस दे। इसमें बुद्धि खर्च करनी पड़ती है, तब जाकर बूटी बनती है। कल नागा भी हो गया था। तन्मय होकर भंग पीसते और रामायण की दो-चार चौपाइयां, जो याद थीं, लय से गाते जाते थे। इतने में विनय ने बुलाया।

नायकराम–क्या है भैया? आज मजेदार बूटी बन रही है। तुमने कभी काहे को पी होगी। आज थोड़ी-सी ले लेना, सारी थकावट भाग जायगी।

विनय–अच्छा, इस वक्त बूटी रहने दो। अम्मांजी का पत्र आया है, घर चलना है, एक तांगा ठीक कर लो।

नायकराम–भैया, तुम्हारे तो सब काम उतावली के होते हैं। घर चलना है, तो कल आराम से चलेंगे। बूटी छानकर रसोई बनाता हूं। तुमने बहुत काश्मीरी रसोइयों का बनाया हुआ खाना खाया है, आज जरा मेरे हाथ के भोजन का भी स्वाद लो।

विनय– अब घर पहुंचकर ही तुम्हारे हाथ के भोजन का स्वाद लूंगा।

नायकराम–माताजी ने बुलाया होगा?

विनय--हां, बहुत जल्द।

नायकराम–अच्छा, बूटी तो तैयार हो जाए। गाड़ी तो नौ बजे रात को जाती है।

विनय–नौ बजने में देर नहीं है। सात तो बज ही गए होंगे।

नायकराम–जब तक असबाब बंधवाओ, मैं जल्दी से बनाए लेता हूं। तकदीर में इतना सुख भी न लिखा है कि निश्चिंत होकर बूटी तो बनाता।

विनय–असबाब कुछ नहीं जायगा। मैं घर से कोई असबाब लेकर नहीं आया था। यहां से चलते समय घर की कुंजी सरदार साहब को दे देनी होगी।

नायकराम–और यह सारा असबाब?

विनय–कह दिया कि मैं कुछ न ले जाऊंगा।

नायकराम–भैया, तुम कुछ न लो, पर मैं तो यह दुसाला और यह संदूक जरूर लूंगा। जिधर से दुसाला ओढ़कर निकल जाऊंगा, देखने वाले लोट जायंगे।

विनय–ऐसी घातक वस्तु लेकर क्या करोगे, जिसे देखकर ही सुथराव हो जाए। यहां की कोई चीज मत छूना, जाओ।

नायकराम भाग्य को कोसते हुए घर से निकले, तो घंटे-भर तक गाड़ी का किराया ठीक करते रहे। आखिर जब यह जटिल समस्या किसी विधि न हल हुई, तो एक को जबरदस्ती पकड़ लाए। तांगे वाला भुनभुनाता हुआ आया–सब हाकिम-ही-हाकिम तो हैं, मुदा जानवर के पेट को भी तो कुछ मिलना चाहिए। कोई माई का लाल यह नहीं सोचता कि दिन-भर बेगार में मरेगा, क्या आप खाएगा, क्या जानवर को खिलाएगा, क्या बाल-बच्चों को देगा। उस पर निरखनामा लिखकर गली-गली में लटका दिया। बस, तांगे वाले ही सबको लूटे खाते हैं, और तो जितने अमले-मुलाजिम

हैं, सब दूध के धोए हुए हैं। बकचा ढो ले, भीख मांग खाए, मगर तांगा कभी न चलाए।

ज्योंही तांगा द्वार पर आया, विनय आकर बैठ गए, लेकिन नायकराम अपनी अधघुटी बूटी क्योंकर छोड़ते। जल्दी-जल्दी रगड़ी, छानकर पी, तमाखू खाई, आईना के सामने खड़े होकर पगड़ी बांधी, आदमियों को राम-राम कहा, और दुशाले को सचेष्ट नेत्रों से ताकते हुए बाहर निकले। तांगा चला। सरदार साहब का घर रास्ते ही में था। वहां जाकर नायकराम ने कुंजी उनके द्वारपाल के हवाले की, और आठ बजते-बजते स्टेशन पर पहुंच गए। नायकराम ने सोचा, राह में तो कुछ खाने को मिलेगा नहीं, और गाड़ी पर भोजन करेंगे कैसे, दौड़कर पूरियां लीं, पानी लाए, और खाने बैठ गए। विनय ने कहा, मुझे अभी इच्छा नहीं है। वह खड़े गाड़ियों की समय-सूची देख रहे थे कि यह गाड़ी अजमेर कब पहुंचेगी, दिल्ली में कौन-सी गाड़ी मिलेगी। सहसा क्या देखते हैं कि एक बुढ़िया आर्तनाद करते हुए चली आ रही है। दो-तीन आदमी उसे संभाले हुए हैं। वह विनयसिंह के समीप ही आकर बैठ गई। विनय ने पूछा, तो मालूम हुआ कि इसका पुत्र जसवन्तनगर की जेल का दारोगा था, उसे दिन-दहाड़े किसी ने मार डाला। अभी समाचार आया है, और यह बेचारी शोकातुरा माता यहां से जसवन्तनगर जा रही है। मोटर वाले किराया बहुत मांगते थे, इसलिए रेलगाड़ी से जाती है। रास्ते में उतरकर बैलगाड़ी कर लेगी। एक ही पुत्र था, बेचारी को बेटे का मुंह देखना भी न बदा था।

विनयसिंह को बड़ा दु:ख हुआ—दारोगा बड़ा सीधा-सादा आदमी था। कैदियों पर बड़ी दया किया करता था। उससे किसी को क्या दुश्मनी हो सकती थी? उन्हें तुरत संदेह हुआ कि यह भी वीरपालसिंह के अनुयायियों की क्रूर लीला है। सोफी ने कोरी धमकी न दी थी। मालूम होता है, उसने गुप्त हत्याओं के साधन एकत्र कर लिए हैं। भगवन् मेरे दुष्कृत्यों का क्षेत्र कितना विस्तृत है ! इन हत्याओं का अपराध मेरी गरदन पर है, सोफी की गरदन पर नहीं। सोफिया जैसी करुणामयी, विवेकशील, धर्मनिष्ठ रमणी मेरी ही दुर्बलता से प्रेरित होकर हत्या-मार्ग पर अग्रसर हुई है। ईश्वर ! क्या अभी मेरी यातनाओं की मात्रा पूरी नहीं हुई? मैं फिर सोफिया के पास जाऊंगा, अवश्य जाऊंगा, और उसके चरणों पर सिर रखकर विनीत भाव से कहूंगा—देवी ! मैं अपने किए का दंड पा चुका, अब यह लीला समाप्त कर दो, अन्यथा यहीं तुम्हारे सामने प्राण त्याग दूंगा। लेकिन सोफी को पाऊं कहां? कौन मुझे उस दुर्गम दुर्ग तक ले जाएगा?

जब गाड़ी आई, तो विनय ने वृद्धा को अपनी ही गाड़ी में बैठाया। नायकराम दूसरी गाड़ी पर बैठे, क्योंकि विनय के सामने उन्हें मुसाफिरों से चुहल करने का मौका न मिलता। गाड़ी चली। आज पुलिस के सिपाही प्रत्येक स्टेशन पर टहलते हुए नजर आते थे। दरबार ने मुसाफिरों की रक्षा के लिए यह विशेष प्रबंध किया था। किसी स्टेशन पर मुसाफिर सवार होते न नजर आते थे। विद्रोहियों ने कई जागीरदारों को लूट लिया था।

पांचवें स्टेशन से थोड़ी दूर पर एकाएक गाड़ी रुक गई। वहां कोई स्टेशन न था। लाइन के नीचे कई आदमियों की बातचीत सुनाई दी। फिर किसी ने विनय के कमरे का द्वार खोला। विनय ने पहले तो आगंतुक को रोकना चाहा, गाड़ी में बैठते ही उनका साम्यवाद स्वार्थ का रूप धारण कर लेता था, यह भी संदेह हुआ कि डाकू न हों, लेकिन निकट से देखा, तो किसी स्त्री के हाथ थे, अलग हट गए, और एक क्षण में एक स्त्री गाड़ी पर चढ़ आई। विनय देखते ही पहचान गए। वह मिस सोफिया थी। उसके बैठते ही गाड़ी फिर चलने लगी।

सोफिया ने गाड़ी में आते ही विनय को देखा, तो चेहरे का रंग उड़ गया। जी में आया,

गाड़ी से उतर जाऊं, पर वह चल चुकी थी। एक क्षण तक वह हतबुद्धि-सी खड़ी रही, विनय के सामने उसकी आंखें न उठती थीं, तब उसी वृद्धा के पास बैठ गई, और खिड़की की ओर ताकने लगी। थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे, किसी को बात करने की हिम्मत न पड़ती थी।

वृद्धा ने सोफी से पूछा—कहां जाओगी बेटी?

सोफिया—बड़ी दूर जाना है।

वृद्धा—यहां कहां से आ रही हो?

सोफिया—यहां से थोड़ी दूर एक गांव है, वहीं से आती हूं।

वृद्धा—तुमने गाड़ी खड़ी करा दी थी क्या?

सोफिया—स्टेशनों पर आजकल डाके पड़ रहे हैं। इसी से बीच में गाड़ी रुकवा ली।

वृद्धा—तुम्हारे साथ और कोई नहीं है क्या? अकेले कैसे जाओगी?

सोफिया—आदमी न हो, ईश्वर तो हैं।

वृद्धा—ईश्वर हैं कि नहीं, कौन जाने। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि संसार का करता-धरता कोई नहीं, जभी तो दिन-दहाड़े डाके पड़ते हैं, खून होते हैं। कल मेरे बेटे को डाकुओं ने मार डाला। (रोकर) गऊ था, गऊ। कभी मुझे जवाब नहीं दिया। जेल के कैदी उसको असीस दिया करते थे। कभी किसी भलेमानस को नहीं सताया। उस पर यह वज्र गिरा, तो कैसे कहूं कि ईश्वर है?

सोफिया—क्या जसवन्तनगर के जेलर आपके बेटे थे।

वृद्धा—हां बेटी, वही एक लड़का था, सो भगवान् ने हर लिया।

यह कहकर वृद्धा सिसकने लगी। सोफिया का मुख किसी मरणासन्न रोगी के मुख की भांति निष्प्रभ हो गया। जरा देर तक वह करुणा के आवेग को दबाए हुए खड़ी रही। तब खिड़की के बाहर सिर निकालकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसका कुत्सित प्रतिकार, नग्न रूप में, उसके सामने खड़ा था।

सोफी आधे घंटे तक मुंह छिपाए रोती रही, यहां तक कि वह स्टेशन आ गया, जहां वृद्धा उतरना चाहती थी। जब वह उतरने लगी, तो विनय ने उसका असबाब उतारा, और उसे सांत्वना देकर बिदा किया।

अभी विनय गाड़ी में बैठे भी न थे कि सोफी नीचे आकर वृद्धा के सम्मुख खड़ी हो गई, और बोली—माता, तुम्हारे पुत्र की हत्या करने वाली मैं हूं। जो दंड चाहो दो। तुम्हारे सामने खड़ी हूं।

वृद्धा ने विस्मित होकर कहा—क्या तू ही वह पिशाचिनी है, जिसने दरबार से लड़ने के लिए डाकुओं को जमा किया है ! नहीं, तू नहीं हो सकती। तू तो मुझे करुणा और दया की मूर्ति-सी दीखती है।

सोफी—हां, माता मैं ही वह पिशाचिनी हूं।

वृद्धा—जैसा तूने किया वैसा तेरे आगे आएगा। मैं तुझे और क्या कहूं। मेरी भांति तेरे भी दिन रोते बीतें।

एंजिन ने सीटी दी। सोफी संज्ञा-शून्य सी खड़ी रही। वहां से हिली तक नहीं। गाड़ी चल पड़ी। सोफी अब भी वहीं खड़ी थी। सहसा विनय गाड़ी से कूद पड़े, सोफिया का हाथ पकड़कर गाड़ी में बैठा दिया, और बड़ी मुश्किल से आप भी गाड़ी में चढ़ गए। एक पल का भी विलंब होता, तो वहीं रह जाते।

सोफिया ने ग्लानि-भाव से कहा—विनय, तुम मेरा विश्वास करो या न करो, पर मैं सत्य कहती हूं कि मैंने वीरपालसिंह को एक हत्या की भी अनुमति नहीं दी। मैं उसकी घातक प्रवृत्ति को रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न करती रही, पर यह दल इस समय प्रत्याघात की धुन में उन्मत्त हो रहा है। किसी ने मेरी न सुनी। यही कारण है कि मैं अब यहां से जा रही हूं। मैंने उस रात को आमर्ष की दशा में तुमसे न-जाने क्या-क्या बातें कीं, लेकिन ईश्वर ही जानते हैं, इसका मुझे कितना खेद और दुःख है। शांत मन से विचार करने पर मुझे मालूम हो रहा है कि निरंतर दूसरों को मारने और दूसरों के हाथों मारे जाने के लिए आपत्काल में ही हम तत्पर हो सकते हैं। यह दशा स्थायी नहीं हो सकती। मनुष्य स्वभावतः, शांतिप्रिय होता है। फिर जब सरकार की दमन-नीति ने निर्बल प्रजा को प्रत्याघात पर आमादा कर दिया, तो क्या सबल सरकार और भी कठोर नीति का अवलंबन न करेगी। लेकिन मैं तुमसे ऐसी बातें कर रहीं हूं, मानो तुम घर के आदमी हो। मैं भूल गई थी कि तुम राजभक्तों के दल में हो। पर इतनी दया करना कि मुझे पुलिस के हवाले न कर देना। पुलिस से बचने के लिए ही मैंने रास्ते में गाड़ी को रोककर सवार होने की व्यवस्था की। मुझे संशय है कि इस समय भी तुम मेरी ही तलाश में हो।

विनयसिंह की आंखें सजल हो गईं। खिन्न स्वर में बोले—सोफिया, तुम्हें अख्तियार है, मुझे जितना नीच और पतित चाहो, समझो; मगर एक दिन आएगा, जब तुम्हें इन वाक्यों पर पछताना पड़ेगा, और तुम समझोगी कि तुमने मेरे ऊपर कितना अन्याय किया है। लेकिन जरा शांत मन से विचार करो, क्या घर पर, यहां आने के पहले, मेरे पकड़े जाने की खबर पाकर तुमने भी वही नीति न धारण की थी? अंतर केवल इतना था कि मैंने दूसरों को बरबाद किया, तुम अपने ही को बरबाद करने पर तैयार हो गईं। मैंने तुम्हारी नीति को अक्षम्य समझा, वह आपद्धर्म था। तुमने मेरी नीति को अक्षम्य समझा, और कठोर-से-कठोर आघात जो तुम कर सकती थीं, वह कर बैठीं। किंतु बात एक ही है। तुम्हें मुझको पुलिस की सहायता करते देखकर इतना शोकमय आश्चर्य न हुआ होगा, जितना मुझको तुम्हें मिस्टर क्लार्क के साथ देखकर हुआ। इस समय भी तुम उसी प्रतिहिंसक नीति का अवलंबन कर रही हो, या कम-से-कम मुझसे कह चुकी हो इतने पर भी तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती। तुम्हारी झिड़कियां सुनकर मुझे जितना मानसिक कष्ट हुआ, और हो रहा है, वही मेरे लिए आसाध्य था। उस पर तुमने इस समय और भी नमक छिड़क दिया। कभी तुम इस निर्दयता पर खून के आंसू बहाओगी। खैर।

यह कहते-कहते विनय का गला भर आया। फिर वह और कुछ न कह सके।

सोफिया ने आंखों में असीम अनुराग भरकर कहा—आओ, अब हमारी-तुम्हारी मैत्री हो जाए। मेरी उन बातों को क्षमा कर दो।

विनय ने कंठस्वर को संभालकर कहा—मैं कुछ कहता हूं? अगर जी न भरा हो, तो और जो चाहो कह डालो। जब बुरे दिन आते हैं, तो कोई साथी नहीं होता। तुम्हारे यहां से आक कैदियों को मुक्त करने के लिए, अधिकारियों से, मिस्टर क्लार्क से, यहां तक कि साहब से भी अनुनय-विनय की, वह मेरा दिल ही जानता है। पर किसी ने मेरी सुनीं। चारों तरफ से निराश होना पड़ा। ों पर कुछ

सोफी—यह तो मैं जानती थी। इस वक्त कहां जा रहे हो? ल के मजदूरों

करते थे। लेकिन

विनय—जहन्नुम में।

सोफी—मुझे भी लेते चलो।

विनय—तुम्हारे लिए स्वर्ग है।

एक क्षण बाद फिर बोले—घर जा रहा हूं। अम्मांजी ने बुलाया है। मुझे देखने के लिए उत्सुक हैं।

सोफिया—इन्द्रदत्त तो कहते थे, तुमसे बहुत नाराज हैं।

विनय ने जेब से रानीजी का पत्र निकालकर सोफी को दे दिया और दूसरी ओर ताकने लगे। कदाचित् वह सोच रहे थे कि यह तो मुझसे इतनी खिंच रही है, और मैं बरबस इसकी ओर दौड़ा जाता हूं। सहसा सोफिया ने पत्र को फाड़कर खिड़की के बाहर फेंक दिया, और प्रेम-विह्वल होकर बोली—मैं तुम्हें न जाने दूंगी। ईश्वर जानता है, न जाने दूंगी। तुम्हारे बदले मैं स्वयं रानीजी के पास जाऊंगी, और उनसे कहूंगी, तुम्हारी अपराधिनी मैं हूं... यह कहते-कहते उसकी आवाज फंस गई। उसने विनय के कंधे पर सिर रख दिया और फूट-फूटकर रोने लगी। आवाज हल्की हुई, तो फिर बोली—मुझसे वादा करो कि न जाऊंगा। तुम नहीं जा सकते। धर्म और न्याय के नियम से नहीं जा सकते। बोलो, वादा करते हो?

उन सजल नेत्रों में कितनी करुणा, कितनी याचना, कितनी विनय, कितना आग्रह था।

विनय ने कहा—नहीं सोफी, मुझे जाने दो। तुम माताजी को खूब जानती हो। मैं न जाऊंगा, तो वह अपने दिल में मुझे निर्लज्ज, बेहया, कायर समझने लगेंगी, और इस उद्विग्नता की दशा में न-जाने क्या कर बैठें।

सोफिया—नहीं विनय, मुझ पर इतना जुल्म न करो। ईश्वर के लिए दया करो। मैं रानीजी के पास जाकर रोऊंगी, उनके पैरों पर गिरूंगी, और उनके मन में तुम्हारे प्रति जो गुबार भरा हुआ है, उसे अपने आसुंओं से धो डालूंगी। मुझे दावा है कि मैं उनके पुत्र-वात्सल्य को जागृत कर दूंगी। मैं उनके स्वभाव से परिचित हूं। उनका हृदय दया का आगार है। जिस वक्त मैं उनके चरणों पर गिरकर कहूंगी, अम्मां, तुम्हारा बेटा मेरा मालिक है, मेरे नाते उसे क्षमा कर दो, उस वक्त वह मुझे पैरों से ठुकरायंगी नहीं। वहां से झल्लाई हुई उठकर चली जायंगी, लेकिन एक क्षण बाद मुझे बुलायंगी, और प्रेम से गले लगायंगी। मैं उनसे तुम्हारी प्राण-भिक्षा मांगूंगी, फिर तुम्हें मांग लूंगी। मां का हृदय कभी इतना कठोर नहीं हो सकता। वह यह पत्र लिखकर शायद इस समय पछता रही होंगी, मना रही होंगी कि पत्र न पहुंचा हो। बोलो, वादा करो।

ऐसे प्रेम में सने, अनुराग में डूबे वाक्य विनय के कानों ने कभी न सुने थे। उन्हें अपना जीवन सार्थक मालूम होने लगा। आह! सोफी अब भी मुझे चाहती है, उसने मझे क्षमा कर दिया! ...गीवन, जो पहले मरुभूमि के समान निर्जन, निर्जल, निर्जीव था, अब पशु-पक्षियों, ...धाराओं और पुष्प-लतादि से लहराने लगा। आनंद के कपाट खुल गए थे, और उसके ...गान की तानें, विद्युद्दीपकों की झलक, सुगंधित वायु की लपट बाहर आकर चित्त ...े लगी। विनयसिंह को इस सुरम्य दृश्य ने मोहित कर लिया। जीवन के सुख ...राग और आत्मग्लानि ही जीवन के रत्न हैं। हमारी पवित्र कामनाएं, हमारी ...र कल्पनाएं विपत्ति ही की भूमि में अंकुरित और पल्लवित होती हैं।

विनय ने विचलित होकर कहा–सोफी, अम्मांजी के पास एक बार मुझे जाने दो। मैं वादा करता हूं कि जब तक वह फिर स्पष्ट रूप से न कहेंगी....

सोफिया ने विनय की गरदन में बाहें डालकर कहा–नहीं–नहीं, मुझे तुम्हारे ऊपर भरोसा नहीं है। तुम अकेले अपनी रक्षा नहीं कर सकते। तुममें साहस है, आत्माभिमान है, शील है, सब कुछ है, पर धैर्य नहीं है। पहले मैं अपने लिए तुम्हें आवश्यक समझती थी, अब तुम्हारे लिए अपने को आवश्यक समझती हूं। विनय, जमीन की तरफ क्यों ताकते हो? मेरी ओर देखा। मैंने तुम्हें जो कटु वाक्य कहे, उन पर लज्जित हूं। ईश्वर साक्षी है, सच्चे दिल से पश्चात्ताप करती हूं। उन बातों को भूल जाओ। प्रेम जितना ही आदर्शवादी होता है, उतना ही क्षमाशील भी। बोलो ! वादा करो ! अगर तुम मुझसे गला छुड़ाकर चले जाओगे, तो फिर...तुम्हें सोफी फिर न मिलेगी।

विनय ने प्रेम–पुलकित होकर कहा–तुम्हारी इच्छा है, तो न जाऊंगा।

सोफिया–तो हम अगले स्टेशन पर उतर पड़ेंगे।

विनय–नहीं, पहले बनारस चलें। तुम अम्मांजी के पास जाना। अगर वह मुझे क्षमा कर देंगी....

सोफी–विनय, अभी बनारस मत चलो, कुछ दिन चित्त को शांत होने दो, कुछ दिन मन को विश्राम लेने दो। फिर रानीजी का तुम पर क्या अधिकार है। तुम मेरे हो, समस्त नीतियों के अनुसार, जो ईश्वर ने और मनुष्य ने रची हैं, तुम मेरे हो। मैं रिआयत नहीं, अपना स्वत्व चाहती हूं। हम अगले स्टेशन पर उतर पड़ेंगे। इसके बाद सोचेंगे, हमें क्या करना है, कहां जाना है।

विनय ने सकुचाते हुए कहा–जीवन का निर्वाह कैसे होगा? मेरे पास जो कुछ है, वह नायकराम के पास है। वह किसी दूसरे कमरे में है। अगर उसे खबर हो गई, तो वह भी हमारे साथ चलेगा।

सोफी–इसकी क्या चिंता। नायकराम को जाने दो। प्रेम जगलों में भी सुखी रह सकता है।

अंधेरी रात में गाड़ी शैल और शिविर को चीरती चली जाती थी। बाहर दौड़ती हुई पर्वत–मालाओं के सिवा और कुछ न दिखाई देता था। विनय तारों की दौड़ देख रहे थे, सोफिया देख रही थी कि आस–पास कोई गांव है या नहीं।

इतने में स्टेशन नजर आया। सोफी ने गाड़ी का द्वार खोल दिया, और दोनों चुपके से उतर पड़े, जैसे चिड़ियों को जोड़ा घोंसले से दाने की खोज में उड़ जाए। उन्हें इसकी चिंता नहीं कि आगे व्याध भी है, हिंसक पक्षी भी हैं, किसान की गुलेल भी है। इस समय तो दोनों अपने विचारों में मग्न हैं, दाने से लहराते हुए खेतों की बहार देख रहे हैं। पर वहां तक पहुंचना भी उनके भाग्य में है, यह कोई नहीं जानता।

छत्तीस

मिस्टर जॉन सेवक ने ताहिरअली की मेहनत और ईमानदारी से प्रसन्न होकर खालों पर कुछ कमीशन नियत कर दिया था। इससे अब उनकी आय अच्छी हो गई थी, जिससे मिल के मजदूरों पर उनका रोब था, ओवरसियर और छोटे–छोटे क्लर्क उनका लिहाज करते थे। लेकिन

आय-वृद्धि के साथ उनके व्यय में भी खासी वृद्धि हो गई थी। जब यहां अपने बराबर के लोग न थे, फटे जूतों पर ही बसर कर लिया करते, खुद बाजार से सौदा-सुलफ लाते, कभी-कभी पानी भी खींच लेते थे। कोई हंसने वाला न था। अब मिल के कर्मचारियों के सामने उन्हें ज्यादा शान से रहना पड़ता था, और कोई मोटा काम अपने हाथ से करते हुए शर्म आती थी। इसलिए विवश होकर एक बुढ़िया मामा रख ली थी। पान-इलायची आदि का खर्च कई गुना बढ़ गया था। उसे पर कभी-कभी मित्रों की दावत भी करनी पड़ती थी। अकेले रहने वाले से कोई दावत की इच्छा नहीं करता। जानता है, दावत फीकी होगी। लेकिन सकुटुंब रहने वालों को दिल भागने का कोई द्वार नहीं रहता। किसी ने कहा—खां साहब, आज जरा जरदे पकवाइए, बहुत दिन हुए रोटी-दाल खाते-खाते जबान मोटी पड़ गई। ताहिरअली को इसके जवाब में कहना ही पड़ता—हां-हां, लीजिए, आज ही बनवाता हूं। घर में एक ही स्त्री होती, तो उसकी बीमारी का बहाना करके टालते। लेकिन यहां तो एक छोड़ तीन-तीन महिलाएं थीं। फिर ताहिरअली रोटी के चोर न थे। दोस्तों के आतिथ्य में उन्हें आनंद आता था। सारांश यह कि शराफत के निबाह में उनकी बधिया बैठी जाती थी। बाजार में तो अब उनकी रत्ती-भर भी साख न रही थी, जमामार प्रसिद्ध हो गए थे, कोई धेले की चीज को भी न पतियाता, इसलिए मित्रों से हथफेर रुपये लेकर काम चलाया करते। बाजार वालों ने निराश होकर तकाजा करना ही छोड़ दिया, समझ गए कि इसके पास है ही नहीं, देगा कहां से? लिपि-बद्ध ऋण अमर होता है, वचन-बद्ध ऋण निर्जीव और नश्वर। एक अरबी घोड़ा है, जो एड़ नहीं सह सकता; या तो सवार का अंत कर देगा या अपना। दूसरा लद्दू टट्टू है, जिसे उसके पैर नहीं, कोड़े चलाते हैं; कोड़ा टूटा या सवार का हाथ रुका, और टट्टू बैठा, फिर नहीं उठ सकता।

लेकिन मित्रों के आतिथ्य-सत्कार ही तक रहता, तो शायद ताहिरअली किसी तरह खींच-तानकर दोनों चूल बराबर कर लेते। मुसीबत यह थी कि उनके छोटे भाई माहिरअली इन दिनों मुरादाबाद के पुलिस-ट्रेनिंग-स्कूल में भरती हो गए थे। वेतन पाते ही उसका आधा आंखें बंद करके मुरादाबाद भेज देना पड़ता था। ताहिरअली खर्च से डरते थे, पर उनकी दोनों माताओं ने उन्हें ताने देकर घर में रहना मुश्किल कर दिया। दोनों ही की यह हार्दिक लालसा थी कि माहिरअली पुलिस में जाए, और दारोगा बनें। बेचारे ताहिरअली महीनों तक हुक्काम के बंगलों की खाक छानते रहे, यहां जा; वहां जा; इन्हें डाली; उन्हें नजराना पेश कर; इनकी सिफारिश करवा, उनकी चिट्ठी ला। बारे मिस्टर जॉन सेवक की सिफारिश काम कर गई। ये सब मोरचे तो पार हो गए। अंतिम मोर्चा डॉक्टरी परीक्षा थी। यहां सिफारिश और खुशामद की गुजर न थी। बत्तीस रुपये सिविल सर्जन के लिए, सोलह रुपये असिस्टेंट के लिए और आठ रुपये क्लर्क तथा चपरासियों के लिए, कुल छप्पन रुपये का जोड़ था। ये रुपये कहां से आएं? चारों ओर से निराश होकर ताहिरअली कुल्सूम के पास आए, और बोले—तुम्हारे पास कोई जेवर हो, तो दे दो, मैं बहुत जल्द छुड़ा दूंगा। उसने तिनककर संदूक उनके सामने पटक दिया, और कहा—यहां गहनों की हवस नहीं है, सब आस पूरी हो चुकी। रोटी-दाल मिलती जाए, यही गनीमत है। तुम्हारे गहने तुम्हारे सामने हैं, जो चाहे, करो। ताहिरअली कुछ देर तक तो शर्म से सिर न उठा सके। फिर संदूक की ओर देखा। ऐसी एक भी वस्तु न थी, जिससे इसकी चौथाई रकम भी मिल सकती। हां, सब चीजों को कूड़ा कर देने पर काम चल सकता था। सकुचाते हुए सब चीज निकालकर रूमाल में बांधीं, और बाहर आकर इस सोच में बैठे ही थे कि इन्हें क्योंकर ले जाऊं

कि इतने में मामा आई। ताहिरअली को सूझी, क्यों न इसकी मारफत रुपये मंगवाऊं। मामाएं इन कामों में निपुण होती हैं। धीरे से बुलाकर उसे यह समस्या कही। बुढ़िया ने कहा—मियां, यह कौन-सी बड़ी बात है, चीज तो रखनी है, कौन किसी से खैरात मांगते हैं। मैं रुपये ला दूंगी, आप निसाखातिर रहें। गहनों की पोटली लेकर चली, तो जैनब ने देखा। बुलाकर बोलीं—तू कहां लिए-लिए फिरेगी, मैं माहिरअली से रुपये मंगवाए देती हूं, उनका एक दोस्त साहूकारी का काम करता है। मामा ने पोटली उसे दे दी। दो घंटे बाद अपने पास से छप्पन रुपये निकालकर दिए। इस भांति यह कठिन समस्या हल हुई। माहिरअली मुरादाबाद सिधारे और तब से वहीं पढ़ रहे थे। वेतन का आधा भाग वहां निकल जाने के बाद शेष आधे में घर का खर्च बड़ी मुश्किल से पूरा पड़ता। कभी-कभी उपवास करना पड़ जाता। उधर माहिरअली आधे ही पर संतोष न करते। कभी लिखते, कपड़ों के लिए रुपये भेजिए; कभी टेनिस खेलने के लिए सूट की फरमाइश करते। ताहिरअली को कमीशन के रुपये में से भी कुछ-न-कुछ वहां भेज देना पड़ता था।

एक दिन रात-भर उपवास करने के बाद प्रात:काल जैनब ने आकर कहा—आज रुपयों की कुछ फिक्र की, या आज भी रोजा रहेगा?

ताहिरअली ने चिढ़कर कहा—मैं अब कहां से लाऊं? तुम्हारे सामने कमीशन के रुपये मुरादाबाद नहीं भेज दिए थे? बार-बार लिखता हूं कि किफायत से खर्च करो, मैं बहुत तंग हूं, लकिन वह हजरत फरमाते हैं, यहां एक-एक लड़का घर से सैकड़ों मंगवाता है, और बेदरेग खर्च करता है, इससे ज्यादा किफायत मेरे किए नहीं हो सकती। जब उधर का यह हाल है, इधर का यह हाल, तो रुपये कहां से लाऊं? दोस्तों में भी तो कोई ऐसा नहीं बचा, जिससे कुछ मांग सकूं।

जैनब—सुनती हो रकिया, इनकी बातें? लड़के को खर्च क्या दे रहे हैं, गोया मेरे ऊपर कोई एहसान कर रहे हैं। मुझे क्या, तुम उसे खर्च भेजो या बुलाओ। उसके वहां पढ़ने से यहां पेट थोड़े ही भर जाएगा। तुम्हारा भाई है, पढ़ाओ या न पढ़ाओ, मुझ पर क्या एहसान।

ताहिरअली—तो तुम्हीं बताओ, रुपये कहां से लाऊं?

जैनब—मरदों के हजार हाथ होते हैं। तुम्हारे अब्बाजान दस ही रुपये पाते थे कि ज्यादा? बीस रुपये तो मरने के कुछ दिन पहले हो गए थे। आखिर कुनबे को पालते थे कि नहीं। कभी फाके की नौबत नहीं आई। मोटा-महीन दिन में दो बार जरूर मयस्सर हो जाता था। तुम्हारी तालीम हुई, शादी हुई, कपड़े-लत्ते भी आते थे। खुदा के करम से बिसात के मुआफिक गहने भी बनते थे। वह तो मुझसे कभी न पूछते थे, कहां से रुपये लाऊं? आखिर कहीं से लाते ही तो थे।

ताहिरअली—पुलिस के महकमे में हर तरह की गुंजाइश होती है। यहां क्या है? गिनी बोटियां, नपा शोरबा।

जैनब—मैं तुम्हारी जगह होती, तो दिखा देती कि इसी नौकरी में कैसी कंचन बरसता है। सैकड़ों चमार हैं, क्या कहो तो सब एक-एक गट्ठा लकड़ी न लाएं? सबों के यहां छान-छप्पर पर तरकारियां लगी होंगी, क्यों नहीं तुड़वा मंगाते? खालों के दाम में भी कमी-बेशी करने का तुम्हें अख्तियार है। कोई यहां बैठा देख रहा है। दस के पौने दस लिख दो, तो क्या हरज हो? रुपये की रसीदों पर अंगूठे का निशान ही न बनवाते हो? निशान पुकारने जाता है कि मैं

दस हूं या पौने दस? फिर अब तुम्हारा एतबार जम गया। साहब को शुबहा भी नहीं हो सकता। आखिर इस एतबार से कुछ अपना फायदा भी तो हो कि सारी जिंदगी दूसरों ही का पेट भरते रहोगे? इस वक्त भी तुम्हारी रोकड़ में सैकड़ों रुपये होंगे। जितनी जरूरत समझो, इस वक्त निकाल लो। जब हाथ में रुपये आएं, रख देना। रोज की आमदनी-खर्च का मीजान ही मिला चाहिए न? यह कौन-सी बड़ी बात है। आज खाल का दाम न दिया, कल दिया, इसमें क्या तरद्दुद है? चमार कहीं फरियाद करने न जाएगा। सभी ऐसा करते हैं, और इसी तरह दुनिया का काम चलता है। ईमान दुरुस्त रखना हो, तो इंसान को चाहिए कि फकीर हो जाए।

रकिया-बहन, इमान है कहां, जमाने का काम तो इसी तरह चलता है।

ताहिरअली-भाई, जो लोग करते हां, वे जानें, मेरी तो इन हथकंड़ों से रूह फना होती है। अमानत में हाथ नहीं लगा सकता। आखिर खुदा को भी तो मुंह दिखाना है। उसकी मरजी हो, जिंदा रखे या मार डाले।

जैनब-वाह रे मरदुए, कुरबान जाऊं तेरे ईमान पर ! तेरा ईमान सलामत रहे, चाहे घर के आदमी भूखों मर जाएं। तुम्हारी मंशा यही है कि ये सब मुंह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाएं। बस, और कुछ नहीं। फिक्र तो आदमी को अपनी बीवी-बच्चों की होती है। उनके लिए बाजार मौजूद है। फाका तो हमारे लिए है। उनका फाका तो महज दिखावा है।

ताहिरअली ने इस मिथ्या आक्षेप पर क्षुब्ध होकर कहा-क्या जलाता हो अम्मीजान ! खुदा गवाह है, जो बच्चे के लिए धेले की भी कोई चीज ली हो। मेरी नीयत तो कभी ऐसी न थी, न है, न होगी; यों तुम्हारी तबीयत है, जो चाहो समझो।

रकिया-दोनों बच्चे रात-भर तड़पते रहे, 'अम्मां रोटी, अम्मां रोटी।' पूछो, अम्मां क्या आप रोटी हो जाए। तुम्हारे बच्चे और नहीं तो ओवरसियर के घर चले जाते हैं, वहां से कुछ-न-कुछ खा-पी आते हैं। यहां तो मेरी ही जान खाते हैं।

जैनब-अपने बाल-बच्चों को खिलाने न खिलाने का तुम्हें अख्तियार है। कोई तुम्हारा हिसाबिया तो है, नहीं, चाहे शीरमाल खिलाओ या भूखों रखो। हमारे बच्चों को तो घर की रूखी रोटियों के सिवा और कहीं ठिकाना नहीं। यहां कोई वली नहीं है, जो फाकों से जिंदा रहे। जाकर कुछ इंतजाम करो।

ताहिरअली बाहर आकर बड़ी देर तक घोर चिंता में खड़े रहे। आज पहली बार उन्होंने अमानत के रुपये को हाथ लगाने का दुस्साहस किया। पहले इधर-उधर देखा, कोई खड़ा तो नहीं है, फिर बहुत धीरे से लोहे का संदूक खोला। यों दिन में सैकड़ों बार वही संदूक खोलते-बंद करते थे, पर इस वक्त उनके हाथ थरथर कांप रहे थे। आखिर उन्होंने रुपये निकाल लिए, तब सेफ बंद किया। रुपये लाकर जैनब के सामने फेंक दिए, और बिना कुछ कहे-सुने बाहर चले गए। कदल को यों समझाया-अगर खुदा को मंजूर होता कि मेरा ईमान सलामत रहे, तो क्यों इतने आदमियों का बोझ मेरे सिर डाल देता। यह बोझ सिर पर रखा था, तो उसके उठाने की ताकत भी तो देनी चाहिए थी। मैं खुद फाके कर सकता हूं, पर दूसरों को तो मजबूर नहीं कर सकता। अगर इस मजबूरी की हालत में खुदा मुझे सजा के काबिल समझे, तो वह मुंसिफ नहीं है। इस दलील से उन्हें कुछ तस्कीन हुई। लेकिन मि॰ जॉन सेवक तो इस

दलील से मानने वाले आदमी न थे। ताहिरअली सोचने लगे, कौन चमार सबसे मोटा है, जिसे आज रुपये न दूं, तो चीं-चपड़ न करे। नहीं, मोटे आदमी के रुपये रोकना मुनासिब नहीं, मोटे आदमी निडर होते हैं। कौन जाने, किसी से कह ही बैठें। जो सबसे गरीब सीधा हो, उसी के रुपये रोकना चाहिए। इसमें कोई डर नहीं। चुपके से बुलाकर अंगूठे के निशान बनवा लूंगा। उसकी हिम्मत ही न पड़ेगी कि किसी से कहे। उस दिन से उन्हें जब जरूरत पड़ती, रोकड़ से रुपये निकाल लेते, फिर रख देते। धीरे-धीरे रुपये पूरे कर देने की चिंता कम होने लगी। रोकड़ के रुपयों में कमी पड़ने लगी। दिल मजबूत होता गया। यहां तक कि छठा महीना जाते-जाते वह रोकड़ के पूरे डेढ़ सौ रुपये खर्च कर चुके थे।

अब ताहिरअली को नित्य यही चिंता सवार रहती कि कहीं बात खुल न जाए। चमारों से लल्लो-चप्पो की बातें करते। कोई ऐसा उपाय सोच निकालना चाहते थे कि रोकड़ में इन रुपयों का पता न चले। लेकिन बही-खाते में हेर-फेर करने की हिम्मत न पड़ती थी। घर में भी किसी से यह बात न कहते। बस, खुदा से यही दुआ करते थे कि माहिरअली आ जाएं। उन्हें सौ रुपये महीने मिलेंगे। दो महीने में अदा कर दूंगा। इतने दिन साहब हिसाब की जांच न करें, तो बेड़ा पार है।

उन्होंने दिल में निश्चय किया, अब कुछ ही हो, और रुपये न निकालूंगा। लेकिन सातवें महीने में फिर पच्चीस पये निकालने पड़ गए। अब माहिरअली का साल भी पूरा हो चला था। थोड़े ही दिनों की और कसर थी। सोचा, आखिर मुझे उसी की बदौलत तो यह जेरबारी हो रही है। ज्योंही आया, मैंने घर उसे सौंपा। कह दूंगा, भाई, इतने दिनों तक मैंने संभाला। अपने से जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी तालीम में खर्च किया, तुम्हारा रोजगार लगा दिया। अब कुछ दिनों के लिए मुझे इस फिक्र से नजात दो। उसके आने तक यह परदा ढका रह जाए, तो दुम झाड़कर निकल जाता। पहले यह ऐसी ही कोई जरूरत पड़ने पर साहब के पास जाते थे। अब दिन में एक बार जरूर मिलते। मुलाकातों से संदेह को शांत रखना चाहते थे। जिस चीज से टक्कर लगने का भय होता है, उससे हम और भी चिमट जाते हैं, कुल्सूम उनसे बार-बार पूछती कि आजकल तुम इतने रुपये कहां पा जाते हो? समझाती-देखो, नीयत न खराब करना। तकलीफ और तंगी से बसर करना इतना बुरा नहीं है, जितना खुदा के सामने गुनहगार बनना। लेकिन ताहिरअली इधर-उधर की बातें करके उसे बहला दिया करते थे।

एक दिन सुबह को ताहिरअली नमाज अदा करके दफ्तर में आए, तो देखा कि एक चमार खड़ा रो रहा है। पूछा, क्या बात है? बोला-क्या बताऊं खां साहब, रात घरवाली गुजर गई। अब उसका किरिया-करम करना है, मेरा जो कुछ हिसाब हो दे दीजिए, दौड़ा हुआ आया हूं, कफन के रुपये भी पास नहीं हैं। ताहिरअली की तहवील में रुपये कम थे। कल स्टेशन से माल भेजा था, महसूल देने में रुपये खर्च हो गए थे। आज साहब के सामने हिसाब पेश करके रुपये लाने वाले थे। इस चमार को कई खालों के दाम देने थे। कोई बहाना न कर सके। थोड़े से रुपये लाकर उसे दिए।

चमार ने कहा-हजूर, इतने में तो कफन भी पूरा नहीं होगा। मरने वाली अब फिर तो आएगी नहीं, उसका किरिया-करम तो दिल खोलकर कर दूं। मेरे जितने रुपये आते हैं, सब दे दीजिए। यहां तो जब तक दस बोतल दारू न होगी, लास दरवज्जे से न उठेगी।

ताहिरअली ने कहा-इस वक्त रुपये नहीं हैं। फिर ले जाना।

चमार—वाह खां साहब, वाह ! अंगूठे का निसान कराए तो महीनों हो गए, अब कहते हो, फिर ले जाना। इस बखत न दोगे, तो क्या आकबत में दोगे? चाहिए तो यह था कि अपनी ओर से कुछ मदद करते, उलटे मेरे ही रुपये बाकी रखते हो।

ताहिरअली कुछ रुपये और लाए। चमार ने सब रुपये जमीन पर पटक दिए, और बोला—आप थूक से चुहिया जिलाते हैं। मैं आपसे उधार नहीं मांगता, खैरात नहीं मांगता, अपने रुपये मांगता हूं, और आप यह कटूसी कर रहे हैं, जानो घर से दे रहे हों।

ताहिरअली ने कहा—इस वक्त इससे ज्यादा मुमकिन नहीं।

चमार था तो सीधा, पर उसे कुछ संदेह हो गया, गर्म पड़ गया।

सहसा मिस्टर जॉन सेवक आ पहुंचे। आज झल्लाए हुए थे। प्रभु सेवक की उद्दंडता ने उन्हें अव्यवस्थित-सा कर दिया था। यह झमेला देखा, तो कठोर स्वर से बोले—इसके रुपये क्यों नहीं दे देते? मैंने आपसे ताकीद कर दी थी कि सब आदमियों का हिसाब रोज साफ कर दिया कीजिए। आप क्यों बाकी रखते हैं? क्या आपकी तहवील में रुपये नहीं हैं?

ताहिरअली रुपये लाने चले, तो कुछ ऐसे घबराए हुए थे कि साहब को तुरंत संदेह हो गया। रजिस्टर उठा लिया, और हिसाब देखने लगे। हिसाब साफ था। इस चमार के रुपये अदा हो चुके थे। उसके अंगूठे का निशान मौजूद था। फिर यह बकाया कैसा? इतने में और कई चमार आ गए। इस चमार को रुपये लिए जाते देखा, तो समझे, आज हिसाब चुकता किया जा रहा है। बोले—सरकार, हमारा भी मिल जाए।

साहब ने रजिस्टर जमीन पर पटक दिया, और डपटकर बोले—यह क्या गोलमाल है? जब इनसे रसीद ली गई, तो इनके रुपये क्यों नहीं दिए गए?

ताहिरअली से और कुछ तो न बन पड़ा, साहब के पैरों पर गिर पड़े, और रोने लगे। सेंध में बैठकर घूरने के लिए बड़े घुटे हुए आदमी की जरूरत होती है।

चमारों ने परिस्थिति को ताड़कर कहा—सरकार, हमारा पिछला कुछ नहीं है, हम तो आज के रुपयों के लिए कहते थे। जरा देर हुई माल रख गए थे। खां साहब उस बखत नमाज पढ़ते थे।

साहब ने फिर रजिस्टर उठाकर देखा, तो उन्हें किसी-किसी नाम के सामने एक हल्का-सा x का चिह्न दिखाई दिया। समझ गए, हजरत ने यही रुपये उड़ाए हैं। एक चमार से, जो बाजार से सिगरेट पीता आ रहा था, पूछा—तेरा नाम क्या है?

चमार—चुनकू।

साहब—तेरे कितने रुपये बाकी हैं?

कई चमारों ने उसे हाथ के इशारे से समझाया कि कह दे, कुछ नहीं। चुनकू इशारा न समझा। बोला—सत्रह रुपये पहले के थे, नौ रुपये आज के।

साहब ने अपनी नोटबुक पर उसका नाम टांक लिया। ताहिरअली को कुछ कहा न सुना, एक शब्द भी न बोले। जहां कानून से सजा मिल सकती थी, वहां डांट-फटकार की जरूरत क्या? सब रजिस्टर उठवाकर गाड़ी में रखे, दफ्तर में ताला बंद किया, सेफ में दोहरे ताले लगाए, तालियां जेब में रखीं, और फिटन पर सवार हो गए। ताहिरअली को इतनी हिम्मत भी न पड़ी कि कुछ अनुनय-विनय करे। वाणी ही शिथिल हो गई। स्तंभित-से खड़े रह गए। चमारों के चौधरी ने दिलासा दिया—आप क्यों डरते हो खां साहब, आपका बाल तो बांका होने न पाएगा।

हम कह देंगे, अपने रुपये भर पाए हैं। क्यों रे चुनकुआ, निरा गंवार ही है, इसारा भी नहीं समझता?

चुनकू ने लज्जित होकर कहा–चौधरी, भगवान् जानें, जो मैं जरा भी इसारा पा जाता, तो रुपये का नाम ही न लेता।

चौधरी–अपना बयान बदल देना, कह देना, मुझे जबानी हिसाब याद नहीं था।

चुनकू ने इसका कुछ जवाब न दिया। बयान बदलना सांप के मुंह में उंगली डालना था। ताहिरअली को इन बातों से जरा भी तस्कीन नहीं हुई। वह पछता रहे थे। इसलिए नहीं कि मैंने रुपये क्यों खर्च किये, बल्कि इसलिए कि नामों के सामने x के निशान क्यों लगाए। अलग किसी कागज पर टांक लेता, तो आज क्यों यह नौबत आती? अब खुदा ही खैर करे। साहब मुआफ करने वाले आदमी नहीं हैं। कुछ सूझ ही न पड़ता था कि क्या करें। हाथ-पांव फूल गए थे।

चौधरी बोला–खां साहब, अब हाथ पर हाथ धरकर बैठने से काम न चलेगा। यह साहब बड़ा जल्लाद आदमी है। जल्दी रुपये लुटाइये। आपको याद है, कुल कितने रुपये निकलते होंगे?

ताहिर–रुपयों की कोई फिक्र नहीं है जी, यहां तो दाग लग जाने का अफसोस है। क्या जानता था कि आज यह आफत तो आने वाली है, नहीं तो पहले से तैयार न हो जाता। जानते हो, यहां कारखाने का एक-न-एक आदमी कर्ज मांगने को सिर पर सवार रहता है। किस-किससे हीला करूं? और फिर मुरौवत में हीला करने से भी तो काम नहीं चलता। रुपये निकालकर दे देता हूं। यह उसी शराफत की सजा है। एक सौ पचास रुपये तो कम न निकलेंगे, बल्कि चाहे दो सौ रुपये हो गए हों।

चौधरी–भला, सरकारी रकम इस तरह खर्च की जाती है। आपने खर्च की या किसी को उधार दे दी, बात एक ही है। वे लोग रुपये दे देंगे?

ताहिर–ऐसा खरा तो एक भी नहीं। कोई कहेगा, तनख्वाह मिलने पर दूंगा। कोई कुछ बहाना करेगा। समझ में नहीं आता, क्या करूं?

चौधरी–घर में तो रुपये होंगे?

ताहिर–होने को क्या दो-चार सौ रुपये न होंगे, लेकिन जानते हो, औरतों का रुपया जान के पीछे रहता है। खुदा को जो मंजूर है, वह होगा।

यह कहकर ताहिरअली अपने दो-चार दोस्तों की तरफ चले कि शायद यह हाल सुनकर लोग मेरी कुछ मदद करें, मगर कहीं न जाकर एक दरख्त के नीचे नमाज पढ़ने लगे। किसी से मदद की उम्मीद न थी।

इधर चौधरी ने चमारों से कहा–भाइयो, हमारे मुंसीजी इस बखत तंग हैं। सब लोग थोड़ी-थोड़ी मदद करो, तो उनकी जान बच जाय। साहब अपने रुपये ही न लेंगे कि किसी की जान लेंगे ! समझ लो, एक दिन नसा नहीं खाया।

चौधरी तो चमारों से रुपये बटोरने लगा। ताहिरअली के दोस्तों ने यह हाल सुना, तो चुपके से दुबक गए कि कहीं ताहिरअली कुछ मांग न बैठें। हां, जब तीसरे पहर दारोगा ने आकर तहकीकात करनी शुरू की, और ताहिरअली को हिरासत में ले लिया, तो लोग तमाशा देखने आ पहुंचे। घर में हाय-हाय मच गई। कुल्सूम ने जाकर जैनब से कहा–लीजिए, अब तो आपका अरमान निकला।

जैनब ने कहा–तुम मुझसे क्या बिगड़ती हो बेगम ! अरमान निकले होंगे तो तुम्हारे, न

निकले होंगे तो तुम्हारे। मैंने थोड़े ही कहा था कि जाकर किसी के घर में डाका मारो। गुलछर्रे तुमने उड़ाए होंगे, यहां तो रोटी-दाल के सिवा और किसी का कुछ नहीं जानते।

कुल्सूम के पास तो कफन को कौड़ी भी न थी, जैनब के पास रुपये थे, पर उसने दिल जलाना ही काफी समझा। कुल्सूम को इस समय ताहिरअली से सहानुभूति न थी। उसे उन पर क्रोध आ रहा था, जैसे किसी को अपने बच्चे को चाकू से उंगली काटते देखकर गुस्सा आए।

संध्या हो रही थी। ताहिरअली के लिए दारोगा ने एक इक्का मंगवाया। उस पर चार कांस्टेबिल उन्हें लेकर बैठे। दारोगा जानता था कि यह माहिरअली के भाई है, कुछ लिहाज करता था। चलते वक्त बोला, अगर आपको घर में किसी से कुछ कहना हो, तो आप जा सकते हैं, औरतें घबरा रही होंगी, उन्हें जरा तस्कीन देते आइए। पर ताहिरअली ने कहा, मुझे किसी से कुछ नहीं कहना है। वह कुल्सूम को अपनी सूरत न दिखाना चाहते थे, जिसे उन्होंने जान-बूझकर गारत किया था, और निराधार छोड़े जाते थे। कुल्सूम द्वार पर खड़ी थी। उसका क्रोध प्रतिक्षण शोक की सूरत पकड़ता जाता था, यहां तक कि जब इक्का चला, तो वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बच्चे 'अब्बा, अब्बा' कहते इक्के के पीछे दौड़े। दारोगा ने उन्हें एक-एक चवन्नी मिठाई खाने को देकर फुसला दिया। ताहिरअली तो उधर हिरासत में गए, इधर घड़ी रात जाते-जाते चमारों का चौधरी रुपये लेकर मिस्टर सेवक के पास पहुंचा। साहब बोले-ये रुपये तुम उनके घरवालों को दे दो, तो उनका गुजर हो जाए। मुआमला अब पुलिस के हाथ में है, मैं कुछ नहीं कर सकता।

चौधरी-हजूर, आदमी से खता हो ही जाती है, इतने दिनों तक आपकी चाकरी की, हजूर को उन पर कुछ दया करनी चाहिए। बड़ा भारी परिवार है सरकार, बाल-बच्चे भूखों मर जायंगे।

जॉन सेवक-मैं यह सब जानता हूं, बेशक उनका खर्च बहुत था। इसीलिए मैंने साल पर कटौती दे दी थी। मैं जानता हूं कि उन्होंने जो कुछ किया है, मजबूर होकर किया है, लेकिन विष किसी नीयत से खाया जाए, जाय, विष ही का काम करेगा, कभी अमृत नहीं हो सकता। वि:वासघात विष से कम घातक नहीं होता। तुम ये रुपये ले जाकर उनके घरवालों को दे दो। मुझे खां साहब से कोई बिगाड़ नहीं है, लेकिन अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता। पाप को क्षमा करना पाप करना है।

चौधरी यहां से निराश होकर चला गया। दूसरे दिन अभियोग चला। ताहिरअली दोषी पाये गए। वह अपनी सफाई न पेश कर सके। छः महीने की सजा हो गई।

जब ताहिरअली कांस्टेबिलों के साथ जेल की तरफ जा रहे थे, तो उन्हें माहिरअली तांगे पर सवार आता हुआ दिखाई दिया। उनका हृदय गद्‌गद हो गया। आंखों से आंसू की झड़ी लग गई। समझे, माहिर मुझसे मिलने दौड़ा चला आता है। शायद आज ही आया है, और आते-ही-आते यह खबर पाकर बेकरार हो गया है। जब तांगा समीप आ गया, तो वह चिल्लाकर रोने लगे। माहिरअली ने एक बार उन्हें देखा, लेकिन न सलाम-बंदगी की, न तांगा रोका, न फिर इधर दृष्टिपात किया, मुंह फेर लिया, मानो देखा ही नहीं। तांगा ताहिरअली की बगल से निकल गया। उनके मर्मस्थल से एक सर्द आह निकल गई। एक बार फिर चिल्लाकर रोये। वह आनंद की ध्वनि थी, यह शोक का विलाप, वे आंसू की बूंदें थीं, ये खून की।

कितु एक ही क्षण में उनकी आत्मवेदना शांत हो गई-माहिर ने मुझे देखा ही न होगा।

उसकी निगाह मेरी तरफ उठी जरूर थी, लेकिन शायद वह किसी ख्याल में डूबा हुआ था। ऐसा होता भी तो है कि जब हम किसी ख्याल में होते हैं, तो न सामने की चीजें दिखाई देती हैं, न करीब की बातें सुनाई देती हैं। यही सबब है। अच्छा ही हुआ कि उसने मुझे न देखा, नहीं तो इधर मुझे नदामत होती, उधर उसे रंज होता।

उधर माहिरअली मकान पर पहुंचे, तो छोटे भाई आकर लिपट गए। ताहिरअली के दोनों बच्चे भी दौड़े, और 'माहिर चचा आए' कहकर उछलने-कूदने लगे। कुल्सूम भी रोती हुई निकल आई। सलाम-बंदगी के पश्चात् माहिर अपनी माता के पास गए। उसने उन्हें छाती से लगा लिया।

माहिर–तुम्हारा खत न जाता, तो अभी मैं थोड़े ही आता। इम्तहान के बाद ही तो वहां मजा आता है, कभी मैच, कभी दावत, कभी सैर, कभी मुशायरे। भाई साहब को यह क्या हिमाकत सूझी !

जैनब–बेगम साहब की फरमाइशें कैसे पूरी होतीं। जेवर चाहिए, जरदा चाहिए, जरी चाहिए, कहां से आता ! उस पर कहती हैं, तुम्हीं लोगों ने उन्हें मटियामेट किया। पूछो, रोटी-दाल में ऐसा कौन-सा छप्पन टके का खर्च था? महीनों सिर में तेल डालना नसीब न होता था। अपने पास से पैसे निकालो, तो पान खाओ। उस पर इतने ताने !

माहिर–मैंने तो स्टेशन से आते हुए उन्हें जेल जाते देखा। मैं तो शर्म के मारे उनसे कुछ न बोला, बंदगी तक न की। आखिर लोग यही न कहते कि उनका भाई जेलखाने जा रहा है। मुंह फेरकर चला आया। भैया रो पड़े। मेरा दिल भी मसोस उठा, जी चाहता था, उनके गले लिपट जाऊं, लेकिन शर्म आ गई। थानेदार कोई मामूली आदमी नहीं होता। उसका शुमार हुक्काम में होता है। इसका खयाल न करूंगा, तो बदनाम हो जाऊंगा।

जैनब–छ: महीने की सज़ा हुई है।

माहिर–जुर्म तो बड़ा था, लेकिन शायद हाकिम ने रहम किया।

जैनब–तुम्हारे अब्बा का लिहाज किया होगा, नहीं तो तीन साल से कम के लिए न जाते।

माहिर–खानदान में दाग लगा दिया। बुजुर्गों की आबरू खाक में मिला दी।

जैनब–खुदा न करे कि कोई मर्द औरत का कलमा पढ़े।

इतने में मामा नाश्ते के लिए मिठाइयां लाई। माहिरअली ने एक मिठाई जाहिर को दी, एक जाबिर को। इन दोनों ने जाकर साबिर और नसीमा को दिखाई। वे दोनों भी दौड़े। जैनब ने कहा–जाओ, खेलते क्यों नहीं। क्या सिर पर डट गए। न-जाने कहां के मरभुखे छोकरे हैं। इन सबों के मारे कोई चीज मुंह में डालनी मुश्किल है। बला की तरह सिर पर सवार हो जाते हैं। रात-दिन खाते ही रहते हैं, फिर भी जी नहीं भरता।

रकिया–छिछोरी मां के बच्चे और क्या होंगे।

माहिर ने एक-एक मिठाई उन दोनों को भी दी। तब बोले–अब गुजर-बसर की क्या सूरत होगी? भाभी के पास तो रुपये होंगे न?

जैनब–होंगे क्यों नहीं। इन्हीं रुपयों के लिए तो खसम को जेल भेजा। देखती हूं, क्या इंतजाम करती हैं। यहां किसी को क्या गरज पड़ी है कि पूछने जाए।

माहिर–मुझे अभी न जाने कितने दिनों में जगह मिले। महीना-भर लग जायं, दो महीने लग जाएं। तब तक मुझे दिक मत करना।

जैनब—तुम इसका गम न करो बेटा ! वह अपना संभालें, हमारा भी खुदा हाफिज है। वह पुलाव खाकर सोएंगी, तो हमें भी रूखी रोटियां मयस्सर हो ही जाएंगी।

जब शाम हो गई, तो जैनब ने मामा से कहा—जाकर बेगम साहब से पूछो, कुछ सौदा-सुलफ आएगा, या आज मातम मनाया जाएगा?

मामा ने लौट आकर कहा—वह तो बैठी रो रही हैं। कहती हैं, जिसे भूख हो, खाए मुझे नहीं खाना है।

जैनब—देखा ! यह तो मैं पहले ही कहती थी कि साफ जवाब मिलेगा। जानती है कि लड़का परदेस से आया है, मगर पैसे न निकलेंगे। अपने और अपने बच्चों के लिए बाजार से खाना मंगवा लेगी, दूसरे खाएं या मरें उसकी बला से। खैर, उन्हें उनके मीठे टुकड़े मुबारक रहें, हमारा भी अल्लाह मालिक है।

कुल्सूम ने जब से सुना है था कि ताहिरअली को छ: महीने की सजा हो गई, तभी से उसकी आंखों में अंधेरा-सा छाया हुआ था। मामा का संदेसा सुना, तो जल उठी। बोली—उनसे कह दो, पकाएं-खाएं, यहां भूख नहीं है। बच्चों पर रहम आए, तो दो नेवाले इन्हें भी दे दें। मामा ने इसी वाक्य का अन्वय किया था, जिसने अर्थ का अनर्थ कर दिया।

रात के नौ बज गए। कुल्सूम देख रही थी कि चूल्हा गर्म है, मसाले की सुगंध नाक में आ रह थी, बघार की आवाज भी सुनाई दे रही थी, लेकिन बड़ी देर तक कोई उसके बच्चों को बुलाने न आया, तो वह बैन कर-करके रोने लगी। उसे मालूम हो गया कि घर वालों ने साथ छोड़ दिया, और अब मैं अनाथ हूं, संसार में कोई मेरा नहीं है। दोनों बच्चे रोते-रोते सो गए थे। उन्हीं के पैताने वह भी पड़ रही। भगवन्, ये दो-दो बच्चे, पास फूटी कौड़ी नहीं, घर के आदमियों का यह हाल, यह नाव कैसे पार लगेगी।

माहिरअली भोजन करने बैठे, तो मामा से पूछा—भाभी ने भी कुछ बाजार से मंगवाया है कि नहीं?

जैनब—मामा से मंगवायगी, तो परदा न खुल जायगा? खुदा के फजल से साबिर सयाना हुआ। गुपचुप सौदे वही लाता है, और इतना घाघ है कि लाख फुसलाओ, पर मुंह नहीं खोलता।

माहिर—पूछ लेना। ऐसा न हो कि हम लोग खाकर सोएं, और वह बेचारी रोजे से रह जाएं।

जैनब—ऐसी अनीली नहीं है, वह हम-जैसों को चरा लाएं। हां, पूछना मेरा फर्ज है, पूछ लूंगी।

रकिया—सालन और रोटी किस जलते खायंगी, उन्हें तो जरदा-शीरमाल चाहिए।

दूसरे दिन सबेरे दोनों बच्चे बावर्चीखाने में गए, तो जैनब ने ऐसी कड़ी निगाहों से देखा कि दोनों रोते हुए लौट आए। अब कुल्सूम से न रहा गया। वह झल्लाकर उठी, और बावर्चीखाने में जाकर मामा से बोली—तूने बच्चों को खाना क्यों नहीं दिया रे? क्या इतनी जल्द कायापलट हो गई? इसी घर के पीछे हम मिट्टी में मिल गए, और मेरे लड़के भूखों तड़पें, किसी को दर्द न आए?

मामा ने कहा—तो आप मुझसे क्यों बिगड़ती हैं, मैं कौन होती हूं, जैसा हुकुम पाती हूं, वैसा करती हूं।

जैनब अपने कमरे से बोली—तुम मिट्टी में मिल गईं, तो यहां किसने घर भर लिया? कल

तक कुछ नाता निभा जाता था, वह भी तुमने तोड़ दिया। बनिये के यहां से कर्ज जिंस आई, तो मुंह में दाना गया। सौ कोस से लड़का आया, तुमने बात तक न पूछी। तुम्हारी नेकी कोई कहां तक गाए।

आज से कुल्सूम को रोटियों के लाले पड़ गए। माहिरअली कभी दोनों भाइयों को लेकर नानबाई की दूकान से भोजन कर आते, कभी किसी इष्ट-मित्र के मेहमान हो जाते। जैनब और रकिया के लिए मामा चुपके-चुपके अपने घर से खाना बना लाती। घर में चूल्हा न जलता। नसीमा और साबिर प्रातःकाल घर से निकल जाते। कोई कुछ दे देता, तो खा लेते। जैनब और रकिया की सूरत से ऐसे डरते थे, जैसे चूहा बिल्ली से । माहिर के पास भी न जाते। बच्चे शत्रु और मित्र को खूब पहचानते हैं। अब वे प्यार के भूखे नहीं, दया के भूखे थे। रही कुल्सूम, उसके लिए गम ही काफी था। वह सीना-पिरोना जानती थी, चाहती तो सिलाई करके अपना निर्वाह कर लेती, पर जलन के मारे कुछ न करती थी। वह माहिर के मुंह में कालिख लगाना चाहती थी, चाहती थी कि दुनिया मेरी दशा देखे, और इन पर थूके। उसे अब ताहिरअली पर भी क्रोध आता था—तुम इसी लायक थे कि जेल में पड़े-पड़े चक्की पीसो। अब आंखे खुलेंगी। तुमको दुनिया के हंसने की फिक्र थी। अब दुनिया किसी पर नहीं हंसती ! लोग मजे से मीठे लुकमे उड़ाते और मीठी नींद सोते हैं। किसी को तो नहीं देखती कि झूठों भी इन मतलब के बंदों की फजीहत करे। किसी को गरज ही क्या पड़ी है कि किसी पर हंसे। लोग समझते होंगे, ऐसे कम समझो, लाज पर मरने वालों की यही सजा है।

इस भांति एक महीना गुजर गया। एक दिन सुभागी कुल्सूम के यहां साग-भाजी लेकर आई। वह अब यही काम करती थी। कुल्सूम की सूरत देखी, तो बोली—बहूजी, तुम तो पहचानी ही नहीं जातीं। क्या कुढ़-कुढ़कर जान दे दोगी? बिपत तो पड़ ही गई है, कुढ़ने से क्या होगा। मसल है, आंधी आए, बैठ गंवाए। तुम न रहोगी, तो बच्चों को कौन पालेगा? दुनिया कितनी जल्द अंधी हो जाती है। बिचारे खां साहब इन्हीं लोगों के लिए मरते थे। अब कोई बात भी नहीं पूछता। घर-घर यही चर्चा हो रही है कि इन लोगों को ऐसा न करना चाहिए था। भगवान् को क्या मुंह दिखायंगे।

कुल्सूम—अब तो भाड़ लीपकर हाथ काला हो गया !

सुभागी—बहू, कोई मुंह पर न कहे, लेकिन सब थुड़ी-थुड़ी करते हैं। बेचारे नन्हें-नन्हें बालक मारे-मारे फिरते हैं, देखकर कलेजा फट जाता है। कल तो चौधरी ने माहिर मियां को खूब आड़े हाथों लिया था।

कुल्सूम को इन बातों से बड़ी तस्कीन हुई। दुनिया इन लोगों को थूकती तो है, इनकी निंदा तो करती है, इन बेहयाओं को लाज ही न हो, तो कोई क्या करे। बोली—किस बात पर?

सुभागी कुछ जवाब न देने पाई थी कि बाहर से चौधरी ने पुकारा। सुभागी ने जाकर पूछा—क्या कहते हो?

चौधरी—बहूजी से कुछ कहना है। जरा परदे की आड़ में खड़ी हो जायं।

दोपहर का समय था। घर में सन्नाटा छाया हुआ था। जैनब और रकिया किसी औलिया के मजार पर शीरीनी चढ़ाने गई हुई थीं। कुल्सूम परदे की आड़ में आकर खड़ी हो गई।

चौधरी—बहूजी, कई दिन से आना चाहता था, पर मौका ही न मिलता था। जब आता,

तो माहिर मियां को बैठे देखकर लौट जाता था। कल माहिर मियां मुझसे कहने लगे, तुमने भैया की मदद के लिए जो रुपये जमा किए थे, वे मुझे दे दो, भाभी ने मांगे हैं। मैंने कहा, जब तक बहूजी से खुद न पूछ लूंगा, आपको न दूंगा। इस पर बहुत बिगड़े। कच्ची-पक्की मुंह से निकालने लगे–समझ लूंगा, बड़े घर भिजवा दूंगा। मैंने कहा, जाइए, समझ लीजिएगा। तो अब आपका क्या हुकुम है? ये सब रुपये अभी तक मेरे पास रखे हुए हैं, आपको दे दूं न? मुझे तो आज मालूम हुआ कि वे लोग आपके साथ दगा कर गए।

कुल्सूम ने कहा–खुदा तुम्हें इस नेकी का सवाब देगा। मगर ये रुपये जिसके हों, उन्हें लौटा दो। मुझे इनकी जरूरत नहीं है।

चौधरी–कोई न लौटाएगा।

कुल्सूम–तो तुम्हीं अपने पास रखो।

चौधरी–आप लेतीं क्यों नहीं? हम कोई औसान थोड़े ही जताते हैं। खां साहब का बदौलत बहुत कुछ कमाया है, दूसरा मुंसी होता, तो हजारों रुपये नजर ले लेता। यह उन्हीं की नजर समझी जाए।

चौधरी ने बहुत आग्रह किया, पर कुल्सूम ने रुपये न लिए। वह माहिरअली को दिखाना चाहती थी कि इन जिन रुपयों के लिए तुम कुत्तों की भांति लपकते थे, उन्हीं रुपयों को मैंने पैर से ठुकरा दिया। मैं लाख गई-गुजरी हूं, फिर भी मुझमें कुछ गैरत बाकी है, तुम मर्द होकर बेहयाई पर कमर बांधे हुए हो।

चौधरी यहां से चला, तो सुभागी से बोला–यही बड़ं आदमियों की बातें हैं। चाहे टुकड़े-टुकड़े उड़ जाएं, मुदा किसी के सामने हाथ न पसारेंगी। ऐसा न होता, तो छोटे-बड़े में फरक ही क्या रहता ! धन से बड़ाई नहीं होती, धरम से होती है।

इन रुपयों को लौटाकर कुल्सूम का मस्तक गर्व से उन्नत हो गया। आज उसे पहली बार ताहिरअली पर अभिमान हुआ–यह इज्जत है कि पीठ-पीछे दुनिया बड़ाई करती रहे। उस बेइज्जती से तो मर जाना ही अच्छा कि छोटे-छोटे आदमी मुंह पर लताड़ सुनाएं। कोई लाख उनके एहसान को मिटाए, पर दुनिया तो इंसाफ करती है। रोज ही तो अमले सजा पाते रहते हैं। कोई तो उनके बाल-बच्चों की बात नहीं पूछता। बल्कि उलटे और लोग ताने देते हैं। आज उनकी नेकनामी ने मेरा सिर ऊंचा कर दिया।

सुभागी ने कहा–बहूजी, बहुत औरतें देखीं, लेकिन तुम-जैसी धीरज वाली बिरली ही कोई होगी। भगवान् तुम्हारा संकट हरे।

वह चलते लगी, तो कई अमरूद बच्चों के लिए रख दिए। कुल्सूम ने कहा–मेरे पास पैसे नहीं हैं।

सुभागी मुस्कराकर चली गई।

सैंतीस

प्रभु सेवक बड़े उत्साही आदमी थे। उनके हाथ से सेवक-दल में एक नई सजीवता का संचार हुआ। संख्या दिन-दिन बढ़ने लगी। जो लोग शिथिल और उदसीन हो रहे थे, फिर नए जोश से काम करने लगे। प्रभु सेवक की सज्जनता और सहृदयता सभी को मोहित कर लेती थी। इसके साथ ही अब उनके चरित्र में वह कर्त्तव्यनिष्ठा दिखाई देती थी, जिसकी उन्हें स्वयं आशा न थी। सेवक-दल में प्राय: सभी लोग शिक्षित थे, सभी विचारशील। वे कार्य को अग्रसर करने के लिए किसी नए विधान की आयोजना करना चाहते थे। वह अशिक्षित सिपाहियों की सेना न थी, जो नायक की आज्ञा को देववाक्य मानती है। यह शिक्षित-सेना थी, जो नायक की आज्ञा को तौलती है, तर्क-वितर्क करती है, और जब तक कायल न हो जाय, उसको मानने को तैयार नहीं होती। प्रभु सेवक ने बड़ी बुद्धिमत्ता से इस दुस्तर कार्य को निभाना शुरू किया।

अब तक इस संस्था का कार्य सामाजिक था। मेलो-ठेलों में यात्रियों की सहायता, बाढ़-बूड़े में पीड़ितों का उद्धार, सूखे-झूरे में विपत्ति के मारे हुओं का कष्ट-निवारण, ये ही इनके मुख्य विषय थे। प्रभु सेवक ने इसका कार्य-क्षेत्र विस्तृत कर दिया, इसको राजनीतिक रूप दे दिया। यद्यपि उन्होंने कोई नया प्रस्ताव न किया, किसी परिवर्तन की चर्चा तक न की, पर धीरे-धीरे असर से नए भावों का संचार होने लगा।

प्रभु सेवक बहुत सहृदय आदमी थे, पर किसी को गरीबों पर अत्याचार करते देखकर उनकी सहृदयता हिंसात्मक हो जाती थी। किसी सिपाही को घसियारों की घास छीनते देखकर वह तुरंत घसियारों की ओर से लड़ने पर तैयार हो जाते थे। दैविक आघातों से जनता की रक्षा करना उन्हें निरर्थक-सा जान पड़ता था। सबलों के अत्याचार पर ही उनकी खास निगाह रहती थी। रिश्वतखोर कर्मचारियों पर, जालिम जमीदारों पर, स्वार्थी अधिकारियों पर वह सदैव ताक लगाए रहते थे। इसका फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में इस संस्था की धाक बैठ गई। उसका दफ्तर निर्बलों और दुखित जनों का आश्रय बन गया। प्रभु सेवक निर्बलों को प्रतिकार के लिए उत्तेजित करते रहते थे। उनका कथन था कि जब तक जनता स्वयं अपनी रक्षा करना न सीखेगी, ईश्वर भी उसे अत्याचार से नहीं बचा सकता।

हमें सबसे पहले आत्मसम्मान की रक्षा करनी चाहिए। हम कायर और दब्बू हो गए हैं, अपमान और हानि चुपके से सह लेते हैं, ऐसे प्राणियों को तो स्वर्ग में भी सुख नहीं प्राप्त हो सकता। जरूरत है कि हम निर्भीक और साहसी बनें, संकटों का सामना करें, मरना सीखें। जब तक हमें मरना न आएगा, जीना भी न आएगा। प्रभु सेवक के लिए दीनों की रक्षा करते हुए गोली का निशाना बन जाना इससे कहीं आसान था कि वह किसी रोगी के सिरहाने बैठा पंखा झले, या अकाल-पीड़ियों को अन्न और द्रव्य बांटता फिरे। उसक सहयोगियों को भी इस साहसिक सेवा में अधिक उत्साह था। कुछ लोग तो इससे भी आगे बढ़ जाना चाहते थे। उनका विचार था कि प्रजा में असंतोष उत्पन्न करना भी सेवकों का मुख्य कर्त्तव्य है। इन्द्रदत्त इस संप्रदाय का अगुआ था, और उसे शांत रखने में प्रभु सेवक को बड़ी चतुराई से काम लेना पड़ता था।

लेकिन ज्यों-ज्यों सेवकों की कीर्ति फैलने लगी, उन पर अधिकारियों का संदेह भी बढ़ने

लगा। अब कुंअर साहब डरे कि कहीं सरकार इस संस्था का दमन न कर दे। कुछ दिनों में यह अफवाह भी गर्म हुई कि अधिकारी वर्ग में कुंवर साहब की रियासत जब्त करने का विचार किया जा रहा है। कुंवर साहब निर्भीक पुरुष थे, पर यह अफवाह सुनकर उनका आसन भी डोल गया। वह ऐश्वर्य का सुख नहीं भोगना चाहते थे, लेकिन ऐश्वर्य की ममता का त्याग न कर सकते थे। उनको परोपकार में उससे कहीं अधिक आनंद आता था, जितना भोग-विलास में। परोपकार में सम्मान था, गौरव था, वह सम्मान न रहा, तो जीने में मजा ही क्या रहेगा ! वह प्रभु सेवक को बार-बार समझाते—भाई, जरा समझ-बूझकर काम करो। अधिकारियों से बचकर चलो। ऐसे काम करो ही क्यों, जिनसे अधिकारियों को तुम्हारे ऊपर संदेह हो। तुम्हारे लिए परोपकार का क्षेत्र क्या कम है कि राजनीति के झगड़े में पड़ो। लेकिन प्रभु सेवक उनके परामर्श की जरा भी परवा न करते, धमकी देते—इस्तीफा दे दूंगा। हमें अधिकारियों की क्या परवा ! वे जो चाहते हैं, करते हैं, हमसे कुछ नहीं पूछते, फिर हम क्यों उनका रुख देखकर काम करें? हम अपने निश्चित मार्ग से विचलित न होंगे। अधिकारियों की जो इच्छा हो, करें। आत्मसम्मान खोकर संस्था को जीवित ही रखा, तो क्या। उनका रुख देखकर काम करने का आशय तो यही हैं कि हम खाएं, मुकदमे लड़ें, एक दूसरे का बुरा चेतें, और पड़े-पड़े सोएं। हमारे और शासकों के उद्देश्यों में परस्पर विरोध है। जहां हमारा हित है, वहीं उनको शंका है, और ऐसी दशा में उनका संशय स्वाभाविक है। अगर हम लोग इस भांति डरते रहेंगे, तो हमारा होना-न-होना दोनों बराबर है।

एक दिन दोनों आदमियों में वाद-विवाद की नौबत आ गई। बंदोबस्त के अफसरों ने किसी प्रांत में भूमि-कर में मनमानी वृद्धि कर दी थी। कार्उसिलों, समाचार-पत्रों और राजनीतिक सभाओं में इस वृद्धि का विरोध किया जा रहा था, पर कर-विभाग पर कुछ असर न होता था। प्रभु सेवक की राय थी, हमें जाकर असामियों से कहना चाहिए कि साल-भर तक जमीन परती पड़ी रहने दें। कुंवर साहब कहते थे कि यह तो खुल्लम-खुल्ला अधिकारियों से रार मोल लेना है।

प्रभु सेवक—अगर आप इतना डर रहे हैं, तो उचित है कि आप इस संस्था को उसके हाल पर छोड़ दें। आप दो नौकाओं पर बैठकर नदी पार करना चाहते हैं, यह असंभव है। मुझे रईसों पर पहले भी विश्वास न था, और अब तो निराशा-सी हो गई है।

कुंवर—तुम मेरी गिनती रईसों में क्यों करते हो, जब तुम्हें खूब मालूम है कि मुझे रियासत की परवा नहीं। लेकिन कोई काम धन के बगैर तो नहीं चल सकता। मैं नहीं चाहता कि अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं की भांति इस संस्था को भी धनाभाव के कारण हम टूटते देखें।

प्रभु सेवक—मैं बड़ी-से-बड़ी जायदाद को भी सिद्धांत के लिए बलिदान कर देने में दरेग न करूंगा।

कुंवर—मैं भी न करता, यदि जायदाद मेरी होती। लेकिन यह जायदाद मेरे वारिसों की है, और मुझे कोई अधिकार नहीं है कि उनकी इच्छा के बगैर उनकी जायदाद की उत्तर-क्रिया कर दूं। मैं नहीं चाहता था कि मेरे कर्मों का फल मेरी संतान को भोगना पड़े।

प्रभु सेवक—यह रईसों की पुरानी दलील है। वे अपनी वैभव-भक्ति को इसी परदे की आड़ में छिपाया करते हैं। अगर आपको भय है कि हमारे कामों से आपकी जायदाद को हानि पहुंचेगी, तो बेहतर है कि आप इस संस्था से अलग हो जायं।

कुंवर साहब ने चिंतित स्वर में कहा—प्रभु, तुम्हें मालूम नहीं हैं कि इस संस्था की जड़ अभी कितनी कमजोर है ! मुझे भय है यह अधिकारियों की तीव्र दृष्टि को एक क्षण भी सहन नहीं कर सकती। मेरा और तुम्हारा उद्देश्य एक ही है, मैं भी वही चाहता हूं, जो तुम चाहते हो। लेकिन मैं बूढ़ा हूं, मंद गति से चलना चाहता हूं, तुम जवान हो, दौड़ना चाहते हो। मैं भी शासकों का कृपापात्र नहीं बनना चाहता। मैं बहुत पहले निश्चय कर चुका हूं कि हमारा भाग्य हमारे हाथ में है, अपने कल्याण के लिए जो कुछ करेंगे, हमीं करेंगे, दूसरों से सहानुभूति या सहायता की आशा रखना व्यर्थ हैं। किंतु कम-से-कम हमारी संस्थाओं को जीवित तो रहना चाहिए। इसे अधिकारियों के संदेह की भेंट करके उसका अंतिम संस्कार नहीं करना चाहता।

प्रभु सेवक ने कुछ उत्तर न दिया। बात बढ़ जाने का भय था। मन में निश्चय किया कि अगर कुंवर साहब ने ज्यादा चीं-चपड़ की, तो उन्हें इस संस्था से अलग कर देंगे। धन का प्रश्न इतना जटिल नहीं है कि उसके लिए संस्था के मर्मस्थल पर आघात किया जाय। इन्द्रदत्त ने भी यही सलाह दी—कुंवर साहब को पृथक् कर देना चाहिए। हम औषधियां बांटने और अकाल-पीड़ित प्रांतों में मवेशियों का चारा ढोने के लिए नहीं हैं। है वह भी हमारा काम, इससे हमें इनकार नहीं, लेकिन मैं उसे इतना गुरु नहीं समझता। यह विध्वंस का समय है, निर्माण का समय तो पीछे आयगा। प्लेग, दुर्भिक्ष और बाढ़ से दुनिया कभी वीरान नहीं हुआ, और न होगी।

क्रमशः यहां तक नौबत पहुंची कि अब कितने ही महत्त्व की बातों में यह दोनों आदमी कुंवर साहब से परामर्श तक न लेते, बैठकर आपस ही में निश्चय कर लेते। चारों तरफ से अत्याचारों के वृत्तांत नित्य दफ्तर में आते रहते थे। कहीं-कहीं तो लोग इस संस्था की सहायता प्राप्त करने के लिए बड़ी-बड़ी रकमें देने पर तैयार हो जाते थे। इससे यह विश्वास होता जाता था कि संस्था अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है, उसे किसी स्थायी कोष की आवश्यकता नहीं है। यदि उत्साही कार्यकर्ता हों, तो कभी धनाभाव नहीं हो सकता। ज्यों-ज्यों यह बात सिद्ध होती जाती थी, कुंवर साहब का आधिपत्य लोगों को अप्रिय होता जाता था।

प्रभु सेवक की रचनाएं इन दिनों क्रांतिकारी भावों से परिपूर्ण होती थीं। राष्ट्रीयता, द्वंद्व, संघर्ष के भाव प्रत्येक छंद से टपकते थे। उसने 'नौका' नाम की एक ऐसी कविता लिखी, जिसे कवितासागर का अनुपम रत्न कहना अनुचित न होगा। लोग पढ़ते थे, और सिर धुनते थे। पहले ही पद्य में यात्री ने पूछा था—'क्यों मांझी, नौका डूबेगी या पार लगेगी?' मांझी ने उत्तर दिया था—'यात्री, नौका डूबेगी; क्योंकि तुम्हारे मन में यह शंका इस कारण हुई है।' कोई ऐसी सभा, सम्मेलन, परिषद् न था, यह कविता न पढ़ी गई हो। साहित्य-जगत् में हलचल-सी मच गई।

सेवक-दल पर प्रभु सेवक का प्रभुत्व दिन-दिन बढ़ता जाता था। प्रायः सभी सदस्यों को अब उन पर श्रद्धा हो गई थी, सभी प्राणपण से उनके आदेशों पर चलने को तैयार रहते थे। सब-के-सब एक रंग में रंगे हुए थे, राष्ट्रीयता के मद में चूर, न धन की चिंता, न घर-बार की फिक्र, रूखा-सूखा खाने वाले, मोटा पहनने वाले, जमीन पर सोकर रात काट देते थे, घर की जरूरत न थी, कभी किसी वृक्ष के नीचे पड़ रहते, कभी किसी झोंपड़े में । हां, उनके हृदयो में उच्च और पवित्र देशोपासना हिलोरें ले रही थी !

समस्त देश में इस संस्था की सुव्यवस्था की चर्चा हो रही थी। प्रभु सेवक देश के सर्व-सम्मानित, सर्वजन-प्रिय नेताओं में थे। इतनी अल्पावस्था में यह कीर्ति ! लोगों को आश्चर्य होता था। जगह-जगह से राष्ट्रीय सभाओं ने उन्हें आमंत्रित करना शुरू किया। जहां जाते, लोग

उनका भाषण सुनकर मुग्ध हो जाते थे।

पूना में राष्ट्रीय सभा का उत्सव था। प्रभु सेवक को निमंत्रण मिला। तुरंत इन्द्रदत्त को अपना कार्य-भार सौंपा, और दक्षिण के प्रदेशों में भ्रमण करने का इरादा करके चले। पूना में उनके स्वागत की खूब तैयारियां की गई थीं। यह नगर सेवक-दल का एक केंद्र भी था, और यहां का नायक एक बड़े जीवट का आदमी था, जिसने बर्लिन में इंजीनियरी की उपाधि प्राप्त की थी, और तीन वर्ष के लिए इस दल में सम्मिलित हो गया था। उसका नगर में बड़ा प्रभाव था। वह अपने दल के सदस्यों के लिए स्टेशन पर खड़ा था। प्रभु सेवक का हृदय यह समारोह देखकर प्रफुल्लित हो गया। उनके मन ने कहा—'यह मेरे नेतृत्व का प्रभाव है। यह उत्साह, यह निर्भीकता, यह जागृति इनमें कहां थी? मैंने ही इसका संचार किया। अब आशा होती है कि जिंदा रहा, तो कुछ-न-कुछ कर दिखाऊंगा।' हा अभिमान !

संध्या-समय विशाल पंडाल में जब वह मंच पर खड़े हुए, तो कई हजार श्रोताओं को अपनी ओर श्रद्धा-पूर्ण नेत्रों से ताकते देखकर उनका हृदय पुलकित हो उठा। गैलरी में योरपियन महिलाएं भी उपस्थित थीं। प्रांत के गवर्नर महोदय भी आए हुए थे। जिसकी कलम में यह जादू है, उसकी वाणी में क्या कुछ चमत्कार न होगा। सब यही देखना चाहते थे।

प्रभु सेवक का व्याख्यान शुरू हुआ। किसी को उनका परिचय कराने की जरूरत न थी। राजनीति की दार्शनिक मीमांसा करने लगे। राजनीति क्या है? उसकी आवश्यकता क्यों है? उसके पालन क. क्या विधान है? किन दशाओं में उसकी अवज्ञा करना प्रजा का धर्म हो जाता है? उसके गुण-दोष क्या हैं? उन्होंने बड़ी विद्वता और अत्यंत निर्भीकता के साथ इन प्रश्नों की व्याख्या की। ऐसे जटिल और गहन विषय को अगर कोई सरल, बोधगम्य और मनोरंजक बना सकता था, तो वह प्रभु सेवक थे। लेकिन राजनीति भी संसार की उन महत्त्वपूर्ण वस्तुओं में है, जो विश्लेषण और विवेचन की आंच नहीं सह सकती। उसका विवेचन उसके लिए घातक है, उस अज्ञान का परदा पड़ा रहना ही अच्छा है। प्रभु सेवक ने परदा उठा दिया—सेनाओं के परे आंखों से अदृश्य हो गए, न्यायालय के विशाल भवन जमीन पर गिर पड़े, प्रभुत्व और ऐश्वर्य के चिह्न मिटने लगे, सामने मोटे और उज्ज्वल अक्षरों में लिखा हुआ था—'सर्वोत्तम राजनीति राजनीति का अंत है।' लेकिन ज्योंही उनके मुख से ये शब्द निकले—हमारा देश राजनीति-शून्य है। परवशता और आज्ञाकारिता में सीमाओं का अंतर है। त्योंही सामने से पिस्तौल छूटने की आवाज आई, और गोली प्रभु सेवक के कान के पास से निकलकर पीछे की दीवार में लगी। रात का समय था; कुछ पता न चला, किसने यह आघात किया। संदेह हुआ, किसी योरपियन की शरारत है। लोग गैलरियों की ओर दौड़े। सहसा प्रभु सेवक ने उच्च स्वर में कहा—मैं उस प्राणी को क्षमा करता हूं, जिसने मुझ पर आघात किया है। उसका जी चाहे, तो वह फिर मुझ पर निशाना मार सकता है। मेरा पक्ष लेकर किसी को इसका प्रतिकार करने का अधिकार नहीं है। मैं अपने विचारों का प्रचार करने आया हूं, आघातों का प्रत्याघात करने के लिए नहीं।

एक ओर से आवाज आई—यह राजनीति की आवश्यकता का उज्ज्वल प्रमाण है।

सभा उठ गई। योरपियन लोग पीछे के द्वार से निकल गए। बाहर सशस्त्र पुलिस आ पहुंची थी।

दूसरे दिन संध्या को प्रभु सेवक के नाम तार आया—सेवकदल की प्रबंधकारिणी समिति आपके व्याख्यान को नापसंद करती है, और अनुरोध करती है कि आप लौट आएं, वरना यह

आपके व्याख्यानों की उत्तरदायी न होगी।

प्रभु सेवक ने तार के कागज को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला, और उसे पैरों से कुचलते हुए आप-ही-आप बोले—धूर्त, कायर, रंगा हुआ सियार, राष्ट्रीयता का दम भरता है, जाति की सेवा करेगा। एक व्याख्यान ने कायापलट कर दी। उंगली में लहू लगाकर शहीदों में नाम लिखाना चाहता है। जाति-सेवा को बच्चों का खेल समझ रखा है। यह बच्चों का खेल नहीं है, सांप के मुंह में उंगली डालनी है, शेर से पंजा लेना हैं। यदि अपने और ही अपनी संपत्ति इतनी ही प्यारी है, तो यह स्वांग क्यों भरते हो? जाओ, तुम-जैसे देशभक्तों के बगैर देश की कोई हानि नहीं।

उन्होंने उसी वक्त तार का जवाब दिया—मैं प्रबंधकारिणी समिति के अधीन रहना अपने लिए अपमानजनक समझता हूं। मेरा उससे कोई संबंध नहीं है।

आध घंटे के बाद दूसरा पत्र आया। इस पर सरकारी मुहर थी—

माई डियर सेवक

मैं नहीं कह सकता कि कल आपका व्याख्यान सुनकर मुझे कितना लाभ और आनंद प्राप्त हुआ। मैं यह अत्युक्ति के भाव से नहीं कहता कि राजनीति की ऐसी विद्वतापूर्ण और तात्त्विक मीमांसा आज तक मैंने कहीं न सुनी थी। नियमों ने मेरी जबान बंद कर रखी है, लेकिन मैं आपके भावों और विचारों का आदर करता हूं, और ईश्वर से प्रार्थना करता हूं क्ि वह दिन जल्द आए, जब हम राजनीति का मर्म समझें, और उसके सर्वोच्च सिद्धांतों का पालन कर सकें। केवल एक ही ऐसा व्यक्ति है, जिसे आपकी स्पष्ट बातें असह्य हुईं, और मुझे बड़े दु:ख और लज्जा के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि वह व्यक्ति योरपियन है। मैं योरपियन समाज की ओर से इस कायरतापूर्ण और अमानुषीय आघात पर शोक और घृणा प्रकट करता हूं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि समस्त योरपियन समाज को आपसे हार्दिक सहानुभूति है। यदि मैं उस नर-पिशाच का पता लगाने में सफल हुआ (उसका कल से पता नहीं है), तो आपको इसकी सूचना देने में मुझसे अधिक आनंद और किसी को न होगा।

आपका

एफ० विल्सन।

प्रभु सेवक ने इस पत्र को दुबारा पढ़ा। उनके हृदय में गुदगुदी-सी होने लगी। बड़ी सावधानी से उसे अपने संदूक में रख दिया। कोई और वहां होता, तो जरूर पढ़कर सुनाते। वह गर्वोन्मत्त होकर कमरे में टहलने लगे। यह है जीवित जातियों की उदारता, विशाल-हृदयता, गुणग्राहकता। उन्होंने स्वाधीनता का आनंद उठाया है, स्वाधीनता के लिए बलिदान किए हैं, और इसका महत्त्व जानते हैं। जिसका समस्त जीवन खुशामद और मुखापेक्षा में गुजरा हो, वह स्वाधीनता का महत्त्व क्या समझ सकता है! मरने के दिन सिर पर आ जाते हैं, तो हम कितने ईश्वर-भक्त बन जाते हैं। भरतसिंह भी उसी तरफ गए होते, अब तक राम-नाम का जप करते होते, वह तो विनय ने इधर फेर लिया। यह उन्हीं का प्रभाव था। विनय! इस अवसर पर तुम्हारी जरूरत है, बड़ी जरूरत है, तुम कहां हो? आकर देखो, तुम्हारी बोई हुई खेती का क्या हाल है। उसके रक्षक उसके भक्षक बने जा रहे हैं।

अड़तीस

सोफिया और विनय रात-भर तो स्टेशन पर पड़े रहे। सबेरे समीप के गांव में गए, जो भीलों की एक छोटी-सी बस्ती थी। सोफिया को यह स्थान बहुत पंसद आया। बस्ती के सिर पर पहाड़ का साया था, पैरों के नीचे एक पहाड़ी नाला मीठा राग गाता हुआ बहता था। भीलों के छोटे-छोटे झोपड़े, जिन पर बेलें फैली हुई थीं, अप्सराओं के खिलौनों की भाँति सुंदर लगते थे। जब तक कुछ निश्चय न हो जाए कि क्या करना है, कहां जाना है, कहां रहना है, तब तक उन्होंने उसी गांव में निवास करने का इरादा किया। एक झोपड़े में जगह भी आसानी से मिल गई। भीलों का आतिथ्य प्रसिद्ध है, और ये दोनों प्राणी भूख-प्यास, गरमी-सरदी सहने के अभ्यस्त थे। जो कुछ मोटा-झोटा मयस्सर हुआ, खा लिया, चाय और मक्खन, मुरब्बे और मेवों का चस्का न था। सरल और सात्त्विक जीवन उनका आदर्श था। यहां उन्हें कोई कष्ट न हुआ। इस झोपड़े में केवल एक भीलनी रहती थी। उसका लड़का कहीं फौज में नौकर था। बुढ़िया इन लोगों की सेवा-टहल सहर्ष कर देती। यहां इन लोगों ने मशहूर किया कि हम दिल्ली के रहने वाले हैं, जलवायु बदलने आए हैं। गांव के लोग उनका बड़ा अदब और लिहाज करते थे।

किंतु इतना एकांत और इतनी स्वाधीनता होने पर भी दोनों एक दूसरे से बहुत कम मिलते। दोनों ही न-जाने क्यों सशंक रहते थे। उनमें मनोमालिन्य न था, दोनों प्रेम में डूबे हुए थे। दोनों उद्विग्न थे, दोनों विकल, दोनों अधीर, किंतु नैतिक बंधनों की दृढ़ता उन्हें मिलने न देती। तात्त्विक धर्म-निरूपण ने सोफिया को सांप्रदायिक संकीर्णताओं से मुक्त कर दिया था। उसकी दृष्टि में भिन्न-भिन्न मत केवल एक ही सत्य के भिन्न-भिन्न नाम थे। उसे अब किसी से द्वेष न था, किसी से विरोध न था। जिस अशांति ने कई महीनों तक उसके धर्म-सिद्धांतों को कुंठित कर रखा था, वह विलुप्त हो गई थी। अब प्राणिमात्र उसके लिए अपना था। और, यद्यपि विनय के विचार इतने उदार न थे, संसार की प्रेम-ममता उनके लिए एक दार्शनिक वाद से अधिक मूल्य न रखती थी; किंतु सोफिया की उदारता के सामने उनकी परंपरागत समाज-व्यवस्थाएं मुंह छिपाती फिरती थीं। वास्तव में दोनों का आत्मिक संयोग हो चुका था, और भौतिक संयोग में भी कोई वास्तविक बाधा न थी। किंतु यह सब होते हुए भी दोनों पृथक् रहते, एकांत में साथ कभी न बैठते। उन्हें अब अपने ही से शंका होती थी। वचन का काल समाप्त हो चुका था, लेख का समय आ गया था। वचन से जबान नहीं कटती। लेख से हाथ कट जाता है।

लेकिन लेख से हाथ चाहे कट जायं, इसके बिना कोई बात पक्की नहीं होती। थोड़ा-सा मतभेद, जरा-सा असंयम समझौते को रद्द कर सकता है। इसलिए दोनों ही अनिश्चित दशा का अंत कर देना चाहते थे। कैसे करें, यह समझ में नहीं आता था। कौन इस प्रसंग को छेड़े? कदाचित् बातों में कोई आपत्ति खड़ी हो जाए। सोफिया के लिए विनय का सामीप्य काफी था। वह उन्हें नित्य आंखों से देखती थी, उनके हर्ष और अमर्ष में सम्मिलित होती थी, उन्हें अपना समझती थी। इससे अधिक वह कुछ न चाहती थी। विनय रोज आसपास के देहातों में विचरने चले जाते थे, कोई स्त्री उनसे अपने परदेसी पुत्र या पति के नाम पत्र लिखाती, कहीं रोगियों को दवा देते, कहीं पारस्परिक कलहों में मध्यस्थ बनना पड़ता। भोर के गए पहर रात को लौटते। यह उनकी

नित्य की दिनचर्या थी। सोफिया चिराग जलाए उनकी बाट देखा करती। जब वह आ जाते, तो उनके हाथ-पैर धुलवाकर भोजन कराती, दिन-भर की कथा प्रेम से सुनती, और तब दोनों अपनी-अपनी कोठरियों में सोने चले जाते। वहां विनय को अपना घास का बिछौना बिछा हुआ मिलता। सिरहाने पानी की हांडी रखी होती। सोफिया इतने ही में संतुष्ट थी। अगर उसे विश्वास हो जाता कि मेरा संपूर्ण जीवन इसी भांति कट जाएगा, तो वह अपना अहोभाग्य समझती। यही उसके जीवन का मधुर स्वप्न था। लेकिन विनय इतने धैर्यशील, इतने विरागी न थे। उनको केवल आध्यात्मिक संयोग से संतोष न होता था। सोफिया का अनुपम सौंदर्य, उसकी स्वर्गोपम वचन-माधुरी, उसका विलक्षण अंग-विन्यास उनकी शृंगारमयी कल्पना को विकल करता रहता था। उन्होंने कुचक्रों में पड़कर एक बार उसे खो दिया था। अब दुबारा उस परीक्षा में न पड़ना चाहते थे। जब तक इसकी संभावना उपस्थित थी, उनके चित्त को कभी शांति न हो सकती थी।

ये लोग रेलवे स्टेशन के पते से अपने नाम पत्र-पत्रिकाएं, पुस्तकें आदि मंगा लिया करते थे। उनसे संसार की प्रगति का बोध हो जाता था। भीलों से उनको कुछ प्रेम-सा भी हो गया था। यहां से कहीं और चले जाने की उन्हें इच्छा न होती थी। दोनों को शंका थी कि इस सुरक्षित स्थान से निकलकर हमारी न-जाने क्या दशा हो जाए, न जाने हम किस भंवर में जा पड़ें। इस शांति-कुटीर को दोनों ही गनीमत समझते थे। सोफिया को विनय पर विश्वास था। वह अपनी आकर्षण-शक्ति से परिचित थी। विनय को सोफिया पर विश्वास न था। वह अपनी आकर्षण-शक्ति से अनभिज्ञ थे।

इस तरह एक साल गुजर गया। सोफिया विनय को जलपान कराकर अंगीठी के सामने बैठी एक किताब देख रही थी। कभी मार्मिक स्थलों पर पेंसिल से X निशान करती, कभी प्रश्न-चिह्न बनाती, कहीं लकीर खींचती। विनय को शंका हो रही थी कि कहीं यह तल्लीनता प्रेम-शैथिल्य का लक्षण तो नहीं है? पढ़ने में ऐसी मग्न है कि ताकती तक नहीं। कपड़े पहने, बाहर जाना चाहते थे। ठंडी हवा चल रही थी। जाड़े के कपड़े थे ही नहीं। कंबल काफी न था। अलसाकर अंगीठी के पास आए, और मांची पर बैठ गए। सोफिया की आंखें किताब में गड़ी हुई थीं। विनय की लालसा-युक्त दृष्टि अवसर पाकर निर्विघ्न रूप से उसके रूप-लावण्य की छटा देखने लगी। सहसा सोफिया ने सिर उठाया, तो विनय को सचेष्ट नेत्रों से अपनी ओर ताकते पाया। लजाकर आंखें नीची कर लीं, और बोली—आज तो बड़ी सरदी है, कहां जाओगे। बैठो, तुम्हें इस पुस्तक के कुछ भाग सुनाऊं। बहुत ही सुपाठ्य पुस्तक है। यह कहकर उसने आंगन की ओर देखा, भीलनी गायब थी। शायद लकड़ी बटोरने चली गई थी। अब दस बजे के पहले न आएगी। सोफिया कुछ चिंतित-सी हो गई।

विनय ने उत्सुकता के साथ कहा—नहीं सोफी, आज कहीं न जाऊंगा। तुमसे कुछ बातें करने को जी चाहता है। किताब बंद करके रख दो। तुम्हारे साथ रहकर भी तुमसे बातें करने को तरसता रहता हूं।

यह कहकर उन्होंने सोफिया के हाथों से किताब छीन लेने की चेष्टा की। सोफिया किताब को दृढ़ता से पकड़कर बोली—ठहरो-ठहरो, क्या करते हो। अब यही शरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। बैठो, इस फ्रेंच फ़िलॉसफर के विचार सुनाऊं। देखो, उसने कितनी विशाल हृदयता से धार्मिक निरूपण किया है।

विनय—नहीं, दस मिनट के लिए तुम इस फिलॉसफर से अवकाश मांग लो और मेरी ये बातें सुन लो, जो किसी पिंजर-बद्ध पक्षी की भांति बाहर निकलने के लिए तड़फड़ा रही हैं। आखिर मेरे इस वनवास की कोई अवधि है, या सदैव जीवन के सुख-स्वप्न ही देखता रहूंगा?

सोफिया—इस लेखक के विचार उस जवाब से कहीं मनोरंजक हैं, जो मैं तुम्हें दे सकती हूं। मुझे इन पर कई शंकाएं हैं। संभव है, विचार-परिवर्तन से उनकी निवृत्ति हो जाए।

विनय—नहीं, यह किताब बंद करके रख दो। आज मैं समर के लिए कमर कसकर आया हूं। आज तुमसे वचन लिए बिना तुम्हारा दामन न छोड़ूंगा। क्या अब भी मेरी परीक्षा कर रही हो?

सोफिया ने किताब बंद करके रख दी, और प्रेम-गंभीर भाव से बोली—मैंने तो अपने को तुम्हारे चरणों पर डाल दिया, अब और मुझसे क्या चाहते हो?

विनय—अगर मैं देवता होता, तो तुम्हारी प्रेमोपासना से संतुष्ट हो जाता, लेकिन मैं भी तो इच्छाओं का दास, क्षुद्र मनुष्य हूं। मैंने जो कुछ पाया है, उससे संतुष्ट नहीं हूं। मैं और चाहता हूं, सब चाहता हूं। क्या अब भी तुम मेरा आशय नहीं समझीं? मैं पक्षी को अपनी मुंडेर पर बैठे देखकर संतुष्ट नहीं, उसे अपने पिंजड़े में जाते देखना चाहता हूं। क्या और भी स्पष्ट रूप से कहूं? मैं सर्वभोगी हूं, केवल सुगंध से मेरी तृप्ति नहीं होती।

सोफिया—विनय, मुझे अभी विवश न करो, मैं तुम्हारी हूं। मैं इस वक्त यह बात जितने शुद्ध भाव और निष्कपट हृदय से कह रही हूं, उससे अधिक किसी मंदिर में, कलीसा में या हवन-कुंड के सामने नहीं कह सकती। जिस समय मैंने तुम्हारा तिरस्कार किया था, उस समय भी तुम्हारी थी। लेकिन क्षमा करना, मैं कभी कोई ऐसा कर्म न करूंगी, जिससे तुम्हारा अपमान, तुम्हारी अप्रतिष्ठा अथवा तुम्हारी निंदा हो। मेरा यह संयम अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए है। आत्मिक मिलाप के लिए कोई बाधा नहीं होती, पर सामाजिक संस्कारों के लिए अपने संबंधियों और समाज के नियमों की स्वीकृति अनिवार्य है, अन्यथा वे लज्जास्पद हो जाते हैं। मेरी आत्मा मुझे कभी क्षमा न करेगी, अगर मेरे कारण तुम अपने माता-पिता, विशेषतः अपनी पूज्य माता, के कोप-भाजन बनो, और वे मेरे साथ तुम्हें भी कुल-कलंक समझने लगें। मैं कल्पना भी नहीं कर सकती कि इस अवज्ञा के लिए रानीजी तुम्हें, और विशेषकार मुझे, क्या दंड देंगी। वह सती हैं, देवी हैं, उनका क्रोध न जाने क्या अनर्थ करे। मैं उनकी दृष्टि में कितनी पतित हूं, इसका मुझे अनुभव हो चुका है, और तुम्हें भी उन्होंने कठोर-से-कठोर दंड दे दिया, जो उनके वश में था। ऐसी दशा में जब उन्हें ज्ञात होगा कि मैं और तुम केवल प्रेम के सूत्र में नहीं, संस्कारों के सूत्र में बंधे हुए हैं, तो आश्चर्य नहीं कि वह क्रोधावेश में आत्महत्या कर लें। संभव है, इस समय तुम उन समस्त विघ्न-बाधाओं को अंगीकार करने को तैयार हो जाओ, लेकिन मैं बाह्य संस्कारों को इतने महत्त्व की वस्तु नहीं समझती।

विनय ने उदास होकर कहा—सोफी, इसका आशय इसके सिवा और क्या है कि मेरा जीवन सुख-स्वप्न देखने में ही कट जाए।

सोफी—नहीं विनय, मैं इतनी हताश नहीं हूं। मुझे अब भी आशा है कि कभी-न-कभी रानीजी से तुम्हारा और अपना अपराध क्षमा करा लूंगी, और तब उनके आशीर्वादों के साथ हम

दांपत्यक्षेत्र में प्रवेश करेंगे। रानीजी की कृपा और अकृपा, दोनों ही सीमागत रहती हैं। एक सीमा का अनुभव हम कर चुके। ईश्वर ने चाहा, तो दूसरी सीमा का भी जल्द ही अनुभव होगा। मैं तुमसे सविनय अनुरोध करती हूं कि अब इस प्रसंग को फिर मत उठाना, अन्यथा मुझे कोई दूसरा रक्षा-स्थान खोजना पड़ेगा।

विनय ने धीरे से कहा—वह दिन तब आएगा, जब या तो अम्मांजी न होंगी या मैं न रहूंगा।

तब उन्होंने कंबल ओढ़ा, हाथ में लकड़ी ली, और बाहर चले गए, जैसे कोई किसान महाजन की फटकार सुनकर उसके घर से बाहर निकले।

फिर पूर्ववत् दिन कटने लगे। विनय बहुत मलिन और खिन्न रहते। यथासंभव घर से बाहर ही विचरा करते, आते भी तो भोजन करके चले जाते। कहीं जाना न होता, तो नदी के तट पर जा बैठते, और घंटों जलक्रीड़ा देखा करते। कभी कागज की नावें बनाकर उसमें तैराते और उनके पीछे-पीछे वहां तक जाते, जहां वे जलमग्न हो जातीं। उन्हें अब भ्रम होने लगा था कि सोफिया को अब भी मुझ पर विश्वास नहीं है। वह मुझसे प्रेम करती है, लेकिन मेरे नैतिक बल पर उसे संदेह है।

एक दिन वह नदी के किनारे बैठे हुए थे कि बुढ़िया भीलनी पानी भरने आई। उन्हें वहां बैठे देखकर उसने घड़ा रख दिया, और बोली—क्यों मालिक, तुम यहां अकेले क्यों बैठे हो? घर में मालकिन घबराती न होंगी? मैं उन्हें बहुत रोते देखा करती हूं। क्या तुमने उन्हें कुछ कहा है क्या? क्या बात है कि कभी तुम दोनों को बैठकर हंसते-बोलते नहीं देखती?

विनय ने कहा—क्या करूं माता, उन्हें यही तो बीमारी है कि मुझसे रूठी रहती हैं। बरसों से उन्हें यही बीमारी हो गई है।

भीलनी—तो बेटा, इसका उपाय मैं कर दूंगी। ऐसी जड़ी दे दूं कि तुम्हारे बिना उन्हें छिन-भर भी चैन न आए।

विनय—क्या, क्या ऐसी जड़ी भी होती है?

बुढ़िया ने सरल विज्ञता से कहा—बेटा, जड़ियां तो ऐसी-ऐसी होती हैं कि चाहे आग बांध लो, पानी बांध लो, मुरदे को जिला दो, मुद्दई को घर बैठे मार डालो। हां, जानना चाहिए तुम्हारा भील बड़ा गुनी था। राजा के दरबार में आया-जाया करता था। उसी ने मुझे दो-चार बूटियां बता दी थीं। बेटा, एक-एक बूटी एक-एक लाख को सस्ती है।

विनय—तो मेरे पास इतने रुपये कहां हैं?

भीलनी—नहीं बेटा, तुमसे मैं क्या लूंगी। तुम बिसुनाथपुरी के निवासी हो। तुम्हारे दरसन पा गई, यही मेरे लिए बहुत है। वहां जाकर मेरे लिए थोड़ा-सा गंगाजल भेज देना। बुढ़िया तर जाएगी। तुमने मुझसे पहले न कहा, नहीं तो मैंने वह जड़ी तुम्हें दे दी होती। तुम्हारी अनबन देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है।

संध्या समय, जब सोफिया बैठी भोजन बना रही थी, भीलनी ने एक जड़ी लाकर विनयसिंह को दी, और बोली—बेटा, बड़े जतन से रखना, लाख रुपये दोगे, तब भी न मिलेगी। अब तो यह विद्या ही उठ गई। इसको अपने लहू में पंद्रह दिन तक रोज भिगोकर सुखाओ। तब इसमें से एक-एक रत्ती काटकर मालकिन को धूनी दो। पंद्रह दिन के बाद जो बच रहे, वह उनके जूड़े में बांध दो। देखो, क्या होता है। भगवान् चाहेंगे, तो तुम आप ही उनसे ऊबने लगोगे। वह परछाईं की भांति तुम्हारे पीछे लगी रहेंगी। फिर उसने विनय के कान में मंत्र बताया, कई निरर्थक

शब्दों का संग्रह था, और कहा कि जड़ी को लहू में डुबाते समय यह मंत्र पांच बार पढ़कर जड़ी पर फूंक देना।

विनयसिंह मिथ्यावादी न थे, मंत्र-तंत्र पर उनका अणु-मात्र भी विश्वास न था। लेकिन सुनी-सुनाई बातों से उन्हें यह मालूम था कि निम्न जातियों में ऐसी तांत्रिक क्रियाओं का बड़ा प्रचार है, और कभी-कभी इनका विस्मयजनक फल भी होता है। उनका अनुमान था कि क्रियाओं में स्वयं कोई शक्ति नहीं, अगर कुछ फल होता है, तो वह मूर्खों के दुर्बल मस्तिष्क के कारण। शिक्षित प्राणियों पर, जो प्राय: शंकावादी होते हैं, जो ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करते, भला इनका क्या असर हो सकता है! तो भी उन्होंने यह सिद्धि प्राप्त करने का निश्चय किया। उन्हें उससे किसी फल की आशा न थी, केवल उसकी परीक्षा लेना चाहते थे।

लेकिन कहीं सचमुच इस जड़ी में कुछ चमत्कार हो, तो फिर क्या पूछना। इस कल्पना ही से उनका हृदय पुलकित हो उठा। सोफिया मेरी हो जाएगी। तब उसके प्रेम में और ही बात होगी उसके रक्षक उसके भक्षक बने जा रहे हैं।

ज्योंही मंगल का दिन आया, वह नदी पर गए, स्नान किया और चाकू से अपनी एक उंगली काटकर उसके रक्त में जड़ी को भिगोया, और तब उसे एक ऊंची चट्टान पर पत्थरों से ढककर रख आए। पंद्रह दिन तक लगातार यही क्रिया करते रहे। ठंड ऐसी पड़ती थी कि हाथ-पांव गले जाते थे, बरतनों में पानी जम जाता था। लेकिन विनय नित्य स्नान करने जाते। सोफिया ने उन्हें इतना कर्मनिष्ठ न देखा था। कहती, इतने सबेरे न नहाओ, कहीं सरदी न लग जाए, जंगली आदमी भी दिन-भर अंगीठियां जलाए बैठे रहते हैं, बाहर मुंह नहीं निकाला जाता, जरा धूप निकल आने दिया करो। लेकिन विनय मुस्कराकर कह देते, बीमार पड़ूंगा, तो कम-से-कम तुम मेरे पास तो बैठोगी! उनकी कई उंगलियों में घाव हो गए, पर वह इन घावों को छिपाए रहते थे।

इन दिनों विनय की दृष्टि सोफिया की एक-एक बात, एक-एक गति पर लगी रहती थी। वह देखना चाहते थे कि मेरी क्रिया का कुछ असर हो रहा है या नहीं, किंतु कोई प्रत्यक्ष फल न दिखाई देता था। पंद्रहवें दिन जाकर उन्हें सोफिया के व्यवहार में कुछ थोड़ा-सा अंतर दिखाई पड़ा। शायद किसी और समय उनका इस ओर ध्यान भी न जाता, किंतु आजकल तो उनकी दृष्टि बहुत सूक्ष्म हो गई थी। जब घर से बाहर जाने लगे, तो सोफिया अज्ञात भाव से निकल आई, और कई फर्लांग तक उनसे बातें करती हुई चली गई। जब विनय ने बहुत आग्रह किया, तो लौटी। विनय ने समझा, यह उसी क्रिया का असर है।

आज से धूनी देने की क्रिया आरंभ होती थी। विनय बहुत चिंतित थे—यह क्रिया क्योंकर पूरी होगी। अकेले सोफी के कमरे में जाना सभ्यता, सज्जनता और शिष्टता के विरुद्ध है। कहीं सोफी जाग जाए और मुझे देख ले, तो मुझे कितना नीच समझेगी। कदाचित् सदैव के लिए मुझसे घृणा करने लगे। न भी जागे, तो भी यह कौन-सी भलमंसी है कि कोई आदमी किसी युवती के कमरे में प्रवेश करे। न-जाने वह किस दशा में लेटी होगी। संभव है, केश खुले हों, वस्त्र हट गया हो। उस समय मेरी मनोवृत्तियां कितनी कुचेष्ट हो जाएंगी। मेरा कितना नैतिक पतन हो गया है!

सारे दिन वह इन्हीं अशांतिमय विचारों में पड़े रहे, लेकिन संध्या होते ही वह कुम्हार

के घर से एक कच्चा प्याला लाए, और उसे हिफाजत से रख दिया। मानव-चरित्र की एक विचित्रता यह है कि हम बहुधा ऐसे काम कर डालते हैं, जिन्हें करने की हमें इच्छा नहीं होती। कोई गुप्त प्रेरणा हमें इच्छा के विरुद्ध ले जाती है।

आधी रात हुई, तो विनय प्याली में आग और हाथ में वह रक्त-सिंचित जड़ी लिए हुए सोफी की कोठरी के द्वार पर आए। कंबल का परदा पड़ा हुआ था। झोंपड़े में किवाड़ कहां! कंबल के पास खड़े होकर उन्होंने कान लगाकर सुना। सोफी मीठी नींद सो रही थी। वह थरथर कांपते, पसीने से तर, अंदर घुसे। दीपक के मंद प्रकाश में सोफी निद्रा में मग्न लेटी हुई ऐसी मालूम होती थी, मानो मस्तिष्क में मधुर कल्पना विश्राम कर रही हो। विनय के हृदय पर आतंक-सा छा गया। कई मिनट तक मंत्र-मुग्ध-सा खड़ा रहा, पर अपने को संभाले हुए, मानो किसी देवी के मंदिर में है। उन्नत हृदयों में सौंदर्य उपासना-भाव को जागृत कर देता है, वासनाएं विश्रांत हो जाती हैं। विनय कुछ देर तक सोफी को भक्ति-भाव से देखता रहा। तब वह धीरे से बैठ गया, प्याले में जड़ी का एक टुकड़ा तोड़कर रख दिया, और उसे सोफिया के सिरहाने की ओर खिसका दिया। एक क्षण में जड़ी की सुगंध से सारा कमरा बस उठा। ऊद और अंबर में यह सुगंध कहां? धुएं में कुछ ऐसी उद्दीपन-शक्ति थी कि विनय का चित्त चंचल हो उठा। ज्योंही धुआं बंद हुआ, विनय ने प्याले से जड़ी की राख निकाल ली, भीलनी के आदेशानुसार उसे सोफिया पर छिड़क दिया, और बाहर निकल आए। लेकिन अपनी कोठरी में आकर वह घंटों बैठे पश्चात्ताप करते रहे। बार-बार अपने नैतिक भावों को चोट पहुंचाने की चेष्टा की। इस कृत्य को विश्वासघात, सतीत्व-हत्या कहकर मन में घृणा का संचार करना चाहा। सोते वक्त निश्चय किया कि बस, इस क्रिया का आज ही से अंत है। दूसरे दिन दिन-भर उनका हृदय खिन्न, मलिन, उद्विग्न रहा। ज्यों-ज्यों रात निकट आती थी, उन्हें शंका होती जाती थी कि कहीं मैं फिर यह क्रिया न करने लगूं। दो-तीन भीलों को बुला लाए, और उन्हें पास सुलाया। भोजन करने में बड़ी देर की, जिससे चारपाई पर पड़ते-ही-पड़ते नींद आ जाए। जब भोजन करके उठे, तो सोफी आकर उनके पास बैठ गई। यह पहला ही अवसर था कि वह रात को उनके पास बैठी थी। वह बहुत देर तक उनके पास बैठी बातें करती रही। आज के समाचार-पत्रों में प्रभु सेवक की पूना में दी हुई वक्तृता प्रकाशित हुई थी। सोफी ने उसे उच्च स्वर में पढ़ा। गर्व से उसका सिर ऊंचा हो गया, बोली—देखो, कितना विलासप्रिय आदमी था, जिसे सदैव अच्छे वस्त्रों और अन्य सुख-सामग्रियों की धुन सवार रहती थी। उसकी कितनी कायापलट हुई है। मैं समझती थी, इससे कभी कुछ न होगा, आत्मसेवन में ही इसका जीवन व्यतीत होगा। मानव-हृदय के रहस्य कितने दुर्बोध होते हैं। उसका यह त्याग और अनुराग देखकर आश्चर्य होता है।

विनय—जब प्रभु सेवक इस संस्था के कर्णधार हो गए, तो मुझे कोई चिंता नहीं है। डॉक्टर गांगुली उसे दवा बांटने वालों की मंडली बनाकर छोड़ते। पिताजी पर मेरा विश्वास नहीं है, और इन्द्रदत्त तो बिल्कुल उजड्ड है। प्रभु सेवक से ज्यादा योग्य पुरुष न मिल सकता था। वह यहां होते, तो बलाएं लेता। यह दैवी सहायता है, और अब मुझे आशा होती है कि हमारी साधना निष्फल न होगी।

भीलों के खर्राटों की आवाजें आने लगीं। सोफी चलने को उठी, तो उसने विनय को ऐसी चितवनों से देखा, जिसमें प्रेम के सिवा और भी कुछ था—आर्द्र आकांक्षा झलक रही थी। एक

आकर्षण था, जिसने विनय को सिर से पैर तक हिला दिया। जब वह चली गई, तो उन्होंने एक पुस्तक उठा ली, और पढ़ने लगे। लेकिन ज्यों-ज्यों क्रिया का समय आता था, उनका दिल बैठा जाता था। ऐसा जान पड़ता था, कोई जबरदस्ती उन्हें ठेल रहा है। जब उन्हें यकीन हो गया कि सोफिया सो गई होगी, तो वह धीरे से उठे, प्याले में आग ली और चले। आज वह कल से भी ज्यादा भयभीत हो रहे थे। एक बार जी में आया कि प्याले को पटक दूं। लेकिन इसके एक ही क्षण बाद उन्होंने सोफी के कमरे में कदम रखा। आज उन्होंने आंखें ऊपर उठाईं ही नहीं। सिर नीचा किए धूनी सुलगाई, और राख छिड़ककर चले आए। चलती बार उन्होंने सोफिया का मुख-चंद्र देखा। ऐसा भासित हुआ कि वह मुस्करा रही है। कलेजा धक-से हो गया। सारे शरीर में सनसनी-सी दौड़ गई। ईश्वर! अब लाज तुम्हारे हाथ, इसने देख न लिया हो! विद्युत्गति से अपनी कोठरी में आए, दीपक बुझा दिया, और चारपाई पर गिर पड़े। घंटों कलेजा धड़कता रहा।

इस भांति पांच दिनों तक विनय ने बड़ी कठिनाइयों से यह साधना की, और इतने ही दिनों में उन्हें सोफिया पर इसका असर साफ नजर आने लगा। यहां तक कि पांचवें दिन वह दोपहर तक उनके साथ भीलों की झोपड़ियों की सैर करती रही। उसके नेत्रों में गंभीर चिंता की जगह अब एक लालसापूर्ण चंचलता झलकती थी, और अधरों पर मधुर हास्य की आभा। आज रात को भोजन के उपरांत वह उनके पास बैठकर समाचार-पत्र पढ़ने लगी, और पढ़ते-पढ़ते उसने अपना सिर विनय की गोद में रख दिया, और उनके हाथों को अपने हाथों में लेकर बोली—सच बताओ विनय, एक बात तुमसे पूछूं, बताओगे न? सच बताना, तुम यह तो नहीं चाहते कि यह बला सिर से टल जाए? मैं कहे देती हूं, जीते जी न टलूंगी, न तुम्हें छोड़ूंगी, तुम भी मुझसे भागकर नहीं जा सकते। किसी तरह न जाने दूंगी, जहां जाओगे मैं भी चलूंगी, तुम्हारे गले का हार बनी रहूंगी।

यह कहते-कहते उसने विनय के हाथ छोड़ दिए, और उनके गले में बांहें डाल दीं।

विनय को ऐसा मालूम हुआ कि मेरे पैर उखड़ गए हैं, और मैं लहरों में बहा जा रहा हूं। एक विचित्र आशंका से उनका हृदय कांप उठा, मानो उन्होंने खेल में सिंहिनी को जगा दिया हो। उन्होंने अज्ञात भाव से सोफी के कर-पाश से अपने को मुक्त कर लिया, और बोले—सोफ़ी!

सोफी चौंक पड़ी, मानो निद्रा में हो। फिर उठकर बैठ गई, और बोली—मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि मैं पूर्व-जन्म में, उससे पहले भी, आदि से तुम्हारी हूं, कुछ स्वप्न-सा याद आता है कि हम और तुम किसी नदी के किनारे एक झोपड़े में रहते थे। सच!

विनय ने सशंक होकर कहा—तुम्हारा जी कैसा है?

सोफी—मुझे कुछ हुआ थोड़े ही है, मैं तो अपने पूर्व जन्म की बात याद कर रही हूं। मुझे ऐसा याद आता है कि तुम मुझे झोपड़ी में अकेली छोड़कर अपनी नाव पर कहीं परदेस चले गए थे, और मैं नित्य नदी के तीर पर बैठी हुई तुम्हारी राह देखती रहती थी, पर तुम न आते थे।

विनय—सोफिया, मुझे भय हो रहा है कि तुम्हारा जी अच्छा नहीं है। रात बहुत हो गई है, अब सो जाओ।

सोफी—मेरा तो आज यहां से जाने को जी ही नहीं चाहता। क्या तुम्हें नींद आ रही है? तो सोओ, मैं बैठी हूं, जब तुम सो जाओगे, मैं चली जाऊंगी।

एक क्षण के बाद फिर बोली—मुझे न-जाने क्यों संशय हो रहा है कि तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे। सच बताओ, क्या तुम मुझे अकेले छोड़ जाओगे?

विनय—सोफी, अब हम अनंत काल तक अलग न होंगे।

सोफी—तुम इतने निर्दय नहीं हो, मैं जानती हूं। मैं रानीजी से न डरूंगी, साफ-साफ कह दूंगी, विनय मेरे हैं।

विनय की दशा उस भूखे आदमी की-सी थी, जिसके सामने परसी थाली रखी हुई हो, क्षुधा से चित्त व्याकुल हो रहा हो, आंतें सिकुड़ी जाती हों, आंखों में अंधेरा छा रहा हो; मगर थाली में हाथ न डाल सकता हो, इसलिए कि पहले किसी देवता का भोग लगना है। उन्हें अब इसमें कोई संदेह न रहा था कि सोफी की व्याकुलता उसी क्रिया का फल है। उन्हें विस्मय होता था कि उस जड़ी में ऐसी कौन-सी शक्ति है। वह अपने कृत्य पर लज्जित थे, पीड़ित थे. और सबसे अधिक भयभीत थे, आत्मा से नहीं, परमात्मा से भी नहीं, सोफी से। जब सोफी को ज्ञात हो जाएगा—कभी-न-कभी तो यह नशा उतरेगा ही—तब वह मुझसे इसका कारण पूछेगी, और मैं छिपा न सकूंगा। उस समय वह मुझे क्या कहेगी !

आखिर जब अंगीठी की आग ठंडी हो गई, और सोफी को सरदी मालूम होने लगी, तो सोफी चली गई। क्रिया का समय भी आ पहुंचा। लेकिन आज विनय को उसका साहस न हुआ। उन्हें उसकी परीक्षा ही करनी थी, परीक्षा हो गई और तांत्रिक साधनों पर उन्हें हमेशा के लिए श्रद्धा हो गई।

सोफिया को चारपाई पर लेटते ही ऐसा भ्रम हुआ कि रानी जाह्नवी सामने खड़ी ताक रही हैं। उसने कंबल से सिर निकालकर देखा, और तब अपनी मानसिक दुर्बलता पर झुंझलाकर सोचने लगी—आजकल मुझे क्या हो गया है? मुझे क्यों भांति-भांति के संशय होते रहते हैं? क्यों नित्य अनिष्ट-शंका हृदय पर छाई रहती है? जैसे मैं विचारहीन-सी हो गई हूं। विनय आजकल क्यों मुझसे खिंचे हुए हैं? कदाचित् वह डर रहे हैं कि रानीजी कहीं उन्हें शाप न दे दें, अथवा आत्मघात न कर लें। इनकी बातों में पहले की उत्सुकता, प्रेमातुरता नहीं है। रानी मेरे जीवन का सर्वनाश किए देती हैं।

इन्हीं अशांतिमय विचारों में डूबी हुई वह सो गई, तो देखती क्या है कि वास्तव में रानीजी मेरे सामने खड़ी क्रोधोन्मत्त नेत्रों से ताक रही हैं, और कह रही हैं—विनय मेरा है। वह मेरा पुत्र है, उसे मैंने जन्म दिया है, उसे मैंने पाला है, तू क्यों उसे मेरे हाथों से छीने लेती है? अगर तूने उसे मुझसे छीना, मेरे कुल को कलंकित किया, तो मैं तुम दोनों का इसी तलवार से वध कर दूंगी।

सोफी तलवार की चमक देखकर घबरा गई। चिल्ला उठी। नींद टूट गई। उसकी सारी देह तृणवत् कांप रही थी। वह दिल मजबूत करके उठी, और विनयसिंह की कोठरी में आकर उसके सीने से चिमट गई। विनय की आंखें लग ही रही थीं। चौंककर सिर उठाया।

सोफी—विनय, विनय, जागो मैं डर रही हूं।

विनय तुरंत चारपाई से उतरकर खड़े हो गए, और पूछा—क्या है सोफी?

सोफी—रानीजी को अभी-अभी मैंने अपने कमरे में देखा। अभी वहीं खड़ी हैं।

विनय—सोफी, शांत हो जाओ। तुमने कोई स्वप्न देखा है, डरने की कोई बात नहीं।

सोफी—स्वप्न नहीं था विनय, मैंने रानीजी को प्रत्यक्ष देखा।

विनय–वह यहां कैसे आ जाएंगी? हवा तो नहीं है !

सोफी–तुम इन बातों को नहीं जानते विनय ! प्रत्येक प्राणी के दो शरीर होते हैं–एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म। दोनों अनुरूप होते हैं, अंतर केवल इतना ही है कि सूक्ष्म शरीर स्थूल से कहीं सूक्ष्म होता है। वह साधारण दशाओं में अदृश्य रहता है, लेकिन समाधि या निद्रावस्था में स्थूल शरीर का स्थानापन्न बन जाता है। रानीजी का सूक्ष्म शरीर अवश्य यहां है।

दोनों ने बैठकर रात काटी।

सोफिया को अब विनय के बिना क्षण-भर भी चैन न आता। उसे केवल मानसिक अशांति न थी, ऐंद्रिक सुख-भोग के लिए भी उत्कंठित रहती। जिन विषयों की कल्पना-मात्र से उसे अरुचि थी, जिन बातों को याद करके ही उसके मुख पर लालिमा छा जाती थी, वही कल्पनाएं और वही भावनाएं अब नित्य उसके चित्त पर आच्छादित रहतीं। उसे अपनी वासना-लिप्सा पर आश्चर्य होता था। किंतु जब वह विलास कल्पना करते-करते उस क्षेत्र में प्रविष्ट होती, जो दांपत्य जीवन ही के लिए नियंत्रित हैं, तो रानीजी की वही क्रोध-तेज-पूर्ण मूर्ति उसके सम्मुख आकर खड़ी हो जाती, और वह चौंककर कमरे से निकल भागती। इस भांति उसने दस-बारह दिन काटे। कृपाण के नीचे खड़े अभियोगी की दशा भी इतनी चिंताजनक न होगी।

एक दिन वह घबराई हुई विनय के पास आई, और बोली–विनय, मैं बनारस जाऊंगी। मैं बड़े संकट में हूं। रानीजी मुझे यहां चैन न लेने देंगी। अगर यहां रही, तो शायद जीवन से हाथ धोना पड़े। मुझ पर अवश्य कोई-न-कोई अनुष्ठान किया गया है। मैं इतनी अव्यवस्थित-चित्त कभी न थी। मुझे स्वयं ऐसा मालूम होता है कि अब मैं वह हूं ही नहीं, कोई और ही हूं। मैं जाकर रानीजी के पैरों पर गिरूंगी, उनसे अपना अपराध क्षमा कराऊंगी, और उन्हीं की आज्ञा से तुम्हें प्राप्त करूंगी उनकी इच्छा के बगैर मैं तुम्हें नहीं पा सकती, और जबरदस्ती ले लूं, तो कुशल से न बीतेगी। विनय, मुझे स्वप्न में भी यह शंका न थी कि मैं तुम्हारे लिए इतनी अजीर्ण हो जाऊंगी। मेरा हृदय कभी इतना दुर्बल और इतना मोह-ग्रस्त न था।

विनय ने चिंतित होकर कहा–सोफी मुझे आशा है, कि थोड़े दिनों में तुम्हारा चित्त शांत हो जाएगा।

सोफी–नहीं विनय, कदापि नहीं। रानीजी ने तुम्हें एक महान् उद्देश्य के लिए बलि कर रखा है। बलि-जीवन का उपभोग अनिष्टकारक होता है। मैं उनसे भिक्षा मांगूंगी।

विनय–तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा।

सोफी–नहीं-नहीं, ईश्वर के लिए ऐसा मत कहो। मैं तुम्हें रानीजी के सामने न ले जाऊंगी। मुझे अकेले जाने दो।

विनय–इस दशा में मैं तुम्हें अकेले कभी न जाने दूंगा। अगर ऐसा ही है, तो मैं तुम्हें वहां छोड़कर वापस आ जाऊंगा।

सोफी–वचन दो कि बिना मुझसे पूछे रानीजी के पास न जाओगे।

विनय–हां सोफी, यह स्वीकार है। वचन देता हूं।

सोफी–फिर भी दिल नहीं मानता। डर लगता है, वहां तुम आवेश में आकर कहीं रानीजी के पास न चले जाओ। तुम यहीं क्यों नहीं रहते? मैं तुम्हें नित्यप्रति पत्र लिखा करूंगी, और

जल्द-से-जल्द लौट आऊंगी।

विनय ने उसे तस्कीन देने के लिए अकेले जाने की अनुमति दे दी, लेकिन उनका स्नेह-सिंचित हृदय यह कब मान सकता था कि सोफिया इस अव्यवस्थित दशा में इतनी लंबी यात्रा करे। सोचा, उसकी निगाह बचाकर किसी दूसरी गाड़ी में बैठ जाऊंगा। उन्हें लौटकर आने की बहुत कम आशा थी। भीलों ने सुना, तो भांति-भांति के उपहार लेकर बिदा करने आए। मृगचर्मों, बघनखों और नाना प्रकार की जड़ी-बूटियों का ढेर लग गया। एक भील ने धनुष भेंट किया। सोफी और विनय, दोनों ही को इस स्थान से प्रेम हो गया था। निवासियों का सरल, स्वाभाविक, निष्कपट जीवन उन्हें ऐसा भा गया था कि उन लोगों को छोड़कर जाते हुए हार्दिक वेदना होती थी। भीलगण खड़े रो रहे थे और कह रहे थे—जल्द आना, हमें भूल न जाना। बुढ़िया भीलनी तो उन्हें छोड़ती ही न थी। सब-के-सब स्टेशन तक उन्हें पहुंचाने आए। लेकिन जब गाड़ी आई, और वह बैठी, विनय से विदा होने का समय आया, तो वह विनय के गले से लिपटकर रोने लगी। विनय चाहते थे कि निकल जाएं, और किसी दूसरी गाड़ी में जा बैठें, पर वह उन्हें छोड़ती ही न थी। मानो यह अंतिम वियोग है। जब गाड़ी ने सीटी दी, तो वह हृदय वेदना से विकल होकर बोली—विनय, मुझसे इतने दिनों कैसे रहा जाएगा? रो-रोकर मर जाऊंगी। ईश्वर, मैं क्या करूं?

विनय—सोफी, घबराओ नहीं, मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।

सोफी—नहीं-नहीं, ईश्वर के लिए। मैं अकेली ही जाऊंगी।

विनय गाड़ी में आकर बैठ गया। गाड़ी रवाना हो गई। जरा देर के बाद सोफिया ने कहा—तुम न आते, तो मैं शायद घर तक न पहुंचती। मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा था कि प्राण निकले जा रहे हैं, सच बताना विनय, तुमने मुझ पर मोहिनी तो नहीं डाल दी है? मैं इतनी अधीर क्यों हो गई हूं?

विनय ने लज्जित होकर कहा—क्या जाने सोफी, मैंने एक क्रिया तो की है। नहीं कह सकता कि वह मोहिनी थी या कुछ और।

सोफी—सच !

विनय—हां, बिल्कुल सच ! मैं तुम्हारी प्रेम-शिथिलता से डर गया था कि कहीं तुम मुझे फिर न परीक्षा में डालो।

सोफी ने विनय की गरदन में हाथ डाल दिए और बोली—तुम बड़े छलिया हो। अपना जादू उतार लो, मुझे क्यों तड़पा रहे हो?

विनय—क्या कहूं, उतारना नहीं सीखा, यही तो भूल हुई।

सोफी—तो मुझे भी वही मंत्र क्यों नहीं सिखा देते? न मैं उतार सकूंगी, न तुम उतार सकोगे....(एक क्षण के बाद) लेकिन नहीं। मैं तुम्हें संज्ञाहीन न बनाऊंगी। दो में से एक को तो होश में रहना चाहिए। दोनों मदमत्त हो जाएंगे, तो अनर्थ हो जाएगा। अच्छा बताओ, कौन-सी क्रिया की थी?

विनय ने अपनी जेब से वह जड़ी निकालकर दिखाते हुए कहा—इसी की धूनी देता था।

सोफी—जब मैं सो जाती थी, तब?

विनय—(सकुचाते हुए) हां सोफी, तभी।

सोफी—तुम बड़े ढीठ हो। अच्छा अब यही जड़ी मुझे दे दो। तुम्हारा प्रेम शिथिल होते देखूंगी, तो मैं भी यही क्रिया करूंगी।

यह कहकर उसने जड़ी लेकर रख ली। थोड़ी देर के बाद उसने पूछा—यह तो बताओ, वहां तुम रहोगे कहां? मैं रानीजी के पास तुम्हें न जाने दूंगी !

विनय—अब मेरा कोई मित्र नहीं रहा। सभी मुझसे असंतुष्ट हो रहे होंगे। नायकराम के घर चला जाऊंगा। तुम वहीं आकर मुझसे मिल लिया करना। वह तो घर पहुंच ही गया होगा।

सोफिया—कहीं जाकर कह न दे !

विनय—नहीं, मंदबुद्धि है, पर विश्वासघाती नहीं।

सोफिया—अच्छी बात है। देखें, रानीजी से मुराद मिलती है या मौत !

उनतालीस

तीसरे दिन यात्रा समाप्त हो गई, तो संध्या हो चुकी थी। सोफिया और विनय, दोनों डरते हुए गाड़ी से उतरे कि कहीं किसी परिचित आदमी से भेंट न हो जाए। सोफिया ने सेवा-भवन (विनयसिंह का घर) चलने का विचार किया; लेकिन आज वह बहुत कातर हो रही थी, रानीजी न-जाने कैसे पेश आएं। वह पछता रही थी कि नाहक यहां आई, न जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े। अब उसे अपने ग्रामीण जीवन की याद आने लगी। कितनी शांति थी, कितना सरल जीवन था; न कोई विघ्न था, न बाधा, न किसी से द्वेष था, न मत्सर। विनयसिंह उसे तस्कीन देते हुए बोले—दिल मजबूत रखना, जरा भी मत डरना, सच्ची घटनाएं बयान करना, बिल्कुल सच्ची, तनिक भी अतिशयोक्ति न हो, जरा भी खुशामद न हो। दया-प्रार्थना का एक शब्द भी मुख से मत निकालना। मैं बातों को घटा-बढ़ाकर अपनी प्राण-रक्षा नहीं करना चाहता। न्याय और शुद्ध न्याय चाहता हूं। यदि वह तुमसे अशिष्टता का व्यवहार करें, कटु वचनों का प्रहार करने लगें, तो तुम क्षण-भर भी मत ठहरना। प्रातःकाल आकर मुझसे एक-एक बात कहना। या कहो, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूं?

सोफी उन्हें साथ लेकर चलने को राजी न हुई। विनय तो पांड़ेपुर की तरफ चले, वह सेवा-भवन की ओर चली। तांगे वाले ने कहा—मिस साहब, आप कहीं चली गई थीं क्या? बहुत दिनों के बाद दिखलाई दीं।

सोफी का कलेजा धक-धक करने लगा। बोली—तुमने मुझे कब देखा? मैं तो इस शहर में पहली ही बार आयी हूं।

तांगे वाले ने कहा—आप ही-जैसी एक मिस साहब यहां सेवक साहब की बेटी भी थीं। मैंने समझा आप ही होंगी।

सोफिया—मैं ईसाई नहीं हूं।

जब वह सेवा-भवन के समीप पहुंची, तो तांगे से उतर पड़ी। वह रानीजी से मिलने के पहले अपने आने की कानोंकान खबर न होने देना चाहती थी। हाथ में अपना बैग लिए हुए ड्योढ़ी पर गई, और दरबान से बोली—जाकर रानीजी से कहो, मिस सोफिया आपसे मिलना चाहती है।

दरबान उसे पहचानता ही था। उठकर सलाम किया, और बोला—हुजूर भीतर चलें, इत्तिला क्या करनी है। बहुत दिनों बाद आपके दरसन हुए।

सोफिया—मैं बहुत अच्छी तरह खड़ी हूं। तुम जाकर इत्तला तो दो।

दरबान—सरकार, उनका मिजाज आप जानती ही हैं। बिगड़ जायंगी कि उन्हें साथ क्यों न लाया, इत्तला क्यों देने आया?

सोफिया—मेरी खातिर से दो-चार बातें सुन लेना।

दरबान अंदर गया, तो सोफिया का दिल इस तरह धड़क रहा था, जैसे कोई पत्ता हिल रहा हो। मुख पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था। धड़का लगा हुआ था—कहीं रानी साहब गुस्से में भरी वहीं से बिगड़ती हुई न आएं, या कहला दें, चली जा, नहीं मिलती ! बिना एक बार उनसे मिले तो मैं न जाऊंगी, चाहे वह हजार बार दुत्कारें।

एक मिनट भी न गुजरने पाया था कि रानीजी, एक शाल ओढ़े हुए, द्वार पर आ गईं, और उससे टूटकर गले मिलीं, जैसे कोई माता ससुराल से आने वाली बेटी को गले लगा ले। उनकी आंखों से आंसुओं की वर्षा होने लगी। अवरुद्ध कंठ से बोलीं—तुम यहीं क्यों खड़ी हो गईं बेटी, अंदर क्यों न चली आईं? मैं तो नित्यप्रति तुम्हारी बाट जोहती रहती थी। तुमसे मिलने को जी तड़प-तड़पकर रह जाता था। मुझे आशा हो रही थी कि तुम आ रही हो, पर तुम आती न थीं। कई बार यों ही स्टेशन तक गई कि शायद तुम्हें देख पाऊं। ईश्वर से नित्य मनाती थी कि एक बार तुमसे मिला दे। चलो, भीतर चलो। मैंने तुम्हें जो दुर्वचन कहे थे, उन्हें भूल जाओ ! (दरबान से) यह बैग उठा ले। महरी से कह दे, मिस सोफिया का पुराना कमरा साफ कर दे। बेटी, तुम्हारे कमरे की ओर ताकने की हिम्मत नहीं पड़ती, दिल भर आता है।

यह कहते हुए सोफिया का हाथ पकड़े अपने कमरे में आईं, और उसे अपनी बगल में मसनद पर बैठाकर बोलीं· आज मेरी मनोकामना पूरी हो गई। तुमसे मिलने के लिए जी बहुत बेचैन था।

सोफिया का चिंता-पीड़ित हृदय इस निरपेक्षित स्नेह-बाहुल्य से विह्वल हो उठा। वह केवल इतना कह सकी—मुझे भी आपके दर्शनों की बड़ी अभिलाषा थी। आपसे दया-भिक्षा मांगने आई हूं।

रानी—बेटी, तुम देवी हो, मेरी बुद्धि पर परदा पड़ गया था। मैंने तुम्हें पहचाना न था। मुझे सब मालूम है बेटी, सब सुन चुकी हूं। तुम्हारी आत्मा इतनी पवित्र है, यह मुझे मालूम न था। आह ! अगर पहले से जानती।

यह कहते-कहते रानीजी फूट-फूटकर रोने लगीं। जब चित्त शांत हुआ, तो फिर बोलीं—अगर पहले से जान गई होती, तो आज इस घर को देखकर कलेजा ठंडा होता। आह ! मैंने विनय के साथ घोर अन्याय किया। तुम्हें न मालूम होगा बेटी, जब तुमने.... (सोचकर) वीरपालसिंह ही नाम था न? हां, जब तुमने उसके घर पर रात के समय विनय का तिरस्कार किया, तो वह लज्जित होकर रियासत के अधिकारियों के पास कैदियों पर दया करने के लिए दौड़ता रहा। दिन-दिन-भर निराहार और निर्जल पड़ा रहता, रात-रात-भर पड़ा रोया करता, कभी दीवान के पास जाता, कभी एजेंट के पास, कभी पुलिस के प्रधान कर्मचारी के पास, कभी महाराजा के पास। सबसे अनुनय-विनय करके हार गया। किसी ने न सुनी। कैदियों की दशा पर किसी को दया न आई। बेचारा विनय हताश होकर अपने डेरे पर आया। न-जाने किस सोच में बैठा

था कि मेरा पत्र उसे मिला। हाय ! (रोकर), सोफी, वह पत्र नहीं था; विष का प्याला था, जिसे मैंने अपने हाथों से पिलाया; कटार थी, जिसे मैंने अपने हाथों उसकी गरदन पर फेरा। मैंने लिखा था, तुम इस योग्य नहीं हो कि मैं तुम्हें अपना पुत्र समझूं, तुम मुझे अपनी सूरत न दिखाना। और भी न-जाने कितनी कठोर बातें लिखी थीं। याद करती हूं, तो छाती फटने लगती है। यह पत्र पाते ही वह बिना किसी से कुछ कहे-सुने नायकराम के साथ यहां आने के लिए तैयार हो गया। कई स्टेशनों तक नायकराम उसके साथ आए। पंडाजी को फिर नींद आ गई। और, जब आंखें खुलीं, तो विनय का कहीं गाड़ी में पता न था। उन्होंने सारी गाड़ी तलाश की। फिर उदयपुर तक गए। रास्ते में एक-एक स्टेशन पर उतरकर पूछताछ की, पर कुछ पता न चला। बेटी, यह इस अभागिनी की राम-कथा है। मैं हत्यारिन हूं। मुझसे बड़ी अभागिनी संसार में और कौन होगी? न जाने विनय का क्या हाल हुआ ! कुछ पता नहीं। उसमें बड़ा आत्माभिमान था बेटी, बड़ा बत का धनी था। मेरी बातें उसके दिल पर चोट कर गईं। मेरे प्यारे लाल ने कभी सुख न पाया। उसका सारा जीवन तपस्या ही में कटा।

यह कहकर रानी फिर रोने लगीं। सोफी भी रो रही थीं। पर दोनों के मनोभावों में कितना अंतर था। रानी के आंसू दु:ख, शोक और विषाद के थे, सोफी के आंसू हर्ष और उल्लास के।

एक क्षण में रानीजी ने पूछा—क्यों बेटी, तुमने उसे जेल में देखा था, तो बहुत दुबला हो गया था?

सोफी—जी हां, पहचाने न जाते थे।

रानी—उसने समझा, विद्रोहियों ने तुम्हारे साथ न-जाने क्या व्यवहार किया हो। बस, इसी बात पर उसे जिद पड़ गई। आराम से बैठो बेटी, अब यही तुम्हारा घर है। अब मेरे लिए तुम्हीं विनय की प्रतिच्छाया हो। अब यह बताओ, तुम इतने दिनों कहां थीं? इन्द्रदत्त तो कहता था कि तुम विनय का तिरस्कार करने के तीन-ही-चार दिन बाद वहां से चली आईं थीं। इतने दिनों कहां रहीं? साल-भर से ऊपर तो हो गया होगा।

सोफिया का हृदय आनंद से गद्गद हो रहा था। जी में तो आया था कि इसी वक्त सारा वृत्तांत कह सुनाऊं, माता की शोकाग्नि शांत कर दूं। पर भय हुआ कि कहीं इनका धर्माभिमान फिर न जागृत हो जाए। विनय की ओर से तो अब वह निश्चिंत हो गई थी। केवल अपने ही विषय में शंका थी। देवता को न पाकर हम पाषाण-प्रतिष्ठा करते हैं। देवता मिल जाय, तो पत्थर को कौन पूजे? बोली—क्या बताऊं, कहां थी? इधर-उधर भटकती फिरती थी। और, शरण ही कहां थी ! अपनी भूल पर पछताती और रोती थी। निराश होकर यहां चली आई।

रानी—तुम व्यर्थ ही इतने दिनों कष्ट उठाती रहीं। क्या यह घर तुम्हारा न था? बुरा न मानना बेटी, तुमने विनय के साथ बड़ा अन्याय किया। उतना ही जितना मैंने। तुम्हारी बात उसे और भी ज्यादा लगी, क्योंकि उसने जो कुछ किया था, तुम्हारे ही हित के लिए किया था। मैं तो अपने प्रियतम के साथ इतनी निर्दयता कभी न कर सकती। अब तुम स्वयं अपनी भूल पर पछता रही होगी। हम दोनों ही अभागिनी हैं। आह ! बेचारे विनय को कहीं सुख न मिला। तुम्हारा हृदय अत्यंत कठोर है। सोचो, अगर तुम्हें खबर मिलती कि विनय को डाकुओं ने पकड़कर मार डाला है, तो तुम्हारी क्या दशा हो जाती? शायद तुम भी इतनी ही दयाशून्य हो जातीं। यह मानवी स्वभाव

है। मगर अब पछताने से क्या होता है। मैं आप ही नित्य पछताया करती हूं। अब तो वह काम संभालना है, जो उसे अपने जीवन में सबसे प्यारा था। तुमने उसके लिए बड़े कष्ट उठाए; अपमान, लज्जा, दंड सब कुछ झेला। अब उसका काम संभलो। इसी को अपने जीवन का उद्देश्य समझो। तुम्हें क्या खबर होगी, कुछ दिनों तक प्रभु सेवक इस संस्था के व्यवस्थापक हो गए थे। काम करने वाला हो, तो ऐसा हो। थोड़े ही दिनों में उसने सारा मुल्क छान डाला, और पूरे पांच सौ वालंटियर जमा कर लिए, बड़े-बड़े शहरों में शाखाएं खोल दीं, बहुत-सा रुपया जमा कर लिया। मुझे इससे बड़ा आनंद मिलता था कि विनय ने जिस संस्था पर अपना जीवन बलिदान कर दिया, वह फल-फूल रही है। मगर ईश्वर को न-जाने क्या मंजूर था। प्रभु सेवक और कुंवर साहब में अनबन हो गई। प्रभु सेवक उसे ठीक उसी मार्ग पर ले जा रहा था, जिस पर विनय ले जाना चाहता था। कुंवर साहब और उनके परम मित्र डा० गांगुली उसे दूसरे ही रास्ते पर ले जाना चाहते थे। आखिर प्रभु सेवक ने पद-त्याग कर दिया। तभी से संस्था डांवाडोल हो रही है, जाने बचती है या जाती है। कुंवर साहब में एक विचित्र परिवर्तन हो गया है। वह अब अधिकारियों से सशंक रहने लगे हैं। अफवाह थी कि गवर्नमेंट उनकी कुल जायदाद जब्त करने वाली है। अधिकारी-मंडल के इस संशय को शांत करने के लिए उन्होंने प्रभु सेवक के कार्यक्रम से अपना विरोध प्रकाशित करा दिया। यही अनबन का मुख्य कारण था। अभी दो-महीने भी नहीं गुजरे, लेकिन शीराजा बिखर गया। सैकड़ों सेवक निराश होकर अपने काम-धंधे में लग गए। मुश्किल से दो सौ आदमी और होंगे। चलो बेटी, तुम्हारा कमरा साफ हो गया होगा, तुम्हारे भोजन का प्रबंध करके तब इत्मीनान से बातें करूं। (महराजिन से) इन्हें पहचानती है न? तब यह मेरी मेहमान थीं, अब मेरी बहू हैं। जा, इनके लिए दो-चार नई चीजें बना ला। आह ! आज विनय होता, तो मैं अपने हाथों से इसे उसके गले लगा देती, ब्याह रचाती। शास्त्रों में इसकी व्यवस्था है।

सोफिया को प्रबल इच्छा हुई कि रहस्य खोल दूं। बात होंठों तक आई, और रुक गई।

सहसा शोर मचा—लाल साहब आ गए ! लाल साहब आ गए ! भैया विनयसिंह आ गए ! नौकर-चाकर चारों ओर से दौड़े, लौडियां-महरियां काम छोड़-छोड़कर भागीं। एक क्षण में विनय ने कमरे में कदम रखा। रानी ने उसे सिर से पांव तक देखा, मानो निश्चय कर रही थीं कि मेरा ही विनय है या कोई और, अथवा देखना चाहती थीं कि उस पर कोई आघात के चिह्न तो नहीं हैं, तब उठीं और बोलीं—बहुत दिनों में आए बेटा ! आओ, छाती से लगा लूं। लेकिन विनय ने तुरत उनके चरणों पर सिर रख दिया। रानीजी को अश्रु-प्रवाह में न कुछ सूझता था, और न प्रेमावेश में कोई बात मुंह से निकलती थी, झुकी हुई विनय का सिर पकड़कर उठाने की चेष्टा कर रही थी। भक्ति और वात्सल्य का कितना स्वर्गीय संयोग था।

लेकिन विनय को रानी की बातें न भूली थीं। माता को देखकर उसके दिल में जोश उठा कि इनके चरणों पर आत्मसमर्पण कर दूं। एक विवशकारी उद्गार था प्राण दे देने के लिए, वहीं माता के चरणों पर जीवन का अंत कर देने के लिए, दिखा देने के लिए कि यद्यपि मैंने अपराध किए हैं, पर सर्वथा लज्जाहीन नहीं हूं; जीना नहीं जानता, लेकिन मरना जानता हूं। उसने इधर-उधर निगाह दौड़ाई। सामने ही दीवार पर तलवार लटक रही थी। वह कौंधकर तलवार उतार लाया, और उसे सर से खींचकर बोला—अम्मां, इस योग्य तो नहीं हूं कि आपका पुत्र

कहलाऊं, लेकिन आपकी अंतिम आज्ञा शिरोधार्य करके अपनी सारी अपकीर्ति का प्रायश्चित किए देता हूं। मुझे आशीर्वाद दीजिए।

सोफिया चिल्लाकर विनय से लिपट गई। जाह्नवी ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया, और बोली—विनय, ईश्वर साक्षी है, मैं तुम्हें कब का क्षमा कर चुकी। तलवार छोड़ दो। सोफी, तू इनके हाथ से तलवार छीन ले, मेरी मदद कर।

विनयसिंह की मुखाकृति तेजमय हो रही थी, आंखें बीरबहूटी बनी हुई थीं। उसे अनुभव हो रहा था कि गरदन पर तलवार मार लेना कितना सरल है। सोफिया ने दोनों हाथों से उसकी कलाई पकड़ ली, और अश्रुपूरित लोचनों से ताकती हुई बोली—विनय, मुझ पर दया करो।

उसकी दृष्टि इतनी करुण, इतनी दीन थी कि विनय का हृदय पसीज गया। मुट्ठी ढीली पड़ गई। सोफिया ने तलवार लेकर खूंटी पर लटका दी।

इतने में कुंवर भरतसिंह आकर खड़े हो गए, और विनय को हृदय से लगाते हुए बोले—तुम तो बिल्कुल पहचाने नहीं जाते, मोछें कितनी बढ़ गई हैं। इतने दुबले क्यों हो? बीमार थे क्या?

विनय—जी नहीं, बीमार तो नहीं था। ऐसा दुबला भी नहीं हूं। अब माताजी के हाथों के पकवान खाकर मोटा हो जाऊंगा।

कुंवर—तुम दूर क्यों खड़ी हो सोफिया? आओ, तुम्हें भी प्यार कर लूं। रोज ही तुम्हारी याद आती थी। विनय बड़ा भाग्यशाली था कि तुम जैसी रमणी पाई। संसार में तो मिलती नहीं, स्वर्ग की मैं नहीं कहता। अच्छा संयोग है कि तुम दोनों एक ही दिन आए। बेटी, मैं तुमसे विनय की सिफारिश करता हूं। तुमने इन्हें जो फटकार बताई थी, उसे सुनकर बेचारा नायकराम स्त्रियों से इतना डर गया है कि तय की-कराई सगाई से इनकार कर गया। उम्र-भर स्त्री के लिए तरसता रहा, पर अब नाम भी नहीं लेता। कहता है—यह बेवफा जात होती है। भैया विनयसिंह ने जिसके लिए बदनामी सही, जान पर खेले, वही उनसे आंखें फेर ले! कान पकड़े, अब तो मर जाऊंगा, पर ब्याह न करूंगा। अपना हाथ बढ़ाओ विनय! सोफी, यह हाथ लो, तो मुझे इत्मीनान हो जाए कि तुम्हारे दिल साफ हो गए। जाह्नवी, चलो हम लोग बाहर चलें, इन्हें एक दूसरे को मनाने दो। इन्हें कितनी ही शिकायतें करनी होंगी, बातें करने के लिए विकल हो रहे होंगे। आज बड़ा शुभ दिन है।

जब एकांत हुआ, तो सोफी ने पूछा—तुम इतनी जल्द कैसे आ गए?

विनय ने सकुचाते हुए कहा—सोफी, मुझे वहां मुंह छिपाकर बैठते हुए शर्म आती थी। प्राण-भय से दुबक जाना कायरों का काम है। माताजी की जो इच्छा हो, वही सही। नायकराम कहता रहा, पहले मिस साहब को आ जाने दो, लेकिन मुझसे न रहा गया।

सोफिया—खैर, अच्छा ही हुआ, खूब आ गए। माताजी तुम्हारी चर्चा करके आठ-आठ आंसू रोती थीं। उनका दिल तुम्हारी तरफ से साफ हो गया है।

विनय—तुम्हें तो कुछ नहीं कहा?

सोफिया—मुझसे तो ऐसा टूटकर गले मिलीं कि मैं चकित हो गई। यह उन्हीं कठोर वचनों का प्रभाव है, जो मैंने तुम्हें कहे थे। माता आप चाहे पुत्र को कितनी ही ताड़ना दे, यह गवारा नहीं करती कि कोई दूसरा उसे कड़ी निगाह से भी देखे। मेरे अन्याय ने उनकी न्याय-भावना

को जाग्रत कर दिया।

विनय—हम लोग बड़े शुभ मुहूर्त में चले थे।

सोफिया—हां विनय, अभी तक तो कुशल से बीती। आगे की ईश्वर जाने।

विनय—हम अपना दु:ख का हिस्सा भोग चुके।

सोफिया—ईश्वर करे ऐसा ही हो।

किंतु सोफिया के अंतस्तल में अनिष्ट-शंका का प्रतिबिंब दिखाई दे रहा था। वह उसे प्रकट न कर सकती थी, पर उसका चित्त उदास था। संभव है, जन्मगत धार्मिक संस्कारों से विमुख हो जाने का खेद इसका कारण हो। अथवा इसे वह अतिवृष्टि समझ रही हो, जो अनावृष्टि की सूचना देती है। कह नहीं सकते, पर जब सोफी रात को भोजन करके सोई, तो उसका चित्त किसी बोझ से दबा हुआ था।

चालीस

मिल के तैयार होने में अब बहुत थोड़ी कसर रह गई थी। बाहर से तंबाकू की गाड़ियां लदी चली आती थीं। किसानों को तंबाकू बोने के लिए दादनी दी जा रही थी। गवर्नर से मिल को खोलने की रस्म अदा करने के लिए प्रार्थना की गई थी, और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया था। तिथि निश्चित हो चुकी थी। इसलिए निर्माण-कार्य को उस तिथि तक समाप्त करने के लिए बड़े उत्साह से काम किया जा रहा था। उस दिन तक कोई काम बाकी न रहना चाहिए। मजा तो जब आए कि दावत में इसी मिल का बना हुआ सिगार भी रखा जाए। मिस्टर जॉन सेवक सुबह से शाम तक इन्हीं तैयारियों में दत्तचित्त रहते थे। यहां तक कि रात को भी दुगनी मजदूरी देकर काम कराया जा रहा था। मिल के आसपास पक्के मकान बन चुके थे। सड़क के दोनों किनारों पर और निकट के खेतों में मजदूरों ने झोपड़ियां डाल ली थीं। एक मील तक सड़क के दोनों ओर झोपड़ियों की श्रेणियां नजर आती थीं। यहां बड़ी चहल-पहल रहती थी। दुकानदारों ने भी अपने-अपने छप्पर डाल लिए थे। पान, मिठाई, नाज, गुड़, घी, साग, भाजी और मादक वस्तुओं की दुकानें खुल गई थीं। मालूम होता था, कोई पैठ है। मिल के परदेसी मजदूर, जिन्हें न बिरादरी का भय था, न संबंधियों का लिहाज, दिन-भर तो मिल का काम करते, रात को ताड़ी-शराब पीते। जुआ नित्य होता था। ऐसे स्थानों पर कुलटाएं भी आ पहुंचती हैं। यहां भी एक छोटा-मोटा चकला आबाद हो गया था। पांड़ेपुर का पुराना बाजार सर्द होता जाता था। मिठुआ, घीसू, विद्याधर तीनों अक्सर इधर सैर करने आते, और जुआ खेलते। घीसू तो दूध बेचने के बहाने आता, विद्याधर नौकरी खोजने के बहाने और मिठुआ केवल उन दोनों के साथ देने आया करता था। दस-ग्यारह बजे रात तक यहां बड़ी बहार रहती थी। कोई चाट खा रहा है, कोई तंबोली की दुकान के आगे खड़ा है, कोई वेश्याओं से विनोद कर रहा है। अश्लील हास-परिहास, लज्जास्पद नेत्र-कटाक्ष और कुवासनापूर्ण हाव-भाव का अविरल प्रवाह होता रहता था। पांड़ेपुर में ये दिलचस्पियां कहां? लड़कों की हिम्मत न पड़ती थी कि ताड़ी की दुकान के सामने खड़े हों, कहीं घर का कोई आदमी देख न ले। युवकों की मजाल न थी कि किसी स्त्री को छेड़ें, कहीं मेरे घर जाकर कह न दे।

सभी एक दूसरे से संबंध रखते थे। यहां वे रुकावटें कहां? प्रत्येक प्राणी स्वच्छंद था, उसे न किसी का भय था, न संकोच। कोई किसी पर हंसने वाला न था। तीनों ही युवकों को मना किया जाता था, वहां न जाया करो, जाओ भी तो अपना काम करके चले आया करो; किंतु जवानी दीवानी होती है, कौन किसी की सुनता था। सबसे बुरी दशा बजरंगी की थी। घीसू नित्य रुपये-आठ आने उड़ा लिया करता। पूछने पर बिगड़कर कहता, क्या मैं चोर हूं?

एक दिन बजरंगी ने सूरदास से कहा—सूरे, लड़के बरबाद हुए जाते हैं। जब देखो, चकले ही में डटे रहते हैं। घिसुआ में चोरी की बान कभी न थी। अब ऐसा हथलपका हो गया है कि सौ जतन से पैसे रख दो, खोजकर निकाल लेता है।

जगधर सूरदास के पास बैठा हुआ था। ये बातें सुनकर बोला—मेरी भी वही दसा है भाई ! विद्याधर को कितना पढ़ाया-लिखाया, मिडिल तक खींच-खांचकर ले गया, आप भूखा रहता था, घर के लोग कपड़ों को तरसते थे, मगर उसके लिए किसी बात की कमी न थी। आसा थी, चार पैसे कमाएगा, मेरा बुढ़ापा कट जाएगा, घर-बार संभालेगा, बिरादरी में मरजाद बढ़ाएगा। सो अब रोज वहां जाकर जुआ खेलता है। मुझसे बहाना करता है कि वहां एक बाबू के पास काम सीखने जाता हूं। सुनता हूं, किसी औरत से उसकी आसनाई हो गई है। अभी पुतलीघर के कई मजूर उसे खोजते हुए मेरे घर आए थे। उसे पा जाएं, तो मारपीट करें। वे भी उसी औरत के आसना हैं। मैंने हाथ-पैर पड़कर उनको बिदा किया। यह कारखाना क्या खुला, हमारी तबाही आ गई। फायदा जरूर है, चार पैसे की आमदनी है, पहले एक ही खोंचा न बिकता था, अब तीन-तीन बिक जाते हैं, लेकिन ऐसा सोना किस काम का, जिससे कान फटें !

बजरंगी—अजी जुआ ही खेलता, तब तक गनीमत थी, हमारा घीसू तो आवारा हो गया है। देखते नहीं हो, सूरत कैसी बिगड़ गई है ! कैसी देह निकल आई थी ! मुझे पूरी आसा थी कि अब दंगल मारेगा, अखाड़े का कोई पट्ठा उसके जोड़ का नहीं है, मगर जब से चकले की चाट पड़ गई है, दिन-दिन घुलता जाता है। दादा को तुमने देखा था न? दस-पांच कोस के गिर्द में कोई उनसे हाथ न मिला सकता था, चुटकी से सुपारी तोड़ देते थे। मैंने भी जवानी में कितने ही दंगल मारे। तुमने तो देखा ही था, उस पंजाबी को कैसा मारा कि पांच सौ रुपये इनाम पाए, और अखबारों में दूर-दूर तक नाम हो गया। कभी किसी माई के लाल ने मेरी पीठ में धूल नहीं लगाई। तो बात क्या थी? लंगोट के सच्चे थे। मोछें निकल आई थीं, तब तक किसी औरत का मुंह न देखा था। ब्याह भी हो गया, तब भी मेहनत-कसरत की धुन में औरत का ध्यान ही न करते थे। उसी के बल पर अब भी दावा है कि दस-पांच का सामना हो जाए, तो छक्के छुड़ा दूं, पर इस लौंडे ने डोंगा डुबा दिया, घूरे उस्ताद कहते थे कि इसमें दम ही नहीं है, जहां दो पकड़ हुए, बस भैंसे की तरह हांफने लगता है।

सूरदास—मैं अंधा आदमी लौंडों के ये कौतुक क्या जानूं, पर सुभागी कहती है कि मिठुआ के ढंग भी अच्छे नहीं हैं। जब से टेसन पर कुली हो गया है, रुपये-आठ आने रोज कमाता है, मुदा कसम ले लो, जो घर पर एक पैसा भी देता हो। भोजन मेरे सिर करता है, जो कुछ पाता है, नसे-पानी में उड़ा देता है।

जगधर—तुम भी तो झूठमूठ लाज ढो रहे हो। निकाल क्यों नहीं देते घर से? अपने सिर पड़ेगी, तो आटे-दाल का भाव मालूम होगा। अपना लड़का हो, तो एक बात है, भाई-भतीजे

किसके होते हैं?

सूरदास–पाला तो लड़के ही की तरह है, दिल नहीं मानता।

जगधर–अपना बनाने से थोड़े ही अपना हो जाएगा।

ठाकुरदीन भी आ गया था। जगधर की बात सुनकर बोला–भगवान् ने क्या तुम्हारे करम में कांटे ही बोना लिखा है, किसी का भी भला नहीं देख सकते?

सूरदास–उसके मन में जो आए करे, पर मेरे हाथों तो यह नहीं हो सकता कि मैं आप खाकर सोऊं, और उसकी बात न पूछूं।

ठाकुरदीन–कोई बात कहने से पहले सोच लेना चाहिए कि सुनने वाले को अच्छी लगेगी कि बुरी। जिस लड़के को बालपन से पाला, और इस तरह पाला कि कोई अपने बेटे को भी न पालता होगा, उसे अब कैसे छोड़ दे?

जमुनी–अब के कलजुगी लड़के जो कुछ न करें, थोड़ा है। अभी दूध के दांत नहीं टूटे, सुभागी ने घीसू को गोद खेलाया है, सो आज वह उससे दिल्लगी करता है। छोटे-बड़े का लिहाज उठ गया। वह तो कहो सुभागी की काठी अच्छी है, नहीं बाल-बच्चे हुए होते तो घीसू से जेठे होते।

यहां तो ये बातें हो रही थीं, उधर तीनों लौंडे नायकराम के दालान में बैठे हुए मंसूबे बांध रहे थे। घीसू ने कहा–सुभागी मारे डालती है। देखकर यही जी चाहता है कि गले लगा लें। सिर पर साग की टोकरी रखकर बल खाती हुई चलती है। सो जान ले लेती है। बड़ी काफर है।

विद्याधर–तुम तो हो घामड़, पढ़े-लिखे तो हो नहीं, बात क्या समझो। मासूक कभी अपने मुंह से थोड़े ही कहता है कि मैं राजी हूं। उसकी आंखों से ताड़ जाना चाहिए। जितनी ही बिगड़े, उतनी ही दिल से राजी समझो। कुछ पढ़े होते, तो जानते, औरतें कैसे नखरे करती हैं।

मिठुआ–पहले सुभागी मुझसे भी इसी तरह बिगड़ती थी, किसी तरह हत्थे ही न चढ़े, बात तक न सुने; पर मैंने हिम्मत करके एक दिन कलाई पकड़ ली, और बोला–अब न छोड़ूंगा, चाहे मार ही डाल। मरना तो एक दिन है ही, तेरे ही हाथों मरूंगा। यों भी तो मर रहा हूं, तेरे हाथ मरूंगा, तो सीधे सरग जाऊंगा। पहले तो बिगड़कर गालियां देने लगी, फिर कहने लगी–छोड़ दो, कहीं कोई देख ले, तो गजब हो जाए। मैं तेरी बुआ लगती हूं। पर मैंने एक न सुनी। बस, फिर क्या था। उसी दिन से आ गई चंगुल में।

मिठुआ अपनी प्रेम-विजय की कल्पित कथाएं गढ़ने में निपुण था। निरक्षर होने पर भी गप्पें मारने में उसने विद्याधर को मात कर दिया था। अपनी कल्पनाओं में कुछ ऐसा रंग भरता था कि मित्रों को उन गपोड़ों पर विश्वास आ जाता था। घीसू बोला–क्या करूं, मेरी तो हिम्मत ही नहीं पड़ती। डरता हूं, कहीं शोर मचा दे, तो आफत आ जाए। तुम्हारी हिम्मत कैसे पड़ गई थी?

विद्याधर–तुम्हारा सिर, जाहिल-जपाट तो हो। मासूक अपने आसिक को आजमाता है कि इसमें कुछ जीवट भी है कि यों ही छैला बना फिरता है। औरत उसी को प्यार करती है, जो दिलावर हो, निडर हो, आग में कूद पड़े।

घीसू–तुम तैयार हो?

विद्याधर—हां, आज ही।

मिठुआ—मगर देख लेना, दादा द्वार पर नीम के नीचे सोते हैं।

घीसू—इसका क्या डर ! एक धक्का दूंगा, दूर जाके गिरेगा।

तीनों मिस्कौट करते, इस षड्यंत्र के दांव-पेंचे सोचते हुए, कुली बाजार की तरफ चले गए। वहां तीनों ने शराब पी, दस-ग्यारह बजे रात तक बैठे गाना-बजाना सुनते रहे। मदिरालयों में स्वरहीन कानों के लिए संगीत की कभी कमी नहीं रहती। तीनों नशे में चूर होकर लौटे, तो घीसू बोला—सलाह पक्की है न? आज वारा-न्यारा हो जाए। चित्त पड़े या पट।

आधी रात बीत चुकी थी। चौकीदार पहरा देकर जा चुका था। घीसू और विद्याधर सूरदास के द्वार पर आए।

घीसू—तुम आगे चलो, मैं यहीं खड़ा हूं।

विद्याधर—नहीं तुम जाओ। तुम गंवार आदमी हो। कोई देख लेगा, तो बात भी न बना सकोगे।

नशे ने घीसू को आपे से बाहर कर रखा था। कुछ यह दिखाना भी मंजूर था कि तुम लोग मुझे जितना बोदा समझते हो, उतना बोदा नहीं हूं। झोपड़ी में घुस ही तो पड़ा, और जाकर सुभागी की बांह पकड़ ली।

सुभागी चौंककर उठ बैठी, और जोर से बोली--कौन है? हट।

घीसू—चुप-चुप, मैं हूं।

सुभागी—चोर-चोर ! चोर-चोर !!

सूरदास जागा। उठकर मड़ैया में जाना चाहता था कि किसी ने उसे पकड़ लिया। उसने डांटकर पूछा, कौन है? जब कुछ उत्तर न मिला, तब उसने भी उस आदमी का हाथ पकड़ लिया, और चिल्लाया—चोर ! चोर ! मोहल्ले के लोग ये आवाजें सुनते ही लाठियां लेकर निकल पड़े। बजरंगी ने पूछा, कहां गया कहां? सुभागी बोली, मैं पकड़े हुए हूं। सूरदास ने कहा, एक को मैं पकड़े हुए हूं। लोगों ने आकर देखा, तो भीतर सुभागी घीसू को पकड़े हुए है, बाहर सूरदास विद्याधर को। मिठुआ नायकराम के द्वार पर खड़ा था। यह हुल्लड़ सुनते ही भाग खड़ा हुआ। एक क्षण में सारा मोहल्ला टूट पड़ा। चोर को पकड़ने के लिए बिरले ही निकलते हैं, पकड़े गए चोर पर पंचलत्तियां जमाने के लिए सभी पहुंच जाते हैं। लेकिन यहां आकर देखते हैं, तो न चोर, न चोर का भाई, बल्कि अपने ही मौहल्ले के लौंडे हैं।

एक स्त्री बोली—यह जमाने की खूबी है कि गांव-घर का बिचार भी उठ गया, किसकी आबरू बचेगी।

ठाकुरदीन—ऐसे लौंडों का सिर काट लेना चाहिए।

नायकराम—चुप रहो ठाकुरदीन, यह गुस्सा करने की बात नहीं, रोने की बात है।

जगधर, बजरंगी, जमुनी सिर झुकाए चुप खड़े थे, मुंह से बात न निकलती थी। बजरंगी को तो ऐसा क्रोध आ रहा था कि घीसू का गला दबा दे। यह जमाव और हलचल देखकर कई कांस्टेबिल भी आ पहुंचे। अच्छा शिकार फसा, मुट्ठियां गर्म होंगी। तुरत दोनों युवकों की कलाइयां पकड़ लीं। जमुनी ने रोकर कहा—ये लौंडे मुंह में कालिख लगाने वाले हैं। अच्छा होगा, छः-छः महीने की सजा काट आएंगे, तब इनकी आंखें खुलेंगी। समझाते-समझाते हार गई कि बेटा,

कुराह मत चलो, लेकिन कौन सुनता है? अब जाके चक्की पीसो। इससे तो अच्छा था कि बांझ ही रहती।

नायकराम—अच्छा, अब अपने-अपने घर जाते जाव। जमादार, लौंडे हैं, छोड़ दो, आओ चलें।

जमादार—ऐसा न कहो पंडाजी, कोतवाल साहब को मालूम हो जाएगा, तो समझेंगे, इन सबों ने कुछ ले-देकर छोड़ दिया होगा।

नायकराम—क्या कहते हो सूरे, अब ये लोग जायं न?

ठाकुरदीन—हां और क्या ! लड़कों से भूल-चूक हो ही जाती है। काम तो बुरा किया, पर अब जाने दो, जो हुआ सो हुआ।

सूर—मैं कौन होता हूं कि जाने दूं। जाने दें कोतवाल, डिपटी, हाकिम लोग।

बजरंगी—सूरे, भगवान् जानता है, जान का डर न होता, तो इस दुष्ट को कच्चा ही चबा जाता।

सूर—अब तो हाकिम लोगों के हाथ में है, छोड़ें चाहे सजा दें।

बजरंगी—तुम कुछ न करोगे, तो कुछ न होगा। जमादारों को हम मना लेंगे।

सूर—तो भैया, साफ-साफ बात यह है कि मैं बिना सरकार में रपट किए न मानूंगा, चाहे सारा मुहल्ला मेरा दुसमन हो जाए।

बजरंगी—क्या यही होगा सूरदास? गांव-घर, टोले-मुहल्ले का कुछ लिहाज न करोगे? लड़कों से भूल तो हो ही गई, अब उनकी जिंदगानी खराब करने से क्या मिलेगा?

जगधर—सुभागी ही कहां की देवी है। जब से भैरो ने छोड़ दिया, सारा मुहल्ला उसका रंग-ढंग देख रहा है। बिना पहले की सांठ-गांठ के कोई किसी के घर में नहीं घुसता !

सूर—तो यह सब मुझसे क्या कहते हो भाई, सुभागी देवी हो चाहे हरजाई हो, वह जाने उसका काम जाने। मैंने अपने घर में चोरों को पकड़ा है, इसकी थाने में जरूर इत्तला करूंगा, थाने वाले न सुनेंगे, तो हाकिम से कहूंगा। लड़के लड़कों की राह रहें, तो लड़के हैं, सोहदों की राह चलें, तो सोहदे हैं। बदमासों के और क्या सींग-पूंछ होती है?

बजरंगी—सूरे, कहे देता हूं, खून हो जाएगा।

सूर—तो क्या हो जाएगा। कौन कोई मेरे नाम को रोने वाला बैठा हुआ है?

नायकराम ने वहां ठहरना व्यर्थ समझा। क्यों नींद खराब करें? चलने लगे, तो जगधर ने कहा—पंडाजी, तुम भी जाते हो, यहां क्या होगा?

नायकराम ने जवाब दिया—भाई, सूरदास मानेगा नहीं, चाहे लाख कहो। मैं भी तो कह चुका, कहो तो हाथ-पैर पड़ूं, पर होना-हवाना कुछ नहीं। घीसू और विद्या की तो बात ही क्या, मिठुआ भी होता, तो सूरे उसे भी न छोड़ता। जिद्दी आदमी है।

जगधर—ऐसा कहां का धन्नासेठ है कि अपने मन ही की करेगा। तुम चलो, जरा डांटकर कहो तो।

नायकराम लौटकर सूरदास से बोले—सूरे, कभी-कभी गांव-घर के साथ मुलाहजा भी करना पड़ता है। लड़कों की जिंदगानी खराब करके क्या पाओगे?

सूर—पंडाजी, तुम भी औरों की-सी कहने लगे। दुनिया में कहीं नियाव है कि नहीं ! क्या औरत की आबरू कुछ होती ही नहीं? सुभागी गरीब है, अबला है, मजूरी करके अपना

पेट पालती है, इसलिए जो कोई चाहे उसकी आबरू बिगाड़ दे? जो चाहे, उसे हरजाई समझ ले?

सारा मोहल्ला एक हो गया, यहां तक कि दोनों चौकीदार भी मुहल्ले वालों की-सी कहने लगे। एक बोला–औरत खुद हरजाई है।

दूसरा–मुहल्ले के आदमी चाहें तो खून पचा लें, यह कौन-सा बड़ा जुर्म है।

पहला–सहादत ही न मिलेगी, तो जुर्म क्या साबित होगा?

सूर–सहादत तो जब न मिलेगी, जब मैं मर जाऊंगा। वह हरजाई है?

चौकीदार–हरजाई तो है ही। एक बार नहीं, सौ बार; उसे बजार में तरकारी बेचते और हंसते देखा है।

सूर–तो बजार में तरकारी बेचना और हंसना हरजाइयों का काम है?

चौकीदार–अरे, तो जाओगे तो थाने ही तक न ! वहां भी तो हमीं से रपट करोगे?

नायकराम–अच्छी बात है, इसे रपट करने दो। मैं देख लूंगा। दारोगाजी कोई बिराने आदमी नहीं हैं।

सूर–दारोगाजी के मन में जो आए करें, दोस-पाप उनके साथ है।

नायकराम–कहता हूं, मुहल्ले में न रहने पाओगे।

सूर–जब तक जीता हूं, तब तक तो रहूंगा, मरने के बाद देखी जाएगी।

कोई सूरदास को धमकाता था, कोई समझाता था। वहां वही लोग रह गए थे, जो इस मुआमले को दबा देना चाहते थे। जो लोग इसे आगे बढ़ाने के पक्ष में थे, वे बजरंगी और नायकराम के भय से कुछ कह न सकने के कारण अपने-अपने घर चले गए थे। इन दोनों आदमियों से बैर मोल लेने की किसी में हिम्मत न थी। पर सूरदास अपनी बात पर ऐसा अड़ा था कि किसी भांति मानता ही न था। अंत को यही निश्चय हुआ कि इसे थाने जाकर रपट कर आने दो। हम लोग थानेदार ही को राजी कर लेंगे। दस-बीस रुपये से गम खायंगे।

नायकराम–अरे, वही लाला थानेदार हैं न? उन्हें मैं चुटकी बजाते-बजाते गांठ लूंगा। मेरी पुरानी जान-पहचान है।

जगधर–पंडाजी, मेरे पास तो रुपये भी नहीं हैं, मेरी जान कैसे बचेगी?

नायकराम–मैं भी तो परदेस से लौटा हूं। हाथ खाली हैं। जाके कहीं रुपये की फिकिर करो।

जगधर–मैं सूरे को अपना हितू समझता था। जब कभी काम पड़ा है, उसकी मदद की है। इसी के पीछे भैरो से दुसमनी हुई। और, अब भी यह मेरा न हुआ !

नायकराम–यह किसी का नहीं है, और सबका है। जाकर देखो, जहां से हो सके, पच्चीस रुपये तो ले ही आओ।

जगधर–भैया, रुपये किससे मांगने जाऊं? कौन पतियाएगा?

नायकराम–अरे, विद्या की अम्मां से कोई गहना ही मांग लो। इस बखत तो प्रान बचें, फिर छुड़ा देना।

जगधर बहाने करने लगा–वह छल्ला तक न देगी; मैं मर भी जाऊं, तो कफन के लिए रुपये न निकालेगी। यह कहते-कहते वह रोने लगा। नायकराम को उस पर दया आ गई। रुपये

देने का वचन दे दिया।

सूरदास प्रातःकाल थाने की ओर चला, तो बजरंगी ने कहा—सूरे, तुम्हारे सिर पर मौत खेल रही है, जाओ।

जमुनी सूरे के पैरों से लिपट गई, और रोती हुई बोली—सूरे, तुम हमारे बैरी हो जाओगे, यह कभी आसा न थी।

बजरंगी ने कहा—नीच है और क्या। हम इसको पालते ही चले आते हैं। भूखों कभी नहीं सोने दिया। बीमारी-आरामी में कभी साथ नहीं छोड़ा। जब कभी दूध मांगने आया, खाली हाथ नहीं जाने दिया। इस नेकी का यह बदला ! सच कहा है, अंधों में मुरौवत नहीं होती। एक पासिन के पीछे !

नायकराम पहले ही लपककर थाने जा पहुंचे, और थानेदार को सारा वृत्तांत सुनाकर कहा—पचास का डौल है, कम न ज्यादा। रपट ही न लिखिए।

दारोगा ने कहा—पंडाजी, जब तुम बीच में पड़े हुए हो, तो सौ-पचास की कोई बात नहीं, लेकिन अंधे को मालूम हो जाएगा कि रपट नहीं लिखी गई, तो सीधा डिप्टी साहब के पास जा पहुंचेगा। फिर मेरी जान आफत में पड़ जाएगी। निहायत रूखा अफसर है, पुलिस का तो जानी दुश्मन ही समझो। अंधा यों मानने वाला असामी नहीं है। जब इसने चतारी के राजा साहब को नाकों चने चबवा दिए, तो दूसरों की कौन गिनती है ! बस, यही हो सकता है कि जब मैं तफतीश करने आऊं, तो आप लोग किसी को शहादत न देने दें। अदमसबूत में मुआमला खारिज हो जाएगा। मैं इतना ही कर सकता हूं कि शहादत के लिए किसी को दबाऊंगा नहीं, गवाहों के बयान में भी कुछ काट-छांट कर दूंगा।

दूसरे दिन संध्या-समय दारोगाजी तहकीकात करने आए। मोहल्ले के सब आदमी जमा हुए; मगर जिससे पूछो, यही कहता है—मुझे कुछ मालूम नहीं, मैं कुछ नहीं जानता, मैंने रात को किसी की 'चोर-चोर' की आवाज नहीं सुनी, मैंने किसी को सूरदास के द्वार पर नहीं देखा, मैं तो घर में द्वार बंद किए पड़ा सोता था। यहां तक कि ठाकुरदीन ने भी साफ कहा—साहब, मैं कुछ नहीं जानता। दारोगा ने सूरदास पर बिगड़कर कहा—झूठी रपट करता है बदमाश !

सूरदास—रपट झूठी नहीं है, सच्ची है।

दारोगा—तेरे कहने से सच्ची मान लूं? कोई गवाह भी है?

सूरदास ने मुहल्ले वालों को संबोधित करके कहा—यारो, सच्ची बात कहने से मत डरो। मेल-मुरौवत इसे नहीं कहते कि किसी औरत की आबरू बिगाड़ दी जाए, और लोग उसे परदा डाल दें; किसी के घर में चोरी हो जाए, और लोग छिपा लें। अगर यही हाल रहा, तो समझ लो कि किसी की आबरू न बचेगी। भगवान् ने सभी को बहू-बेटियां दी हैं, कुछ उनका खियाल करो। औरत की आबरू कोई हंसी-खेल नहीं है। इसके पीछे सिर कट जाते हैं, लहू की नदी बह जाती है। मैं और किसी से नहीं पूछता, ठाकुरदीन, तुम्हें भगवान् का भय है, पहले तुम्हीं आए थे, तुमने यहां क्या देखा? क्या मैं और सुभागी, दोनों घीसू और विद्याधर का हाथ नहीं पकड़े हुए थे? देखो, मुंहदेखी नहीं, साथ कोई न जाएगा, जो कुछ देखा हो, सच कह दो।

ठाकुरदीन धर्म-भीरु प्राणी था। ये बातें सुनकर भयभीत हो गया, बोला—चोरी-डाके की बात तो मैं नहीं जानता, यही पहले भी कह चुका, बात बदलनी नहीं आती। हां, जब मैं आया,

तो तुम और सुभागी दोनों लड़कों को पकड़े चिल्ला रहे थे।

सूरदास–मैं उन दोनों को उनके घर से तो नहीं पकड़ लाया था?

ठाकुरदीन–यह दैव जाने। हां, 'चोर-चोर' की आवाज मेरे कान में आई थी।

सूरदास–अच्छा, अब मैं तुमसे पूछता हूं जमादार, तुम आए थे न? बोलो, यहां जमाव था कि नहीं?

चौकीदार ने ठाकुरदीन को फूटते देखा, तो डरा कि कहीं अंधा दो-चार आदमियों को और फोड़ लेगा, तो हम झूठे पड़ेंगे। बोला–हां, जमाव क्यों नहीं था !

सूरदास–घीसू को सुभागी पकड़े हुए थी कि नहीं? विद्याधर को मैं पकड़े हुए था कि नहीं?

चौकीदार–चोरी होते हमने नहीं देखी।

सूरदास–हम इन दोनों लड़कों को पकड़े हुए थे कि नहीं?

चौकीदार–हां, पकड़े तो थे, पर चोरी होते नहीं देखी?

सूरदास–दारोगाजी, अभी सहादत मिली कि और दूं? यहां नंगे-लुच्चे नहीं बसते, भलेमानसों ही की बस्ती है। कहिए, बजरंगी से कहला दूं; कहिए, खुद घीसू से कहला दूं। कोई झूठी बात न कहेगा। मुरौवत-मुरौवत की जगह है, मुहब्बत-मुहब्बत की जगह है। मुरौवत और मुहब्बत के पीछे कोई अपना परलोक न बिगाड़ेगा।

बजरंगी ने देखा, अब लड़के की जान नहीं बचती, तो अपना ईमान क्यों बिगाड़ें, दारोगा के सामने आकर खड़ा हो गया, और बोला–दारोगाजी, सूरे जो बात कहते हैं, वह ठीक है। जिसने जैसी करनी की है, वैसी भोगे। हम क्यों अपनी आकबत बिगाड़ें? लड़का ऐसा नालायक न होता, तो आज मुंह में कालिख क्यों लगती? जब उसका चलन ही बिगड़ गया, तो मैं कहां तक बचाऊंगा? सजा भोगेगा, तो आप आंखें खुलेंगी।

हवा बदल गई। एक क्षण में साक्षियों का तांता बंध गया। दोनों अभियुक्त हिरासत में ले लिए गए। मुकदमा चला, तीन-तीन महीने की सजा हो गई। बजरंगी और जगधर, दोनों सूरदास के भक्त थे। नायकराम का यह काम था कि सब किसी से सूरदास का गुन गाया करे। अब ये तीनों उसके दुश्मन हो गए। दो बार पहले भी वह अपने मोहल्ले का द्रोही बन चुका था, पर उन दोनों अवसरों पर किसी को उसकी जात से इतना आघात न पहुंचा था, अबकी तो उसने घोर अपराध किया था। जमुनी जब सूरदास को देखती, तो सौ काम छोड़कर उसे कोसती। सुभागी को घर से निकलना मुश्किल हो गया। यहां तक कि मिठुआ ने भी साथ छोड़ दिया। अब वह रात को भी स्टेशन पर ही रह जाता। अपने साथियों की दशा ने उसकी आंखें खोल दीं। नायकराम तो इतने बिगड़े कि सूरदास के द्वार का रास्ता ही छोड़ दिया, चक्कर खाकर आते-जाते। बस, उसके संगियों में ले-देके एक भैरो रह गया। हां, कभी-कभी दूसरों की निगाह बचाकर ठाकुरदीन कुशल-समाचार पूछ जाता। और तो और, दयागिरि भी उससे कन्नी काटने लगे कि कहीं लोग उसका मित्र समझकर मेरी दक्षिणा-भिक्षा न बंद कर दें। सत्य के मित्र कम होते हैं, शत्रुओं से कहीं कम !

इकतालीस

प्रभु सेवक ने तीन वर्ष अमेरिका में रहकर और हजारों रुपये खर्च करके जो अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था, वह मि॰ जॉन सेवक ने उनकी संगति से उतने ही महीनों में प्राप्त कर लिया। इतना ही नहीं, प्रभु सेवक की भांति वह केवल बतलाए हुए मार्ग पर आंखें बंद करके चलने पर ही संतुष्ट न थे, उनकी निगाह आगे-पीछे, दाएं-बाएं भी लगी रहती थी। विशेषज्ञों में एक संकीर्णता होती है, जो उनकी दृष्टि को सीमित रखती है। वह किसी विषय पर स्वाधीन होकर विस्तीर्ण दृष्टि नहीं डाल सकते; नियम, सिद्धांत और परंपरागत व्यवहार उनकी दृष्टि को फैलने नहीं देते। वैद्य प्रत्येक रोग की औषधि ग्रंथों में खोजता है; वह केवल निदान का दास है, लक्षणों का गुलाम; वह यह नहीं जानता कि कितने ही रोगों की औषधि लुकमान के पास भी नहीं। सहज बुद्धि अगर सूक्ष्मदर्शी नहीं होती, तो संकुचित भी नहीं होती। वह हर एक विषय पर व्यापक रीति से विचार कर सकती है, जरा-जरा-सी बातों में उलझकर नहीं रह जाती। यही कारण है कि मंत्री-भवन में बैठा हुआ सेना-मंत्री सेनापति पर शासन करता है। प्रभु सेवक के पृथक् हो जाने से मि॰ जॉन सेवक लेश-मात्र भी चिंतित नहीं हुए। वह दूने उत्साह से काम करने लगे। व्यवहार-कुशल मनुष्य थे। जितनी आसानी से कार्यालय में बैठकर बहीखाते लिख सकते थे, उतनी ही आसानी से अवसर पड़ने पर एंजिन के पहियों को भी चला सकते थे। पहले कभी-कभी सरसरी निगाह से मेल को देख लिया करते थे, अब नियमानुसार और यथासमय जाते। बहुधा दिन को भोजन वहीं करते और शाम को घर आते। कभी-कभी रात को नौ-दस बज जाते। वह प्रभु सेवक को दिखा देना चाहते थे कि मैंने तुम्हारे ही बल-बूते पर यह काम नहीं उठाया है, कौवे के न बोलने पर भी दिन निकल ही आता है। उनके धन-प्रेम का आधार संतान-प्रेम न था। वह उनके जीवन का मुख्य अंग, उनकी जीवन-धारा का मुख्य स्रोत था। संसार के और सभी धंधे इसके अंतर्गत थे।

मजदूरों और कारीगरों के लिए मकान बनवाने की समस्या अभी तक हल न हुई थी। यद्यपि जिले के मजिस्ट्रेट से उन्होंने मेल-जोल पैदा कर लिया था, पर चतारी के राजा साहब की ओर से उन्हें बड़ी शंका थी। राजा साहब एक बार लोकमत की उपेक्षा करके इतने बदनाम हो चुके थे कि उससे कहीं महत्त्वपूर्ण विजय की आशा भी अब उन्हें वे चोटें खाने के लिए उत्तेजित न कर सकती थी। मिल बड़ी धूम से चल रही थी, लेकिन उसकी उन्नति के मार्ग में मजदूरों के मकानों का न होना सबसे बड़ी बाधा थी। जॉन सेवक इसी उधेड़-बुन में पड़े रहते थे।

संयोग से परिस्थितियों में कुछ ऐसा उलट-फेर हुआ कि यह विकट समस्या बिना विशेष उद्योग के हल हो गई। प्रभु सेवक के असहयोग ने वह काम कर दिखाया, जो कदाचित् उनके सहयोग से भी न हो सकता था।

जब से सोफिया और विनयसिंह आ गए थे, सेवक-दल बड़ी उन्नति कर रहा था। उनकी राजनीतिक गति दिन-दिन तीव्र और उग्र होती जाती थी। कुंवर साहब ने जितनी आसानी से पहली बार अधिकारियों की शंकाओं को शांत कर दिया था, उतनी आसानी से अबकी बार न कर सके। समस्या कहीं विषम हो गई थी। प्रभु सेवक को इस्तीफा देने के लिए मजबूर करना मुश्किल न था, विनय को घर से निकाल देना, उसे अधिकारियों की दया पर छोड़ देना कहीं

मुश्किल था। इसमें संदेह नहीं कि कुंवर साहब निर्भीक पुरुष थे, जाति-प्रेम में पगे हुए स्वच्छंद, निस्पृह और विचारशील। उनका जीवन इतना सरल और सात्विक था कि उन्हें लोग त्यागमूर्ति कहा करते थे। उनको भोग-विलास के लिए किसी बड़ी जायदाद की बिल्कुल जरूरत न थी। किंतु प्रत्यक्ष रूप से अधिकारियों के कोपभाजन बनने के लिए वह तैयार न थे। वह अपना सर्वस्व जाति-हित के लिए दे सकते थे; किंतु इस तरह कि हित का साधन उनके हाथ में रहे। उनमें वह आत्मसमर्पण की क्षमता न थी, जो निष्काम और निस्स्वार्थ भाव से अपने को मिटा देती है। उन्हें विश्वास था कि हम आड़ में रहकर उससे कहीं अधिक उपयोगी बन सकते हैं, जितने सामने आकर। विनय का दूसरा ही मत था। वह कहता था, हम जायदाद के लिए अपनी आत्मिक स्वतंत्रता की हत्या क्यों करें? हम जायदाद के स्वामी बनकर रहेंगे, उसके दास बनकर नहीं। अगर संपत्ति से निवृत्ति न प्राप्त कर सके, तो इस तपस्या का प्रयोजन ही क्या? यह तो गुनाह बेलज्जत है। निवृत्ति ही के लिए तो यह साधना की जा रही है। कुंवर साहब इसका यह जवाब देते कि हम इस जायदाद के स्वामी नहीं, केवल रक्षक हैं। यह आने वाली संतानों की धरोहर-मात्र है। हमको क्या अधिकार है कि भावी संतान से वह सुख और संपत्ति छीन लें, जिसके वह वारिस होंगे। बहुत संभव है, वह इतने आदर्शवादी न हों, या उन्हें परिस्थिति के बदल जाने से आत्मत्याग की जरूरत ही न रहे। यह भी संभव है कि उनमें वे स्वाभाविक गुण न हों, जिनके सामने संपत्ति की कोई हस्ती नहीं। ऐसी ही युक्तियों से वह विनय का समाधान करने की विफल चेष्टा किया करते थे। वास्तव में बात यह थी कि जीवन-पर्यंत ऐश्वर्य का सुख और सम्मान भोगने के पश्चात् वह निवृत्ति का यथार्थ आशय ही न ग्रहण कर सकते थे। वह संतान के लिए संपत्ति न चाहते थे, संपत्ति के लिए संतान चाहते थे। जायदाद के सामने संतान का स्थान गौण था। उन्हें अधिकारियों की खुशामद से घृणा थी, हुक्काम की हां में हां मिलाना हेय समझते थे, किंतु हुक्काम की नजरों में गड़ना, उसके हृदय में खटकना, इस हद तक कि वे शत्रुता पर तत्पर हो जाएं, उन्हें बेवकूफी मालूम होती थी। कुंवर साहब के हाथों में विनय को सीधी राह पर लाने का एक ही उपाय था, और वह यह कि सोफिया से उसका विवाह हो जाए। इस बेड़ी में जकड़कर उसकी उद्दंडता को वह शांत करना चाहते थे; लेकिन अब जो कुछ विलंब था, वह सोफिया की ओर से। सोफिया को अब भी भय था कि यद्यपि रानी मुझ पर बड़ी कृपा-दृष्टि रखती हैं, पर दिल उन्हें यह संबंध पसंद नहीं। उसका यह भय सर्वथा अकारण भी नहीं था। रानी भी सोफिया से प्रेम कर सकती थीं और करती थीं, उसका आदर कर सकती थीं और करती थीं; पर अपनी वधू में वह त्याग और विचार की अपेक्षा लज्जाशीलता, सरलता, संकोच और कुल-प्रतिष्ठा को अधिक मूल्यवान समझती थीं, संन्यासिनी वधू नहीं, भोग करने वाली वधू चाहती थीं। किंतु वह अपने हृदयगत भावों को भूलकर भी मुंह से न निकालती थीं। न ही वह इस विचार को मन में आने ही देना चाहती थीं। इसे कृतघ्नता समझती थीं।

कुंवर साहब कई दिन तक इसी संकट में पड़े रहे। मि० जॉन सेवक से बातचीत किए बिना विवाह कैसे ठीक होता? आखिर एक दिन इच्छा न होने पर भी विवश होकर उनके पास गए। संध्या हो गई थी। मि० जॉन सेवक अभी-अभी मिल से लौटे थे और मजदूरों के मकानों की स्कीम सामने रखे हुए कुछ सोच रहे थे। कुंवर साहब को देखते ही उठे, और बड़े तपाक से हाथ मिलाया। कुंवर साहब कुर्सी पर बैठते हुए बोले—आप विनय और सोफिया के विवाह के विषय में क्या निश्चय करते हैं? आप मेरे मित्र और सोफिया के पिता हैं,

और दोनों ही नाते से मुझे आपसे यह कहने का अधिकार है कि अब इस काम में देर न कीजिए।

जॉन सेवक–मित्रता के नाते आप मुझसे चाहे जो सेवा ले सकते हैं, लेकिन (गंभीर भाव से) सोफिया के पिता के नाते मुझे कोई निश्चय करने का अधिकार नहीं। उसने मुझे इस अधिकार से वंचित कर दिया। नहीं तो उसे इतने दिन हो गए, क्या एक बार भी यहां तक न आती? उसने हमसे यह अधिकार छीन लिया।

इतने में मिसेज सेवक भी आ गईं। पति की बातें सुनकर बोलीं–मैं तो मर जाऊंगी, लेकिन उसकी सूरत न देखूंगी। हमारा उससे अब कोई संबंध नहीं रहा।

कुंवर–आप लोग सोफिया पर अन्याय कर रहे हैं। जब से वह आई है, एक दिन के लिए भी घर से नहीं निकली। इसका कारण केवल संकोच है, और कुछ नहीं। शायद डरती है कि बाहर निकलूं और किसी पुराने परिचित से साक्षात् हो जाए, तो उससे क्या बातें करूंगी। थोड़ी देर के लिए कल्पना कर लीजिए कि हममें से कोई भी उसकी जगह होता, तो उसके मन में कैसे भाव आते। इस विषय में वह क्षम्य है। मैं तो इसे अपना दुर्भाग्य समझूंगा, अगर आप लोग उससे विरक्त हो जाएंगे। अब विवाह में विलंब न होना चाहिए।

मिसेज सेवक–खुदा वह दिन न लाए! मेरे लिए तो वह मर गई, उसका फातेहा पढ़ चुकी, उसके नाम को जितना रोना था, रो चुकी!

कुंवर–यह ज्यादती आप लोग मेरी रियासत के साथ कर रहे हैं। विवाह एक ऐसा उपाय है, जो विनय की उद्दंडता को शांत कर सकता है।

जॉन सेवक–मेरी तो सलाह है कि आप रियासत को कोर्ट ऑफ वार्डस् के सिपुर्द कर दीजिए। गवर्नमेंट आपके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेगी, और आपके प्रति उसका सारा संदेह शांत हो जाएगा। तब कुंवर विनयसिंह की राजनीतिक उद्दंडता का रियासत पर जरा भी असर न पड़ेगा, और यद्यपि इस समय आपकी यह व्यवस्था उन्हें बुरी मालूम होगी, लेकिन कुछ दिनों के बाद जब उनके विचारों में प्रौढ़ता आ जाएगी, तो वह आपके कृतज्ञ होंगे, और आपको अपना सच्चा हितैषी समझेंगे। हां, इतना निवेदन है कि इस काम में हाथ डालने से पहले आप अपने को खूब दृढ़ कर लें। उस वक्त अगर आपकी ओर से जरा भी पसोपेश हुआ, तो आपका सारा प्रयत्न विफल हो जाएगा; आप गवर्नमेंट के संदेह को शांत करने की जगह और भी उकसा देंगे।

कुंवर–मैं जायदाद की रक्षा के लिए सब कुछ करने को तैयार हूं। मेरी इच्छा केवल इतनी है कि विनय को आर्थिक कष्ट न होने पाए। बस, अपने लिए मैं और कुछ नहीं चाहता।

जॉन सेवक–आप प्रत्यक्ष रूप से तो कुंवर विनयसिंह के लिए कोई व्यवस्था नहीं कर सकते। हां, यह हो सकता है कि आप अपनी वृत्ति में से जितना उचित समझें, उन्हें दे दिया करें।

कुंवर–अच्छा मान लीजिए, विनय इसी मार्ग पर और भी अग्रसर होते गए, तो?

जॉन सेवक–तो उन्हें रियासत पर कोई अधिकार न होगा।

कुंवर–लेकिन उनकी संतान को यह अधिकार रहेगा?

जॉन सेवक–अवश्य।

कुंवर–गवर्नमेंट स्पष्ट रूप से यह शर्त मंजूर कर लेगी?

जॉन सेवक–न मंजूर करने का तो कोई कारण नहीं मालूम पड़ता।

कुंवर–ऐसा तो न होगा कि विनय के कामों का फल उनकी संतानों को भोगना पड़े? सरकार रियासत को हमेशा के लिए जब्त कर ले? ऐसा दो-एक जगह हुआ है। बरार ही को देखिए।

जॉन सेवक–कोई खास बात पैदा हो जाए, तो नहीं कह सकते, लेकिन सरकार की यह नीति कभी नहीं रही। बरार की बात जाने दीजिए। वह इतना बड़ा सूबा है कि किसी रियासत में उसका मिल जाना राजनीतिक कठिनाइयों का कारण हो सकता है।

कुंवर–तो मैं कल डॉक्टर गांगुली को शिमले से तार भेजकर बुलाए लेता हूं?

जॉन सेवक–आप चाहें, तो बुला लें। मैं तो समझता हूं, यहीं से मसविदा बनाकर उनके पास भेज दिया जाए। या मैं स्वयं चला जाऊं, और सारी बातें आपके इच्छानुसार तय कर आऊं।

कुंवर साहब ने धन्यवाद दिया, और घर चले आए। रात-भर वह इसी हैस-बैस में पड़े रहे कि विनय और जाह्नवी से इस निश्चय का समाचार कहूं या न कहूं। उनका जवाब उन्हें मालूम था। उनकी उपेक्षा और दुराग्रह के सिवा सहानुभूति की जरा भी आशा नहीं। कहने से फायदा ही क्या? अभी तो विनय को कुछ भय भी है। यह हाल सुनेगा, तो और भी दिलेर हो जाएगा। अंत को उन्होंने यही निश्चय किया कि अभी बतला देने से कोई फायदा नहीं, और विघ्न पड़ने की संभावना है। जब काम पूरा हो जाएगा, तो कहने-सुनने को काफी समय मिलेगा।

मिस्टर जॉन सेवक पैरों-तले घास न जमने देना चाहत थे। दूसरे ही दिन उन्होंने एक बैरिस्टर से प्रार्थना-पत्र लिखवाया, और कुंवर साहब को दिखाया। उसी दिन वह कागज डॉक्टर गांगुली के पास भेज दिया गया। डॉक्टर गांगुली ने इस प्रस्ताव को बहुत पसंद किया, और खुद शिमले से आए। यहां कुंवर साहब से परामर्श किया, और दोनों आदमी प्रांतीय गवर्नर के पास पहुंचे। गर्वनर को इसमें क्या आपत्ति हो सकती थी, विशेषत: ऐसी दशा में, जब रियासत पर एक कौड़ी भी कर्ज न था? कर्मचारियों ने रियासत के हिसाब-किताब की जांच शुरू की, और एक महीने के अंदर रियासत पर सरकारी अधिकार हो गया। कुंवर साहब लज्जा और ग्लानि के मारे इन दिनों विनय से बहुत कम बोलते, घर में बहुत कम आते, आंखें चुराते रहते थे कि कहीं यह प्रसंग न छिड़ जाए। जिस दिन सारी शर्तें तय हो गईं, कुंवर साहब से न रहा गया, विनयसिंह से बोले–रियासत पर तो सरकारी अधिकार हो गया।

विनय ने चौंककर पूछा–क्या जब्त हो गई?

कुंवर–नहीं, मैंने कोर्ट ऑफ वार्डस् के सिपुर्द कर दिया।

यह कहकर उन्होंने शर्तों का उल्लेख किया, और विनीत भाव से बोले–क्षमा करना, मैंने तुमसे इस विषय में सलाह नहीं ली।

विनय–मुझे इसका बिल्कुल दु:ख नहीं है, लेकिन आपने व्यर्थ ही अपने को गवर्नमेंट के हाथ में डाल दिया। अब आपकी हैसियत केवल एक वसीकेदार की है, जिसका वसीका किसी वक्त बंद किया जा सकता है।

कुंवर–इसका इल्जाम तुम्हारे सिर है।

विनय–आपने यह निश्चय करने के पहले ही मुझसे सलाह ली होती, तो यह नौबत न

आने पाती। मैं आजीवन रियासत से पृथक् रहने का प्रतिज्ञा-पत्र लिख देता, और आप उसको प्रकाशित करके हुक्काम को प्रसन्न रख सकते थे।

कुंवर-(सोचकर) उस दशा में भी यह संदेह हो सकता था कि मैं गुप्त रीति से तुम्हारी सहायता कर रहा हूं। इस संदेह को मिटाने के लिए मेरे पास और कौन साधन था?

विनय-तो मैं इस घर से निकल जाता, और आपसे मिलना-जुलना छोड़ देता। अब भी अगर आप इस इंतजाम को रद्द करा सकें, तो अच्छा हो। मैं अपने खयाल से नहीं, आप ही के खयाल से कह रहा हूं। मैं अपने निर्वाह की कोई राह निकाल लूंगा।

कुंवर साहब सजल नयन होकर बोले-विनय, मुझसे ऐसी कठोर बातें न करो। मैं तुम्हारे तिरस्कार का नहीं, तुम्हारी सहानुभूति और दया का पात्र होने के योग्य हूं। मैं जानता हूं कि केवल सामाजिक सेवा से हमारा उद्धार नहीं हो सकता। यह भी जानता हूं कि हम स्वच्छंद होकर सामाजिक सेवा भी नहीं कर सकते। कोई आयोजना, जिससे देश में अपनी दशा को अनुभव करने की जागृति उत्पन्न हो, जो भ्रातृत्व और जातीयता के भावों को जगाए, संदेह से मुक्त नहीं रह सकती। यह सब जानते हुए मैंने सेवा-क्षेत्र में कदम रखे थे। पर यह न जानता था कि थोड़े ही समय में यह संस्था यह रूप धारण करेगी, और इसका यह परिणाम होगा! मैंने सोचा था, मैं परोक्ष में इसका संचालन करता रहूंगा, यह न जानता था कि इसके लिए मुझे अपना सर्वस्व-और अपना ही नहीं, भावी संतान का सर्वस्व भी-होम कर देना पड़ेगा। मैं स्वीकार करता हूं कि मुझमें इतने महान् त्याग की सामर्थ्य नहीं है।

विनय ने इसका कुछ जवाब न दिया। अपने या सोफी के विषय में उन्हें कोई चिंता न थी, चिंता थी सेवा-दल के संचालन की। इसके लिए धन कहां से आएगा? उन्हें कभी भिक्षा मांगने की जरूरत न पड़ी थी। जनता से रुपये कैसे मिलते हैं, यह गुर न जानते थे। कम-से-कम पांच हजार माहवार का खर्च था। इतना धन एकत्र करने के लिए एक संस्था की अलग ही जरूरत थी। अब उन्हें अनुभव हुआ कि धन-संपत्ति इतनी तुच्छ वस्तु नहीं है। पांच हजार रुपये माहवार, साठ हजार रुपये साल, के लिए बारह लाख का स्थायी कोष होना आवश्यक है। कुछ बुद्धि काम न करती थी। जाह्नवी के पास निज का कुछ धन था, पर वह उसे देना न चाहती थीं। और, अब तो उसकी रक्षा करने की और भी जरूरत थी, क्योंकि वह विनय को दरिद्र नहीं बनाना चाहती थीं।

तीसरे पहर का समय था। विनय और इन्द्रदत्त, दोनों रुपयों की चिंता में मग्न बैठे हुए थे। सहसा सोफिया ने आकर कहा-मैं एक उपाय बताऊं?

इन्द्रदत्त-भिक्षा मांगने चलें?

सोफिया-क्यों न एक ड्रामा खेला जाए। ऐक्टर हैं ही, कुछ परदे बनवा लिए जाएं, मैं भी परदे बनाने में मदद दूंगी।

विनय-सलाह तो अच्छी है, लेकिन नायिका तुम्हें बनना पड़ेगा।

सोफिया-नायिका का पार्ट इन्दुरानी खेलेंगी, मैं परिचारिका का पार्ट लूंगी।

इन्द्रदत्त-अच्छा, कौन-सा नाटक खेला जाए? भट्टजी का 'दुर्गावती' नाटक?

विनय-मुझे तो 'प्रसाद' का 'अजातशत्रु' बहुत पसंद है।

सोफिया-मुझे 'कर्बला' बहुत पसंद आया। वीर और करुणा दोनों ही रसों का अच्छा समावेश है।

इतने में एक डाकिया अंदर दाखिल हुआ, और एक मोहरबंद रजिस्टर्ड लिफाफा विनय के हाथ में रखकर चला गया। लिफाफे पर प्रभु सेवक की मोहर थी। लंदन से आया था।

विनय—अच्छा। बताओ, इसमें क्या होगा?

सोफिया—रुपये तो होंगे नहीं, और चाहे जो हो। वह गरीब रुपये कहां पाएगा? वहां होटल का खर्च ही मुश्किल से दे पाता होगा।

विनय—और मैं कहता हूं कि रुपयों के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता।

इन्द्रदत्त—कभी नहीं। कोई नई रचना होगी।

विनय—तो रजिस्ट्री कराने की क्या जरूरत थी?

इन्द्रदत्त—रुपये होते, तो बीमा न कराया होता?

विनय—मैं कहता हूं, रुपये हैं, शर्त बद लो।

इन्द्रदत्त—मेरे पास कुल पांच रुपये हैं, पांच-पांच की बाजी है।

विनय—यह नहीं। अगर इसमें रुपये हों, तो मैं तुम्हारी गर्दन पर सवार होकर यहां से कमरे के उस सिरे तक जाऊंगा। न हुए, तो तुम मेरी गर्दन पर सवार होना। बोलो।

इन्द्रदत्त—मंजूर है, खोलो लिफाफा।

लिफाफा खोला गया, तो चेक निकला। पूरे दस हजार का। लंदन बैंक के नाम। विनय उछल पड़े। बोले—मैं न कहता था! यहां सामुद्रिक विद्या पढ़े हुए हैं। आइए, लाइए गर्दन।

इन्द्रदत्त—ठहरो-ठहरो, गर्दन तोड़ के रख दोगे क्या! जरा खत तो पढ़ो, क्या लिखा है, कहां हैं, क्या कर रहे हैं? लगे सवारी गांठने।

विनय—जी नहीं, यह नहीं होने का। आपको सवारी देनी होगी। गर्दन टूटे या रहे, इसका मैं जिम्मेदार नहीं। कुछ दुबले-पतले तो हो नहीं, खासे देव तो बने हुए हो।

इन्द्रदत्त—भई, आज मंगल के दिन नजर न लगाओ। कुल दो मन पैंतीस सेर तो रह गया हूं। राजपूताना जाने के पहले तीन मन से ज्यादा था।

विनय—खैर, देर न कीजिए, आइए, गर्दन झुकाकर खड़े हो जाइए।

इन्द्रदत्त—सोफिया, मेरी रक्षा करो; तुम्हीं ने पहले कहा था, इसमें रुपये न होंगे। वही सुनकर मैंने भी कह दिया था।

सोफिया—मैं तुम्हारे झगड़ों में नहीं पड़ती। तुम जानो, वह जानें।

यह कहकर उसने खत पढ़ना शुरू किया—

प्रिय बंधुवर, मैं नहीं जानता कि मैं यह पत्र किसे लिख रहा हूं। कुछ खबर नहीं कि आजकल व्यवस्थापक कौन है। मगर सेवक-दल से मुझे अब भी वही प्रेम है, जो पहले था। उसकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं। आप मेरा कुशल-समाचार जानने के लिए उत्सुक होंगे। मैं पूना ही में था कि वहां के गर्वनर ने मुझे मुलाकात करने को बुलाया। उनसे देर तक साहित्य-चर्चा होती रही। एक ही मर्मज्ञ हैं। हमारे देश में ऐसे रसिक कम निकलेंगे। विनय (उसका कुछ हाल नहीं मालूम हुआ) के सिवा मैंने और किसी को इतना काव्य-रस-चतुर नहीं पाया। कितनी सजीव सहृदयता थी। गवर्नर महोदय की प्रेरणा से मैं यहां आया, और जब से आया हूं, आतिथ्य का अविरल प्रवाह हो रहा है। वास्तव में जीवित राष्ट्र ही गुणियों का आदर करना जानते हैं। बड़े ही सहृदय, उदार, स्नेहशील प्राणी हैं। मुझे इस जाति से अब श्रद्धा हो गई

है, और मुझे विश्वास हो गया है कि इस जाति के हाथों हमारा अहित कभी नहीं हो सकता। कल युनिवर्सिटी की ओर से मुझे एक अभिनंदन-पत्र दिया गया। साहित्य-सेवियों का ऐसा समारोह मैंने काहे को कभी देखा था। महिलाओं का स्नेह और सत्कार देखकर मैं मुग्ध हो गया। दो दिन पहले इंडिया-हाउस में भोज था। आज साहित्य-परिषद् ने निमंत्रित किया है। कल लिबरल-एसोसिएशन दावत देगा। परसों पारसी समाज का नंबर है। उसी दिन यूनियन क्लब की ओर से पार्टी दी जायगी। मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि मैं इतनी जल्द बड़ा आदमी हो जाऊंगा। मैं ख्याति और सम्मान के निंदकों में नहीं हूं। इसके सिवा गुणियों को और क्या पुरस्कार मिल सकता है? मुझे अब मालूम हुआ कि मैं क्या करने के लिए संसार में आया हूं, मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है। अब तक भ्रम में पड़ा हुआ था। अब से मेरे जीवन का मिशन होगा प्राच्य और पाश्चात्य को प्रेम-सूत्र में बांधना, पारस्परिक द्वंद्व को मिटाना और दोनों में समान भावों को जाग्रत करना। मैं यही व्रत धारण करूंगा। पूर्व ने किसी जमाने में पश्चिम को धर्म का मार्ग दिखाया था, अब वह उसे प्रेम का शब्द सुनाएगा, प्रेम का पथ दिखाएगा। मेरी कविताओं का पहला संग्रह मैकमिलन कंपनी द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होगा। गवर्नर महोदय मेरी उन कविताओं की भूमिका लिखेंगे। इस संग्रह के लिए प्रकाशकों ने मुझे चालीस हजार रुपये दिए हैं। इच्छा तो यही थी कि ये सब रुपये अपनी प्यारी संस्था की भेंट करता, पर विचार हो रहा है कि अमेरिका की सैर भी करूं। इसलिए इस समय जो कुछ भेजता हूं, उसे स्वीकार कीजिए। मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। इसलिए धन्यवाद की आशा नहीं रखता। हां, इतना निवेदन करना आवश्यक समझता हूं कि आपको सेवा के उच्चादर्शों का पालन करना चाहिए, और राजनीतिक परिस्थितियों से विरक्त होकर 'वसुधैव कुटुंबकम्' के प्रचार को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। मेरे व्याख्यानों की रिपोर्ट आपको यहां के समाचार-पत्रों में मिलेगी। आप देखेंगे कि मेरे राजनीतिक विचारों में कितना अंतर हो गया है। मैं अब स्वदेशीय नहीं, सर्वदेशीय हूं, अखिल संसार मेरा स्वदेश है, प्राणिमात्र से मेरा बंधुत्व है, और भौगोलिक तथा जातीय सीमाओं को मिटाना मेरे जीवन का उद्देश्य है। ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि अमेरिका से सकुशल लौट आऊं।

आपका सच्चा बंधु
प्रभु सेवक।

सोफिया ने पत्र मेज पर रख दिया, और गंभीर भाव से बोली—इसके दोनों ही अर्थ हो सकते हैं, आत्मिक उत्थान या पतन। मैं तो पतन ही समझती हूं।

विनय—क्यों? उत्थान क्यों नहीं?

सोफिया—इसलिए कि प्रभु सेवक की आत्मा शृंगारप्रिय है। वह कभी स्थिरचित्त नहीं रहे। जो प्राणी सम्मान से इतना फूल उठता है, वह उपेक्षा से इतना ही हताश भी हो जायगा।

विनय—यह कोई बात नहीं। कदाचित् मैं भी इसी तरह फूल उठता। यह तो बिल्कुल स्वाभाविक है। यहां उनकी क्या कद्र हुई? मरते दम तक गुमनाम पड़े रहते।

इन्द्रदत्त—जब हमारे काम के नहीं रहे, तो प्रसिद्ध हुआ करें। ऐसे विश्वप्रेमियों से कभी किसी का उपकार न हुआ है, न होगा। जिसमें अपना नहीं, उसमें पराया क्या होगा?

सोफिया—सार्वदेशिकता हमारे कई कवियों को ले डूबी, इन्हें भी ले डूबेगी। इनका होना

न होना हमारे लिए दोनों बराबर है, बल्कि मुझे तो अब इनसे हानि पहुंचने की शंका है। मैं जाकर अभी इस पत्र का जवाब लिखती हूं।

यह कहते हुए सोफिया वह पत्र हाथ में लिए हुए कमरे में चली गई। विनय ने कहा—क्या करूं, रुपये वापस कर दूं?

इन्द्रदत्त—रुपये क्यों वापस करोगे। उन्होंने कोई शर्त तो की नहीं है, मित्रोचित सलाह दी है, और बहुत अच्छी सलाह दी है। हमारा भी तो वही उद्देश्य है। अंतर केवल इतना है कि वह समता के बिना ही बंधुत्व का प्रचार करना चाहते हैं, हम बंधुत्व के लिए समता को आवश्यक समझते हैं।

विनय—यों क्यों नहीं कहते कि बंधुत्व समता ही पर स्थित है?

इन्द्रदत्त—सोफिया देवी खूब खबर लेंगी।

विनय—अच्छा अभी रुपये रखे लेता हूं, पीछे देखा जायगा।

इन्द्रदत्त—दो-चार ऐसे ही मित्र और मिल जाएं, तो हमारा काम चल निकले।

विनय—सोफिया की ड्रामा खेलने की सलाह कैसी है?

इन्द्रदत्त—क्या पूछना, उनका अभिनय देखकर लोग दंग रह जाएंगे।

विनय—तुम मेरी जगह होते, तो उसे स्टेज पर लाना पसंद करते?

इन्द्रदत्त—पेशा समझकर तो नहीं, लेकिन परोपकार के लिए स्टेज पर लाने में शायद मुझे आपत्ति न होती।

विनय—तो तुम मुझसे कहीं ज्यादा उदार हो। मैं तो इसे किसी हालत में पसंद न करूंगा। हां, यह तो बताओ, तुम्हें सोफिया आजकल कुछ उदास मालूम होती है? कल इसने मुझसे जो बातें कीं, वे बहुत निराशाजनक थीं। उसको भय है कि उसी के कारण रियासत का यह हाल हुआ है। माताजी तो उस पर जान देती हैं, पर वह उनसे दूर भागती है। फिर वही आध्यात्मिक बातें करती है, जिनका आशय आज तक मेरी समझ में नहीं आया—मैं तुम्हारे पांव की बेड़ी नहीं बनना चाहती, मेरे लिए केवल तुम्हारी स्नेह-दृष्टि काफी है, और जाने क्या-क्या। और, मेरा यह हाल है कि घंटे-भर भी उसे न देखूं, तो चित्त विकल हो जाता है।

इतने में मोटर की आवाज आई, और एक क्षण में इन्दु आ पहुंची।

इन्द्रदत्त—आइए, इन्दुरानी, आइए। आप ही का इंतजार था।

इन्दु—झूठे हो, मेरी इस वक्त जरा भी चर्चा न थी, रुपये की चिंता में पड़े हुए हो।

इन्द्रदत्त—तो मालूम होता है, आप कुछ लाई हैं। लाइए, वास्तव में हम लोग बहुत चिंतित हो रहे थे।

इन्दु—मुझसे मांगते हो? मेरा हाल जानकर भी। एक बार चंदा देकर हमेशा के लिए सीख गई। (विनय से) सोफिया कहां हैं? अम्मांजी तो अब राजी हैं न?

विनय—किसी के दिल की बात कोई क्या जाने !

इन्दु—मैं तो समझती हूं, अम्मांजी राजी भी हो जायं, तो भी सोफी को न पाओगे। तुम्हें इन बातों से दुःख तो अवश्य होगा, लेकिन किसी आघात के लिए पहले से तैयार रहना इससे कहीं अच्छा है कि वह आकस्मिक रीति से सिर पर आ पड़े।

विनय ने आंसू पीते हुए कहा—मुझे भी कुछ ऐसा ही अनुमान होता है।

इन्दु—सोफिया कल मुझसे मिलने गई थी। उसकी बातों ने उसे भी रुलाया, और मुझे भी।

बड़े धर्म-संकट में पड़ी हुई है। न तुम्हें निराश करना चाहती है, न माताजी को अप्रसन्न करना चाहती है। न-जाने क्यों उसे अब भी संदेह है कि माताजी उसे अपनी वधू नहीं बनाना चाहतीं। मैं समझती हूं कि यह केवल उसका भ्रम है, वह स्वयं अपने मन के रहस्य को नहीं समझती। वह स्त्री नहीं है, केवल एक कल्पना है, भावों और आकांक्षाओं से भरी हुई। तुम उसका रसास्वादन कर सकते हो, पर उसे अनुभव नहीं कर सकते, उसे प्रत्यक्ष नहीं देख सकते। कवि अपने अंतरतम भावों को व्यक्त नहीं कर सकता। वाणी में इतना सामर्थ्य ही नहीं। सोफिया वही कवि की अंतरतम भावना है।

इन्द्रदत्त—और आपकी ये सब बातें भी कोरी कवि-कल्पना हैं। सोफिया न कवि-कल्पना है, और न कोई गुप्त रहस्य; न देवी है, न देवता; न अप्सरा है, न परी। जैसी अन्य स्त्रियां होती हैं, वैसी ही एक स्त्री वह भी है, वही उसके भाव हैं, वही उसके विचार हैं। आप लोगों ने कभी विवाह की तैयारी की, कोई भी ऐसी बात की, जिससे मालूम हो कि आप लोग विवाह के लिए उत्सुक हैं? तो जब आप लोग स्वयं उदासीन हो रहे हैं, तो उसे क्या गरज पड़ी हुई है कि इसकी चर्चा करती फिरे। मैं तो अक्खड़ आदमी हूं। उसे लाख विनय से प्रेम हो, पर अपने मुंह से विवाह की बात न कहेगी। आप लोग वही चाहते हैं, जो किसी तरह नहीं हो सकता। इसलिए अपनी लाज की रक्षा करने को उसने यही युक्ति निकाल रखी है। आप लोग तैयारियां कीजिए, फिर उसकी ओर से आपत्ति हो, तो अलबत्ता उससे शिकायत हो सकती है। जब देखती है, आप लोग स्वयं धुकुर-पुकुर कर रहे हैं, तो वह भी इन युक्तियों से अपनी आबरू बचाती है।

इन्दु—ऐसा कहीं भूलकर भी न करना, नहीं तो वह इस घर में भी न रहेगी।

इतने में सोफिया वह पत्र लिए हुए आती दिखाई दी, जो उसने प्रभु सेवक के नाम लिखा था। इन्दु ने बात पलट दी, और बोली—तुम लोगों को तो अभी खबर न होगी, मि॰ सेवक को पांड़ेपुर मिल गया।

सोफिया ने इन्दु से गले मिलते हुए कहा—पापा वह गांव लेकर क्या करेंगे?

इन्दु—अभी तुम्हें मालूम ही नहीं? वह मोहल्ला खुदवाकर फेंक दिया जायगा, और वहां मिल के मजदूरों के लिए घर बनेंगे।

इन्द्रदत्त—राजा साहब ने मंजूर कर लिया? इतनी जल्द भूल गए! अबकी शहर में रहना मुश्किल हो जाएगा।

इन्दु—सरकार का आदेश था, कैसे न मंजूर करते।

इन्द्रदत्त—साहब ने बड़ी दौड़ लगाई। सरकार पर भी मंत्र चला दिया।

इन्दु—क्यों, इतनी बड़ी रियासत पर सरकार का अधिकार नहीं करा दिया? एक राजद्रोही राजा को अपंग नहीं बना दिया? एक क्रांतिकारी संस्था की जड़ नहीं खोद डाली? सरकार पर इतने एहसान करके यों ही छोड़ देते? चतुर व्यवसायी न हुए, कोई राजा-ठाकुर हुए! सबसे बड़ी बात तो यह है कि कंपनी ने पच्चीस सैकड़े नफा देकर बोर्ड के अधिकांश सदस्यों को वशीभूत कर लिया।

विनय—राजा साहब को पदत्याग कर देना चाहिए था। इतनी बड़ी जिम्मेदारी सिर पर लेने से तो यह कहीं अच्छा होता।

इन्दु—कुछ सोच-समझकर तो स्वीकार किया होगा। सुना, पांड़ेपुर वाले अपने घर छोड़ने पर राजी नहीं होते।

इन्द्रदत्त—न होना चाहिए।

सोफिया—जरा चलकर देखना चाहिए, वहां क्या हो रहा है? लेकिन कहीं मुझे पापा नजर आ गए तो? नहीं, मैं न जाऊंगी, तुम्हीं लोग जाओ।

तीनों आदमी पांड़ेपुर की तरफ चले।

बयालीस

अदालत ने अगर दोनों युवकों को कठिन दंड दिया, तो जनता ने भी सूरदास को उससे कम कठिन दंड न दिया। चारों ओर थुड़ी-थुड़ी होने लगी। मोहल्ले वालों का तो कहना ही क्या, आस-पास के गांव वाले भी दो-चार खरी-खोटी सुना जाते थे—मांगता तो है भीख, पर अपने को कितना लगाता है ! जरा चार भले आदमियों ने मुंह लगा लिया, तो घमंड के मारे पांव धरती पर नहीं रखता। सूरदास को मारे शर्म के घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया। इसका एक अच्छा फल यह हुआ कि बजरंगी और जगधर का क्रोध शांत हो गया। बजरंगी ने सोचा, अब क्या मारूं-पीटूं, उसके मुंह में तो यों ही कालिख लग गई, जगधर की अकेले इतनी हिम्मत कहां ! दूसरा फल यह हुआ कि सुभागी फिर भैरो के घर जाने को राजी हो गई। उसे ज्ञात हो गया कि बिना किसी आड़ के मैं इन झोंकों से नहीं बच सकती। सूरदास की आड़ केवल टट्टी की आड़ थी।

एक दिन सूरदास बैठा हुआ दुनिया की हठधर्मी और अनीति का दुखड़ा रो रहा था कि सुभागी बोली—भैया, तुम्हारे ऊपर मेरे कारन चारों ओर से बौछार पड़ रही है, बजरंगी और जगधर दोनों मारने पर उतारूं हैं, न हो तो मुझे भी अब मेरे घर पहुंचा दो। यही न होगा, मारे-पीटेगा, क्या करूंगी, सह लूंगी, इस बे-आबरूई से तो बचूंगी।

भैरो तो पहले ही से मुंह फैलाए हुए था, बहुत खुश हुआ, आकर सुभागी को बड़े आदर से ले गया। सुभागी जाकर बुढ़िया के पैरों पर गिर पड़ी, और खूब रोई। बुढ़िया ने उठाकर छाती से लगा लिया। बेचारी अब आंखों से मजबूर हो हो गई थी। भैरो जब कहीं चला जाता, तो दुकान पर कोई बैठने वाला न रहता, लोग अंधेरे में लकड़ी उठा ले जाते थे। खाना तो खैर किसी तरह बना लेती थी, किंतु इस नोंच-खसोट का नुकसान न सहा जाता था। सुभागी घर की देखभाल तो करेगी। रहा भैरो, उसके हृदय में अब छल-कपट का लेश भी न रहा था। सूरदास पर उसे इतनी श्रद्धा हो गई थी कि कदाचित् किसी देवता पर भी न होगी। अब वह अपनी पिछली बातों पर पछताता और मुक्त कंठ से सूरदास के गुण गाता था।

इतने दिनों तक सूरदास घर-बार की चिंताओं से मुक्त था, पकी-पकाई रोटियां मिल जाती थीं, बरतन धुल जाते थे, घर में झाड़ू लग जाती थी। अब फिर वही पुरानी विपत्ति सिर पर सवार हुई। मिठुआ अब स्टेशन ही पर रहता था। घीसू और विद्याधर के दंड से उसकी आंखें खुल गई थीं। कान पकड़े, अब कभी जुआ और चरस के नगीच न जाऊंगा। बाजार से चबेना लेकर खाता और स्टेशन के बरामदे में पड़ा रहता था। कौन नित्य तीन-चार मील चले ! जरा भी चिंता न थी कि सूरदास की कैसे निभती है, अब मेरे हाथ-पांव हुए, कुछ मेरा धर्म भी उसके

प्रति है या नहीं, आखिर किस दिन के लिए उसने मुझे अपने लड़के की भांति पाला था। सूरदास कई बार खुद स्टेशन पर गया, और उससे कहा कि सांझ को घर चला आया कर, क्या अब भी भीख मांगूं, मगर उसकी बला सुनती थी। एक बार उसने साफ कह दिया, यहां मेरा गुजारा तो होता ही नहीं, तुम्हारे लिए कहां से लाऊं, मेरे लिए तुमने कौन-सी बड़ी तपस्या की थी, एक टुकड़ा रोटी दे देते थे, कुत्ते को न दिया, मुझी को दे दिया। तुमसे मैं कहने गया था कि मुझे खिलाओ-पिलाओ, छोड़ क्यों न दिया, क्या जिन लड़कों के मां-बाप नहीं होते, वे सब मर ही जाते हैं, जैसे तुम एक टुकड़ा दे देते थे, वैसे बहुत टुकड़े मिल जाते। इस बातों से सूरदास का दिल ऐसा टूटा कि फिर उससे घर आने को न कहा।

इधर सोफिया कई बार सूरदास से मिल चुकी थी। वह और तो कहीं न जाती, पर समय निकालकर सूरदास से अवश्य मिल जाती। ऐसे मौके से आती कि सेवकजी से सामना न होने पाए। जब आती, सूरदास के लिए कोई-न-कोई सौगात जरूर लाती। उसने इन्द्रदत्त से उसका सारा वृत्तांत सुना था। उसका अदालत में जनता से अपील करना, चंदे के रुपये स्वयं न लेकर दूसरे को दे देना, जमीन के रुपये, जो सरकार से मिले थे, दान दे देना—तब से उसे उससे और भी भक्ति हो गई थी। गंवारों की धर्मपिपासा ईंट-पत्थर पूजने से शांत हो जाती है, भद्रजनों की भक्ति सिद्ध पुरुषों की सेवा से। उन्हें प्रत्येक दीवाना पूर्वजन्म का कोई ऋषि मालूम होता है। उसकी गालियां सुनते हैं, उसके जूठे बरतन धोते हैं, यहां तक कि उसके धूल-धूसरित पैरों को धोकर चरणामृत लेते हैं। उन्हें उसकी काया में कोई देवात्मा बैठी हुई मालूम होती है। सोफिया को सूरदास से कुछ ऐसी ही भक्ति हो गई थी। एक बार वह उसके लिए संतरे और सेब ले गई। सूरदास घर लाया, पर आप न खाए, मिठुआ को याद आई, उसकी कठोर बातें विस्मृत हो गईं, सबेरे उन्हें लिए स्टेशन गया, और उसे दे आया। एक बार सोफी के साथ इन्दु भी आई थी। सरदी के दिन थे। । सूरदास खड़ा कांप रहा था। इन्दु ने वह कंबल, जो वह अपने पैरों पर डाले हुए थी, सूरदास को दे दिया। सूरदास को वह कंबल ऐसा अच्छा मालूम हुआ कि खुद न ओढ़ सका। मैं बुड्ढा भिखारी, यह कंबल ओढ़कर कहां जाऊंगा? कौन भीख देगा? रात को जमीन पर लेटूं, दिन-भर सड़क के किनारे खड़ा रहूं, मुझे यह कंबल लेकर क्या करना है? जाकर मिठुआ को दे आया। इधर तो अब भी इतना प्रेम था, उधर मिठुआ इतना स्वार्थी था कि खाने को भी न पूछता। सूरदास समझता कि लड़का है, यही इसके खाने-पहनने के दिन हैं। मेरी खबर नहीं लेता न सही, खुद तो आराम से खाता-पहनता है। अपना है, तो कब न काम आएगा।

फागुन का महीना था, संध्या का समय। एक स्त्री घास बेचकर जा रही थी। मजदूरों ने अभी-अभी काम से छुट्टी पाई थी। दिन भर चुपचाप चरखियों के सामने खड़े-खड़े उकता गए थे, विनोद के लिए उत्सुक हो रहे थे। घसियारिन को देखते ही उस पर अश्लील कबीरों की बौछार शुरू कर दी। सूरदास को यह बुरा मालूम हुआ, बोला—यारो, क्यों अपनी जबान खराब करते हो? वह बिचारी तो अपनी राह चली जाती है, और तुम लोग उसका पीछा नहीं छोड़ते। वह भी तो किसी की बहू-बेटी होगी।

एक मजदूर बोला—भीख मांगो भीख, जो तुम्हारे करम में लिखा है। हम गाते हैं, तो तुम्हारी नानी क्यों मरती है?

सूरदास—गाने को थोड़े ही कोई मने करता है।

मजदूर—तो हम क्या लाठी चलाते हैं?

सूरदास–उस औरत को छेड़ते क्यों हो?

मजदूर–तो तुम्हें क्यों बुरा लगता है? तुम्हारी बहन है कि बेटी?

सूरदास–बेटी भी है, बहन भी है। हमारी हुई तो, किसी दूसरे भाई की हुई तो।

उसके मुंह से वाक्य का अंतिम शब्द निकलने भी न पाया था कि मजदूर ने चुपके से जाकर उसकी एक टांग पकड़कर खींच ली। बेचारा बेखबर खड़ा था। कंकर पर इतनी जोर से मुंह के बल गिरा कि सामने के दो दांत टूट गए, छाती में बड़ी चोट आई, होंठ कट गए, मुर्च्छा-सी आ गई। पंद्रह-बीस मिनट तक वहीं अचेत पड़ा रहा। कोई मजदूर निकट भी न आया, सब अपनी राह चले गए। संयोग से नायकराम उसी समय शहर से आ रहे थे। सूरदास को सड़क पर पड़े देखा, तो चकराए कि माजरा क्या है, किसी ने मारा-पीटा तो नहीं? बजरंगी के सिवा और किसमें इतना दम है। बुरा किया। कितना ही हो, अपने धर्म का सच्चा है। दया आ गई। समीप आकर हिलाया, तो सूरदास को होश आया, उठकर नायकराम का एक हाथ पकड़ लिया, और दूसरे हाथ से लाठी टेकता हुआ चला।

नायकराम ने पूछा–किसी ने मारा है क्या सूरे, मुंह से लहू बह रहा है?

सूरदास–नहीं भैया, ठोकर खाकर गिर पड़ा था।

नायकराम–छिपाओ मत, अगर बजरंगी या जगधर ने मारा हो, तो बता दो। दोनों को साल-साल भर के लिए भिजवा न दूं, तो ब्राह्मण नहीं।

सूरदास–नहीं भैया, किसी ने नहीं मारा, झूठ किसे लगा दूं?

नायकराम–मिल वालों में से तो किसी ने नहीं मारा? ये सब बहुत राह चलते आदमियों को छेड़ा करते हैं। कहता हूं, लुटवा दूंगा, इन झोपड़ों में आग न लगा दूं, तो कहना। बताओ, किसने यह काम किया? तुम तो आज तक कभी ठोकर खाकर नहीं गिरे। सारी देह लहू में लत-पत हो गई है।

सूरदास ने किसी का नाम न बतलाया। जानता था कि नायकराम क्रोध में आ जायगा, तो मरने-मारने को न डरेगा। घर पहुंचा, तो सारा मोहल्ला दौड़ा। हाय ! हाय ! किस मुद्दई ने बेचारे अंधे को मारा, देखो तो, मुंह कितना सूज आया है ! लोगों ने सूरदास को बिछावन पर लिटा दिया। भैरो दौड़ा, बजरंगी ने आग जलाई, अफीम और तेल की मालिश होने लगी। सभी के दिल उसकी तरफ से नर्म पड़ गए। अकेला जगधर खुश था, जमुनी से बोला–भगवान् ने हमारा बदला लिया है। हम सबर कर गए, तो भगवान् तो न्याय करने वाले हैं।

जमुनी चिढ़कर बोली–चुप भी रहो, आए हो बड़े न्यायी की पूंछ बनके। बिपत में बैरी पर भी न हंसना चाहिए, वह हमारा बैरी नहीं है। सच बात के पीछे जान दे देगा, चाहे किसी को अच्छा लगे या बुरा। आज हममें से कोई बीमार पड़ जाय, तो देखो, रात-की-रात बैठा रहता है कि नहीं। ऐसे आदमी से क्या बैर !

जगधर लज्जित हो गया।

पंद्रह दिन तक सूरदास घर से निकलने के लायक न हुआ। कई दिन मुंह से खून आता रहा। सुभागी दिन-भर उसके पास बैठी रहती। भैरो रात को उसके पास सोता। जमुनी नूर के तड़के गरम दूध लेकर आती, और उसे अपने हाथों से पिला जाती। बजरंगी बाजार से दवाएं लाता। अगर कोई उसे देखने न आया, तो वह मिठुआ था। उसके पास तीन बार आदमी गया, पर उसकी इतनी हिम्मत भी न हुई कि सेवा-शुश्रूषा के लिए नहीं, तो कुशल-समाचार पूछने

ही के लिए चला आता। डरता था कि जाऊंगा, तो लोगों के कहने-सुनने से कुछ-न-कुछ देना ही पड़ेगा। उसे अब रुपये का चस्का लग गया था। सूरदास के मुंह से भी इतना निकल ही गया—दुनिया अपने मतलब की है। बाप नन्हां-सा छोड़कर मर गया। मां-बेटे की परवस्ती की, मां मर गई; तो अपने लड़के की तरह पाला-पोसा, आप लड़कोरी बन गया, उसकी नींद सोता था, उसकी नींद जागता था; आज चार पैसे कमाने लगा, तो बात भी नहीं पूछता। खैर, हमारे भी भगवान् हैं। जहां रहे, सुखी रहे। उसकी नीयत उसके साथ, मेरी नीयत मेरे साथ। उसे मेरी कलक न हो, मुझे तो उसकी कलक है। मैं कैसे भूल जाऊं कि मैंने लड़के की तरह उसको पाला है।

इधर तो सूरदास रुग्ण-शैया पर पड़ा हुआ था, उधर पांड़ेपुर का भाग्य-निर्णय हो रहा था। एक दिन प्रातःकाल राजा महेन्द्रकुमार, मि० जॉन सेवक, जायदाद के तखमीने का अफसर, पुलिस के कुछ सिपाही और एक दारोगा पांड़ेपुर आ पहुंचे। राजा साहब ने निवासियों को जमा करके समझाया—सरकार को एक खास सरकारी काम के लिए इस मुहल्ले की जरूरत है। उसने फैसला किया है कि तुम लोगों को उचित दाम देकर यह जमीन ले ली जाए, लाट साहब का हुक्म आ गया है। तखमीने के अफसर साहब इसी काम के लिए तैनात किए गए हैं। कल से उनका इजलास यहीं हुआ करेगा। आप सब मकानों की कीमत का तखमीना करेंगे, और उसी के मुताबिक तुम्हें मुआवजा मिल जायगा। तुम्हें जो कुछ अर्ज-मारूज करना हो, आप ही से करना। आज से तीन महीने के अंदर तुम्हें अपने-अपने मकान खाली कर देने पड़ेंगे, मुआवजा पीछे मिलता रहेगा। जो आदमी इतने दिनों के अंदर मकान न खाली करेगा, उसके मुआवजे के रुपये जब्त कर लिए जाएंगे, और वह जबरदस्ती घर से निकाल दिया जाएगा। अगर कोई रोक-टोक करेगा, तो पुलिस उसका चालान करेगी, उसको सजा हो जाएगी। सरकार तुम लोगों को बेवजह तकलीफ नहीं दे रही है, उसको इस जमीन की सख्त जरूरत है। मैं सिर्फ सरकारी हुक्म की तामील कर रहा हूं।

गांव वालों को पहले ही से इसकी टोह मिल चुकी थी, किंतु इस ख्याल से मन को बोध दे रहे थे कि कौन जाने, खबर ठीक है या नहीं। ज्यों-ज्यों विलंब होता था, उनकी आलस्य-प्रिय आत्माएं निश्चिंत होती जाती थीं। किसी को आशा थी कि हाकिमों से कह-सुनकर अपना घर बचा लूंगा, कोई कुछ दे-दिलाकर अपनी रक्षा करने की फिक्र कर रहा था, कोई उज्रदारी करने का निश्चय किए हुए था, कोई यह सोचकर शांत बैठा हुआ था कि न-जाने क्या होगा, पहले से क्यों अपनी जान हलकान करें, जब सिर पर पड़ेगी तब देखी जाएगी। तिस पर भी आज जो लोगों ने सहसा यह हुक्म सुना, तो वज्राघात हो गया। सब-के-सब हाथ बांधकर राजा साहब के सामने खड़े हो गए, और कहने लगे—सरकार, यहां रहते हमारी कितनी पीढ़ियां गुजर गईं, अब सरकार हमको निकाल देगी, तो कहां जाएंगे? दो-चार आदमी हों तो कहीं घुस पड़ें, मुहल्ले-का-मुहल्ला उजड़कर कहां जाएगा? सरकार जैसे हमें निकालती है वैसे कहीं ठिकाना भी बता दे।

राजा साहब बोले—मुझे स्वयं इस बात का बड़ा दुःख है, और मैंने तुम्हारी ओर से सरकार की सेवा में उज्र भी किया था, मगर सरकार कहती है, इस जमीन के बगैर हमारा काम नहीं चल सकता। मुझे तुम्हारे साथ सच्ची सहानुभूति है, पर मजबूर हूं, कुछ नहीं कर सकता, सरकार

मानना पड़ेगा।

इसका जवाब देने की किसी को हिम्मत न पड़ती थी। लोग एक दूसरे को कुहनियों से ठेलते थे कि आगे बढ़कर पूछो, मुआवजा किस हिसाब से मिलेगा, पर किसी के कदम आगे न बढ़ते थे। नायकराम यों तो बहुत चलते हुए आदमी थे, पर इस अवसर पर वह भी मौन साधे हुए खड़े थे। वह राजा साहब से कुछ कहना-सुनना व्यर्थ समझकर तखमीने के अफसर से तखमीने की दर में कुछ बेशी करा लेने की युक्ति सोच रहे थे। कुछ दे-दिलाकर उनसे काम निकालना ज्यादा सरल जान पड़ता था। इस विपत्ति में सभी को सूरदास की याद आती थी। वह होता, तो जरूर हमारी ओर से अरज-बिनती करता, इतना गुरदा और किसी का नहीं हो सकता। कई आदमी लपके हुए सूरदास के पास गए, और उससे यह समाचार कहा।

सूरदास ने कहा—और सब लोग तो हैं ही, मैं चलकर क्या कर लूंगा। नायकराम क्यों सामने नहीं आते? यों तो बहुत गरजते हैं, अब क्यों मुंह नहीं खुलता? मुहल्ले ही में रोब दिखाने को हैं?

ठाकुरदीन—सबकी देखी गई। सबके मुंह में दही जमा हुआ है। हाकिमों से बोलने को हिम्मत चाहिए, अकिल चाहिए।

शिवसेवक बनिया ने कहा—मेरे तो उनके सामने खड़े होते पैर थरथर कांपते हैं। न-जाने कोई कैसे हाकिमों से बातें करता है। मुझे तो वह जरा डांट दें, तो दम ही निकल जाए।

झींगुर तेली बोला—हाकिमों का बड़ा रोब होता है। उनके सामने तो अकिल ही खप्त हो जाती है।

सूरदास—मुझसे तो उठा ही नहीं जाता, चलना भी चाहूं, तो कैसे चलूंगा?

सूरदास यों लाठी के सहारे घर में से बाहर आने-जाने लगा था, पर इस वक्त अनायास उसे कुछ मान करने की इच्छा हुई। कहने से धोबी गधे पर नहीं चढ़ता।

ठाकुरदीन—यह कौन मुसकिल काम है! हम लोग तुम्हें उठा ले चलेंगे।

सूरदास—भाई, करोगे सब जने अपने-अपने मन ही की, मुझे क्यों नक्कू बनाते हो? जो सबकी गत होगी, वही मेरा भी गत होगी। भगवान् की जो मरजी है, वह होगी।

ठाकुरदीन ने बहुत चिरौरी की, पर सूरदास चलने पर राजी न हुआ। तब ठाकुरदीन को क्रोध आ गया। बेलाग बात कहते थे। बोले—अच्छी बात है, मत जाओ। क्या तुम समझते हो, जहां मुरगा न होगा, वहां सबेरा ही न होगा। चार आदमी सराहने लगे, तो अब मिजाज ही नहीं मिलते। सच कहा है, कौआ धोने से बगुला नहीं होता।

आठ बजते-बजते अधिकारी लोग बिदा हो गए। अब लोग नायकराम के घर आकर पंचाइत करने लगे कि क्या किया जाए।

जमुनी—तुम लोग यों ही बकवास करते रहोगे, और किसी का किया कुछ न होगा। सूरदास के पास जाकर क्यों नहीं सलाह करते? देखो, क्या कहता है?

बजरंगी—तो जाती क्यों नहीं, मुझी को ऐसी कौन-सी गरज पड़ी हुई है?

जमुनी—तो फिर चलकर अपने-अपने घर बैठो, गपड़चौथ करने से क्या होना है।

भैरो—बजरंगी, यह हेकड़ी दिखाने का मौका नहीं है। सूरदास के पास सब जने मिलकर चलो। वह कोई-न-कोई राह जरूर निकालेगा।

ठाकुरदीन—मैं तो अब कभी उसके द्वार पर न जाऊंगा। इतना कह-सुनकर हार गया, पर न उठा, न उठा। अपने को लगाने लगा है।

जगधर—सूरदास क्या कोई देवता है, हाकिम का हुक्म पलट देगा?

ठाकुरदीन—मैं तो गोद में उठा लाने को तैयार था।

बजरंगी—घमंड है घमंड कि और लोग क्यों नहीं आए। गया क्यों नहीं हाकिमों के सामने? ऐसा मर थोड़े ही रहा है।

जमुनी—कैसे आता? वह तो हाकिमों से बुरा बने, यहां तुम लोग अपने-अपने मन की करने लगो, तो उसकी भद्द हो।

भैरो—ठीक तो कहती हो, मुद्दई सुस्त तो गवाह कैसे चुस्त होगा। पहले चलकर पूछो, उसकी सलाह क्या है? अगर मानने लायक हो, तो मानो; न मानने लायक हो, न मानो। हां, एक बात जो तय हो जाए, उस पर टिकना पड़ेगा। यह नहीं कि कहा तो कुछ, पीछे से निकल भागे, सरदार तो भरम में पड़ा रहे कि आदमी पीछे हैं, और आदमी अपने-अपने घर की राह लें।

बजरंगी—चलो पंडाजी, पूछ ही देखें।

नायकराम—वह कहेगा कि बड़े साहब के पास चलो, वहां सुनाई न हो, तो परागराज के लाट साहब के पास चलो। है इतना बूता?

जगधर—भैया की बात, महाराज, यहां तो किसी का मुंह नहीं खुला, लाट साहब के पास कौन जाता है !

जमुनी—एक बार चले क्यों नहीं जाते? देखो तो क्या सलाह देता है?

नायकराम—मैं तैयार हूं, चलो।

ठाकुरदीन—मैं न जाऊंगा, और जिसे जाना हो जाए।

जगधर—तो क्या हमीं को बड़ी गरज पड़ी है?

बजरंगी—जो सबकी गत होगी, वही हमारी भी होगी।

घंटे-भर तक पंचाइत हुई, पर सूरदास के पास कोई न गया। साझे की सुई ठेले पर लदती है। तू चल, मैं आता हूं; यही हुआ किया। लोग अपने-अपने घर चले गए। संध्या-समय भैरो सूरदास के पास गया। सूरदास ने पूछा—आज क्या हुआ?

भैरो—हुआ क्या, घंटे-भर बकवास हुई। फिर लोग अपने-अपने घर चले गए।

सूर—कुछ तय न हुआ कि क्या किया जाए?

भैरो—निकाले जायंगे, इसके सिवा और क्या होगा। क्यों सूरे कोई न सुनेगा?

सूर—सुननेवाला भी तो वही है, जो निकालने वाला है। तीसरा होता, तब न सुनता।

भैरो—मेरी मरन है। हजारों मन लकड़ी है, कहां ढोकर ले जाऊंगा? कहां इतनी जमीन मिलेगी कि फिर टाल लगाऊं।

सूर—सभी की मरन है। बजरंगी ही को इतनी जमीन कहां मिली जाती है कि पंद्रह-बीस जानवर भी रहें, आप भी रहे। मिलेगी भी, तो इतना किराया देना पड़ेगा कि दिवाला निकल जाएगा। देखो, मिठुआ आज भी नहीं आया। मुझे मालूम हो जाए कि वह बीमार है, तो छिन-भर न रुकूं, कुत्ते की भांति दौड़ूं, चाहे वह मेरी बात भी न पूछे। जिनके लिए अपनी जिंदगानी खराब कर दो, वे भी गाढ़े समय पर मुंह फेर लेते हैं।

भैरो—अच्छा तुम बताओ, तुम क्या करोगे, तुमने भी कुछ सोचा है?

सूर—मेरी क्या पूछते हो, जमीन थी, वह निकल ही गई; झोपड़ी के बहुत मिलेंगे, तो दो-चार रुपये मिल जाएंगे। मिले तो क्या, और न मिले तो क्या। जब तक कोई न बोलेगा, पड़ा रहूंगा।

कोई हाथ पकड़कर निकाल देगा, बाहर जा बैठूंगा। वहां से उठा देगा, फिर आ बैठूंगा। जहां जनम लिया है, वहीं मरूंगा। अपना झोपड़ा जीते-जी न छोड़ा जाएगा। मरने पर जो चाहे, ले ले। बाप-दादों की जमीन खो दी, अब इतनी निसानी रह गई है, इसे न छोड़ूंगा। इसके साथ ही आप भी मर जाऊंगा।

भैरो—सूरे, इतना दम तो यहां किसी में नहीं।

सूर—इसी से तो मैंने किसी से कुछ कहा ही नहीं। भला सोचो, कितना अंधेर है कि हम, जो सत्तर पीढ़ियों से यहां आबाद हैं, निकाल दिए जायं, और दूसरे यहां आकर बस जायं। यह हमारा घर है, किसी के कहने से नहीं छोड़ सकते। जबरदस्ती जो चाहे, निकाल दे, न्याय से नहीं निकाल सकता। तुम्हारे हाथ में बल है, तुम हमें मार सकते हो; हमारे हाथ में बल होता, तो हम तुम्हें मारते। यह तो कोई इंसाफ नहीं है। सरकार के हाथ में मारने का बल है, हमारे हाथ में और कोई बल नहीं है, तो मर जाने का बल तो है।

भैरो ने जाकर दूसरों से ये बातें कहीं। जगधर ने कहा—देखा, यह सलाह है! घर तो जायगा ही, जान भी जायगी।

ठाकुरदीन—यह सूरदास का किया होगा। आगे नाथ न पीछे पगहा, मर ही जायगा तो क्या? यहां मर जायं, तो बाल-बच्चों को किसके सिर छोड़ें?

बजरंगी—मरने के लिए कलेजा चाहिए। जब हम ही मर गए, तो घर लेकर क्या होगा?

नायकराम—ऐसे बहुत मरने वाले देखे हैं, घर में से तो निकला नहीं गया, मरने चले हैं।

भैरो—उसकी न चलाओ पंडाजी, मन में आने की बात है।

दूसरे दिन से तखमीने के अफसर ने मिल के एक कमरे में इजलास करना शुरू किया। एक मुंशी मुहल्ले के निवासियों के नाम, मकानों की हैसियत, पक्के हैं या कच्चे, पुराने हैं या नए, लंबाई, चौड़ाई आदि की एक तालिका बनाने लगा। पटवारी और मुंशी घर-घर घूमने लगे। नायकराम मुखिया थे। उनका साथ रहना जरूरी था। इस वक्त सभी प्राणियों का भाग्य-निर्णय इसी त्रिमूर्ति के हाथों में था। नायकराम की चढ़ बनी। दलाली करने लगे। लोगों से कहते, निकलना तो पड़ेगा ही, अगर कुछ गम खाने से मुआवजा बढ़ जाए, तो हरज ही क्या है। बैठे-बिठाए, मुट्ठी गर्म होती थी, तो क्यों छोड़ते! सारांश यह कि मकानों की हैसियत का आधार वह भेंट थी, जो इस त्रिमूर्ति को चढ़ाई जाती थी। नायकराम टट्टी की आड़ से शिकार खेलते थे। जस भी कमाते थे, धन भी। भैरो का बड़ा मकान और सामने का मैदान सिमट गए, उनका क्षेत्रफल घट गया, त्रिमूर्ति की वहां कुछ पूजा न हुई। जगधर का छोटा-सा मकान फैल गया, त्रिमूर्ति ने उसकी भेंट से प्रसन्न होकर रस्सियां ढीली कर दीं, क्षेत्रफल बढ़ गया। ठाकुरदीन ने इन देवताओं को प्रसन्न करने के बदले शिवजी को प्रसन्न करना ज्यादा आसान समझा। वहां एक लोटे जल के सिवा विशेष खर्च न था। दोनों वक्त पानी देने लगे। पर इस समय त्रिमूर्ति का दौरदौरा था, शिवजी की एक न चली, त्रिमूर्ति ने उनके छोटे, पर पक्के घर को कच्चा सिद्ध किया। बजरंगी देवतों को प्रसन्न करना क्या जाने, उन्हें नाराज ही कर चुका था, पर जमुनी ने अपनी सुबुद्धि से बिगड़ता हुआ काम बना लिया। मुंशीजी उसकी एक बछिया पर रीझ गए, उस पर दांत लगाए। बजरंगी जानवरों को प्राण से भी प्रिय समझता था, तिनक गया। नायकराम ने कहा, बजरंगी पछताओगे। बजरंगी ने कहा, चाहे एक कौड़ी मुआवजा न मिले, पर बछिया न दूंगा। आखिर जमुनी ने, जो सौदे पटाने में बहुत कुशल थी, उसको एकांत में ले जाकर समझाया

कि इतने जानवरों के रहने का ठिकाना भी है? कहां लिए-लिए फिरोगे? एक बछिया के देने से सौ रुपये का काम निकलता है, तो क्यों नहीं निकालते? ऐसी न-जाने कितनी बछियां पैदा होंगी, देकर सिर से बला टालो। उसके समझाने से अंत में बजरंगी भी राजी हो गया।

पंद्रह दिन तक त्रिमूर्ति का राज्य रहा। तखमीने के अफसर साहब बारह बजे घर से आते, अपने कमरे में दो-चार सिगार पीते, समाचार-पत्र पढ़ते, एक दो बजे घर चले देते। जब नालिका तैयार हो गई, तो अफसर साहब उसकी जांच करने लगे। फिर निवासियों की बुलाहट हुई। अफसर ने सबके तखमीने पढ़-पढ़कर सुनाए। एक सिरे से धांधली थी। भैरो ने कहा-हुजूर, चलकर हमारा घर देख लें, वह बड़ा है कि जगधर का? इनको तो मिले चार सौ रुपया और मुझे मिले तीन सौ रुपया। इस हिसाब से मुझे छः सौ रुपया मिलना चाहिए।

ठाकुरदीन बिगड़े दिल थे ही, साफ-साफ कह दिया-साहब, तखमीना किसी हिसाब से थोड़े ही बनाया गया है। जिसने मुंह मीठा कर दिया, उसकी चांदी हो गई; जो भगवान् के भरोसे बैठा रहा, उसकी बधिया बैठ गई। अब भी आप मौके पर चलकर जांच नहीं करते कि ठीक-ठीक तखमीना हो जाय, गरीबों के गले रेत रहे हैं।

अफसर ने बिगड़कर कहा-तुम्हारे गांव के मुखिया तो तुम्हारी तरफ से रख लिया गया था। उसकी सलाह से तखमीना किया गया है। अब कुछ नहीं हो सकता।

ठाकुरदीन-अपने कहलाने वाले तो और लूटते हैं।

अफसर-अब कुछ नहीं हो सकता।

सूरदास की झोपड़ी का मुआवजा एक रुपया रक्खा गया था, नायकराम के घर के पूरे तीन हजार! लोगों ने कहा-यह है गांव-घरवालों का हाल! ये हमारे सगे हैं, भाई का गला काटते हैं। उस पर घमंड यह कि हमें धन का लोभ नहीं। आखिर है तो पंडा ही न, जात्रियों को ठगने वाला। जभी तो यह हाल है। जरा-सा अखतियार पाके आंखें फिर गईं। कहीं थानेदार होते, तो किसी को घर में न रहने देते। इसी से कहा है, गंजे के नह नहीं होते।

मिस्टर क्लार्क के बाद मि० सेनापति जिलाधीश हो गए थे। सरकार का धन खर्च करते कांपते थे। पैसे की जगह धेले से काम निकालते थे। डरते रहते थे कि कहीं बदनाम न हो जाऊं, उनमें वह आत्मविश्वास न था, जो अंगरेज अफसरों में होता है। अंगरेजों पर पक्षपात का संदेह नहीं किया जा सकता, वे निर्भीक और स्वाधीन होते हैं। मि० सेनापति को संदेह हुआ कि मुआवजे बड़ी नरमी से लिखे गए हैं। उन्होंने उसकी आधी रकम काफी समझी। अब यह मिसिल प्रांतीय सरकार के पास स्वीकृति के लिए भेजी गई। वहां फिर उसकी जांच होने लगी। इस तरह तीन महीने की अवधि गुजर गई, और मि० सेवक पुलिस के सुपरिंटेंडेंट, दारोगा माहिरअली और मजदूरों के साथ मोहल्ले को खाली कराने के लिए आ पहुंचे। लोगों ने कहा, अभी तो हमको रुपये ही नहीं मिले। जॉन सेवक ने जवाब दिया, हमें तुम्हारे रुपयों से कोई मतलब नहीं, रुपये जिससे मिलें उससे लो। हमें तो सरकार ने एक मई को मुहल्ला खाली करा देने का वचन दिया है, और अगर कोई कह दे कि आज एक मई नहीं है, तो हम लौट जाएंगे। अब लोगों में बड़ी खलबली पड़ी, सरकार की क्या नीयत है? क्या मुआवजा दिए बिना ही हमें निकाल दिया जाएगा, घर-का-घर छोड़ें और मुआवजा भी न मिले! यह तो बिना मौत मरे। रुपये मिल जाते, तो कहीं जमीन लेकर घर बनवाते। खाली हाथ कहां जायं? क्या घर में खजाना रखा हुआ है। एक तो रुपये के चार आने मिलने का हुक्म हुआ,

उसका भी यह हाल ! न-जाने सरकार की नीयत बदल गई कि बीच वाले खाए जाते हैं?

माहिरअली ने कहा–तुम लोगों को जो कुछ कहना-सुनना है, जाकर हाकिम जिला से कहो। मकान आज खाली करा लिए जाएंगे।

बजरंगी–मकान कैसे खाली होंगे, कोई राहजनी है। जिस हाकिम का हुक्म है, उसी हाकिम का तो वह हुकुम भी है।

माहिर–कहता हूं, सीधे से अपने बोरिए-बकचे लादो, और चलते-फिरते नजर आओ। नाहक गुस्सा क्यों दिलाते हो? कहीं मि० हंटर को आ गया जोश, तो फिर तुम्हारी खैरियत नहीं।

नायकराम–दारोगाजी, दो-चार दिन की मुहलत दे दीजिए। रुपये मिलेंगे ही, ये बिचारे क्या बुरा कहते हैं कि बिना रुपये-पैसे कहां भटकते फिरें।

मि० जॉन सेवक तो सुपरिंटेंडेंट को साथ लेकर मिल की सैर करने चले गए थे, वहां चाय-पानी का प्रबंध किया गया था, माहिरअली की हुकूमत थी। बोले–पंडाजी, ये झांसे दूसरों को देना। यहां तुम्हें बहुत दिनों से देख रहे हैं, और तुम्हारी नस-नस पहचानते हैं। मकान आज और आज ही खाली होंगे।

सहसा एक ओर से दो बच्चे खेलते हुए आ गए, दोनों नंगे पांव थे, फटे हुए कपड़े पहने, पर प्रसन्नवदन। माहिरअली को देखते ही चचा-चचा कहते हुए उसकी तरफ दौड़े। ये दोनों साबिर और नसीमा थे। कुल्सूम ने इसी मोहल्ले में एक छोटा-सा मकान एक रुपया किराए पर ले लिया था। गोदाम का मकान जॉन सेवक ने खाली करा लिया था। बेचारी इसी छोटे-से घर में पड़ी हुई अपनी मुसीबत के दिन काट रही थी। माहिरअली ने दोनों बच्चों को देखा, तो कुछ झेंपते हुए बोले–भाग जाओ, भाग जाओ, यहां क्या करने आए? दिल में शरमाए कि सब लोग कहते होंगे, ये इनके भतीजे हैं, और इतने फटे हाल, यह उनकी खबर भी नहीं लेते !

नायकराम ने दोनों बच्चों को दो-दो पैसे देकर कहा–जाओ मिठाई खाना, ये तुम्हारे चचा नहीं हैं।

नसीमा–हूं ! चचा तो हैं, क्या मैं पहचानती नहीं?

नायकराम–चचा होते, तो तुझे गोद में न उठा लेते, मिठाइयां न मंगा देते? तू भूल रही है।

माहिरअली ने क्रुद्ध होकर कहा–पंडाजी, तुम्हें इन फजूल बातों से क्या मतलब? मेरे भतीजे हों या न हों, तुमसे सरोकार? तुम किसी की निज की बातों में बोलने वाले कौन होते हो? भागो साबिर, नसीमा भाग, नहीं तो सिपाही पकड़ लेगा।

दोनों बालकों ने अविश्वासपूर्ण नेत्रों से माहिरअली को देखा, और भागे। रास्ते में नसीमा ने कहा–चचा ही जैसे तो हैं, क्यों साबिर, चचा ही हैं न?

साबिर–नहीं तो और कौन हैं?

नसीमा–तो फिर हमें भगा क्यों दिया?

साबिर–जब अब्बा थे, तब न हम लोगों को प्यार करते थे ! अब तो अब्बा नहीं हैं न, तब तो अब्बा ही सबको खिलाते थे।

नसीमा–अम्मां को भी तो अब अब्बा नहीं खिलाते। वह हम लोगों को पहले से ज्यादा प्यार करती हैं। पहले कभी पैसे न देती थीं, अब तो पैसे भी देती हैं।

साबिर–वह तो हमारी अम्मां हैं न।

लड़के तो चले गए, इधर दारोगाजी ने सिपाहियों को हुक्म दिया—फेंक दो असबाब, और मकान फौरन खाली करा लो। ये लोग लात के आदमी हैं, बातों से न मानेंगे।

दो कांस्टेबिल हुक्म पते ही बजरंगी के घर में घुस गए, और बरतन निकाल-निकाल फेंकने लगे। बजरंगी बाहर लाल आंखें किए खड़ा होंठ चबा रहा था। जमुनी घर से इधर-उधर दौड़ती फिरती थी, कभी हांडियां उठाकर बाहर लाती, कभी फेंके हुए बरतनों को समेटती। मुंह एक क्षण के लिए भी बंद न होता था—मूड़ीकाटे कारखाना बनाने चले हैं, दुनिया को उजाड़कर अपना घर भरेंगे। भगवान् भी ऐसे पापियों का संहार नहीं करते, न-जाने कहां जाके सो गए हैं। हाय ! हाय ! घिसुआ की जोड़ी पटकर तोड़ डाली !

बजरंगी ने टूटी हुई जोड़ी उठा ली, और एक सिपाही के पास जाकर बोला—जमादार, यह जोड़ी तोड़ डालने से तुम्हें क्या मिला? साबित उठा ले जाते, तो भला किसी काम तो आती ! कुसल है कि लाल पगड़ी बांधे हो, नहीं तो आज....

उसके मुंह से पूरी बात भी न निकली थी कि दोनों सिपाहियों ने उस पर डंडे चलाने शुरू किए। बजरंगी से अब जब्त न हो सका, लपककर एक सिपाही की गरदन एक हाथ से और दूसरे सिपाही की गरदन दूसरे हाथ से पकड़ ली, और इतनी जोर से दबाई कि दोनों की आंखें निकल आईं। जमुनी ने देखा, अब अनर्थ हुआ चाहता है, तो रोती हुई बजरंगी के पास आकर बोली—तुम्हें भगवान् की कसम है, जो किसी से लड़ाई करो। छोड़ो-छोड़ो ! क्यों अपनी जान से बैर कर रहे हो।

बजरंगी—तू जा बैठ। फांसी पा जाऊं, तो मैके चली जाना। मैं तो इन दोनों के प्राण ही लेकर छोडूंगा।

जमुनी—तुम्हें घीसू की कसम, तुम मेरा ही मास खाओ, जो इन दोनों को छोड़कर यहां से चले न जाओ।

बजरंगी ने दोनों सिपाहियों को छोड़ दिया, पर उसके हाथ से छूटना था कि वे दौड़े हुए माहिरअली के पास पहुंचे, और कई सिपाहियों को लिए फिर आए। पर बजरंगी को जमुनी पहले ही से टाल ले गई थी। सिपाहियों को शेर न मिला, तो शेर की मांद को पीटने लगे, घर की सारी चीजें तोड़-फोड़ डालीं। जो अपने काम की चीज नजर आई, उस पर हाथ भी साफ किया। यही लीला दूसरों घरों में भी हो रही थी। चारों तरफ लूट मची हुई थी। किसी ने अंदर से घर के द्वार बंद कर लिए, कोई अपने बाल-बच्चों को लेकर पिछवाड़े से निकल भागा। सिपाहियों को मकान खाली कराने का हुक्म क्या मिला, लूट मचाने का हुक्म मिल गया। किसी को अपने बरतन-भाड़े समेटने की मोहलत भी न देते थे। नायकराम के घर पर भी धावा हुआ। माहिरअली स्वयं पांच सिपाहियों को लेकर घुसे। देखा तो वहां चिड़ियां का पूत भी न था, घर में झाडू फिरी हुई थी, एक टूटी हांडी भी न मिली। सिपाहियों के हौसले मन ही में रह गए। सोचें थे, इस घर में खूब बढ़-चढ़कर हाथ मारेंगे, पर निराश और लज्जित होकर निकलना पड़ा। बात यह थी कि नायकराम ने पहले ही अपने घर की चीजें निकाल फेंकी थीं।

उधर सिपाहियों ने घरों के ताले तोड़ने शुरू किए। कहीं किसी पर मार पड़ती थी, कहीं कोई अपनी चीजें लिए भागा जाता था। चिल्ल-पों मची हुई थी। विचित्र दृश्य था, मानो दिन-दहाड़े डाका पड़ रहा हो। सब लोग घरों से निकलकर या निकाले जाकर सड़क पर जमा होते जाते थे। ऐसे अवसरों पर प्राय: उपद्रवकारियों का जमाव हो ही जाता है। लूट का प्रलोभन था

ही, किसी को निवासियों से बैर था, किसी को पुलिस से अदावत, प्रति क्षण शंका होती थी कि कहीं शांति न भंग हो जायें, कहीं कोई हंगामा न मच जाए। माहिरअली ने जन-समुदाय की त्योरियां देखीं, तो तुरत एक सिपाही को पुलिस की छावनी की ओर दौड़ाया, और चार बजते-बजते सशस्त्र पुलिस की एक टोली और आ पहुंची। कुमुक के आते ही माहिरअली और भी दिलेर हो गए। हुक्म दिया--मार-मारकर सबों को भगा दो। लोग वहां क्यों खड़े हैं? भगा दो। जिस आदमी को यहां खड़े देखो, मारो। अब तक लोग अपने माल और असबाब समेटने में लगे हुए थे। मार भी पड़ती थी, तो चुपके से सह लेते थे। घर में अकेले कई-कई सिपाहियों से कैसे भिड़ते? अब सब-के-सब एक जगह खड़े हो गए थे। उन्हें कुछ तो अपनी सामूहिक शक्ति का अनुभव हो रहा था, उस पर नायकराम उकसाते जाते थे, यहां आएं तो बिना मारे न छोड़ना, दो-चार के हाथ-पैर जब तक न टूटेंगे, ये सब न मानेंगे। बारूद भड़कने वाली ही थी कि इतने में इन्दु की मोटर पहुंची, और उसमें से विनय, इन्द्रदत्त और इन्दु उतर पड़े। देखा, तो कई हजार आदमियों का हुजूम था। कुछ मोहल्ले के निवासी थे, कुछ राह-चलते मुसाफिर, कुछ आस-पास के गांवों में रहने वाले, कुछ मिल के मजदूर। कोई केवल तमाशा देखने आया था, कोई पड़ोसियों से सहानुभूति करने, और कोई इस उपद्रव का ईर्ष्यापूर्ण आनंद उठने। माहिरअली और उनके सिपाही उस उत्साह के साथ, जो नीच प्रकृति के प्राणियों को दमन में होता है, लोगों को सड़क पर से हटाने की चेष्टा कर रहे थे, पर भीड़ पीछे हटने के बदले और आगे ही बढ़ती जाती थी।

विनय ने माहिरअली के पास जाकर कहा--दारोगाजी, क्या इन आदमियों को एक दिन की भी मोहलत नहीं मिल सकती?

माहिर--मोहलत तो तीन महीने की थी, और अगर तीन साल की भी हो जाए, तो भी मकान खाली करने के वक्त यही हालत होगी। ये लोग सीध से कभी न जायंगे।

विनय--आप इतनी कृपा कर सकते हैं कि थोड़ी देर के लिए सिपाहियों को रोक लें। जब तक मैं सुपरिंटेंडेंट को यहां की हालत की खबर दे दूं?

माहिर--साहब तो यहीं हैं। मि० जॉन सेवक उन्हें मिल दिखाने ले गए थे। मालूम नहीं, वहां से कहां चले गए, अब तक नहीं लौटे।

वास्तव में साहब बहादुर कहीं गए न थे, जॉन सेवक के साथ दफ्तर में बैठै आनंद से शराब पी रहे थे। दोनों ही आदमियों ने वास्तविक स्थिति को समझने में गलती की थी। उनका अनुमान था कि हमको देखकर लोग रोब में आ गए होंगे, और मारे डर के आप-ही-आप भाग जाएंगे।

विनय साहब को खबर देने के लिए मिल की तरफ चले, तो राजा साहब को मोटर पर आते देखा। ठिठक गए। सोचा, जब यह आ गए हैं, तो साहब के पास जाने की क्या जरूरत, इन्हीं से चलकर कहूं। लेकिन उनके सामने जाते हुए शर्म आती थी कि कहीं जनता ने इनका अपमान किया, तो मैं क्या करूंगा, कहीं यह न समझ बैठें कि मैंने ही इन लोगों को उकसाया है। वह इसी दुविधा में पड़े हुए थे कि राजा साहब की निगाह इन्दु की मोटर पर गई, जल उठे, इन्द्रदत्त और विनय को देखा, ज्वर-सा चढ़ आया--ये लोग यहां विराजमान हैं, फिर क्यों न दंगा हो, जहां ये महापुरुष होंगे, वहां जो कुछ न हो जाए, थोड़ा है। उन्हें क्रोध बहुत कम आता था, पर इस समय उनसे जब्त न हुआ, विनय से बोले--यह सब आप ही की करामात मालूम होती है !

विनय ने शांत भाव से कहा--मैं तो अभी आया हूं। सुपरिंटेंडेंट के पास जा ही रहा था

कि आप आते दिखाई दिए।

राजा—खैर, अब तो आप इनके नेता हैं, इन्हें अपने किसी जादू-मंत्र से हटाइएगा कि मुझे कोई दूसरा उपाय करना पड़ेगा?

विनय—इन लोगों को केवल इतनी शिकायत है कि अभी हमें मुआवजा नहीं मिला, हम कहां जायं, कैसे जमीन खरीदें, कैसे नए मकान के सामान लें। आप अगर इन्हें कष्ट करके तसल्ली दे दें, तो सब आप-ही-आप हट जायंगे।

राजा—यह इन लोगों का बहाना है। वास्तव में ये लोग उपद्रव मचाना चाहते हैं।

विनय—अगर इन्हें मुआवजा दे दिया जाए, तो शायद कोई दूसरा उपाय न करना पड़े।

राजा—आप छ: महीने वाला रास्ता बताते हैं, मैं एक महीने वाली राह चाहता हूं।

विनय—उस राह में कांटे हैं।

राजा—इसकी कुछ चिंता नहीं। हमें कांटों वाली राह ही पसंद है।

विनय—इस समय इस समूह की दशा सूखे पुआल की-सी है।

राजा—अगर पुआल हमारा रास्ता रोकता है, तो हम उसे जला देंगे।

सभी लोग भयातुर हो रहे थे, न-जाने किस क्षण क्या हो जाए, फिर भी मनुष्यों का समूह किसी अज्ञात शक्ति के वशीभूत होकर राजासाहब की ओर बढ़ा चला आता था। पुलिस वाले भी इधर-उधर से आकर मोटर के पास खड़े होते जाते थे। देखते-देखते उनके चारों ओर मनुष्यों की एक अथाह, अपार नदी लहरें मारने लगी, मानो एक ही रेले में इन गिने-गिनाए आदमियों को निगल जाएगी, इस छोटे-से कगार को बहा ले जाएगी।

राजा महेन्द्रकुमार यहां आग में तेल डालने नहीं, उसे शांत करने आए थे। उनके पास दम-दम की खबरें पहुंच रही थीं। वह अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करके बहुत न्निंतित हो रहे थे। नैतिक रूप से तो उन पर कोई जिम्मेदारी न थी। जब प्रांतीय सरकार का दबाव पड़ा, तो वह कर ही क्या सकते थे? अगर पद-त्याग कर देते, तो दूसरा आदमी आकर सरकारी आज्ञा का पालन करता। पांड़ेपुर वालों के सिर से किसी दशा में भी यह विपत्ति न टल सकती थी, लेकिन वह आदि मे निरंतर यह प्रयत्न कर रहे थे कि मकान खाली कराने के पहले लोगाों को मुआवजा दे दिया जाए। बार-बार याद दिलाते थे। ज्यों-ज्यों अंतिम तिथि आती जाती थी, उनकी शंकाएं बढ़ती जाती थीं। वह तो यहां तक चाहते थे कि निवासियों को कुछ रुपये पेशगी दे दिए जायं, जिससे वे पहले ही से अपना-अपना ठिकाना कर लें। पर किसी अज्ञात कारण से रुपये की स्वीकृति में विलंब हो रहा था। वह मि॰ सेनापति से बार-बार कहते कि आप मंजूरी की आशा पर अपने हुक्म से रुपये दिला दें; पर जिलाधीश कानों पर हाथ रखते थे कि न-जाने सरकार का क्या इरादा है, मैं बिना हुक्म पाए कुछ नहीं कर सकता। जब आज भी मंजूरी न आई, तो राजा साहब ने तार द्वारा पूछा। दोपहर तक वह जवाब का इंतजार करते रहे। आखिर जब इस जमाव की खबर मिली , तो घबराए। उसी वक्त दौड़े हुए जिलाधीश के बंगले पर गए कि उनसे कुछ सलाह लें। उन्हें आशा थी कि वह स्वयं घटनास्थल पर जाने को तैयार होंगे, पर वहां जाकर देखा, तो साहब बीमार पड़े थे। बीमारी क्या थी, बीमारी का बहाना था। बदनामी से बचने का यही उपाय था। राजा साहब से बोले-मुझे खेद है, मैं नहीं जा सकता। आप जाकर उपद्रव को शांत करने के लिए जो उचित समझें, करें।

महेन्द्रकुमार अब बहुत घबराए, अपनी जान किसी भांति बचती न नजर आती थी—अगर

कहीं रक्तपात हो गया, तो मैं कहीं का न रहूंगा ! सब कुछ मेरे ही सिर आएगी। पहले ही से लोग बदनाम कर रहे हैं। आज मेरे सार्वजनिक जीवन का अंत है ! निरपराध मारा जा रहा हूं। मुझ पर ऐसा सनीचर सवार हुआ है कि जो कुछ करना चाहता हूं, उसके प्रतिकूल करता हूं, जैसे मुझे अपने ऊपर कोई अधिकार ही न रहा हो। इस जमीन के झमेले में पड़ना ही मेरे लिए ही जहर हो गया। तब से कुछ ऐसी समस्याएं उपस्थित होती चली जा जाती हैं, जो मेरी महत्त्वाकांक्षाओं का सर्वनाश किए देती हैं। यश, कीर्ति, नाम, सम्मान को कौन रोये, मुंह दिखाने के लाले पड़े हुए हैं।

यहां से निराश होकर वह फिर घर आए कि चलकर इन्दु से राय लूं, देखूं, क्या कहती है। पर यहां इन्दु न थी। पूछा, तो मालूम हुआ, सैर करने गई हैं।

इस समय राजा साहब की दशा उस कृपण की-सी थी, जो अपने आंखों से अपना धन लुटते देखता हो, और इस भय से कि लोगों पर मेरे धनी होने का भेद खुल जाएगा, कुछ बोल न सकता हो। अचानक उन्हें एक बात सूझी—क्यों न मुआवजे के रुपये अपने ही पास से दे दूं? रुपये कहीं जाते तो हैं नहीं, जब मंजूरी आ जाएगी, वापस ले लूंगा। दो-चार दिन का मुआमला है, मेरी बात रह जाएगी, और जनता पर इसका कितना अच्छा असर पड़ेगा ! कुल सत्तर हजार तो हैं ही। और इसकी क्या जरूरत है कि सब रुपये आज ही दे दिए जायं? कुछ आज दे दूं, कुछ कल दे दूं, तब तक मंजूरी आ ही जाएगी। जब लोगों को रुपये मिलने लगेंगे, तो तस्कीन हो जाएगी, यह भय न रहेगा कि कहीं सरकार रुपये जब्त न कर ले। खेद है, मुझे पहले यह बात न सूझी, नहीं तो इतना झमेला ही क्यों होता। उन्होंने उसी वक्त इंपीरियल बैंक के नाम से बीस हजार का चेक लिखा। देर बहुत हो गई थी, इसलिए बैंक के मैनेजर के नाम एक पत्र भी लिख दिया कि रुपये देने में विलंब न कीजिएगा, नहीं तो शांति भंग हो जाने का भय है। बैंक से आदमी रुपये लेकर लौटा, तो पांच बज चुके थे। तुरत मोटर पर सवार होकर पांड़ेपुर आ पहुंचे। आए तो थे ऐसी शुभेच्छाओं से, पर वहां विनय और इन्दु को देखकर तैश आ गया। जी में आया, लोगों से कह दूं, जिनके बूते पर उछल रहे हो, उनसे रुपये लो, इधर सरकार को लिख दूं कि लोग विद्रोह करने पर तैयार हैं, उनके रुपये जब्त कर लिए जायं। उसी क्रोध में उन्होंने विनय से वे बातें कीं, जो ऊपर लिखी जा चुकी हैं। मगर जब उन्होंने देखा कि जन-समूह का रेला बढ़ता चला आ रहा है, लोगों के मुख आवेश-विकृत हो रहे हैं, सशस्त्र पुलिस संगीनें चढ़ाए हुए है, और इधर-उधर से दो-चार पत्थर भी चल रहे हैं, तो उनकी वही दशा हुई, जो भय में नशे की होती है। तुरत मोटर पर खड़े हो गए, और जोर से चिल्लाकर बोले—मित्रो, जरा शांत हो जाओ। यों दंगा करने से कुछ नहीं होगा। मैं रुपये लाया हूं, अभी तुमको मुआवजा मिल जाएगा। सरकार ने अभी मंजूरी नहीं भेजी है, लेकिन तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम मुझसे अपने रुपये ले सकते हो। इतनी-सी बात के वास्ते तुम्हारा यह दुराग्रह सर्वथा अनुचित है। मैं जानता हूं कि यह तुम्हारा दोष नहीं है, तुमने किसी के बहकाने से ही शरारत पर कमर बांधी है। लेकिन मैं तुम्हें उस विद्रोह-ज्वाला में न कूदने दूंगा, जो तुम्हारे शुभचिंतकों ने तैयार कर रखी है। यह लो, तुम्हारे रुपये हैं। सब आदमी बारी-बारी से आकर अपने नाम लिखाओ, अंगूठे का निशान करो, रुपये लो, और चुपके-चुपके घर जाओ।

एक आदमी ने कहा—घर तो आपने छीन लिए।

राजा—रुपयों से घर मिलने में देर न लगेगी। हमसे तुम्हारी जो कुछ सहायता हो सकेगी,

वह उठा न रक्खेंगे। इस भीड़ को तुरंत हट जाना चाहिए, नहीं तो रुपये मिलने में देर होगी।

जो जन-समूह उमड़े हुए बादलों की तरह भयंकर और गंभीर हो रहा था, वह घोषणा सुनते ही रुई के गोलों की भाँति फट गया। न-जाने लोग कहां समा गए। केवल वही लोग रह गए, जिन्हें रुपये पाने थे। सामयिक सुबुद्धि मंडलाती हुई विपत्ति का कितनी सुगमता से निवारण कर सकती है, इसका यह उज्ज्वल प्रमाण था। एक अनुचित शब्द, एक कठोर वाक्य अवस्था को असाध्य बना देता।

पटवारी ने नामावली पढ़नी शुरू की। राजा साहब अपने हाथों से रुपये बांटने लगे। असामी रुपये लेता था, अंगूठे का निशान बनाता था, और तब दो सिपाही उसके साथ कर दिए जाते थे कि जाकर मकान खाली करा लें।

रुपये पाकर लौटते हुए लोग यों बातें करते जाते थे–

एक मुसलमान–यह राजा बड़ा मूजी है, सरकार ने रुपये भेज दिए थे, पर दबाए बैठा था। हम लोग गरम न पड़ते, तो हजम कर जाता।

दूसरा–सोचा होगा, मकान खाली करा लूं, और रुपये सरकार को वापस करके सुर्खरू बन जाऊं।

एक ब्राह्मण ने इसका विरोध किया–क्या बकते हो, बिचारे ने रुपये अपने पास से दिए हैं।

तीसरा–तुम गौखे हो, ये चालें क्या जानो, जाके पोथी पढ़ो, और पैसे ठगो।

चौथा–सबों ने पहले ही सलाह कर ली होगी। आपस में रुपये बांट लेते, हम लोग ठाठ ही पर रह जाते।

एक मुंशीजी बोले–इतना भी न करें, तो सरकार कैसे खुश हो। इन्हें चाहिए था कि रिआया की तरफ से सरकार से लड़ते, मगर आप खुद ही खुशामदी टट्टू बने हुए हैं। सरकार का दबाव तो हीला है।

पांचवां–तो यह समझ लो, हम लोग न आ जाते, तो बिचारों को कौड़ी भी न मिलती। घर से निकल जाने पर कौन देता है, और कौन लेता है ! बिचारे मांगने जाते, तो चपरासियों से मारकर निकलवा देते।

जनता की दृष्टि में एक बार विश्वास खोकर फिर जमाना मुश्किल है। राजा साहब को जनता के दरबार से यह उपहार मिल रहा था।

संध्या हो गई थी। चार ही पांच असामियों को रुपये मिलने पाए थे कि अंधेरा हो गया। राजा साहब ने लैंप की रोशनी में नौ बजे रात तक रुपये बांटे। तब नायकराम ने कहा–सरकार, अब तो बहुत देर हुई। न हो कल पर उठा रखिए। राजा साहब भी थक गए थे, जनता को भी अब रुपये मिलने में बाधा न दीखती थी, काम कल के लिए स्थगित कर दिया गया। मगर सशस्त्र पुलिस ने वहीं डेरा जमाया कि कहीं फिर न लोग जमा हो जाएं।

दूसरे दिन दस बजे फिर राजा साहब आए, विनय और इन्द्रदत्त भी कई सेवकों के साथ आ पहुंचे। नामावली खोली गई। सबसे पहले सूरदास की तलबी हुई। लाठी टेकता हुआ आकर राजा साहब के सामने खड़ा हो गया।

राजा सहब ने उसे सिर से पांव तक देखा, और बोले–तुम्हारे मकान का मुआवजा केवल एक रुपया है, यह लो और घर खाली कर दो।

सूरदास–कैसा रुपया?

राजा–अभी तुम्हें मालूम ही नहीं, तुम्हारा मकान सरकार ने ले लिया है। यह उसी का मुआवजा है।

सूरदास–मैंने तो अपना मकान बेचने को किसी से नहीं कहा।

राजा–और लोग भी तो खाली कर रहे हैं।

सूरदास–जो लोग छोड़ने पर राजी हों, उन्हें दीजिए। मेरी झोंपड़ी रहने दीजिए। पड़ा रहूंगा, और हजूर का कल्यान मनाता रहूंगा।

राजा–यह तुम्हारी इच्छा की बात नहीं है, सरकारी हुक्म है। सरकार को इस जमीन की जरूरत है। यह क्योंकर हो सकता है कि और मकान गिरा दिए जायं, और तुम्हारा झोंपड़ा बना रहे?

सूरदास–सरकार के पास जमीन की क्या कमी है। सारा मुलुक पड़ा हुआ है। एक गरीब की झोंपड़ी छोड़ देने से उसका काम थोड़े ही रुक जाएगा।

राजा–व्यर्थ की हुज्जत करते हो, यह रुपया लो, अंगूठे का निशान बनाओ, और जाकर झोंपड़ी में से अपना सामान निकाल लो।

सूरदास–सरकार जमीन लेकर क्या करेगी? यहां कोई मंदिर बनेगा? कोई तालाब खुदेगा? कोई धरमसाला बनेगी? बताइए।

राजा–यह मैं कुछ नहीं जानता।

सूरदास–जानते क्यों नहीं, दुनिया जानती है, बच्चा-बच्चा जानता है। पुतली घर के मजूरों के लिए घर बनेंगे। बनेंगे तो उससे मेरा क्या फायदा होगा कि घर छोड़कर निकल जाऊं! जो कुछ फायदा होगा, साहब को होगा। परजा की तो बरबादी ही है। ऐसे काम के लिए मैं अपना झोंपड़ा न छोड़ूंगा। हां, कोई धरम का काम होता, तो सबसे पहले मैं अपना झोंपड़ा दे देता। इस तरह जबरजस्ती करने का आपको अखतियार है, सिपाहियों को हुकुम दे दें, फूस में आग लगते कितनी देर लगती है। पर यह न्याय नहीं है। पुराने जमाने में एक राजा अपना बगीचा बनवाने लगा, तो एक बुढ़िया की झोंपड़ी बीच में पड़ गई। राजा ने उसे बुलाकर कहा, तू यह झोंपड़ी मुझे दे दे, जितने रुपये कह तुझ दे दूं, जहां कह तेरे लिए मकान बनवा दूं। बुढ़िया ने कहा, मेरा झोंपड़ रहने दीजिए। जब दुनिया देखेगी कि आपके बगीचे के एक कोने में बुढ़िया की झोंपड़ी है, तो आपके धरम और न्याय की बढ़ाई करेगी। बगीचे की दीवार दस-पांच हाथ टेढ़ी हो जाएगी, पर इससे आपका नाम सदा के लिए अमर हो जाएगा। राजा ने बुढ़िया की झोंपड़ी छोड़ दी। सरकार का धरम परजा को पालना है कि उसका घर उजाड़ना, उसको बरबाद करना?

राजा साहब ने झुंझलाकर कहा–मैं तुमसे दलील करने नहीं आया हूं। सरकारी हुक्म की तामील करने आया हूं।

सूरदास–हजूर, मेरी मजाल है कि आपसे दलील कर सकूं! मगर मुझे उजाड़िए मत, बाप-दादों की निसानी यही झोंपड़ी रह गई है, इसे बनी रहने दीजिए।

राजा साहब को इतना अवकाश कहां था कि एक-एक आसामी से घंटों वाद-विवाद करते। उन्होंने दूसरे आदमी को बुलाने का हुक्म दिया।

इन्द्रदत्त ने देखा कि सूरदास अब भी वहीं खड़ा है, हटने का नाम नहीं लेता, तो डरे कि राजा साहब कहीं उसे सिपाहियों से धक्के देकर हटवा न दें। धीरे से उसका हाथ पकड़कर अलग

ले गए, और बोले—सूरे, है तो अन्याय, मगर क्या करोगे, झोंपड़ी तो छोड़नी ही पड़ेगी। जो कुछ मिलता है, ले लो। राजा साहब की बदनामी का डर है, नहीं तो मैं तुमसे लेने को न कहता।

इन आदमियों ने इन लोगों को घेर लिया। ऐसे अवसरों पर लोगों की उत्सुकता बढ़ी हुई होती है। क्या हुआ? क्या कहा? क्या जवाब दिया? सभी इन प्रश्नों के जिज्ञासु होते हैं। सूरदास ने सजल नेत्रों से ताकते हुए आवेश-कंपित कंठ से कहा—भैया, तुम भी कहते हो कि रुपया ले लो ! मुझे तो इस पुतलीघर ने पीस डाला। बाप-दादों की निसानी दस बीघे जमीन थी, वह पहले ही निकल गई, अब यह झोंपड़ी भी छीनी जा रही है। संसार इसी माया-मोह का नाम है। जब इससे मुक्त हो जाऊंगा, तो झोंपड़ी में रहने न आऊंगा। लेकिन जब तक जीता हूं, अपना घर मुझसे न छोड़ा जाएगा। अपना घर है, नहीं देते। जबरजस्ती जो चाहे ले ले।

इन्द्रदत्त —जबरदस्ती कोई नहीं कर रहा है। कानून के अनुसार ही ये मकान खाली कराए जा रहे हैं। सरकार को अधिकार है कि वह किसी सरकारी काम के लिए जो मकान या जमीन चाहे ले ले।

सूरदास—होगा कानून, मैं तो एक धरम का कानून जानता हूं, इस तरह जबरजस्ती करने के लिए जो कानून चाहे बना लो। यहां कोई सरकार का हाथ पकड़ने वाला तो है नहीं। उसके सलाहकार भी तो सेठ-महाजन ही हैं।

इन्द्रदत्त ने राजा साहब के पास जाकर कहा—आप अंधे का मुआमला आज स्थगित कर दें, तो अच्छा हो। गंवार आदमी, बात नहीं समझता, बस अपनी ही गाए जाता है।

राजा ने सूरदास को कुपित नेत्रों से देखकर कहा—गंवार नहीं है, छटा हुआ बदमाश है। हमें और तुम्हें, दोनों ही को कानून पढ़ा सकता है। है भिखारी, मगर टर्रा। मैं उसका झोंपड़ा गिरवाए देता हूं।

इस वाक्य के अंतिम शब्द सूरदास के कानों में पड़ गए। बोला—झोंपड़ा क्यों गिराइएगा? इससे तो यही अच्छा कि मुझ को गोली मरवा दीजिए।

यह कहकर सूरदास लाठी टेकता हुआ वहां से चला गया। राजा साहब को उसकी धृष्टता पर क्रोध आ गया। ऐश्वर्य अपने को बड़ी मुश्किल से भूलता है, विशेषत: जब दूसरों के सामने उसका अपमान किया जाय। माहिरअली को बुलाकर कहा—इसकी झोंपड़ी अभी गिरा दो।

दारोगा माहिरअली चले, निश्शस्त्र पुलिस, सशस्त्र पुलिस और मजदूरों का एक दल उसके साथ चला, मानो किसी किले पर धावा करने जा रहे हैं। उनके पीछे-पीछे जनता का एक समूह भी चला। राजा ने इन आदमियों के तेवर देखे, तो होश उड़ गए। उपद्रव की आशंका हुई। झोंपड़े को गिराना इतना सरल न प्रतीत हुआ, जितना उन्होंने समझा था। पछताए कि मैंने व्यर्थ माहिरअली को यह हुक्म दिया। जब मुहल्ला मैदान हो जाता, तो झोंपड़ा आप-ही-आप उजड़ जाता, सूरदास कोई भूत तो है नहीं कि अकेला उसमें पड़ा रहता। मैंने चिंउटी को तलवार से मारने की चेष्टा की ! माहिरअली क्रोधी आदमी है, और इन आदमियों के रुख भी बदले हुए हैं। जनता क्रोध में अपने को भूल जाती है, मौत पर हंसती है। कहीं माहिरअली उतावली कर बैठा, तो निस्संदेह उपद्रव हो जायगा। इसका सारा इल्जाम मेरे सिर जायगा। यह अंधा आप तो डूबा ही हुआ है, मुझे भी डुबोए देता है। बुरी तरह मेरे पीछे पड़ा हुआ है। लेकिन इस समय वह हाकिम की हैसियत में थे। हुक्म को वापस न ले सकते थे। सरकार की आबरू में बट्टा लगने से कहीं ज्यादा भय अपनी आबरू में बट्टा लगने का था। अब यही एक उपाय था कि जनता

को झोंपड़े की ओर न जाने दिया जाए। सुपरिंटेंडेंट अभी-अभी मिल से लौटा था, और घोड़े पर सवार सिगार पी रहा था कि राजा साहब ने जाकर उससे कहा—इन आदमियों को रोकना चाहिए।

उसने कहा—जाने दीजिए, कोई हरज नहीं, शिकार होगा।

—भीषण हत्या होगी।

—हम इसके लिए तैयार हैं।

विनय के चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। न आगे जाते बनता था, न पीछे। घोर आत्मवेदना का अनुभव करते हुए बोले—इन्द्र, मैं बड़े संकट में हूं।

इन्द्रदत्त ने कहा—इसमें क्या संदेह है।

—जनता को काबू में रखना कठिन है।

—आप जाइए, मैं देख लूंगा। आपका यहां रहना उचित नहीं है।

—तुम अकेले ही जाओगे।

—कोई बात नहीं।

—तुम भी मेरे साथ क्यों नहीं चलते ! अब हम यहां रहकर क्या कर लेंगे, हम अपने कर्त्तव्य का पालन कर चुके।

—आप जाइए ! आपको जो संकट है, वह मुझे नहीं है। मुझे अपने किसी आत्मीय के मानापमान का भय नहीं है।

विनय वहीं आशांत और निश्चल खड़े रहे, या यों कहो कि गड़े रहे, मानो कोई स्त्री घर से निकाल दी गई हो। इन्द्रदत्त उन्हें वहीं छोड़कर आगे बढ़े, तो जनसमूह उसी गली के मोड़ पर रुका हुआ था, जो सूरदास के झोंपड़े की ओर जाती थी। गली के द्वार पर पांच सिपाही संगीनें चढ़ाए खड़े थे। एक कदम आगे बढ़ना संगीन की नोक को छाती पर लेना था। संगीनों की दीवार सामने खड़ी थी।

इन्द्रदत्त ने एक कुएं की जगत पर खड़े होकर उच्च स्वर में कहा—

भाइयो, सोच लो, तुम लोग क्या चाहते हो? क्या इस झोंपड़ी के लिए पुलिस से लड़ोगे? अपना और अपने भाइयों का रक्त बहाओगे? इन दामों यह झोंपड़ी बहुत मंहगी है। अगर उसे बचाना चाहते हो, तो इन आदमियों ही से विनय करो, जो इस वक्त वरदी पहने, संगीनें चढ़ाए, यमदूत बने हुए तुम्हारे सामने खड़े हैं, और यद्यपि प्रकट रूप से वे तुम्हारे शत्रु हैं, पर उनमें एक भी ऐसा न होगा, जिसका हृदय तुम्हारे साथ न हो, जो एक असहाय, दुर्बल, अंधे की झोंपड़ी गिराने में अपनी दिलावरी समझता हो। इनमें सभी भले आदमी हैं, जिनके बाल-बच्चे हैं, जो थोड़े वेतन पर तुम्हारे जान-माल की रक्षा करने के लिए घर से आए हैं?

एक आदमी—हमारे जान-माल की रक्षा करते हैं, या सरकार के रोब-दाब की?

इन्द्रदत्त—एक ही बात है। तुम्हारे जान-माल की रक्षा के लिए सरकार के रोब-दाब की रक्षा करनी परमावश्यक है। इन्हें जो वेतन मिलता है, वह एक मजूर से भी कम है....

दूसरा प्रश्न—चोरियां नहीं कराते? जुआ नहीं खेलाते? घूस नहीं खाते?

इन्द्रदत्त—यह सब इसलिए होता है कि वेतन जितना मिलना चाहिए, उतना नहीं मिलता। ये भी हमारी और तुम्हारी भांति मनुष्य हैं, इनमें भी दया और विवेक है, ये भी दुर्बलों पर हाथ उठाना नीचता समझते हैं। जो कुछ करते हैं, मजबूर होकर। इन्हीं से कहो, अंधे पर तरस खाएं,

उसकी झोंपड़ी को बचाएं। (सिपाहियों से) क्यों मित्रो, तुमसे इस दया की आशा रक्खें? इन मनुष्यों पर दया करोगे?

इन्द्रदत्त ने एक ओर जनता के मन में सिपाहियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने की चेष्टा की, और दूसरी ओर सिपाहियों की मनोगत दया को जाग्रत करने की। हवलदार संगीनों के पीछे खड़ा था। बोला—हमारी रोजी बचाकर और जो चाहे कीजिए। इधर से न जाइए।

इन्द्रदत्त—तो रोजी के लिए इतने प्राणियों का सर्वनाश कर दोगे? ये बेचारे भी तो एक दीन की रक्षा करने आए हैं। जो ईश्वर यहां तुम्हारा पालन करता है, वह क्या किसी दूसरी जगह तुम्हें भूखों मारेगा? अरे! यह कौन पत्थर फेंकता है? याद रक्खो, तुम लोग न्याय की रक्षा करने आए हो, बलवा करने नहीं। ऐसे नीच आघातों से अपने को कलंकित न करो। मत हाथ उठाओ, अगर तुम्हारे ऊपर गोलियों की बाढ़ भी चले....

इन्द्रदत्त को कुछ और कहने का अवसर न मिला। सुपरिंटेंडेंट ने गली के मोड़ पर आदमियों का जमाव देखा, तो घोड़ा दौड़ाता इधर चला। इन्द्रदत्त की आवाज कानों में पड़ी तो डांटकर बोला—हटा दो इसको। इन सब आदमियों को अभी सामने से हटा दो। तुम सब आदमी अभी हट जाओ, नहीं हम गोली मार देगा।

समूह जौ-भर भी न हटा।

—अभी हट जाओ, नहीं हम फायर कर देगा।

कोई आदमी अपनी जगह से न हिला।

सुपरिंटेंडेंट ने तीसरी बार आदमियों को हट जाने की आज्ञा दी।

समूह शांत, गंभीर, स्थिर रहा।

फायर करने की आज्ञा हुई, सिपाहियों ने बंदूकें हाथ में लीं। इतने में राजा साहब बदहवास आकर बोले—For God's Sake Mr. Brown, spare me! लेकिन हुक्म हो चुका था। बाढ़ चली, बंदूकों के मुंह से धुआं निकला, धांय-धांय की रोमांचकारी ध्वनि निकली, और कई आदमी चक्कर खाकर गिर पड़े। समूह की ओर से पत्थरों की बौछार होने लगी। दो-चार टहनियां गिर पड़ी थीं, किंतु वृक्ष अभी तक खड़ा था।

फिर बंदूक चलाने की आज्ञा हुई। राजा साहब ने अब की बहुत गिड़गिड़ाकर कहा—Mr. Brown, these shots are piercing my heart. किंतु आज्ञा मिल चुकी थी, दूसरी बाढ़ चली, फिर कई आदमी गिर पड़े। डालियां गिरीं, लेकिन वृक्ष स्थिर खड़ा था।

तीसरी बार फायर करने की आज्ञा दी गई। राजा साहब ने सजलनयन होकर व्यथित कंठ से कहा—Mr. Brown, now I am Done For! बाढ़ चली, कई आदमी गिरे, और उनके साथ इन्द्रदत्त भी गिरे। गोली वक्षस्थल को चीरती हुई पार हो गई थी। वृक्ष का तना गिर गया!

समूह में भगदड़ पड़ गई। लोग गिरते-पड़ते, एक दूसरे को कुचलते, भाग खड़े हुए। कोई किसी पेड़ की आड़ में छिपा, कोई किसी घर में घुस गया, कोई सड़क के किनारे की खाइयों में जा बैठा, पर अधिकांश लोग वहां से हटकर सड़क पर आ खड़े हुए।

नायकराम ने विनयसिंह से कहा—भैया, क्या खड़े हो, इन्द्रदत्त को गोली लग गई।

विनय अभी तक उदासीन भाव से खड़े थे। यह खबर पाते ही गोली-सी लग गई। बेतहाशा दौड़े, और संगीनों के सामने, गली के द्वार पर आकर खड़े हो गए। उन्हें देखते ही भागने वाले संभल गए, जो छिपे बैठे थे, निकल पड़े। जब ऐसे-ऐस लोग मरने को तैयार हैं, जिनके लिए

संसार में सुख-ही-सुख है, तो फिर हम किस गिनती में हैं। यह विचार लोगों के मन में उठा। गिरती हुई दीवार फिर खड़ी हो गई। सुपरिंटेंडेंट ने दांत पीसकर चौथी बार फायर करने का हुक्म दिया। लेकिन यह क्या? कोई सिपाही बंदूक नहीं चलाता, हवलदार ने बंदूकें जमीन पर पटक दीं, सिपाहियों ने भी उसके साथ ही अपनी-अपनी बंदूकें रख दीं। हवलदार बोला—हुजूर को अख्तियार है, जो चाहें करें, लेकिन अब हम लोग गोली नहीं चला सकते। हम भी मनुष्य हैं, हत्यारे नहीं हैं।

ब्राउन—कोर्टमार्शल होगा।

हवलदार—हो जाय।

ब्राउन—नमकहराम लोग।

हवलदार—अपने भाइयों का गला काटने के लिए नहीं, उनकी रक्षा करने के लिए नौकरी की थी।

यह कहकर सब-के-सब पीछे की ओर फिर गए, और सूरदास के झोंपड़े की तरफ चले। उनके साथ ही कई हजार आदमी जय-जयकार करते हुए चले। विनय उनके आगे-आगे थे। राजा साहब और ब्राउन, दोनों खोए हुए से खड़े थे। उनकी आंखों के सामने एक ऐसी घटना घटित हो रही थी, जो पुलिस के इतिहास में एक नूतन युग की सूचना दे रही थी, जो परंपरा के विरुद्ध, मानव प्रकृति के विरुद्ध, नीति के विरुद्ध थी। सरकार के वे पुराने सेवक, जिनमें से कितनों ही ने अपने जीवन का अधिकांश प्रजा का दमन करने ही में व्यतीत किया था, यों अकड़ते हुए चले जाएं। अपना सर्वस्व, यहां तक कि प्राणों को भी, समर्पित करने को तैयार हो जायं। राजा साहब अब तक उत्तरदायित्व के भार से कांप रहे थे, अब भय यह हुआ कि कहीं ये लोग मुझ पर टूट न पड़े। ब्राउन तो घोड़े पर सवार, आदमियों को हंटर मार-मारकर भगाने की चेष्टा कर रहा था, और राजा साहब अपने लिए छिपने की कोई जगह तलाश कर रहे थे। लेकिन किसी ने उनकी तरफ ताका भी नहीं। सब-के-सब विजयघोष करते हुए, तरल वेग से, सूरदास की झोपड़ी की ओर दौड़े चले आते थे। वहां पहुंचकर देखा तो झोपड़े के चारों तरफ सैकड़ों आदमी खड़े थे, माहिरअली अपने आदमियों के साथ नीम के वृक्ष के नीचे खड़े नई सशस्त्र पुलिस की प्रतीक्षा कर रहे थे, हिम्मत न पड़ती थी कि इस व्यूह को चीरकर झोपड़े के पास जायं। सबके आगे नायकराम कंधे पर लट्ठ रखे खड़े थे। इस व्यूह के मध्य में झोपड़े के द्वार पर सूरदास सिर झुकाए बैठा हुआ था, मानो धैर्य, आत्मबल और शांत तेज की सजीव मूर्ति हो।

विनय को देखते ही नायकराम आकर बोला—भैया, तुम अब कुछ चिंता मत करो। मैं यहां संभाल लूंगा। इधर महीनों से सूरदास से मेरी अनबन थी, बोलचाल तक बंद थी, पर आज उसका जीवट-जिगर देखकर दंग हो गया। एक अंधे अपाहिज में यह हियाव ! हम लोग देखने ही को मिट्टी का एक बोझ लादे हुए हैं।

विनय—इन्द्रदत्त का मरना गजब हो गया।

नायकराम—भैया, दिल न छोटा करो, भगवान् की यही इच्छा होगी।

विनय—कितनी वीर मृत्यु पाई है।

नायकराम—मैं तो खड़ा देखता ही था, माथे पर सिकन तक नहीं आई।

विनय—मुझे क्या मालूम था कि आज यह नौबत आएगी, नहीं पहले खुद जाता। वह

अकेले सेवा-दल का काम संभाल सकते थे, मैं नहीं संभाल सकता। कितना सहास मुख था! कठिनाइयों को तो ध्यान में ही न लाते थे, आग में कूदने के लिए तैयार रहते थे। कुशल यही है कि अभी विवाह नहीं हुआ था।

नायकराम—घर वाले कितना जोर देते रहे, पर इन्होंने एक बार नहीं करके फिर हां न की।

विनय—एक युवती के प्राण बच गए।

नायकराम—कहां की बात भैया, ब्याह हो गया होता, तो वह इस तरह बेधड़क गोलियों के सामने जाते ही न। बिचारे माता-पिता का क्या हाल होगा !

विनय—रो-रोकर मर जाएंगे और क्या।

नायकराम—इतना अच्छा है कि और कई भाई हैं, और घर के पोढ़े हैं।

विनय—देखो, इन सिपाहियों की क्या गति होती है। कल तक फौज आ जायगी। इन गरीबों की भी कुछ फिक्र करनी चाहिए।

नायकराम—क्या फिकिर करोगे भैया? उनका कोटमासल होगा। भागकर कहां जाएंगे।

विनय—यही तो उनसे कहना है कि भागें नहीं, जो कुछ किया है, उसका यश लेने से न डरें। हवलदार को फांसी हो जायगी।

यह कहते हुए दोनों आदमी झोपड़ी के पास आए, तो हवलदार बोला—कुंवर साहब, मेरा तो कोटमासल होगा ही, मेरे बाल-बच्चों की खबर लीजिएगा। यह कहते-कहते वह धाड़ें मार-मारकर रोने लगा।

बहुत-से आदमी जमा हो गए, और कहने लगे—कुंवर साहब चंदा खोल दीजिए। हवलदार, तुम सच्चे सूरमा हो, जो निर्बलों पर हाथ नहीं उठाते।

विनय—हवलदार, हमसे जो कुछ हो सकेगा, वह उठा न रक्खेंगे। आज तुमने हमारे मुख की लाली रख ली।

कुंवर साहब, मरने-जीने की चिंता नहीं है, मरना तो एक दिन होगा ही, अपने भाइयों की सेवा करते हुए मारे जाने से बढ़कर और कौन मौत होगी। धन्य है आपको, जो सुख-विलास त्यागे हुए अभागों की रक्षा कर रहे हैं।

विनय—तुम्हारी साथ के जो आदमी नौकरी करना चाहें, उन्हें हमारे यहां जगह मिल सकती है।

हवलदार—देखिए, कौन बचता है, और कौन मरता है।

राजा साहब ने अवसर पाया, तो मोटर पर बैठकर हवा हो गए। मि० ब्राउन सैनिक सहायता के विषय में जिलाधीश से परामर्श करने चले गए। माहिरअली और उनके सिपाही वहीं जमे रहे। अंधेरा हो गया था, जनता भी एक-एक करके जाने लगी। सहसा सूरदास आकर बोला—कुंवरजी कहां हैं? धर्मावतार, हाथ-भर जमीन के लिए क्यों इतना झंझट करते हो? मेरे कारन आज इतने आदमियों की जान गई। मैं क्या जानता था कि राई का परबत हो जायगा, नहीं तो अपने हाथों से इस झोपड़े में आग लगा देता, और मुंह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाता। मुझे क्या करना था, जंहीं मांगता; वहीं पड़ा रहता। भैया, मुझसे यह नहीं देखा जाता कि मेरी झोपड़ी के पीछे कितने ही घर उजड़ जायं। जब मर जाऊं, तो जो जी में आए करना।

विनय–तुम्हारी झोपड़ी नहीं, हमारा जातीय मंदिर है। हम इस पर फावड़े चलते देखकर शांत नहीं बैठे रह सकते।

सूर–पहले मेरी देह पर फावड़ा चल चुकेगा, तब घर पर फावड़ा चलेगा।

विनय–और अगर आग लगा दें?

सूर–तब तो मेरी चिता बनी-बनाई है। भैया, मैं तुमसे और सब भाइयों से हाथ जोड़कर कहता हूं कि अगर मेरे कारन किसी मां की गोद सूनी हुई, या मेरी कोई बहन विधवा हुई, तो मैं इस झोपड़ी में आग लगाकर जल मरूंगा।

विनय ने नायकराम से कहा–अब !

नायकराम–बात का धनी है; जो कहेगा, जरूर करेगा।

विनय–तो फिर अभी इसी तरह चलने दो। देखो, उधर से कल क्या गुल खिलता है। उनका इरादा देखकर हम लोग सोचेंगे, हमें क्या करना चाहिए। अब चलो, अपने वीरों की सद्गति करें। ये हमारे कौमी शहीद हैं, इनका जनाजा धूम से निकलना चाहिए।

नौ बजते-बजते नौ अर्थियां निकलीं, और तीन जनाजे ! आगे-आगे इन्द्रदत्त की अर्थी थी, पीछे-पीछे अन्य वीरों की। जनाजे कबरिस्तान की तरफ गए। अर्थियों के पीछे कोई दस हजार आदमी, नंगे सिर, नंगे पांव, सिर झुकाए, चले जाते थे। पग-पग पर समूह बढ़ता जाता था, चारों ओर से लोग दौड़े चले आते थे। लेकिन किसी के मुख पर शोक या वेदना का चिह्न न था, न किसी आंख में आंसू थे, न किसी कंठ से आर्त्तनाद की ध्वनि निकलती थी। इसके प्रतिकूल लोगों के हृदय गर्व से फूले हुए थे, आंखों में स्वदेशाभिमान का मद भरा हुआ था। यदि इस समय रास्ते में तोपें चढ़ा दी जातीं, तो भी जनता के कदम पीछे न हटते। न कहीं शोक-ध्वनि थी, न विजयनाद था, अलौकिक निस्तब्धता थी, भावमयी, प्रवाहमयी, उल्लासमयी !

रास्ते में राजा महेन्द्रकुमार का भवन मिला। राजा साहब छत पर खड़े यह दृश्य देख रहे थे। द्वार पर सशस्त्र रक्षकों का एक दल संगीनें चढ़ाए खड़ा था। ज्योंही अर्थियां उनके द्वार के सामने से निकलीं, एक रमणी अंदर से निकलकर जन-प्रवाह में मिल गई। यह इन्दु थी। उस पर किसी की निगाह न पड़ी। उसके हाथों में गुलाब के फूलों की एक माला थी, जो उसने स्वयं गूंथी थी। वह यह हार लिए हुए आगे बढ़ी, और इन्द्रदत्त की अर्थी के पास जाकर अश्रुबिंदुओं के साथ उस पर चढ़ा दिया। विनय ने देख लिया। बोले–इन्दु ! इन्दु ने उनकी ओर जल-पूरित लोचनों से देखा, और कुछ न बोली–कुछ बोल न सकी।

गंगे ! ऐसा प्रभावशाली दृश्य कदाचित् तुम्हारी आंखों ने भी न देखा होगा ! तुमने बड़े-बड़े वीरों को भस्म का ढेर होते देखा है, जो शेरों के मुंह फेर सकते थे, बड़े-बड़े प्रतापी भूपति तुम्हारी आंखों के सामने राख में मिल गए, जिनके सिंहनाद से दिक्पाल थर्राते थे, बड़े-बड़े प्रभुत्वशाली योद्धा यहां चिताग्नि में समा गए ! कोई यश और कीर्ति का उपासक था, कोई राज्य विस्तार का, कोई मत्सर-ममत्व का। कितने ज्ञानी, विरागी, योगी, पंडित तुम्हारी आंखों के सामने चितारूढ़ हो गए। सच कहना, कभी तुम्हारा हृदय इतना आनंद-पुलकित हुआ था? कभी तुम्हारी तरंगों ने इस भांति सिर उठाया था? अपने लिए सभी मरते हैं, कोई इहलोक के लिए, कोई परलोक के लिए। आज तुम्हारी गोद में वे लोग आ रहे हैं, जो निष्काम थे, जिन्होंने पवित्र, विशुद्ध न्याय की रक्षा के लिए अपने को बलिदान कर दिया।

और ऐसा मंगलमय शोक-समाज भी तुमने कभी देखा, जिसका एक-एक अंग भ्रातृ-प्रेम,

स्वजाति-प्रेम और वीर भक्ति से परिपूर्ण हो?

रात-भर ज्वाला उठती रही, मानो वीरात्माएं अग्नि-विमान पर बैठी हुई स्वर्गलोक को जा रही हैं।

ऊषाकाल की स्वर्णमयी किरणें चिताओं से प्रेमालिंगन करने लगीं। यह सूर्यदेव का आशीर्वाद था।

लौटते समय तक केवल गिने-गिनाए लोग रह गए थे। महिलाएं वीर गान करती हुई चली आती थीं। रानी जाह्नवी आगे-आगे थी, सोफी, इन्दु और अन्य कई महिलाएं पीछे। उनकी वीर-रस में डूबी हुई मधुर संगीत-ध्वनि प्रभात की आलोक-रश्मियों पर नृत्य कर रही थी, जैसे हृदय की तंत्रियों पर अनुराग नृत्य करता है।

तेंतालीस

सोफिया के धर्मिक विचार, उसका आहार-व्यवहार, रहन-सहन, उसकी शिक्षा-दीक्षा, ये सभी बातें ऐसी थीं, जिनसे एक हिन्दू महिला को घृणा हो सकती थी। पर इतने दिनों के अनुभव ने रानीजी की सभी शंकाओं का समाधान कर दिया। सोफिया अभी तक हिन्दू-धर्म में विधिवत् दीक्षित न हुई थी, पर उसका आचरण पूर्णरीति से हिन्दू-धर्म और हिन्दू समाज के अनुकूल था। इस विषय में अब जाह्नवी को लेश-मात्र भी संदेह न था। उन्हें अब अगर संदेह था, तो यह कि दांपत्य-प्रेम में फसकर विनय कहीं अपने उद्देश्य को न भूल बैठे। इस आंदोलन में नेतृत्व का भार लेकर विनय ने इस शंका को भी निर्मूल सिद्ध कर दिया। रानीजी अब विवाह की तैयारियों में प्रवृत्त हुईं। कुंवर साहब तो पहले ही से राजी थे, सोफिया के माता-पिता की रजामंदी आवश्यक थी। इन्दु को कोई आपत्ति हो ही न सकती थी। अन्य संबंधियों की इच्छा या अनिच्छा की उन्हें चिंता न थी। अतएव रानीजी एक दिन मिस्टर सेवक के मकान पर गईं कि इस संबंध को निश्चित कर लें। मिस्टर सेवक तो प्रसन्न हुए, पर मिसेज सेवक का मुंह न सीधा हुआ। उनकी दृष्टि में एक योरपियन का जितना आदर था, उतना किसी हिन्दुस्तानी का न हो सकता था, चाहे वह कितना ही प्रभुताशाली क्यों न हो। वह जानती थीं कि यहां साधारण-से-साधारण योरपियन की प्रतिष्ठा यहां के बड़े-से-बड़े राजा से अधिक है। प्रभु सेवक ने योरप की राह ली, अब घर पर पत्र तक न लिखते थे। सोफिया ने इधर यह रास्ता पकड़ा। जीवन की सारी अभिलाषाओं पर ओस पड़ गई। जाह्नवी के आग्रह पर क्रुद्ध होकर बोलीं—खुशी सोफिया की चाहिए; जब वह खुश है, तो मैं अनुमति दूं या न दूं, एक ही बात है। माता हूं, संतान के प्रति मुंह से जब निकलेगी, शुभेच्छा ही निकलेगी, उसकी अनिष्ट-कामना नहीं कर सकती, लेकिन क्षमा कीजिएगा, मैं विवाह-संस्कार में सम्मिलित न हो सकूंगी। मैं अपने ऊपर बड़ा जब्र कर रही हूं कि सोफिया को शाप नहीं देती, नहीं तो ऐसी कुल कलंकिनी लड़की का तो मर जाना ही अच्छा है, जो अपने धर्म से विमुख हो जाय।

रानीजी को कुछ कहने का साहस न हुआ। घर आकर उन्होंने एक विद्वान् पंडित को बुलाकर सोफिया के धर्म और विवाह संस्कार का मुहूर्त निश्चित कर डाला।

रानी जाह्नवी तो इन संस्कारों को धूमधाम से करने की तैयारियां कर रही थीं, उधर पांडेपुर का आंदोलन दिन-दिन भीषण होता जाता था। मुआवजे के रुपये तो अब किसी के बाकी न थे, यद्यपि अभी तक मंजूरी न आई थी, और राजा महेन्द्रकुमार को अपने पास से सभी असामियों को रुपये देने पड़े थे, पर इन खाली मकानों को गिराने के लिए मजदूर न मिलते थे। दुगनी-तिगनी मजदूरी देने पर भी कोई मजदूर काम करने न आता था। अधिकारियों ने जिले के अन्य भागों से मजदूर बुलाए, पर जब वे आए, और यहां की स्थिति देखी, रातों-रात भाग खड़े हुए। तब अधिकारियों ने सरकारी बर्कंदाजों और तहसील के चपरासियों को बड़े-बड़े प्रलोभन देकर काम करने के लिए तैयार किया, पर जब उनके सामने सैकड़ों युवक जिनमें कितने ही ऊंचे कुलों के थे, हाथ बांधकर खड़े हो गए और विनय की कि भाइयो, ईश्वर के लिए फावड़े न चलाओ, और अगर चलाया ही चाहते हो, तो पहले हमारी गरदनों पर चलाओ, तो उन सबों की भी कायापलट हो गई। दूसरे दिन से वे लोग फिर काम पर न आए। विनय और उनके सहकारी सेवक आजकल इस सत्याग्रह को अग्रसर करने में व्यस्त रहते थे।

सूरदास सबेरे से संध्या तक झोपड़े के द्वार पर मूर्तिवत् बैठा रहता। हवलदार और उसके सिपाहियों पर अदालत में अभियोग चल रहा था। घटना-स्थल की रक्षा के लिए दूसरे जिले से सशस्त्र पुलिस बुलाई गई थी। वे सिपाही संगीनें चढ़ाए चौबीसों घंटे झोपड़ी के सामने वाले मैदान में टहलते रहते थे। शहर के हजार-दो-हजार आदमी आठों पहर मौजूद रहते। एक जाता, तो दूसरा आता। आने-जाने वालों का तांता दिन-भर न टूटता था। सेवक-दल भी नायकराम के खाली बरामदे में आसन जमाए रहता था कि न-जाने कब क्या उपद्रव हो जाय। राजा महेन्द्रकुमार और सुपरिंटेंडेंट पुलिस दिन में दो-दो बार अवश्य आते थे, किंतु किसी कारण झोपड़ा गिराने का हुक्म न देते थे। जनता की ओर से उपद्रव का इतना भय न था, जितना पुलिस की अवज्ञा का। हवलदार के व्यवहार से समस्त अधिकारियों के दिल में हौल समा गया था। प्रांतीय सरकार को यहां की स्थिति की प्रतिदिन सूचना दी जाती थी। सरकार ने भी आश्वासन दिया था कि शीघ्र ही गोरखों का एक रेजिमेंट भेजने का प्रबंध किया जाएगा। अधिकारियों की आशा अब गोरखों ही पर अवलंबित थी, जिनकी राजभक्ति पर उन्हें पूरा विश्वास था। विनय प्राय: दिन-भर यहीं रहा करते थे। उनके और राजा साहब के बीच में अब नंगी तलवार का बीच था। वह विनय को देखते, तो घृणा से मुंह फेर लेते। उनकी दृष्टि में विनय सूत्रधार था, सूरदास केवल कठपुतली।

रानी जाह्नवी ज्यों-ज्यों विवाह की तैयारियां करती थीं, और संस्कारों की तिथि समीप आती जाती थी, सोफिया का हृदय एक अज्ञात भय, एक अव्यक्त शंका, एक अनिष्ट-चिंता से आच्छन्न होता जाता था। भय यह था कि कदाचित् विवाह के पश्चात् हमारा दांपत्य जीवन सुखमय न हो, हम दोनों को एक-दूसरे के चरित्र-दोष ज्ञात हों, और हमारा जीवन दुखमय हो जाय। विनय की दृष्टि में सोफी निर्विकार, निर्दोष, उज्ज्वल, दिव्य, सर्वगुण-संपन्ना देवी थी। सोफी को विनय में इतना विश्वास न था। उसके तात्त्विक विवेचन ने उसे मानव-चरित्र की विषमताओं से अवगत कर दिया था। उसने बड़े-बड़े महात्माओं, ऋषियों, मुनियों, विद्वानों, योगियों और ज्ञानियों को, जो अपनी घोर तपस्याओं और साधनाओं से वासनाओं का दमन कर चुके थे, संसार के चिकने, पर काई से ढके हुए, तल पर फिसलते देखा था। वह जानती थी कि यद्यपि संयमशील पुरुष बड़ी मुश्किल से फिसलते हैं, मगर जब एक बार फिसल गए, तो

किसी तरह नहीं संभल सकते, उनकी कुंठित वासनाएं, उनकी पिंजरबद्ध इच्छाएं, उनकी संयत प्रवृत्तियां बड़े प्रबल वेग से प्रतिकूल दिशा की ओर चलती हैं। भूमि पर चलने वाला मनुष्य गिरकर फिर उठ सकता है, लेकिन आकाश पर भ्रमण करने वाला मनुष्य गिरे, तो उसे कौन रोकेगा, उसके लिए कोई आशा नहीं, कोई उपाय नहीं। सोफिया को भय होता था कि कहीं मुझे भी यही अप्रिय अनुभव न हो, कहीं वही स्थिति मेरे गले में न पड़ जाय। संभव है, मुझमें कोई ऐसा दोष निकल आए, जो मुझे विनय की दृष्टि में गिरा दे, वह मेरा अनादर करने लगे। यह शंका सबसे प्रबल, सबसे निराशामय थी। आह ! तब मेरी क्या दशा होगी। संसार में ऐसे कितने दंपत्ति हैं कि अगर उन्हें दूसरी बार चुनाव का अधिकार मिल जाय, तो अपने पहले चुनाव पर संतुष्ट रहें !

सोफी निरंतर इन्हीं आशंकाओं में डूबी रहती थी। विनय बार-बार उसके पास आते, उससे बातें करना चाहते, पांड़ेपुर की स्थिति के विषय में उससे सलाह लेना चाहते, पर उसकी उदासीनता देखकर उन्हें कुछ कहने की इच्छा न होती।

चिंता रोग का मूल है। सोफी इतनी चिंता-ग्रस्त रहती कि दिन-दिन-भर कमरे से न निकलती, भोजन भी बहुत सूक्ष्म करती, कभी-कभी निराहार ही रह जाती। हृदय में एक दीपक-सा जलता रहता था, पर किससे अपने मन की कहे? विनय से इस विषय में एक शब्द भी न कह सकती थी, जानती थी कि इसका परिणाम भयंकर होगा, नैराश्य की दशा में विनय जाने क्या कर बैठें। अंत को उसकी कोमल प्रकृति इस मर्मदाह को सहन न कर सकी। पहले सिर में दर्द रहने लगा, धीरे-धीरे ज्वर का प्रकोप हो गया।

लेकिन रोगशैया पर गिरते ही सोफी को विनय से एक क्षण अलग रहना भी दुस्सह प्रतीत होने लगा। निर्बल मुनष्य को अपनी लकड़ी से भी अगाध प्रेम हो जाता है। रुग्णावस्था में हमारा मन स्नेहापेक्षी हो जाता है। सोफिया, जो कई दिन पहले कमरे में विनय के आते ही बिल-सा खोजने लगती थी कि कहीं यह प्रेमालाप न करने लगें, उनके तृषित नेत्रों से, उनकी मधुर मुस्कान से, उनके मृदु हास्य से थर-थर कांपती रहती थी, जैसे कोई रोगी उत्तम पदार्थों को सामने देखकर डरता हो कि मैं कुपथ्य न कर बैठूं, अब द्वार की ओर अनिमेष नेत्रों से विनय की बाट जोहा करती थी। वह चाहती कि यह अब कहीं न जायं, मेरे पास ही बैठे रहें। विनय भी बहुधा उसके पास ही रहते। पांड़ेपुर का भार अपने सहकारियों पर छोड़कर सोफिया की सेवा-शुश्रूषा में तत्पर हो गए। उनके बैठने से सोफी का चित्त बहुत शांत हो जाता था। वह अपने दुर्बल हाथों को विनय की जांघ पर रख देती, और बालोचित आकांक्षा से उनके मुख की ओर ताकती। विनय को कहीं जाते देखती, तो व्यग्र हो जाती, और आग्रह-पूर्ण नेत्रों से बैठने की याचना करती।

रानी जाह्नवी के व्यवहार में भी अब एक विशेष अंतर दिखाई देता था। स्पष्ट तो न कह सकतीं, पर संकेतों से विनय को पांड़ेपुर के सत्याग्रह में सम्मिलित होने से रोकती थीं। इन्द्रदत्त की हत्या ने उन्हें बहुत सशंक कर दिया था। उन्हें भय था कि उस हत्याकांड का अंतिम दृश्य उससे कहीं भयंकर होगा। और, सबसे बड़ी बात तो यह थी कि विवाह का निश्चय होते ही विनय का सदुत्साह भी क्षीण होने लगा था। सोफिया के पास बैठकर उससे सांत्वनाप्रद बातें करना और उसकी अनुराग-पूर्ण बातें सुनना उन्हें अब बहुत अच्छा लगता था। सोफिया की गुप्त याचना ने प्रेमोद्गारों को और भी प्रबल कर दिया। पहले मनुष्य हैं, पीछे देश-सेवक। देशानुराग के लिए हम अपने मानवी भावों की अवहेलना नहीं कर सकते। यह अस्वाभाविक है। निजपुत्र की मृत्यु

का शोक जाति पर पड़ने वाली विपत्ति से कहीं अधिक होता है। निज शोक मर्मांतक होता है, जाति-शोक निराशाजनक, निज शोक पर हम रोते हैं, जाति-शोक पर चिंतित हो जाते हैं।

एक दिन प्रातःकाल विनय डॉक्टर के यहां से दवा लेकर लौटे थे (सद्वैद्यों के होते हुए भी उनका विश्वास पाश्चात्य चिकित्सा ही पर अधिक था) कि कुंवर साहब ने उन्हें बुला भेजा। विनय इधर महिनों से उनसे मिलने न गए थे। परस्पर मनोमालिन्य-सा हो गया था। विनय ने सोफी को दवा पिलाई, और तब कुंवर साहब से मिलने गए। वह अपने कमरे में टहल रहे थे, इन्हें देखकर बोले—तुम तो अब कभी आते ही नहीं।

विनय ने उदासीन भाव से कहा—अवकाश नहीं मिलता। आपने कभी याद भी तो नहीं किया। मेरे आने से कदाचित् आपका समय नष्ट होता है।

कुंवर साहब ने इस व्यंग्य की परवा न करके कहा—आज मुझे तुमसे एक महान् संकट में राय लेनी है। सावधान होकर बैठ जाओ, इतनी जल्दी छुट्टी न होगी।

विनय—फरमाइए, मैं सुन रहा हूं।

कुंवर साहब ने घोर असमंजस के भाव से कहा—गवर्नमेंट का आदेश है कि तुम्हारा नाम रियासत से...

यह कहते-कहते कुंवर साहब रो पड़े। जरा देर में करुणा का उद्वेग कम हुआ, तो बोले—मेरी तुमसे विनीत याचना है कि तुम स्पष्ट रूप से अपने को सेवक-दल से पृथक् कर लो, और समाचार-पत्रों में इसी आशय की एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर दो। तुमसे यह याचना करते हुए मुझे कितनी लज्जा और कितना दुःख हो रहा है, इसका अनुमान तुम्हारे सिवा और कोई नहीं कर सकता; पर परिस्थिति ने मुझे विवश कर दिया है। मैं तुमसे यह कदापि नहीं कहता कि किसी की खुशामद करो, किसी के सामने सिर झुकाओ; नहीं, मुझे स्वयं इससे घृणा थी और है। किंतु अपनी भूसंपत्ति की रक्षा के लिए मेरे अनुरोध को स्वीकार करो। मैंने समझा था रियासत को सरकार के हाथ में दे देना काफी होगा। किंतु अधिकारी लोग इसे काफी नहीं समझते। ऐसी दशा में मेरे लिए दो ही उपाय हैं—या तो तुम स्वयं इन आंदोलनों से पृथक् हो जाओ, या कम-से-कम उनमें प्रमुख भाग न लो, या मैं एक प्रतिज्ञा-पत्र द्वारा तुम्हें रियासत से वंचित कर दूं। भावी संतान के लिए इस संपत्ति का स्वरक्षित रहना परमावश्यक है। तुम्हारे लिए पहला उपाय जितना कठिन है, उतना ही कठिन मेरे लिए दूसरा उपाय है। तुम इस विषय में क्या निश्चय करते हो?

विनय ने गर्वान्वित भाव से कहा—मैं संपत्ति को अपने पांव की बेड़ी नहीं बनाना चाहता। अगर संपत्ति हमारी है, तो उसके लिए किसी शर्त की जरूरत नहीं; अगर दूसरे की है, और आपका अधिकार उसकी कृपा के अधीन है, तो मैं उसे संपत्ति नहीं समझता। सच्ची प्रतिष्ठा और सम्मान के लिए संपत्ति की जरूरत नहीं, उसके लिए त्याग और सेवा काफी है।

भरतसिंह—बेटा, मैं इस समय तुम्हारे सामने संपत्ति की विवेचना नहीं कर रहा हूं, उसे केवल क्रियात्मक दृष्टि से देखना चाहता हूं। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि किसी अंश में संपत्ति हमारी वास्तविक स्वाधीनता में बाधक होती है, किंतु इसका उज्ज्वल पक्ष भी तो है—जीविका की चिंताओं से निवृत्ति और आदर तथा सम्मान का वह स्थान, जिस पर पहुंचने के लिए असाधारण त्याग और सेवा की जरूरत होती है, मगर जो यहां बिना किसी परिश्रम के आप-ही-आप मिल जाता है। मैं तुमसे केवल इतना चाहता हूं कि तुम इस संस्था

से प्रत्यक्ष रूप से कोई संबंध न रक्खो, यों अप्रत्यक्ष रूप से उसकी जितनी सहायता करना चाहो, कर सकते हो। बस अपने को कानून के पंजे से बचाए रहो।

विनय—अर्थात् कोई समाचार-पत्र भी पढ़ूं तो छिपकर, किवाड़ बंद करके, कि किसी को कानो-कान खबर न हो। जिस काम के लिए परदे की जरूरत है, चाहे उसका उद्देश्य कितना ही पवित्र क्यों न हो, वह अपमानजनक है। अधिक स्पष्ट शब्दों में मैं उसे चोरी कहने में भी कोई आपत्ति नहीं देखता। यह संशय और शंका से पूर्ण जीवन मनुष्य के सर्वोत्कृष्ट गुणों का ह्रास कर देता है। मैं वचन और कर्म की इतनी स्वाधीनता अनिवार्य समझता हूं, जो हमारे आत्मसम्मान की रक्षा करे। इस विषय में मैं अपने विचार इससे स्पष्ट शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकता।

कुंवर साहब ने विनय को जल-पूर्ण नेत्रों से देखा। उनमें कितनी याचना, कितनी दीनता, कितनी उद्विग्नता भरी हुई थी। तब बोले—मेरी खातिर से इतना मान जाओ।

विनय—आपके चरणों पर अपने को न्योछावर कर सकता हूं, पर अपनी आत्मा की स्वाधीनता की हत्या नहीं कर सकता।

विनय यह कहकर जाना ही चाहते थे कि कुंवर साहब ने पूछा- तुम्हारे पास रुपये तो बिल्कुल न होंगे?

विनय—मुझे रुपयों की फिक्र नहीं।

कुंवर—मेरी खातिर से—यह लेते जाओ।

उन्होंने नोटो का एक पुलिंदा विनय की तरफ बढ़ा दिया। विनय इंकार न कर सके। कुंवर साहब पर उन्हें दया आ रही थी। जब वह नोट लेकर कमरे से चले गए, तो कुंवर साहब क्षोभ और निराशा से व्यथित होकर कुर्सी पर गिर पड़े, संसार उनकी दृष्टि में अंधेरा हो गया।

विनय के आत्मसम्मान ने उन्हें रियासत का त्याग करने पर उद्यत तो कर दिया, पर उनके सम्मुख अब एक नई समस्या उपस्थित हो गई। वह जीविका की चिंता थी। संस्था के विषय में तो विशेष चिंता न थी, उसका भार देश पर था, और किसी जातीय कार्य के लिए भिक्षा मांगना भी तो लज्जा की बात नहीं। उन्हें इसका विश्वास हो गया था कि प्रयत्न किया जाए, तो इस काम के लिए स्थायी कोष जमा किया जा सकता है। कितु जीविका के लिए क्या हो? कठिनाई यह थी कि जीविका उनके लिए केवल दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति न थी, कुल-परंपरा की रक्षा भी उसमें शामिल थी। अब तक इस प्रश्न की गुरुता का उन्होंने अनुमान न किया था। मन में किसी इच्छा के उत्पन्न होने की देर रहती थी। अब जो आंखों के सामने यह प्रश्न अपना विशद रूप धारण करके आया, तो वह घबरा उठे। संभव था कि अब भी कुछ काल तक माता-पिता का वात्सल्य उन्हें इस चिंता से मुक्त रखता, किंतु इस क्षीण आधार पर जीवन-भवन का निर्माण तो नहीं किया जा सकता। फिर उनका आत्मगौरव यह कब स्वीकार कर सकता था कि अपनी सिद्धांत-प्रियता और आदर्श-भक्ति का प्रायश्चित माता-पिता से कराए? कुछ नहीं, यह निर्लज्जता है, निरी कायरता। मुझे कोई अधिकार नहीं कि अपने जीवन का भार माता-पिता पर रखूं। उन्होंने इस मुलाकात की चर्चा माता से भी न की, मन-ही-मन डूबने-उतराने लगे। और फिर अब अपनी ही चिंता न थी, सोफिया भी उनके जीवन का अंश बन चुकी थी। इसलिए यह चिंता और भी दाहक थी। माना कि सोफी मेरे साथ जीवन की बड़ी-से-बड़ी कठिनाई को सहन कर लेगी, लेकिन क्या यह उचित है कि उसे प्रेम का यह कठोर दंड दिया जाय? उसके

प्रेम को इतनी कठिन परीक्षा में डाला जाए? वह दिन-भर इन्हीं चिंताओं में मग्न रहे। यह विषय उन्हें असाध्य-सा प्रतीत होता था। उनकी शिक्षा में जीविका के प्रश्न पर लेश-मात्र भी ध्यान न दिया गया था। अभी थोड़े ही दिन पहले उनके लिए इस प्रश्न का अस्तित्व ही न था। वह स्वयं कठिनाइयों के अभ्यस्त थे। विचार किया था कि जीवन-पर्यंत सेवा-व्रत का पालन करूंगा। किंतु सोफिया के कारण उनके सोचे हुए जीवन-क्रम में कायापलट हो गई थी। जिन वस्तुओं का पहले उनकी दृष्टि में कोई मूल्य न था, वे अब परमावश्यक जान पड़ती थीं। प्रेम को विलास-कल्पना ही से विशेष रुचि होती है, वह दु:ख और दरिद्रता के स्वप्न नहीं देखता। विनय सोफिया को एक रानी की भांति रखना चाहता था, उसे जीवन की उन समस्त सुख-सामग्रियों से परिपूरित कर देना चाहता था, जो विलास ने आविष्कृत की हैं; पर परिस्थितियां ऐसा रूप धारण करती जाती थीं, जिनसे वे उच्चाकांक्षाएं मटियामेट हुई जाती थीं, चारों ओर विपत्ति और दरिद्रता का ही कंटकमय विस्तार दिखाई पड़ रहा था। इस मानसिक उद्वेग की दशा में वह कभी सोफी के पास आते, कभी अपने कमरे में जाते, कुछ गुमसुम, उदास, मलिन-मुख, निष्प्रभ, उत्साहहीन, मानो कोई बड़ी मंजिल मारकर लौटे हों। पांड़ेपुर से बड़ी भयप्रद सूचनाएं आ रही थीं, आज कमिश्नर आ गया, आज गोरखों का रेजिमेंट आ पहुंचा, आज गोरखों ने मकानों को गिराना शुरू किया, और लोगों के रोकने पर उन्हें पीटा, आज पुलिस ने सेवकों को गिरफ्तार करना शुरू किया, दस सेवक पकड़ लिए गए, आज बीस पकड़े गए, आज हुक्म दिया गया है कि सड़क से सूरदास की झोपड़ी तक कांटेदार तार लगा दिया जाय, कोई वहां जा ही नहीं सकता। विनय ये खबरें सुनते थे, और किसी पंखहीन पक्षी की भांति एक बार तड़पकर रह जाते थे।

इस भांति एक सप्ताह बीत गया, और सोफी का स्वास्थ्य सुधरने लगा। उसके पैरों में इतनी शक्ति आ गई कि पांव-पांव बगीचे में टहलने चली जाती, भोजन में रुचि हो गई, मुखमंडल पर आरोग्य की कांति झलकने लगी। विनय की भक्ति-पूर्ण सेवा ने उस पर संपूर्ण विजय प्राप्त कर ली थी। वे शंकाएं, जो उसके मन में पहले उठती रहती थीं, शांत हो गई थीं। प्रेम के बंधन को सेवा ने और भी सुदृढ़ कर दिया था। इस कृतज्ञता को वह शब्दों से नहीं, आत्मसमर्पण से प्रकट करना चाहती थी। विनयसिंह को दु:खी देखकर कहती, तुम मेरे लिए इतने चिंतित क्यों होते हो ! मैं तुम्हारे साथ सब कुछ झेल सकती हूं। मैं तुम्हारे ऐश्वर्य और संपत्ति की भूखी नहीं हूं, जो मुझे तुम्हारी सेवा करने का अवसर न देगी, जो तुम्हें भावहीन बना देगी। इससे मुझे तुम्हारा गरीब रहना कहीं ज्यादा पंसद है। हां, ज्यों-ज्यों उसकी तबीयत संभलने लगी, उसे यह खयाल आने लगा कि कहीं लोग मुझे बदनाम न करते हों कि इसी के कारण विनय पांड़ेपुर नहीं जाते, इस संग्राम में वह भाग नहीं लेते, जो उनका कर्त्तव्य है, आप आग लगाकर दूर खड़े तमाशा देख रहे हैं। लेकिन यह खयाल आने पर भी उसकी इच्छा न होती थी कि विनय वहां जाएं।

एक दिन इन्दु उसे देखने आई। बहुत खिन्न और विरक्त हो रही थी। उसे अब अपने पति से इतनी अश्रद्धा हो गई थी कि इधर हफ्तों से उसने उनसे बात तक न की थी, यहां तक कि अब वह खुले-खुले उनकी निंदा करने से भी न हिचकती थी। वह भी उससे न बोलते थे। बातों-बातों में विनय से बोली—उन्हें तो हाकिमों की खुशामद ने चौपट किया, पिताजी को संपत्ति-प्रेम ने चौपट किया, क्या तुम्हें भी मोह चौपट कर देगा? क्यों सोफी, तुम इन्हें एक क्षण के लिए भी कैद से मुक्त नहीं करतीं? अगर अभी से इनका यह हाल है, तो विवाह हो जाने

पर क्या होगा ! तब तो यह कदाचित् दीन-दुनिया कहीं के भी न होंगे, भौंरे की भांति तुम्हारा प्रेम-रस-पान करने में उन्मत्त रहेंगे।

सोफिया बहुत लज्जित हुई, कुछ जवाब न दे सकी। उसकी यह शंका सत्य निकली कि विनय की उदासीनता का कारण मैं ही समझी जा रही हूं।

लेकिन कहीं ऐसा तो नहीं कि विनय अपनी संपत्ति की रक्षा के विचार से, मेरी बीमारी का बहाना लेकर, इस संग्राम से पृथक् रहना चाहते हो? वह कुत्सित भाव बलात् उसके मन में उत्पन्न हुआ। वह उसे हृदय से निकाल देना चाहती थी, जैसे हम किसी घृणित वस्तु की ओर से मुंह फेर लेते हैं। लेकिन इस आक्षेप को अपने सिर से दूर करना आवश्यक था। झेंपते हुए बोली—मैंने तो कभी मना नहीं किया।

इन्दु—मना करने के कई ढंग हैं।

सोफिया—अच्छा, तो मैं आपके सामने कह रही हूं कि मुझे इनके वहां जाने से कोई आपत्ति नहीं है, बल्कि इसे मैं अपने और इनके, दोनों ही के लिए गौरव की बात समझती हूं। अब मैं ईश्वर की दया और इनकी कृपा से अच्छी हो गई हूं, और विश्वास दिलाती हूं कि इनके जाने से मुझे कोई कष्ट न होगा। मैं स्वयं दो-चार दिन में जाऊंगी।

इन्दु ने विनय की ओर सहास नेत्रों से देखकर कहा—लो, अब तो तुम्हें कोई बाधा नहीं रही? तुम्हारे वहां रहने से सब काम सुचारू रूप से होगा, और संभव है कि शीघ्र ही अधिकारियों को समझौता कर लेना पड़े। मैं नहीं चाहती कि उसका श्रेय किसी दूसरे आदमी के हाथ लगे।

लेकिन जब इस अंकुश का भी विनय पर कोई असर न हुआ, तो सोफिया को विश्वास हो गया कि इस उदासीनता का कारण संपत्ति-लालसा चाहे न हो, लेकिन प्रेम नहीं है। जब इन्हें मालूम है कि इनके पृथक् रहने से मेरी निंदा हो रही है, तो यह जान-बूझकर क्यों मेरा उपहास करा रहे हैं? यह तो ऊंघते को ठेलने का बहाना हो गया। रोने को थे ही, आंखों की किरकिरी पड़ गई। मैं उनके पैर थोड़े ही पकड़े हुए हूं। वह तो अब पांड़ेपुर का नाम तक नहीं लेते, मानो वहां कुछ हो ही नहीं रहा है। उसने स्पष्ट तो नहीं, लेकिन सांकेतिक रीति से विनय को वहां जाने की प्रेरणा भी की, लेकिन वह फिर टाल गए। वास्तव में बात यह थी कि इतने दिनों तक उदासीन रहने के पश्चात् विनय अब वहां जाते हुए झेंपते थे, डरते थे कि कहीं मुझ पर लोग तालियां न बजाएं कि डर के मारे छिपे बैठे रहे। उन्हें अब स्वयं पश्चात्ताप होता था कि मैं क्यों इतने दिनों तक मुंह छिपाए रहा, क्यों अपनी व्यक्तिगत चिंताओं को अपने कर्त्तव्य-मार्ग का कांटा बनने दिया। सोफी की अनुमति लेकर मैं जा सकता था, वह कभी मुझे मना न करती। सोफी में एक बड़ा ऐब यह है कि मैं उसके हित के भी जो काम करता हूं, उसे भी वह निर्दय आलोचक की दृष्टि से ही देखती है। खुद चाहे प्रेम के वश कर्त्तव्य की तृण-बराबर भी परवाह न करे, पर मैं आदर्श से जौ-भर भी नहीं टल सकता। अब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह मेरी दुर्बलता, मेरी भीरुता और मेरी अकर्मण्यता थी, जिसने सोफिया की बीमारी को मेरे मुंह छिपाने का बहाना बना दिया, वरना मेरा स्थान तो सिपाहियों की प्रथम श्रेणी में था। वह चाहते थे कि कोई ऐसी बात पैदा हो जाए कि मैं इस झेंप को मिटा सकूं—इस कालिख को धो सकूं। कहीं दूसरे प्रांत से किसी भीषण दुर्घटना का समाचार आ जाय, और वहां अपनी लाज रखूं।

सोफिया को अब उनका आठों पहर अपने समीप रहना अच्छा न लगता। हम बीमारी में जिस लकड़ी के सहारे डोलते हैं, नीरोग हो जाने पर उसे छूते तक नहीं। मां भी तो चाहती

है कि बच्चा कुछ देर जाकर खेल आए। सोफी का हृदय अब भी विनय को आंखों से परे न जाने देना चाहता था, उन्हें देखते ही उसका चेहरा फूल के समान खिल उठता था, नेत्रों में प्रेम-मद छा जाता था, पर विवेक-बुद्धि उसे तुरत अपने कर्त्तव्य की याद दिला देती थी। वह सोचती थी कि जब विनय मेरे पास आए, तो निष्ठुर बन जाऊं, रुखाई से पेश आऊं, बोलूं ही नहीं, आप चले जाएं, लेकिन यह केवल उसकी पवित्र कामना थी। वह इतनी निर्दय, इतनी स्नेह-शून्य न हो सकती थी। भय होता था, कहीं बुरा न मान जाएं! कहीं यह न समझने लगें कि इसका चित्त चंचल है, या यह स्वार्थपरायण है, बीमारी में तो स्नेह की मूर्ति बनी हुई थी, अब मुझसे बोलते हुए भी जबान दुखती है। सोफी! तेरा मन प्रेम में बस हुआ है, बुद्धि यश और कीर्ति में, और इन दोनों में निरंतर संघर्ष हो रहा है।

संग्राम को छिड़े दो महीने हो गए। समस्या प्रतिदिन भीषण होती जा रही थी, स्वयंसेवकों की पकड़-धकड़ से संतुष्ट न होकर गोरखों ने अब शारीरिक कष्ट देना शुरू कर दिया था, अपमान भी करते थे, और अपने अमानुषिक कृत्यों से उनको भयभीत कर देना चाहते थे। पर अंधे पर बंदूक चलाने की, या झोपड़े में आग लगाने की हिम्मत न पड़ती थी। क्रांति का भय न था, विद्रोह का भय न था, भीषण-से-भीषण विद्रोह भी उनको आशंकित न कर सकता था, भय था हत्याकांड का, न जाने कितने गरीब मर जाएं, न जाने कितना हाहाकार मच जाय। पाषाणहृदय भी एक बार रक्तप्रवाह से कांप उठता है?

सारे नगर में, गली-गली, घर-घर में यही चर्चा होती रहती थी। सहस्रों नगरवासी रोज वहां पहुंच जाते थे, केवल तमाशा देखने नहीं, बल्कि एक बार उस पर्ण-कुटी और उसके चक्षुहीन निवासी का दर्शन करने के लिए और अवसर पड़ने पर अपने से जो कुछ हो सके, कर दिखाने के लिए। सेवकों की गिरफ्तारी से उनकी उत्सुकता और भी बढ़ गई थी। आत्मसमपर्ण की हवा-सी चल पड़ी थी।

तीसरा पहर था। एक आदमी डौंड़ी पीटता हुआ निकला। विनय ने नौकर को भेजा कि क्या बात है। उसने लौटकर कहा, सरकार का हुक्म हुआ है कि आज से शहर का कोई आदमी पांड़ेपुर न जाए, सरकार उसकी प्राणरक्षा की जिम्मेदार न होगी।

विनय ने सचिंत भाव से कहा—आज कोई नया आघात होने वाला है।

सोफिया—मालूम तो ऐसा ही होता है।

विनय—शायद सरकार ने इस संग्राम का अंत करने का निश्चय कर लिया है।

सोफिया—ऐसा ही जान पड़ता है।

विनय—भीषण रक्त-पात होगा!

सोफिया—अवश्य होगा।

सहसा एक वालंटियर ने आकर विनय को नमस्कार किया, और बोला—आज तो उधर का रास्ता बंद कर दिया गया है। मि० क्लार्क राजपूताना से जिलाधीश की जगह आ गए हैं। मि० सेनापति मुअत्तल कर दिए गए हैं।

विनय—अच्छा। मि० क्लार्क आ गए। कब आए?

सेवक—आज ही चार्ज लिया है। सुना जाता है, उन्हें सरकार ने इसी कार्य के लिए विशेष रीति से यहां नियुक्त किया है।

विनय—तुम्हारे कितने आदमी वहां होंगे?

सेवक–कोई पचास होंगे।

विनय कुछ सोचने लगे। सेवक ने कई मिनट के बाद पूछा–आप कोई विशेष आज्ञा देना चाहते हैं?

विनय ने जमीन की तरफ ताकते हुए कहा–बरबस आग में मत कूदना और यथासाध्य जनता को उस सड़क पर जाने से रोकना।

सेवक–आप भी आएंगे?

विनय ने कुछ खिन्न होकर कहा–देखा जाएगा।

सेवक के चले जाने के पश्चात् विनय कुछ देर तक शोक-मग्न रहे। समस्या थी, जाऊं या न जाऊं? दोनों पक्षों में तर्क-वितर्क होने लगा–मैं जाकर क्या कर लूंगा? अधिकारियों की जो इच्छा होगी, वह तो अवश्य ही करेंगे। अब समझौते की कोई आशा नहीं। लेकिन यह कितना अपमानजनक है कि नगर के लोग तो वहां जाने के लिए उत्सुक हों, और मैं, जिसने यह संग्राम छेड़ा, मुंह छिपाकर बैठा रहूं। इस अवसर पर मेरा तटस्थ रहना मुझे जीवन-पर्यंत के लिए कलंकित कर देगा, मेरी दशा महेन्द्रकुमार से भी गई-बीती हो जाएगी। लोग समझेंगे, कायर है। एक प्रकार से मेरे सार्वजनिक जीवन का अंत हो जाएगा।

लेकिन बहुत संभव है, आज भी गोलियां चलें। अवश्य चलेंगी। कौन कह सकता है, क्या होगा? सोफिया किसकी होकर रहेगी? आह ! मैंने व्यर्थ जनता में यह भाव जगाया, अंधे का झोपड़ा गिर गया होता, और सारी कथा समाप्त हो जाती। मैंने ही सत्याग्रह का झंडा खड़ा किया, नाग को जगाया, सिंह के मुंह में उंगली डाली।

उन्होंने अपने मन का तिरस्कार करते हुए सोचा–आज मैं इतना कायर क्यों हो गया हूं। क्या मैं मौत से डरता हूं? मौत से क्या डर? मरना तो एक दिन है ही। क्या मेरे मरने से देश सूना हो जाएगा? क्या मैं ही कर्णधार हूं? क्या कोई दूसरी वीर-प्रसू माता देश में है ही नहीं?

सोफिया कुछ देर तक टकटकी लगाए उनके मुंह की ओर ताकती रही। अकस्मात् वह उठ खड़ी हुई, और बोली–मैं वहां जाती हूं।

विनय ने भयातुर होकर कहा–आज वहां जाना दुस्साहस है। सुना नहीं, सारे नाके बंद कर दिए गए हैं?

सोफिया–स्त्रियों को कोई नहीं रोकेगा।

विनय ने सोफिया का हाथ पकड़ लिया, और अत्यंत प्रेम-विनीत भाव से कहा–प्रिये, मेरा कहना मानो, आज मत जाओ। अच्छे रंग नहीं हैं। कोई अनिष्ट होने वाला है।

सोफिया–इसीलिए तो मैं जाना चाहती हूं। औरों के लिए भय बाधक हो, तो मेरे लिए भी क्यों हो?

विनय–क्लार्क का आना बुरा हुआ।

सोफिया–इसीलिए मैं और जाना चाहती हूं। मुझे विश्वास है कि मेरे सामने वह कोई पैशाचिक आचरण न कर सकेगा। इतनी सज्जनता अभी उसमें है।

यह कहकर सोफिया अपने कमरे में गई, और अपना पुराना पिस्तौल सलूके की जेब में रखा। गाड़ी तैयार करने को पहले ही दिया था। वह बाहर निकली, तो गाड़ी तैयार खड़ी थी। जाकर विनयसिंह के कमरे में झांका, वह वहां न थे। तब वह द्वार पर कुछ देर तक खड़ी रही, एक अज्ञात शंका ने, किसी अमंगल के पूर्वाभास ने उसके हृदय को आंदोलित कर दिया। वह

अपने कमरे में लौट जाना चाहती थी कि कुंअर साहब आते हुए दिखाई दिए। सोफी डरी कि यह कुछ पूछ न बैठें, तुरत गाड़ी में आ बैठी, और कोचवान को तेज चलने का हुक्म दिया। लेकिन जब गाड़ी कुछ दूर निकल गई, तो वह सोचने लगी कि विनय कहां चले गए? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वह मुझे जाने को तत्पर देखकर मुझसे पहले ही चल दिए हों? उसे मनस्ताप होने लगा कि मैं नाहक यहां आने को तैयार हुई। विनय की आने की इच्छा न थी। वह मेरे ही आग्रह से आए हैं। ईश्वर! तुम उनकी रक्षा करना। क्लार्क उनसे जला हुआ है ही, कहीं उपद्रव न हो जाए। मैंने विनय को अकर्मण्य समझा। मेरी कितनी धृष्टता है! यह दूसरा अवसर है कि मैंने उन पर मिथ्या दोषारोपण किया। मैं शायद अब तक उन्हें नहीं समझी। वह वीर आत्मा हैं। यह मेरी क्षुद्रता है कि उनके विषय में अक्सर मुझे भ्रम हो जाता है। अगर मैं उनके मार्ग का कंटक न बनी होती, तो उनका जीवन कितना निष्कलंक, कितना उज्ज्वल होता? मैं ही उनकी दुर्बलता हूं, मैं ही उनको कलंक लगाने वाली हूं। ईश्वर करे, वह इधर न आए हों। इनका न आना ही अच्छा। यह कैसे मालूम हो कि यहां आए या नहीं! चलकर देख लूं।

उसने कोचवान को और तेज चलने का हुक्म दिया।

उधर विनयसिंह दफ्तर में जाकर सेवक-संस्था का आय-व्यय का हिसाब लिख रहे थे। उनका चित्त बहुत उदास था। मुख पर नैराश्य छाया हुआ था। रह-रहकर अपने चारों ओर वेदनातुर दृष्टि से देखते और फिर हिसाब लिखने लगते थे। न जाने वहां से लौटकर आना हो या न हो, इसलिए हिसाब-किताब ठीक कर देना आवश्यक समझते थे। हिसाब पूरा करके उन्होंने प्रार्थना के भाव से ऊपर की ओर देखा, फिर बाहर निकले, बाइसिकिल उठाई, और तेजी से चले। इतने में सतृष्ण नेत्रों से पीछे फिरकर भवन, उद्यान और विशाल वृक्षों को देखते जाते थे, मानो उन्हें फिर न देखेंगे, मानो यह उनका अंतिम दर्शन है। कुछ दूर आकर उन्होंने देखा, सोफिया चली जा रही है। अगर वह उससे मिल जाते, तो कदाचित् सोफिया भी उनके साथ लौट पड़ती, पर उन्हें तो यह धुन सवार थी कि मैं सोफिया के पहले वहां जा पहुंचूं। मोड़ आते ही उन्होंने अपनी पैरगाड़ी को फेर दिया, और दूसरा रास्ता पकड़ा। फल यह हुआ कि जब वह संग्राम-स्थल पर पहुंचे, तो सोफिया अभी तक न आई थी। विनय ने देखा, गिरे हुए मकानों की जगह सैकड़ों छोलदारियां खड़ी हैं, और उनके चारों ओर गोरखे खड़े चक्कर लगा रहे हैं। किसी की गति नहीं है कि अंदर प्रवेश कर सके। हजारों आदमी आस-पास खड़े हैं, मानो किसी विशाल अभिनय को देखने के लिए दर्शक वृत्ताकार खड़े हों। मध्य में सूरदास का झोपड़ा रंगमंच के समान स्थित था। सूरदास झोंपड़े के सामने लाठी लिए खड़ा था, मानो सूत्रधार नाटक का आरंभ करने को खड़ा है। सब-के-सब सामने का यह दृश्य देखने में इतने तन्मय हो रहे थे कि विनय की ओर किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। सेवक-दल के युवक झोपड़े के सामने रातों-रात ही पहुंच गए थे। विनय ने निश्चय किया कि मैं भी वहीं जाकर खड़ा हो जाऊं।

एकाएक किसी ने पीछे से उनका हाथ पकड़कर खींचा। उन्होंने चौंककर देखा, तो सोफिया थी। उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था। घबराई हुई आवाज में बोली—तुम क्यों आए?

विनय—तुम्हें अकेले क्योंकर छोड़ देता?

सोफिया—मुझे बड़ा भय लग रहा है। ये तोपें क्यों लगा दी गई हैं?

विनय ने तोपें न देखी थीं। वास्तव में तीन तोपें झोपड़े की ओर मुंह किए हुए खड़ी थीं, मानो रंगभूमि में दैत्यों का प्रवेश किया हो।

विनय–शायद आज इस सत्याग्रह का अंत कर देने का निश्चय हुआ है।

सोफिया–मैं यहां नाहक आई। मुझे घर पहुंचा दो।

आज सोफिया को पहली बार प्रेम के दुर्बल पक्ष का अनुभव हुआ। विनय की रक्षा की चिंता में वह कभी इतनी भय-विकल न हुई थी। जानती थी कि विनय का कर्त्तव्य, उनका गौरव, उनका श्रेय यहीं रहने में हैं। लेकिन यह जानते हुए भी उन्हें यहां से हटा ले जाना चाहती थी। अपने विषय में उसे कोई चिंता न थी। अपने को वह बिल्कुल भूल गई थी।

विनय–हां, तुम्हारा यहां रहना जोखिम की बात है। मैंने पहले ही मना किया था, तुमने न माना।

सोफिया विनय का हाथ पकड़कर गाड़ी में बैठा देना चाहती थी कि सहसा इन्दुरानी की मोटर आ गई। मोटर से उतरकर वह सोफिया के पास आई, और बोली–क्यों सोफी, जाती हो क्या?

सोफिया ने बात बनाकर कहा–नहीं जाती नहीं हूं, जरा पीछे हटना चाहती हूं।

सोफिया को इन्दु का आना कभी इतना नागवार न मालूम हुआ था। विनय को भी बुरा मालूम हुआ। बोले–तुम क्यों आईं?

इन्दु–इसलिए कि तुम्हारे भाई साहब ने आज पत्र द्वारा मुझे मना कर दिया था।

विनय–आज की स्थिति बहुत नाजुक है। हम लोगों के धैर्य और साहस की आज कठिनतम परीक्षा होगी।

इन्दु–तुम्हारे भाई साहब ने भी तो उस पत्र में यही बात लिखी थी।

विनय–क्लार्क को देखो, कितनी निर्दयता से लोगों को हंटर मार रहा है। किंतु कोई हटने का नाम भी नहीं लेता। जनता का संयम और धैर्य अब अंतिम बिंदु तक पहुंच गया है। कोई नहीं कह सकता कि कब क्या हो जाए।

साधारण जनता इतनी स्थिर-चित्त और दृढ़-व्रत हो सकती है, इसका आज विनय को अनुभव हुआ। प्रत्येक व्यक्ति प्राण हथेली पर लिए हुए मालूम होता था। इतने में नायकराम किसी ओर से आ गए, और विनय को देखकर विस्मय से पूछा–आज तुम इधर कैसे भूल पड़े भैया?

इस प्रश्न में कितना व्यंग्य, कितना तिरस्कार, कितना उपहास था। विनय ऐंठकर रह गए। बात टालकर बोले–क्लार्क बड़ा निर्दयी है।

नायकराम ने अंगोछा उठाकर विनय को अपनी पीठ दिखाई। गर्दन से कमर तक एक नीली, रक्तमय रेखा खिंची हुई थी, मानो किसी नोकदार कील से खुरच लिया गया हो। विनय ने पूछा–यह घाव कैसे लगा?

नायकराम–अभी यही हंटर खाए चला आता हूं। आज जीता बचा, तो समझूंगा। क्रोध तो ऐसा आया था कि टांग पकड़कर नीचे घसीट लूं, लेकिन डरा कि कहीं गोली न चल जाएं, तो नाहक सब आदमी भुन जाएं। तुमने तो इधर आना ही छोड़ दिया। औरत का माया-जाल बड़ा कठिन है।

सोफिया ने इस कथन का अंतिम वाक्य सुन लिया। बोली–ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम इस जाल में नहीं फंसे!

सोफिया की चुटकी ने नायकराम को गुदगुदा दिया। सारा क्रोध शांत हो गया। बोले–भैया, मिस साहब का जवाब दो। मुझे मालूम तो है, लेकिन कहते नहीं बनता। हां, कैसे?

विनय—क्यों, तुम्हीं ने तो निश्चय किया था कि अब स्त्रियों के नगीच न जाऊंगा, ये बड़ी बेवफा होती हैं। उसी दिन की बात है, जब मैं सोफी की लताड़ सुनकर उदयपुर जा रहा था।

नायकराम—(लज्जित होकर) वाह भैया, तुमने तो मेरे ही सिर झोंक दिया।

विनय—और क्या कहूं! सच कहने में क्या संकोच? खुश हों, तो मुसीबत, नाराज हों तो मुसीबत!

नायकराम—बस भैया, मेरे मन की बात कही। ठीक यही बात है। हर तरह मरदों ही पर मार, राजी हों तो मुसीबत, नाराज हों तो उससे भी बड़ी मुसीबत!

सोफिया—जब औरत इतनी विपत्ति है, तो पुरुष क्यों उसे सिर मढ़ते हैं? जिसे देखो, वही उसके पीछे दौड़ता है! क्या दुनिया के सभी पुरुष मूर्ख हैं, किसी को बुद्धि नहीं छू गई?

नायकराम—भैया, मिस साहब ने मेरे सामने पत्थर लुढ़का दिया। बात सच्ची है कि जब औरत इतनी बड़ी बिपत है, तो लोग क्यों उसके पीछे हैरान रहते हैं? एक की दुर्दसा देखकर दूसरा क्यों नहीं सीखता? बोलो भैया, है कुछ जवाब?

विनय—जवाब क्यों नहीं है, एक तो तुम्हीं ने मेरी दुर्दशा से सीख लिया। तुम्हारी भांति और भी कितने ही पड़े होंगे।

नायकराम—(हंसकर) भैया, तुमने फिर मेरे ही सिर डाल दिया। यह तो कुछ ठीक जवाब न बन पड़ा।

विनय—ठीक वही है, जो तुमने आते-ही-आते कहा था कि औरत का माया-जाल बड़ा कठिन है।

मनुष्य स्वभावत: विनोदशील है। ऐसी विडंबना में भी उसे हंसी सूझती है, फांसी पर चढ़ने वाले मनुष्य भी हंसते देखे गए हैं। यहां ये ही बातें हो रही थीं कि मि० क्लार्क घोड़ा उछालते, आदमियों को हटाते, कुचलते आ पहुंचे। सोफी पर निगाह पड़ी। तीर-सा लगा। टोपी ऊपर उठाकर बोले—यह वही नाटक है, या कोई दूसरा शुरू कर दिया?

नश्तर से भी तीव्र, पत्थर से भी कठोर, निर्दय वाक्य था। मि० क्लार्क ने अपने मनोगत नैराश्य, दु:ख, अविश्वास और क्रोध को, इन चार शब्दों में कूट-कूटकर भर दिया था।

सोफी ने तत्क्षण उत्तर दिया—नहीं, बिल्कुल नया। तब जो मित्र थे, वे ही अब शत्रु हैं।

क्लार्क व्यंग्य समझकर तिलमिला उठे। बोले—यह तुम्हारा अन्याय है। मैं अपनी नीति से जौ-भर भी नहीं हटा।

सोफी—किसी को एक बार शरण देना और दूसरी बार उसी पर तलवार उठाना क्या एक ही बात है? जिस अंधे के लिए कल तुमने यहां के रईसों का विरोध किया था, बदनाम हुए थे, दंड भोगा था, उसी अंधे की गरदन पर तलवार चलाने के लिए आज राजपूताने से दौड़े आए हो। क्या दोनों एक ही बात हैं?

क्लार्क—हां मिस सेवक, दोनों की एक ही बात है। हम यहां शासन करने के लिए आते हैं, अपने मनोभावों और व्यक्तिगत विचारों का पालन करने के लिए नहीं। जहाज से उतरते ही हम अपने व्यक्तित्व को मिटा देते हैं। हमारा न्याय, हमारी सहृदयता, हमारी सदिच्छा, सबका एक ही अभीष्ट है। हमारा प्रथम और अंतिम उद्देश्य शासन करना है।

मि० क्लार्क का लक्ष्य सोफी की ओर इतना नहीं, जितना विनय की ओर था। वह विनय को अलक्षित रूप से धमका रहे थे। खुले हुए शब्दों में उनका आशय यही था कि हम किसी

के मित्र नहीं हैं, हम यहां राज्य करने आए हैं, और जो हमारे कार्य में बाधक होगा, उसे हम उखाड़ फेकेंगे।

सोफी ने कहा—अन्याय-पूर्ण शासन शासन नहीं, युद्ध है।

क़्लार्क—तुमने फावड़े को फावड़ा कह दिया। हममें इतनी सज्जनता है। अच्छा, मैं तुमसे फिर मिलूंगा।

यह कहकर उन्होंने घोड़े को एड़ लगाई। सोफिया ने उच्च स्वर से कहा—नहीं कदापि, न आना, मैं तुमसे नहीं मिलना चाहती।

आकाश मेघ-मंडित हो रहा था। संध्या से पहले संध्या हो गई थी। मि० क्लार्क अभी गए ही थे कि मि० जॉन सेवक की मोटर आ पहुंची। वह ज्योंही मोटर से उतरे कि सैकड़ों आदमी उनकी तरफ लपके। जनता शासकों से दबती है, उनकी शक्ति का ज्ञान उस पर अंकुश जमाता रहता है। जहां उस शक्ति का भय नहीं होता, वहां वह आपे से बाहर हो जाती है। मि० सेवक शासकों के कृपापात्र होने पर भी शासक नहीं थे। जान लेकर गोरखों के कैंप की तरफ भागे, सिर पर पांव रखकर दौड़े, लेकिन ठोकर खाई और गिर पड़े। मि० क्लार्क ने घोड़े पर से उन्हें दौड़ते देखा था। उन्हें गिरते देखा, तो समझे, जनता ने उन पर आघात कर दिया। तुरत गोरखों का एक दल उनकी रक्षा के निमित्त भेजा। जनता ने भी उग्र रूप धारण किया—चूहे बिल्ली से लड़ने को तैयार हुए। सूरदास अभी तक चुपचाप खड़ा था। यह हलचल सुनी, तो भयभीत होकर भैरो से बोला, जो एक क्षण के लिए उसे न छोड़ता था—भैया, तुम मुझे जरा अपने कंधे पर बैठा लो, एक बार और लोगों को समझा देखूं। क्यों लोग यहां से हट नहीं जाते? सैकड़ों बार कह चुका, कोई सुनता ही नहीं। कहीं गोली चल गई, तो आज उस दिन से भी अधिक खून-खच्चर हो जाएगा।

भैरो ने सूरदास को कंधे पर बैठा लिया। इस जन-समूह में उसका सिर बालिश्त-भर ऊंचा हो गया। लोग इधर-उधर से उसकी बातें सुनने दौड़े। वीर-पूजा जनता का स्वाभाविक गुण है। ऐसा ज्ञात होता था कि कोई चक्षुहीन यूनानी देवता अपने उपासकों के बीच खड़ा है।

सूरदास ने अपनी तेजहीन आंखों से जन-समूह को देखकर कहा—भाइयो, आप लोग अपने-अपने घर जाएं। आपसे हाथ जोड़कर कहता हूं, घर चले जाएं। यहां जमा होकर, हाकिमों को चिढ़ाने से क्या फायदा? मेरी मौत आवेगी, तो आप लोग खड़े रहेंगे, और मैं मर जाऊंगा। मौत न आवेगी, तो मैं तोपों के मुंह से बचकर निकल आऊंगा। आप लोग वास्तव में मेरी सहायता करने नहीं आए, मुझसे दुसमनी करने आए हैं। हाकिमों के मन में, फौज के मन में, पुलिस के मन में जो दया और धरम का खयाल आता, उसे आप लोगों ने जमा होकर क्रोध बना दिया है। मैं हाकिमों को दिखा देता कि एक दीन अंधा आदमी एक फौज को कैसे पीछे हटा देता है, तोप का मुंह बंद कर देता है, तलवार की धार कैसे मोड़ देता है। मैं धर्म के बल से लड़ना चाहता था....

इसके आगे वह और कुछ न कह सका। मि० क्लार्क ने उसे खड़े होकर कुछ बोलते सुना, तो समझे, अंधा जनता को उपद्रव मचाने के लिए प्रेरित कर रहा है। उनकी धारणा थी कि जब तक यह आत्मा जीवित रहेगी, अंगों की गति कभी बंद न होगी। इसलिए आत्मा ही का नाश कर देना आवश्यक है। उद्गम को बंद कर दो, जल-प्रवाह बंद हो जाएगा। वह इसी ताक में लगे हुए थे कि इस विचार को कैसे कार्य-रूप में परिणत करें, किंतु सूरदास के चारों तरफ

नित्य आदमियों का जमघट रहता था, क्लार्क को इच्छित अवसर न मिलता था। अब जो उसके सिर को ऊपर उठा हुआ देखा, तो उन्हें वह अवसर मिल गया। वह स्वर्णावसर था, जिसके प्राप्त होने पर ही इस संग्राम का अंत हो सकता था। इसके पश्चात् जो कुछ होगा, उसे वह जानते थे। जनता उत्तेजित होकर पत्थरों की वर्षा करेगी, घरों में आग लगावेगी, सरकारी दफ्तरों को लूटेगी। इन उपद्रवों को शांत करने के लिए उनके पास पर्याप्त शक्ति थी। मूल मंत्र अंधे को समर-स्थल से हटा देना था—यही जीवन का केंद्र है, यही गति-संचालक सूत्र है। उन्होंने जेब से पिस्तौल निकाला, और सूरदास पर चला दिया। निशाना अचूक पड़ा। बाण ने लक्ष्य को बेध दिया। गोली सूरदास के कंधे में लगी, सिर लटक गया, रक्त-प्रवाह होने लगा। भैरो उसे संभाल न सका, वह भूमि पर गिर पड़ा। आत्मबल पशुबल का प्रतिकार न कर सका।

सोफिया ने मि० क्लार्क को जेब से पिस्तौल निकालते हुए और सूरदास को लक्ष्य करते देखा था। उसके जमीन पर गिरते देखकर समझी, घातक ने अपना अभीष्ट पूरा कर लिया। फिटन पर खड़ी थी, नीचे कूद पड़ी और हत्याक्षेत्र की ओर चली, जैसे कोई माता अपने बालक को किसी आने वाली गाड़ी के चपेट में देखकर दौड़े। विनय उसके पीछे-पीछे उसे रोकने के लिए दौड़े, वह कहते जाते थे—सोफी! ईश्वर के लिए वहां न जाओ, मुझ पर इतनी दया करो। देखो, गोरखे बंदूकें संभाल रहे हैं। हाय! तुम नहीं मानतीं। यह कहकर उन्होंने सोफी का हाथ पकड़ लिया, और अपनी ओर खींचा। लेकिन सोफी ने एक झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया, और फिर दौड़ी। उसे इस समय कुछ न सूझता था, न गोलियों का भय था, न संगीनों का। लोग उसे दौड़ते देखकर आप-ही-आप रास्ते से हटते जाते थे। गोरखों की दीवार सामने खड़ी थी, पर सोफी को देखकर वे भी हट गए। मि० क्लार्क ने पहले ही कड़ी ताकीद कर दी थी कि कोई सैनिक रमणियों से छेड़छाड़ न करे। विनय इस दीवार को न चीर सके। तरल वस्तु छिद्र के रास्ते निकल गई, ठोस वस्तु न निकल सकी।

सोफी ने जाकर देखा, तो सूरदास के कंधे से रक्त प्रवाहित हो रहा था, अंग शिथिल पड़ गए थे, मुख विवर्ण हो रहा था, पर आंखें खुली हुई थीं, और उनमें से पूर्ण शांति, संतोष और धैर्य की ज्योति निकल रही थी, क्षमा थी, क्रोध या भय का नाम न था। सोफी ने तुरंत रूमाल निकालकर रक्त-प्रवाह को बंद किया, और कंपित स्वर में बोली—इन्हें अस्पताल भेजना चाहिए। अभी प्राण हैं, संभव है, बच जाएं। भैरो ने उसे गोद में उठा लिया। सोफिया उसे अपनी गाड़ी तक लाई, उस पर सूरदास को लिटा दिया, आप गाड़ी पर बैठ गई, और कोचवान को शफाखाने चलने का हुक्म दिया।

जनता नैराश्य और क्रोध से उन्मत्त हो गई। हम भी यहीं मर मिटेंगे! किसी को इतना होश न रहा कि यों मर मिटने से अपने सिवा दूसरे की क्या हानि होगी। बालक मचलता है, तो जानता है कि माता मेरी रक्षा करेगी। यहां कौन माता थी, जो इन मचलने वालों की रक्षा करेगी! लेकिन क्रोध में विचार-पट बंद हो जाता है। जन-समुदाय का वह अपार सागर उमड़ता हुआ गोरखों की ओर चला। सेवक-दल के युवक घबराए हुए इधर-उधर दौड़ते फिरते थे, लेकिन उनके समझाने का किसी पर असर न होता था। लोग दौड़-दौड़कर ईंट और कंकर-पत्थर जमा कर रहे थे। खंडहरों में मलबे की क्या कमी। देखते-देखते जगह-जगह पत्थरों के ढेर लग गए।

विनय ने देखा, अब अनर्थ हुआ चाहता है। आन-की-आन में सैकड़ों जानों पर बन

आएगी, तुरंत एक गिरी हुई दीवार पर चढ़कर बोले—मित्रो, यह क्रोध का अवसर नहीं है, प्रतिकार का अवसर नहीं है, सत्य की विजय पर आनंद और उत्सव मानने का अवसर है।

एक आदमी बोला—अरे ! यह तो कुंवर विनयसिंह हैं।

दूसरा—वास्तव में आनंद मानने का अवसर है, उत्सव मनाइए, विवाह मुबारक।

तीसरा—जब मैदान साफ हो गया, तो आप मुरदों की लाश पर आसूं बहाने के लिए पधारे हैं। जाइए, शयनागार में रंग उड़ाइए। यह कष्ट क्यों उठाते हैं?

विनय—हां, यह उत्सव मनाने का अवसर है कि अब भी हमारी पतित, दलित, पीड़ित जाति में इतना विलक्षण आत्मबल है कि एक निस्सहाय, अपंग, नेत्रहीन भिखारी शक्ति-संपन्न अधिकारियों का इतनी वीरता से सामना कर सकता है।

एक आदमी ने व्यंग्य-भाव से कहा—एक बेकस अंधा जो कुछ कर सकता है, वह राजे-रईस नहीं कर सकते।

दूसरा—राज्यभवन में जाकर शयन कीजिए। देर हो रही है। हम अभागों को मरने दीजिए।

तीसरा—सरकार से कितना पुरस्कार मिलने वाला है?

चौथा—आप ही ने तो राजपूताने में दरबार का पक्ष लेकर प्रजा को आग में झोंक दिया था?

विनय—भाइयो, मेरी निंदा का समय फिर मिल जाएगा। यद्यपि मैं कुछ विशेष कारणों से इधर आपका साथ न दे सका, लेकिन ईश्वर जानता है, मेरी सहानुभूति आप ही के साथ थी। मैं एक क्षण के लिए आपकी तरफ से गाफिल न था।

एक आदमी—यारो, यहां खड़े-खड़े क्या बकवास कर रहे हो। कुछ दम हो, तो चलो, कट मरें।

दूसरा—यह व्याख्यान झाड़ने का अवसर नहीं है। आज हमें यह दिखाना है कि हम न्याय के लिए कितनी वीरता से प्राण दे सकते हैं।

तीसरा—चलकर गोरखों के सामने खड़े हो जाओ। कोई कदम पीछे न हटावे ! वहीं अपनी लाशों का ढेर लगा दो। बाल-बच्चों को ईश्वर पर छोड़ो।

चौथा—यह तो नहीं होता कि आगे बढ़कर ललकारें कि कायरों का रक्त भी खौलने लगे। हमें समझाने चले हैं, मानो हम देखते नहीं कि सामने फौज बंदूकें भरे खड़ी है, और एक बाढ़ में कत्लेआम कर देगी।

पांचवां—भाई, हम गरीबों की जान सस्ती होती है। रईसजादे होते, तो हम भी दूर-दूर से खड़े तमाशा देखते।

छठवां—इससे कहो, जाकर चुल्लू-भर पानी में डूब मरे। हमें इसके उपदेशों की जरूरत नहीं। उंगली में लहू लगाकर शहीद बनने चले हैं।

ये अपमानजनक, व्यंग्य-पूर्ण, कटु वाक्य विनय के उरस्थल में बाण के सदृश चुभ गए—हा हतभाग्य ! मेरे जीवन-पर्यन्त के सेवानुराग, त्याग, संयम का यही फल है। अपना सर्वस्व देश-सेवा की वेदी पर आहुति देकर रोटियों को मोहताज होने का यही पुरस्कार है ! क्या रियासत का कलंक मेरे माथे से कभी न मिटेगा? वह भूल गए—मैं यहां जनता की रक्षा करने आया हूं, गोरखे सामने हैं। मैं यहां से हटा, और एक क्षण में पैशाचिक नर-हत्या होने लगेगी। मेरा मुख्य कर्त्तव्य अंत समय तक इन्हें रोकते रहना है। कोई मुजायका नहीं, अगर इन्होंने ताने दिए, अपमान

किया, कलंक लगाया, दुर्वचन कहे। मैं अपराधी हूं, अगर नहीं हूं, तो भी मुझे धैर्य से काम लेना चाहिए। ये सभी बातें वे भूल गए। नीति-चतुर प्राणी अवसर के अनुकूल काम करता है। जहां दबना चाहिए, वहां दब जाता है, जहां गरम होना चाहिए, वहां गरम होता है। उसे मानापमान का हर्ष या दु:ख नहीं होता। उसकी दृष्टि निरंतर अपने लक्ष्य पर रहती है। वह अविरल गति से, अदम्य उत्साह से, उसी ओर बढ़ता है। किंतु सरल, लज्जाशील, निष्कपट आत्माएं मेघों के सामने होती हैं, जो अनुकूल वायु पाकर पृथ्वी को तृप्त कर देते हैं, और प्रतिकूल वायु के वेग से छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। नीतिज्ञ के लिए अपना लक्ष्य ही सब कुछ है, आत्मा का उसके सामने कुछ मूल्य नहीं। गौरव-संपन्न प्राणियों के लिए अपना चरित्र-बल ही सर्वप्रधान है। वे अपने चरित्र पर किए गए आघातों का सह नहीं सकते। वे अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने को अपने लक्ष्य की प्राप्ति से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। विनय की सौम्य आकृति तेजस्वी हो गई, लोचन लाल हो गए। वह उन्मत्तों की भांति जनता का रास्ता रोककर खड़े हो गए, और बोले–क्या आप देखना चाहते हैं कि रईसों के बेटे क्योंकर प्राण देते हैं? देखिए।

यह कहकर उन्होंने जेब से भरा हुआ पिस्तौल निकाल लिया, छाती में उसकी नली लगाई, और जब तक लोग दौड़े, भूमि पर गिर पड़े। लाश तड़पने लगी। हृदय की संचित अभिलाषाएं रक्त की धार बनकर निकल गईं। उसी समय जल-वृष्टि होने लगी। मानों स्वर्गवासिनी आत्माएं पुष्प-वर्षा कर रही हों।

जीवन-सूत्र कितना कोमल है। वह क्या पुष्प से कोमल नहीं, जो वायु के झोंके सहता है, और मुरझाता नहीं? क्या वह लताओं से कोमल नहीं, जो कठोर वृक्षों के झोंके सहती, और लिपटी रहती है? वह क्या पानी के बुलबुलों से कोमल नहीं, जो जल तरंगों पर तैरते हैं, और टूटते नहीं? संसार में और कौन-सी वस्तु इतनी कोमल, इतनी अस्थिर, इतनी सार-हीन है, जिसे एक व्यंग्य, एक कठोर शब्द, एक अन्योक्ति भी दारुण, असह्य, घातक है। और इस भित्ति पर कितने विशाल, कितने भव्य, कितने बृहदाकार भवनों का निर्माण किया जाता है।

जनता स्तंभित हो गई, जैसे आंखों में अंधेरा छा जाए। उनका क्रोधावेश करुणा के रूप में बदल गया। चारों तरफ से दौड़-दौड़कर लोग आने लगे, विनय के दर्शनों से अपने नेत्रों को पवित्र करने के लिए, उनकी लाश पर चार बूंद आंसू बहाने के लिए। जो द्रोही था, स्वार्थी था, काम-लिप्सा रखने वाला था, वह एक क्षण में देव-तुल्य, त्याग-मूर्ति, देश का प्यारा, जनता की आंखों का तारा बना हुआ था। जो लोग गोरखों के समीप पहुंचे गए थे, वे भी लौट आए। हजारों शोक-विह्वल नेत्रों से अश्रु-वृष्टि हो रही थी, जो मेघ की बूंदों से मिलकर पृथ्वी को तृप्त करती थी। प्रत्येक हृदय शोक से विदीर्ण हो रहा था, प्रत्येक हृदय अपना तिरस्कार कर रहा था, पश्चात्ताप कर रहा था–आह, यह हमारे ही व्यंग्य-बाणों का, हमारे ही तीव्र वाक्य-शरों का पाप-कृत्यों है। हमीं इसके घातक हैं, हमारे ही सिर यह हत्या है। हाय ! कितनी वीर आत्मा, कितना धैर्यशील, कितना गंभीर, कितना उन्नत-हृदय, कितना लज्जाशील, कितना आत्माभिमानी, दीनों का कितना सच्चा सेवक और न्याय का कितना सच्चा उपासक था, जिसने इतनी बड़ी रियासत को तृणवत् समझा, और हम पामरों ने उसकी हत्या कर डाली, उसे न पहचाना।

एक ने रोकर कहा–खुदा करे, मेरी जबान जल जाए। मैंने ही शादी पर मुबारकबादी का ताना मारा था। दूसरा बोला–दोस्तो, इस लाश पर फिदा हो जाओ, इस पर निसार हो जाओ, इसके कदमों पर गिरकर मर जाओ !

यह कहकर उसने कमर से तलवार निकाली, गरदन पर चलाई, और वहीं तड़पने लगा।

तीसरा सिर पीटता हुआ बोला—कितना तेजस्वी मुख-मंडल है ! हा, मैं क्या जानता था कि मेरे व्यंग्य वज्र बन जाएंगे !

चौथा—हमारे हृदयों पर यह घाव सदैव हरा रहेगा, हम इस देवमूर्ति को कभी विस्मृत न कर सकेंगे। कितनी शूरता से प्राण त्याग दिए, जैसे कोई एक पैसा निकालकर किसी भिक्षुक के सामने फेंक दे। राजपुत्रों में यही गुण होते हैं, वे अगर जीना जानते हैं, तो मरना भी जानते हैं। रईस की यही पहचान है कि बात पर मर मिटे।

अंधेरा छाया जाता था। पानी मूसलाधार बरस रहा था। कभी जरा देर के लिए बूंदें हल्की पड़ जातीं, फिर जोरों से गिरने लगतीं, जैसे कोई रोने वाला थककर जरा दम ले ले, और फिर रोने लगे। पृथ्वी ने पानी में मुंह छिपा लिया था, माता मुंह पर अंचल डाले रो रही थी। रह-रहकर टूटी हुई दीवारों के गिरने का धमाका होता था, जैसे कोई धम-धम छाती पीट रहा हो। क्षण-क्षण पर बिजली कौंधती थी, मानो आकाश के जीव चीत्कार कर रहे हों। दम-के-दम में चारों तरफ यह शोक-समाचार फैल गया। इन्दु मि० जॉन सेवक के साथ थी। यह खबर पाते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

विनय के शव पर एक चादर तान दी गई थी। दीपकों के प्रकाश में उनका मुख अब भी पुष्प के समान विहंसित था। देखने वाले आते थे, रोते थे, और शोक-समाज में खड़े हो जाते थे। कोई-कोई फूलों की माला रख देता था। वीर पुरुष यों ही मरते हैं। अभिलाषाएं उनके गले की जंजीर नहीं होतीं। विषय-वासना उनके पैरों की बेड़ियां नहीं होती। उन्हें इसकी चिंता नहीं होती कि मेरे पीछे कौन हंसेगा, और कौन रोएगा। उन्हें इसका भय नहीं होता कि मेरे बाद काम कौन संभालेगा। यह सब संसार से चिमटने वालों के बहाने हैं। वीर पुरुष मुक्तात्मा होते हैं। जब तक जीते हैं, निर्द्वंद्व जीते हैं। मरते हैं, तो निर्द्वंद्व मरते हैं।

इस शोक-वृत्तांत को क्यों तूल दें? जब बेगानों की आंखों से आंसू और हृदय से आह निकल पड़ती थी, तो अपनों का कहना ही क्या। नायकराम सूरदास के साथ शफाखाने गए थे। लौटे ही थे कि यह दृश्य देखा। एक लंबी सांस खींचकर विनय के चरणों पर सिर रख दिया, और बिलख-बिलखकर रोने लगे। जरा चित्त शांत हुआ, तो सोफी को खबर देने चले, जो अभी शफाखाने ही में थी।

नायकराम रास्ते-भर दौड़ते हुए गए, पर सोफी के सामने पहुंचे, तो गला इतना फंस गया कि मुंह से एक भी शब्द न निकला। उसकी ओर ताकते हुए सिसक-सिसककर रोने लगे। सोफी के हृदय में शूल-सा उठा। अभी नायकराम गए, और उल्टे पांव लौट आए। जरूर कोई अमंगल-सूचना है। पूछा—क्या है पंडाजी? यह पूछते ही उसका कंठ भी रुंध गया।

नायकराम की सिसकियां आर्त्तनाद हो गईं। सोफी ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया और आवेश-कंपित स्वर से पूछा—क्या विनय....? यह कहते-कहते शोकातिरेक की दशा में शफाखाने से निकल पड़ी, और पांड़ेपुर की ओर चली। नायकराम आगे-आगे लालटेन दिखाते हुए चले। वर्षा ने जल-थल एक कर दिया था। सड़क के किनारे के वृक्ष, जो अब पानी में खड़े थे, सड़क का चिह्न बता रहे थे। सोफी का शोक एक ही क्षण में आत्मग्लानि के रूप में बदल गया—हाय ! मैं ही हत्यारिन हूं। क्यों आकाश से वज्र गिरकर मुझे भस्म नहीं कर देता? क्यों कोई सांप जमीन से निकलकर मुझे डस नहीं लेता? क्यों पृथ्वी फटकर मुझे निगल नहीं जाती।

हाय ! आज मैं वहां न गई होती, तो वह कदापि न जाते। मैं क्या जानती थी कि विधाता मुझे सर्वनाश की ओर लिए जाता है। मैं दिल में उन पर झुंझला रही थी, मुझे यह संदेह भी हो रहा था कि यह डरते हैं। आह ! यह सब मेरे कारण हुआ, मैं ही अपने सर्वनाश का कारण हूं। मैं अपने हाथों लुट गई। हाय ! मैं उनके प्रेम के आदर्श को न पहुंच सकी।

फिर उसके मन में विचार आया–कहीं यह खबर झूठी न हो। उन्हें चोट लगी हो, और वह संज्ञाशून्य हो गए हों। आह ! काश मैं एक बार उनके वचनामृत से अपने हृदय को पवित्र कर लेती। नहीं-नहीं, वह जीवित हैं, ईश्वर मुझ पर इतना अत्याचार नहीं कर सकता। मैंने कभी किसी प्राणी को दु:ख नहीं पहुंचाया, मैंने कभी उस पर अविश्वास नहीं किया, फिर वह मुझे इतना वज्रदंड क्यों देगा।

जब सोफिया संग्राम-स्थल के समीप पहुंची, तो उस पर भीषण भय छा गया। वह सड़क के किनारे एक मील के पत्थर पर बैठ गई। वहां कैसे जाऊं? कैसे उन्हें देखूंगी, कैसे उन्हें स्पर्श करूंगी? उनकी मरणावस्था का चित्र उसकी आंखों के सामने खिंच गया, उनकी मृत देह रक्त और धूल में लिपटी हुई भूमि पर पड़ी हुई थी। जिसे उसने जीते-जागते देखा था, उसे इस जीर्णावस्था में वह कैसे देखेगी। उसे इस समय प्रबल आकांक्षा हुई कि वहां जाते ही मैं भी उनके चरणों पर गिर कर प्राण त्याग दूं। अब संसार में मेरे लिए कौन-सा सुख है। हाय ! यह कठिन वियोग कैसे सहूंगी। मैंने अपने जीवन को नष्ट कर दिया, ऐसे नर-रत्न को धर्म की पैशाचिक क्रूरता पर बलिदान कर दिया।

यद्यपि वह जानती थी कि विनय का देहावसान हो गया, फिर भी उसे भ्रांत आशा हो रही थी कि कौन जाने, वह केवल मूर्च्छित हो गए हों ! सहसा उसे पीछे से एक मोटरकार पानी को चीरती हुई आती दिखाई दी। उसके उज्ज्वल प्रकाश में फटा हुआ पानी ऐसा जान पड़ता था, मानो दोनों ओर से जल-जंतु उस पर टूट रहे हों। वह निकट आकर रुक गई। रानी जाह्नवी थीं। सोफी को देखकर बोलीं–बेटी ! तुम यहां क्यों बैठी हो ! आओ, मेरे साथ चलो। क्या गाड़ी न मिली।

सोफी चिल्लाकर रानी के गले से लिपट गई। किंतु रानी की आंखों में आंसू न थे, मुख पर शोक का चिह्न न था। उनकी आंखों में गर्व का मद छाया हुआ था, मुख पर विजय की आभा झलक रही थी। सोफी को गले से लगाती हुई बोलीं–क्यों रोती हो बेटी? विनय के लिए? वीरों की मृत्यु पर आंसू नहीं बहाए जाते, उत्सव के राग गाए जाते हैं। मेरे पास हीरे और जवाहिर होते, तो उसकी लाश पर लुटा देती। मुझे उसके मरने का दु:ख नहीं है। दु:ख होता, अगर वह आज प्राण बचाकर भागता। यह तो मेरी चिर-संचित अभिलाषा थी, बहुत ही पुरानी, जब मैं युवती थी, और वीर राजपूतों तथा राजपूतनियों के आत्मसमर्पण की कथाएं पढ़ा करती थी, उसी समय मेरे मन में यह कामना अंकुरित हुई थी कि ईश्वर मुझे भी कोई ऐसा ही पुत्र देता, जो उन्हीं वीरों की भांति मृत्यु से खेलता, जो अपना जीवन देश और जाति के हित के लिए हवन कर देता, जो अपने कुल का मुख उज्ज्वल करता। मेरी वह कामना पूरी हो गई। आज मैं एक वीर पुत्र की जननी हूं। क्यों रोती है? इससे उसकी आत्मा को क्लेश होगा। तुमने तो धर्म-ग्रंथ पढ़े हैं। मनुष्य कभी मरता है? जीव तो अमर है। उसे तो परमात्मा भी नहीं मार सकता। मृत्यु तो केवल पुनर्जीवन की सूचना है, एक उच्चतर जीवन का मार्ग। विनय फिर संसार में आएगा, उसकी कीर्ति और भी फैलेगी। जिस मृत्यु पर घर वाले रोएं, वह भी कोई मृत्यु है !

वह तो एड़ियां रगड़ना है। वीर मृत्यु वही है, जिस पर बेगाने रोएं, और घर वाले आनंद मनाएं। दिव्य मृत्यु जीवन से कहीं उत्तम है। दिव्य जीवन में कलुषित मृत्यु की शंका रहती है, दिव्य मृत्यु में यह सशंय कहां? कोई जीवन दिव्य नहीं है, जब तक उसका अंत भी दिव्य न हो। यह लो, पहुंच गए। कितनी प्रलयंकर वृष्टि है, कैसा गहन अंधकार। फिर भी सहस्रों प्राणी उसके शव पर अश्रु-वर्षा कर रहे हैं, क्या यह रोने का अवसर है?

मोटर रुकी। सोफिया और जाह्नवी को देखकर लोग इधर-उधर हट गए। इन्दु दौड़कर माता से लिपट गई। हजारों आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। जाह्नवी ने विनय का नत मस्तक अपनी गोद में ले लिया, उसे छाती से लगाया, उसका चुंबन किया, और शोक-सभा की ओर गर्व-युक्त नेत्रों से देखकर बोली—यह युवक, जिसने विनय पर अपने प्राण समर्पित कर दिए, विनय से बढ़कर है। क्या कहा? मुसलमान है। कर्त्तव्य के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं, दोनों एक ही नाव पर बैठे हुए हैं, डूबेंगे तो दोनों डूबेंगे, बचेंगे तो दोनों बचेंगे। मैं इस वीर आत्मा का यहीं मजार बनवाऊंगी। शहीद के मजार को कौन खोदकर फेंक देगा, कौन इतना नीच और अधम होगा। यह सच्चा शहीद था। तुम लोग क्यों रोते हो? विनय के लिए? तुम लोगों में कितने ही युवक हैं, कितने ही बाल-बच्चों वाले हैं। युवकों से मैं कहूंगी—जाओ और विनय की भांति प्राण देना सीखो। दुनिया केवल पेट पालने की जगह नहीं है। देश की आंखें तुम्हारी ओर लगी हुई हैं, तुम्हीं इसका बेड़ा पार लगाओगे। मत फंसो गृहस्थी के जंजाल में, जब तक देश का कुछ हित न कर लो। देखो, विनय कैसा हंस रहा है! जब बालक था, उस समय की याद आती है। इसी भांति हंसता था। कभी उसे रोते नहीं देखा। कितनी विलक्षण हंसी है। क्या इसने धन के लिए प्राण दिए? धन इसके घर में भरा हुआ था, उसकी ओर कभी आंख उठाकर नहीं देखा, बरसों हो गए पलंग पर नहीं सोया, जूते नहीं पहने, भरपेट भोजन नहीं किया, जरा देखो उसके पैरों में कैसे घट्ठे पड़ गए हैं, विरागी था, साधु था, तुम लोग भी ऐसे ही साधु बन जाओ। बाल-बच्चोंवालों से मेरा निवेदन है, अपने प्यारे बच्चों को चक्की का बैल न बनाओ, गृहस्थी का गुलाम न बनाओ। ऐसी शिक्षा दो कि जिएं, किंतु जीवन के दास बनकर नहीं, स्वामी बनकर। यही शिक्षा है, जो इस वीर आत्मा ने तुम्हें दी है। जानते हो, उसका विवाह होने वाला था। यही प्यारी बालिका उसकी वधू बनने वाली थी। किसी ने ऐसा कमनीय सौंदर्य, ऐसा अलौकिक रूप-लावण्य देखा है! रानियां इसके आगे पानी भरें। विद्या में इसके सामने कोई पंडित मुंह नहीं खोल सकता। जिह्वा पर सरस्वती हैं, घर का उजाला है, विनय को इससे कितना प्रेम था, यह इसी से पूछो। लेकिन क्या हुआ? जब अवसर आया, उसने प्रेम के बंधन को कच्चे धागे की भांति तोड़ दिया, उसे अपने मुख का कलंक नहीं बनाया, उस पर अपने आदर्श का बलिदान नहीं किया। प्यारो! पेट पर अपने यौवन को, अपनी आत्मा को, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को मत कुर्बान करो। इन्दु बेटी, क्यों रोती हो? किसको ऐसा भाई मिला है?

इन्दु के अंतस्थल में बड़ी देर से एक ज्वाला-सी दहक रही थी। वह इन सारी विडंबनाओं का मूल कारण अपने पति को समझती थी। अब तक ज्वाला उर-स्थल में थी, अब बाहर निकल पड़ी। यह ध्यान न रहा कि मैं इतने आदमियों के सामने क्या कहती हूं, औचित्य की ओर से आंखें बंद करके बोली—माताजी, इस हत्या का कलंक मेरे सिर है। मैं अब उस प्राणी का मुंह न देखूंगी, जिसने मेरे वीर भाई की जान लेकर छोड़ी, और वह केवल अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए।

रानी जाह्नवी ने तीव्र स्वर में कहा—क्या महेन्द्र को कहती है? अगर फिर मेरे सामने मुंह

से ऐसी बात निकाली, तो तेरा गला घोंट दूंगी। क्या तू उन्हें अपना गुलाम बनाकर रखेगी? तू स्त्री होकर चाहती है कि कोई तेरा हाथ न पकड़े, वह पुरुष होकर क्यों न ऐसा चाहें? वह संसार को क्यों तेरे ही नेत्रों से देखें, क्या भगवान् ने उन्हें आंखें नहीं दीं? अपने हानि-लाभ का हिसाबदार तुझे क्यों बनाएं, क्या भगवान् ने उन्हें बुद्धि नहीं दी? तेरी समझ में, मेरी समझ में, यहां जितने प्राणी खड़े हैं उनकी समझ में, वह मार्ग अच्छा है, जिस पर हम चल रहे हैं; उनकी समझ में यह मार्ग भयंकर है, हिंसक जंतुओं से भरा हुआ है। इसका बुरा मानना क्या? अगर तुझे उनकी बातें पसंद नहीं आतीं, तो कोशिश कर कि पसंद आएं। वह तेरे पतिदेव हैं, तेरे लिए उनकी सेवा से उत्तम और कोई पथ नहीं है।

दस बज गए थे। लोग कुंवर भरतसिंह की प्रतीक्षा कर रहे थे। जब दस बजने की आवाज कानों में आई, तो रानी जाह्नवी ने कहा—उनकी राह अब मत देखो, वह न आयंगे, और न आ सकते हैं। वह उन पिताओं में हैं, जो पुत्र के लिए जीते हैं, पुत्र के लिए मरते हैं, और पुत्र के पुत्रों के मंसूबे बांधते हैं। उनकी आंखों में अंधेरा छा गया होगा, सारा संसार सूना जान पड़ता होगा, अचेत पड़े होंगे। संभव है, उनके प्राणांत हो गए हों। उनका धर्म, उनका कर्म, उनका जीवन, उनका मरण, उनका दीन, उनकी दुनिया, सब कुछ इसी पुत्र रत्न-पर अवलंबित था। अब वह निराधार हैं, उनके जीवन का कोई लक्ष्य, कोई अर्थ नहीं है। वह अब कदापि न आएंगे, आ ही नहीं सकते। चलो, विनय के साथ अपना अंतिम कर्त्तव्य पूरा कर लूं; इन्हीं हाथों से उसे हिंडोले में झुलाया था, इन्हीं हाथों से उसे चिता में बैठा दूं, इन्हीं हाथों से उसे भोजन कराती थी, इन्हीं हाथों से गंगाजल पिला दूं।

चौवालीस

गंगा से लौटते-लौटते दिन के नौ बज गए। हजारों आदमियों का जमघट, गलियां तंग और कीचड़ से भरी हुई, पग-पग पर फूलों की वर्षा, सेवक-दल का राष्ट्रीय संगीत, गंगा तक पहुंचते-पहुंचते ही सबेरा हो गया था। लौटते हुए जाह्नवी ने कहा—चलो, जरा सूरदास को देखते चलें, न-जाने मरा या बचा—सुनती हूं घाव गहरा था।

सोफिया और जाह्नवी, दोनों शफाखाने गईं, तो देखा, सूरदास बरामदे में चारपाई पर लेटा हुआ है, भैरो उसके पैताने खड़ा है, और सुभागी सिरहाने बैठी पंखा झल रही है। जाह्नवी ने डॉक्टर से पूछा—इसकी दशा कैसी है, बचने की कोई आशा है?

डॉक्टर ने कहा—किसी दूसरे आदमी को यह जख्म लगा होता, तो अब तक मर चुका होता। इसकी सहनशक्ति अद्भुत है। दूसरों को नश्तर लगाने के समय क्लोरोफार्म देना पड़ता है, इसके कंधे में दो इंच गहरा और दो इंच चौड़ा नश्तर दिया गया, पर इसने क्लोरोफार्म न लिया। गोली निकल आई है, लेकिन बच जाय, तो कहें।

सोफिया को एक रात की दारुण शोक-वेदना ने इतना घुला दिया था कि पहचानना कठिन था, मानो कोई फूल मुरझा गया हो। गति मंद, मुख उदास, नेत्र बुझे हुए, मानो भूत-जगत् में नहीं, विचार-जगत् में विचर रही है। आंखों को जितना रोना था, रो चुकी थीं, अब रोयां-रोयां

रो रहा था। उसने सूरदास के समीप जाकर कहा—सूरदास कैसा जी है? रानी जाह्नवी आई हैं।

सूरदास—धन्य भाग। अच्छा हूं।

जाह्नवी—पीड़ा बहुत हो रही है?

सूरदास—कुछ कष्ट नहीं है। खेलते-खेलते गिर पड़ा हूं, चोट आ गई है, अच्छा हो जाऊंगा। उधर क्या हुआ, झोपड़ी बची कि गई?

सोफी—अभी तो नहीं गई है, लेकिन शायद अब न रहे। हम लोग तो विनय को गंगा की गोद में सौंपे चले आते हैं।

सूरदास ने क्षीण स्वर में कहा—भगवान् की मरजी, वीरों का यही धरम है। जो गरीबों के लिए जान लड़ा दे, वही सच्चा वीर है।

जाह्नवी—तुम साधु हो। ईश्वर से कहो, विनय का फिर इसी देश में जन्म हो।

सूरदास—ऐसा ही होगा माताजी, ऐसा ही होगा। अब महान पुरुस लोग हमारे ही देस में जनम लेंगे। जहां अन्याय और अधरम होता है, वहीं देवता लोग जाते हैं। उनके संस्कार उन्हें खींच ले जाते हैं। मेरा मन कह रहा है कि कोई महात्मा थोड़े ही दिनों में इस देस में जनम लेने वाले हैं....

डॉक्टर ने आकर कहा—रानीजी, मैं बहुत खेद के साथ आपसे प्रार्थना करता हूं कि सूरदास से बातें न करें, नहीं तो जोर पड़ने से इनकी दशा बिगड़ जाएगी। ऐसी हालतों में सबसे बड़ा विचार यह होना चाहिए कि रोगी निर्बल न होने पाए, उसकी शक्ति क्षीण न हो।

अस्पताल के रोगियों और कर्मचारियों को ज्योंही मालूम हुआ कि विनयसिंह की माताजी आई हुई हैं, तो सब उनके दर्शनों को जमा हो गए, कितनों ही ने उनकी पद-रज माथे पर चढ़ाई। यह सम्मान देखकर जाह्नवी का हृदय गर्व से प्रफुल्लित हो गया। विहंसित मुख से सबों को आशीर्वाद देकर यहां से चलने लगीं, तो सोफिया ने कहा—माताजी, आपकी आज्ञा हो, तो मैं यही रह जाऊं। सूरदास की दशा चिंताजनक जान पड़ती है। इसकी बातों में वह तत्त्वज्ञान है, जो मृत्यु की सूचना देता है। मैंने इसे होश में कभी आत्मज्ञान की ऐसी बातें करते नहीं सुना।

रानी ने सोफी को गले लगाकर सहर्ष आज्ञा दे दी। वास्तव में सोफिया सेवा-भवन न जाना चाहती थी। वहां की एक-एक वस्तु, वहां के फूल-पत्ते, यहां तक कि वहां की वायु भी, विनय की याद दिलाएगी। जिस भवन में विनय के साथ रही, उसी में विनय के बिना रहने का खयाल ही उसे तड़पाए देता था।

रानी चली गईं, तो सोफिया एक मोढ़ा डालकर सूरदास की चारपाई के पास बैठ गई। सूरदास की आंखें बंद थीं, पर मुख पर मनोहर शांति छाई हुई थी। सोफिया को आज विदित हुआ कि चित्त की शांति ही वास्तविक सौंदर्य है।

सोफी को वहां बैठे-बैठे सारा दिन गुजर गया। वह निर्जल, निराहार, मनमारे बैठी हुई सुखद स्मृतियों के स्वप्न देख रही थी, और जब आंखें भर आती थीं, तो आड़ में जाकर रूमाल से आंसू पोंछ आती थी। उसे अब सबसे तीव्र वेदना यही थी कि मैंने विनय की कोई इच्छा न पूरी की, उनकी अभिलाषाओं को तृप्त न किया, उन्हें वंचित रखा। उनके प्रेमानुराग की स्मृति उसके हृदय को ऐसा मसोसती थी कि वह विकल होकर तड़पने लगती थी।

संध्या हो गई थी। सोफिया लैंप के सामने बैठी हुई सूरदास को प्रभु मसीह का जीवन-वृत्तांत सुना रही थी। सूरदास ऐसा तन्मय हो रहा था, मानो उसे कोई कष्ट नहीं है। सहसा राजा

महेन्द्रकुमार आकर खड़े हो गए, और सोफी की ओर हाथ बढ़ा दिया। सोफिया ज्यों-की-त्यों बैठी रही। राजा साहब से हाथ मिलाने की चेष्टा न की।

सूरदास ने पूछा–कौन है मिस साहब?

सोफिया ने कहा–राजा महेन्द्रकुमार हैं।

सूरदास ने आदर-भाव से उठना चाहा, पर सोफिया ने लिटा दिया, और बोली–हिलो मत, नहीं तो घाव खुल जायगा। आराम से पड़े रहो।

सूर–राजा साहब आए हैं। उनका इतना आदर भी न करूं? मेरे ऐसे भाग्य तो हुए। कुछ बैठने को है?

सोफिया–हां, कुर्सी पर बैठ गए।

राजा साहब ने पूछा–सूरदास कैसा जी है?

सूर–भगवान् की दया है।

राजा साहब जिन भावों को प्रकट करने यहां आए थे, वे सोफी के सामने उनके मुख से निकलते हुए सुकचा रहे थे। कुछ देर तक वह मौन बैठे रहे, अंत को बोले–सूरदास, मैं तुमसे अपनी भूलों की क्षमा मांगने आया हूं। अगर मेरे बस की बात होती, तो मैं आज अपने जीवन को तुम्हारे जीवन से बदल लेता।

सूर–सरकार, ऐसी बात न कहिए, आप राजा हैं, मैं रंक हूं। आपने जो कुछ किया, दूसरों की भलाई के बिचार से किया। मैंने जो कुछ किया, अपना धरम समझकर किया। मेरे कारन आपको अपजस हुआ, कितने घर नास हुए, यहां तक कि इन्दरदत्त और कुंवर विनयसिंह जैसे दो रतन जान से गए। पर अपना क्या बस है ! हम तो खेल खेलते हैं, जीत-हार भगवान् के हाथ है। वह जैसा उचित जानते हैं, करते हैं, बस, नीयत ठीक होनी चाहिए।

राजा–सूरदास, नीयत को कौन देखता है। मैंने सदैव प्रजा-हित ही पर निगाह रखी, पर आज सारे नगर में एक भी प्राणी नहीं है, जो मुझे खोटा, नीच, स्वार्थी, अधर्मी, पापिष्ठ न समझता हो। और तो क्या, मेरी सहधर्मिणी भी मुझसे घृणा कर रही है। ऐसी बातों से मन क्यों न विरक्त हो जाए? क्यों न संसार से घृणा हो जाए? मैं तो अब कहीं मुंह दिखाने योग्य नहीं रहा।

सूर–इसकी चिंता न कीजिए। हानि, लाभ, जीवन, मरन, जस, अपजस विधि के हाथ है; हम तो खाली हाथ मैदान में खेलने के लिए बनाए गए हैं। सभी खिलाड़ी मन लगाकर खेलते हैं, सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो; लेकिन जीत एक ही की होती है, तो क्या इससे हारनेवाले हिम्मत हार जाते हैं? वे फिर खेलते हैं; फिर हार जाते हैं, तो फिर खेलते हैं। कभी-न-कभी तो उनकी जीत होती ही है। जो आपको आज बुरा समझ रहे हैं, वे कल आपके सामने सिर झुकाएंगे। हां, नीयत ठीक रहनी चाहिए। मुझे क्या उनके घर वाले बुरा न कहते होंगे, जो मेरे कारन जान से गए? इन्दरदत्त और कुंवर विनयसिंह जैसे दो लाल, जिनके हाथों संसार का कितना उपकार होता, संसार से उठ गए। जस-अपजस भगवान् के हाथ है, हमारा यहां क्या बस है।

राजा–आह सूरदास, तुम्हें नहीं मालूम कि मैं कितनी विपत्ति में पड़ा हुआ हूं। तुम्हें बुरा कहने वाले अगर दस-पांच होंगे, तो तुम्हारा जस गाने वाले असंख्य हैं, यहां तक कि हुक्काम भी तुम्हारे दृढ़ व्रत और धैर्य का बखान कर रहे हैं। मैं तो दोनों ओर से गया। प्रजा-द्रोही भी ठहरा, और राज-द्रोही भी। हुक्काम इस सारी दुर्व्यवस्था का अपराध मेरे ही सिर पर थोप रहे हैं। उनकी समझ में भी मैं अयोग्य, अदूरदर्शी और स्वार्थी हूं। अब तो यही इच्छा होती है कि

मुंह में कालिख लगाकर कहीं चला जाऊं।

सूर—नहीं नहीं, राजा साहब, निरास होना खिलाड़ियों के धरम के विरुद्ध है। अबकी हार हुई, तो फिर कभी जीत होगी।

राजा—मुझे तो विश्वास नहीं होता कि फिर कभी मेरा सम्मान होगा। मिस सेवक, आप मेरी दुर्बलता पर हंस रही होंगी, पर मैं बहुत दु:खी हूं।

सोफिया ने अविश्वास-भाव से कहा—जनता अत्यंत क्षमाशील होती है। अगर अब भी आप जनता को यह दिखा सकें कि इस दुर्घटना पर आपको दु:ख है, तो कदाचित् प्रजा आपका फिर सम्मान करे।

राजा ने अभी कुछ उत्तर न दिया था कि सूरदास बोल उठा—सरकार, नेकनामी और बदनामी बहुत-से आदमियों के हल्ला मचाने से नहीं होती। सच्ची नेकनामी अपने मन में होती है। अगर अपना मन बोले कि मैंने जो कुछ किया, वही मुझे करना चाहिए था, इसके सिवा कोई दूसरी बात करना मेरे लिए उचित न था, तो वही नेकनामी है। अगर आपको इस मार-काट पर दु:ख है, तो आपका धरम है कि लाट साहब से इसकी लिखा-पढ़ी करें। वह न सुनें, तो जो उनसे बड़ा हाकिम हो, उससे कहें-सुनें, और जब तक सरकार परजा के साथ न्याय न करे, दम न लें। लेकिन अगर आप समझते हैं कि जो कुछ आपने किया, वही आपका धरम था, स्वार्थ के लोभ से आपने कोई बात नहीं की, तो आपको तनिक भी दु:ख न करना चाहिए।

सोफी ने पृथ्वी की ओर ताकते हुए कहा—राजपक्ष लेने वालों के लिए यह सिद्ध करना कठिन है कि वे स्वार्थ से मुक्त हैं।

राजा—मिस सेवक, मैं आपको सच्चे हृदय से विश्वास दिलाता हूं कि मैंने अधिकारियों के हाथों सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के लिए उनका पक्ष नहीं ग्रहण किया, और पद का लोभ तो मुझे कभी रहा ही नहीं। मैं स्वयं नहीं कह सकता कि वह कौन-सी बात थी, जिसने मुझे सरकार की ओर खींचा। संभव है, अनिष्ट का भय हो, या केवल ठकुरसुहाती, पर मेरा कोई स्वार्थ नहीं था। संभव है, मैं उस समाज की आलोचना, उसके कुटिल कटाक्ष और उसके व्यंग्य से डरा होऊं। मैं स्वयं इसका निश्चय नहीं कर सकता। मेरी धारणा थी कि सरकार का कृपा-पात्र बनकर प्रजा का जितना हित कर सकता हूं, उतना उसका द्वेषी बनकर नहीं कर सकता। पर आज मुझे मालूम हुआ कि वहां भलाई होने की जितनी आशा है, उससे कहीं अधिक बुराई होने का भय है। यश और कीर्ति का मार्ग वही है, जो सूरदास ने ग्रहण किया। सूरदास, आशीर्वाद दो कि ईश्वर मुझे सत्पथ पर चलने की शक्ति प्रदान करें।

आकाश पर बादल मंडरा रहे थे। सूरदास निद्रा में मग्न था। इतनी बातों से उसे थकावट आ गई थी। सुभागी एक टाट का टुकड़ा लिए हुए आई, और सूरदास के पैताने बिछाकर लेट रही। शफाखाने के कर्मचारी चले गए। चारों ओर सन्नाटा छा गया।

सोफी गाड़ी का इंतजार कर रही थी—दस बजते होंगे। रानीजी शायद गाड़ी भेजना भूल गईं। उन्होंने शाम ही को गाड़ी भेजने का वादा किया था। कैसे जाऊं? क्या हरज है, यहीं बैठी रहूं। वहां रोने के सिवा और क्या करूंगी। आह ! मैंने विनय का सर्वनाश कर दिया। मेरे ही कारण वह दो बार कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित हुए, मेरे ही कारण उनकी जान पर बनी ! अब वह मोहिनी मूर्ति देखने को तरस जाऊंगी। जानती हूं कि हमारा फिर संयोग होगा, लेकिन नहीं जानती कब ! उसे वे दिन याद आए, जब भीलों के गांव में इसी समय वह द्वार पर बैठी उनकी राह जोहा करती

थी और वह कंबल ओढ़े, नंगे सिर, नंगे पांव, हाथ में एक लकड़ी लिए आते थे, और मुस्कराकर पूछते थे, मुझे देर तो नहीं हो गई? वह दिन याद आया, जब राजपूताना जाते समय विनय ने उसकी ओर आतुर, किंतु निराश नेत्रों से देखा था। आह ! वह दिन याद आया, जब उसकी ओर ताकने के लिए रानीजी ने उन्हें तीव्र नेत्रों से देखा था, और वह सिर झुकाए बाहर चले गए थे। सोफी शोक से विह्वल हो गई। जैसे हवा के झोंके धरती पर बैठी हुई धूल को उठा देते हैं, उसी प्रकार इस नीरव निशा ने उसकी स्मृतियों को जाग्रत कर दिया, सारा हृदय-क्षेत्र स्मृतिमय हो गया। वह बेचैन हो गई, कुर्सी से उठकर टहलने लगी। जी न-जाने क्या चाहता था—कहीं उड़ जाऊं, कहां तक मन को समझाऊं, कहां तक सब्र करूं ! अब न समझाऊंगी, रोऊंगी, तड़पूंगी, खूब जी भरकर ! वह; जो मुझ पर प्राण देता था, संसार से उठ जाए, और मैं अपने को समझाऊं कि अब रोने से क्या होगा। मैं रोऊंगी, इतना रोऊंगी कि आंखें फूट जायंगी, हृदय-रक्त आंखों के रास्ते निकलने लगेगा, कंठ बैठ जाएगा। आंखों को अब करना ही क्या है ! वे क्या देखकर कृतार्थ होंगी। हृदय-रक्त अब प्रवाहित होकर क्या करेगा !

इतने में किसी की आहट सुनाई दी। मिठुआ और भैरो बरामदे में आए। मिठुआ ने सोफी को सलाम किया, और सूरदास की चारपाई के पास जाकर खड़ा हो गया। सूरदास ने चौंककर पूछा—कौन है, भैरो?

मिठुआ—दादा, मैं हूं।

सूरदास—बहुत अच्छे आए बेटा, तुमसे भेंट हो गई। इतनी देर क्यों हुई?

मिठुआ—क्या करूं दादा, बड़े बाबू से सांझ से छुट्टी मांग रहा था, मगर एक-न-एक काम लगा देते थे। डाउन नंबर थ्री को निकाला, अप नंबर वन को निकाला, फिर पारसल गाड़ी आई, उस पर माल लदवाया, डाउन नंबर ठट्टी को निकालकर तब आने पाया हूं। इससे तो कुली था, तभी अच्छा था कि जब जी चाहता जाता था, जब जी चाहता था आता था, कोई रोकने वाला न था। अब तो नहाने-खाने की फुरसत नहीं मिलती, बाबू लोग इधर-उधर दौड़ाते रहते हैं। किसी को नौकर रखने की समाई तो है नहीं, सेंत-मेंत में काम निकालते हैं।

सूरदास—मैं न बुलाता, तो तुम अब भी न आते। इतना भी नहीं सोचते कि अंधा आदमी है, न-जाने कैसे होगा, चलकर जरा हाल-चाल पूछता आऊं। तुमको इसलिए बुलाया है कि मर जाऊं तो मेरा किरिया-करम करना, अपने हाथों से पिंडदान देना, बिरादरी को भोज देना, और हो सके, तो गया कर आना। बोलो, इतना करोगे?

भैरो—भैया, तुम इसकी चिंता मत करो, तुम्हारा किरिया-करम इतनी धूम-धाम से होगा कि बिरादरी में कभी किसी का न हुआ होगा।

सूरदास—धूम-धाम से नाम तो होगा, मगर मुझे पहुंचेगा तो वही, जो मिठुआ देगा।

मिठुआ—दादा, मेरी नंगाझोली ले लो, जो मेरे पास धेला भी हो। खाने-भर को तो होता ही नहीं, बचेगा क्या?

सूरदास—अरे तो क्या तुम मेरा किरिया-करम भी न करोगे?

मिठुआ—कैसे करूंगा दादा, कुछ पल्ले पास हो, तब न?

सूरदास—तो तुमने यह आसरा भी तोड़ दिया। मेरे भाग में तुम्हारी कमाई न जीते-जी बदी थी, न मरने के पीछे।

मिठुआ—दादा, अब मुंह न खुलवाओ, परदा ढका रहने दो। मुझे चौपट करके मरे जाते

हो, उस पर कहते हो, मेरा किरिया-करम कर देना, गया-पराग कर देना। हमारी दस बीघे मौरूसी जमीन थी कि नहीं, उसका मावजा दो पैसा, चार पैसा कुछ तुमको मिला कि नहीं, उसमें से मेरे हाथ क्या लगा? घर में मेरा कुछ हिस्सा होता है या नहीं? हाकिमों से बैर न ठानते, तो उस घर के सौ से कम न मिलते। पंडाजी ने कैसे पांच हजार मार लिए? है उनका घर पांच हजार का? दरवाजे पर मेरे हाथों के लगाए दो नीम के पेड़ थे। क्या वे पांच-पांच रुपये में भी महंगे थे? मुझे तो तुमने मटियामेट कर दिया, कहीं का न रखा। दुनिया-भर के लिए अच्छे होगे, मेरी गरदन पर तो तुमने छुरी फेर दी, हलाल कर डाला। मुझे भी तो अभी ब्याह-सगाई करनी है, घर-द्वार बनवाना है। किरिया-करम करने बैठूं, तो इसके लिए कहां से रुपये लाऊंगा? कमाई में तुम्हारे सक नहीं, मगर कुछ उड़ाया, कुछ जलाया, और अब मुझे बिना छांह के छोड़े चले जाते हो, बैठने का ठिकाना भी नहीं। अब तक मैं चुप था, नाबालिक था। अब तो मेरे भी हाथ-पांव हुए। देखता हूं, मेरी जमीन का मावजा कैसे नहीं मिलता। साहब लखपती होंगे, अपने घर के होंगे, मेरा हिस्सा कैसे दबा लेंगे? घर में भी मेरा हिस्सा होता है। (झांककर) मिस साहब फाटक पर खड़ी हैं, घर क्यों नहीं जातीं? और सुन ही लेंगी, तो मुझे क्या डर? साहब ने सीधे से दिया, तो दिया; नहीं तो फिर मेरे मन में भी जो आएगा, करूंगा। एक से दो जानें तो होंगी नहीं; मगर हां, उन्हें भी मालूम हो जायगा कि किसी का हक छीन लेना दिल्लगी नहीं है।

सूरदास भौंचक्का-सा रह गया। उसे स्वप्न में भी न सूझा था कि मिठुआ के मुंह से मुझे कभी ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ेंगी। उसे अत्यंत दुःख हुआ, विशेष इसलिए कि ये बातें उस समय कही गई थीं, जब वह शांति और सांत्वना का भूखा था, जब उसे यह आकांक्षा थी कि मेरे आत्मीय जन मेरे पास बैठे हुए कष्ट-निवारण का उपाय करते होते। यही समय होता है, जब मनुष्य को अपना कीर्ति-गान सुनने की इच्छा होती है, जब उसका जीर्ण हृदय बालकों की भांति गोद में बैठने के लिए, प्यार के लिए, मान के लिए, शुश्रुषा के लिए ललचता है। जिसे उसने बाल्यावस्था से बेटे की तरह पाला, जिसके लिए उसने न-जाने क्या-क्या कष्ट सहे, वह अंत समय आकर उससे अपने हिस्से का दावा कर रहा था ! आंखों से आंसू निकल आए। बोला—बेटा, मेरी भूल थी कि तुमसे किरिया-करम करने को कहा। तुम कुछ मत करना। चाहे मैं पिंडदान और जल के बिना रह जाऊं, पर यह उससे कहीं अच्छा है कि तुम साहब से अपना मावजा मांगो। मैं नहीं जानता था कि तुम इतना कानून पढ़ गए हो, नहीं तो पैसे-पैसे का हिसाब लिखाता जाता।

मिठुआ—मैं अपने मावजे का दावा जरूर करूंगा, चाहे साहब दें, चाहे सरकार दे, चाहे काला चोर दे, मुझे तो अपने रुपये से काम है।

सूर—हां, सरकार भले ही दे दे, साहब से कोई मतलब नहीं।

मिठुआ—मैं तो साहब से लूंगा, वह चाहे जिससे दिलाएं। न दिलायंगे, तो जो कुछ मुझसे हो सकेगा, करूंगा। साहब कुछ लाट तो हैं नहीं। मेरी जायदाद उन्हें हजम न होने पाएगी। तुमको उसका क्या कलक था। सोचा होगा, कौन मेरे बेटा बैठा हुआ है, चुपके से बैठे रहे। मैं चुपका बैठने वाला नहीं हूं।

सूर—मिट्ठू, क्यों मेरा दिल दुखाते हो? उस जमीन के लिए मैंने कौन-सी बात उठा रखी। घर के लिए तो प्राण तक दे दिए। अब और मेरे किए क्या हो सकता था? लेकिन भला बताओ

तो, तुम साहब से कैसे रुपये ले लोगे? अदालत में तो तुम उनसे ले नहीं सकते, रुपये वाले हैं, और अदालत रुपये वालों की है। हारेंगे भी तो तुम्हें बिगाड़ देंगे। फिर तुम्हारी जमीन सरकार ने जापते से ली है, तुम्हारा दावा साहब पर चलेगा कैसे?

मिठुआ–यह सब पढ़े बैठा हूं। लगा दूंगा, आग, सारा गोदाम जलकर राख हो जायगा। (धीरे से) बम-गोले बनाना जानता हूं। एक गोला रख दूंगा, तो पुतलीघर में आग लग जायगी। मेरा कोई क्या कर लेगा।

सूर–भैरो, सुनते हो इसकी बातें, जरा तुम्हीं समझाओ।

भैरो–मैं तो रास्ते-भर समझाता आ रहा हूं, सुनता ही नहीं।

सूरदास–तो फिर मैं साहब से कह दूंगा कि इससे होसियार रहें।

मिठुआ–तुमको गऊ मारने की हत्या लगे, अगर तुम साहब या किसी और से इस बात की चरचा तक करो। अगर मैं पकड़ गया, तो तुम्हीं को उसका पाप लगेगा। जीते-जी मेरा बुरा चेता, मरने के बाद कांटे बोना चाहते हो? तुम्हारा मुंह देखना पाप है।

यह कहकर मिठुआ क्रोध से भरा हुआ चला गया। भैरो रोकता ही रहा, पर उसने न माना। सूरदास आध घंटे तक मूर्च्छावस्था में पड़ा रहा। इस आघात का घाव गोली से भी घातक था। मिठुआ की कुटिलता, उसके परिणाम का भय, अपना उत्तरदायित्व, साहब को सचेत कर देने का कर्त्तव्य, यह पहाड़-सी कसम, निकलने का कहीं रास्ता नहीं, चारों ओर से बंधा हुआ था। अभी इसी असमंजस में पड़ा हुआ था कि मिस्टर जॉन सेवक आए। सोफिया भी उनके साथ फाटक पर से चली। सोफी ने दूर ही से कहा–सूरदास, पापा तुमसे मिलने आए हैं। वास्तव में मिस्टर सेवक सूरदास से मिलने नहीं आए थे, सोफी से संवेदना प्रकट करने का शिष्टाचार करना था। दिन-भर अवकाश न मिला। मिल से नौ बजे चले, तो याद आई। सेवा-भवन गए, वहां मालूम हुआ कि सोफिया शफाखाने में है, गाड़ी इधर फेर दी। सोफिया रानी जाह्नवी की गाड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी। उसे ध्यान भी न था कि पापा आते होंगे। उन्हें देखकर रोने लगी। पापा को मुझसे प्रेम है, इसका उसे हमेशा विश्वास रहा, और यह बात यथार्थ थी। मिस्टर सेवक को सदैव सोफिया की याद आती रहती थी। व्यवसाय में व्यस्त रहने पर भी सोफिया की तरफ से वह निश्चिंत न थे। अपनी पत्नी से मजबूर थे, जिसका उनके ऊपर पूरा आधिपत्य था। सोफी को रोते देखकर दयार्द्र हो गए, गले से लगा लिया और तस्कीन देने लगे। उन्हें बार-बार यह कारखाना खोलने पर अफसोस होता था, जो असाध्य रोग की भांति उनके गले पड़ गया था। इसके कारण पारिवारिक शांति में विघ्न पड़ा, सारा कुनबा तीन-तेरह हो गया, शहर में बदनामी हुई, सारा सम्मान मिट्टी में मिल गया, घर के हजारों रुपये खर्च हो गए, और अभी तक नफे की कोई आशा नहीं। अब कारीगर और कुली भी काम छोड़-छोड़कर अपने घर भागे जा रहे थे। उधर शहर और प्रांत में इस कारखाने के विरुद्ध आंदोलन किया जा रहा था। प्रभु सेवक का गृहत्याग दीपक की भांति हृदय को जलाता रहता था। न-जाने खुदा को क्या मंजूर था।

मिस्टर सेवक कोई आध घंटे तक सोफिया से अपनी विपत्ति-कथा कहते रहे। अंत में बोले–सोफी, तुम्हारी मामा को यह संबंध पसंद न था, पर मुझे कोई आपत्ति न थी। कुंवर विनयसिंह-जैसा पुत्र या दामाद पाकर ऐसा कौन है, जो अपने को भाग्यवान् न समझता। धर्म-विरुद्ध होने की मुझे जरा भी परवा न थी। धर्म हमारी रक्षा और कल्याण के लिए है। अगर वही हमारी आत्मा को शांति और देह का सुख नहीं प्रदान कर सकता, तो मैं उसे पुराने कोट की

भांति उतार कर फेंकना पसंद करूंगा। जो धर्म हमारी आत्मा का बंधन हो जाए, उससे जितनी जल्द हम अपना गला छुड़ा लें, उतना ही अच्छा। मुझे हमेशा इसका दु:ख रहेगा कि परोक्ष या अपरोक्ष रीति से मैं तुम्हारा द्रोही हुआ। अगर मुझे जरा भी मालूम होता कि यह विवाद इतना भयंकर हो जाएगा, और इसका इतना भीषण परिणाम होगा, तो मैं उस गांव पर कब्जा करने का नाम भी न लेते। मैंने समझा था कि गांव वाले कुछ विरोध करेंगे, लेकिन धमकाने से ठीक हो जायंगे। यह न जानता था कि समर ठन जाएगा, और उसमें मेरी ही पराजय होगी। यह क्या बात है सोफी, कि आज रानी जाह्नवी ने मुझसे बड़ी शिष्टता और विनय का व्यवहार किया? मैं तो चाहता था कि बाहर ही से तुम्हें बुला लूं, लेकिन दरबान ने रानीजी से कह दिया, और वह तुरंत बाहर निकल आईं। मैं लज्जा और ग्लानि से गड़ा जाता था, और वह हंस-हंसकर बातें कर रही थीं। बड़ा विशाल हृदय है। पहले का-सा गरूर नाम को न था। सोफी, विनयसिंह की अकाल मृत्यु पर किसे दु:ख न होगा, पर उनके आत्मसमर्पण ने सैकड़ों जानें बचा लीं, नहीं तो जनता आग में कूदने को तैयार थी। घोर अनर्थ हो जाता। मि० क्लार्क ने सूरदास पर गोली तो चला दी थी, पर जनता का रुख देखकर सहमे जाते थे कि न-जाने क्या हो। वीरात्मा पुरुष था, बड़ा ही दिलेर।

इस प्रकार सोफिया को परितोष देने के बाद मि० सेवक ने उससे घर चलने के लिए आग्रह किया। सोफिया ने टालकर कहा—पापा, इस समय मुझे क्षमा कीजिए, सूरदास की हालत बहुत नाजुक है। मेरे रहने से डॉक्टर और अन्य कर्मचारी विशेष ध्यान देते हैं। मैं न हूंगी, तो कोई उसे पूछेगा भी नहीं। आइए, जरा देखिए। आपको आश्चर्य होगा कि इस हालत में भी वह कितना चैतन्य है, और कितनी अक्लमंदी की बातें करता है। मुझे तो वह मानव-देह में कोई फरिश्ता मालूम होता है।

सेवक—मेरे जाने से उसे रंज तो न होगा?

सोफिया—कदापि नहीं, पापा, इसका विचार ही मन में न लाइए। उसके हृदय में द्वेष और मालिन्य की गंध तक नहीं है।

दोनों प्राणी सूरदास के पास गए, तो वह मनस्ताप से विकल हो रहा था। मि० सेवक बोले—सूरदास, कैसी तबीयत है?

सूरदास—साहब, सलाम। बहुत अच्छा हूं। मेरे धन्य भाग। मैं मरते-मरते बड़ा आदमी हो जाऊंगा।

सेवक—नहीं-नहीं सूरदास, ऐसी बातें न करो, तुम बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे।

सूरदास—(हंसकर) अब जीकर क्या करूंगा? इस समय मरूंगा, तो बैकुंठ पाऊंगा, फिर न-जाने क्या हो। जैसे खेत कटने का एक समय है, उसी तरह मरने का भी एक समय होता है। पक जाने पर खेत न कटे, तो अनाज सड़ जाएगा। मेरी भी वही दसा होगी। मैं कई आदमियों को जानता हूं, जो आज से दस बरस पहले मरते, तो लोग उनका जस गाते, आज उनकी निंदा हो रही है।

सेवक—मेरे हाथों तुम्हारा बड़ा अहित हुआ। इसके लिए मुझे क्षमा करना।

सूरदास—मेरा तो आपने कोई अहित नहीं किया, मुझसे और आपसे दुसमनी ही कौन-सी थी। हम और आप आमने-सामने की पालियों में खेले। आपने भरसक जोर लगाया, मैंने भी भरसक जोर लगाया। जिसको जीतना था जीता, जिसको हारना था हारा। खिलड़ियों में बैर नहीं होता। खेल में रोते तो लड़कों को भी लाज आती है। खेल में चोट लग जाय, चाहे जान निकल जाय, पर बैर-भाव न आना चाहिए। मुझे आपसे कोई सिकायत नहीं है।

सेवक—सूरदास, अगर इस तत्त्व को, जीवन के इस रहस्य को, मैं भी तुम्हारी भांति समझ सकता, तो आज यह नौबत न आती। मुझे याद है, तुमने एक बार मेरे कारखाने को आग से बचाया था। मैं तुम्हारी जगह होता, तो शायद आग में और तेल डाल देता। तुम इस संग्राम में निपुण हो सूरदास, मैं तुम्हारे आगे निरा बालक हूं। लोकमत के अनुसार मैं जीता और तुम हारे, पर मैं जीतकर भी दुःखी हूं, तुम हारकर भी सुखी हो। तुम्हारे नाम की पूजा हो रही है, मेरी प्रतिमा बनाकर लोग जला रहे हैं। मैं धन, मान, प्रतिष्ठा रखते हुए भी तुमसे सम्मुख होकर न लड़ सका। सरकार की आड़ से लड़ा। मुझे जब अवसर मिला, मैंने तुम्हारे ऊपर कुटिल आघात किया। इसका मुझे खेद है।

मरणासन्न मनुष्य का वे लोग भी स्वच्छंद होकर कीर्ति-गान करते हैं, जिनका जीवन उससे वैर साधने में ही कटा हो, क्योंकि अब उससे किसी हानि की शंका नहीं होती।

सूरदास ने उदार भाव से कहा—नहीं साहब, आपने मेरे साथ कोई अन्याय नहीं किया। धूर्तता तो निर्बलों का हथियार है। बलवान कभी नीच नहीं होता।

सेवक—हां, सूरदास होना वही चाहिए, जो तुम कहते हो, पर ऐसा होता नहीं। मैंने नीति का कभी पालन नहीं किया। मैं संसार को क्रीड़ा-क्षेत्र नहीं, संग्राम-क्षेत्र समझता रहा, और युद्ध में छल, कपट, गुप्त आघात, सभी कुछ किया जाता है। धर्मयुद्ध के दिन अब नहीं रहे।

सूरदास ने इसका कुछ उत्तर न दिया। वह सोच रहा था कि मिठुआ की बात साहब से कह दूं या नहीं। उसने कड़ी कसम रखाई है। पर कह देना ही उचित है। लौंडा हठी और कुचाली है, उस पर घीसू का साथ, कोई-न-कोई अनीति अवश्य करेगा। कसम रखा देने से तो मुझे हत्या लगती नहीं। कहीं कुछ नटखटी कर बैठा, तो साहब समझेंगे, अंधे ने मरने के बाद भी बैर निभाया। बोला—साहब, आपसे एक बात कहना चाहता हूं।

सेवक—कहो, शौक से कहो।

सूरदास ने संक्षिप्त रूप से मिठुआ की अनर्गल बातें मि० सेवक से कह सुनाईं, और अंत में बोला—मेरी आपसे इतनी ही बिनती है कि उस पर कड़ी निगाह रखिएगा। अवसर पा गया, तो चूकने वाला नहीं है। तब आपको भी उस पर क्रोध आ ही जाएगा, और आप उसे दंड देने का उपाय सोचेंगे। मैं इन दोनों बातों में से एक भी नहीं चाहता।

सेवक अन्य धनी पुरुषों की भांति बदमाशों से बहुत डरते थे, सशंक होकर बोले—सूरदास, तुमने मुझे होशियार कर दिया। इसके लिए तुम्हारा कृतज्ञ हूं। मुझमें और तुममें यही अंतर है। मैं तुम्हें कभी यों सचेत न करता। किसी दूसरे के हाथों तुम्हारी गरदन कटते देखकर भी कदाचित् मेरे मन में दया न आती। कसाई भी सदय और निर्दय हो सकते हैं। हम लोग द्वेष में निर्दय कसाइयों से भी बढ़ जाते हैं। (सोफिया से अंगरेजी में) बड़ा सत्यप्रिय आदमी है। कदाचित् संसार ऐसे आदमियों के रहने का स्थान नहीं है। मुझे एक छिपे हुए शत्रु से बचाना अपना कर्त्तव्य समझा है। यह तो भतीजा है; किंतु पुत्र की बात होती, तो भी मुझे अवश्य सतर्क कर देता।

सोफिया—मुझे तो अब विश्वास होता जाता है कि शिक्षा धूर्तों की स्रष्टा है, प्रकृति सत्पुरुषों की।

जॉन सेवक को यह बात रुचिकर न लगी। शिक्षा की इतनी निंदा उन्हें असह्य थी। बोले—सूरदास, मेरे योग्य कोई और सेवा हो, तो बताओ।

सूरदास—कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।

सेवक–नहीं-नहीं, जो कुछ कहना हो, निस्संकोच होकर कहो।

सूरदास–ताहिरअली को फिर नौकर रख लीजिएगा। उनके बाल-बच्चे बड़े कष्ट में हैं।

सेवक–सूरदास, मुझे अत्यंत खेद है कि मैं तुम्हारे आदेश का पालन न कर सकूंगा। किसी नीयत के बुरे आदमी को आश्रय देना मेरे नियम के विरुद्ध है। मुझे तुम्हारी बात न मानने का बहुत खेद है; पर यह मेरे जीवन का एक प्रधान सिद्धांत है, और उसे तोड़ नहीं सकता।

सूर–दया कभी नियम-विरुद्ध नहीं होती।

सेवक–मैं इतना कर सकता हूं कि ताहिरअली के बाल-बच्चों का पालन-पोषण करता रहूं। लेकिन उसे नौकर न रक्खूंगा।

सूर–जैसी आपकी इच्छा। किसी तरह उन गरीबों की परवस्ती होनी चाहिए।

अभी यही बातें हो रही थीं कि रानी जाह्नवी की मोटर आ पहुंची। रानी उतरकर सोफिया के पास आईं, और बोलीं–बेटी, क्षमा करना, मुझे बड़ी देर हो गई। तुम घबराईं तो नहीं? भिक्षुकों को भोजन कराकर यहां आने को घर से निकली, तो कुंवर साहब आ गए। बातों-बातों में उनसे झौंड़ हो गई। बुढ़ापे में मनुष्य क्यों इतना मायांध हो जाता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। क्यों मि० सेवक, आपका क्या अनुभव है?

सेवक–मैंने दोनों ही प्रकार के चरित्र देखे हैं। अगर प्रभु धन को तृण समझता है, तो पिताजी को फीकी चाय, सादी चपातियां और धुंधली रोशनी ही पसंद है। इसके प्रतिकूल डा० गांगुली हैं कि जिनकी आमदनी खर्च के लिए काफी नहीं होती, और राजा महेन्द्रकुमारसिंह, जिनके यहां धेले तक का हिसाब लिया जाता है।

यों बातें करते हुए लोग मोटरों की तरफ चले। मि० सेवक तो अपने बंगले पर गए, सोफिया रानी के साथ सेवा-भवन में गईं।

पैंतालीस

पांड़ेपुर के गोरखे अभी तक पड़ाव डाले हुए थे। उनके उपलों के जलने से चारों तरफ धुंआ छाया हुआ था। उस श्यामावरण में बस्ती के खंडहर भयानक मालूम होते थे। यहां अब भी दिन को दर्शकों की भीड़ रहती थी। नगर में शायद ही कोई ऐसा आदमी होगा, जो इन दो-तीन दिनों में यहां एक बार न आया हो। यह स्थान अब मुसलमानों का शहीदगाह और हिन्दुओं की तपोभूमि के सदृश हो गया था। जहां विनयसिंह ने अपनी जीवन-लीला समाप्त की थी, वहां लोग आते, तो पैर से जूते उतार देते। कुछ भक्तों ने वहां पत्र-पुष्प भी चढ़ा रक्खे थे। यहां की मुख्य वस्तु सूरदास के झोपड़े के चिह्न थे। फूस के ढेर अभी तक पड़े हुए थे। लोग यहां आकर घंटों खड़े रहते, और सैनिकों को क्रोध और घृणा की दृष्टि से देखते। इन पिशाचों ने हमारा मान-मर्दन किया, और अभी तक डटे हुए हैं। अब न-जाने क्या करना चाहते हैं। बजरंगी, ठाकुरदीन, नायकराम, जगधर आदि अब भी अपना अधिकांश समय यहीं विचरने में व्यतीत करते थे। घर की याद भूलते-भूलते ही भूलती है। कोई अपनी भूली-भटकी चीजें खोजने आता, कोई

पत्थर या लकड़ी खरीदने, और बच्चों को तो अपने घरों का चिह्न देखने ही में आनंद आता था। एक पूछता, अच्छा बताओ, हमारा घर कहां था? दूसरा कहता, वह जहां कुत्ता लेटा हुआ है। तीसरा कहता, जी, कहीं हो न? वहां तो बेचू का घर था। देखते नहीं, यह अमरूद का पेड़ उसी के आंगन में था। दूकानदार आदि भी यहीं शाम-सबेरे आते, और घंटों सिर झुकाए बैठे रहते, जैसे घर वाले मृत देह के चारों ओर जमा हो जाते हैं यह मेरा आंगन था, यह मेरा दालान था, यहीं बैठकर तो मैं बही लिखा करता था। अरे, मेरी घी की हांडी पड़ी हुई है, कुत्तों ने मुंह डाल दिया होगा, नहीं तो लेते चलते। कई साल की हांडी थी। अरे ! मेरा पुराना जूता पड़ा हुआ है। पानी से फूलकर कितना बड़ा हो गया है। दो-चार सज्जन ऐसे भी थे, जो अपने बाप-दादों के गाड़े हुए रुपये खोजने आते थे। जल्दी में उन्हें घर खोदने का अवकाश न मिला था। दादा बंगाल की सारी कमाई अपने सिरहाने गाड़कर मर गए, कभी उसका पता न बताया। कैसी ही गरमी पड़े, कितने ही मच्छर काटें, वह अपनी कोठरी ही में सोते थे। पिताजी खोदते-खोदते रह गए। डरते थे कि कहीं शोर न मच जाय। जल्दी क्या है, घर में ही तो है, जब जी चाहेगा, निकाल लेंगे। मैं भी यही सोचता रहा। क्या जानता था कि यह आफत आने वाली है, नहीं तो पहले ही से खोद न लिया होता। अब कहां पता मिलता है, जिसके भाग्य का होगा, वह पाएगा।

संध्या हो गई थी। नायकराम, बजरंगी और अन्य मित्र आकर एक पेड़ के नीचे बैठ गए।

नायकराम—कहो बजरंगी, कहीं कोई घर मिला?

बजरंगी—घर नहीं पत्थर मिला। सहर में रहूं, तो इतना किराया कहां से लाऊं, घास-चारा कहां मिले। इतनी जगह कहां मिली जाती है। हां, औरों की भांति दूध में पानी मिलाने लगूं, तो गुजर हो सकता है; लेकिन यह करम उमर भर नहीं किया जाता, तो अब क्या करूंगा। दिहात में रहता हूं, तो घर बनवाना पड़ता है, जमींदार को नजर-नजराना न दो, तो जमीन न मिले। एक-एक बिस्वे के दो-दो सौ मांगते हैं। घर बनवाने को अलग हजार रुपये चाहिए। इतने रुपये कहां से लाऊं। जितना मावजा मिला है, उतने में तो एक कोठरी भी नहीं बन सकती। मैं तो सोचता हूं, जानवरों को बेच डालूं। और यहीं पुतलीघर में मजूरी करूं। सब झगड़ा ही मिट जाय। तलब तो अच्छी मिलती है। और कहां-कहां ठिकाना ढूंढ़ते फिरें?

जगधर—यही तो मैं भी सोच रहा हूं, बना-बनाया मकान रहने को मिल जायगा, पड़े रहेंगे। कहीं घर बैठे खाने को तो मिलेगा नहीं। दिन-भर खोंचा लिए न फिरे, यहीं मजूरी की।

ठाकुरदीन—तुम लोगों से मजूरी हो सकती है, करो, मैं तो चाहे भूखों मर जाऊं, पर मजूरी नहीं कर सकता। मजूरी सूद्रों का काम है, रोजगार करना बैसों का काम है। अपने हाथों अपना मरतबा क्यों खोएं, भगवान् कहीं-न-कहीं ठिकाना लगाएंगे ही। यहां तो अब कोई मुझे संतमेत में रहने को कहे, तो न रहूं। बस्ती उजड़ जाती है, तो भूतों का डेरा हो जाता है। देखते नहीं हो, कैसा सियापा छाया हुआ है, नहीं तो इस बेला यहां कितना गुलजार रहता था।

नायकराम—मुझे क्या सलाह देते हो बजरंगी, दिहात में रहूं कि सहर में?

बजरंगी—भैया, तुम्हारा दिहात में निबाह न होगा। कहीं पीछे हटना ही पड़ेगा। रोज सहर का आना-जाना ठहरा, कितनी जहमत होगी। फिर तुम्हारे जात्री तुम्हारे साथ दिहात में थोड़े ही जायंगे। वहां से तो सहर इतना दूर नहीं था, इसलिए सब चले आते थे।

नायकराम—तुम्हारी क्या सलाह है जगधर?

जगधर—भैया, मैं तो सहर में रहने को न कहूंगा। खरच कितना बढ़ जायगा, मिट्टी भी

मोल मिले, पानी के भी दाम दो। चालीस-पचास का तो एक छोटा-सा मकान मिलेगा। तुम्हारे साथ नित दस-बीस आदमी ठहरा चाहें। इसलिए बड़ा घर लेना पड़ेगा। उसका किराया सौ से नीचे न होगा। गायें-भैंसे कहां रक्खोगे, जात्रियों को कहां ठहराओगे? तुम्हें जितना मावजा मिला है, उतने में तो इतनी जमीन भी न मिलेगी, घर बनवाने को कौन कहे !

नायकराम—बोलो बजरंगी, साल के बारह सौ रुपये किराये के कहां से आएंगे? क्या सारी कमाई किराए ही में खरच कर दूंगा?

बजरंगी—जमीन तो दिहात में भी मोल लेनी पड़ेगी, सेंत तो मिलेगी नहीं। फिर कौन जाने, किस गांव में जगह मिले। बहुत-से आस-पास के गांव तो ऐसे भरे हुए हैं कि अब एक झोपड़ी भी नहीं बन सकती। किसी के द्वार पर आंगन तक नहीं है। फिर जगह मिल गई, तो मकान बनवाने के लिए सारा सामान सहर से ले आना पड़ेगा। उसमें कितना खरच पड़ेगा। नौ मन की लकड़ी नब्बे खरच। कच्चा मकान बनवाओगे, तो कितनी तक़लीफ ! टपके, कीचड़ हो, रोज मनों कूड़ा निकले, सातवें दिन लीपने को चाहिए, तुम्हारे घर में कौन लीपने वाला बैठा हुआ है। तुम्हारा रहा कच्चे मकान में न रहा जाएगा। सहर में आने-जाने के लिए सवारी रखनी पड़ेगी। उसका खरच भी पचास रुपये से नीचे न होगा। तुम कच्चे मकान में तो कभी रहे नहीं। क्या जानो दीमक, कीड़े-मकोड़े, सील, पूरी छीछालेदर होती है। तुम सैरबीन आदमी ठहरे। पान-पत्ता, साग-भाजी दिहात में कहां। मैं तो यही कहूंगा कि दिहात के एक की जगह सहर में दो खरच पड़ें, तब भी तुम सहर ही में रहो। वहां हम लोगों से भी भेंट-मुलाकात हो जाया करेगी। आखिर दूध-दही लेकर सहर तो रोज जाना ही पड़ेगा।

नायकराम—वाह बहादुर वाह, मान गया ! तुम्हारा जोड़ तो भैरो था, दूसरा कौन तुम्हारे सामने ठहर सकता है। तुम्हारी बात मेरे मन में बैठ गई। बोलो जगधर, इसका कुछ जवाब देते हो तो दो, नहीं तो बजरंगी की डिगरी होती है। सौ रुपये किराया देना मंजूर, यह झंझट कौन सिर पर लेगा।

जगधर—भैया, तुम्हारी मरजी है, तो सहर ही में चले जाओ, मैं बजरंगी से लड़ाई थोड़े ही करता हूं। पर दिहात दिहात ही है, सहर सहर ही है। सहर में पानी तक तो अच्छा नहीं मिलता। वही बंबे का पानी पियो, धरम जाए, और कुछ सवाद भी न मिले।

ठाकुरदीन—अंधा आगमजानी था। जानता था कि एक दिन पुतलीघर हम लोगों को बनबास देगा, जान तक गंवाई, पर अपनी जमीन न दी। हम लोग इस किरंटे के चकमों में आकर उसका साथ न छोड़ते, तो साहब लाख सिर पटककर मर जाते, एक न चलती।

नायकराम—अब उसके बचने की कोई आसा नहीं मालूम होती। आज मैं गया था। बुरा हाल था। कहते हैं, रात को होस में था। जॉन सेवक और राजा साहब से देर तक बातें कीं, मिठुआ से भी बातें कीं। सब लोग सोच रहे थे, अब बच जायगा। सिविलसारजंट ने मुझसे खुद कहा, अंधे की जान का कोई खटका नहीं है। पर सूरदास यही कहता रहा कि आपको मेरी जो सांसत करना हो, कर लीजिए, मैं बचूंगा नहीं। आज बोलचाल बंद है। मिठुआ बड़ा कपूत निकल गया। उसी की कपूती ने अंधे की जान ली। दिल टूट गया, नहीं तो अभी कुछ दिन और चलता। ऐसे बीर बिरले ही कहीं होते हैं। आदमी नहीं था, देवता था।

बजरंगी—सच कहते हो भैया, आदमी नहीं था, देवता था। ऐसा सेर आदमी कहीं नहीं देखा। सच्चाई के सामने किसी की परवा नहीं की, चाहे कोई अपने घर का लाट ही क्यों न हो। घीसू के पीछे मैं उससे बिगड़ गया था, पर अब जो सोचता हूं, तो मालूम होता है कि सूरदास

ने कोई अन्याय नहीं किया। कोई बदमास हमारी ही बहू-बेटी को बुरी निगाह से देखे, तो बुरा लगेगा कि नहीं। उसके खून के प्यासे हो जाएंगे, घात पाएंगे तो सिर उतार लेंगे। अगर सूरे ने हमारे साथ वही बरताव किया, तो क्या बुराई की। घीसू का चलन बिगड़ गया था। सजा न पा जाता, तो न-जाने क्या अंधेर करता।

ठाकुरदीन–अब तक या तो उसी की जान पर बन गई होती, या दूसरों की।

जगधर–चौधरी, घर-गांव में इतनी सच्चाई नहीं बरती जाती। अगर सच्चाई से किसी का नुकसान होता हो, तो उस पर परदा डाल दिया जाता है। सूरे में और सब बातें अच्छी थीं, बस इतनी ही बात बुरी थी।

ठाकुरदीन–देखो जगधर, सूरदास यहां नहीं है, किसी के पीठ-पीछे निंदा नहीं करनी चाहिए। निंदा करने वाले की तो बात ही क्या, सुनने वाले को भी पाप लगता है। न-जाने पूरब जनम में कौन-सा पाप किया था, सारी जमाजथा चोर मूस ले गए, यह पाप अब न करूंगा।

बजरंगी–हां जगधर, यह बात अच्छी नहीं। मेरे ऊपर भी तो वही पड़ी है, जो तुम्हारे ऊपर पड़ी, लेकिन सूरदास की बदगोई नहीं सुन सकता।

ठाकुरदीन–इनकी बहू-बेटी को कोई घूरता, तो ऐसी बातें न करते।

जगधर–बहू-बेटी की बात और है, हरजाइयों की बात और।

ठाकुरदीन–बस, अब चुप ही रहना जगधर! तुम्हीं एक बार सुभागी की सफाई करते फिरते थे, आज हरजाई कहते हो। लाज भी नहीं आती?

नायकराम–यह आदमी बहुत खराब है।

बजरंगी–चांद पर थूकने से थूक अपने ही मुंह पर पड़ता है।

जगधर–अरे तो मैं सूरे की निंदा थोड़े ही कर रहा हूं। दिल दुखता है, तो बात मुंह से निकल ही आती है। तुम्हीं सोचो, विद्याधर अब किस काम का रहा? पढ़ाना-लिखाना सब मिट्टी में मिला कि नहीं? अब न सरकार में नौकरी मिलेगी, न कोई रक्खेगा। उसकी तो जिंदगानी खराब हो गई। बस, यही दु:ख है, नहीं तो सूरदास का-सा आदमी कोई क्या होगा।

नायकराम–हां, इतना मैं भी मानता हूं कि उसकी जिंदगानी खराब हो गई। जिस सच्चाई से किसी का अनभल होता हो, उसका मुंह से न निकलना ही अच्छा। लेकिन सूरदास को सब कुछ माफ है।

ठाकुरदीन–सूरदास ने इलम तो नहीं छीन लिया।

जगधर–यह इलम किस बात का, जब नौकरी-चाकरी न कर सके। धरम की बात होती, तो यों भी काम देती। यह विद्या हमारे किस काम आवेगी?

नायकराम–अच्छा यह बताओ कि सूरदास मर गए, तो गंगा नहाने चलोगे कि नहीं?

जगधर–गंगा नहाने क्यों न चलूंगा। सबके पहले चलूंगा। कंधा तो आदमी बैरी को भी दे देता है, सूरदास हमारे बैरी नहीं थे। जब उन्होंने मिठुआ को नहीं छोड़ा, जिसे बेटे की तरह पाला, तो दूसरों की बात ही क्या। मिठुआ क्या, वह अपने खास बेटे को न छोड़ते।

नायकराम–चलो, देख आएं।

चारों आदमी सूरदास को देखने चले।

छियालीस

चारों आदमी शफाखाने पहुंचे, तो नौ बज चुके थे। आकाश निद्रा में मग्न, आंखें बंद किए, पड़ा हुआ था, पर पृथ्वी जाग रही थी। भैरो खड़ा सूरदास के पंखा झल रहा था। इन लोगों को देखते ही उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे। सिरहाने की ओर कुर्सी पर बैठी हुई सोफिया चिंताकुल नेत्रों से सूरदास को देख रही थी। सुभागी अंगीठी में आग बना रही थी कि थोड़ा-सा दूध गर्म करके सूरदास को पिलाए। तीनों ही के मुख पर नैराश्य का चित्र खिंचा हुआ था, चारों ओर वह निस्तब्धता छाई हुई थी, जो मृत्यु का पूर्वाभास है।

सोफी ने कातर स्वर में कहा–पंडाजी, आज शोक की रात है। इनकी नाड़ी का कई-कई मिनटों तक पता नहीं चलता। शायद आज की रात मुश्किल से कटे। चेष्टा बदल गई।

भैरो–दोपहर से यही हाल है; न कुछ बोलते हैं, न किसी को पहचानते हैं।

सोफी–डॉक्टर गांगुली आते होंगे। उनका तार आया था कि मैं आ रहा हूं। यों तो मौत की दवा किसी के पास नहीं, लेकिन संभव है, डॉक्टर गांगुली के हाथों कुछ यश लिखा हो।

सुभागी–मैंने सांझ को पुकारा था, तो आंखें खोली थीं; पर बोले कुछ नहीं।

ठाकुरदीन–बड़ा प्रतापी जीव था।

यही बातें हो रही थीं कि एक मोटर आई, और कुंवर भरतसिंह, डॉक्टर गांगुली और रानी जाह्नवी उतर पड़े। गांगुली ने सूरदास के मुख की ओर देखा, और निराशा की मुस्कराहट के साथ बोले–हमको दस मिनट का भी देर होता, तो इनका दर्शन भी न पाते। बिमान आ चुका है। क्यों दूध गरम करता है भाई, दूध कौन पिएगा? यमराज तो दूध पीने का मुहलत नहीं देता।

सोफिया ने सरल भाव से कहा–क्या अब कुछ नहीं हो सकता डॉक्टर साहब?

गांगुली–बहुत कुछ हो सकता है मिस सोफिया! हम यमराज को परास्त कर देगा। ऐसे प्राणियों का यथार्थ जीवन तो मृत्यु के पीछ ही होता है, जब वह पंचभूतों के संस्कार से रहित हो जाता है। सूरदास अभी नहीं मरेगा, बहुत दिनों तक नहीं मरेगा। हम सब मर जाएगा, कोई कल, कोई परसों, पर सूरदास तो अमर हो गया, उसने तो काल को जीत लिया। अभी तक उसका जीवन पंचभूतों के संस्कार से सीमित था। अब वह प्रसारित होगा, समस्त प्रांत को, समस्त देश को जागृति प्रदान करेगा, हमें कर्मण्यता का, वीरता का आदर्श बताएगा। यह सूरदास का मृत्यु नहीं है सोफी, यह उसके जीवन-ज्योति का विकास है। हम तो ऐसा ही समझता है।

यह कहकर डॉक्टर गांगुली ने जेब से एक शीशी निकाली, और उसमें से कई बूंदें सूरदास का मुंह खोलकर पिला दीं। तत्काल उसका असर दिखाई दिया। सूरदास के विवर्ण मुख-मंडल पर हलकी-हलकी सुरखी दौड़ गई। उसने आंखें खोल दीं, इधर-उधर अनिमेष दृष्टि से देखकर हंसा, और ग्रामोफोन की-सी कृत्रिम, बैठी हुई, नीरस आवाज से बोला–बस-बस, अब मुझे क्यों मारते हो, तुम जीते, मैं हारा। यह बाजी तुम्हारे हाथ रही, मुझसे खेलते नहीं बना। तुम मंजे हुए खिलाड़ी हो, दम नहीं उखड़ता, खिलाड़ियों को मिलाकर खेलते हो, और तुम्हारा उत्साह भी खूब है। हमारा दम उखड़ जाता है, हांपने लगते हैं, और खिलाड़ियों को मिलाकर नहीं खेलते, आपस में झगड़ते हैं, गाली-गलौज, मार-पीट करते हैं, कोई किसी की नहीं मानता। तुम खेलने में निपुण हो, हम अनाड़ी हैं। बस, इतना ही फरक है। तालियां क्यों बजाते हो, यह तो जीतने वालों का धरम नहीं? तुम्हारा धरम तो है हमारी पीठ ठोकना। हम हारे तो क्या, मैदान से भागे

तो नहीं, रोए तो नहीं, धांधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो, हार-हारकर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे, और एक-न-एक दिन हमारी जीत होगी, जरूरी होगी।

डॉक्टर गांगुली अनर्गल कथन को आंखें बंद किए इस भाव से तन्मय होकर सुनते रहे, मानो ब्रह्म-वाक्य सुन रहे हों। तब भक्ति-पूर्ण भाव से बोले—बड़ी विशाल आत्मा है। हमारे सारे पारस्परिक, सामाजिक, राजनीतिक जीवन की अत्यंत सुंदर विवेचना कर दी, और थोड़े-से शब्दों में।

सोफी ने सूरदास से कहा—सूरदास, कुंवर साहब और रानीजी आई हुई हैं। कुछ कहना चाहते हो?

सूरदास ने उन्माद-पूर्ण उत्सुकता से कहा—हां-हां-हां, बहुत कुछ कहना है, कहां हैं? उनके चरनों की धूल मेरे माथे पर लगा दो, तर जाऊं, नहीं नहीं, मुझे उठाकर बैठा दो, खोल दो यह पट्टी, मैं खेल चुका, अब मुझे मरहम पट्टी नहीं चाहिए। रानी कौन, विनयसिंह की माता न? कुंवर साहब उनके पिता न? मुझे बैठा दो, उनके पैरों पर आंखें मलूंगा। मेरी आंखें खुल जायंगी। मेरे सिर पर हाथ रखकर असीस दो, माता, हां, अब मेरी जीत होगी। ओहो! वह सामने विनयसिंह और इन्द्रदत्त सिंहासन पर बैठे हुए मुझे बुला रहे हैं। उनके मुख पर कितना तेज है! मैं भी आता हूं। यहां तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका, अब वहीं करूंगा। माता-पिता, भाई-बंद, सबको सूरदास का राम-राम, अब जाता हूं। जो कुछ बना-बिगड़ा हो, छमा करना।

रानी जाह्नवी ने आगे बढ़कर, भक्ति-विह्वल दशा में, सूरदास के पैरों पर सिर रख दिया, और फूट-फूटकर रोने लगीं। सूरदास के पैर अश्रुजल से भीग गए। कुँवर साहब ने आंखों पर रूमाल डाल लिया, और खड़े-खड़े रोने लगे।

सूरदास की मुखश्री फिर मलिन हो गई। औषधि का असर मिट गया। होंठ नीले पड़ गए। हाथ-पांव ठंडे हो गए।

नायकराम गंगाजल लाने दौड़े। जगधर ने सूरदास के समीप जाकर जोर से कहा—सूरदास, मै हूं जगधर, मेरा अपराध छमा करो। यह कहते-कहते आवेग से उसका कंठ रुक गया।

सूरदास मुंह से कुछ न बोला, दोनों हाथ जोड़े, आंसू की दो बूंदें गालों पर बह आईं, और खिलाड़ी मैदान से चला गया।

क्षण-मात्र में चारों तरफ खबर फैल गई। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, बूढ़े-जवान हजारों की संख्या में निकल पड़े। सब नंगे सिर, नंगे पैर, गले में अंगोछियां डाले शफाखाने के मैदान में एकत्र हुए। स्त्रियां मुंह ढांपे खड़ी विलाप कर रही थीं, मानो अपने घर का कोई प्राणी मर गया हो। जिसका कोई नहीं होता, उसके सब होते हैं। सारा शहर उमड़ा चला आता था। सब-के-सब इस खिलाड़ी को एक आंख देखना चाहते थे, जिसकी हार में भी जीत का गौरव था। कोई कहता था सिद्ध था, कोई कहता था वली था, कोई देवता कहता था, पर वह यथार्थ में खिलाड़ी था—वह खिलाड़ी, जिसके माथे पर कभी मैल नहीं आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी कदम पीछे नहीं हटाए, जीता तो प्रसन्नचित्त रहा, हारा तो प्रसन्नचित्त रहा, हारा तो जीतने वाले से कीना नहीं रक्खा, जीता तो हारने वाले पर तालियां नहीं बजाईं, जिसने खेल में सदैव नीति का पालन किया, कभी धांधली नहीं की, कभी द्वंद्वी पर छिपकर चोट नहीं की। भिखारी था, अपंग था, अंधा था, दीन था, कभी भरपेट दाना नहीं नसीब हुआ, कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला, पर हृदय धैर्य और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भंडार था। देह पर मांस न था, पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।

हां, वह साधु न था, महात्मा न था, देवता न था, फरिश्ता न था, एक क्षुद्र, शक्तिहीन प्राणी था, चिंताओं और बाधाओं से घिरा हुआ जिसमें अवगुण भी थे, और गुण भी। गुण कम थे, अवगुण बहुत। क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ये सभी दुर्गुण उसके चरित्र में भरे हुए थे, गुण केवल एक था। किंतु ये सभी दुर्गुण उस एक गुण के संपर्क से, नमक की खान में जाकर नमक हो जाने वाली वस्तुओं की भांति, देवगुणों का रूप धारण कर लेते थे–क्रोध सत्क्रोध हो जाता था, लोभ सदनुराग, मोह सदुत्साह के रूप में प्रकट होता था, और अहंकार आत्माभिमान के वेश में। और वह गुण क्या था? न्याय-प्रेम, सत्य-भक्ति, परोपकार, दर्द, या उसका जो नाम चाहे रख लीजिए। अन्याय देखकर उससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिए असह्य थी।

मृत देह कितनी धूम-धाम से निकली, इसकी चर्चा करना व्यर्थ है। बाजे-गाजे न थे, हाथी-घोड़े न थे, पर आंसू बहाने वाली आंखों और कीर्ति-गान करनेवाले मुखों की कमी न थी। बड़ा समारोह था। सूरदास की सबसे बड़ी जीत यह थी कि शत्रुओं को भी उससे शत्रुता न थी। अगर शोक-समाज में सोफिया, गांगुली, जाह्नवी, भरतसिंह, नायकराम, भैरो आदि थे, तो महेन्द्रकुमारसिंह, जॉन सेवक, जगधर, यहां तक कि मि॰ क्लार्क भी थे। चंदन की चिता बनाई गई थी, उस पर विजय-पताका लहरा रही थी। दाह-क्रिया कौन करता? मिठुआ ठीक उसी अवसर पर रोता हुआ आ पहुंचा। सूरदास ने जीते-जी जो न कर पाया था, मरकर किया।

इसी स्थान पर कई दिन पहले यही शोक-दृश्य दिखाई दिया था। अंतर केवल इतना था कि उस दिन लोगों के हृदय शोक से व्यथित थे, आज विजय-गर्व से परिपूर्ण। वह एक वीरात्मा की वीर मृत्यु थी, यह एक खिलाड़ी की अंतिम लीला। एक बार फिर सूर्य की किरणें चिता पर पड़ीं, उनमें गर्व की आभा थी, मानो आकाश से विजय-गान के स्वर आ रहे हैं।

लौटते समय मि॰ क्लार्क ने राजा महेन्द्रकुमार से कहा–मुझे इसका अफसोस है कि मेरे हाथों ऐसे अच्छे आदमी की हत्या हुई।

राजा साहब ने कौतूहल से कहा–सौभाग्य कहिए, दुर्भाग्य क्यों?

क्लार्क–नहीं राजा साहब, दुर्भाग्य ही है। हमें आप-जैसे मनुष्यों से भय नहीं, भय ऐसे ही मनुष्यों से है, जो जनता के हृदय पर शासन कर सकते हैं। यह राज्य करने का प्रायश्चित है कि इस देश में हम ऐसे आदमियों का वध करते हैं, जिन्हें इंगलैंड में हम देव-तुल्य समझते।

सोफिया इसी समय उनके पास से होकर निकली। यह वाक्य उसके कानों में पड़ा। बोली–काश ये शब्द आपके अंत:करण से निकले होते।

यह कहकर वह आगे बढ़ गई। मि॰ क्लार्क यह व्यंग्य सुनकर बौखला गए, जब्त न कर सके। घोड़ा बढ़ाकर बोले–यह तुम्हारे उस अन्याय का फल है, जो तुमने मेरे साथ किया है।

सोफी आगे बढ़ गई थी। ये शब्द उसके कान में न पड़े।

गगन-मंडल के पथिक, जो मेघ के आवरण से बाहर निकल आए थे, एक-एक करके विदा हो रहे थे! शव के साथ जाने वाले भी एक-एक करके चले गए। पर सोफिया कहां जाती? इसी दुविधा में खड़ी थी कि इन्दु मिल गई। सोफिया ने कहा–इन्दु, जरा ठहरो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

सैंतालीस

संध्या हो गई थी। मिल के मजदूर छुट्टी पा गए थे। आजकल दूनी मजदूरी देने पर भी बहुत थोड़े मजदूर काम करने आते थे। पांड़ेपुर में सन्नाटा छाया हुआ था। वहां अब मकानों के भग्नावशेष के सिवा कुछ नजर न आता था। हां, वृक्ष अभी तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे। वह छोटा-सा नीम का वृक्ष अब सूरदास की झोपड़ी का निशान बतलाता था, फूस लोग बटोर ले गए थे। भूमि समतल की जा रही थी, और कहीं-कहीं नए मकानों की दाग-बेल पड़ चुकी थी। केवल बस्ती के अंतिम भाग में एक छोटा-सा खपरैल का मकान अब तक आबाद था, जैसे किसी परिवार के सब प्राणी मर गए हों, केवल एक जीर्ण-शीर्ण, रोग-पीड़ित, बूढ़ा नामलेवा रह गया हो। यही कुल्सूम का घर है, जिसे अपने वचनुसार, सूरदास की खातिर से, मि० जॉन सेवक ने गिराने नहीं दिया है। द्वार पर नसीमा और साबिर खेल रहे हैं, और ताहिरअली एक टूटी हुई खाट पर सिर झुकाए बैठे हुए हैं। ऐसा मालूम होता है कि महीनों से उनके बाल नहीं बने। शरीर दुर्बल है, चेहरा मुरझाया हुआ, आंखें बाहर को निकल आई हैं। सिर के बाल भी खिचड़ी हो गए हैं। कारावास के कष्टों और घर की चिंताओं ने कमर तोड़ दी है। कालगति ने उन पर बरसों का काम महीनों में कर डाला है। उनके अपने कपड़े, जो जेल से छूटते समय वापस मिले हैं, उतारे के मालूम होते हैं। आज प्रातःकाल वह नैनी-जेल से आए हैं, और अपने घर की दुर्दशा ने उन्हें इतना क्षुब्ध कर रक्खा है कि बाल बनवाने तक की इच्छा नहीं होती। उनके आंसू नहीं थमते, बहुत मन को समझाने पर भी नहीं थमते। इस समय भी उनकी आंखों में आंसू भरे हुए हैं। उन्हें रह-रहकर माहिरअली पर क्रोध आता है, और वह एक लंबी सांस खींचकर रह जाते हैं। वे कष्ट याद आ रहे हैं, जो उन्होंने खानदान के लिए सहर्ष झेले थे-वे सारी तकलीफें, सारी कुरबानियां, सारी तपस्या बेकार हो गई। क्या इसी दिन के लिए मैंने इतनी मुसीबतें झेली थीं? इसी दिन के लिए अपने खून से खानदान के पेड़ को सींचा था? यही कडुए फल खाने के लिए? आखिर मैं जेल ही क्यों गया था? मेरी आमदनी मेरे बाल-बच्चों की परवरिश के लिए काफी थी। मैंने जान दी खानदान के लिए। अब्बा ने मेरे सिर जो बोझ रख दिया था, वही मेरी तबाही का सबब हुआ। गजब खुदा का ! मुझ पर यह सितम ! मुझ पर यह कहर ! मैंने कभी नए जूते नहीं पहने, बरसों कपड़ों में थिगलियां लगा-लगाकर दिन काटे, बच्चे मिठाइयों को तरस-तरसकर रह जाते थे, बीवी को सिर के लिए तेल भी मयस्सर न होता था, चूड़ियां पहनना नसीब न था, हमने फाके किए, जेवर और कपड़ों की कौन कहे, ईद के दिन भी बच्चों को नए कपड़े न मिलते थे, कभी इतना हौसला न हुआ कि बीवी के लिए एक लोहे का छल्ला बनवाता। उल्टे उसके सारे गहने बेच-बेचकर खिला दिए। इस सारी तपस्या का यह नतीजा। और वह भी मेरी गैरहाजिरी में ! मेरे बच्चे इस तरह घर से निकाल दिए गए, गोया किसी गैर के बच्चे हैं, मेरी बीवी को रो-रोकर दिन काटने पड़े, कोई आंसू पोंछने वाला भी नहीं हुआ, और मैंने इसी लौंडे के लिए गबन किया था ! इसी के लिए अमानत की रकम उड़ाई थी ! क्या मैं मर गया था? अगर वे लोग मेरे बाल-बच्चों को अच्छी तरह इज्जत-आबरू के साथ रखते, तो क्या मैं ऐसा गया-गुजरा था कि उनके एहसान का बोझ उतारने की कोशिश न करता ! न दूध-घी खिलाते, न तंजेब-अद्धी पहनाते, रूखी रोटियां ही देते, गजी-गाढ़ा ही पहनाते; पर घर में तो रखते। वे रुपयों के पान खा जाते होंगे, और यहां मेरी बीवी को सिलाई करके अपना गुजर-बसर करना पड़ा ! उन सबों से तो जॉन सेवक ही अच्छे, जिन्होंने रहने का मकान तो न गिराया, मदद करने के लिए आए तो।

कुल्सूम ने ये विपत्ति के दिन सिलाई करके काटे थे। देहात की स्त्रियां उसके यहां अपने लिए कुरतियां, बच्चों के लिए टोप और कुरते सिलातीं। कोई पैसे दे जाती, कोई नाज। उसे भोजन-वस्त्र का कष्ट न था। ताहिरअली अपनी समृद्धि के दिनों में भी इससे ज्यादा सुख न दे सके थे। अंतर केवल यह था कि तब सिर पर अपना पति था, अब सिर पर कोई न था। इस आश्रय-हीनता ने विपत्ति को और भी असह्य बना दिया था, अंधकार में निर्जनता और भी भयप्रद हो जाती है।

ताहिरअली सिर झुकाए शोक-मग्न बैठे थे कि कुल्सूम ने द्वार पर आकर कहा–शाम हो गई, और अभी तक कुछ नहीं खाया। चलो, खाना ठंडा हुआ जाता है।

ताहिरअली ने सामने के खंडहरों की ओर ताकते हुए कहा–माहिर थाने में ही रहते हैं, या कहीं और मकान लिया है?

कुल्सूम–मुझे क्या खबर, यहां तब से झूठों भी तो नहीं आए। जब ये मकान खाली करवाए जा रहे थे, तब एक दिन सिपाहियों को लेकर आए थे। नसीमा और साबिर चचा-चचा करके दौड़े, पर दोनों को दुत्कार दिया।

ताहिर–हां, क्यों न दुत्कारते, उनके कौन होते थे।

कुल्सूम–चलो, दो लुकमे खा लो।

ताहिर–माहिर मियां से मिले बगैर मुझे दाना-पानी हराम है।

कुल्सूम–मिल लेना, कहीं भागे जाते हैं।

ताहिर–जब तक जी-भर उनसे बातें न कर लूंगा, दिल को तस्कीन न होगी।

कुल्सूम–खुदा उन्हें खुश रक्खे, हमारी भी तो किसी तरह कट ही गई, खुदा ने किसी-न-किसी हीले से रोजी पहुंचा तो दी। तुम सलामत रहोगे, तो हमारी फिर आराम से गुजरेगी, और पहले से ज्यादा अच्छी तरह। दो को खिलाकर खाएंगे। उन लोगों ने जो कुछ किया, उसका सवाब और अजाब उनको खुदा से मिलेगा।

ताहिर–खुदा ही इंसाफ करता, तो हमारी यह हालत क्यों होती। उसने इंसाफ करना छोड़ दिया।

इतने में एक बुढ़िया सिर पर टोकरी रक्खे आकर खड़ी हो गई, और बोली–बहू, लड़कों के लिए भुट्टे लाई हूं, क्या तुम्हारे मियां आ गए क्या?

कुल्सूम बुढ़िया के साथ कोठरी में चली गई। उसके कुछ कपड़े सिए थे। दोनों में इधर-उधर की बातें होने लगीं।

अंधेरी रात नदी की लहरों की भांति पूर्व दिशा से दौड़ी चली आती थी। वे खंडहर ऐसे भयानक मालूम होने लगे, मानो कोई कबरिस्तान है। नसीमा और साबिर, दोनों आकर ताहिरअली की गोद में बैठ गए।

नसीमा ने पूछा–अब्बा, अब तो हमें छोड़कर न जाओगे?

साबिर–अब जाएंगे, तो पकड़ लूंगा। देखें, कैसे चले जाते हैं।

ताहिर–मैं तो तुम्हारे लिए मिठाइयां भी नहीं लाया।

नसीमा–तुम तो हमारे अब्बजान हो। तुम नहीं थे, तो चचा ने हमें अपने पास से भगा दिया था।

साबिर–पंडाजी ने हमें पैसे दिए थे, याद है न नसीमा?

नसीमा–और सूरदास की झोपड़ी में हम-तुम जाके बैठे, तो उसने हमें गुड़ खाने को दिया था। मुझे गोद में उठाकर प्यार करता था।

साबिर–उस बिचारे को एक साहब ने गोली मार दी अब्बा ! मर गया।

नसीमा–यहां पलटन आई थी अब्बा, हम लोग मारे डर के घर से न निकलते थे, क्यों साबिर?

साबिर–निकलते तो पलटन वाले पकड़ न ले जाते !

बच्चे तो बाप की गोद में बैठकर चहक रहे थे, किंतु पिता का ध्यान उनकी ओर न था। वह माहिरअली से मिलने के लिए विकल थे, अब अवसर पाया तो बच्चों से मिठाई लाने का बहाना करके चल खड़े हुए। थाने पर पहुंचकर पूछा, तो मालूम हुआ कि दारोगाजी अपने मित्रों के साथ बंगले पर विराजमान हैं। ताहिरअली बंगले की तरफ चले। वह फूंस का अठकोन झोपड़ा था, लताओं और बेलों से सजा हुआ। माहिरअली ने बरसात में सोने और मित्रों के साथ विहार करने के लिए इसे बनवाया था। चारों तरफ से हवा जाती थी। ताहिरअली ने समीप जाकर देखा, तो कई भद्र पुरुष मसनद लगाए बैठे हुए थे। बीच में पीकदान रक्खा हुआ था। खमीरा तंबाकू धुआंधार उड़ रहा था। एक तश्तरी में पान-इलायची रक्खे हुए थे। दो चौकीदार खड़े पंखा झल रहे थे। इस वक्त ताश की बाजी हो रही थी। बीच-बीच में चुहल भी हो जाती थी। ताहिरअली की छाती पर सांप लोटने लगा। यहां ये जलसे हो रहे हैं, यहां ऐश का बाजार गर्म है, और एक मैं हूं कि कहीं बैठने का ठिकाना नहीं, रोटियों के लाले पड़े हुए हैं। यहां जितना पान-तंबाकू में उड़ जाता होगा, उतने में मेरे बाल-बच्चों की परवरिश हो जाती। मारे क्रोध के होंठ चबाने लगे। खून खौलने लगा। बेधड़क मित्र-समाज में घुस गए, और क्रोध तथा ग्लानि से उन्मत्त होकर बोले–माहिर ! मुझे पहचानते हो, कौन हूं? गौर से देख लो। बढ़े हुए ब.ालों और फटे हुए कपड़ों ने मेरी सूरत इतनी नहीं बदल डाली है कि पहचाना न जा सकूं। बदहाली सूरत को नहीं बदल सकती। दोस्तो, आप लोग शायद न जानते होंगे, मैं इस बेवफा, दगाबाज, कमीने आदमी का भाई हूं। इसके लिए मैंने क्या-क्या तकलीफें उठाईं, यह मेरा खुदा जानता है। मैंने अपने बच्चों को, अपने कुनबे को, अपनी जात को इसके लिए मिटा दिया, इसकी मां और इसके भाइयों के लिए मैंने वह सब कुछ सहा, जो कोई इंसान सह सकता है, इसी की जरूरतें पूरी करने के लिए, इसके शौक और तालीम का खर्च पूरा करने के लिए, मैंने कर्ज लिए, अपने आका की अमानत में खियानत की, और जेल की सजा काटी। इन तमाम नेकियों का यह इनाम है कि इस भले आदमी ने मेरे बाल-बच्चों की बात भी न पूछी ! यह उसी दिन मुरादाबाद से आया, जिस दिन मुझे सजा हुई थी। मैंने इसे तांगे पर आते देखा, मेरी आंखों में आंसू छलक आए, मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा कि मेरा भाई अभी आकर मुझे दिलासा देगा, और खानदान को संभालेगा। पर यह एहसानफरामोश आदमी सीधा चला गया, मेरी तरफ ताका तक नहीं, मुंह फेर लिया। उसके दो-चार दिन बाद यह अपने भाइयों के साथ यहां चला आया, मेरे बच्चों को वहीं वीराने में छोड़ दिया। यहां मजलिस सजी हुई है, ऐश हो रहा है, और वहां मेरे अंधेरे-घर में चिराग-बत्ती का भी ठिकाना नहीं। खुदा अगर मुंसिफ होता, तो इसके सिर पर उसका कहर बिजली बनकर गिरता। लेकिन उसने इंसाफ करना छोड़ दिया। आप लोग इस जालिम से पूछिए कि क्या मैं इसी सलूक और बेदरदी के लायक था, क्या इसी दिन के लिए मैंने फकीरों की-सी जिंदगी बसर की थी? इसको शरमिंदा कीजिए, इसके मुंह में कालिख लगाइए, इसके मुंह पर थूकिए। नहीं, आप लोग इसके दोस्त हैं, मुरौवत के सबब से इंसाफ न कर सकेंगे। अब मुझी को इंसाफ करना पड़ेगा। खुदा गवाह है, और खुद इसका दिल गवाह है कि आज तक मैंने इसे कभी तेज निगाह से भी नहीं देखा, इसे खिलाकर खुद भूखों रहा, इसे पहनाकर खुद नंगा रहा। मुझे याद ही नहीं आता कि मैंने कब नए जूते पहने थे, कब नए कपड़े बनवाए थे, इसके उतारों ही पर मेरी बसर होती

थी। ऐसे जालिम पर अगर खुदा का अजाब नहीं गिरता, तो इसका सबब यही है कि खुदा ने इंसाफ करना छोड़ दिया।

ताहिरअली ने जल-प्रवाह के वेग से अपने मनोद्‌गार प्रकट किए, और इसके पहले कि माहिरअली कुछ जवाब दें, या सोच सकें कि क्या जवाब दूं, या ताहिरअली को रोकने की चेष्टा करें, ताहिरअली ने झपटकर कलमदान उठा लिया, उसकी स्याही निकाल ली, और माहिरअली की गरदन जोर से पकड़कर स्याही मुंह पर पोत दी, तब तीन बार उन्हें झुक-झुककर सलाम किया, और अंत में यह कहकर वहीं बैठ गए—मेरे अरमान निकल गए, मैंने आज से समझ लिया कि तुम मर गए, और तुमने तो मुझे पहले ही से मरा हुआ समझ लिया है। बस, हमारे और तुम्हारे दरमियान इतना ही नाता था। आज यह भी टूट गया। मैं अपनी सारी तकलीफों का सिला और इनाम पा गया। अब तुम्हें अख्तियार है, मुझे गिरफ्तार करो, मारो, पीटो, जलील करो। मैं यहां मरने ही आया हूं, जिंदगी से जी भर गया, दुनिया रहने की जगह नहीं, यहां इतनी दगा है, इतनी बेवफाई है, इतना हसद है, इतना कीना है कि यहां जिंदा रहकर कभी खुशी नहीं मयस्सर हो सकती है।

माहिरअली स्तंभित से बैठे रहे। पर उनके एक मित्र ने कहा—मान लीजिए, इन्होंने बेवफाई की....

ताहिरअली बोले—मान क्या लूं साहब, भुगत रहा हूं, रो रहा हूं, मानने की बात नहीं है।

मित्र ने कहा—मुझसे गलती हुई, इन्होंने जरूर बेवफाई की, लेकिन आप बुजुर्ग हैं, यह हरकत शराफत से बईद है कि किसी को सरे मजलिस बुरा-भला कहा जाय, और उसके मुंह में कालिख लगा दी जाय।

दूसरे मित्र बोले—शराफत से बईद ही नहीं है, पागलपन है, ऐसे आदमी को पागलखाने में बंद कर देना चाहिए।

ताहिर—जानता हूं, इतना जानता हूं, शराफत से बईद है, लेकिन मैं शरीफ नहीं हूं, पागल हूं, दीवाना हूं, शराफत आंसू बनकर आंखों से बह गई। जिसके बच्चे गलियों में, दूकानों पर भीख मांगते फिरते हों, जिसका बीवी पड़ोसियों का आटा पीसकर अपना गुजर करे, जिसकी कोई खबर लेने वाला न हो, जिसके रहने को घर न हो, जिसके पहनने के कपड़े न हों, वह शरीफ नहीं हो सकता, और न वही आदमी शरीफ हो सकता है, जिसकी बेरहमी के हाथों मेरी यह दुर्गत हुई। अपने जेल से लौटने वाले भाई को देखकर मुंह फेर लेना अगर शराफत है, तो यह भी शराफत है। क्यों मियां माहिर, बोलते क्यों नहीं? याद है, तुम नई अचकन पहनते थे, और जब तुम उतारकर फेंक दिया करते थे, तो मैं पहन लेता था! याद है, तुम्हारे फटे जूते गठवाकर मैं पहना करता था। याद है, मेरा मुशाहरा कुल पच्चीस रुपया माहवार था, और वह सब-का-सब मैं तुम्हें मुरादाबाद भेज दिया करता था! याद है, देखो, जरा मेरी तरफ देखो। तुम्हारे तंबाकू का खर्च मेरे बाल-बच्चों के लिए काफी हो सकता था। नहीं, तुम सब कुछ भूल गए। अच्छी बात है, भूल जाओ, मैं तुम्हारा भाई हूं न तुम मेरे भाई हो। मेरी सारी तकलीफों का मुआवजा वही सियाही है, जो तुम्हारे मुंह पर लगी हुई है। लो रुखसत, अब तुम फिर यह सूरत न देखोगे, अब हिसाब के दिन तुम्हारा दामन न पकड़ूंगा। तुम्हारे ऊपर मेरा कोई हक नहीं है।

यह कहकर ताहिरअली उठ खड़े हुए, और उसी अंधेरे में जिधर से आए थे, उधर चले गए, जैसे हवा का एक झोंका आए, और निकल जाए। माहिरअली ने बड़ी देर के बाद सिर उठाया, और फौरन साबुन से मुंह धोकर तौलिए से साफ किया। तब आईने में मुंह देखकर बोले—आप

लोग गवाह रहें, मैं इनको इस हरकत का मजा चखाऊंगा।

एक मित्र—अजी जाने भी दीजिए, मुझे तो दीवाने-से मालूम होते हैं।

दूसरे मित्र—दीवाने नहीं तो और क्या हैं, यह भी समझदारों का काम है भला।

माहिरअली—हमेशा से बीवी के गुलाम रहे; जिस तरफ चाहती है, नाक पकड़कर घुमा देती है। आप लोगों से खानगी दुखड़े क्या रोऊं। मेरे भाइयों की, और मां की मेरी भावज के हाथों जो दुर्गत हुई है, वह किसी दुश्मन की भी न हो। कभी बिला रोए दाना न नसीब होता था। मेरी अलबत्ता यह जरा खातिर करते थे। आप समझते रहे होंगे कि इसके साथ जरा जाहिरदारी कर दो, बस जिंदगी-भर के लिए मेरा गुलाम हो जायगा। ऐसी औरत के साथ निबाह क्योंकर होता। यह हजरत तो जेल में थे, वहां उसने हम लोगों को फाके कराने शुरू किए। मैं खाली हाथ, बड़ी मुसीबत में पड़ा। वह तो कहिए दवा-दविश करने से यह जगह मिल गई, नहीं तो खुदा ही जानता है, हम लोगों की क्या हालत होती ! हम नेहारमुंह दिन-के-दिन बैठे रहते थे, वहां मिठाइयां मंगा-मंगाकर खाई जाती थीं। मैं हमेशा से इनका अदब करता रहा, यह उसी का इनाम है, जो आपने दिया है। आप लोगों ने देखा, मैंने इतनी जिल्लत गवारा की, पर सिर तक नहीं उठाया, जबान नहीं खोली, नहीं एक धक्का देता, तो बीसों लुढ़कनियां खाते। अब भी दावा कर दूं, तो हजरत बंधे-बंधे फिरें, लेकिन तब दुनिया यही कहेगी कि बड़े भाई को जलील किया।

एक मित्र—जाने भी दो म्यां, घरों में ऐसे झगड़े होते ही रहते हैं। बेहयाओं की बला दूर, मरदों के लिए शर्म नहीं है। लाओ, ताश उठाओ, अब तक तो एक बाजी हो गई होती।

माहिरअली—कसम कलामेशरीफ की, अम्मांजान ने अपने पास के दो हजार रुपये इन लोगों को खिला दिए, नहीं तो पच्चीस रुपये में यह बेचारे क्या खाकर सारे कुनबे का खर्च संभालते।

एक कांस्टेबल—हजूर, घर-गृहस्थी में ऐसा हुआ ही करता है। जाने दीजिए, जो हुआ सो हुआ। वह बड़े हैं, आप छोटे हैं; दुनिया उन्हीं को थूकेगी, आपकी बड़ाई होगी।

एक मित्र—मेरा शेर कैसा लपका हुआ आया, और कलमदान से स्याही निकालकर मल ही तो दी। मानता हूं।

माहिरअली—हजरत, इस वक्त दिल न जलाइए, कसम खुदा की, बड़ा मलाल है।

ताहिरअली यहां से चले, तो उनकी गति में वह व्यग्रता न थी। दिल में पछता रहे थे कि नाहक अपनी शराफत में बट्टा लगाया। घर आए, तो कुल्सूम ने पूछा—यह कहां गायब हो गए? राह देखते-देखते आंखें थक गईं। बच्चे रोकर सो गए कि अब्बा फिर चले गए।

ताहिरअली—जरा माहिरअली से मिलने गया था।

कुल्सूम—इसकी ऐसी क्या जल्दी थी। कल मिल लेते। तुम्हें यों फटेहाल देखकर शरमाए तो न होंगे।

ताहिरअली—मैंने उसे वह लताड़ सुनाई कि उम्र-भर न भूलेंगे। जबान तक न खुली। उसी गुस्से में मैंने उसके मुंह में कालिख भी लगा दी।

कुल्सूम का मुख मलिन हो गया। बोली—तुमने बड़ी नादानी का काम किया। कोई इतना जामे से बाहर हो जाता है। यह कालिख तुमने उनके मुंह में नहीं लगाई, अपने मुंह में लगाई है। तुम्हारी जिंदगी-भर के किए-धरे पर सियाही फिर गई। तुमने अपनी सारी नेकियों को मटियामेट कर दिया। आखिर यह तुम्हें सूझी क्या? तुम तो इतने गुस्सेवर कभी न थे। इतना सब्र न हो सका कि अपने भाई ही थे, उनकी परवरिश की, तो कौन-सी हातिम की कब्र पर लात

मारी। छी-छी ! इंसान किसी गैर के साथ भी नेकी करता है, तो दरिया में डाल देता है, यह नहीं कि कर्ज वसूल करता फिरे। तुमने जो कुछ किया, खुदा की राह में किया, अपना फर्ज समझकर किया, कर्ज नहीं दिया था कि सूद के साथ वापस ले लो। कहीं मुंह दिखाने लायक न रहे, न रक्खा। अभी दुनिया उनको हंसती थी, देहातिनियां भी उनको कोसने दे जाती थीं। अब लोग तुम्हें हंसेंगे। दुनिया हंसे या न हंसे, इसकी परवा नहीं। अब तक खुदा और रसूल की नजरों में वह खतावार थे, अब तुम खतावार हो।

ताहिरअली ने लज्जित होकर कहा—हिमाकत तो हो गई, मगर मैं तो बिल्कुल पागल हो गया था।

कुल्सूम—भरी मजलिस में उन्होंने सिर तक न उठाया, फिर भी तुम्हें गैरत न आई। मैं तो कहूंगी, तुमसे कहीं शरीफ वही हैं, नहीं तुम्हारी आबरू उतार लेना उनके लिए क्या मुश्किल था।

ताहिरअली—अब यही खौफ है कि कहीं मुझ पर दावा न कर दे।

कुल्सूम—उनमें तुमसे ज्यादा इंसानियत है।

कुल्सूम ने इतना लज्जित किया कि ताहिरअली रो पड़े, और देर तक रोते रहे। फिर बहुत मनाने पर खाने उठे, और खा-पीकर सोए।

तीन दिन तक तो वह इसी कोठरी में पड़े रहे। कुछ बुद्धि काम न करती थी कि कहां जायं, क्या करें, क्योंकर जीवन का निर्वाह हो। चौथे दिन घर से नौकरी की तलाश करने निकले, मगर कहीं कोई सूरत न निकली। सहसा उन्हें सूझी कि क्यों न जिल्दबंदी का काम करूं। जेलखाने में वह यह काम सीख गए थे। इरादा पक्का हो गया। कुल्सूम ने भी पसंद किया। बला से थोड़ा मिलेगा, किसी के गुलाम तो न रहोगे। सनद की जरूरत नौकरी के लिए ही है, वहीं जेल भुगतने वालों का गुजर नहीं। व्यवसाय करने वालों के लिए किसी सनद की जरूरत नहीं, उनका काम ही उनकी सनद है। चौथे दिन ताहिरअली ने यह मकान छोड़ दिया, और शहर के दूसरे मोहल्ले में एक छोटा-सा मकान लेकर जिल्दबंदी का काम करने लगे।

उनकी बनाई हुई जिल्दें बहुत सुंदर और सुदृढ़ होती हैं। काम की कमी नहीं हैं, सिर उठाने की फुरसत नहीं मिलती। उन्होंने अब दो-तीन जिल्दबंद नौकर रख लिए हैं, और शाम तक दो-तीन रुपये की मजदूरी कर लेते। इतने समृद्ध वह कभी न थे।

अड़तालीस

काशी के म्युनिसिपल बोर्ड में भिन्न-भिन्न राजनीतिक संप्रदायों के लोग मौजूद थे। एकवाद से लेकर जनसत्तावाद तक सभी विचारों के कुछ-न-कुछ आदमी थे। अभी तक धन का प्राधान्य था, महाजनों और रईसों का राज्य था। जनसत्ता के अनुयायी शक्तिहीन थे। उन्हें सिर उठाने का साहस न होता था। राजा महेन्द्रकुमार की ऐसी धाक बंधी हुई थी कि कोई उनका विरोध न कर सकता था। पर पांड़ेपुर के सत्याग्रह ने जनसत्तावादियों में एक नई संगठन-शक्ति पैदा कर दी। उस दुर्घटना का सारा इल्जाम राजा साहब के सिर मढ़ा जाने लगा। यह आंदोलन शुरू हुआ कि उन पर अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया जाय। दिन-दिन आंदोलन

जोर पकड़ने लगा। लोकमतवादियों ने निश्चय कर लिया कि वर्तमान व्यवस्था का अंत कर देना चाहिए, जिसके द्वारा जनता को इतनी विपत्ति सहनी पड़ी। राजा साहब के लिए यह कठिन परीक्षा का अवसर था। एक ओर तो अधिकारी लोग उनसे असंतुष्ट थे, दूसरी ओर यह विरोधी दल उठ खड़ा हुआ। बड़ी मुश्किल में पड़े। उन्होंने लोकवादियों की सहायता से अधिकारियों का प्रतिकार करने की ठानी थी। उनके राजनीतिक विचारों में भी कुछ परिवर्तन हो गया था। वह अब जनता को साथ लेकर म्युनिसिपैलिटी का शासन करना चाहते थे। पर अब क्या हो? इस प्रस्ताव को रोकने के लिए उद्योग करने लगे। लोकमतवाद के प्रमुख नेताओं से मिले, उन्हें बहुत कुछ आश्वासन दिया कि भविष्य में उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करेंगे, इधर अपने दल को भी संगठित करने लगे। जनतावादियों को वह सदैव नीची निगाह से देखा करते थे। पर अब मजबूर होकर उन्हीं की खुशामद करनी पड़ी। वह जानते थे कि बोर्ड में यह प्रस्ताव आ गया, तो उसका स्वीकृत हो जाना निश्चित है। खुद दौड़ते थे, अपने मित्रों को दौड़ाते थे कि किसी उपाय से यह बला सिर से टल जाय, किंतु पांड़ेपुर के निर्वासितों का शहर में रोते फिरना उनके सारे यत्नों को विफल कर देता था। लोग पूछते थे, हमें क्योंकर विश्वास हो कि ऐसी ही परिस्थिति में आप फिर ऐसी ही निरंकुशता का व्यवहार न करेंगे। सूरदास हमारे नगर का रत्न था, कुंवर विनयसिंह और इन्द्रदत्त मानव-समाज के रत्न थे। उनका खून किसके सिर पर है?

अंत में वह प्रस्ताव नियमित रूप से बोर्ड में आ ही गया। उस दिन प्रातःकाल से म्युनिसिपल बोर्ड के मैदान में लोगों का जमाव होने लगा। यहां तक कि दोपहर होते-होते दस-बारह हजार आदमी एकत्र हो गए। एक बजे प्रस्ताव पेश हुआ। राजा साहब ने खड़े होकर बड़े करुणोत्पाद शब्दों में अपनी सफाई दी, सिद्ध किया कि मैं विवश था, इस दशा में मेरी जगह पर कोई दूसरा आदमी होता, तो वह भी वही करता, जो मैंने किया, इसके सिवा अन्य कोई मार्ग न था। उनके अंतिम शब्द ये थे—मैं पद-लोलुप नहीं हूं, सम्मान-लोलुप नहीं हूं, केवल आपकी सेवा का लोलुप हूं, अब और भी ज्यादा, इसलिए कि मुझे प्रायश्चित करना है, जो इस पद से अलग होकर मैं न कर सकूंगा, वह साधन ही मेरे हाथ से निकल जायगा। सूरदास का मैं उतना ही भक्त हूं, जितना और कोई व्यक्ति हो सकता है। आप लोगों को शायद मालूम नहीं है कि मैंने शफाखाने में जाकर उनसे क्षमा-प्रार्थना की थी, और सच्चे हृदय से खेद प्रकट किया था। सूरदास का ही आदेश था कि मैं अपने पद पर स्थिर रहूं, नहीं तो मैंने पहले ही पद-त्याग करने का निश्चय कर लिया था। कुंवर विनयसिंह की अकाल मृत्यु का जितना दुःख मुझे है, उतना उनके माता-पिता को छोड़कर किसी को नहीं हो सकता। वह मेरे भाई थे। उनकी मृत्यु ने मेरे हृदय पर वह घाव कर दिया है, जो जीवन-पर्यंत न भरेगा। इन्द्रदत्त से भी मेरी घनिष्ठ मैत्री थी। क्या मैं इतना अधम, इतना कुटिल, इतना नीच, इतना पामर हूं कि अपने हाथों अपने भाई और अपने मित्र की गरदन पर छुरी चलाता? यह आक्षेप सर्वथा अन्यायपूर्ण है, यह मेरे जले पर नमक छिड़कना है। मैं अपनी आत्मा के सामने, परमात्मा के सामने, निर्दोष हूं। मैं आपको अपनी सेवाओं की याद नहीं दिलाना चाहता, यह स्वयं सिद्ध है, आप लोग जानते हैं, मैंने आपकी सेवा में अपना कितना समय लगाया है, कितना परिश्रम, कितना अनवरत उद्योग किया है ! मैं रिआयत नहीं चाहता, केवल न्याय चाहता हूं।

वक्तृता बड़ी प्रभावकारी थी, पर जनवादियों को अपने निश्चय से न डिगा सकी। पंद्रह मिनट में बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत हो गया, और राजा साहब ने भी तत्क्षण पद-त्याग की सूचना दे दी।

जब वह सभा-भवन से बाहर निकले, तो जनता ने, जिन्हें उनका व्याख्यान सुनने का अवसर न मिला था, उन पर इतनी फब्तियां उड़ाईं, इतनी तालियां बजाईं, कि बेचारे बड़ी मुश्किल से अपनी मोटर तक पहुंच सके। पुलिस ने चौकसी न की होती, तो अवश्य दंगा हो जाता। राजा साहब ने एक बार पीछे फिरकर सभा-भवन को सजल नेत्रों से देखा, और चले गए। कीर्ति-लाभ उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य था, और उसका यह निराशापूर्ण परिणाम हुआ ! सारी उम्र की कमाई पर पानी फिर गया; सारा यश, सारा गौरव, सारी कीर्ति जनता के क्रोध-प्रवाह में बह गई।

राजा साहब वहां से जले हुए घर आए, तो देखा कि इन्दु और सोफिया, दोनों बैठी बातें कर रही हैं। उन्हें देखते ही इन्दु बोली—मिस सोफिया सूरदास की प्रतिमा के लिए चंदा जमा कर रही हैं, आप भी तो उसकी वीरता पर मुग्ध हो गए थे, कितना दीजिएगा।

सोफी—इन्दुरानी ने एक हजार रुपया प्रदान किया है, और इसके दुगने से कम देना आपको शोभा न देगा।

महेन्द्रकुमार ने त्योरियां चढ़ाकर कहा—मैं इसका जवाब सोचकर दूंगा।

सोफी—मैं फिर कब आऊं?

महेन्द्रकुमार ने ऊपरी मन से कहा—आपको आने की जरूरत नहीं है, मैं स्वयं भेज दूंगा।

सोफिया ने उनके मुख की ओर देखा, तो त्योरियां चढ़ी हुई थीं। उठकर चली गई। तब राजा साहब इन्दु से बोले—तुम मुझसे बिना पूछे क्यों ऐसे काम करती हो, जिनसे मेरा सरासर अपमान होता है? मैं तुम्हें कितनी बार समझाकर हार गया ! आज उसी अंधे की बदौलत मुझे मुंह की खानी पड़ी, बोर्ड ने मुझ पर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दिया, और उसी की प्रतिमा के लिए तुमने चंदा दिया, और मुझे भी देने को कह रही हो !

इन्दु—मुझे क्या खबर थी कि बोर्ड में क्या हो रहा है। आपने भी तो कहा था कि उस प्रस्ताव के पास होने की संभावना नहीं है।

राजा—कुछ नहीं, तुम मेरा अपमान करना चाहती हो।

इन्दु—आप उस दिन सूरदास का गुण-गान कर रहे थे। मैंने समझा, चंदा देने में कोई हरज नहीं है। मैं किसी के मन के रहस्य थोड़े ही जानती हूं। आखिर वह प्रस्ताव पास क्योंकर हो गया?

राजा—अब मैं यह क्या जानूं, क्योंकर पास हो गया। इतना जानता हूं कि पास हो गया। सदैव सभी काम अपनी इच्छा या आशा के अनुकूल ही तो नहीं हुआ करते। जिन लोगों पर मेरा पूरा विश्वास था, उन्हीं ने इस अवसर पर दगा दी, बोर्ड में आए ही नहीं। मैं इतना सहिष्णु नहीं हूं कि जिसके कारण मेरा अपमान हो, उसी की पूजा करूं। मैं यथाशक्य इस प्रतिमा-आंदोलन को सफल न होने दूंगा। बदनामी तो हो ही रही है, और हो, इसकी परवा नहीं। मैं सरकार को ऐसा भर दूंगा कि मूर्ति खड़ी न होने पाएगी। देश का हित करने की शक्ति अब चाहे न हो, पर अहित करने की शक्ति है, और दिन-दिन बढ़ती जायगी। तुम भी अपना चंदा वापस कर लो।

इन्दु—(विस्मित होकर) दिए हुए रुपये वापस कर लूं?

राजा—हां, इसमें कोई हरज नहीं।

इन्दु—आपको कोई हरज न मालूम होता हो, मेरी तो इसमें सरासर हेठी है।

राजा—जिस तरह तुम्हें मेरे अपमान की परवा नहीं, उसी तरह यदि मैं भी तुम्हारी हेठी की परवा न करूं, तो कोई अन्याय न होगा।

इन्दु—मैं आपसे रुपये तो नहीं मांगती।

बात पर बात निकलने लगी, विवाद की नौबत पहुंची, फिर व्यंग्य की बारी आई, और एक क्षण में दुर्वचनों का प्रहार होने लगा। अपने-अपने विचार में दोनों ही सत्य पर थे, इसलिए कोई न दबता था।

राजा साहब ने कहा–न-जाने वह कौन दिन होगा कि तुमसे मेरा गला छूटेगा। मौत के सिवा शायद अब कहीं ठिकाना नहीं है।

इन्दु–आपको अपनी कीर्ति और सम्मान मुबारक रहे। मेरा भी ईश्वर मालिक है। मैं भी जिंदगी से तंग आ गई। कहां तक लौंडी बनूं, अब हद हो गई !

राजा–तुम मेरी लौंडी बनोगी ! वे दूसरी सती स्त्रियां होती हैं, जो अपने पुरुषों पर प्राण दे देती हैं। तुम्हारा बस चले, तो मुझे विष दे दो, और दे ही रही हो, इससे बढ़कर और क्या होगा !

इन्दु–यह विष क्यों उगलते हो। साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मेरे घर से निकल जा। मैं जानती हूं, आपको मेरा रहना अखरता है। आज से नहीं, बहुत दिनों से जानती हूं। उसी दिन जान गई थी, जब मैंने एक महरी को अपनी नई साड़ी दे दी थी, और आपने महाभारत मचाया था। उसी दिन समझ गई थी कि यह बेल मुंढ़े चढ़ने की नहीं। जितने दिन यहां रही, कभी आपने यह न समझने दिया कि यह मेरा घर है। पैसे-पैसे का हिसाब देकर भी पिंड नहीं छूटा। शायद आप समझते होंगे कि यह मेरे ही रुपये को अपना कहकर मनमाना खर्च करती है, और यहां आपका एक धेला छूने की कसम खाती हूं। आपके साथ विवाह हुआ है, कुछ आत्मा नहीं बेची है।

महेन्द्र ने होंठ चबाकर कहा–भगवान् सब दुख दे, बुरे का संग न दे। मौत भले ही दे दे। तुम जैसी स्त्री का गला घोंट देना भी धर्म-विरुद्ध नहीं। इस राज्य का कुशल मनाओ कि चैन कर रही हो, अपना राज्य होता, तो यह कैंची की तरह चलने वाली जबान तालू से खींच ली जाती।

इन्दु–अच्छा अब चुप रहिए, बहुत हो गया, मैं आपकी गालियां सुनने नहीं आई हूं, यह लीजिए अपना घर, खूब टांगें फैलाकर सोइए।

राजा–जाओ, किसी तरह अपना पौरा तो ले जाओ। बिल्ली बख्शे, चूहा अकेला ही भला।

इन्दु ने दबी जबान से कहा–यहां कौन तुम्हारे लिए दीवाना हो रहा है !

राजा ने क्रोधोन्मत्त होकर कहा–गालियां दे रही है ! जबान खींच लूंगा !

इन्दु जाने के लिए द्वार तक आई थी। यह धमकी सुनकर फिर पड़ी, और सिंहिनी की भांति बिफरकर बोली–इस भरोसे न रहिएगा। भाई मर गया है तो क्या, गुड़ का बाप कोल्हू तैयार है। सिर के बाल न बचेंगे। ऐसे ही भले होते, तो दुनिया में इतना अपयश कैसे कमाते !

यह कहकर इन्दु अपने कमरे में आई। उन चीजों को समेटा, जो उसे मैके में मिली थीं। वे सब चीजें अलग कर दीं,जो यहां की थीं। शोक न था, दु:ख न था, एक ज्वाला थी, जो उसके कोमल शरीर में विष की भांति व्याप्त हो रही थी। मुंह लाल था, आंखें लाल थीं, नाक लाल थी, रोम-रोम से चिंगारियां निकल रही थीं। अपमान आग्नेय वस्तु है।

अपनी सब चीजें संभालकर इन्दु ने अपनी निजी गाड़ी तैयार करने की आज्ञा दी। जब तक गाड़ी तैयार होती रही, वह बरामदे में टहलती रही। ज्योंही फाटक पर घोड़ों की टाप सुनाई दी, वह आकर गाड़ी में बैठ गई, पीछे फिरकर भी न देखा। जिस घर की वह रानी थी, जिसको वह अपना समझती थी, जिसमें जरा-सा कूड़ा पड़ा रहने पर नौकरों के सिर हो जाती थी, उसी घर से इस तरह निकल गई, जैसे देह से प्राण निकल जाता है, उसी देह से, जिसकी वह सदैव रक्षा करता था, जिसके जरा-जरा से कष्ट से स्वयं विकल हो जाता था। किसी से कुछ न कहा,

न किसी की हिम्मत पड़ी कि उससे कुछ पूछे। उसके चले जाने के बाद महराजिन ने जाकर महेन्द्र से कहा—सरकार, रानी बहू जाने कहां चली जा रही हैं।

महेन्द्र ने उसकी ओर तीव्र नेत्रों से देखकर कहा—जाने दो !

महराजिन—सरकार, संदूक और संदूकचे लिए जाती हैं।

महेन्द्र—कह दिया, जाने दो।

महराजिन—सरकार, रूठी मालूम होती हैं, अभी दूर न गई होंगी, आप मना लें।

महेन्द्र—मेरा सिर मत खा।

इन्दु लदी-फदी सेवा-भवन पहुंची, तो जाह्नवी ने कहा—तुम लड़कर आ रही हो, क्यों?

इन्दु—कोई अपने घर में नहीं रहने देता, तो क्या जबरदस्ती है।

जाह्नवी—सोफिया ने आते-ही-आते मुझसे कहा था, आज कुशल नहीं है।

इन्दु—मैं लौंडी बनकर नहीं रह सकती।

जाह्नवी—तुमने उनसे बिना पूछे चंदा क्यों लिखा?

इन्दु—मैंने किसी के हाथों अपनी आत्मा नहीं बेची है।

जाह्नवी—जो स्त्री अपने पुरुष का अपमान करती है, उसे लोक-परलोक कहीं शांति नहीं मिल सकती।

इन्दु—क्या चाहती हैं कि यहां से भी चली जाऊं? मेरे घाव पर नमक न छिड़कें।

जाह्नवी—पछताओगी और क्या। समझाते-समझाते हार गई, पर तुमने अपना हठ न छोड़ा।

इन्दु यहां से उठकर सोफिया के कमरे में चली गई। माता की बातें उसे जहर-सी लगीं।

यह विवाद दांपत्य क्षेत्र से निकलकर राजनीतिक क्षेत्र में अवतरित हुआ। महेन्द्रकुमार उधर एड़ी-चोटी का जोर लगाकर इस आंदोलन का विरोध कर रहे थे, लोगों को चंदा देने से रोकते थे, प्रांतीय सरकार को उत्तेजित करते थे, इधर इन्दु सोफिया के साथ चंदे वसूल करने में तत्पर थी। मि० क्लार्क अभी तक दिल में राजा साहब से द्वेष रखते थे, अपना अपमान भूले न थे, उन्होंने जनता के इस आंदोलन में हस्तक्षेप करने की कोई जरूरत नहीं समझी, जिसका फल यह हुआ कि राजा साहब की एक न चली। धड़ाधड़ चंदे वसूल होने लगे। एक महीने में एक लाख से अधिक वसूल हो गया। किसी पर किसी तरह का दबाव न था, किसी से कोई सिफारिश न करता था। यह दोनों रमणियों के सदुद्योग ही का चमत्कार था, नहीं, शहीदों की वीरता की विभूति थी, जिनकी याद में अब भी लोग रोया करते थे। लोग स्वयं आकर देते थे, और अपनी हैसियत से ज्यादा। मि० जॉन सेवक ने भी स्वेच्छा से एक हजार रुपये दिए, इन्दु ने अपना चंदा एक हजार तो दिया ही, अपने कई बहुमूल्य आभूषण भी दे डाले, जो बीस हजार पर बिके। राजा साहब की छाती पर सांप लोटता रहता था। पहले अलक्षित रूप से विरोध करते थे, फिर प्रत्यक्ष रूप से दुराग्रह करने लगे। गवर्नर के पास स्वयं गए, रईसों को भड़काया। सब कुछ किया, पर जो होना था, वह होकर रहा।

छः महीने गुजर गए। सूरदास की प्रतिमा बनकर आ गई। पूना के एक प्रसिद्ध मूर्तिकार ने सेवा-भाव से इसे रचा था। पांड़ेपुर में उसे स्थापित करने का प्रस्ताव था। जॉन सेवक ने सहर्ष आज्ञा दे दी। जहां सूरदास का झोपड़ा था, वहीं मूर्ति का स्थापन हुआ। कीर्तिमानों की कीर्ति को अमर करने के लिए मनुष्य के पास और कौन-सा साधन है? अशोक की स्मृति भी तो उसके शिलालेखों ही से अमर है। वाल्मीकि और व्यास, होमर और फिर्दौसी, सबको तो नहीं मिलते।

पांड़ेपुर में बड़ा समारोह था। नगर निवासी अपने-अपने काम छोड़कर इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। रानी जाह्नवी ने करुण कंठ और सजल नेत्रों से मूर्ति को प्रतिष्ठित किया। इसके बाद देर तक संकीर्तन होता रहा। फिर नेताओं के प्रभावशाली व्याख्यान हुए, पहलवानों ने अपने-अपने करतब दिखाए। संध्या-समय प्रीति-भोज हुआ, छूत और अछूत साथ बैठकर एक ही पंक्ति में खा रहे थे। यह सूरदास की सबसे बड़ी विजय थी। रात को एक नाटक-मंडली ने 'सूरदास' नाम का एक नाटक खेला, जिसमें सूरदास ही के चरित्र का चित्रण किया गया था। प्रभु सेवक ने इंगलैण्ड से यह नाटक रचकर इसी अवसर के लिए भेजा था। बारह बजते-बजते उत्सव समाप्त हुआ। लोग अपने-अपने घर सिधारे। वहां सन्नाटा छा गया।

चांदनी छिटकी हुई थी, और शुभ्र ज्योत्स्ना में सूरदास की मूर्ति एक हाथ से लाठी टेकती हुई और दूसरा हाथ किसी अदृश्य दाता के सामने फैलाए खड़ी थी—वही दुर्बल शरीर था, हंसलियां निकली हुई, कमर टेढ़ी, मुख पर दीनता और सरलता छाई हुई; साक्षात् सूरदास मालूम होता था। अंतर केवल इतना था कि वह चल था, यह अचल थी, वह सबोल था, यह अबोल थी, और मूर्तिकार ने यहां वह वात्सल्य अंकित कर दिया था, जिसका मूल में पता न था। बस ऐसा मालूम होता था, मानो कोई स्वर्गलोक का भिक्षुक देवताओं से संसार के कल्याण का वरदान मांग रहा है।

आधी रात बीत चुकी थी। एक आदमी साइकिल पर सवार मूर्ति के समीप आया। उसके हाथ में कोई यंत्र था। उसने क्षण-भर तक मूर्ति को सर से पांव तक देखा, और तब उसी यंत्र से मूर्ति पर आघात किया। तड़ाक की आवाज सुनाई दी, और मूर्ति धमाके के साथ भूमि पर आ गिरी, और उसी मनुष्य पर जिसने उसे तोड़ा था। वह कदाचित् दूसरा आघात करने वाला था, इतने में मूर्ति गिर पड़ी। भाग न सका, मूर्ति के नीचे दब गया। प्रातःकाल लोगों ने देखा, तो राजा महेन्द्रकुमारसिंह थे। सारे नगर में खबर फैल गई कि राजा साहब ने सूरदास की मूर्ति तोड़ डाली, और खुद उसी के नीचे दब गए। जब तक जिए, सूरदास के साथ वैर-भाव रक्खा, मरने के बाद भी द्वेष करना न छोड़ा। ऐसे ईर्ष्यालु मनुष्य भी होते हैं! ईश्वर ने उसका फल भी तत्काल ही दे दिया। जब तक जिए, सूरदास से नीचा देखा, मरे भी तो उसी के नीचे दबकर। जाति का द्रोही, दुश्मन, दंभी, दगाबाज और इनसे भी कठोर शब्दों में उनकी चर्चा हुई।

कारीगरों ने फिर मसालों से मूर्ति के पैर जोड़े, और उसे खड़ा किया। लेकिन उस आघात के चिह्न अभी तक पैरों पर बने हुए हैं, और मुख भी विकृत हो गया है।

उनचास

इधर सूरदास के स्मारक के लिए चंदा जमा किया जा रहा था, उधर कुलियों के टोले के शिलान्यास की तैयारियां हो रही थीं। नगर के गण्य-मान्य पुरुष निमंत्रित हुए थे। प्रांत के गवर्नर से शिला-स्थापन की प्रार्थना की गई थी। एक गार्डन-पार्टी होने वाली थी। गवर्नर महोदय को अभिनंदन-पत्र दिया जाने वाला था। मिसेज सेवक दिलोजान से तैयारियां कर रही थीं। बंगले की सफाई और सजावट हो रही थी। तोरण आदि बनाए जा रहे थे। अंगरेजी बैंड बुलाया गया था। मि० क्लार्क ने सरकारी कर्मचारियों को मिसेज सेवक की सहायता करने का हुक्म दे दिया

था, और स्वयं चारों तरफ दौड़ते फिरते थे।

मिसेज सेवक के हृदय में अब एक नई आशा अंकुरित हुई थी। कदाचित् विनयसिंह की मृत्यु सोफिया को मि० क्लार्क की ओर आकर्षित कर दे। इसलिए वह मि० क्लार्क की और भी खातिर कर रही थीं। सोफिया को स्वयं जाकर साथ लाने का निश्चय कर चुकी थीं। जैसे बनेगा वैसे लाऊंगी, खुशी से न आएगी, जबरदस्ती लाऊंगी, रोऊंगी, पैरों पडूंगी, और बिना साथ लाए उसका गला न छोडूंगी।

मि० जॉन सेवक कंपनी का वार्षिक वितरण तैयार करने में दत्तचित्त थे। गत साल के नफे की सूचना देने के लिए उन्होंने यही अवसर पसंद किया था। यद्यपि यथार्थ लाभ बहुत कम हुआ था, किंतु आय-व्यय में इच्छापूर्वक उलटफेर करके वह आशातीत लाभ दिखाना चाहते थे, जिसमें कंपनी के हिस्सों की दर चढ़ जाए, और लोग हिस्सों पर टूट पड़ें। इधर के घाटे को वह इस चाल से पूरा करना चाहते थे। लेखकों को रात-रात-भर काम करना पड़ता था, और स्वयं मि० सेवक हिसाबों की तैयारी में उससे कहीं ज्यादा परिश्रम करते थे, जितना उत्सव की तैयारियों में।

किंतु मि० ईश्वर सेवक को ये तैयारियां, जिन्हें वह अपव्यय कहते थे, एक आंख न भाती थीं। वह बार-बार झुंझलाते थे, बेचारे वृद्ध आदमी को सुबह से शाम तक सिरमगजन करते गुजरता था। कभी बेटे पर झल्लाते, कभी बहू पर, कभी कर्मचारियों पर, कभी सेवकों पर—यह पांच मन बर्फ की क्या जरूरत है, क्या लोग इसमें नहाएंगे? मन-भर काफी थी। काम तो आधे मन में ही चल सकता था। इतनी शराब की क्या जरूरत? कोई परनाला बहाना है, या मेहमानों को पिलाकर उनके प्राण लेने हैं, इससे क्या फायदा कि लोग पी-पीकर बदमस्त हो जाएं, और आपस में जूतीपैजार होने लगे? लगा दो घर में आग, या मुझी को जहर दे दो, न जिंदा रहूंगा, न जलन होगी। प्रभु मसीह ! मुझे अपने दामन में ले। इस अनर्थ का कोई ठिकाना है, फौजी बैंड की क्या जरूरत? क्या गवर्नर कोई बच्चा है, जो बाजा सुनकर खुश होगा? या शहर के रईस बाजे के भूखे हैं? ये आतिशबाजियां क्या होंगी? गजब खुदा का, क्या एक सिरे से सब भंग खा गए हैं? यह गवर्नर का स्वागत है, या बच्चों का खेल? पटाखे और छछूंदरें किसको खुश करेंगी? माना पटाखे और छछूंदरें न होंगी, अंगरेजी आतशबाजियां होंगी, मगर क्या गवर्नर ने आतशबाजी नहीं देखी है? ऊटपटांग काम करने से क्या मतलब? किसी गरीब का घर जल जाय, कोई और दुर्घटना हो जाए, तो लेने के देने पड़ें। हिन्दुस्तानी रईसों के लिए ये फल-मेवे और मुरब्बे-मिठाइयां मंगाने की जरूरत? वे ऐस भुक्खड़ नहीं होते। उनके लिए एक-एक सिगरेट काफी थी। हां, पान-इलायची का प्रबंध और कर दिया जाता। वे यहां कोई दावत खाने तो आएंगे नहीं, कंपनी का वार्षिक विवरण सुनने आएंगे। अरे ओ खानसामा, सुअर ! ऐसा न हो कि मैं तेरा सिर तोड़कर रख दूं। जो-जो वह पगली (मिसेज सेवक) कहती है, वही करता है। तुझे भी कुछ बुद्धि है या नहीं? जानता है, आजकल चार रुपये सेर अंगूर मिलते हैं। इनकी बिल्कुल जरूरत नहीं। खबरदार जो यहां अंगूर आए ! सारांश यह कि कई दिनों तक निरंतर बक-बक, झक-झक से उनका चित्त कुछ अव्यवस्थित-सा हो रहा था। कोई उनकी सुनता न था, सब अपने-अपने मन की करते थे। जब वह बकते-बकते थक जाते, तो उठकर बाग में चले जाते; लेकिन थोड़ी ही देर में फिर घबराकर आ पहुंचते, और पूर्ववत् लोगों पर वाक्य-प्रहार करने लगते। यहां तक कि उत्सव के एक सप्ताह पहले जब मि० जॉन सेवक ने प्रस्ताव किया कि घर के सब नौकरों और कारखाने के चपरासियों को एल्गिन मिल की बनी हुई वरदियां दी जायं, तो मि० ईश्वर सेवक

ने मारे क्रोध के वह इंजील, जिसे वह हाथ में लिए प्रकट रूप से ऐनक की सहायता से, पर वस्तुतः स्मरण से, पढ़ रहे थे, अपने सिर पर पटक ली, और बोले, या खुदा मुझे इस जंजाल से निकाल! सिर दीवार के समीप था, यह धक्का लगा, तो दीवार से टकरा गया। नब्बे वर्ष की अवस्था, जर्जर शरीर, वह तो कहो पुरानी हड्डियां थीं कि काम देती जाती थीं, अचेत हो गए। मस्तिष्क इस आघात को सहन न कर सका, आंखें निकल आईं, होंठ खुल गए, और जब तक लोग डॉक्टरों को बुलाएं, उनके प्राण-पखेरू उड़ गए। ईश्वर ने उनकी अंतिम विनय स्वीकार कर ली, इस जंजाल से निकाल दिया। निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनकी मृत्यु का क्या मुख्य कारण था, यह आघात या गृहदाह?

सोफिया ने यह शोक-समाचार सुना, तो मान जाता रहा। अपने घर में अब अगर किसी को उससे प्रेम था, तो ईश्वर सेवक ही थे। उनके प्रति उसे भी श्रद्धा थी। तुरंत मातमी वस्त्र धारण किए, और अपने घर गई। मिसेज सेवक दौड़कर उससे गले मिलीं, और मां-बेटियां मृत देह के पास खूब रोईं।

रात को जब मातमी दावत समाप्त हुई, और लोग अपने-अपने घर गए, तो मिसेज सेवक ने सोफिया से कहा- बेटी, तुम अपना घर रहते हुए दूसरी जगह रहती हो, क्या यह हमारे लिए लज्जा और दुःख की बात नहीं? यहां अब तुम्हारे सिवा और कौन वली-वारिस है! प्रभु का अब क्या ठिकाना, घर आए या न आए, अब तो जो कुछ हो तुम्हीं हो। हमने अगर कभी कड़ी बात कही होगी, तो तुम्हारे भले को कही होगी। कुछ तुम्हारी दुश्मन तो हूं नहीं। अब अपने घर में रहो। यों आने-जाने के लिए कोई रोक नहीं है, रानी साहब से भी मिल आया करो, पर रहना यहीं चाहिए। खुदा ने और तो सब अरमान पूरे कर दिए, तुम्हारा विवाह भी हो जाता, तो निश्चिंत हो जाती। प्रभु जब आता, देखी जाती। इतने दिनों का मातम थोड़ा नहीं होता, अब दिन गंवाना अच्छा नहीं। मेरी अभिलाषा है कि अबकी तुम्हारा विवाह हो जाय, और गरमियों में हम सब दो-तीन महीने के लिए मंसूरी चलें।

सोफी ने कहा-जैसी आपकी इच्छा, कर लूंगी।

मां-और क्या बेटी, जमाना सदा एक-सा नहीं रहता, हमारी जिंदगी का क्या भरोसा। तुम्हारे बड़े पापा यह अभिलाषा लिए ही सिधार गए तो मैं तैयारी करूं?

सोफिया-कह तो रही हूं।

मां-तुम्हारे पापा सुनकर फूले न समाएंगे। कुंवर विनयसिंह की मैं निंदा नहीं करती, बड़ा जवांमर्द आदमी था, पर बेटी अपने धर्म वालों में करने की बात ही और है।

सोफिया-हां और क्या!

मां-तो अब रानी जाह्नवी के यहां न जाओगी न?

सोफिया-जी नहीं, न जाऊंगी।

मां-आदमियों से कह दूं, तुम्हारी चीजें उठा लाएं?

सोफिया-कल रानीजी आप ही भेज देंगी।

मिसेज सेवक खुश-खुश दावत का कमरा साफ कराने गईं।

मि० क्लार्क अभी वहीं थे। उन्हें यह शुभ सूचना दी। सुनकर फड़क उठे। बांछें खिल गईं। दौड़े हुए सोफिया के पास आ गए, और बोले-सोफी, तुमने मुझे जिंदा कर दिया। आह! मैं कितना भाग्यवान् हूं। मगर तुम एक बार अपने मुंह से मेरे सामने कह दो। तुम अपना वायदा पूरा करोगी?

सोफिया–करूंगी।

और भी बहुत से आदमी मौजूद थे, इसलिए मि० क्लार्क सोफिया को आलिंगन न कर सके। मोछों पर ताव देते, हवाई किले बनाते, मनमोदक खाते घर गए।

प्रात:काल सोफिया का अपने कमरे में पता न था। पूछताछ होने लगी। माली ने कहा, मैंने उन्हें जाते तो नहीं देखा, पर जब सब लोग सो गए थे, तो एक बार फाटक के खुलने की आवाज आई थी। लोगों से समझा, कुंवर भरतसिंह के यहां गई होगी, तुरंत आदमी दौड़ाया गया। लेकिन वहां भी पता न चला। बड़ी खलबली मची, कहां गई।

जॉन सेवक--तुमने रात को कुछ कहा-सुना तो नहीं था?

मिसेज सेवक–रात को तो विवाह की बातचीत होती रही। मुझसे तैयारियां करने के लिए भी कहा। खुश-खुश सोई।

जॉन सेवक–तुम्हारी समझ का फर्क था। उसने तो अपने मन का भाव प्रकट कर दिया। तुमको जता दिया कि कल मैं न हूंगी। जानती हो, विवाह से उसका आशय क्या था? आत्मसमर्पण ! अब विनय से उसका विवाह होगा, यहां जो न हो सका, वह स्वर्ग में होगा। मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था, वह किसी से विवाह न करेगी। तुमने रात को विवाह की बातचीत छेड़कर उसे भयभीत कर दिया। जो बात कुछ दिनों में होती, वह आज ही हो गई। अब जितना रोना हो, रो लो; मैं तो पहले ही रो चुका हूं।

इतने में रानी जाह्नवी आईं, आंखें रोते-रोते बीरबहूटी हो रही थीं। उन्होंने एक पत्र मि० सेवक के हाथ में रख दिया, और एक कुर्सी पर बैठकर मुंह ढांप रोने लगीं।

यह सोफिया का पत्र था, अभी डाकिया दे गया था। लिखा था–

पूज्य माताजी ! आपकी सोफिया आज संसार से विदा होती है। जब विनय न रहे, तो यहां मैं किसके लिए रहूं। इतने दिनों तक मन को धैर्य देने की चेष्टा करती रही। समझती थी, पुस्तकों में अपनी शोक-स्मृतियों को डुबा दूंगी, और अपना जीवन सेवा-धर्म का पालन करने में सार्थक करूंगी। किंतु मेरा प्यारा विनय मुझे बुला रहा है। मेरे बिना उसे वहां एक क्षण चैन नहीं है। उससे मिलने जाती हूं। यह भौतिक आवरण मेरे मार्ग में बाधक है, इसलिए इसे यहीं छोड़े जाती हूं। गंगा की गोद में इसे सौंपे देती हूं। मेरा हृदय पुलकित हो रहा है, पैर उड़े जा रहे हैं, आनंद से रोम-रोम प्रमुदित है, अब शीघ्र ही मुझे विनय के दर्शन होंगे। आप मेरे लिए दु:ख न कीजिएगा, मेरी खोज का व्यर्थ प्रयत्न न कीजिएगा। कारण, जब तक वह पत्र आपके हाथों में पहुंचेगा, सोफिया का सिर विनय के चरणों पर होगा। मुझे कोई प्रबल शक्ति खींचे लिए जा रही है, और बेड़ियां आप-ही-आप टूटी जा रही हैं।

मामा और पापा से कह दीजिएगा, सोफी का विवाह हो गया, अब उसकी चिंता न करें।

पत्र समाप्त होते ही मिसेज सेवक उन्मादिनी की भांति कर्कश स्वर से बोली--तुम्हीं विष की गांठा हो, मेरे जीवन का सर्वनाश करने वाली, मेरी जड़ों में कुल्हाड़ी मारने वाली, मेरी अभिलाषाओं को पैरों से कुचलने वाली, मेरा मान-मर्दन करने वाली, काली नागिन तुम्हीं हो ! तुम्हीं ने अपनी मधुर वाणी से, अपने छल-प्रपंच से, अपने कूट मंत्रों से मेरी सरला सोफी को मोहित कर लिया, और अंत को उसका सर्वनाश कर दिया। यह तुम्हीं लोगों के प्रलोभन और उत्तेजना देने का फल है कि मेरा लड़का आज न-जाने कहां किस दशा में है, और मेरी लड़की का यह हाल हुआ। तुमने मेरे सारे मंसूबे खाक में मिला दिए।

वह उसी क्रोध-प्रवाह में न-जाने और क्या-क्या कहतीं कि मि० जॉन सेवक उनका हाथ पकड़कर वहां से खींच ले गए। रानी जाह्नवी ने इन अपमानसूचक, कटु शब्दों का कुछ भी उत्तर न दिया, मिसेज सेवक को संवेदना-पूर्ण नेत्रों से देखती रहीं, और तब बिना कुछ कहे-सुने वहां से उठकर चली गईं।

मिसेज सेवक की महत्त्वाकांक्षाओं पर तुषार पड़ गया। उस दिन से फिर उन्हें किसी ने गिरजाघर जाते नहीं देखा था, यह फिर कभी गाउन और हैट पहने हुए न दिखाई दीं, फिर योरोपियन क्लब में नहीं गईं, और फिर अंगरेजी दावतों में सम्मिलित नहीं हुईं। दूसरे दिन प्रातःकाल पादरी पिम और मि० क्लार्क मातमपुरसी करने आए। मिसेज सेवक ने दोनों को वह फटकार सुनाई कि अपना-सा मुंह लेकर चले गए। सारांश यह कि उसी दिन उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई, मस्तिष्क इतने कठोराघात को सहन न कर सका। वह अभी तक जीवित हैं, पर दशा अत्यंत करुण है। आदमियों की सूरत से घृणा हो गई है, कभी हंसती हैं, कभी रोती हैं, कभी नाचती हैं, कभी गाती हैं। कोई समीप जाता हे, तो दांत काटने दौड़ती हैं।

रहे मि० जॉन सेवक। वह निराशामय धैर्य के साथ प्रातःकाल से संध्या तक अपने व्यावसायिक धंधों में रत रहते हैं। उन्हें अब संसार में कोई अभिलाषा नहीं है, कोई इच्छा नहीं है, धन से उन्हें निस्स्वार्थ प्रेम है, कुछ वही अनुराग, जो भक्तों को अपने उपास्य से होता है। धन उनके लिए किसी लक्ष्य का साधन नहीं है, स्वयं लक्ष्य है। न दिन को दिन समझते हैं, न रात को रात। कारबार दिन-दिन बढ़ता जाता है। लाभ भी दिन-दिन बढ़ता जाता है या नहीं, इसमें संदेह है। देश में गली-गली, दुकान-दुकान इस कारखाने के सिगार और सिगरेटों की रेल-पेल है। वह अब पटने में एक तंबाकू की मिल खोलने की आयोजना कर रहे हैं, क्योंकि बिहार-प्रांत में तंबाकू कसरत से पैदा होता है। उनकी धन-कामना विद्या-व्यसन की भांति तृप्त नहीं होती।

पचास

कुंवर विनयसिंह की वीर मृत्यु के पश्चात् रानी जाह्नवी का सदुत्साह दुगना हो गया। वह पहले से कहीं ज्यादा क्रियाशील हो गईं। उनके रोम-रोम में असाधारण स्फूर्ति का विकास हुआ। वृद्धावस्था की आलस्यप्रियता यौवन-काल की कर्मण्यता में परिणत हो गई। कमर बांधी, और सेवक-दल का संचालन अपने हाथ में लिया। रनिवास छोड़ दिया, कर्मक्षेत्र में उतर आईं, और इतने जोश से काम करने लगीं कि सेवक-दल को जो उन्नति कभी न प्राप्त हुई थी, वह अब हुई। धन का इतना बाहुल्य कभी न था, और न सेवकों की संख्या ही कभी इतनी अधिक थी। उनकी सेवा का क्षेत्र भी कभी इतना विस्तीर्ण न था। उनके पास निज का जितना धन था, वह सेवक-दल को अर्पित कर दिया, यहां तक कि अपने लिए एक आभूषण भी न रक्खा। तपस्विनी का वेष धारण करके दिखा दिया कि अवसर पड़ने पर स्त्रियां कितनी कर्मशील हो सकती हैं।

डॉक्टर गांगुली का आशावाद भी अंत में अपने नग्न रूप में दिखाई दिया। उन्हें विदित हुआ कि वर्तमान अवस्था में आशावाद आत्मवंचना के सिवा और कुछ नहीं है। उन्होंने कौंसिल में मि० क्लार्क के विरुद्ध बड़ा शोर मचाया, पर यह अरण्य-रोदन सिद्ध हुआ। महीनों का

वादविवाद, प्रश्नों का निरंतर प्रवाह सब व्यर्थ हुआ। वह गवर्नमेंट को मि० क्लार्क का तिरस्कार करने पर मजबूर न कर सके। इसके प्रतिकूल मि० क्लार्क की पद-वृद्धि हो गई। इस पर डॉक्टर साहब इतने झल्लाए कि आपे में न रह सके। वहीं भरी सभा में गर्वनर को खूब खरी-खरी सुनाईं, यहां तक कि सभा के प्रधान ने उनसे बैठ जाने को कहा। इस पर वह और भी गर्म हुए, और प्रधान की भी खबर ली। उन पर पक्षपात का दोषारोपण किया। प्रधान ने तब उनको सभा-भवन से चले जाने का हुक्म दिया, और पुलिस को बुलाने की धमकी दी। मगर डॉक्टर साहब का क्रोध इस पर भी शांत न हुआ। वह उत्तेजित होकर बोले—आप पशु-बल से मुझे चुप करना चाहते हैं, इसलिए कि आपमें धर्म और न्याय का बल नहीं है। आज मेरे दिल से यह विश्वास उठ गया, जो गत चालीस वर्षों से जमा हुआ था कि गवर्नमेंट हमारे ऊपर न्याय-बल से शासन करना चाहती है। आज उस न्याय-बल की कलई खुल गई, हमारी आंखों से पर्दा उठ गया, और हम गवर्नमेंट को उसके नग्न, आवरण-हीन रूप में देख रहे हैं। अब हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि केवल हमको पीसकर तेल निकालने के लिए, हमारा अस्तित्व मिटाने के लिए, हमारी सभ्यता और हमारे मनुष्यत्व की हत्या करने के लिए, हमको अनंत काल तक चक्की का बैल बनाए रखने के लिए, हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है। अब तक जो कोई मुझसे ऐसी बातें कहता था, मैं उससे लड़ने पर तत्पर हो जाता था, मैं रिपन, ह्यूम और बेसेंट आदि की कीर्ति का उल्लेख करके उसे निरुत्तर करने की चेष्टा करता था। पर अब विदित हो गया कि उद्देश्य सबका एक ही है, केवल साधनों में अंतर है।

वह और न बोलने पाए। पुलिस का एक सार्जंट उन्हें सभा-भवन से निकाल ले गया। अन्य सभासद् भी उठकर सभा-भवन से चले गए। पहले तो लोगों को भय था कि गवर्नमेंट डॉक्टर गांगुली पर अभियोग चलाएगी, पर कदाचित् व्यवस्थाकारों को उनकी वृद्धावस्था पर दया आ गई, विशेष इसलिए कि डॉक्टर महोदय ने उसी दिन घर आते ही अपना त्याग-पत्र भेज दिया।

वह उसी दिन वहां से रवाना हो गए, और तीसरे दिन कुंवर भरतसिंह से आ मिले। कुंवर साहब ने कहा—तुम तो इतने गुस्सेवर न थे, यह तुम्हें हो क्या गया?

गांगुली—हो क्या गया ! वही हो गया, जो आज से चालीस वर्ष पहले होना चाहिए था। अब हम भी आपका साथी हो गया। अब हम दोनों सेवक-दल का काम खूब उत्साह से करेगा।

कुंवर—नहीं डॉक्टर साहब, मुझे खेद है कि मैं आपका साथ न दे सकूंगा। मुझमें वह उत्साह नहीं रहा। विनय के साथ सब चला गया। जाह्नवी अलबत्ता आपकी सहायता करेंगी। अगर अब तक कुछ संदेह था, तो आपके निर्वासन ने उसे दूर कर दिया कि अधिकारी-वर्ग सेवक-दल से सशंक हैं, और यदि मैं उससे अलग न रहा, तो मुझे अपनी जायदाद से हाथ ध ोना पड़ेगा। जब यह निश्चय है कि हमारे भाग्य में दासता ही लिखी हुई है...

गांगुली—यह आपको कैसे निश्चय हुआ?

कुंवर—परिस्थितियों को देखकर और क्या। जब यह निश्चय है कि हम सदैव गुलाम ही रहेंगे, तो मैं अपनी जायदाद क्यों हाथ से खोऊं? जायदाद बची रहेगी, तो हम इस हीनावस्था में भी अपने दु:खी भाइयों के कुछ काम आ सकेंगे। अगर वह भी निकल गई, तो हमारे दोनों हाथ कट जाएंगे। हम रोने वालों के आंसू भी न पोछ सकेंगे।

गांगुली—अहा ! तो कुंवर विनयसिंह का मृत्यु भी आपके इस बेड़ी को नहीं तोड़ सका। हम समझा था, अब आप निर्द्वंद्व हो गया होगा। पर देखता है, तो वह बेड़ी ज्यों-का-त्यों आप

के पैरों में पड़ा हुआ है। अब आपको विदित हुआ होगा कि हम क्यों संपत्तिशाली पुरुषों पर भरोसा नहीं करता। वे तो अपनी संपत्ति का गुलाम है। वे कभी सत्य के समर में नहीं आ सकते। जो सिपाही सोने का ईंट गर्दन में बांधकर लड़ने चले, वह कभी नहीं लड़ सकता। उसको तो अपने ईंट का चिंता लगा रहेगा। जब तक हम लोग ममता का परित्याग नहीं करेगा, हमारा उद्देश्य कभी पूरा नहीं होगा। अभी तक हमको कुछ भ्रम था, पर वह भी मिट गया कि संपत्तिशाली मनुष्य हमारा मदद करने के बदले उल्टा हमको नुकसान पहुंचाएगा। पहले आप निराशावादी था, अब आप संपत्तिवादी हो गया।

यह कहकर डॉक्टर गांगुली विमन हो यहां से उठे, और जाह्नवी के पास आए, तो देखा कि वह कहीं जाने को तैयार बैठी हैं। इन्हें देखते ही विहंसित मुख से इनका अभिवादन करते हुए बोलीं—अब तो आप भी मेरे सहकारी हो गए। मैं जानती थी कि एक न एक दिन हम लोग आपको अवश्य खींच लेंगे। जिनमें आत्मसम्मान का भाव जीवित है, उनके लिए वहां स्थान नहीं है। वहां उन्हीं के लिए स्थान है, जो या तो स्वार्थभक्त हैं, अथवा अपने को धोखा देने में निपुण। अभी यहां दो-एक दिन विश्राम कीजिएगा न? मैं तो आज की गाड़ी से पंजाब जा रही हूं।

गांगुली—विश्राम करने का समय तो अब निकट आ गया है, उसका क्या जल्दी है। अब अनंत विश्राम करेगा। हम भी आपके साथ चलेगा।

जाह्नवी—क्या कहें, बेचारी सोफिया न हुई, नहीं तो उससे बड़ी सहायता मिलती।

गांगुली—हमको तो उसका समाचार वहीं मिला था। उसका जीवन अब कष्टमय होता। उसका अंत हो गया, बहुत अच्छा हुआ। प्रणय-वंचित होकर वह कभी सुखी नहीं रह सकता था। कुछ भी हो, वह सती था, और सती नारियों का यही धर्म है। रानी इन्दु तो आराम से है न?

जाह्नवी—वह तो महेन्द्रकुमार से पहले ही रूठकर चली आई थी। अब यहीं रहती है। वह भी तो मेरे साथ जा रही है। उसने अपनी रियासत के सुप्रबंध के लिए एक ट्रस्ट बनाना निश्चय किया है, जिसके प्रधान आप होंगे। उसे रियासत से कोई संपर्क न रहेगा।

इतने में इन्दु आ गई, और डॉक्टर गांगुली को देखते ही उन्हें प्रणाम करके बोली—आप स्वयं आ गए, मेरा तो विचार था कि पंजाब होते हुए आपकी सेवा में भी जाऊं।

डॉक्टर गांगुली ने कुछ भोजन किया, और संध्या-समय तीनों आदमी यहां से रवाना हो गए। तीनों के हृदय में एक ही ज्वाला थी, एक ही लगन। तीनों का ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था।

कुंवर भरतसिंह अब फिर विलासमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, फिर वही सैर और शिकार है, वही अमीरों के चोंचले, वही रईसों के आडंबर, वही ठाट-बाट। उनके धार्मिक विश्वास की जड़ें उखड़ गई हैं। इस जीवन से परे अब उनके लिए अनंत शून्य और अनंत आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। लोक असार है, परलोक भी असार है, जब तक जिंदगी है, हंस-खेलकर काट दो। मरने के पीछे क्या होगा, कौन जानता है। संसार सदा इसी भांति रहता है, और इसी भांति रहेगा। उसकी सुव्यवस्था न किसी से हुई है, और न होगी। बड़े-बड़े ज्ञानी, बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ता, ऋषि, मुनि मर गए, और कोई इस रहस्य का पार न पा सका। हम जीवमात्र हैं, और हमारा काम केवल जीना है। देश-भक्ति, विश्व-भक्ति, सेवा, परोपकार, यह सब ढकोसला है। अब उनके नैराश्य-व्यथित हृदय को इन्हीं विचारों से शांति मिलती है।